प्रायोगिक मनोविज्ञान का परिचय

प्रायोगिक मनोविज्ञान का स्वरूप

सामान्य प्रायोगिक मनोविज्ञान आधुनिक मनोविज्ञान की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शाखा है। मनोवैज्ञानिक अध्ययन मे वैज्ञानिकता का उद्भव और विकास प्रायोगिक मनोविज्ञान के उद्भव और विकास के साथ जुड़ा हुआ है। मनोविज्ञान के अन्तर्गत शिक्षा, समाज, बाल और औद्योगिक मनोविज्ञान जैसी अन्य शाखाओ के वर्गीकरण का आधार इन विभिन्न शाखाओं के अध्ययन वस्तु की विशिष्टता है। उदाहरण के लिए समाज मनोविज्ञान का विषय मानव व्यवहार के सामाजिक सन्दर्भ मे अध्ययन से सम्बन्धित है। शिक्षा मे सम्बन्धित व्यवहार का अनुशीलन तथा मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो का शिक्षण की समस्याओ मे अनुप्रयोग ही शिक्षा मनोविज्ञान है। इसी प्रकार विकास, औद्योगिक तथा चिकित्सा मनोविज्ञान जैसी अन्य शाखाये भी व्यवहार के विविध विभाजो के अध्ययन मे सलग्न है। इनके विपरीत प्रायोगिक मनोविज्ञान जीवित प्राणी के व्यवहार या किसी परिवेश या सदर्भ विशेष मे सीमित न होकर सार्वभौम अध्ययन है। इसकी आधारभूत विशेषता यह है कि यह व्यवहार के मात्र प्रायोगिक अध्ययन पर निर्भर रहता है। अन्य विधियो द्वारा सकलित प्रदत्तो पर आधृत निष्कर्षो एव नियमो का समावेश प्रायोगिक मनोविज्ञान मे नही होता है।

सामान्य प्रायोगिक मनोविज्ञान अपने विषय वस्तु मे सामान्य मनोविज्ञान के समान है। इसमे भी जीवित प्राणी के उन सभी मौलिक व्यवहारो का अध्ययन एव विश्लेषण होता है जो जीवित प्राणी के किसी परिवेश विशेष की सीमाओ मे बँधे हुए नही है और जिनमे सभी प्रकार के परिवेश मे सम्पन्न होने वाली सामान्य मनोवैज्ञानिक क्रियाएँ समाहित है। सामान्य और प्रायोगिक मनोविज्ञान के मध्य अन्तर केवल यही है कि सामान्य मनोविज्ञान बहुधा सश्लेषणात्मक दृष्टिकोण लेकर चलता है और व्यवहारो की व्याख्या मे सामान्यत अनुप्रयुक्त होने वाले नियमो का प्रतिपादन एव विवेचन करता है। दूसरी ओर प्रायोगिक मनोविज्ञान विश्लेपणात्मक होता है और अध्ययन तथा विवेचन हेतु व्यवहारो का वर्गीकरण इस प्रकार करता है कि सम्बन्धित व्यवहार के प्रत्येक पक्ष का अध्ययन प्रायोगिक विधि के आधार पर हो सके। दूसरे शब्दो मे प्रायोगिक मनोविज्ञान आधुनिक मनोविज्ञान की वह शाखा है जिसमे जीवित प्राणियो मे पाये जाने वाले समस्त व्यवहारो का अध्ययन प्रायोगिक

विधि के आधार पर होता है। इसका उद्देश्य मूलत सैद्धान्तिक और गौण रूप से अनुप्रयोगात्मक होता हे। जीवित प्राणियो द्वारा किये जाने वाले विविध प्रकार के व्यवहारो के वैज्ञानिक वर्णन और व्याख्या के लिए सिद्धान्त प्रतिपादन के उद्देश्य से जितने प्रायोगिक अध्ययन होते है वे सभी अध्ययन इस शाखा के अग हो जाते है। यहा इस तथ्य को भी ध्यान मे रखना आवश्यक हे कि प्रायोगिक विधि का उपयोग अन्य मनोवैज्ञानिक शाखाओ मे भी होता हे किन्तु सभी प्रकार के प्रयोगो का समावेश प्रायोगिक मनोविज्ञान मे नही होता है। अन्य शाखाओ मे कतिपय अध्ययन ऐसे होते है जिनका उद्देश्य किसी विशिष्ठ किन्तु व्यावहारिक समस्या का समाधान प्राप्त करना होता हे। उदाहरण के लिए इस प्रश्न का कि क्या तिमिर कक्ष मे भी विभ्रम होते है, प्रायोगिक विधि से अध्ययन किया जा सकता है। किन्तु ऐसे व्यावहारिक प्रश्नो के प्रायोगिक अध्ययन को प्रायोगिक मनोविज्ञान मे सम्मिलित नही किया जाता। प्रायोगिक मनोविज्ञान मे प्रयोग विधि से किए गए केवल उन्ही अध्ययनो को स्थान दिया जाता हे जिनका मूल उद्देश्य व्यवहार के वर्णन, विवेचन तथा व्याख्या से सम्बन्धित होता है। ऐसे अध्ययन या तो किसी सिद्धान्त के प्रतिपादन के उद्देश्य से किए जाते है या किसी प्रतिपादित सिद्धान्त अथवा उससे आविर्भूत परिकल्पना के परीक्षण के लिए किए जाते है। स्काट तथा वर्दाइमर (1962) ने लिखा है कि मनोविज्ञान मे प्रायोगिक अध्ययन तीन उद्देश्यो से अभिप्रेरित होते है (1) किसी प्रश्न विशेष का उत्तर, (2) सिद्धान्त प्रतिपादन, तथा (3) सिद्धान्त परीक्षण। अन्तिम दो उद्देश्यो की पूर्ति के लिए किए गए प्रायोगिक अध्ययन प्रायोगिक मनोविज्ञान के क्षेत्र का निर्माण करते है।

प्रयोग पद्धति

स्पष्ट है कि प्रायोगिक मनोविज्ञान आधुनिक मनोविज्ञान की पद्धति परक शाखा हे। प्रायोगिक मनोविज्ञान मे इस पद्धति की अपरिहार्यता की दृष्टि से प्रयोग पद्धति का निरूपण एव विवेचन आवश्यक प्रतीत होता है। प्रयोग विधि विज्ञान की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विधि है और इसे हम एक विशिष्ट प्रकार का प्रेक्षण मान सकते है। इसीलिए कहा जाता है कि प्रयोग पद्धति विषय वस्तु का नियन्त्रित दशाओ मे प्रेक्षण हैं। प्रेक्षण विधि के अन्तर्गत हम विषय वस्तु मे होने वाले परिवर्तनो और उनकी विशेषताओ के प्रेक्षण के लिए पूणत प्रकृति पर आश्रित रहते हे। दूसरे शब्दो मे जब मात्र प्रेक्षण विधि का अनुप्रयोग होता है तो हमे जिस विषय वस्तु का प्रेक्षण अभिप्रेत होता हे उसे ढढना पडता है। उदाहरण के लिए यदि हमे प्रेक्षण विधि द्वारा यह ज्ञात करना है कि भूख का मनुष्य के प्रत्यक्षीकरण पर क्या प्रभाव पडता है तो हमे ऐसे मनुष्यो को ढूंढना होगा जो भूखे हो और किन्ही वस्तुओ का प्रत्यक्षीकरण भी कर रहे हो। इस प्रकार हम बाह्य क्षेत्र मे जाकर ही इस प्रकार का प्रेक्षण कर सकते है। इसके विपरीत प्रायोगिक प्रेक्षण मे हमे निर्धारित विषय वस्तु को उचित नियत्रणो के माध्यम मे उत्पन्न कर प्रेक्षण करना पडता है। उसके लिए प्रयोगकर्ता उस विषयवस्तु को नियन्त्रण

द्वारा उत्पन्न और परिवर्तित करता है तथा उसका प्रेक्षण द्वारा अध्ययन करता है। मान लीजिए कि हम प्रयोग विधि द्वारा ही प्रत्यक्षीकरण पर भूख का अध्ययन करना चाहते है। इसके लिए हमे कुछ प्रयोज्यो को लेकर उन्हे कुछ घण्टो तक भूखा रखना पडेगा। इस प्रकार भूख की मात्रा नियन्त्रित रहेगी। इन भूखे प्रयोज्यो के समक्ष सामग्री उपस्थित करके प्रत्यक्षीकरण विषयक जानकारी प्राप्त की जायेगी। ऐसे प्रयोज्यो के प्रत्यक्षीकरण की तुलना की सहायता से भूख का प्रत्यक्षीकरण पर प्रभाव ज्ञात कर लिया जायेगा। इस तरह के प्रेक्षण को हम प्रायोगिक प्रेक्षण कहते हैं। यही प्रयोग पद्धति का वास्तविक मूल रूप है।

प्रायोगिक पद्धति मे हम बहुधा दो परिवर्त्यों के पारस्परिक प्रकार्यात्मक सम्बन्ध[1] का अध्ययन करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि एक परिवर्त्य मे परिवर्तन के कारण दूसरे परिवर्त्य मे क्या परिवर्तन होता है। उदाहरण के लिए यदि भूख का प्रभाव प्रत्यक्षीकरण पर ज्ञात करना है तो हमारे लिए आवश्यक है कि हम यह जाने कि भूख का प्रभाव प्रत्यक्षीकरण पर पडता है या नही और यदि पडता है तो कितना और किस प्रकार का। यदि किसी सैद्धान्तिक आधार पर अथवा अनुमानत हम सोचते है कि भूख के कारण असरचित[2] या अर्धसचरित[3] उद्दीपक सामग्री का प्रेक्षण करने पर भोजन से सम्बन्धित पदार्थों का अधिक मात्रा मे प्रत्यक्षीकरण होता है तो यह भी जानना आवश्यक होगा कि भूख की मात्रा और क्षुधा सम्बन्धी पदार्थों के प्रत्यक्षीकरण की मात्रा मे क्या मात्रात्मक[4] सम्बन्ध है। अत प्रयोग के माध्यम से हम भूख की मात्रा को घटा-बढाकर प्रत्यक्षीकरण पर क्षुधा सम्बन्धी पदार्थों की मात्रा और सहजता मे क्रमिक परिवर्तन के प्रभाव का ज्ञान प्राप्त कर सकते है। ज्ञान प्राप्त करने की यही प्रक्रिया प्रायोगिक निरीक्षण या प्रयोग विधि है।

प्रयोग विधि के अनुप्रयोग के सुनिश्चित चरण[5] होते हैं। प्रयोग विधि का उपयोग करने से पहले हमारे सामने किसी मनोवैज्ञानिक समस्या का होना अत्यन्त आवश्यक है। वह समस्या ही हमारे अध्ययन की विषय-वस्तु है। मनोवैज्ञानिक प्रयोग के लिए समस्या जीवित प्राणी के व्यवहार से सम्बन्धित होनी चाहिए। इस समस्या पर प्रयोग करने के पहले यह भी आवश्यक है कि प्रयोगकर्ता के पास उस समस्या के समाधान की कोई एक परिकल्पना[6] या कई परिकल्पनाएँ हो। परिकल्पना एक कल्पित उत्तर है जो हमारी पूर्व जानकारी अथवा गत अनुभवो पर आधृत हो सकती है। दूसरे शब्दो मे परिकल्पना अस्पष्ट या प्रच्छन्न[7] उत्तर है। परिकल्पनाएँ बहुधा दो परिवर्त्यों के बीच अनुभवजन्य सम्बन्ध[8] का कथन करती है। इसी परिकल्पना के सदर्भ मे हम प्रयोग विधि की योजना तैयार करते है। परिकल्पना से यह ज्ञात होता है कि किन परिवर्त्यों मे किस प्रकार के परिवर्तन का प्रभाव व्यवहार पर पडता है।

---

1 Functional relation 2 Structured 3 Semi-Structured 4 Quantitative 5 Steps 6 Hypothesis 7 Potential 8 Empirical relationship

व्यवहार मे परिवर्तन उत्पन्न करने वाले जिस परिवर्त्य का अध्ययन किया जाता है उसे अनाश्रित परिवर्त्य और उस परिवर्तित व्यवहार को आश्रित परिवत्य की सज्ञाये दी जाती है। वस्तुत परिकल्पना का कथन परिवर्त्यों के ही माध्यम से होता है। उदाहरण के लिए हम यह परिकल्पना कर सकते है कि क्षुधापीडित व्यक्तियो द्वारा अनगढ या असरचित[1] उत्तेजक समूहो मे भोजन सम्बन्धी पदार्थों का सुविधापूर्वक और अधिक मात्रा मे प्रत्यक्षीकरण किया जाता हे। यहाँ पर क्षुधा क्षुधापीडित व्यक्ति उत्तेजक, उसकी अनगढता तथा प्रत्यक्षीकरण परिवर्त्य हे। चूँकि भूख का प्रभाव प्रत्यक्षीकरण पर देखना चाहते हैं अत भूख की मात्रा अनाश्रित परिवर्त्य हे और प्रत्यक्षीकरण आश्रित परिवर्त्य है। हम यह भी जानते हे कि प्रत्यक्षीकरण पर अन्य परिवेशीय[2] तथा आगिक[3] परिवर्त्यों का प्रभाव पडता है। अत प्रायोगिक निरीक्षण मे इन परिवेशीय तथा आगिक परिवर्त्यों की भूमिका पर भी नियन्त्रण रखना होगा। चूँकि हम केवल भूख की मात्रा का ही प्रभाव देखना चाहते है और अन्य परिवर्त्यों का नही, इसलिए हमे प्रायोगिक प्रेक्षण मे इन्हे प्रयोग की दशा से पूर्णत पृथक् अथवा प्रयोग के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक एक सदृश रखना पडता हे। ऐसे परिवर्त्यों को हम प्रयोग मे सतत स्थिर परिवर्त्य[4] कहते हे।

परिकल्पना के आधार पर परिवर्त्यों का वर्गीकरण करने के पश्चात् हमे प्रयोग के लिए प्रयोज्यो का चुनाव करना पडता है। उदाहरण के लिए हमे भूख का प्रभाव देखना हो तो हमे ऐसे प्रयोज्यो का चुनाव करना होगा जो भूखे हो और ऐसे प्रयोज्यो को भी चुनना होगा जो क्षुधा-तृप्त हो। चयन के लिए यह भी जानना आवश्यक होगा कि प्रायोगिक समस्या के अनुसार किस प्रकार के व्यक्तियो मे भूख के प्रत्यक्षीकरण पर प्रभाव का अन्वेपण अपेक्षित है। ऊपर चर्चित परिकल्पना के निमित्त हमे दो प्रयोज्य समूहो से प्रत्यक्षीकरण सम्वन्वी प्रदत्त एकत्र करना होगा। हम सुविधा के लिए भूखे प्रयोज्य समूह को प्रायोगिक समूह तथा क्षुधा तृप्त प्रयोज्यो के समूह को नियन्त्रित समूह[5] की सज्ञा दे सकते है। इन दोनो समूहो के प्रत्यक्षीकरण मे अन्तर होने पर उस अन्तर की विश्वसनीयता का निर्धारण भी प्रयोग विधि का अनिवार्य अग है। एतदर्थ साख्यिकीय तकनीको का उपयोग किया जाता है। जब साख्यिकीय तकनीको के आधार पर विश्वसनीय अन्तर ज्ञात हो जाता हे तो इन निष्कर्षो के आधार पर प्रयोगकर्ता सैद्धान्तिक और आनुभविक सामान्यीकरण[6] करता है। इन सामान्यीकरणो की पुनपुष्टि के लिए प्रयोग की पुनरावृत्ति[7] की जाती हे। यदि इससे भी प्रथम प्रकार के ही निष्कर्ष प्राप्त होते है तब हम सामान्यीकरण के आधार पर क्षुधा और प्रत्यक्षीकरण के पारस्परिक सम्बन्ध के बारे मे पूर्वकथन[8] कर सकते है।

---

1 Unstructured stimulus 2 Environmental 3 Organismic 4 Constant variable 5 Controlled group 6 Theoretical & empirical generalization 7 Replication 8 Prediction

प्रयोग विधि के उपरोक्त निरूपण मे यह ज्ञात हुआ कि प्रयोग मे व्यवहार सम्बन्धी समस्या परिकल्पना, परिवर्त्य निर्धारण, प्रयोज्यो का चुनाव, प्रायोगिक योजना, सांख्यिकीय परीक्षण, सामान्यीकरण तथा पूर्वकथन के चरण सन्निहित है। इन चरणो की स्पष्ट जानकारी प्रयोग विधि के सम्यक अध्ययन के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

समस्या

समस्या उस परिस्थिति या दशा को कहते हैं जिसमे हमारे ज्ञान मे अपूर्णता हो अथवा एक ही प्रश्न के दो परस्पर विरोधी उत्तर प्राप्त हो, अथवा किसी भी ज्ञात तथ्य की व्याख्या सम्भव न हो। ज्ञान मे अपूणता तब होती है जब आवश्यक सूचना का अभाव हो। यदि हमको यह न मालूम हो कि मादक द्रव्यो के सेवन का हमारे सीखने की क्रिया पर क्या प्रभाव पडता है तो इस स्थिति को हम ज्ञान की अपूर्णता कहेगे। परस्पर विरोधी उत्तरो मे भी समस्या की उत्पत्ति होती है। उदाहरण के लिए कुछ प्रयोगो से ज्ञात हुआ कि सीखने का प्रक्रम एक ही प्रयास मे पूर्ण हो जाता है अथवा कुछ भी नही होता। दूसरी ओर यह भी ज्ञात हुआ कि सीखने का प्रक्रम शनै शनै अनेक प्रयासो मे पूर्ण होता है। सीखने के प्रक्रम के सम्बन्ध मे ये दोनो उत्तर परस्पर विरोधी है। इनमे से कोई एक ही उत्तर सही हो सकता है। अत यहाँ प्रश्न इन उत्तरो की सापेक्षिक वैधता का परीक्षण करना है। कभी-कभी तथ्य की जानकारी होती है किन्तु तथ्य की व्याख्या सम्भव नही होती है। दूसरे शब्दो मे तथ्य सम्बन्धी ज्ञात सिद्धान्त प्राप्त तथ्यो की व्याख्या करने मे असमर्थ है। प्राय ऐसा होता है कि यदि एक खडी वक्र रेखा पर कुछ देर तक दृष्टि केन्द्रित की जाय और तत्पश्चात एक खडी सीधी रेखा को देखा जाये तो दूसरी रेखा की पहली रेखा भी विरोधी दिशा मे वक्र दृष्टिगोचर होती है। यह गोचर[1] व्यापक और विस्तृत रूप से ज्ञात है किन्तु ऐसा क्यो होता है इस प्रश्न की व्याख्या अभी प्रत्यक्षीकरण के सिद्धान्त के आधार पर सम्भव नही है। यहाँ समस्या तथ्य की व्याख्या मे सैद्धान्तिक अपूर्णता या असफलता की है।

मनोवैज्ञानिक प्रयोग की समस्याये जीवित प्राणी के व्यवहार सम्बन्धी होती है। मनोवैज्ञानिक समस्या तब उत्पन्न होती है जब यह जानकारी न हो कि परिस्थिति विशेष मे या उत्तेजक विशेष के प्रस्तुत करने पर किस प्रकार का व्यवहार होगा अथवा अमुक परिस्थिति मे यह व्यवहार होगा या दूसरा अथवा यह तो ज्ञात हो कि यह व्यवहार होगा किन्तु यह न ज्ञात हो कि ऐसा व्यवहार क्यो और कैसे होता है। प्राय हम निश्चय के साथ नही कह सकते कि किसी अवांछित कार्य के करने पर यदि किसी व्यक्ति को दण्ड दिया जाए तो वह अवांछित काय करेगा अथवा नही। यहाँ ज्ञान का अभाव या अपूर्णता है। ऐसा भी होता है कि दण्ड से एक व्यक्ति सुधर

---

1 Phenomenon

सकते है। यह विचलनशीलता सभी तथ्यो मे पाई जाती है। इसीलिए तथ्यो को परिवर्त्य भी कहा जाता है। इस प्रकार हम कह सकते है कि परिकल्पना दो या अधिक परिवर्त्यों के बीच प्रच्छन्न सम्बन्ध का परीक्षण शील कथन है।

परिकल्पनाओ के कथन करने की सुनिश्चित प्रणाली है। यह सर्वथा, यदि तो के रूप मे कथित होती है। दूसरे शब्दो मे यदि कुछ दशाये उपस्थित हो तो कुछ अन्य दशाये भी उपस्थित हो जाती है, यही रूप परिकल्पना कथन का है। यदि की दशाओ को पूर्ववर्ती[1] दशाये कहते हैं और तो वाली दशाओ को परिणामी[2] दशाये कहते है। इस प्रकार किसी परिकल्पना मे यह कहा जाता है कि यदि पूर्ववर्ती दशाये उपस्थित हो तो परिणामी दशाये भी उपस्थित हो जाती है। दूसरी ओर परिकल्पना कथन की एक अन्य प्रणाली भी उपयोग मे लाई जाती है जो गणितीय[3] कथन के रूप मे होती है। उदाहरण के लिए यह कहना कि सीखने की मात्रा पुष्टीकृत प्रयासो की सख्या का परिणाम है एक गणितीय कथन के रूप मे परिकल्पना हो सकती है। यथा

सीखने की मात्रा = पुनर्बलित प्रयासो की सख्या का प्रकार्य, इस सूत्र मे दो या अधिक परिवर्त्यों के बीच सख्यात्मक सम्बन्ध को परिकल्पित किया गया है। यहाँ इतना ध्यान देना आवश्यक है कि इस प्रकार के कथन मे कार्य कारण सम्बन्ध पर बल नही दिया जाता है, अथवा यह नही कहा जा सकता कि सीखने की मात्रा का कारण पुष्टिकृत पुनर्बलित प्रयासो की सख्या है। तात्पर्य केवल इतना है कि पुनर्बलित प्रयासो की सख्या बढाने से सीखी हुई क्रिया भी प्रबलतर होती जाती है। दूसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि परिणामी अवस्था तभी सत्य होती है जब पूर्ववर्ती दशाये सत्य हो।

परिकल्पनाओ की उत्पत्ति कैसे होती है एक जटिल प्रश्न है। रिखेनबाख (1938) का कथन है कि परिकल्पना की उत्पत्ति शोध सदर्भ पर और इसकी सत्यता के औचित्य सिद्ध करने पर आधारित है। सदर्भ के आधार पर परिकल्पना की उत्पत्ति उपमानो की सहायता से होती है। कभी-कभी यह उपमान शोधकर्ता के व्यक्तिगत अनुभवो से उत्पन्न होते है और कभी-कभी अन्य व्यक्तियो द्वारा प्राप्त किये गये शोध निष्कर्षो अथवा सैद्धान्तिक कथनो से। चाहे परिकल्पना की उत्पत्ति कैसे भी हो उसकी समीचीनता के कतिपय माप दण्ड है। (1) परिकल्पना को अनिवार्य रूप से परीक्षणशील होना चाहिये। (2) इसे उस निश्चित क्षेत्र मे पाई जाने वाली अन्य परिकल्पनाओ के तालमेल मे होना चाहिये। (3) परिकल्पना मे मितव्ययिता का गुण आवश्यक है। मितव्ययिता का तात्पर्य यह है कि परिकल्पना कथन मे न्यून-तम सम्बन्धो का उपयोग हो और वे सम्बन्ध एकत्रित प्रायोगिक तथ्यो पर आधारित हो। (4) परिकल्पना को समस्या का पूर्ण समाधान करना चाहिये। कभी-कभी

---

1 Antecedent 2 Consequent 3 Mathematical

भौतिक पक्षो अथवा उर्जाओ को उत्तेजक परिवर्त्य कहते है। इनका प्रभाव व्यवहार पर पडता है। इस प्रकार के परिवर्त्य ज्ञानेन्द्रियो को प्रभावित करने की क्षमता मे भिन्न होते है। ऐसे उत्तेजक दृष्टि, श्रवण, स्पर्श इत्यादि सम्वेदनाओ से सम्वन्धित होते है। इनसे अधिक जटिल उत्तेजक परिवर्त्य होते है जैसे कि दूरी, रग, आकार, दिशा इत्यादि। दूसरी ओर प्रयोग मे भाग लेने के उद्देश्य से चुने हुए प्रयोज्यो की विशेपताओ को व्यक्ति परिवत्य की सज्ञा दी जाती है। इन विशेषताओ मे कुछ तो सामान्य होती है और सरलता से पहचानने योग्य होती है जैसे कि लिग, उम्र, ऊँचाई, वजन व्यक्ति का सामाजिक आर्थिक शैक्षणिक स्तर इत्यादि। किन्तु इस प्रकार के अनेक परिवर्त्य अत्यन्त जटिल और कठिनाई से जाने जा सकते है। उदाहरण के लिए हम व्यक्ति के वौद्धिक स्तर, स्वकीय अनुभव को ले सकते है। प्रतिक्रिया परिवर्त्य मे प्रयोज्य द्वारा की जा सकने वाली समस्त प्रतिक्रियाएँ समाविष्ट है। वस्तुत जीवित प्राणी की समस्त क्रियाएं इस परिवर्त्य मे समाविष्ट होती या उनका निर्माण करती है। ऐसे परिवर्त्यों मे छोटी वडी, क्षणिक अथवा अपेक्षाकृत अधिक समय तक चलने वाली, सरल अथवा जटिल प्रतिक्रियाएँ होती है। पलक का गिरना एक छोटा सरल और क्षणिक प्रतिक्रियात्मक परिवर्त्य हे जवकि सामाजिक परस्पर-क्रिया अथवा किसी पुस्तक का अध्ययन अधिक जटिल, वडी और देर तक चलने वाली प्रतिक्रिया ह। इसके मापन मे कई प्रकार के मापो का उपयोग किया जाता है। वे माप हैं प्रतिक्रियाकाल, प्रतिक्रिया की सक्रियता की अवधि, उसकी मात्रा दर तथा आवृति इत्यादि। किसी भी प्रयोग मे इन तीनो प्रकार के परिवर्त्यों का उपयोग किया जाता हे।

जिस शैली से परिवर्त्यों का उपयोग प्रयोग मे किया जाता है उसके आधार पर भी परिवर्त्यों का वर्गीकरण होता है। प्रयोग मे हम परिवर्त्या को तीन श्रेणियो मे विभक्त करते है। अनाश्रित, आश्रित तथा सतत् स्थिर। सामान्यत अनाश्रित परिवर्त्य वह है जिसका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष हस्तादि प्रयोग[1] प्रयोगकर्ता द्वारा इसलिए किया जाता है कि वह इस परिवर्तन का प्रभाव प्रतिक्रिया पर क्या पडता है, माप सके। अनाश्रित परिवर्त्य की श्रेणी मे उत्तेजक, व्यक्ति तथा प्रतिक्रिया वर्गा म किसी भी वर्ग के उत्तेजक सम्मिलित होते है। अनाश्रित परिवर्त्यों का प्रहस्तीकरण दो प्रथक रीतियो से किया जाता है। प्रत्यक्ष प्रहस्तीकरण अथवा अप्रत्यक्ष प्रहस्तीकरण। प्रथम रीति मे परिवर्त्य का प्रहस्तीकरण प्रयोग मे प्रयोगकर्ता द्वारा सोद्देश्य किया जाता है। इस रीति से नियमित अनाश्रित परिवर्त्य को ई-वर्ग की सज्ञा दी जाती है (डी-अमेटो, 1970)। दूसरी रीति के प्रहस्तीकरण परिवर्त्य के अनेक प्राप्य मूल्यो मे से वाछित मूल्य का प्रतिचयन कर लिया जाता है। ऐसे अनाश्रित परिवत्य का नियत्रण प्रथम रीति से होता हे तो कहा जाता हे कि प्रयोग सचालित किया जा

1 Manipulation

प्रयोगअभिकल्प, प्रक्रिया, प्रदत्त सग्रह तथा विश्लेषण

मनोवैज्ञानिक प्रयोग करने मे समस्या कथन, परिकल्पना निरूपण, परिवर्त्य निर्णय तथा नियन्त्रण तकनीको के अनुप्रयोग के प्रक्रमो के साथ साथ यह स्वतः स्पष्ट होने लगता है कि प्रयोग का अभिकल्प क्या होगा । प्रयोगीकरण के अनेक अभिकल्प उपलब्ध है । किस अभिकल्प का उपयोग वांछनीय होगा यह उपरोक्त प्रक्रमो के स्वभाव पर आधारित होता है । यदि अनाश्रित परिवर्त्य के एक ही मूल्य का उपयोग करना है और बाह्य कुछ परिवर्त्यों को सन्तुलित करने के लिए सन्तुलन की आवश्यकता है किन्तु बहुत से बाह्य परिवर्त्यों का याद्दच्छिकीकरण कर ही नियन्त्रण करना है तो 'याद्दच्छिकीकृत द्वि समूह' अभिकल्प का उपयोग किया जाता है । इसमे नियन्त्रित

समूह के लिए अनाश्रित परिवर्त्य का अभाव तथा प्रायोगिक समूह के लिए उसे उपस्थित किया जाता है। किन्तु जब बाह्य परिवर्त्यों का नियन्त्रण मात्र सन्तुलन के आधार पर नियन्त्रित करना होता है तो 'युग्म समानिहित द्वि-समूह' अथवा 'समानीकृत द्वि समूह' का उपयोग होता है। जब एक ही अनाश्रित परिवर्त्य के दो से अधिक मूल्यों का उपयोग हो तो प्रयोग अभिकल्प जटिल होने लगता है और एफ-परीक्षण के उपयोग के लिए जटिल अभिकल्पों का अनुप्रयोग अनिवार्य हो जाता है। प्रयोग अभिकल्प की समस्या स्वयं एक जटिल विषय है। इसका वर्णन सुचारु रूप से यहाँ नही किया जा सकता। प्रयोग सचालन की प्रक्रिया को प्रयोग प्रारम्भ करने के पूर्व ही विस्तार के साथ निर्धारित कर लिया जाता है। इसके अन्तर्गत यह निश्चित किया जाता है कि किस रीति से प्रयोज्यो को किसी प्रकार की प्रायोगिक दशा मे परीक्षित किया जायगा। वह प्रयोगशाला या प्रयोग परिवेश मे किस प्रकार लाया जायगा। प्रयोगकर्ता कैसा और किस तरह निर्देश देगा इत्यादि बातो को विस्तार के साथ पूर्व निर्धारित कर लिया जाता है। प्रत्येक प्रयोज्य का परीक्षण करने से पूर्व प्रयोग मे अनुप्रयुक्त यन्त्र की जाँच कर ली जाती है। प्रयोग सामग्री को पहले से ही सुव्यवस्थित कर लिया जाता है। श्रेयस्कर तो यह है कि प्रयोग प्रक्रिया मे आने वाले सभी प्रक्रमो की रूपरेखा तैयार कर ली जाय जिसमे प्रयोज्य के स्वागत से लेकर उसकी विदाई तक के सभी कार्य सविवरण लिखित हो। प्रत्येक प्रयोज्य का परीक्षण करते समय बिना किसी परिवर्तन के यन्त्रवत उसका पालन किया जाता है। वास्तविक प्रयोग प्रारम्भ करने के पहले प्रत्येक प्रयोगकर्ता को अपने अभ्यास तथा प्रयोग उपकरणो की प्रकार्यात्मक उपादेयता की जाँच के लिए कुछ प्रयोज्यो के साथ प्रयोग करने का अभ्यास करना अपेक्षित है।

प्रयोगो मे उपलब्ध प्रदत्त अन्वेषित प्रतिक्रियाओ की इकाइयो का भण्डार होता है। उस भण्डार मे सार्थक और वाछित निष्कर्ष निकालने के लिए साख्यिकीय विश्लेषण की आवश्यकता होती है। आधुनिक प्रायोगिक मनोविज्ञान मे साख्यिकीय विश्लेषण का महत्व बहुत बढ गया है। मनोविज्ञान के अध्ययन मे जैसे-जैसे वस्तुपरकता और मात्राकरण बढे है, साख्यिकीय परीक्षणो का महत्व बढ गया है। आज मनोवैज्ञानिक के लिए अत्यन्त शक्तिशाली अनेक परीक्षण उपलब्ध है। किस प्रकार के साख्यिकीय परीक्षण किस प्रकार के प्रदत्त पर अनुप्रयुक्त होगे, कई घटको के आधार पर निर्धारित किए जाते हैं। यदि प्रयोगमात्र समन्वेषणात्मक दृष्टिकोण से किया गया है और उसका उद्देश्य किसी प्रतिक्रिया की विशेषताओ का वैज्ञानिक वर्णन प्रस्तुत करना है तो वर्णनात्मक साख्यिकी के अनुप्रयोग से निष्कर्ष निकाले जा सकते है। किन्तु आज के प्रायोगिक मनोविज्ञान की इतनी प्रगति हो चुकी है कि प्राय सभी प्रयोगात्मक अध्ययन परिकल्पना परीक्षण के उद्देश्य की पूर्ति अथवा प्रकार्यात्मक सम्बन्धो को ज्ञात करने के लिए किए जाते है और उनमे या तो अनुमानपरक[1]

1 Inferential

प्रायोगिक मनोविज्ञान पर पुस्तक लेखन के उपागम

सामान्य प्रायोगिक मनोविज्ञान पर अँग्रेजी भाषा मे अनेक पुस्तकें उपलब्ध हैं। यदि इन पुस्तको का सूक्ष्मवीक्षण किया जाए तो स्पष्ट हो जाता है कि उनमे दी गई सामग्री या तो विषय-वस्तु पर मुख्यतया आधारित है, अथवा प्रयोग पद्धतियों की विभिन्न प्रक्रियाओ पर। दूसरे शब्दो मे, कुछ पुस्तको मे संकलित सामग्री विषय-

1 Non-parametric

वस्तुपरक उपागम पर आधारित है और कुछ पुस्तको की सामग्रियाँ पद्धतिपरक उपागम पर। कुछ पुस्तकें ऐसी भी है जिनमे इन दोनो उपागमो का सम्मिलित रूप विविध प्रकार से सश्लिष्ट कर लिया गया है। ऐसी पुस्तको मे माध्यमिक उपागम को प्रधानता दी गयी है। प्रायोगिक मनोविज्ञान के स्वरूप को पूर्णतया स्पष्ट करने के लिए वाच्छनीय है कि इन उपागमो का निरूपण उदाहरण सहित कर दिया जाए।

विषय-वस्तु परक उपागम

इस उपागम से जब प्रायोगिक मनोविज्ञान के विषय का विवेचन होता है तो सपूर्ण विपय-वस्तु को पृथक-पृथक समस्या क्षेत्रो मे विभक्त कर दिया जाता है। एक अध्याय मे एक विपय क्षेत्र को लेकर उससे सम्वन्धित जितनी विशिष्ट समस्याएं है उनका विवेचन शोध पत्रिकाओ इत्यादि मे प्रकाशित शोध निवन्धो मे सन्निहित विवेचनो और परिणामो के आधार पर होता है। किसी भी विपय-वस्तु के क्षेत्र पर लिखित अध्याय मे सर्वप्रथम उस विपय-वस्तु के स्वभाव से सम्वन्धित मूलभूत प्रश्न उठाया जाता है और उस प्रश्न का उत्तर देने के लिए किए गए प्रयोगो के आधार पर उत्तर देने का प्रयत्न तो किया ही जाता है साथ ही साथ उन प्रयोगो से उत्पन्न अन्य समस्याओ को लेकर उनसे सम्बन्धित प्रयोगो के परिणामो का विवेचन किया जाता है। इस प्रकार उस विशिष्ट विपय-वस्तु के क्षेत्र के सम्वन्ध मे प्रायोगिक आधार पर जितनी जानकारी उपलब्ध है उसका वर्णन सक्षिप्त या विशद रूप से प्रस्तुत किया जाता है।

इस तरह के उपागम मे किसी भी विशिष्ठ विपय-वस्तु के सम्बन्ध मे दो मूलभूत प्रश्न पूछे जाते है। विपय-वस्तु क्षेत्र प्राय कोई विशेप प्रकार का व्यवहार होता है जैसे कि प्रतिक्रिया काल, प्रत्यक्षीकरण, अधिगम, स्मृति इत्यादि। इस प्रकार के प्रत्येक व्यवहार को एक सामान्य गोचर माना जाता है। इनकी परिभापा वस्तु-परक रूप से करने के वाद पहला मूलभूत प्रश्न यह पूछा जाता है कि उस गोचर का स्वभाव क्या है। दूसरा मूलभूत प्रश्न यह होता है कि किसी गोचर के स्वभाव को कौन से अन्य परिवर्त्य प्रभावित या निर्धारित करते हैं। पहले प्रश्न का उद्देश्य गोचर का स्वरूप निरूपण होता है। दूसरे प्रश्न का उद्देश्य उस गोचर को उत्पन्न और नियन्त्रित करने वाले परिवर्त्यों की खोज। इन्ही दो मूलभूत प्रश्नो के प्रायोगिक पद्धति से उत्तर पाने के प्रयत्न मे अन्य समस्याएँ उत्पन्न होती है और उन समस्याओ के प्रायोगिक अध्ययन समूह को उस विपय-वस्तु का प्रायोगिक मनोविज्ञान कहा जाता है। इन कथनो के स्पष्टीकरण के लिए अधिगम के विपय को लीजिए। इस सम्वन्ध मे पहला प्रश्न है, कि अधिगम क्या है? इस प्रश्न का उत्तर भिन्न-भिन्न प्रयोगो के आधार पर भिन्न-भिन्न प्राप्त हुआ है। किसी ने वताया कि सीखना उ०-प्र० के वीच साहचर्य की स्थापना है और किसी ने प्रयोग का आधार यह बताया कि अधिगम किसी उद्दीजक का नवीन अर्थ करना है। इन दोनो उत्तरो मे परस्पर विरोध है और इस विरोध को

गत कुछ वर्षों में मनोवैज्ञानिकों में यह धारणा प्रबल होती गयी कि प्रायोगिक मनोविज्ञान जैसी कोई पृथक शाखा मानना अनुचित है। इनका मत यह है कि आज का समस्त मनोविज्ञान अधिकांशत प्रायोगिक है। इस मत के विपरीत यह भी मत है कि परम्परागत् रूप में विविध विषय क्षेत्रों के समूह को एक शीर्षक 'प्रायोगिक-मनोविज्ञान' के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है क्योंकि इन क्षेत्रों का अध्ययन प्रयोग विधि से मुख्यत सम्पन्न होता है (गेन्ड्रियाज, 1960)। दूसरी ओर इस

---

1 Multiple stimuli and multiple response

विविध विषय क्षेत्रो का इतना व्यापक और विस्तृत अध्ययन हुआ हे कि किसी भी पुस्तक मे उनके विषय-वस्तुओ का विवेचन अत्यन्त दुष्कर है। अनेक मनोवैज्ञानिक इस विचारधारा पर वल देने लगे हैं कि प्रायोगिक मनोविज्ञान के स्वरूप की अक्षुण्णता उसके उपागम पर ही वनी रह सकती है। अत इस प्रकार की विचारधाग वाले मनोवैज्ञानिको ने प्रायोगिक मनोविज्ञान की रूप रेखा निर्धारण मे पद्धतिपरक उपागम की कल्पना की है ऐण्ड्रियाज की पुस्तक (1960) मे इसी उपागम पर जोर दिया गया हे। किन्तु परम्परा का निर्वाह करने के लिए उसने विषय-वस्तुपरक विवेचन के लिए कई क्षेत्रो को इस पुस्तक मे सम्मिलित किया है। इसी दृष्टिकोण मे पोस्टमैन तथा ईगन ने (1948) प्रायोगिक मनोविज्ञान पर पुस्तक लिखा। इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य छात्रो को प्रायोगिक विधियो एवम् प्रयोगशाला प्रक्रियाओ से परिचित कराना था। इसीलिए इन लेखको ने प्रत्येक विषय-वस्तु क्षेत्र को लेकर उनके अध्ययन मे—अनुप्रयुक्त विधियो एवम् प्रक्रियाओ पर वल दिया है। पद्धतिपरक उपागम का परिशुद्ध अनुप्रयोग मैग्यूगन ने (1960) अपनी पुस्तक मे किया है इस पुस्तक मे प्रायोगिक मनोविज्ञान के विषय-वस्तु की सर्वथा उपेक्षा कर दी गई है।

पद्धतिपरक उपागम के मुखरित रूप दो है। एक रूप तो वह है जिसमे अनुप्रयुक्त इस विधि के सभी पक्षो, अवयवो तथा समस्याओ का अलग-अलग विवेचन होता है। इस उपागम का एक मात्र उदाहरण मैग्यूगन की पुस्तक है। इस उपागम का दूसरा रूप प्रयोग विधि को इकाई मानते हुए भी प्रायोगिक मनोविज्ञान के विभिन्न क्षेत्रो मे विकसित प्रयोग पद्धति-प्रक्रियाओ की विविधता पर वल देना है। प्रयोग-पद्धति के विविध अग हैं जैसे कि समस्या, परिकल्पना, प्रयोज्य, प्रयोग सामग्री तथा यन्त्र, निर्देश, उत्तेजक प्रस्तुतीकरण, प्रतिक्रियामाप, नियत्रण प्रक्रिया, प्रदत्त-विश्लेपण और प्रतिवेदन। विषय-वस्तु के अनुसार ही प्रयोग पद्धति के सभी अगो के रूप परिवर्तित होते है। अत प्रत्येक प्रकार के प्रायोगिक विषय-वस्तु के क्षेत्र मे अनुप्रयुक्त प्रयोग-प्रक्रियाओ की अपनी विशेपताएँ होती है। इन प्रयोग प्रक्रियाओ की विशेपताओ का निरूपण, इस उपागम के अनुसार, प्रायोगिक मनोविज्ञान है। इस उपागम का परिशुद्ध अनुप्रयोग सिडोस्की ने (1964) अपनी पुस्तक 'एक्सपेरिमेण्टल मेथड्स एण्ड इन्ट्रूमेन्टेशन इन साइकालोजी' मे किया है। इस उपागम मे प्रायोगिक अध्ययन के विभिन्न क्षेत्रो को पृथक-पृथक लेकर उनमे सन्निहित विविध प्रकार के पक्षों पर किए गए प्रयोगो की विधियो के विभिन्न अँगो की विशेपताओ का वर्णन किया जाता है।

प्रस्तुत पुस्तक की रूपरेखा

प्रस्तुत पुस्तक मे न तो प्रमुख रूप से विषय-वस्तु परक उपागम का और न तो पद्धतिपरक उपागम का अनुप्रयोग किया गया है। वल्कि इसके लेखन मे,

मूलभूत प्रश्न है और इनके उत्तर का प्रयत्न मनोभौतिकी मे है, इसीलिए मनोभौतिकी को द्वितीय अध्याय मे रखा गया है।

विभिन्न उद्दीपकों के प्रति प्राणी भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाएँ करता है। तात्पर्य यह कि प्राणी उद्दीपकों का विभेदन करता है। उद्दीपकों मे भेद करना ही संवेदनशीलता है। इस प्रकार की संवेदनशीलता के आधार प्राणी की ज्ञानेन्द्रियाँ है। भिन्न-भिन्न ज्ञानेन्द्रियों मे पृथक पृथक प्रकार की संवेदनाओं की उत्पत्ति होती है। अत तृतीय और चतुर्थ अध्याय मे विभिन्न प्रकार की संवेदनाओं के प्रायोगिक अध्ययन की समस्याओं, पद्धतियों और उपलब्धियों का विवेचन किया गया है। संवेदनशीलता और मनोभौतिकी के प्रश्नों मे अत्यधिक समानता है। इसीलिए, मनोभौतिकी मे पद्धतिपक्ष पर बल दिया गया है और संवेदनशीलता से सम्बन्धित अध्यायों मे समस्याओं और उपलब्धियों पर। संवेदनशीलता ही प्रत्यक्षीकरण की आधारशिला है। उद्दीपकों के स्वरूप और गुणों मे भेदन प्रतिक्रियाओं की भिन्नता से स्पष्ट होता है। अत इसके बाद पचम और षष्टम अध्यायों मे प्रत्यक्षीकरण के प्रायोगिक मनोविज्ञान का विवेचन किया है। प्रत्यक्षीकरण क्रिया अत्यन्त जटिल है और इसके अनेक पक्ष और रूप है। इन पक्षों और गुणों के स्वभाव निरूपण से सम्बन्धित प्रक्रमों के प्रायोगिक अध्ययनों का विवेचन पचम अध्याय मे किया गया है। प्रत्यक्षीकरण के प्रक्रमों का नियमन उद्दीपक और प्राणी, दोनों की विशेषताओं के आधार पर होता है। अत प्रत्यक्षीकरण के निर्धारकों की व्याख्या हेतु उपलब्ध प्रतिनिधायक प्रायोगिक सामग्री का विवरण षष्टम अध्याय मे दिया गया है।

बहुत से उद्दीपक जो स्वभावत बहुत सी प्रक्रियाओं को क्रियमाण करते है। किन्तु बहुत से उद्दीपकों के साथ बहुत सी प्रतिक्रियाएँ अनुभवगत् होने के कारण जुड जाती है और उनमे साहचर्य स्थापित हो जाता है। इस प्रक्रम को मनोविज्ञान मे अधिगम की सज्ञा दी जाती है। यह अधिगम अत्यन्त सरल अथवा अत्यन्त जटिल हो सकता है। सरलतम रूप मे एक उत्तेजक के साथ एक प्रतिक्रिया का साहचर्य स्थापित हो जाना अनुबन्धन है। कभी कभी एक प्रतिक्रिया एक उत्तेजक के साथ जुड जाती और दूसरे से निरोधित हो जाती है। इसको विभेदन अधिगम कहते है। जीवन की अधिकाश दशाओं मे उद्दीपकों और प्रतिक्रियाओं मे साहचर्य का स्थापित होना बहुत जटिल होता है। तात्पर्य यह है कि एक ही अवधि मे अनेक उद्दीपक अगों का साहचर्य अनेक प्रतिक्रिया अगों के साथ हो जाता है। इसको बहु-प्रतिक्रिया अधिगम[1] कहते है और भूल भूलैया का सीखना इसका प्रसिद्ध उदाहरण है। अधिगम की जटिलता की चरमसीमा सबोध अधिगम मे मिलती है। सबोध मे एक प्रतिक्रिया का साहचर्य अनेक उद्दीपक इकाईयों के साथ हो जाता है। कुछ प्रकार के अधिगम

---

1 Multi-response learning

माध्यमिक मार्ग का अनुसरण करना अधिक श्रेयस्कर माना गया है। इस पुस्तक का उद्देश्य परम्परागत रूप से चले आ रहे रूप वाले प्रायोगिक मनोविज्ञान के सभी महत्त्वपूर्ण पक्षो से छात्रो को परिचित कराना है। आज के वृहत्तर मनोविज्ञान के अन्तर्गत प्रायोगिक मनोविज्ञान की पृथक सत्ता इसकी दो मूलभूत विशेषताओ पर आधारित है। प्रथम विशेषता है, इसके अध्ययन मे प्रायोगिक विधिगत् नियन्त्रित प्रेक्षण मात्र का उपयोग और दूसरी विशेषता है प्राणी के व्यवहारो के मूलभूत नियमो का निर्धारण। माध्यमिक मार्ग के अनुसरण मे इन दोनो विशेषताओ पर समान बल दिया गया है। किसी भी शीर्षक के अन्तर्गत उसमे सन्निहित सामान्य प्रायोगिक समस्याओ के स्वभाव निरूपण के बाद उस शीर्षक के प्रायोगिक अध्ययन मे अनुप्रयुक्त सामग्रियो एवम् मापन विधियो का विवेचन किया गया है। इस विवेचन का प्रयोजन उस शीर्षक के अन्तर्गत किए गये सभी महत्वपूर्ण प्रयोगो की पद्धतियो की रूपरेखा से छात्र को परिचित करा देना है। इस विवेचन के बाद उस शीर्षक से सम्बन्धित समस्त महत्त्वपूर्ण प्रायोगिक समस्याओ एवम् पक्षो के व्याख्यार्थ संकलित प्रायोगिक निष्कर्षो का भी संक्षिप्त विवरण दिया गया है। इसका उद्देश्य छात्रो को प्रायोगिक आधार पर उपलब्ध जीवित प्राणी के व्यवहारो की विचित्रता और जटिलता से परिचित मात्र ही नही कराना है अपितु प्रस्तुत विषय मे उनकी सृजनात्मक रुचि को जागृत करना है।

पुस्तक मे लिए गए शीर्षको का चुनाव विशेष दृष्टिकोण से किया गया है। प्रत्येक शीर्षक के अन्तर्गत दी हुई सामग्री के चुनाव मे भी सावधानी से काम लिया गया है। विविध शीर्षको का संगठन भी एक विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया गया है। इसमे सर्वप्रथम मनोभौतिकी के क्षेत्र को प्रस्तुत किया गया है। इसलिए नही कि प्रायोगिक मनोविज्ञान के इतिहास का प्रारम्भ मनोभौतिकी से होता है, अपितु, इसलिए कि मनोभौतिकी व्यवहार या जीवित प्राणी की प्रतिक्रिया के सम्बन्ध मे सर्वाधिक मूलभूत प्रश्नो के उत्तर देने का प्रायोगिक प्रयत्न है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, प्रायोगिक अध्ययन का प्रथम अभिग्रह यह है कि 'उद्दीजक-प्राणी-प्रतिक्रिया'[1] सूत्र के माध्यम से सभी प्रकार के व्यवहारो का नियन्त्रित प्रेक्षण हो सकता है। इसके पहले कि हम किसी व्यवहार या प्रतिक्रिया का स्वभाव निरूपण करे, प्रश्न यह उठता है कि किसी भी प्रतिक्रिया को सक्रिय करने के लिए उद्दीपन की न्यूनतम मात्रा कितनी होती है। क्या सभी प्रकार की प्रतिक्रियाओ के लिए उत्तेजना की मात्रा एक ही होती है? किसी भी प्रतिक्रिया मे ज्ञेयवृद्धि करने के लिए उद्दीपन मे कितनी वृद्धि आवश्यक होती है? क्या विविध प्रकार की प्रतिक्रियाओ की मात्रा को मापा जा सकता है? ऐसे प्रश्न व्यवहार के मात्रात्मक अध्ययन के

1 Stimulus Organism-Response (S O R)

ऐसे है जो मनुष्य स्तर पर ही प्राप्त होते है और इसके प्रायोगिक अध्ययन की अपनी विशेषताएँ और उपलब्धियाँ है। अत सप्तम् से लेकर नवम् अध्याय तक अधिगम के इन्ही रूपो के प्रायोगिक अध्ययनो का विवेचन किया गया है ताकि अधिगम के विभिन्न रूपो का निरूपण और व्याख्या के लिए उपलब्ध प्रायोगिक सामग्री और ज्ञान से छात्र को परिचित कराया जा सके। अधिगम के प्रत्येक अध्याय मे सम्बन्धित गोचरो की ओर भी छात्रो का ध्यान आकर्षित करने का प्रयत्न किया गया है। अधिगम का प्रक्रम सरल या दुष्कर हो सकता है तथा एक अधिगम का प्रभाव भविष्य मे होने वाले अधिगम पर पडता है। इसीलिए दशम् अध्याय मे अधिगम मे मितव्ययिता तथा स्थानान्तरण की समस्या की चर्चा की गयी है।

प्राणी का यह स्वभाव होता है कि वह सीखी हुई प्रतिक्रियाओ को सचित रखता है और बहुत से उत्तेजक प्रतिक्रिया साहचर्यों को विस्मृत कर देता है। स्मृति प्रक्रम की सक्रियता की मुख्यतम अभिव्यक्ति मनुष्य के स्तर पर वाचिक व्यवहारो मे परिलक्षित होती है। इस वाचिक अधिगम और स्मृति का सम्बन्ध आज के प्रायोगिक मनोविज्ञान मे अत्यन्त निकट का है। इसलिए वाचिक अधिगम और स्मृति पर उपलब्ध प्रयोगविधियो एव उपलब्धियो का विवेचन एकादश अध्याय मे प्रस्तुत किया गया है। जीवित प्राणियो के व्यवहार का जटिलतम रूप उस स्थिति मे स्पष्ट होता है जहाँ उद्दीपक स्थिति मे कुछ अग ऐसे है जो प्राणी के अनुभूति मे आ चुके है तथा कुछ अग नए है। और साथ ही साथ इन अगो का उद्दीपक स्थिति के रूप मे सगठन नया है जिसमे वाछित प्रतिक्रिया स्वत या सुविधा से नही हो पाती। ऐसी स्थिति समस्या कही जाती है और ऐसी समस्याओ मे प्राणी के व्यवहार का प्रायोगिक अध्ययन समस्या समाधान के अन्तगत किया जाता है। दूसरी ओर मनुष्य प्रतीको के माध्यम मे प्रतिक्रियाए करता है। साथ ही साथ वाह्य उत्तेजक के समर्थन के अभाव मे भी वह ऐसी आन्तरिक प्रतिक्रियाएं करता है जिसमे एक प्रतिक्रिया स्वय दूसरी प्रतिक्रिया को उत्तेजित करती है। इस प्रकार के प्रतिक्रिया प्रक्रम को सोचने की क्रिया कहा जाता है। समस्या समाधान तथा चिन्तन के प्रायोगिक मनोविज्ञान का सबाध अधिगम के साथ सम्मिलित किया गया है।

मूलभूत प्रश्न है और इनके उत्तर का प्रयत्न मनोभौतिकी मे है, इसीलिए मनोभौतिकी को द्वितीय अध्याय मे रखा गया है।

विभिन्न उद्दीपकों के प्रति प्राणी भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाएँ करता है। तात्पर्य यह कि प्राणी उद्दीपको का विभेदन करता है। उद्दीपको मे भेद करना ही सवेदनशीलता है। इस प्रकार की सवेदनशीलता के आधार प्राणी की ज्ञानेन्द्रियाँ है। भिन्न-भिन्न ज्ञानेन्द्रियो से पृथक पृथक प्रकार की सवेदनाओ की उत्पत्ति होती है। अत तृतीय और चतुर्थ अध्याय मे विभिन्न प्रकार की मवेदनाओ के प्रायोगिक अध्ययन की समस्याओं, पद्धनियो और उपलब्धियो का विवेचन किया गया है। सवेदनशीलता और मनोभौतिकी के प्रश्नो मे अत्यधिक समानता है। इसीलिए, मनोभौतिकी मे पद्धतिपक्ष पर वल दिया गया है और सवेदनशीलता से सम्वन्धित अध्यायो मे समस्याओ और उपलब्धियो पर। सवेदनशीलता ही प्रत्यक्षीकरण की आधारशिला है। उद्दीपको के स्वरूप और गुणो मे भेदन प्रतिक्रियाओ की भिन्नता से स्पष्ट होता है। अत इसके वाद पचम और पष्टम अध्यायो मे प्रत्यक्षीकरण के प्रायोगिक मनोविज्ञान का विवेचन किया है। प्रत्यक्षीकरण क्रिया अत्यन्त जटिल है और इसके अनेक पक्ष और रूप है। इन पक्षो और गुणो के स्वभाव निरूपण से सम्वन्धित प्रक्रमो के प्रायोगिक अध्ययनो का विवेचन पचम अध्याय मे किया गया है। प्रत्यक्षीकरण के प्रक्रमो का नियमन उद्दीपक और प्राणी, दोनो की विशेपताओ के आधार पर होता है। अत प्रत्यक्षीकरण के निर्धारको की व्याख्या हेतु उपलब्ध प्रतिनिधायक प्रायोगिक सामग्री का विवरण पष्टम अध्याय मे दिया गया है।

वहुत से उद्दीपक जो स्वभावत वहुत सी प्रक्रियाओ को क्रियमाण करते ह। किन्तु वहुत से उद्दीपको के साथ वहुत सी प्रतिक्रियाएँ अनुभवगत् होने के कारण जुड जाती है और उनमे साहचर्य स्थापित हो जाता है। इस प्रक्रम को मनोविज्ञान मे अधिगम की सज्ञा दी जाती है। यह अधिगम अत्यन्त सरल अथवा अत्यन्त जटिल हो सकता है। सरलतम रूप मे एक उत्तेजक के साथ एक प्रतिक्रिया का साहचर्य स्थापित हो जाना अनुबन्धन है। कभी कभी एक प्रतिक्रिया एक उत्तेजक के साथ जुड जाती और दूसरे से निरोधित हो जाती है। इसको विभेदन अधिगम कहते ह। जीवन की अधिकाश दशाओ मे उद्दीपको और प्रतिक्रियाओ मे साहचर्य का स्थापित होना वहुत जटिल होता है। तात्पर्य यह है कि एक ही अवधि मे अनेक उद्दीपक अगो का साहचर्य अनेक प्रतिक्रिया अगो के साथ हो जाता है। इसको वहु-प्रतिक्रिया अधिगम[1] कहते ह और भूल भूलैया का सीखना इसका प्रसिद्ध उदाहरण है। अधिगम की जटिलता की चरमसीमा सवोध अधिगम मे मिलती है। सवोध मे एक प्रतिक्रिया का साहचर्य अनेक उद्दीपक इकाईयो के साथ हो जाता है। कुछ प्रकार के अधिगम

1 Multi-response learning

अध्याय 2

मनोभौतिकी

मनोभौतिकी की समस्याएँ

- उद्दीपक देहली
- भिन्नता देहली
- उद्दीपक समानता
- कोटि निर्धारण
- समान मध्यान्तर की समस्या
- समानुपातिक समानता की समस्या
- उद्दीपक मूल्याकन

मनोभौतिकी की विधियाँ

- न्यूनतम् उद्दीपक-परिवर्तन विधि
  - निरपेक्ष अथवा उद्दीपक देहली मापन में न्यूनतम परिवर्तन विधि
  - भिन्नता देहली तथा आत्मपरक उद्दीपक समानता का मापन
  - इस विधि की न्यूनताएँ
- अभियोजन विधि
  - आत्मपरक समानता का बिन्दु (उद्दीपक समानता) का मापन
  - सतत त्रुटि (भ्रम की मात्रा)
  - स्थान सम्बन्धी तथा गति सम्बन्धी त्रुटियां
- स्थिर उद्दीपकों की विधियाँ
  - उद्दीपक देहली के मापन में स्थिर उद्दीपकों की विधि का अनुप्रयोग
  - पंक्तिगत अन्तरावेशन प्रक्रिया
  - स्पीयरमैन की वितरण विधि
  - भिन्नता देहली मापन में स्थिर उद्दीपकों की विधि
  - परिणाम गणना

मनोभौतिकी में मापनियों की विधियाँ

- कोटिसूचक मापनियां
- समान्तराली मापनियाँ
- समानुपातिक मापनियां
- युग्मित तुलना विधि
- कोटि निर्धारण विधि
- उद्दीपक मूल्याकन विधि
- क्रमिक वर्गों की विधि

समान सवेदनान्तर विधि
समाभासी अन्तरालो की विधि
प्रभाजन विधि
वहुल उद्दीपको की विधि
मनोभौतिकी की प्रायोगिक उपलब्धियां
उद्दीपक देहली, भिन्नता देहली
वेबर नियम, फकनर नियम
सकेत सज्ञापन सिद्धान्त
उद्दीपक देहली, मूलत सकेत सज्ञापन
प्रतिक्रिया मानदण्ड
आदर्श प्रयोज्य
प्रयोग प्रक्रियाएँ
हा नहीं प्रक्रिया
मूल्य निवारण प्रक्रिया
वाधितरग्ण प्रक्रिया
मुक्त प्रतिक्रिया प्रक्रिया
गृहीता सकारक अभिलक्षण

मनोभौतिकी

गत् अध्याय में यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है कि प्रायोगिक मनोविज्ञान मे जीवित प्राणियो के व्यवहार को प्रतिक्रिया के रूप मे लिया जाता है तथा प्रतिक्रिया को उद्दीपक एव प्राणी की पूर्वदशा के प्रकार्य के रूप मे देखा जाता है। यह भी स्पष्ट किया गया है कि उद्दीपक प्राणी मे, अथवा परिवेश मे, भौतिक ऊर्जा-परिवर्तन होता है जिसे प्राणी की ज्ञानेन्द्रियाँ ग्रहण करती है। प्राणी के पूर्व अनुभवो के साथ उद्दीपको की अतर्क्रिया से अनुसचालित होकर ही उद्दीपक के प्रति प्रतिक्रियाएँ होती है। प्रस्तुत अध्याय मे उन प्रश्नो को उपस्थित किया जायेगा जो प्रतिक्रिया अथवा व्यवहार के अनुशीलन के सम्बन्ध मे मौलिक माने जा सकते है, तथा जिन प्रश्नो के उत्तर प्राप्त करने के निमित्त किये गये प्रयत्नो से प्रायोगिक मनोविज्ञान की विषय-वस्तु का प्रारम्भ होता है।

यह तो स्पष्ट ही है कि किसी भी प्रतिक्रिया के घटित होने के लिए उद्दीपक का होना अनिवार्य है। उद्दीपक प्रबल हो सकता है अथवा अत्यन्त क्षीण। प्रश्न यह है कि किसी भी प्रतिक्रिया को उद्दीप्त करने के लिए क्या उद्दीपन की कोई न्यूनतम मात्रा आवश्यक है। क्या किसी भी उद्दीपक की यह न्यूनतम मात्रा सभी प्राणियो को, सभी दशाओ मे, प्रतिक्रिया को उद्दीप्त करने के लिए स्थिर एव एक है? किसी भी उद्दीपक का एक निश्चित रूप मे परिणाम होता है। दूसरा प्रश्न है कि किसी उद्दीपक मे कम से कम कितनी मात्रा मे परिवर्तन किया जाय कि प्राणी को परिवर्तित उद्दीपक का परिज्ञान पहले वाले परिज्ञान से भिन्न लगे। ऐसे प्रश्नो के उत्तर प्रयोगो के आधार पर ज्ञात किये जा सकते है। ऐसे प्रयोगो तथा उनसे प्राप्त ज्ञान को हम मनोभौतिकी की सज्ञा देते है। मनोभौतिकी वस्तुत उद्दीपक और प्रतिक्रिया के बीच मात्रात्मक सम्बन्धो का निरूपण है। इस प्रसग मे मनोवैज्ञानिक सात प्रकार के प्रश्न उपस्थित करते है। इन्ही प्रश्नो को सामूहिक रूप से मनोभौतिकी की समस्याएँ कहते है। इन समस्याओ के अध्ययन के लिए जिन प्रयोग प्रक्रियाओ का विकास हुआ है उन्हे मनोभौतिकी की विधियो की सज्ञा दी जाती है। जैसा कि मनोभौतिकी शब्द से ही अनुमान किया जा सकता है, मनो-भौतिकी मन (प्रतिक्रिया) तथा भौतिकी (उद्दीपक अथवा ज्ञानेन्द्रियो द्वारा ग्रहण किये जाने वाले भौतिक ऊर्जा-परिवर्तन) के पारस्परिक मात्रात्मक सम्बन्ध का अध्ययन है।

मनोभौतिकी का औपचारिक प्रारम्भ फेचनर की पुस्तक "एलमेंटेडर साइ-कोफिजीक" (1860) के प्रकाशन के साथ होता है। वैसे तो फेचनर के पहले वेवर

ने मनोभौतिकी की कतिपय समस्याओ का प्रायोगिक अध्ययन किया था। फेचनर के अनुसार 'मनोभौतिकी वह सत्य विज्ञान है जिसमे मन और शरीर के बीच क्रियात्मक सम्बन्धो का अध्ययन किया जाता है।' अर्वाचीन प्रायोगिक मनोविज्ञान मे मनोभौतिकी का अर्थ व्यापक हो गया है।' इसके अन्तगत आज हम उद्दीपको तथा प्रतिक्रियाओ के मध्य मात्रात्मक सम्बन्धो का अध्ययन करते है। मनोभौतिकी मे प्राणी की कोई भी प्रतिक्रिया किसी भी उद्दीपक के प्रति प्राणी की विशेपताओ की प्रदर्शिका के रूप म मानी जाती है। यह एक ऐसी विशेपता है जो व्यक्ति मे अपरिवर्त्य रूप से परिलक्षित होती है।

मनोभौतिकी की समस्याएँ

उद्दीपक देहली[1]

प्रतिक्रिया सवथा किसी उद्दीपक अथवा ज्ञानेन्द्रियो द्वारा ग्रहीत भौतिक ऊर्जा-परिवर्तन के कारण होती है। स्पष्ट है कि किसी भी प्रतिक्रिया को उत्पन्न करने के लिए उद्दीपक की, या भौतिक ऊर्जा मे परिवर्तन की, न्यूनतम मात्रा अवश्य होनी चाहिए। यदि उस न्यूनतम मात्रा से भी न्यूनतम मात्रा मे ऊर्जा-परिवर्तन हो तो यह सरलता से अनुमान किया जा सकता है कि प्रतिक्रिया की उत्पत्ति नही हो सकती। अत्यन्त स्वल्प मात्रा मे उद्दीपक का ज्ञानेन्द्रियो द्वारा ग्रहण-इतना प्रभावशाली नही हो सकता कि उद्दीपक की उपस्थिति का आभास हो और प्रतिक्रिया भी।

प्रतिक्रिया उत्पन्न करने के लिये उद्दीपक की कोई निश्चित मात्रा अवश्य होनी चाहिए। किसी भी भौतिक पदार्थ और शरीर के अन्तर्गत होने वाले परिवर्तनो से कई प्रकार के उद्दीपक प्राप्त होते है, पर एक ऐसा बिन्दु होगा जिसके नीचे की मात्रा म यदि उद्दीपक हो तो ज्ञानेन्द्रियो को इस रूप मे प्रभावित न कर सकेगा जिससे किसी सवेदना की उत्पत्ति ज्ञात हो सके। यदि एक कप पानी मे शक्कर के कुछ ही कण मिलाए जाये तो मिठास का ज्ञान नही होगा। किन्तु शक्कर की मात्रा बढाने पर एक ऐसी स्थिति आयगी जब मिठास का आभास होने लगेगा। शक्कर की यह न्यूनतम मात्रा एक कप पानी के प्रसग मे उद्दीपक देहली है। इसी देहली के मापन म उठने वाली समस्याए निरपक्ष देहली की समस्याएँ है। उद्दीपक अथवा निरपक्ष देहली क ऊपर होन वाले उद्दीपक सदैव प्रतिक्रिया उत्पन्न करने मे प्रभावशाली होते है। उस देहली क नीचे आने वाले उद्दीपक प्रतिक्रिया उत्पन्न करने मे असमर्थ होते है।

साधारणत उद्दीपक देहली स्थायी और अपरिवर्त्य नही हो सकती। वह क्षण-क्षण बदलती रहती है। इसलिए इस परिवर्त्य देहली का मापन कठिन है। कठिनता का निवारण सांख्यिकीय विधियो की सहायता से किया जाता है।

1 Stimulus threshold

भिन्नता देहली[1]

प्राय यह अनुभव किया जाता है कि लैम्प की वत्ती उठाने से रोशनी तेज हो जाती है और वत्ती कम कर देने से प्रकाश हलका हो जाता है। आदमी अपनी आवाज ऊँची कर सकता है और धीमी कर सकता है। जब चाय के प्याले मे शक्कर कम रहती है तो चाय कम मीठी लगती है। मिठास को बढाने के लिए हम और शक्कर डालते है। कल्पना कीजिए कि यदि एक गिलास पानी मे एक ग्राम शक्कर घोली जावे तो इसके कारण पानी मे एक विशेष अवस्था का मिठास हो जाता है। अब प्रश्न यह उठता है कि उस गिलास के पानी मे कम मे कम कितनी शक्कर और हम डाले कि मिठास मे ऐसी न्यूनतम वृद्धि हो कि हम नये मिठास को पहले के मिठास से अधिक मीठा कह सके। ऐसी अवस्था मे यदि हम शक्कर का एक कण और बढायें तो स्पष्ट है कि ज्ञात होने वाले मिठास मे कोई अन्तर उत्पन्न नही होगा। इस प्रकार हम कण-कण करके यदि शक्कर की मात्रा बढाते जाये तो एक ऐसी अवस्था आयेगी जब मिठास मे परिवर्तन अनुभवगम्य हो जायेगा। इस मिठास की भिन्नता को हम "न्यूनतम अनुभूति भिन्नता" कहते है। किसी भी अनुभव या प्रतिक्रिया मे 'न्यूनतम अनुभूति-भिन्नता' उत्पन्न करने के लिए उद्दीपक मे कितना न्यूनतम परिवर्तन करना आवश्यक है, 'भिन्नता देहली' की समस्या है।

भिन्नता देहली की समस्या उद्दीपक विमा पर उस विन्दु का निर्धारण करती है जो उद्दीपक की मात्रा मे वृद्धि को दो श्रेणियो मे विभक्त कर देती है। जिसके परिणामस्वरूप उस विन्दु के ऊपर का उद्दीपक भिन्न प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है। उदाहरण के लिए 'न्यूनतम अनुभूति भिन्नता' उत्पन्न करने मे समर्थ शक्कर की न्यूनतम मात्रा भिन्नता देहली का उदाहरण है।

भिन्नता देहली भी निरपेक्ष देहली की तरह एक चचल और परिवर्त्य विन्दु है जिसका मापन साख्यिकीय विधियो का उपयोग कर किया जाता है। चूंकि किसी भी प्राणी द्वारा उद्दीपको के बीच विभेदन स्नायविक प्रक्रियाओ पर आधारित होता है और स्नायविक प्रक्रिया 'सम्पूर्ण अथवा किंचितमात्र नही'[2] के नियम से नियमित होती है। हम भिन्नता देहली को सुनिश्चित और सीमित विन्दु मान सकते हैं किन्तु वास्तविक अनुभव मे ऐसा नही होता है और भिन्नता देहली का विन्दु क्षण-क्षण परिवर्तित होता रहता है।

उद्दीपक-समानता[3]

यह एक सामान्य अनुभव है कि भौतिक रूप से एक ही सदृश दो उद्दीपक दो भिन्न-भिन्न अवस्थाओ मे उपस्थित हो तो दोनो का प्रत्यक्षीकरण एक ही सदृश नही होता। यदि समान लम्बाई की दो रेखाएँ इस प्रकार खीची जाएँ कि एक

---

1 Differential threshold 2 All or none 3 Stimulus equality

रेखा खडी हो और दूसरी पडी हो तो, खडी रेखा पडी रेखा से छोटी दिखाई देगी। किन्तु यदि खडी रेखा की लम्बाई किंचित बढा दी जाये तो दोनो रेखाये लम्बाई मे एक ही सदृश दृष्टिगोचर होगी। ध्यान देने योग्य बात है कि इन दोनो रेखाओ की वास्तविक लम्बाई भिन्न हे। किन्तु प्रत्यक्षीकरण के स्तर पर दोनो रेखाएँ समान है। यह समानता भौतिक नही अपितु अनुभूतिजन्य है। स्वय स्पष्ट है कि दो उद्दीपको मे प्रत्यक्षपरक समानता के लिए उनको वास्तविक या भौतिक रूप से समान होना आवश्यक नही है। इसीलिए समस्या उत्पन्न होती है कि दो उद्दीपको मे कितनी वास्तविक भिन्नता के होने पर भी ये प्रत्यक्ष रूप से समान लगते हे। उद्दीपक-समानता की समस्या का अध्ययन करने के लिए मनोवैज्ञानिक दो उद्दीपको मे से एक को लेकर उसकी विशेषताओ अथवा उसकी भिन्न विमाओ[1] मे उस अन्तर की सीमा का निर्धारण करता है जिससे न्यून अन्तर होने पर भी दोनो उद्दीपक एक ही सदृश अनुभूत होते है। उद्दीपक-समानता की समस्या सभी प्रकार की ज्ञानेन्द्रियो से प्राप्त सवेदनाओ मे प्रकट होती है। कितनी भिन्नता होते हुए भी दो ध्वनियाँ एक सी सुनायी देती है? वेबर ने यह जानने का प्रयत्न किया कि ललाट पर चार औस का भार रखने से जितने दवाव की अनुभूति होती है वैसे ही दवाव की अनुभूति होठ पर कितना भार रखने से उत्पन्न होती है। इसी प्रकार आकृति, वर्ण, स्वाद, गध, स्पर्श इत्यादि सवेदनाओ के क्षेत्र मे भी उद्दीपक-समानता की समस्या पाई जाती है।

कोटि निर्धारण[2]

मनोभौतिकी की अत्यन्त परिचित समस्या श्रेणी-निर्धारण की है। प्राय हमारे सामने उद्दीपको का समूह प्रस्तुत होता है जिसमे विविध प्रकार के उद्दीपक होते है और उनकी विशेपताओ के आधार पर उन्हे श्रेणीबद्ध करना पडता है। उदाहरण के लिए कई व्यक्तियो के हस्तलेख के नमूनो को लीजिए। लिखावट की खूबसूरती के आधार पर सभी लेखो का मूल्याकन करना है। स्पष्ट है कि लिखावट की अनेक भौतिक विमाएँ है, जैसे कि अक्षरो की ऊँचाई, चौडाई, शब्दो तथा वाक्यो के बीच रिक्त स्थान इत्यादि। किन्तु इन भौतिक विमाओ के आधार पर हस्तलेखो की सुन्दरता को श्रेणीबद्ध नही किया जा सकता। इसके लिए हमे मनोभौतिकी की विधियो का आश्रय लेना पडता है।

आप अपने जीवन मे भी इस समस्या के अनगिनत उदाहरण ले सकते है। मान लीजिए आपके आधे दजन मित्र है। किसी मे अधिक मित्रता हे तो अन्य से कम। किन्तु मित्रता कोई भौतिक पदार्थ तो है नही जिसे किसी यत्र से मापकर मित्रता की मात्रा का निर्धारण कर सके। आप आत्मपरक अनुभवो के आधार पर उन व्यक्तियो की मित्रता की मात्रा का निर्धारण कर इन्हे श्रेणीबद्ध कर लेते है। यही परिस्थिति ही श्रेणी-निर्धारण की समस्या है।

1 Dimension or Continuum 2 Determination of order

समानमध्यान्तर की समस्या[1]

मनोभौतिकी की दूसरी महत्वपूर्ण समस्या अनुभव, प्रतिक्रिया तथा भावना के आधार पर उद्दीपकों में समान मध्यान्तर स्थापित करने की है। जब कभी भी प्रतिक्रिया या अनुभव के मापन के लिए इकाई का प्रश्न उठता है तो ऐसे प्रश्न के मूल में समान मध्यान्तर की समस्या निहित होती है। मान लीजिए एक सफेद और दूसरा काले कागज का टुकड़ा है। आपको कई प्रकार के भूरे टुकड़ों में से ऐसा टुकड़ा निकालना है जो सफेद और काले के ठीक मध्य की दूरी पर हो। दूसरे शब्दों में, आपको यह निश्चित करना है कि भूरे रंग का कागज कितना हो कि सफेद और काले के बीच की इस दूरी को दो भागों में इस प्रकार विभाजित करे कि सफेद और भूरे के मध्य का अन्तर भूरे और काले के बीच के अन्तर के बराबर हो जाये। ऐसा ही विभाजन भूरे और काले, तथा सफेद और भूरे के बीच भी किया जा सकता है।

↓	↓	↓	↓	↓
सफेद	हलका भूरा	भूरा	गहरा भूरा	काला
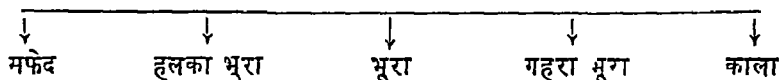
ऊपर दिये हुए मापदण्ड को देखने से मध्यान्तर समानता की समस्या स्पष्ट हो जाती है। प्रत्यक्षीकरण के आधार पर सफेद और काले के बीच के अन्तर को चार समान मध्यान्तरों में विभाजित कर दिया गया है। कोई भी मध्यान्तर अन्य मध्यान्तरों के बराबर है। इस प्रकार समान मध्यान्तर की समस्या प्रत्येक ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त अनुभवों के क्षेत्र में आती है।

मानसिक परीक्षण और मापन के क्षेत्र में यह समस्या महत्वपूर्ण है। मानसिक परीक्षणों के निर्माण और विकास में समान मध्यान्तरों एवम् इकाइयों की अनिवार्यता है, क्योंकि जब हम किसी भी व्यक्ति की बुद्धि को मापकर उसकी बुद्धि लब्धि 100 तथा दूसरे की 105 तथा अन्य किसी की 110 कहते हैं तब भी बुद्धि परीक्षण की मापनी पर दो बिन्दुओं के नीचे के मध्यान्तर समान न हों तो हम यह नहीं कह सकते कि बुद्धि का जो अन्तर प्रथम दो व्यक्तियों के बीच है वही अन्तर अन्तिम दो व्यक्तियों के भी बीच है। साथ ही साथ बुद्धि परीक्षण के क्षेत्र में मैट्रिक सांख्यिकीयों (औसत मान, मानक विचलन, सहसम्बन्ध फलक इत्यादि) का प्रयोग निरर्थक हो जायेगा। परीक्षण के क्षेत्र में समान मध्यान्तर की समस्या मनोभौतिकी की समस्या है। अन्तर इतना है कि संवेदना, प्रत्यक्षीकरण के मापन में समान मध्यान्तर की समस्या का अध्ययन उतना विस्तृत रूप से नहीं हुआ है जितना की परीक्षण के क्षेत्र में।

समानुपातिक समानता की समस्या[1]

समान मध्यान्तर की समस्या की तरह मनोभौतिकी में समानुपातिक समा-

---

1 Equality of intervals 2 Problem of equal ratio

नता की समस्या का सम्बन्ध सवेदना, प्रत्यक्षीकरण तथा अन्य अनुभवो एव प्रतिक्रियाओ के सख्याकरण और उनके मापन से हे। किसी भी प्रतिक्रिया या अनुभव के मापन के लिए आवश्यक है कि मापक मापनी मे शून्य बिन्दु निर्धारित हो अन्यथा मापन के पश्चात् भी हम कई प्रकार के आकिक वर्णन नही कर सकते है। उदाहरण के लिए मान लीजिए हमने ऊष्मा की सवेदना का मापन कर यह बताया कि दी हुई ऊष्मा या पहली ऊष्मा का अनुपात क्या है इसके लिए वैसे मापनो की आवश्यकता है जिसमे शून्यबिन्दु और समान मध्यान्तर दोनो हो।

मनोभौतिकी मे इस समस्या का अध्ययन ध्वनि, ऊष्मा, पीडा, स्वाद, आत्मपरक दवाव और चमक के प्रत्यक्षीकरण के क्षेत्र मे हुआ, किन्तु समानुपातिक समानता की समस्या का समाधान अभी भी नही हो पाया है।

उद्दीपक मूल्याकन[1]

मनोभौतिकी की यह समस्या हमारे दैनिक जीवन की प्रमुख समस्याओ मे से एक है। प्राय ऐसी परिस्थितियाँ आती है जिसमे हम किसी वस्तु या उद्दीपक की मात्रा या उसके मूल्य का निर्धारण आत्मपरक भावनाओ या अनुभव के छापो के आधार पर करते हैं। कुछ तो परिस्थितियाँ ऐसी है जिसमे उद्दीपक माप के लिए भौतिक मापन है। किन्तु हम आत्मपरक अनुभव के आधार पर अनुमान द्वारा उसकी मात्रा का निर्धारण करते है, जैसे कि दूरी, रग, वाहनगति, वस्तुभार इत्यादि किन्तु कुछ ऐसे पदार्थ या उत्तेजक गुण है, जिसके मापने के लिए भौतिक मापन उपलब्ध नही ह जैसे कि किसी उत्तेजक की सुन्दरता अथवा किसी व्यक्ति का कोई शीलगुण इत्यादि। ऐसी परिस्थितियो मे व्यक्ति अपने आत्मपरक अनुभव के आधार पर मापन करता है। इसी प्रकार का मापन मनोभौतिकी मे उत्तेजक मूल्याकन की समस्या है।

मनोभौतिकी की विधियाँ

मनोभौतिकी की जिन समस्याओ का उल्लेख किया गया है उनके अध्ययन के लिए मनोभौतिक शास्त्रियो ने कई विधियो का विकास किया है। ये विधियाँ महत्वपूर्ण हैं, क्योकि इन्ही विधियो का उपयोग कर शोधकर्त्ताओ ने तरह-तरह के परिणाम और उनके आधार पर इन समस्याओ की व्याख्या की है। समस्त शोधकर्त्ताओ ने इन्ही विधियो का किंचित परिवर्तन के साथ उपयोग किया हे। ये है—न्यूनतम परिवर्तन की विधि,[2] अभियोजन विधि[3], स्थिर उद्दीपको की विधि[4], तथा मापनी निर्माण विधियाँ[5]।

इन सभी विधियो मे अनेक अभिग्रह सन्निहित है। इन सभी विधियो का

---

1 Stimulus Rating 2 Method of minimal changes
3 Method of adjustment 4 Method of constant stimuli
5 Scale construction methods

अनुप्रयोग करते समय प्रयोज्य को एक अत्यन्त सरल भेदक अथवा इंगितकर्त्ता के रूप मे माना जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रयोज्य को प्रत्येक विधि मे अत्यन्त साधारण निर्णय लेना पडता है, जैसे—उद्दीपक उपस्थित हे या नही । एक उद्दीपक दूसरे उद्दीपक के बराबर, उससे बडा या छोटा है, अथवा उद्दीपक 'क' 'ख' का आधा, तिहाई, चौथाई या पाचवा हिस्सा हे । प्रयोगकर्त्ता इस अभिग्रह के साथ प्रयोग आरम्भ करता हे कि प्रयोज्य इस प्रकार के साधारण निर्णय करने के लिए समर्थ है और अपने निर्णय को व्यक्त कर सकता हे । इन विधियो मे दूसरा अभिग्रह यह है कि विभिन्न विधियो से प्राप्त देहलियां, समानताओ, मध्यान्तरो एव अनुपातो के माप भिन्न-भिन्न होते है। तीसरा अभिग्रह यह है कि एक ही विधि से विभिन्न प्रयोज्यो पर प्राप्त परिणाम एव एक ही प्रयोज्य से विभिन्न समयो मे प्राप्त परिणाम परस्पर भिन्न होते है। इन अभिग्रहो को ध्यान मे रखते हुए प्रयोगकर्त्ता अपने प्रयोग के उद्देश्य एव सुविधा के अनुसार किसी विधि का अनुप्रयोग करता है।

न्यूनतम उद्दीपक-परिवर्तन विधि

इस विधि का उपयोग निरपेक्ष देहली, भिन्नता देहली तथा उद्दीपक समानता के मापन के लिए किया जाता है। इस विधि मे प्रयोज्य के निर्णय के लिए जिस उद्दीपक का प्रयोग होता है उसमे प्रत्येक प्रयास के लिए न्यूनतम परिवर्तन कर दिया जाता है। इसीलिए इस विधि को न्यूनतम परिवर्तन विधि की सज्ञा दी गयी है। यह परिवर्तन प्रथम प्रयास के बाद क्रमश बढाकर या क्रमश घटाकर किया जाता है। इस प्रकार इस विधि मे क्रमिक घटाव या बढाव कर प्रयोज्य का निर्णय लिया जाता है। इसीलिए इस विधि का दूसरा नाम 'क्रमिक अन्वेपण'[1] है। इस विधि मे प्रत्येक प्रयास पर उत्तेजक मे जितना परिवर्तन होता है, अनुभूति मे भिन्नता उत्पन्न करने के उद्देश्य से प्रयोज्य द्वारा न्यूनतम मात्रा मे किया जाता है। इसीलिए इसका तीसरा नाम 'न्यूनतम अनुभूत उद्दीपक या भिन्नता'[2] भी है। इस विधि मे प्रथम प्रयास के लिए चुने हुए उत्तेजक का मूल्य देहली मूल्य से पर्याप्त न्यून या अधिक होता है, और प्रयोज्य अपनी प्रतिक्रिया या अपना निर्णय किसी भी उत्तेजक-बिन्दु पर परिवर्तित कर देता है। इसी आधार पर प्रयोगकर्त्ता जान पाता है कि प्रयोज्य के लिए किस बिन्दु पर उसी एक प्रकार की प्रतिक्रिया की सीमा है। इस प्रकार इसमे दो सम्भावित प्रतिक्रियाओ के बीच की विभाजन सीमा का निर्धारण किया जाता हे। इसीलिए इस विधि को 'सीमा विधि'[3] भी कहते है।

निरपेक्ष अथवा उद्दीपक देहली के मापन मे न्यूनतम परिवर्तन विधि—जब प्रयोगकर्त्ता का उद्देश्य उद्दीपक-देहली का मापन करना होता है तो इस विधि के उपयोग मे वह प्रथम प्रयास के लिए उद्दीपक मूल्य का चयन इस प्रकार करता है

---

1 Method of serial exploration 2 Method of just noticeable stimulus or difference 3 Method of limit

दूसरे के बाद बदलते हैं। इस प्रकार प्रयोक्ता प्रयोज्य से उद्दीपक देहली ज्ञात करने के लिए सारिणी सख्या 2 1 की भांति प्रदत्त प्राप्त होता है।

सारिणी सख्या 2 1

ध्वनि के लिए उत्तेजक-देहली का न्यूनतम परिवर्तन विधि द्वारा निर्धारण।

उत्तेजक मूल्य आ प्र से	आरोह	अवरोह	आरोह	अवरोह	आरोह	अवरोह	आरोह	अवरोह	आरोह	अवरोह
27										
26	+									
25	+						+			
24	+	+		+			+		+	
23	+	+	+	+		+	+	+	+	+
22	+	+	+	+		+	+	+	+	+
21	—	+	+	—	+	+	+	+	+	+
20	—	+	—	—	+	—	+	—	+	—
19	—	—	—		—	—	—	—	—	—
18	—	—	—		—		—		—	—
17	—		—		—		—		—	
16	—		—		—		—		—	
15	—		—		—				—	
14	—				—				—	
13	—									
12	—									
सक्रमण-विन्दु	21 5	19 5	20 5	21 5	19 5	20 5	19 5	20 5	19 5	20 5

औसत मान=20 4

मानक विचलन= 87

आरोह क्रम के सक्रमण विन्दुओ का औसत मान=20 1

अवरोह क्रम के सक्रमण विन्दुओ का औसत मान=20 7

परिणाम की गणना करने के लिए प्रत्येक प्रयास-समूह मे उस विन्दु को ज्ञात कर लेते हैं जिस पर प्रतिक्रिया का 'हाँ' और 'नही' उत्तरो के बीच सक्रमण[1] होता है। इस प्रकार सारिणी के निम्न भाग मे 10 सक्रमण विन्दु निश्चित कर लिखे हुए है। इन सक्रमण विन्दुओ का औसत मान और उनका मानक विचलन ज्ञात कर लेते है। औसत मान ही उद्दीपक-देहली हो जाता है। प्रस्तुत उदाहरण मे ध्वनि देहली 20·4 है, और उसकी विचलनशीलता का माप 87 आ०प्र०से० है।

1 Transition

उच्चत्तर भिन्नता देहली = 250 7 − 250 = 7

निम्नतर भिन्नता देहली = 249 5 − 250 = 5

$$\text{भिन्नता देहली} = \frac{7 + 5}{2} = 6$$

$$\text{आत्मपरक समानता विन्दु} = \frac{250\ 7 + 249\ 5}{2} = \frac{500\ 2}{2} = 250\ 10$$

सतत् त्रुटि = 250 10 − 250 = 10

इस प्रकार प्राप्त प्रदत्त से भिन्नता-देहली तथा समानता की गणना के लिए उपर्युक्त साख्यिकीय मान की गणना की जाती है

(i) उच्चत्तर भिन्नता देहली[1]—इसके लिए प्रतिमान से अधिक तुल्य उद्दीपको के प्रति 'वरावर' तथा 'अधिक' की प्रतिक्रियाओ के वीच के सक्रमण विन्दुओ को ज्ञात कर सम्बन्धित प्रयास-समूह के नीचे लिख दिया जाता है। तत्पश्चात् उनका औसत मान निकाल लिया जाता है। इस औसत मान तथा प्रतिमान के वीच का अन्तर उच्चतर भिन्नता देहली होता हे।

(ii) निम्नतर भिन्नता देहली[2]—इसको ज्ञात करने के लिए सभी प्रयास-क्रमो मे वरावर और कम प्रतिक्रियाओ के वीच के सक्रमण विन्दु को ज्ञात कर लेते हैं। उन सक्रमण विन्दुओ के औसत मान तथा प्रतिमान के अन्तर को निम्नतर भिन्नता देहली कहते है।

(iii) भिन्नता देहली—उ० भि० देहली तथा नि० भि० देहली के योग को 2 से विभाजित करने पर भिन्नता देहली का मान ज्ञात हो जाता हे।

(iv) आत्मपरक समानता का बिन्दु[3]—यह विन्दु उद्दीपक समानता का मूल्य ज्ञापित करता है। इसको ज्ञात करने के लिए उच्चतर सक्रमण बिन्दुओ तथा निम्नतर सक्रमण बिन्दुओ के औसत मानो को जोडकर 2 से भाग दिया जाता है। भजनफल आत्मपरक समानता का द्योतक है।

(v) सतत त्रुटि[4]—प्रतिमान तथा आ० स० वि० का अन्तर सतत त्रुटि हे।

(vi) अनिश्चयता का मध्यान्तर[5]—उच्चत्तर भिन्नता देहली तथा निम्नतर भिन्नता देहली के वीच का अन्तर अनिश्चयता का मध्यान्तर कहा जाता है, क्योकि इसके वीच कोई भी उद्दीपक मूल्य वस्तुत प्रतिमान

---

1 Upper differential limen 2 Lower differential limen 3 Point of subjective equality 4 Constant error 5 Interval of uncertainty

वहुधा उद्दीपक-समानता का निर्धारण करने के उद्देश्य से किया जाता है। इस विधि मे प्रयोज्य ही प्रयोगकर्त्ता द्वारा प्रस्तुत उद्दीपक को घटा-वढाकर प्रतिमान के समान अनुकूलित करता है। इस विधि को 'समीकरण विधि'[1] भी कहते है, क्योकि इस विधि मे प्रयोज्य तुल्य उद्दीपक को परिवर्तित कर प्रयोगकर्त्ता द्वारा प्रस्तुत प्रतिमान के समान करता है। कई प्रयासो मे ऐसा समीकरण करने मे प्रयोज्य द्वारा अभियोजित उद्दीपक-मूल्य प्रयोगकर्त्ता द्वारा प्रस्तुत प्रतिमान के मूल्य से भिन्न होता है, और वस्तुत उसका औसत मान भी भिन्न और त्रुटिपूण होता है। इसीलिए इस विधि को 'औसत त्रुटि विधि'[2] भी कहते हैं। इस विधि मे प्रयोगकर्त्ता प्रतिमान उद्दीपक प्रस्तुत कर तुलनात्मक उद्दीपक इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि प्रयोज्य तुलनात्मक उद्दीपक को परिवर्तित कर प्रतिमान के समान पुन उत्पादित कर दे। इसीलिए इस विधि को कभी-कभी 'पुनरोत्पादन विधि' की सज्ञा भी दी जा,सकती है। इसमे प्रयोज्य से अपेक्षा की जाती है कि वह तुल्य उद्दीपक को इस प्रकार परिवर्तित करे कि वह प्रतिमान के समान वन जाए। इसलिए इस विधि को कभी-कभी 'पुनरोत्पादन-विधि'[3] भी कहते है।

इस विधि के अनुप्रयोग के नियम सरल हैं। प्रयोगकर्त्ता एक सुनिश्चित मूल्य का प्रतिमान उद्दीपक के साथ-साथ एक तुल्य-उद्दीपक के रूप मे प्रस्तुत करता है जिसे प्रयोज्य परिवर्तित कर अपने प्रत्यक्षीकरण के अनुसार प्रतिमान के समान कर सके। उदाहरण के लिए म्यूलर-लायर भ्रम पर वहुचर्चित प्रयोग पद्धति को लिया जा सकता है। यह सर्वविदित है कि यदि दो समान लम्वाई की रेखाओ मे एक रेखा के दो छोर तीर की तरह और दूसरे के छोर पखवत हो तो पहिली वाली रेखा दूसरी से छोटी दिखाई देती है और इसी को 'म्यूलर-लायर भ्रम' भी कहा जाता है। अधो-चित्र सख्या 2 1 से इस भ्रम का वोध स्पष्ट हो जाता है।
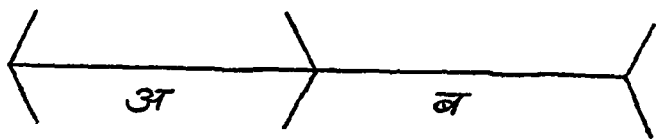
चित्र सख्या 2 1—म्यूलर-लायर भ्रम। अ तथा व रेखाएँ लम्वाई मे समान है किन्तु व रेखा के छोर पखवत है और प्रत्यक्षीकरण मे वडी दिखाई देती है। वास्तविक लम्बाई और प्रत्यक्षीकृत लम्बाई का अन्तर ही भ्रम कहलाता है।

म्यूलर-लायर भ्रम की परिस्थिति मे भ्रम की मात्रा कितनी होती है, और पखवत रेखा की कितनी लम्वाई तीरवत् रेखा की लम्वाई के समान दृष्टिगोचर होती है, का वैज्ञानिक उत्तर प्राप्त करने हेतु अभियोजन विधि का उपयोग किया जा सकता है। म्यूलर-लायर भ्रम-यत्र लेकर प्रयोज्य को निम्नलिखित निर्देश दिया जाता है

1 Equation method 2 Method of average error 3 Method of reproduction

सारिणी सख्या 2 3

अभियोजन विधि द्वारा म्यूलर-लायर भ्रम मापन के लिए प्राप्त प्रदत्त ।
प्रतिमान (तीग्वत रेखा) की लम्बाई 180 00 मिलीमीटर ।
तुलनार्थ रेखा पखवत् । कुल प्रयास 80

दशा	दक्षिण		वाम	
बाहर की ओर	156	156	160	157
	163	159	156	166
	157	150	163	161
	158	159	164	154
	148	160	161	159
	159	156	156	160
	150	157	155	162
	159	159	153	163
	155	164	159	156
	156	155	158	155
योग	1561	1565	1585	1593
	1561 , 1565	=3126	1585+1593	=3178
			3126+3178	=6304
				औसत मान=157 6
अन्दर की ओर	159	158	160	156
	159	152	155	149
	156	157	160	160
	149	148	164	153
	158	153	161	161
	160	160	158	165
	150	160	164	161
	157	156	153	153
	161	157	158	159
	160	156	156	158
योग	1569	1557	1589	1575
	1569+1557	=3126	1589 + 1575=3164	
			3126 = 3164=62[illegible]	
			औसत मान=157 [illegible]	
	3126+3126	=6252	3178 + 3164=[illegible]	
			=[illegible]	
	औसतमान=156 3		औसत मान=[illegible]	

की भी नही। भ्रम की विचलनशीलता की मात्रा को ज्ञात करने के लिए मानक विचलन की गणना आवश्यक है।

स्थान सम्बन्धी तथा गति सम्बन्धी त्रुटियाँ—यदि प्रयोज्य के दायी ओर प्रतिमान के होने पर जितने अभियोजित मान है, और प्रतिमान के वाम भाग मे होने पर जितने अभियोजित मान है, उनके पृथक औसतमान निकाले जाएँ तो दोनो औसतमान परस्पर भिन्न होगे। यह भिन्नता प्रतिमान की स्थान-भिन्नता के कारण है। इस भिन्नता को दो से विभाजित करने पर जो भजनफल मिलता है उसे स्थान सम्बन्धी सतत् त्रुटि कहते है। दूसरी ओर, यदि बाहर खीचकर अभियोजित मानो और अन्दर खिसकाकर अभियोजित मानो का अलग-अलग औसतमान निकाला जाय तो दोनो औसतमान भी परस्पर भिन्न होगे। यह भिन्नता गति सम्बन्धी भिन्नता के कारण है। इस भिन्नता को दो से विभाजित करने पर प्राप्त भजनफल गति-सम्बन्धी सतत्-त्रुटि का द्योतक है।

स्थिर उद्दीपको की विधि

स्थिर उद्दीपको की विधि समस्त मनोभौतिकी विधियो की तुलना मे अधिक सही परिणाम प्रदान करने वाली तथा विस्तृत उपयोग वाली विधि है। इसका उपयोग उद्दीपक देहली, भिन्नता-देहली, उद्दीपक-समानता तथा समान मध्यान्तरो के मापन हेतु हो सकता है, किन्तु इस विधि का उपयोग बहुधा उद्दीपक-देहली तथा भिन्नता-देहली के मापन के लिए हुआ है।

मूलरूप मे इस विधि का अनुप्रयोग बहुत सरल है। प्रारम्भिक प्रयासो के आधार पर प्रयोग कर्त्ता सम्बन्धित उद्दीपक-विमा से सीमित सख्या मे कई मूल्यो को चुन लेता है। यह सख्या प्राय चार और सात के बीच होती है। प्रत्येक उद्दीपक-मूल्य प्रयोज्य के समक्ष कई बार प्रस्तुत किया जाता है। विभिन्न उद्दीपक-मूल्यो को प्रस्तुत करने का क्रम पूर्वनिर्धारित होता है। प्रस्तुत करने का क्रम प्रयोज्य को ज्ञात नही होता। उद्दीपक देहली ज्ञात करने के लिए चुने हुए उद्दीपक-मूल्य ही प्रस्तुत किए जाते हैं। प्रयोज्य उनकी उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति का ज्ञान होने पर 'हाँ' या 'नही' के रूप मे अपनी प्रतिक्रिया अभिव्यक्त करता है। भिन्नता-देहली ज्ञात करने के उद्देश्य से इस विधि के उपयोग मे प्रत्येक उद्दीपक मूल्य प्रतिमान उत्तेजक के साथ-साथ, या क्रम मे उपस्थित किया जाता है। प्रयोज्य को बताना पडता है कि प्रतिमान की तुलना मे दूसरा उद्दीपक-मूल्य 'अधिक' है अथवा 'कम' है। यदि प्रयोज्य अधिक या कम नही कह सकता तो उसे 'अनिश्चित' कहने की भी सुविधा प्राप्त होती है।

इस विधि को कई नामो से जाना जाता है। चूँकि इस विधि मे चुने हुए उद्दीपक-मूल्य पहले से निर्धारित होकर प्रयोग के समक्ष स्थिर रहते हैं, अत इसे स्थिर उद्दीपको की विधि कहते है। प्रत्येक उद्दीपक मूल्य को कई बार प्रस्तुत किया

ऊपर दिए प्रदत्त के आधार पर औसतमान की गणना कर त्रिन्दु द्वि-स्पर्श देहली का निर्धारण।

उद्दीपक	f	x'	fx'	x'²
16—17 9	1	3	3	9
14—15 9	5	2	10	20
12—13 9	9	1	9	9
10—11 9	13	0		
8—9 9	10	—1	—10	10
6—7 9	7	—2	—14	28
4—5 9	4	—3	—12	28
2—3 9	1	—4	—4	16
	50		—18	=128

औसत मान=10 62

मानक विचलन= 2 56

इस प्रदत्त से उद्दीपक देहली ज्ञात करने की कई प्रणालियाँ है। कुछ का वणन नीचे दिया गया है

(1) **पक्तिगत अतरावेशन प्रक्रिया**[1] —स्थिर उद्दीपको की विधि से उद्दीपक देहली की गणना की यह विधि रेखाचित्र की सहायता से की जाती है। जैसा कि चित्र सख्या 2 2 मे दिया गया है, प्रदत्तो की एक वक्ररेखा तैयार कर लेते है। बाई पक्ति चुने उद्दीपको के लिए और एक्स पक्ति 'हाँ' (यहाँ दो) प्रतिक्रिया के लिए प्रयुक्त होती हैं। उद्दीपक देहली ज्ञात करने के लिए खडी रेखा से 5 के समक्ष वक्ररेखा तक एक सीधी रेखा खीच देते है। जिस विन्दु पर पडी रेखा वक्र को काटती है वही विन्दु उद्दीपक-देहली का मूल्य होता है। उदाहरण मे यह मूल्य 10 50 मि०मि० है।

इस गणना विधि के विरुद्ध कतिपय आपत्तियाँ उठाई जाती है। प्रथम, इस विधि मे सभी मूल्यो पर प्राप्त प्रतिक्रिया अनुपातो का उपयोग नही होता है। दूसरी आपत्ति यह है कि इस गणना विधि मे यह मान्यता सन्निहित है कि पडी रेखा के उन दो विन्दुओ के बीच जहाँ उद्दीपक-देहली स्थित है, 'हाँ' की प्रतिक्रिया समान रूप से वितरित है। गिल्फोर्ड के अनुसार यह मान्यता व्यवहारिक रूप से सत्य है। तीसरी आपत्ति यह की जाती है कि इस गणना-विधि से प्राप्त उद्दीपक देहली की

1 Linear interpolation process

प्रतिक्रिया देता है, जिसका तात्पर्य है कि 50 मे एक उद्दीपक देहली उस मूल्य के नीचे और 49 उत्तेजक देहली उस मूल्य के ऊपर है। इसी तरह 6 मि० मि० की दूरी पर 'दो' की 6 प्रतिक्रियाएँ है जिसका तात्पर्य है कि 50 मे 44 उत्तेजक देहलियाँ इसके ऊपर तथा 6 इस मूल्य के नीचे है। इस प्रकार यदि प्राप्त प्रदत्त का असचयात्मक बारम्बारता वितरण बनाया जाय तो सारिणी सख्या 2 4 मे दिया गया वितरण प्राप्त होगा।

इस प्रकार प्राप्त असचयात्मक देहली विवरण से औसत मान निकाल लेते है। यही मूल्य-देहली है। इस वितरण से प्राप्त मानक विचलन इस देहली की विश्वसनीयता या विचलनशीलता का द्योतक हो जाता है।

इन दो गणना विधियो के अतिरिक्त गणना की अन्य विधियाँ भी हैं। उदाहरण के लिए वुडवर्थ द्वारा 'आविष्कृत योगीकरण-विधि'[1], 'प्रकृत अन्तरावेशन' विधि[2], 'प्रकृत रेखाचित्र विधि'[3], 'मूल प्रदत्तो के आधार पर न्यूनतम वर्ग विधि'[4] तथा म्यूलर-अर्बन द्वारा निर्धारित भार के आधार पर न्यूनतम वर्गविधि। इन विधियो के स्पष्ट विवरण के लिए गिलफर्ड (1954) की पुस्तक का अध्ययन किया जा सकता है।

भिन्नता-देहली मापन मे स्थिर उद्दीपको की विधि पहले ही सकेत किया जा चुका है कि भिन्नता-देहली मापन के लिए इस विधि मे चुने उद्दीपक मूल्यो के साथ एक प्रतिमान की आवश्यकता होती है। प्रत्येक प्रयास मे प्रतिमान के साथ अथवा उसके बाद अथवा उसके पहले किसी चुने हुए उद्दीपक-मूल्य को प्रयोगकर्त्ता प्रस्तुत करता है, तथा प्रयोज्य को तुलनात्मक निर्णय—अधिक, कम या समान के रूप मे देना पडता है। प्रतिमान का होना इसलिए अनिवार्य है कि भिन्नता-देहली सर्वथा तुलनात्मक निर्णयो पर ही आधारित होती है। भिन्नता-देहली के मापन के लिए इस विधि का वास्तविक उपयोग प्रयोज्य के लिए निहित प्रतिक्रिया-विकल्पो के आधार पर दो प्रकार मे होता है। एक मे प्रयोज्य को तीन प्रतिक्रियाओ—'अधिक', 'कम' अथवा 'समान' के विकल्प होते है, और दूसरे प्रकार मे केवल दो विकल्प—अधिक या कम अथवा अधिक या समान, अथवा समान या कम—ही प्राप्त होते हैं। प्रथम प्रकार की पद्धति परम्परागत रूप मे उपयोग मे लायी जाती है। सर्वप्रथम उसी का विवेचन प्रस्तुत है।

मान लीजिए कि भार-प्रत्यक्षीकरण मे भिन्नता देहली का मापन करना है। प्रतिमान भार 100 ग्राम है। सात स्थिर भार तुलना के लिए इस प्रकार चुन लिए

---

1 Summation method 2 Normal interpolation method 3 Normal graphic method 4 Least square solutions with unweighted observation

गये कि तीन भार प्रतिमान से कम, तीन अधिक तथा एक प्रतिमान के समान है। ये है—94, 96, 98, 100, 102, 104, 106 ग्राम के भार। प्रयोज्य पहले प्रतिमान 100 ग्राम को अंगूठे तथा मध्य उंगली की सहायता से उठाता है और तुलनीय भार को उसके बाद। अपना निर्णय दूसरे भार के सम्बन्ध में अधिक, समान या कम बताकर देता है। इस प्रकार प्रत्येक तुलनीय भार को, जिनके प्रस्तुत करने का क्रम अक्रमिक रूप से पूर्वनिर्धारित होता है, प्रयोज्य के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। प्रयासों की संख्या इतनी होती है कि प्रत्येक तुलनीय भार 10 बार प्रस्तुत हो जाए। इस प्रकार के प्रयोग से प्राप्त प्रदत्त सारिणी संख्या में दिया गया है।

सारिणी संख्या 2.5

भार प्रत्यक्षीकरण में भिन्नता देहली मापन के लिए स्थिर उद्दीपकों की विधि द्वारा अधिक, समान तथा कम प्रतिक्रिया-विकल्पों के रूप में प्राप्त प्रदत्त।

प्रतिमान = 100 ग्राम। प्रत्येक तुलनीय भार 100 बार प्रस्तुत।

	प्रतिक्रियाएं		
तुलनीय भार	अधिक	समान	कम
106 ग्राम	85	09	06
104 ग्रा	70	18	12
102 ग्रा	55	35	10
100 ग्रा	30	42	28
98 ग्रा	15	25	60
96 ग्रा	12	18	70
94 ग्रा	05	04	91

परिणाम गणना—इस प्रकार के प्रदत्त से दो प्रकार की भिन्नता-देहलियाँ प्राप्त होती है। 'निम्नतर भिन्नता देहली'[1] 'कम' निर्णयों से और 'उच्चतर भिन्नता देहली'[2] 'अधिक' निर्णयों से। इनकी गणना करने की वही पद्धतियाँ है जिनका विवेचन हम गत पृष्ठों मे कर चुके है। इस तरह के प्रयोग से हमको निम्नलिखित परिणाम भी प्राप्त होते है।

(1) **अनिश्चयता का मध्यान्तर**[3] निम्नतर भिन्नता-देहली तथा उच्चतर भिन्नता-देहली का अन्तर अनिश्चयता का मध्यान्तर कहा जाता है। यह विमा का वह क्षेत्र या विस्तार है जिसमे प्रयोज्य किसी भी मूल्य को प्रतिमान से अधिक या कम विश्वसनीय निश्चयता के साथ नही कह पाता। इसकी गणना के लिए उच्चतर भिन्नता-देहली से निम्नतर भिन्नता-देहली को घटाना होता है।

1 Lower differential threshold 2 Upper differential threshold
3 Interval of uncertainty

(2) **भिन्नता देहली**—यहाँ अनिश्चता के मध्यान्तर के आधे भाग को 'भिन्नता देहली' माना जाता है। किन्तु कतिपय मनोभौतिक शास्त्रियो ने 'भिन्नता देहली' की इस परिभाषा की आलोचना की है। म्यूलर (1926) ने प्रायोगिक रूप से प्रदर्शित किया कि भिन्नता देहली अनिश्चयता के मध्यान्तर के अर्धभाग के रूप मे प्रयोज्य के दृष्टिकोण से प्रभावित होती है। अनिश्चयता के मध्यान्तर की मात्रा इस वात पर निर्भर करती है कि प्रयोज्य किस सीमा तक 'समान' की प्रतिक्रिया देता है। यदि वह प्रतिमान के साथ उद्दीपक को भिन्नता के लिए अपना आत्मपरक मापदण्ड ऊँचा कर प्रयोग मे भाग लेता है तो वह निश्चय ही अधिक मात्रा मे 'समान' प्रतिक्रिया करेगा। परिणामस्वरूप अनिश्चता का मध्यान्तर वडा हो जायेगा। दूसरी ओर यदि वह भिन्नता का निर्णय लेने के लिए आत्मपरक मापदण्ड निम्न स्तरीय रखकर निर्णय देगा तो 'समान' प्रतिक्रिया न्यून मात्रा मे देगा और अनिश्चयता का मध्यान्तर छोटा होगा। एक विश्वसनीय प्रयोग द्वारा म्यूलर ने इस व्याख्या को सिद्ध भी किया। उसने इसी कारण से भिन्नता देहली के मापन की दूसरी साख्यिकीय विधि का प्रयोग करने की सस्तुति की। उसके अनुसार 'अधिक' तथा 'कम' प्रतिक्रिया के अनुपातो की सम्भावित त्रुटि[1] 'भिन्नता-देहली' का अधिक सवेदनशील माप है।

(3) **आत्मपरक समानता का विन्दु**—गिल्फोर्ड के अनुसार 'समान', प्रतिक्रियाओ का औसतमान या मध्यमान ही आत्मपरक समानता का विन्दु माना जा सकता है। यदि स्पीयरमैन विधि का उपयोग कर 'अधिक' या 'कम' प्रतिक्रियाओ से उच्चतर देहली और निम्नतर देहली का निर्धारण किया जाता हे तो समान प्रतिक्रियाओ का औसतमान भी आत्मपरक समानता का विन्दु माना जा सकता है।

निर्णय के दो विकल्पो—अधिक तथा कम के आधार पर अपरिवर्तित उत्तेजको की विधि द्वारा भिन्नता देहली मापन—प्रस्तुत विधि का दूसरा रूप है कि तुलना के लिए प्रयोज्य को दो प्रतिक्रिया 'अधिक' तथा 'कम' का ही विकल्प दिया जाय। यह भी हो सकता है कि विकल्प तो तीन हो, किन्तु 'समान' प्रतिक्रियाओ का उपयोग परिणाम-गणना मे न किया जाय। तीसरा तरीका यह है कि 'समान' प्रतिक्रियाओ को आधा-आधा वाँटकर 'अधिक' और 'कम' प्रतिक्रियाओ के समानुपात के आधार पर मापन किया जाए। इन विविध विधियो की उपादेयता पर कितने ही प्रयोग हुए किन्तु यह निश्चित रूप से सिद्ध नही हो सका कि कौन सी विधि सर्वोत्तम है। प्रत्येक की अपनी सीमाएँ है और अपने लाभ हैं।

किन्तु यदि प्रयोज्य को प्रतिक्रिया के दो ही विकल्प—अधिक तथा कम दिये जायँ तो प्राप्त प्रदत्त से उच्चतर तथा निम्नतर देहलियाँ ज्ञात की जा सकती हैं। इन दो देहलियो का अन्तराल ही अन्तर्श्रेणी देहली कहा जाता है। किन्तु यह वुडवर्थ

---

1 Probable error

मीटर की इकाइयों के सहारे किया जाता है। भार का माप ग्राम, किलोग्राम तथा क्विंटल के रूप मे किया जाता है। समय का माप सेकण्ड, मिनट, घन्टा, सप्ताह, वर्ष इत्यादि के रूप मे किया जाता है। भौतिक पदार्थों के मापन की उपर्युक्त विधियाँ परिशुद्धता के दृष्टिकोण से भिन्न होती है। जब बिना किसी यन्त्र का सहारा लिए अनुमानत किसी पदार्थ की मात्रा के सम्बन्ध मे कथन किया जाता है, तब उस माप मे परिशुद्धता नही के बराबर होती है—जैसे कि किसी भार के सम्बन्ध मे यह कहा जाए कि अमुक पदार्थ बहुत अधिक भारी है और अमुक पदार्थ हल्का है। अधिक परिशुद्ध माप के लिए तुला और बाटों का सहारा लेकर ग्राम, किलोग्राम इत्यादि के रूप मे पदार्थ का भार ज्ञात किया जाता है। मानसिक प्रक्रमों अथवा व्यवहारों का मापन भौतिक मापों से नही किया जा सकता। इनकी मात्रा के निर्धारण के लिए जिन मापन-विधियों का सहारा लिया जाता है उन्हें ही मनोभौतिक मापनियों की संज्ञा दी जाती है। परिशुद्धता के दृष्टिकोण से इन मापनियों को हम तीन वर्गों मे विभक्त कर सकते है।

कोटि सूचक मापनियाँ[1]—इस प्रकार की मापनियाँ किसी भी मनोवैज्ञानिक विशेषता अथवा व्यवहार की मात्रा को कोटियों के क्रम से सूचित करती हैं। जब यह कहा जाता है कि अमुक छात्र कक्षा मे बुद्धि अथवा पढाई मे प्रथम, अमुक छात्र

1, Ordinal scales,

द्वितीय और अमुक छात्र अन्तिम है, उस समय कोटि सूचक मापनी का उपयोग हो रहा है। इस मापनी के माध्यम से हम इस प्रकार का मात्रात्मक कथन कर सकते है कि 'अ' 'व' की तुलना मे अधिक 'व' 'स' से अधिक और 'स' 'द' से अधिक है। गणित के प्रतीक का सहारा लेकर इसी को कहा जा सकता है कि अ>व>स>द इत्यादि। इस प्रकार की मापनी से कई उद्दीपको की तुलनीय विमा के सम्बन्ध मे उनका पारस्परिक स्तर ज्ञात हो जाता है। इस प्रकार की मापनी से यह ज्ञात नही हो पाता कि 'अ' 'व' की अपेक्षा कितना अधिक है क्योकि इनके निर्माण मे किसी स्थिर इकाई का आश्रय नही लिया जाता।

समानान्तराली मापनियाँ—इस प्रकार की मापनियाँ कोटि सूचक मापनियो की अपेक्षा अधिक परिशुद्ध मापन करती हैं। इन मापनियो से उद्दीपक विमाओ का कोटि स्तर ही नही अपितु उनके वीच के अन्तराल की मात्रा भी ज्ञात हो जाती है। ये मापनियाँ किसी स्थिर इकाई के आधार पर निर्मित होती है। वस्तुत इसी प्रकार की मापनियो के उपयोग से वास्तविक अर्थ मे मापन-प्रक्रिया का प्रारम्भ होता है। इस प्रकार की मापनी का उपयोग कर यह कहा जा सकता है कि अ-व=व-स=स-द। यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि इस प्रकार की मापनी मे अनुपयुक्त इकाईयो के योग से निरपेक्ष मात्रा अथवा परिमाण[1] का बोध नही हो सकता है क्योंकि इन इकाईयो का प्रारम्भ 'शून्य' विन्दु से नही होता।

समानुपातिक मापनियाँ—इस प्रकार की मापनियाँ सर्वाधिक परिशुद्ध माप देती हैं क्योंकि इनकी इकाईयो का प्रारम्भ शून्य विन्दु से होता है और इनकी इकाईयाँ स्थिर होती हैं। समान्तराली मापनियो द्वारा प्राप्त गणनाओ के अतिरिक्त इस मापनी से माप किए जाने वाली विशेपता के निरपेक्ष परिमाणो पर आश्रित अन्य प्रकार की गणनाएँ भी होती है। समानुपातिक मापनियो से मापन कर यह कहा जा सकता है कि अ व से दुगुना है अथवा अ का आधा है। तात्पर्य यह कि इस मापनी से प्राप्त परिणामो पर अकगणित की सभी सक्रियाएं की जा सकती है। मिलीमीटर, सेण्टीमीटर और मीटर मे लम्बाई मापने वाली मापनी समानुपातिक होती है। मानसिक योग्यता मापने वालो अधिकाश मापनियाँ भी इसी प्रकार की होती हैं।

मनोवैज्ञानिक प्रक्रमो एव व्यवहार की विशेपताओ को मापने के लिए उप-रोक्त प्रकार की मापनियो का निर्माण करने हेतु मनोवैज्ञानिको ने विविधि प्रकार की विधियाँ विकसित की हैं। इन मापनियो को सामान्यत दो श्रेणियो मे विभक्त किया जा सकता है। प्रथम श्रेणी की विधियो से सामान्यत कोटि-सूचक मापनियो का निर्माण किया जाता है। दूसरी श्रेणी की विधियो से समान्तराली और समानु-पातिक मापनियाँ निर्मित की जाती है। प्रथम प्रकार की विधियो मे 'युग्मित तुलना

---

1 Magnitude

सारिणी सख्या 2 7

10 रगो वाले वस्त्रो के आकर्पण पर युग्मित तुलना विधि द्वारा प्राप्त प्रदत्त										
रग	लाल	नीला	पीला	हरा	नारगी	वैगनी	धानी	आसमानी	वादामी	गुलावी
लाल	×	लाल	लाल	लाल	लाल	लाल	लाल	लाल	लाल	लाल
नीला		×	नीला	नीला	नारगी	नीला	नीला	नीला	नीला	गुलावी
पीला			×	हरा	पीला	पीला	धानी	पीला	पीला	पीला
हरा				×	नारगी	हरा	हरा	हरा	हरा	हरा
नारगी					×	नारगी	नारगी	नारगी	नारगी	नारगी
वैगनी						×	वैगनी	वैगनी	वादामी	वैगनी
धानी							×	धानी	धानी	धानी
आसमानी								×	वादामी	गुलावी
वादामी									×	गुलावी
गुलावी										×

	लाल	नीला	पीला	हरा	नारंगी	बैंगनी	धानी	आसमानी	बादामी	गुलाबी
सी	9	6	5	6	7	3	5	0	2	3
अनुपात	1 00	67	56	67	78	33	44	00	22	33
जेड-लब्धि	2 58	44	15	44	77	— 44	— 15	00	— 77	—·44

यद्यपि इस प्रकार के प्रदत्त मापे गए विशिष्ट गुण (यहाँ आकर्षण) निरपेक्ष शून्य के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त नही कराते हैं, तथापि इन निर्णय लब्धियो को अनुपात परिवर्तित कर हम उद्दीपको के बीच के अन्तराल के सापेक्षिक परिणाम का मूल्याकन कर सकते है। इस अभिग्रह के साथ कि युग्मित तुलना मे प्रयोज्यो की प्रतिक्रियाएँ प्रकृत रूप से वितरित होती है। अनुपातो को जेड-लब्धि मे परिवर्तित किया जा सकता है। इसके लिए पृष्ठ 54 पर सारिणी सख्या 2 8 का सहारा लिया जा सकता है। प्रस्तुत उदाहरण मे अनुपातो को जेड-लब्धि मे बदलकर पहले किया जा चुका है।

इस प्रकार की मापनी निर्मित करने मे एक ही व्यक्ति द्वारा किए गए निर्णयो को आधार बनाना अवाछनीय है। आवश्यक है कि एक उद्दीपक-समुच्चय को लेकर अनेक प्रयोज्यो से युग्मित तुलना कराया जाए। इस प्रकार सभी उद्दीपको के लिए अनेक निर्णय-लब्धियाँ (सी-लब्धियाँ) प्राप्त हो जाएगी। इनका अलग-अलग औसत मान निकाल कर पुन उन्हे अनुपात लब्धि और जेड-लब्धि मे परिवर्तित कर लिया जाए। औसत मान निकालने के लिए एक उद्दीपक की लब्धियो का योग प्राप्त कर उसे एन-1 विभाजित कर दिया जाता है।

2 कोटि निर्धारण विधि

इस विधि का दूसरा नाम योग्यता क्रम विधि[1] भी है। इस विधि मे मापनीय विमा के आधार पर प्रयोज्य किसी उद्दीपक-समुच्चय को क्रम सूचक कोटियो मे व्यवस्थित करता है। इस विधि की प्रमुख विशेपता यह है कि प्रयोज्य एक उद्दीपक को ही एक कोटि मे रख सकता है। जितने भी उद्दीपक होते हैं, उतनी ही कोटियाँ बनती है। क्रमसूचक कोटि मे प्रथम स्थान उस उद्दीपक को दिया जाता है जिसमे मापनीय विशेपता सर्वाधिक मात्रा मे प्रयोज्य को प्रत्यक्ष अथवा प्रतीत होती है। अन्तिम स्थान उस उद्दीपक को दिया जाता है जिसमे मापनीय विशेपता न्यूनतम मात्रा मे होती है। अन्य उद्दीपक विशेपता के प्रतीत होने वाली मात्रा के आधार पर द्वितीय, तृतीय तथा इसी प्रकार अन्य कोटियाँ प्राप्त करते हैं।

कोटि निर्धारण विधि कई अशो मे युग्मित तुलना-विधि और क्रमिक वर्ग विधि के समान है। इस विधि मे भी युग्मित तुलना विधि की ही तरह प्रत्येक उद्दीपक की तुलना अन्य उद्दीपको के साथ की जाती है, किन्तु अन्तर इतना है कि प्रत्येक उद्दीपक के साथ तुलना के लिए अन्य सभी उद्दीपक एक ही साथ उपलब्ध होते हैं,

1 Rank order method

यदि प्रयोग कर्ता का उद्देश्य यह है कि कोटि निर्धारण विधि से प्राप्त प्रदत्तो के आधार पर उसी प्रकार की मापनी बनायी जाए जिस प्रकार की मापनी युग्मित तुलना-विधि से बनती है तो प्रदत्त का विश्लेपण और आगे बढाया जा सकता है। इस तरह के विश्लेपण मे यह अभिग्रह अन्तरनिहित है कि प्रयोज्य जब किसी उद्दीपक को कोटि[2] मे रखता है तो स्पष्टत वह अन्य उद्दीपको के मुकाबले उस उद्दीपक को चुनता है। इसी प्रकार यदि वह किसी उद्दीपक को कोटि 2 मे रखता है तो वह उसको शेप 8 के मुकाबले चुनता है। इस प्रकार प्रत्येक उद्दीपक की कोटि को वर्ग (सी-उपलब्धि) मे परिवर्तित किया जा सकता है। कोटियो को सी-लब्धि मे परिवर्तित करने के लिए अधोलिखित सूत्र का उपयोग किया जाता है।

---

1 Internal consistency

सारिणी 2 9

←—पेशे—→

निर्णायक	इन्जीनियर	डाक्टर	प्राध्यापक	वकालत	व्यवसाय प्रबंधक	ठेकेदारी	व्यापार	सम्पादक	सेनाधिकारी	राजनीतिज्ञ
क	1	2	6	3	8	10	9	7	4	5
ख	2	1	4	5	6	8	9	10	3	7
ग	3	2	1	5	9	10	8	7	4	6
घ	1	3	2	1	7	8	10	9	5	6
ङ	1	1	5	2	9	10	8	7	3	6
च	5	4	6	1	7	10	9	8	2	3
छ	1	2	3	4	8	9	7	6	5	10
ज	2	1	7	6	3	8	9	5	10	1
झ	1	2	8	9	7	5	1	3	10	6
ञ	2	1	5	3	1	10	9	6	8	7
कोटियोग	22	22	47	39	68	88	82	68	51	60
औसतकोटि	2·2	2·2	4·7	3·9	6·8	8·8	8·2	6·8	5·1	6·0
सीताब्धि-औसतमान	7·8	7·8	5·3	6·1	3·2	1·2	1·8	3·2	1·6	1·0
अनुपात	87	87	59	67	36	13	20	76	51	41
जेड राशि	+1·13	+1·13	+·23	+·44	—·36	—1·13	—·81	+·71	+·03	—·15

सी-लब्धि - मध्य-कोटि (प्रस्तुत उदाहरण में अनुपात का मान 10 है) इन सी लब्धियों को अनुपातों में परिवर्तित कर सारणी संख्या 2 8 की सहायता से जेड-लब्धि में परिवर्तित किया जाता है। प्रस्तुत उदाहरण प्रदत्त में ऐसा करके दिखाया गया है। सी-लब्धि को अनुपात में परिवर्तित करने के लिए अधोलिखित सूत्र का उपयोग किया जाता है।

अनुपात--सी-लब्धियों का औसत-मान/एन-1

इस मापन विधि के विरोध में आपत्ति उठाई जाती है कि प्रयोज्य द्वारा निर्धारित कोटियाँ क्रम सूचक मात्र है और उनका उपयोग संख्या अथवा गणनात्मक उद्देश्य से नही किया जा सकता है। गुइल्फर्ड और थर्स्टन ने स्वीकार किया है कि कोटि निर्धारण विधि से मात्र क्रम-सूचक मापनी का निर्माण होता है जिसका कोई शून्य बिन्दु नही होता। किन्तु जब एक ही उद्दीपक समुच्चय का कोटिनिर्धारण कई निर्णायको से कराकर प्रत्येक उद्दीपक की औसत कोटि की गणना कर ली जाती है तब स्थिति बदल जाती है। ऐसा पाया जाता है कि औसत कोटियो के बीच के अन्तराल वास्तविक अन्तराल से बहुत मिलते-जुलते है।

3 उद्दीपक मूल्याकन विधि

मापनीकरण की इस विधि का उपयोग गाल्टन (1863) ने पहली बार किया। उसके बाद से यह विधि इतनी प्रचलित हुई कि अधिकाश शिक्षित व्यक्ति इस मापन विधि से परिचित है। उद्दीपक मूल्याकन विधि से निर्मित मापनियो के अनेक रूप है जैसे कि आकिक,[1] रेखा-चित्रगत[2] मानक[3], सचित बिन्दु वाली[4] और बाधित विकल्प वाली[5] मापनियाँ। आकिक मूल्याकन मापनियो मे पूर्वपरिभाषित अक एक क्रम मे प्रस्तुत किए जाते है और प्रयोज्य प्रत्येक उद्दीपक के सामने उन अको मे से एक अक चुनकर उसके सामने लिख देता है। कभी-कभी अको के बदले वर्णनात्मक सकेत दिये जाते है और इन्ही सकेतो के रूप मे प्रयोज्य प्रत्येक उद्दीपक का मूल्याकन करता है। इन दोनो के उदाहरण नीचे दिये गये है।

अक	परिभाषा
7	अत्यन्त सुखदायक
6	अति सुखदायक
5	सुखदायक
4	न सुखदायक न दुखदायक
3	दुखदायक
2	अति दुखदायक
1	अत्यन्त दुखदायक

(यदि अको को हटा लिया जाए और मात्र वर्णनात्मक सकेत ही दिए जायँ तो भी इसे आकिक मापनी ही कहते है।)

---

1 Numerical 2 Graphic 3 Standard 4 Cumulative points
5 Forced choice

उपरोक्त प्रकार की परिभापाएं बहुधा द्वि-छोरीय विशेपणो का उपयोग करती हैं। इसके कारण दो छोरो के ठीक मध्य की परिभापा या वर्णनात्मक सकेत मापनी का शून्य विन्दु वन जाता है और वाद की गणना मे शून्य विन्दु के ऊपर दिए गए अक धनात्मक और नीचे दिए अक ऋणात्मक होते हैं। इतना अवश्य है कि विश्लेपण मे ऋणात्मक अको के कारण कठिनाइयां उत्पन्न होती है, अत. शून्य विन्दु की उपेक्षा कर निम्नतम छोर का मूल्य और उच्चतम छोर का मूल्य रखा जाता है।

रेखा-चित्रगत् मापनियाँ अपनी सरलता और स्पष्टता के कारण अधिक लोक प्रचलित है। इस प्रकार की मूल्याकन मापनी के भी अनेक रूप है। इसमे वहुधा एक सीधी रेखा का उपयोग किया जाता है। सीधी रेखा ऊपर से नीचे की ओर खीची जाती है या दाएँ से वाएँ की ओर। इस रेखा के सहारे निश्चित सख्या मे वर्णनात्मक सकेत दिए गए होते हैं। रेखा प्रत्येक सकेत के लिये अलग-अलग खण्डित हो सकती है अथवा एक ही अखण्डित रेखा रहती है। खण्डो की सख्या उतनी ही रहती है जितनी कि सकेतो की। इसके कुछ उदाहरण नीचे दिए गए है।

उदाहरण 1

(यह मापनी ऊपर से नीचे की ओर भी हो सकती है)

किसी समूह मे 'अ' कैसा है ?	———	———	———	———	———
	वाचाल	वाक् पटु	मितभापी	अल्पभापी	मौन

उदाहरण 2

(यह मापनी भी ऊपर से नीचे की ओर हो सकती है)

क्या आधुनिक शिक्षा प्रणाली व्यवस्थित है या अव्यवस्थित	अत्यन्त व्यवस्थित	पर्याप्त व्यवस्थित	सामान्य व्यवस्थित	न व्यवस्थित न अव्यवस्थित	सामान्य अव्यवस्थित	पर्याप्त अव्यवस्थित	अत्यन्त अव्यवस्थित

मानक मापनियाँ भी उद्दीपक मूल्य निर्धारण मापनियो के अन्तर्गत आती हैं। इस प्रकार की मापनी मे और दशाएं तो आकिक मापनियो जैसी होती है, किन्तु इसमे वर्णनात्मक सकेत के वदले मापनीय विशेपता की परख के कुछ मानक दिए रहते हैं। सचित अको द्वारा मूल्य निर्धारण एक दूसरी मूल्य निर्धारण की विधि है। इसमे अनेक छोरीय विशेपण दिए गए रहते हैं, जैसे कि—दयालु-निर्दयी, सुन्दर-कुरूप इत्यादि। प्रयोज्यकर्त्ता किसी उद्दीपक के प्रत्यक्षीकरण का द्योतन इन दिए विशेपणो मे से प्रासगिक विशेपण पर सही का चिन्ह वनाकर करता है। यदि धानात्मक विशेपण पर सही लगता है उसे +1 का अक और निपेधात्मक के लिए —1 का अक देकर इनका योग कर लिया जाता है। विशेपणो की सूची वहु-विकल्प वाली भी हो सकती है। उदाहरण अगले पृष्ठ पर दिया जा रहा है।

मान लिया कि प्रयोज्य से अपेक्षा की जाती है कि उसे किसी विभाग में कार्यरत व्यक्तियों का मूल्य निर्धारण करना है। उसके समक्ष 8 व्यवहार हैं जिनके आधार पर उसे व्यक्तियों का मूल्य निर्धारण करना है। आठों व्यवहार नीचे दिए गए है। प्रत्येक व्यवहार के दो मूल्य साथ-साथ है। प्रयोज्य इनमें से किसी एक को चुनकर सही का चिन्ह बना देगा। चिन्ह के आधार पर अंकों का योग कर व्यक्ति-मूल्य ज्ञात कर लिया जाता है।

1 दयालु-निर्दयी
2 विचारशील-विचारहीन
3 कर्मठ-आलसी
4 ईमानदार-बेईमान
5 सावधान-लापरवाह
6 गम्भीर-छिछला
7 सामाजिक-एकान्तप्रिय
8 नियमित-अनियमित

उद्दीपक मूल्य निर्धारण विधि के उपयोग से समय की बचत होती है। प्रयोज्य के लिए इसका उपयोग पर्याप्त रुचिकर होता है। इनका उपयोग भी अगणित प्रकार की मनोवैज्ञानिक विशेषताओ के मापन मे किया जा सकता है। सामान्य प्रयोज्य भी सुविधा से इसका अनुप्रयोग कर सकता है। एक ही साथ एक प्रयोज्य अनेको उद्दीपको का मूल्याकन कर सकता है। अनेक विद्वानो का मत है कि इस विधि से अधिक वैध निर्णयो की प्राप्ति होती है।

4 क्रमिक वर्गों की विधि

मापनीकरण विधियों में यह अत्यन्त सामान्य है। सिद्धान्तत इसमे दोनो, एकल उद्दीपको एव उद्दीपक मूल्यांकन विधियो का समावेश है। वस्तुत इस विधि मे प्रयोज्य को किसी उद्दीपक विमा के आधार पर मात्रात्मक रूप से भिन्न विविध वर्गों में ही दिए गए उद्दीपको को क्रमश विभक्त करना पडता है। वर्गों के पारस्परिक अन्तरालो के विषय मे कोई आग्रह नही होता है। यह मान लिया जाता है कि वर्ग प्रारम्भ से अन्त तक कोटि-क्रम मे व्यवस्थित है। वर्गों की सख्या कितनी हो प्रयोज्यकर्त्ता पर निर्भर करती है। वैसे 5 या 7 या 9 वर्गों को मापनी मे सम्मिलित किया जाता है। मापनीकरण का उद्देश्य प्रत्येक वर्ग मे विभक्त किए जाने वाले उद्दीपक-मूल्यो को ज्ञात करना होता है। इसीलिए इस विधि से क्रम सूचक मापनियाँ ही तैयार होती हैं। किन्तु इस प्रकार की मापनियो मे सन्निहित कोटियो की पृथक-पृथक सीमाएँ ज्ञात कर इनसे समान्तराली मापनियो को विकसित किया जा सकता है।

इस विधि के अनुप्रयोग को उदहृत करने के लिए एक प्रयोग का वर्णन किया जा सकता है। मान लीजिये कि 10 वर्ण के कपडे हैं। प्रयोगकर्ता को यह ज्ञात करना है कि इन कपडो को इनके आकर्षण के आधार पर क्रमिक वर्गों मे किस प्रकार विभक्त किया जा सकता है। स्पष्ट है कि विभिन्न वर्णो मे वस्त्रो का आकर्षण एक मनोवैज्ञानिक विमा है। इस विमा को उपयोगकर्त्ता ने सात वर्गों मे विभक्त किया—अ, ब, स, द, ई, फ तथा ज के वर्णन—

अ=अत्यन्त आकर्षक

ब=अति आकर्षक

स=आकर्षक

द=सामान्य

ई=विकर्षक

फ=अति विकर्षक

ज=अत्यन्त विकर्षक

प्रत्येक वर्ग के वर्णन भी निश्चित कर प्रयोज्य के समक्ष प्रस्तुत कर दिए गए। प्रयोज्य को निर्देश दिया गया कि वह सभी रग के वस्त्रों का प्रेक्षण करे और जो वस्त्र जैसे लगें उसके अनुसार उपरोक्त वर्गों मे रख दे। ज्ञातव्य है कि एक ही प्रयोज्य से प्राप्त वर्गीकरण के आधार पर वैध और विश्वसनीय मापनी का निर्माण नही किया जा सकता। अत' अनेक प्रयोज्यो से वर्गीकरण कराकर ही इस प्रकार की मापनी निर्मित की जाती है। यहाँ 10 प्रयोज्यो से प्राप्त प्रदत्त सारिणी सख्या 2 10 मे उद्धृत है।

सचयात्मक अनुपात आवृत्ति

वस्त्र	अ	व	स	द	ई	फ	ज
1	2	5	7	8	9	1 00	1 00
2	4	6	8	9	1 00	1 00	1 00
3	1	5	8	1 00	1 00	1 00	1 00
4	0	6	9	1 00	1 00	1 00	1 00
5	0	4	8	9	1 00	1 00	1 00
6	0	1	3	7	1 00	1 00	1 00
7	0	0	1	6	6	8	1 00
8	0	0	0	1	4	8	1 00
9	0	2	4	9	1 00	1 00	1 00
10	0	0	0	2	·9	1 00	1 00

ऊपर दिये गये अनुपात वितरणो से प्रत्येक वस्त्र के वर्गीकरण मे विचलन शीलता का ज्ञान हो जाता है। यदि किसी वस्त्र के आकपण के वर्गीकरण मे विचलन शीलता का अभाव हो तो सचयात्मक अनुपात आवृत्ति 1 00 की सीमा किसी एक ही वर्ग मे प्राप्त कर लेती है। यदि किसी उद्दीपक के वर्गीकरण मे अधिकतम सम्भावित विचलनशीलता है, तो सचयात्मक आवृत्ति वर्ग अ से प्रारम्भ होकर ज मे 1 00 की सीमा उपलव्ध कर पाती है। इतने ही प्रदत्त से हम वस्त्रो की आकर्पण विशेपता के सम्वन्ध मे परिमाणपरक कथन कर सकते है। जिस वर्ग मे जिस वस्त्र के वर्गीकरण का अनुपात सर्वाधिक हो, वस्त्र को उसी वर्ग का माना जा सकता है। इतना अवश्य है न्यून मात्रा मे प्राप्त अनुपातो मे सन्निहित सूचनाओ की इस प्रकार उपेक्षा हो जाती है। दूसरी ओर, इस मापनीकरण मे वर्गो के पारस्परिक अन्तरालो की समानता के वारे मे कोई कथन नही किया जा सकता। इन्ही न्यूनताओ के कारण मनोवैज्ञानिको ने साख्यिकी के उपयोग से क्रमिक वर्गों की विधि से प्राप्त प्रदत्त के आधार पर समान्तराली मापनियो का निर्माण करने का प्रयत्न किया है।

5 समान सवेदनान्तर विधि

इस विधि से ऐसी मापनियो का निर्माण होता है जिनको समान्तराली मापनियो की सज्ञा दी जाती है। इस विधि मे प्रयोज्य को दो उद्दीपक दिए जाते है जो किसी भौतिक विमा के आधार पर एक दूसरे से वहुत भिन्न होते है। प्रयोज्य से उपेक्षा की जाती है कि वह इन दो उद्दीपको के वीच के प्रतीत होने वाले अन्तर को इस प्रकार विभाजित करे कि इस विमा-विभाजन से उत्पन्न उद्दीपक के दो भागो की पारस्परिक दूरी वरावर हो। इसी विभाजन प्रक्रिया के अनुप्रयोग के कारण इस विधि को द्विखण्डन विधि[1] की भी सज्ञा दी जाती है। इस विधि को एक उदाहरण लेकर स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिए कि प्रयोगकर्त्ता कृष्ण और श्वेत वर्ण

---

1 Bisection method

के बीच के प्रत्यक्ष होने वाले अन्तर को समान्तराली मापनी मे परिवर्तित करना चाहता है। इसके लिए उसने श्वेत और कृष्ण वर्ण के कागज के टुकडे के साथ अन्य अनेक ऐसे टुकडो को लिया गया कि ये अन्य टुकडे श्वेत और कृष्ण के बीच प्रत्येक सम्भव भूरेपन को प्रस्तुत करे। प्रयोज्य के समक्ष श्वेत तथा कृष्ण टुकडे को रखकर निर्देश दिया गया कि वह अन्य टुकडो मे से ऐसे टुकडे को चुने जो श्वेत-कृष्ण के बीच प्रत्यक्ष अन्तर के ठीक मध्य वर्ण का आभासित हो। इस प्रकार दो उद्दीपको के बीच का आत्मपरक मध्य-बिन्दु ज्ञात कर लिया गया। दो उद्दीपकों के बीच के अन्तर को आत्मपरक रूप से समान भागो मे विभाजित करने वाला उद्दीपक आत्मपरक समानता विन्दु है। कई प्रयोज्यो के आत्मपरक समानता विन्दु को ज्ञात कर उनका औसत मान ही विखण्डित उद्दीपक होता है।

इस विधि से किसी प्रत्यक्ष उद्दीपक के दो समान अन्तरालो को भी द्विखण्डित कर चार समान्तरालो मे विभक्त किया जा सकता है। ऐसा करना इस पर आश्रित है कि प्रथम वार प्रस्तुत किए गए दो उद्दीपको के बीच की प्रत्यक्ष दूरी कितनी है। दो उद्दीपको के अन्तर को द्विखण्डित करने के लिए यह आवश्यक है कि दोनो उद्दीपक प्रत्यक्षत भिन्न ही न हो वल्कि उनके बीच का अन्तराल भी सरलता से विभेदनीय अन्तरालो मे विभाजित किया जा सके। दूसरी वात ध्यान देने योग्य है कि किसी भी अन्तर को द्विखण्डित करने के लिए मनोभौतिकी की तीनो प्रमुख विधियो (न्यूनतम उद्दीपन परिवतन, औसन त्रुटि तथा वारवारता विधियो) का आश्रय लिया जा सकता हे।

6 समाभासी अन्तरालो की विधि[1]

इस विधि की प्रधान विशेपता यह है कि इसमे सभी मापनीय उद्दीपको को प्रयोज्य के समक्ष एक साथ प्रस्तुत कर दिया जाता है तथा उसको निर्देश दिया जाता है कि वह उन सभी उद्दीपको को दी हुई सख्या के वर्गो मे विभक्त कर दे। यह विधि उन्ही उद्दीपको के लिए उपयुक्त है जो प्रयोज्य के समक्ष एक साथ प्रस्तुत किए जा सकते है। दूसरी विशेपता यह है कि दिये गए वर्ग ऐसे होते है कि किसी भी दो वर्गों के बीच के अन्तर वरावर होते है। इस विधि को उदहृत करने के लिए गिलफोर्ड (1954) द्वारा वर्णित प्रयोग को उद्धृत किया जा सकता है। यह प्रयोग विन्दु-प्रतिरूप के घनत्व[2] के प्रत्यक्षीकरण पर किया गया है। सभी उद्दीपक प्रतिरूप 2 5"×2 5" कार्ड पर विन्दुओ से वनाए गए विभिन्न चित्र थे। विन्दुओ की सख्या का विस्तार 15 से 74 तक था। सम्पूण कार्ड चार समुच्चयो मे विभक्त थे और प्रत्येक मे 230 काड थे। प्रत्येक उद्दीपक-मूल्य (विन्दु प्रतिरूप) के कार्डों की सख्या प्रत्येक समुच्चय मे 10 थी और 23 प्रकार के उद्दीपक-मूल्य लिए गए थे। प्रयोज्य को इन्हे नौ वर्गों मे इस प्रकार विभक्त करना था कि सभी वर्गों के बीच रखे गए उद्दीपक मूल्यो के

---

1 Method of equal appearing intervals 2 Density of dot-patterns

वीच के अन्तर एक ही सदृश्य प्रतीत हो। एक प्रयोज्य द्वारा इन कार्डों के वर्गीकरण से प्राप्त प्रदत्त अधोलिखित सारणी मे दिया गया है। इसमे प्राप्त मध्यमान प्रत्येक उद्दीपक का इस मापनी पर आभासित विन्दु घनत्व मूल्य है।

सारिणी सख्या 2 12

समाभासी अन्तरो वाले 9 वर्गों मे विभक्त प्रत्येक उद्दीपक-मूल्य की वारम्वारता का वितरण।

वर्ग

उ० मूल्य	1	2	3	4	5	6	7	8	9	वर्ग मध्यमान	चतुर्थक विचलन
15	14	18	7	1						1 83	59
16	16	19	3	2						1 71	56
17	7	18	11	4						1 22	64
19	8	18	9	3	2	.				2 17	67
20	3	12	14	3	6	2				2 86	87
22	1	11	14	12	2					3 07	76
24		3	12	14	9	2				3 86	76
26		2	9	18	9	2	.			4 00	61
28			2	20	17	1				4 40	54
30				26	11	3				4 27	49
32				10	16	9	3			5 00	71
35				8	17	14	1			5 21	62
37				8	18	10	4			5 17	64
40				2	14	14	10			5 79	72
43					12	19	9			5 92	55
46				2	6	18	14			6 17	59
49					2	14	23	1		6 67	56
53						10	25	5		6 90	40
56						12	22	6		6 87	49
60						5	22	11	2	7 18	52
64							14	20	6	7 80	54
69							7	17	16	8 26	60
74							6	20	14	8 20	54

इस विधि का अनुप्रयोग अनेक परिस्थितियो मे सुविधा से किया जा सकता है। इसका सर्वाधिक अनुप्रयोग हस्तलेख, चित्रकारी इत्यादि जैसे वस्तुओ के मापनीकरण मे हुआ है। इसी प्रकार अभिवृत्ति मापन मे वहुत से अभिवृत्तियो की अभिव्यक्ति करने वाले कथनो का मापनीकरण इस विधि से किया गया है। उन सभी दशाओं मे जहाँ उद्दीपको की सख्या अधिक हो इस विधि का अनुप्रयोग कर उनका मापनीकरण किया जा सकता है।

7 प्रभाजन विधि

इस विधि की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें प्रयोज्य को बहुत से तुलनीय उद्दीपकों में से एक ऐसे तुलनीय उद्दीपक को चुनना होता है जो दिए गये मानक उद्दीपक का कोई निश्चित अंश (आधा, तिहाई, चौथाई, इत्यादि) प्रत्यक्ष या आभासित होता हो। स्पष्ट है कि इस विधि से प्रत्यक्ष मात्रा के समानुपात प्राप्त किए जा सकते है। स्टिवेन्स ने इस विधि का उपयोग कर स्वर-प्रबलता[1] के लिए समानुपातिक मापनी का निर्माण किया है। उसने प्रयोज्य को एक निश्चित प्रबलता वाले स्वर को सुनाया। साथ ही साथ प्रयोज्य को यह भी निर्देश दिया गया था कि वह दूसरे ध्वन्यावृत्ति उत्पादक[2] यन्त्र पर एक ऐसा स्वर उत्पन्न करे कि वह स्वर पहले वाले स्वर से आधा ही प्रबल सुनाई दे। इस प्रक्रिया की कई मानक स्वर-प्रबलताओ के साथ पुनरावृत्ति की गई।

इस प्रक्रिया से प्राप्त प्रदत्तों के माध्यम से स्टीवेन्स ने जिस स्वर प्रबलता-मापनी का निर्माण किया उसने उसे सोन-मापनी की सज्ञा दी। सोन इस मापनी की इकाई है। एक सोन, स्टिवेन्स के अनुसार निरपेक्ष देहली के ऊपर 40 डेसिमल पर 1000 आवृत्ति प्रति सेकण्ड वाले ध्वनि मे माना गया। मापनी निर्माण के लिए इसी विन्दु से क्रमश ऊपर की ओर जाना है। इस आवृत्ति वाले स्वर की जिस प्रबलता पर एक सोन अभियोजित स्वर प्रबलता का आधा होता है वहा पर 1 सोन 2 बन जाता है। इसी प्रकार 4, 8, 12, 24 सोन की प्राप्ति की जा सकती है।

इस विधि की अनेक सीमाएं है। इस विधि का उपयोग उसी उद्दीपक विमा पर हो सकता है जिसके आधार पर मानक उद्दीपक प्रस्तुत किया जा सके और साथ ही साथ तुलनीय उद्दीपक की उसके साथ तुलना की जा सके। तुलनीय उद्दीपकों की संख्या यदि अधिक हो तो इस विधि के अनुप्रयोग मे बहुत कठिनाई हो जाती है। साथ ही साथ मापनीकरण की यह प्रत्यक्ष विधि है जिसके कारण मापनी को मात्र सतही वैधता प्राप्त होती है।

8 बहुल उद्दीपकों की विधि

यह विधि ऐसी है जिसका अनुप्रयोग मापनीकरण मे बहुत कम हुआ है। इसका बहुधा उपयोग प्रभाजन विधि से प्राप्त परिणामो के परीक्षणार्थ हुआ है। इस विधि मे प्रयोज्य से यह अपेक्षा की जाती है कि वह दिए गए उद्दीपको मे से उस उद्दीपक को चुने जो मानक उद्दीपक का निश्चित गुणनफल हो—दुगुना, तिगुना, चौगुना इत्यादि। इस प्रकार यह विधि प्रभाजन विधि के ही समान है।

मनोभौतिकी की प्रायोगिक उपलब्धियाँ

फेकनर, म्यूलर, वुण्ट तथा अर्बन जैसे प्राचीन मनोभौतिक शास्त्री मुख्यत

1 Loudness 2 Audio-frequency generator,

विभिन्न ज्ञानेन्द्रियो के क्षेत्र मे सवेदनाओ की उद्दीपक देहलियो तथा भिन्नता-देहलियो का प्रयोगिक निर्धारण कर उनके सम्वन्ध मे वैज्ञानिक नियमो का प्रतिपादन करना चाहते थे। वैसे तो फेकनर मनोभौतिकी की विधियो के माध्यम से मन तथा शरीर, अथवा भूत तथा आत्मा, के पारस्परिक सम्बन्ध का मापन कर दार्शनिक प्रश्नो का समाधान करना चाहता था। किन्तु वाद के मनोभौतिक-शास्त्रियो ने मनोभौतिक विधियो का उपयोग सावेदिक प्रक्रमो का अध्ययन करने के ही निमित्त किया। इन सभी मनोवैज्ञानिको का प्रमुख उद्देश्य सवेदनाओ का मापन करना था। इस मापन के लिए प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय के क्षेत्र मे होने वाली सवेदनाओ के उस उद्दीपक विन्दु को ज्ञात करना अनिवार्य था जिस पर सवेदना का ज्ञान होता था। साथ ही साथ यह भी जानकारी करना आवश्यक था कि किसी भी उद्दीपन मे न्यूनतम परिवर्तन कितना हो कि उससे उत्पन्न सवेदना पहली वाली सवेदना से भिन्न लगे। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि दोनो उद्देश्य उद्दीपक देहली और भिन्नता देहली के मापन से सम्वन्धित थे। आज भी इनका मापन और मूल्य विवादास्पद विपय है। प्राचीन मनोवैज्ञानिको ने इन दोनो के मापन के दो प्रकार की पृथक विमाओ का सवोधकरण किया था।

मनोभौतिक मापनो मे सर्वथा दो विमाएँ साथ-साथ उपस्थित रहती है। ये दोनो प्रकार की विमाएँ दो पृथक वास्तविकताओ से सम्वद्ध है। प्रथम है भौतिक विमाएं और दूसरी है मानसिक अथवा प्रतिक्रियापरक विमाएँ। उद्दीपन की विशेपताएँ भौतिक विमाएँ है जवकि सवेदनाओ, प्रत्यक्षो और प्रतिक्रियाओ की विशेपताएँ हैं मानसिक विमाएँ। अधोप्रदत्त चित्र से इन दोनो विमाओ की पारस्परिक भिन्नता एवम् सम्वन्ध का स्पष्टीकरण होता है। इस चित्र मे ध्वनि तरगो की आवृत्ति भौतिक विमा का उदाहरण है।
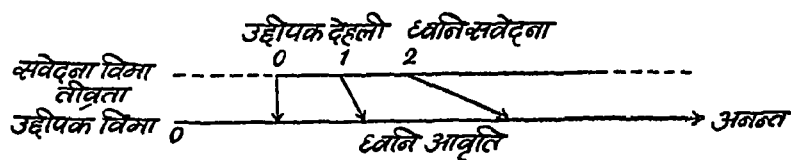
चित्र संख्या 2 3

ध्वनि तरगे शून्य आवृत्ति से प्रारम्भ होकर अनन्त आवृत्तियो की हो सकती हैं। स्पष्ट है कि ध्वनि की किसी निश्चित आवृत्ति के नीचे वाली ध्वनि तरगे ध्वनि सवेदना उत्पन्न करने मे असमर्थ होती है। ध्वनि सवेदना का शून्य भौतिक विमा के समानान्तर उस विन्दु पर प्रारम्भ होता है जहाँ उद्दीपक देहली का विन्दु है। उद्दीपक देहली की आवृत्ति से भिन्न वह आवृत्ति, जो प्रारम्भिक सवेदना (0) से भिन्न आभासित होने वाली सवेदना (1) को उत्पन्न करती है, दूसरा उद्दीपक है। यहाँ भौतिक विमा का मापन ध्वनि तरगो की प्रति सेकण्ड आवृत्ति के माध्यम से

मापा जाता है, किन्तु ध्वनि सवेदना का मापन भिन्नता देहलियो की इकाईयो मे मापा जा सकता है। भौतिक विमाओ के माप की इकाई के उदाहरण हैं, ध्वनि तरगो की आवृत्ति, ध्वनि तरगो के आयाम, ग्रामो मे मापित भार प्रकाशोद्दीपक का उर्जा स्तर इत्यादि। इन्ही के समानान्तर मानसिक विमाओ के उदाहरण है तारत्व[1], स्वर प्रवलता[2], दवाव, तथा प्रकाश की चमक इत्यादि। उद्दीपक देहली तथा भिन्नता देहली सम्वन्धी प्रयोगो से प्राप्त परिणामो का विवेचन तभी हो सकता है जब इन दोनो प्रकार की विमाओ के पारस्परिक सम्वन्ध का मूल रूप स्पष्ट हो।

उद्दीपक देहली

प्राचीन मनोभौतिक शास्त्रियो के अनुसार उद्दीपक देहली किसी भौतिक विमा का वह विन्दु है जिसके ऊपर वाले विमा के मूल्य सर्वदा सवेदना अथवा प्रतिक्रिया उत्पन्न करने मे समर्थ नही होते हैं। वैसे तो मनोभौतिकी मे इसकी गणना साख्यिकी के माध्यम से की जाती है। इसीलिए सक्रियात्मक रूप से उद्दीपक देहली वह उद्दीपक परिमाण है जिसके उपस्थित होने पर 50 प्रतिशत बार सवेदना उत्पन्न हो जाती है। दूसरे शब्दो मे उद्दीपक देहली वह उद्दीपक मूल्य है जिससे प्रतिक्रिया उत्पन्न हो जाने की सम्भावना है। सभी प्रकार की सवेदनाओ के क्षेत्र मे उद्दीपक देहली के माप अनेको प्रयोगो से प्राप्त है। उनकी गणना और उद्धरण यहाँ अनावश्यक है क्योकि इनका मूल्य उतना महत्वपूर्ण नही है जितना कि मनोभौतिक शास्त्रियो द्वारा ज्ञात की हुई विशेपताएँ।

प्राचीन मनोभौतिक शास्त्रियो के अनुसार किसी भी सवेदना के क्षेत्र मे उद्दीपक देहली एक विचलनशील उद्दीपक मूल्य है। ग्राहकेन्द्रियो को प्रभावित करने वाले उद्दीपक अन्तर्गामी स्नायुओ मे आवेग क्रम उत्पन्न करते है जिनके कारण मस्तिष्क केन्द्रो मे क्रिया उत्पन्न होती है। इस क्रिया की विमाएँ उद्दीपन वल, ग्राहक सवेदनशीलता, अन्तर्वाही स्नायुओ की दक्षता और मस्तिष्क मे होने वाली क्रियाओ के स्तर पर निर्भर करती है। यदि मस्तिष्क केन्द्र मे उद्दीपक द्वारा उत्पन्न क्रिया एक निश्चित न्यूनतम विमा से अधिक है तो प्रयोज्य को उस प्रभाव का आभास होता है और वह 'हाँ' की प्रतिक्रिया करता है, किन्तु उस न्यूनतम विमा से कम होने पर उस प्रभाव का आभास नही होता है और प्रयोज्य 'नही' की प्रतिक्रिया देता है। 'हाँ' की प्रतिक्रिया उत्पन्न कराने वाला उद्दीपक ही उस प्रयास पर उद्दीपक देहली है। ऐसी उद्दीपक देहलियां एक प्रयास से दूसरे प्रयास पर परिवर्तित हो जाती है क्योकि मस्तिष्क मे उद्दीपक द्वारा उत्पन्न प्रभाव को प्रभावित करने वाले अन्य कारक यादृच्छिकी रूप से न्यून और अधिक होते रहते है। परिणामस्वरूप अनेक प्रयासो पर प्राप्त क्षणिक उद्दीपक देहलियो का मूल्य भी न्यून और अधिक होता रहता है। प्राचीन मनोभौतिक शास्त्रियो के अनुसार इन क्षणिक रूप से प्राप्त देहलियो का

---

1 Pitch 2 Loudness

वितरण 'प्रकृत वितरण वक्र' के समान होता है। इस वितरण का औसतमान ही सर्वाधिक विशिष्ट उद्दीपक देहली है।

भिन्नता देहली

प्राचीन मनोभौतिक शास्त्रियो ने प्रायोगिक आधार पर यह निश्चित किया कि उद्दीपक देहली की तरह भिन्नता देहली भी विचलनशील होती है। सक्रियात्मक रूप से किसी उद्दीपक से किसी उद्दीपक की वह भिन्नता जो 50 प्रतिशत वार प्रत्यक्ष हो जाती है भिन्नता देहली है। किसी किसी प्रयोगिक प्रक्रियाओ मे 75 प्रतिशत वार प्रत्यक्ष भिन्नता ही देहली मानी जाती है। इस भिन्नता देहली के परिमाणात्मक स्वरूप की व्याख्या वेवर ने 19 वी शती के मध्य मे की थी जिसको आज वेवर नियम के नाम से जाना जाता है।

वेबर-नियम—वेवर ने अपने अनेक प्रयोगो के आधार पर भिन्नता देहली के स्वरूप के वारे मे यह नियम स्थापित किया कि सवेदना मे लघु किन्तु समान रूप से प्रत्यक्ष वृद्धि उद्दीपक मूल्य आनुपातिक वृद्धि के समानान्तर होती है। सवेदना अथवा *प्रतिक्रिया मे समान्तराली परिवर्तन उत्पन्न करने के लिये आवश्यक है कि उद्दीपक* मूल्य मे निश्चित समानुपात से परिवर्तन किया जाए। जव सवेदना मे किसी स्थिर मात्रा मे अभिवृद्धि होती है, तव यह निश्चित है कि उद्दीपक मूल्य मे किसी निश्चित प्रतिशत की वृद्धि हो जाती है। समीकरण के रूप मे वेवर का नियम है —

$$\triangle \text{ एस} = \text{के एस} \quad \text{अथवा} \quad \frac{\triangle \text{ एस}}{S} = K$$

यहाँ डेल्टा एस का तात्पर्य है उद्दीपक मूल्य मे वह अभिवृद्धि जिसके कारण सवेदना मे 50 प्रतिशत प्रयासो पर अभिवृद्धि प्रत्यक्ष होती है। 'के' का तात्पर्य है स्थिर समानुपात। के एस का अर्थ है उद्दीपक मूल्य का स्थिर समानुपात। यह स्थिर समानुपात किसी प्रयोज्य के लिए किसी उद्दीपन मूल्य पर निश्चित प्रयोग दशाओ मे स्थिर होता है। इस स्थिर समानुपात को वेवर समानुपात का नियम भी कहते हैं। कुछ प्रख्यात वेबर समानुपात भी दिए गए है।

तारत्व	1/333
दवाव	1/77
चमक	1/62
उठाए गए भार	1/53
स्वर प्रवलता	1/11

फेकनर का नियम—फेकनर ने वेबर-नियम की सत्यता को स्वीकार करते हुए उसे परिशुद्ध परिमाणात्मक स्वरूप दिया। वेवर नियम की वैधता के साथ उसने यह भी माना कि किसी सवेदना मे लघुतम किन्तु प्रत्यक्ष वृद्धि एक भिन्नता देहली के वरावर होती है। इन अभिग्रहो के साथ फेकनर अपने प्रयोगो के माध्यम से नीचे दिए गए निष्कर्ष पर पहुँचा।

आर=सी लाग एस

यहाँ आर किसी भी सवेदना अथवा प्रतिक्रिया का द्योतक है। एस उद्दीपक का लघुरूप है। फेकनर सवेदनाओ के सदर्भ मे उद्दीपक को निरपेक्ष देहली के वहुको[1] के रूप मे मापनीय मानता था। एस ओ उद्दीपक देहली का मूल्य है। $एस_1$ उद्दीपक देहली से एक भिन्नता देहली ऊपर, $एस_2$ का मूल्य $एस_1$ से इसकी एक भिन्नता देहली ऊपर है। इस प्रकार $एस_{एन}$ का मूल्य $एस_{एन-1}$ से एक भिन्नता देहली ऊपर होगा। नीचे इसी को सूत्र रूप मे दिया गया है।

$एस_0$ = भिन्नता देहली, $एस_1 = एस_0 + 1$ भिन्नता देहली

$एस_2 = एस_1 + 1$ भिन्नता देहली, $एस_{एन} = एस_{एन-1} + 1$ भिन्नता देहली

फेकनर के अनुसार भिन्नता देहली किसी भी उद्दीपक का एक स्थिर समानुपात है। इसके अनुसार सवेदना मे अभिवृद्धि समान होती है जबकि उद्दीपक मे वृद्धि समानुपातिक चरणो मे होती है। $एस_1/एस = एस_2/एस_1 = एस_3/एस_2 = एस_{एन}/एस_{एन-1}$ इत्यादि सवेदना मे समान वृद्धि के समानान्तर चलते हैं। इस प्रकार सवेदना और उद्दीपक का सम्वन्ध लागरिथमिक होता है।

वेवर-फेकनर नियम सभी प्रकार की उद्दीपक विमाओ के मध्यवर्ती क्षेत्र मे पर्याप्त रीति से वैध उतरते हैं। वहुत निर्वल और वहुत प्रवल उद्दीपको के क्षेत्र मे इस नियम की उपादेयता नही के वरावर पाई गई है। इसीलिए फुलर्टन और कैटेल (1892) ने वर्गमूल नियम का तथा गिलफर्ड (1932) ने एन्थ पावर नियम का प्रतिपादन किया। स्टिवेन्स (1957) ने वेवर-फेकनर नियम की आलोचना अपने प्रयोगिक निष्कर्षों के आधार पर वडी प्रभावशाली रीति से की। उसने वताया कि प्रत्यक्षीकरण के प्रसग मे उद्दीपक विमाएँ दो प्रकार की होती है—प्रोथेटिक और मेटाथेटिक। प्रोथेटिक विमाओ के अन्तर्गत दैहिक स्तर पर प्रयोगात्मक प्रक्रम की मध्यस्थता के कारण उद्दीपक मूल्यो मे विभेद न होता है। दैहिक स्तर पर स्थानापन्न प्रक्रमो की मध्यस्था के आधार पर होता है। तारत्व प्रत्यक्षीकरण मेटाथेटिक विमा की विशेपता का परिणाम होता है। स्टिवेन्स के अनुसार इन दोनो प्रकार की विमाओ मे मौलिक अन्तर होने के कारण दोनो के लिए एक ही नियम वैध नही हो सकता। उसके अनुसार जव मेटाथेटिक विमा पर भिन्नता देहलियाँ आनुभविक रूप से सतुलित होती है, तव भिन्नता देहली के सकलन पर आधारित सावेदिक मापनियाँ प्रचुर वैधता प्राप्त करती हैं। किन्तु प्रोथेटिक विमाओ के लिए यह नियम लागू नहीं होता।

सकेत सज्ञापन सिद्धान्त

गत अनुभाग से स्पप्ट होता है कि प्राचीन मनोभौतिक शास्त्रियो ने यह

---

1 Multiples

सिद्ध किया कि संवेदना का मापन किया जा सकता है किन्तु उद्दीपक तथा भिन्नता देहलियों के मापन की जिन विधियों का विकास हुआ उनकी सहायता से देहलियों का परिशुद्ध मापन नहीं किया जा सका। हम यह देख चुके हैं कि प्रत्येक प्रयास पर प्राप्त क्षणिक देहली उद्दीपक मूल्य से प्रभावित होने के अतिरिक्त अन्य कारकों से भी प्रभावित होती है। उन प्रभावों को परिशुद्ध देहली से पृथक करने की क्षमता प्राचीन मनोभौतिकी विधियों में नहीं थी। परिणामस्वरूप प्राचीन मनोभौतिक शास्त्रियों ने उन अन्य कारकों के प्रभावों को नियन्त्रित करने की विधायें विकसित कर यह प्रतिपादित किया कि देहलियाँ विचलनशील होती हैं। इसीलिए इन लोगों ने सांख्यिकीय रीति से देहलियों की परिभाषा की। गत पृष्ठों में यह भी स्पष्ट हो चुका है कि देहलियों के मापन में प्राचीन मनोभौतिकी की विधियों के अनुप्रयोग के कारण कई प्रकार की त्रुटियाँ—आदत त्रुटि, पूर्वानुमान त्रुटि, गति और स्थान त्रुटियाँ, काल त्रुटि इत्यादि—भी देहली मूल्यों को प्रभावित करती हैं। परिणामस्वरूप देहलियों का परिशुद्ध मापन नहीं हो पाता है।

गत दो दशकों में मूल मनोभौतिकी समस्याओं का प्रयोगिक अध्ययन अत्यन्त नियन्त्रित रीति से हुआ है और उसके परिणामस्वरूप मनोभौतिकी में एक नयी प्रयोगिक सैद्धान्तिक धारा का अभ्युदय हुआ है। इस धारा के प्रवर्तक एम० आई० टी० के स्वेट्स तथा उनके सहयोगी हैं। इन्होंने जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है उसे आज मनोविज्ञान में संकेत संज्ञापकता सिद्धान्त[1] अथवा संकेत संज्ञापकता सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है। इस सिद्धान्त के संदर्भ में प्रयोगिक कार्य करने वाले शोधकर्त्ताओं ने प्राचीन मनोभौतिकी विधियों और नियमों की न्यूनताओं की ओर संकेत कर संवेदनशीलता का मापन नई विधियों के माध्यम से किया है। स्वेट्स (1958) ने इंगित किया कि प्राचीन मनोभौतिकी विधियों का स्वरूप ऐसा है कि प्रयोज्य मात्र उद्दीपक का प्रत्यक्षीकरण कर ही प्रतिक्रिया नहीं करता बल्कि प्रत्येक प्रयोज्य अपनी प्रतिक्रिया करने के लिए अपना मापदण्ड भी निर्मित कर उपयोग में लाता है। प्राचीन मनोभौतिकी में इस मापदण्ड का कोई मापन नहीं होता है। इस प्रकार उद्दीपक देहली मूल्य मात्र संवेदनशीलता का ही नहीं अपितु प्रयोज्य के प्रतिक्रिया-मापदण्ड का भी सूचक है।

अपने संकेत संज्ञापकता सिद्धान्त में स्वेट्स इत्यादि ने (1958) संवेदनशीलता और प्रतिक्रिया मापदण्ड[2] में भेद किया है। इनके अनुसार किसी भी व्यक्ति द्वारा की गई विभेदन-प्रतिक्रिया ये दोनों कारण निर्धारित करते हैं। प्रतिक्रिया मापदण्ड को भी प्रभावित करने वाले अनेक कारक हैं। इन कारकों में प्रयोज्य के अभिप्रेरण स्तर, किसी प्रयास पर उद्दीपक की उपस्थित होने की सम्भावना का ज्ञान और प्रतिक्रिया से उत्पन्न लाभ और हानि की मात्रा प्रमुख है। इन मनोवैज्ञानिकों ने

---

1 Signal detection theory 2 Response criterion

यह प्रयत्न किया है कि सवेदनशीलता के मापन से प्रतिक्रिया मापदण्ड के प्रभाव को पृथक कर उद्दीपक और सवेदनशीलता के सम्बन्ध का स्वरूप निरूपण किया जाए। इस प्रयत्न के परिणामस्वरूप सवेदनशीलता मापन के क्षेत्र मे अनेक सबोध एव तथ्य उत्पन्न हुए हैं।

उद्दीपक देहली, मूलत सकेत सज्ञापन के रूप मे

सकेत सज्ञापन सिद्धान्त का प्रथम अभिग्रह है कि उद्दीपक देहली की समस्या मूलत सकेत सज्ञापन की समस्या है। कल्पना कीजिए कि किसी प्रयोज्य की उद्दीपक देहली का मापन न्यूनतम उद्दीपक परिवर्तन विधि से किया जा रहा है। किसी भी प्रयास पर प्रयोज्य एकाग्रचित्त होकर उद्दीपक के घटित होने की प्रतीक्षा करता है। इस प्रतीक्षा की तथा उद्दीपको के उपस्थित होने की अवधि मे प्रयोज्य और उसका केन्द्रीय स्नायुसस्थान निष्क्रियता की अवस्था मे नही होते। उनमे किसी न किसी प्रकार की क्रियाएँ चलती रहती है। साथ ही साथ परिवेशीय उद्दीपको से भी प्रयोज्य की ज्ञानेन्द्रियो को उद्दीपन प्राप्त होता रहता है। तात्पर्य यह है कि प्रयोज्य को प्रयोगकर्त्ता द्वारा प्रस्तुत उद्दीपक अन्य पृष्ठ भूमिगत उद्दीपनो तथा स्नायविक क्रियाओ के सदर्भ मे प्राप्त होता है। इन पृष्ठ भूमिगत उद्दीपनो से प्रयोज्य की एकाग्रता भग्न होती है। अत यह कहना उचित होगा कि प्रयोज्य के लिए इस 'कोलाहल'[1] मे प्रयोगकर्ता द्वारा प्रस्तुत उद्दीपक को सज्ञापित करना होता हे।

उपरोक्त स्थिति के सम्बन्ध मे सकेत सज्ञापन सिद्धान्त का एक अभिग्रह यह है कि यद्यपि प्रायोगिक स्थिति मे कोलाहल (को) और सकेत उद्दीपक (स) प्रत्यक्षत स्थिर होते है तथापि उनका सावेदिक प्रभाव एक प्रयास से दूसरे प्रयास पर परिवर्तित होता रहता है। इनकी परिवर्तनशीलता का वितरण 'प्रकृत-वितरण-वक्र' के
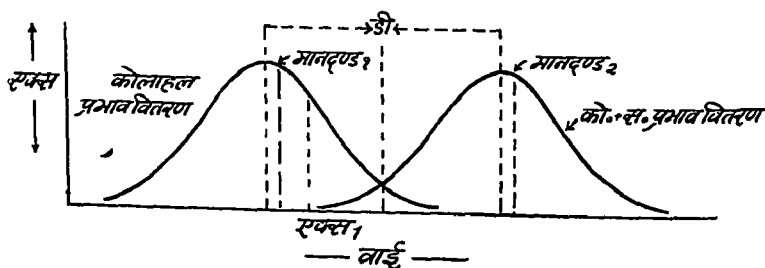
चित्र सख्या 2 . 4

रूप मे होता है। इस सिद्धान्त का दूसरा अभिग्रह है कि कोलाहल तथा कोलाहल-सकेत[2] वितरण एक ही विमा पर घटित होने के रूप मे माने जा सकते है। स्पष्ट

1 Noise 2 Noise signal

है कि दोनो का विचलन एक ही होता है। इसका स्पष्टीकरण चित्र सख्या 2 4 से स्पष्ट होता है। इमी वितरण मे इस सिद्धान्त के समर्थक सकेत सज्ञापकता अथवा उद्दीपक विभेदनशीलता के माप की परिभाषा देते है। इनके अनुसार सकेत सज्ञापकता उपरोक्त दो वितरणो के औसत मानो के बीच का अन्तर है। इसको प्राविधिक भाषा मे डी प्राइम (d') की सज्ञा दी गई है।

प्रतिक्रिया मापदण्ड

जब सकेत सज्ञापन प्रयोग मे प्रयोज्य के सम्मुख प्रयोगकर्त्ता सकेत उपस्थित करता है तो उससे तथा कोलाहल के कारण मस्तिष्क मे किसी प्रकार का केन्द्रीय प्रभाव उत्पन्न होता है। प्रयोज्य को यह निर्णय करना पडता है कि वह केन्द्रीय प्रभाव सकेत के कारण है अथवा मात्र कोलाहल के कारण है। इस निर्णय के लिए प्रयोज्य केन्द्रीय प्रभाव के किसी निश्चित प्रभाव को मापदण्ड के रूप मे चुन लेता है। फलत जिस प्रयास मे केन्द्रीय प्रभाव उस मापदण्ड से कम होता है, 'नहीं' की प्रतिक्रिया देता है। ऊपर दिए हुए चित्र के अनुसार मान लीजिए केन्द्रीय प्रभाव की मात्रा एक्स है। यदि प्रयोज्य का मापदण्ड$_1$ है तो वह हाँ की प्रतिक्रिया देगा किन्तु मापदण्ड$_2$ होने पर 'नही' की प्रतिक्रिया करेगा। स्पष्ट है कि मापदण्ड$_1$ की तुलना मे मापदण्ड$_2$ कठोर है। ऐसे मापदण्ड वाला प्रयोज्य इतना सावधान रहेगा कि सकेत के प्रस्तुत न होने पर 'हाँ' की प्रतिक्रिया कभी नही करेगा। निम्नस्तरीय मापदण्ड वाला प्रयोज्य सकेत के उपस्थित न होने पर भी 'हाँ' की प्रतिक्रिया देता है। अत इन दो प्रयोज्यो के सकेत सज्ञापन का स्तर भिन्न-भिन्न होता है। ऐसा इसलिए नही होता है कि दोनो की सवेदनशीलता मे अन्तर है, अपितु इसलिए कि दोनो की प्रतिक्रिया के मापदण्ड स्तर मे अन्तर है। इस प्रसग मे यह जानकारी आवश्यक है कि मात्र केन्द्रीय प्रभाव के आधार पर ही प्रतिक्रिया हो इसका अभीष्ट मापदण्ड[1] क्या हो।

सकेत सज्ञापन मे अभीष्ट मापदण्ड का सबोध महत्वपूर्ण है क्योकि इसी के आधार पर प्रयोज्य की परिशुद्ध सवेदनशीलता का माप किया जाता है। अभीष्ट मापदण्ड को 'सभाव्यता समानुपात'[2] के माध्यम से परिभाषित किया जाता है। सभाव्यता समानुपात दो भिन्न परिकल्पनाओं के अन्तर्गत किसी होने वाली घटना की भिन्न सभावनाओ का समानुपात है। कल्पना कीजिए कि आपके पास दो सिक्के है— एक सामान्य और दूसरा टेढा। सीधे वाले को उछालने पर सिर या पृष्ठ भाग होने की सभावना 5 है, किन्तु टेढ़े सिक्के के उछालने पर, मानलिया जाए कि, सिर ऊपर होने की सभावना 8 है और पृष्ठ भाग होने की सभावना 2 है। जब इन दोनो सिक्को मे से एक सिक्का यादृच्छिक रीति से चुनकर उछाला गया और सिक्के का सिर ऊपर आ गया। क्या सभावना है कि यह सिक्का सीधा है या टेढा। इसी सभा-

1 Optimal criterion 2 Likelihood ratio

वना को सभाव्यता समानुपात कहते है। उदाहरण के लिए प्रस्तुत उदाहरण मे सभाव्यता समानुपात 8/5=1 6 है। इस प्रकार अभीष्ट मापदण्ड एक साख्यि-कीय सवोध है जिसकी गणना सकेत सज्ञापन प्रयोग मे प्राप्त प्रदत्तो के आधार पर की जा सकती है।

आदर्श प्रयोज्य[1]

उपरोक्त अभिग्रहो के अनुसार प्रयोज्य अपने प्रेक्षणो को सही-सही दे सके, आवश्यक है कि वह कोलाहल तथा कोलाहल-सकेत वितरणो की पूर्व निर्धारित सभावना तथा हॉ और नही प्रतिक्रिया से उत्पन्न परिणामो से पूर्ण परिचित हो। ऐसा इसलिए आवश्यक है कि सामान्य प्रयोज्य इन पक्षो से अपरिचित होने के कारण प्रयोग मे अपेक्षित तत्परता प्रदर्शित नही कर पाता है और एक प्रयास से दूसरे प्रयास समूहो मे यादृच्छिक रीति से अपने प्रतिक्रिया मापदण्ड को वदलता रहता है। इतना अवश्य है कि आदर्श प्रयोज्य की अपरिहार्यता को सभी मनोवैज्ञानिक नही स्वीकारते।

सकेत-सज्ञापन मे मनोभौतिकी की प्रयोग प्रक्रियाएँ

सकेत सज्ञापन अन्वेपणो मे अनेक प्रयोग-प्रक्रियाओ का प्रयोग किया गया हे। वहुधा पूर्णरूपेण प्रशिक्षित प्रयोज्य को लेकर उसके समक्ष सकेत उद्दीपक (दृष्टिगत् अथवा श्रवणगत्) सुनिश्चित अन्तरालो की अवधि मे प्रस्तुत किए जाते है। अन्तरालो की सीमाएं सुस्पष्ट रीति से प्रयोज्य के लिए परिभापित होती है। किसी अन्तराल मे सकेत प्रस्तुत किया जाता हे और किसी अन्तराल मे नही। सभी अन्तरालो की अवधि मे एक पूव निर्धारित स्तर का कोलाहल प्रयोज्य के समक्ष निरन्तर उपस्थित रहता हे। प्रयोज्य अपेक्षित प्रतिक्रियाएँ अपने प्रेक्षणो के आधार पर देता रहता है। इस सामान्य प्रक्रियात्मक रूपरेखा के अन्तगत विविध प्रकार की विशिष्ट प्रयोग-प्रक्रियाएँ है जिनका उपयोग मनोवैज्ञानिक अपने प्रयोग के उद्देश्यानुसार करता है। कुछ ऐसी प्रक्रियाएँ यहाँ वर्णित हैं —

1 **हॉ-नहीं प्रयोग प्रक्रिया**—इस प्रक्रिया मे प्रयोज्य को ज्ञात रहता है कि किसी-किसी मध्यान्तर मे मात्र कोलाहल ही प्रस्तुत रहेगा। जवकि किसी-किसी मध्यान्तरो मे कोलाहल सकेत दोनो उपस्थित किए जायेंगे। कोलाहल-सकेत समानुपात भी पूर्व निर्धारित रहता है। कोलाहल तथा कोलाहल-सकेत का अनुपात कुछ भी हो सकता है। प्रयोज्य का काय इस प्रक्रिया मे यह वताना होता है कि किस अन्तराल मे सकेत था और किसमे नही। प्रत्येक अन्तराल के वाद उसे हॉ अथवा नही की प्रतिक्रिया देनी पडती है। इस प्रकार की प्रक्रिया से चार सम्भव परिणाम प्राप्त होते है। ये परिणाम नीचे की सारिणी मे दिए गए है। इस सारिणी से स्पष्ट है कि जिस अन्तराल (प्रयास) मे कोलाहल के साथ-साथ सकेत उपस्थित किया जाता हे, उस प्रयास पर प्रयोज्य दो प्रकार की प्रतिक्रियाएँ कर सकता है। 'सही हॉ की प्रतिकिया और

---
1 Ideal observer

'गलत नही' की प्रतिक्रिया। किन्तु जिस अन्तराल मे मात्र कोलाहल ही प्रस्तुत किया जाता है, उसमे भी प्रयोज्य दो प्रकार की प्रतिक्रियाएँ दे सकता है। गलत हाँ की प्रतिक्रिया और सही नही की प्रतिक्रिया। इस प्रक्रिया मे प्रत्येक प्रयोज्य से अगणित प्रयास कई सत्रो मे कराए जाते है। प्रयास सत्र कई दिनो मे वितरित रहते है। प्रत्येक सत्र एक या दो घटो से भी अधिक के हो सकते है। इस प्रक्रिया से प्रयोज्य की सवेदनशीलता (d') तथा प्रतिक्रिया मापदण्ड दोनो का मापन हो सकता है।

सारिणी सख्या 2 13

'हाँ-नही' प्रक्रिया मे प्राप्त चार प्रकार के परिणाम

उद्दीपक	प्रतिक्रियाएँ	
	हाँ	नही
कोलाहल सकेत	'सही हा" अनुपात (स/स० को) = सही हाँ / स० को० प्रयास	"गलत नही" अनुपात (को/स० को०) = गलत नही / स० को० प्रयास
कोलाहल	"गलत हाँ" अनुपात (स०/को) = गलत हाँ / को० प्रयास	"सही नही' अनुपात (को/को०) = सही नही / को० प्रयास

2 **मूल्य निर्धारण प्रक्रिया**[1]—इस विधि मे यह अभिग्रह सन्निहित है कि प्रयोज्य एक ही साथ एक से अधिक मापदण्डो के आधार पर सकेत सज्ञापन कर सकता है। इस विधि की प्रक्रिया मूलत 'हाँ और नही' प्रक्रिया के समान ही होती है। किन्तु इसमे प्रयोज्य को अपनी प्रक्रियाओ की वैधता पर अपने विश्वास-स्तर को भी बताना पडता है। प्रयोज्य अपने विश्वास-स्तर को मूल्य निर्धारण मापनी की सहायता से व्यक्त करता है। साथ ही साथ पूर्ण प्रशिक्षित प्रयोज्यो (आदर्श) को प्रतिक्रिया मापदण्ड मे विविध स्तरीय कठोरता अपनाने का भी निर्देश दिया जा सकता है। ऐसा मात्र मौखिक निर्देश से किया जाता है, अथवा प्रतिक्रिया से लाभ और हानि की मात्रा को नियन्त्रित करके। मान लीजिए कि प्रयोज्य 'हाँ-नही' प्रक्रिया से किए जाने वाले प्रयोग मे भाग ले रहा है। उसने किसी प्रयास पर हाँ की प्रतिक्रिया दी। उसके बाद निर्देशानुसार उसे यह भी बताना पडता है कि वह कितना आश्वस्त है कि उसकी प्रतिक्रिया सही है। उसके लिए उसे नीचे दी गई मापनी के अनुसार अपने विश्वास स्तर को प्रकट करना पडता है।

1 Rating method

5 पूर्णत आश्वस्त	(80 से 100 प्रतिशत)
4 पर्याप्त आश्वस्त	(60 से 79 ,,)
3 आश्वस्त	(40 से 59 ,,)
2 किंचित आश्वस्त	(20 से 39 ,,)
1 अनिश्चित	(0 से 19 ,,)

इस प्रकार की प्रयोग प्रक्रिया से प्राप्त प्रदत्त के आधार पर सकारक अभिलक्षण वक्रो[1] का निर्माण किया जा सकता है।

3 बाधित वरण प्रक्रिया—इस प्रक्रिया मे प्रयोगकर्त्ता निश्चित सख्या के मध्यान्तरो मे से किसी एक मध्यान्तर मे कोलाहल के साथ सकेत और अन्य मध्यान्तरो मे मात्र कोलाहल प्रस्तुत करता है। प्रयोज्य उस मध्यान्तर को बताने का प्रयत्न करता है जिसमे उसे सकेत की सवेदना होती है। इस प्रक्रिया मे प्रतिक्रिया मापदण्ड का उतना महत्व नही होता है। क्योकि प्रयोज्य को सभी प्रयासो मे किसी न किसी मध्यान्तर को चुनना पडता है। इसमे सवेदनशीलता (d') का मापन सही वरणो के अनुपात के आधार पर किया जाता है।

4 मुक्त प्रतिक्रिया प्रक्रिया[2]—इस विधि मे प्रयोज्य के लिए एक निरन्तर कोलाहल प्रस्तुत किया जाता है। इस निरन्तर कोलाहल की अवधि मे यादृच्छिक रूप से निर्धारित समयो पर प्रस्तुत कर दिये जाते हैं। दो सकेतो के बीच की कुछ अवधियाँ छोटी और कुछ अवधियाँ बडी होती है। सकेतो के प्रस्तुतीकरण का वितरण प्रयोज्य को ज्ञात नही होता है। उसे इतना बताया जाता है कि सकेत यादृच्छिक रूप से अब कभी भी प्रस्तुत किये जा सकते है। यह अवश्य बता दिया जाता है कि कुछ सकेत छोटी अवधि की दूरी पर और कुछ बडी अवधि की दूरी पर प्रस्तुत हो सकते हैं। प्रयोज्य को सकेत सुनाई पडने पर एक कुजी दबाकर अपनी प्रतिक्रिया देनी पडती है। इस प्रकार एक प्रयोज्य से कई सत्रो मे अनेक प्रयास समूह करा लिए जाते हैं।

उपरोक्त विधियाँ प्रमुख है। इनके अतिरिक्त अनेक और प्रयोग प्रक्रियाएँ हैं जिनका उपयोग सकेत-सज्ञापन के अनेक पक्षो का अध्ययन करने के लिए किया जाता है। अब प्रश्न उठना है कि सकेत सज्ञापन सिद्धान्त के अभिग्रहो के प्रसग मे इन विधियो के उपयोग से सकेत सज्ञापकता का मापन किस प्रकार किया जाता है और इन मापनो से सवेदनशीलता के सम्बन्ध मे क्या जानकारी प्राप्त हुई है।

ग्रहीता सकारक अभिलक्षण

सकेत सज्ञापन प्रयोग से प्राप्त प्रदत्तो के आधार पर प्रयोज्य द्वारा अनुप्रयुक्त मापदण्ड के स्थान तथा उसकी सावेदिक क्षमता का मूल्याकन किया जा सकता है

1 Receiver operating characteristic curves 2 Free response procedure

चाहे वह जिस प्रकार के मापदण्ड का उपयोग कर प्रतिक्रिया किए हो। प्रयोज्य की प्रतिक्रियाओ के मूल्याकन के परिणामस्वरूप दो मूलभूत सख्यात्मक फल प्राप्त होते हैं। ये दोनो सोपाधिक सभावनाएँ है। पहला, 'हाँ' प्रतिक्रियाओ का वह अनुपात जो को० स० के घटित होने पर आश्रित है तथा दूसरा 'हाँ' प्रतिक्रियाओ का वह अनुपात जो मात्र कोलाहल की उपस्थिति मे प्राप्त होता है। साख्यिकी की भापा मे सूत्र रूप से इन्हे अधोलिखित प्रकार से व्यक्त किया जाता है।

PSN (A) तथा PN (A)

(पी=सभावना, एन=कोलाहल, एस=सकेत, ए=चित्र सख्या 2 4 का वह क्षेत्र जिसमे प्रयोज्य हाँ की प्रतिक्रिया देता है, पी एन(=कोलाहल-सकेत अनुपात)

इन दो सख्याओ के आधार पर प्रयोज्य की सवेदनशीलता और उसके मापदण्ड को निर्धारित किया जा सकता है।

अब मान लीजिए कि प्रयोगकर्त्ता द्वारा पूर्व निर्धारित कोलाहल सकेत सम्भावनाओ को घटा-बढा कर अथवा प्रतिक्रियाओ से उत्पन्न लाभ हानि को घटा बढा कर प्रयोज्य के प्रतिक्रिया मापदण्डो को घटा बढा दिया जाता है। स्पष्ट है कि विभिन्न मापदण्डो पर PN (A) और PSN (A) की मात्रा भी भिन्न हो जाएगी। इन सभावनाओ की भिन्न मात्राओ से ग्रहीता सकारक अभिलक्षण वक्र बनाया जाता है। इस प्रकार के किसी भी वक्र पर के सभी मूल्य एक ही सवेदनशीलता (d') से उत्पन्न होते हैं। इस सवेदनशीलता का मान अधोलिखित सूत्र से ज्ञात किया जाता है।

$$d' = \frac{MfSN\ (n) - MfN\ (x)}{dfn\ (x)}$$

(M=औसतमान, fSN=कोलाहल-सकेत का घनत्व प्रकार्य, (x)= मापदण्ड मूल्य, fN=कोलाहल का घनत्व प्रकार।)

सवेदना-मापन के क्षेत्र मे मनोभौतिकी की मूल समस्या सकेत सज्ञापन सिद्धान्त के मौलिक सवोध है जो यहाँ दिए जा सके है। इस सिद्धान्त के आधार पर किए गए प्रयोगो से अनेक उपयोगी और विश्वसनीय परिणाम निकले है। यह अब निर्विवाद रूप से सिद्ध हो चुका है कि उद्दीपक देहली अथवा सकेत सज्ञापन के प्रयोगो मे सावेदिक प्रक्रमो के साथ-साथ और प्रक्रम भी परिणामो को प्रभावित करते हैं। इस सिद्धान्त ने इन सभी असावेदिक कारको को मापदण्ड के अन्तर्गत समाविष्ट कर लिया है। मापदण्ड का विचलनशीलता के प्रभाव को विशिष्ट प्रयोगिक पद्धतियो से प्राप्त प्रदत्तो एव साख्यिकीय विश्लेपण के आधार पर पृथक कर परिशुद्धतर सवेदनशीलता का मापन किया जा सकता है। सकेत सज्ञापन सिद्धान्त की यह प्रमुख देन है। वैसे इस सिद्धान्त का अनुप्रयोग बडी तीव्र गति से प्रत्यक्षीकरण, उद्दीपक सामान्यीकरण, अनुबधन तथा विभेदन अधिगम मे होने लगा है और

मनोवैज्ञानिक प्रक्रमो के मापन मे इस सिद्धान्त के अनुपयोग से और अधिक परि-शुद्धता की सभावना बढ गई है।

सहायक ग्रन्थ सूची

कैनलैण्ड, डगलस, के० — साइकालोजी द एक्सपेरिमेण्टल अप्रोच, मैग्राहिल्ल, 1968

डिअमेटो, एम० आर० — एक्सपेरिमेण्टल साइकालोजी, मैग्राहिल्ल, 1970

गिलफर्ड, जे० पी० — साइकोमेट्रिक मेथड्स, मैग्राहिल्ल, 1954

स्टिवेन्स, एस० एस० — हैण्डबुक आव एक्सपेरिमेण्टल साइकालोजी, जान विली, 1951

स्वेट्स, जान — सिगनल डिटेक्शन एण्ड रिकाग्निशन बाई ह्यूमन आवजर्वर, जान विली, 1964

ग्रीन, डी० ए० तथा स्वेट्स, जे० ए० — सिगनल डिटेक्शन थियरी एण्ड साइकोफिजिक्स, जान विली, 1966

वुडवर्थ, आर० एस० तथा श्लासवर्ग, — एन एक्सपेरिमेण्टल साइकालोजी, होल्ट 1954

अध्याय 3

संवेदनशीलता-दृष्टि एवं श्रवण

खण्ड (क)–दृष्टि-सवेदनशीलता

दृष्टि-उद्दीपक

दृष्टि-सग्राहक

प्रकाश एव अन्धकार अनुकूलन

दृष्टि की तीक्ष्णता

पश्चात् प्रतिमाएँ

रग-दृश्य

रग-मिश्रण

रग-विरोध

खण्ड (ख)–श्रवण-सवेदनशीलता

श्रवण-उद्दीपक

ध्वनि की मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ

स्वरो का वर्गीकरण

श्रवण-सग्राहक

श्रवण-सिद्धान्त

ध्वनि-सीमान्त का निर्धारण

ध्वनि का स्थान-निर्धारण

श्रव्यात्मक थकान

श्रवण सम्बन्धी प्रयोगो मे नियन्त्रण

सवेदनशीलता-दृष्टि एव श्रवण

प्रायोगिक मनोविज्ञान के सदर्भ मे सवेदनशीलता के विविध प्रकारो का विश्लेपणात्मक अध्ययन नितान्त आवश्यक समझा जाता है। दृष्टि, श्रवण तथा अन्य ज्ञानेन्द्रियो से सम्बन्धित व्यापारो का प्रयोगशालीय अन्वेपण कदाचित् प्रायोगिक मनोविज्ञान के आविर्भाव से पूर्व ही प्रारम्भ हो चुका था। उन्नीसवी शताब्दी मे हुए सम्पूर्ण मनोवैज्ञानिक अनुसधानो के लगभग पचास प्रतिशत अश का सम्बन्ध सवेदनात्मक मनोविज्ञान से रहा है। इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए आधुनिक प्रायोगिक मनोविज्ञान मे सवेदनशीलता की उपेक्षा नही की जा सकती। सवेदनात्मक प्रक्रियाओ का ज्ञान प्रत्यक्षीकरण की जटिलता को समझने के लिये भी एक आवश्यक तत्व है। प्रत्यक्षीकरण की सज्ञानात्मक अनुभूति मे अतर्निहित प्रारम्भिक प्रक्रियाओ तथा उनके दैहिक सहसम्वन्धियो के विपय मे समुचित जानकारी के लिये सवेदनशीलता के विभिन्न पक्षो का वैज्ञानिक अध्ययन परम आवश्यक प्रतीत होता है। अतएव प्रस्तुत तथा अगले अध्याय मे पाच प्रकार की सवेदनशीलता के महत्वपूर्ण पक्षो पर प्रकाश डाला गया है। प्रत्येक प्रकार की सवेदना को उत्पन्न करने वाले उपयुक्त उद्दीपको, उत्तेजना को ग्रहण करने वाले सग्राहको तथा प्रमुख साम्देदनिक व्यापारो एव घटनाओ की विवेचनात्मक व्याख्या को इस दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है कि सम्पूर्ण सामग्री प्रायोगिक मनोविज्ञान के लिये उपयुक्त वनायी जा सके।

खण्ड (क)

दृष्टि-सवेदनशीलता

प्राणी का दृष्टिगत अनुभव अत्यन्त वृहद् होता है। भौतिक वैज्ञानिको, शरीर वैज्ञानिको तथा मनोवैज्ञानिको ने दृष्टि-सवेदनशीलता एव तत्सम्वन्धी उद्दीपको का विशुद्ध अध्ययन किया है। दृष्टिगत अनुभव का सम्वन्ध नेत्र से होता है और नेत्र के माध्यम से हमे प्रकाश, रगो, वस्तुओ के रूप व आकार, उनकी गति तथा दूरी के अनुभव प्राप्त होते है। अत दृष्टि-सवेदना के सदर्भ मे नेत्र की सरचना और उसकी क्रिया का समुचित ज्ञान आवश्यक है। इस कोटि की सामग्री सामान्य मनोविज्ञान की पुस्तको मे प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है। अतएव इस स्थान पर दृष्टिगत अनुभूतियो से सम्वन्धित कुछ उन्ही विशिष्ट घटनाओ एव व्यापारो पर प्रकाश डाला जायेगा जिनका अध्ययन प्रयोगात्मक मनोविज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण समझा जाता है।

दृष्टि-उद्दीपक

दृष्टि-सवेदना की उत्पत्ति प्रकाश तरगो द्वारा होती है। प्रकाश तरगें[1] किसी प्रकाश के मूल स्रोत जैसे सूर्य, सितारो या विजली के वल्व उद्भुत होती हैं। भौतिक वैज्ञानिक प्रकाश को एक विकीर्ण ऊर्जा[2] मानते है और प्रकाश की लहरो का विद्युत चुम्बकीय धारा[3] के रूप मे अध्ययन करते है। जब हम विजली की धारा किसी तार मे भेजते है, जैसे विद्युत हीटर मे, तो तार गर्म हो जाना है। इस क्रिया मे विद्युत शक्ति गर्मी मे वदल जाती है। यदि हम विद्युत की धारा को अधिक मात्रा मे तार के भीतर भेजे तो तार गर्म होकर चमकने लगता है, जैसा विजली के वल्व मे देखा जाता है। इस क्रिया मे विजली की शक्ति प्रकाश मे वदल जाती है। अत प्रकाश भी उर्जा का एक विशिष्ट रूप माना जायेगा। अधेरे कमरे मे प्रवेश करने पर कुछ दिखलाई नही पडता, परन्तु टार्च, मोमवत्ती, दीपक अथवा विजली जला लेने पर वहाँ की सारी वस्तुएं स्पष्ट दिखलाई पडने लगती है। इससे स्पष्ट होता है कि प्रकाश वह वस्तु है जिसकी सहायता से हमारी आँखे अन्य वस्तुओ को देख सकती है।

अपने मूल स्रोत से निकलकर प्रकाश या तो सीधे हमारी आखो तक पहुँचता है या पहले वह किसी अन्य वस्तु पर गिरता है और पुन परावर्तित[4] या प्रतिविंवित होकर आँख मे प्रवेश करता है। प्रकाश-तरगो का परावर्तित होना उसी प्रकार की क्रिया है जिस प्रकार कोई रवड की गेद किसी कडे धरातल पर फेंके जाने पर उछलती है। प्रकाश-तरगे एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचने मे सरल रेखा वनाती हुई चलती है। ऐसा होने के कारण ही नेत्रपटल पर वस्तुओ की सही प्रतिमाएँ[5] अंकित हो पाती है। कुछ वस्तुएँ ऐसी होती है जो प्रकाश पडने पर स्वय भी दिखलाई पडती हैं और उनसे निकल हुए प्रकाश की सहायता से हम अन्य वस्तुओ को भी देख पाते है। ऐसी वस्तुओ को प्रकाशमान[6] कहा जाता है। पानी, शीशा, सफेद धरातल, रेडियम तथा कुछ अन्य धातु प्रकाशमान वस्तु माने जाते है। इन वस्तुओ मे अपनी चमक होती है और प्रकाश पडने से इनकी दीप्ति और अधिक वढ जाती है तथा ये प्रकाश की किरणो को तुरन्त परावर्तित कर देती है। इसके विपरीत, कुछ वस्तुओ मे अपनी दीप्ति नही होती और वे प्रकाश को परावर्तित न करके उसका अवशोषण[7] कर लेती हैं। ऐसी वस्तुओ को प्रकाशहीन कहा जाता है। कोयला प्रकाशहीन[8] वस्तुओं का एक अच्छा उदाहरण है।

जब प्रकाश की तरगे अपने मूल स्रोत से चलती है तो उन्हे कई प्रकार के अवरोधों[9] का सामना करना पडता है। इन अवरोधो के फलस्वरूप प्रकाश-तरगो की गति मे मदता या उनकी दिशा मे मोड आ सकता है। इसी प्रकार कुछ अवरोध

---

1 Light Waves 2 Radiant energy 3 Electromagnetic motion 4 Reflected 5 Retinal images 6 Luminous 7 Absorption 8 Non-luminous 9 Obstacles

प्रकाश का अवशोपण कर लेते है और कुछ उसे परावर्तित कर देते है। जो वस्तुएँ प्रकाश-तरगो का अवशोपण कर लेती है वे काले धरातल की होती हे। इसके विपरीत जो वस्तुएँ प्रकाश-तरगो को परावर्तित करती हैं उनका धरातल श्वेत दिखलाई पडता है। प्रकाश की लहरें हवा, पानी, शीशे और ईथर जैसी पारदर्शी वस्तुओ मे से होकर भी निकलती ह। परन्तु लोहा, तावा, सोना तथा लकडी आदि कुछ ऐसे पदार्थ हैं, जिनमे होकर प्रकाश नही निकल पाता। ऐसे पदार्थों को अपारदर्शक कहा जाता है। परन्तु प्रकाश-तरगो का किसी पदार्थ के भीतर से निकलना उस पदार्थ की गहनता या मोटाई पर भी निर्भर करता है। जब पानी की तह मोटी हो जाती है तो प्रकाश उसके भीतर नही जा पाता। इसी प्रकार किसी अपारदर्शक वस्तु की मोटाई कम करके उसे पारदर्शक वनाया जा सकता है।

प्रकाश-तरगे विभिन्न लम्बाइयो की होती है। अनुमान है कि सबसे छोटी प्रकाश-तरग की लम्बाई 1/1000 मिली माइक्रोन और सबसे वडी तरग की लम्बाई 4000 मिली माइक्रोन होती है। परन्तु हमारी आँखें केवल लगभग 400 मिली माइक्रोन से लेकर 760 मिली माइक्रोन की लम्बाई वाली प्रकाश तरगो को ही ग्रहण कर सकने की क्षमता रखती है। दिन मे हमारी आँख लगभग 550 म्यू[1] और रात्रि मे लगभग 510 म्यू लम्बाई की प्रकाश-तरगो के प्रति अत्यधिक सवेदनशील होती है। (एक मिली माइक्रोन या म्यू एक मिली मीटर के दस लाखवें अश के वराबर होता है) श्वेत प्रकाश मे जिसका अनुभव हमे हर समय होता रहता है, सभी लम्बाइयो की लहरे सम्मिलित होती हे। छोटी लम्बाई की लहरो से वैंगनी रग का अनुभव तथा वडी लम्बाई की लहरो से लाल रग का अनुभव होता है। बीच की लम्बाई वाली तरग नीले, हरे तथा पीले रगो की सवेदनाएँ उत्पन्न करती है। 760 म्यू से अधिक लम्बी प्रकाश तरगो को इन्फ्रारेड[2] और 100 म्यू से छोटी लम्बाई की प्रकाश-तरगो को अल्ट्रा-वायलेट[3] प्रकाश कहा जाता है। ये दोनो प्रकार की प्रकाश-तरगे हमे दिखलाई नही पडती।

जिस सफेद प्रकाश का अनुभव हमे नित्य प्रति होता रहता है उसमे विभिन्न लम्बाइयो की प्रकाश-तरगें मिश्रित होती है। यदि ऐसे प्रकाश को किसी प्रिज्म[4], जो एक विशेप प्रकार का लेन्स[5] होता है, मे से निकालें तो ऐसा करने पर विभिन्न लम्बाइयो की तरगें अलग-अलग हो जाती हैं। पहले सबसे वडी लहरे, फिर उनसे छोटी और अन्त मे सबसे छोटी लहरें व्यवस्थित हो जाती है। सबसे वडी लहरो से लाल, फिर उनसे छोटी से पीला, फिर हरा, नीला तथा अन्त मे सबसे छोटी लहरो से वैंगनी रगो की उत्पत्ति होती है। रगो के इस निश्चित क्रम को वर्णक्रम[6] या रगावली कहा जाता है। चूँकि सफेद प्रकाश मे विभिन्न लम्बाइयो की प्रकाश-तरगे मिश्रित होती है, अत ऐसा प्रकाश विशुद्ध नही होता। भिन्न-लम्बाइयो की मिली-

---

1 Mu 2 Infra-red 3 Ultra-violet 4 Prism 5 Lens 6 Spectrum

जुली लहरो को विजातीय[1] प्रकाश कहा जाता है। परन्तु जब हम श्वेत तरगो को प्रिज्म के भीतर से निकालते है तो विजातीय तरगें अलग-अलग लम्बाइयो मे विभक्त हो जाती हैं और एक क्रम से व्यवस्थित हो जाती है—एक ओर 760 म्यू वाली और दूसरी ओर 400 म्यू वाली। समान लम्बाई की लहरो को सजातीय[2] प्रकाश कहते हैं। वर्णक्रम सजातीय प्रकाश-तरगो को प्रदर्शित करता है। प्रकाश-तरगे, जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है, भौतिक ऊर्जा है परन्तु उनसे उत्पन्न तरगो की सवेदनाएँ मनोवैज्ञानिक अनुभूतियाँ मानी जाती हैं।

नीचे के चित्र मे प्रिज्म तथा उसमे से होकर निकली हुई प्रकाश तरगो का वर्णक्रम के रूप मे व्यवस्थित होने की प्रक्रिया दिखलाई गई है।
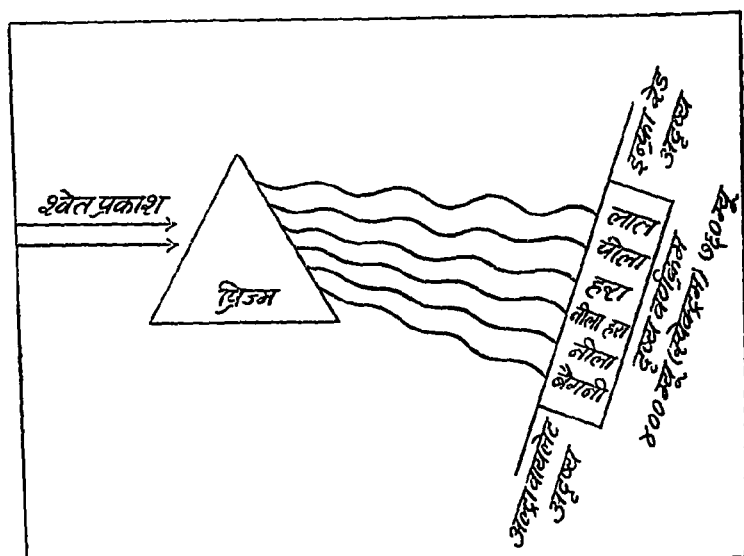
चित्र सख्या 3 1 प्रिज्म तथा वर्णक्रम (कलर-स्पेक्ट्रम)

दृष्टि-सग्राहक

प्रकाश की तरगो को ग्रहण करने, उनसे उद्दीप्त होने तथा उन्हे नाडियो द्वारा मस्तिष्क तक भेजने के मानवीय नेत्र मे अगणित ग्राहक ततु पाये जाते हैं। कदाचित नेत्र के भीतरी भाग अर्थात् नेत्रपटल[3] का निर्माण इन्ही असख्य प्रकाश के ग्राहको से हुआ है। दृष्टि-सग्राहको को भली-भाँति समझने के लिए नेत्रपटल की सरचना का ज्ञान आवश्यक है। नेत्रपटल पर दो प्रकार के दृश्य सग्राहक पाये जाते हैं, जिन्हे शकु[4] और दण्ड[5] कहा जाता है। शकुओ के माध्यम से तेज प्रकाश और रगो की

1 Heterogenous 2 Homogenous 3 Retina 4 Cones 5 Rods

सवेदना होती है, जबकि दण्डो के माध्यम से मद् प्रकाश और अन्धकार का ज्ञान होता है। मनोविज्ञान मे इस सिद्धान्त को, कि नेत्रपटल पर प्रकाश की सवेदना उत्पन्न करने वाले दो भिन्न सग्राहक शकु और दण्ड पाये जाते है, द्वैधता सिद्धान्त या डुप्लिसिटी थियरी[1] कहते है।

प्रकाश सग्राहक (शकु)

सम्पूर्ण रगीन दृश्यो का ज्ञान शकुओ द्वारा होता है। शकु रगो तथा प्रकाश के प्रति सवेदनशील होते है और इसलिए रगीन दृश्यो द्वारा उद्दीप्त होने पर ये क्रियाशील हो उठते है। ज्यो-ज्यो अधेरा होता जाता है और प्रकाश मन्द पडने लगता है, शकुओ की क्रियाशीलता मे शिथिलता आती जाती है। इसलिए सन्ध्या के समय हम रगो को स्पष्ट नही देख पाते। अधेरी रात मे तो रग बिल्कुल नही दिखलाई पडते क्योकि अधेरे मे शकु पूर्णत निष्क्रिय हो जाते है। रेटिना के एक भाग मे, जिसे पीतबिन्दु या फोविया[2] कहते हैं, शकु बहुत घने रूप मे पाये जाते है। फोविया मे दण्ड बिल्कुल नही होते, परन्तु ज्यो-ज्यो हम रेटिना के दोनो किनारो की ओर बढते हैं शकुओ की सख्या क्रमश घटती जाती है और उसी क्रम से दण्डो की सख्या बढती जाती है। अनुमान किया जाता है कि मानवीय नेत्रपटल पर शकुओ की सख्या लगभग 70 लाख है। शकु दण्डो की अपेक्षा अधिक बडे और विकसित होते हैं।

मानवीय रेटिना पर कितने प्रकार के शकु पाये जाते है तथा वे किस प्रकार क्रिया करते है इस सम्बन्ध मे विद्वानो के बीच मतैक्य नही है। रग-सवेदना के कई सिद्धान्त प्रतिपादित किए गये है, और प्रत्येक सिद्धान्त मे रगो की सवेदना मे शकुओ को अनुभव का माध्यम माना गया है। परन्तु फिर भी विभिन्न वैज्ञानिको ने अलग-अलग ढग से शकुओ की क्रियाशीलता की व्याख्या की है। इनमे से एक सिद्धान्त जो सबसे अधिक मान्य है उसे सबसे पहले सन् 1801 ई० मे टॉमस यग[3] ने प्रतिपादित किया, और आगे चलकर हेल्महोल्ट्ज[4] ने इसका अधिक व्यापक रूप से विकास किया। यह सिद्धान्त अब यग-हेल्महोल्ट्ज रग-सिद्धान्त के नाम से विख्यात है। इस सिद्धान्त को त्रिघटक सिद्धान्त[5] भी कहा जाता है क्योकि इसके प्रतिपादको ने बतलाया है कि शकु तीन प्रकार के होते हैं जिनके माध्यम से सभी प्रकार के रगो का अनुभव मनुष्य को होता है। ये तीन प्रकार के शकु क्रमश लाल, हरे और नीले रगो के प्रति सवेदनशील होते हे। इस सिद्धान्त के अनुसार पीले रग की सवेदना लाल तथा हरे रग के शकुओ की सयुक्त अथवा सम्मिलित क्रियाशीलता के कारण उत्पन्न होती हे। वर्णक्रम या रगावली के सभी रगो के ग्राहक यही तीन प्रकार के शकु माने जाते है। इस धारणा की पुष्टि इस तथ्य द्वारा होती है कि यदि हम लाल, हरे तथा नीले रगो की प्रकाश-तरगो को विभिन्न अनुपातो मे मिश्रित करके किसी सफेद धरातल पर

---

1 Duplicity theory 2 Fovea 3 Thomas Young 4 Helmholtz 5 Three-component theory

प्रक्षेपित करे तो वर्णक्रम के सभी रग उत्पन्न किये जा सकते है। इन तीनो रगो को एक निश्चित अनुपात मे मिलाने पर सफेद उत्पन्न होता है।

यग-हेल्महोल्ट्ज का उपर्युक्त त्रिघटक रग-सिद्धान्त शरीर शास्त्रियो तथा मनोवैज्ञानिको द्वारा अन्य सिद्धान्तो की अपेक्षा अधिक उपयोगी समझा जाता है। इसका एक कारण तो यह है कि यह सिद्धान्त प्रकाश तरगो की विभिन्न लम्बाइयो की व्याख्या ठीक ढग से करता है। साथ ही पश्चात् प्रतिमाओ[1] की घटना भी इस सिद्धान्त के तथ्यो के प्रकाश मे भली-भाँति समझ मे आ सकती है। इन तथ्यो पर अन्यत्र सविस्तार प्रकाश डाला जायेगा।

अन्धकार-पग्राहक (दण्ड)

दण्ड जोकि मद प्रकाश या अधकार के प्रति सवेदनशील होते हैं, नेत्रपटल के दोनो छोरो पर घने रूप से पाये जाते है। ज्यो-ज्यो हम पीतविन्दु अथवा फोविया के निकट आते है, दण्डो की सख्या घटती जाती है। यहाँ तक कि पीतविन्दु नामक स्थान पर एक भी दण्ड नही पाया जाता। परन्तु फिर भी नेत्रपटल पर दण्डो की सख्या कुल मिलाकर लगभग दस करोड अनुमानित हे। दन्ड शकुओ की अपेक्षा आकार मे कुछ छोटे तथा अविकसित-से होते हैं।

ज्यो ज्यो प्रकाश मद पडता जाता है, शकुओ की क्रियाशीलता कम होने लगती है। जब शकु निष्क्रिय होने लगते हैं उसी समय दण्डो की क्रियाशीलता बढने लगती है। सध्या के अँधेरे मे तो फोविया बिल्कुल अधा हो जाता है क्योकि वहाँ एक भी दण्ड नही होता। अत हम अँधेरे मे जो कुछ भी देखते हैं वह रेटिना के फोविया नामक भाग से नही देखते और न उसके आस-पास वाले भागो से ही स्पष्ट दिखलाई पडता है। गहन अँधेरे मे तो हम केवल रेटिना के दोनो छोर वाले भागो से ही देख पाते है क्योकि वहाँ दण्ड सघन रूप से पाये जाते हैं और वे अँधेरे मे अधिक क्रियाशील रहते है। जब हम प्रकाश से अधकार मे जाते हैं, हमारी आँखो को अधकार के प्रति अनुकूलित होना पडता है। अधकार-अनुकूलन मे, जैसा आगे देखा जायेगा, शकु निष्क्रिय और दण्ड क्रियाशील होने लगते है। ऐसी स्थिति मे हम रेटिना के मध्य भाग से न देखकर उसके छोरो अर्थात् आँख के कोनो से ही देख पाते है। ऐसे दृश्य को तटीय या पैरिफेरल विजन[2] कहा जाता है। अनुमान किया जाता है कि निशाचरो के रेटिना मे शकुओ की सख्या बहुत कम और दण्डो की सख्या बहुत अधिक होती है।

वास्तव मे दण्डो के ऊपर एक रासायनिक पदार्थ रोडॉप्सिन[3] पाया जाता है जो प्रकाश मे नष्ट हो जाता है। इसे विजुअल पर्पिल[4] भी कहा जाता है। जब हम अन्धकार मे होते है उस समय यह रासायनिक पदार्थ पुनर्जीवित होकर दण्डो को

---

1 After-images 2 Perispheral Vision 3 Rhodopsin 4 Visual purple

क्रियाशील वना देता है। रात्रि या अधकार मे जो व्यक्ति कुछ नही देख पाते उनके दण्डो मे विजुअल पर्पिल उत्पन्न नही हो पाता और फलस्वरूप उनके भीतर रतौंधी नामक दोप विकसित हो जाता हे। अधकार-अनुकूलन के सदर्भ मे इस घटना का उल्लेख पुन किया जायेगा।

पीतविन्दु

नेत्रपटल के केन्द्रीय भाग मे दवा हुआ एक ऐसा विशिप्ट क्षेत्र होता हे जहाँ केवल शकु ही शकु पाये जाते है, दण्ड नही। इस भाग को पीतविन्दु या फोविया कहा जाता ह। फोविया मे शकुओ के सघन रूप से केन्द्रित होने के कारण यहाँ प्रकाश की अत्यन्त स्पष्ट सवेदना होती है। हमारे दृष्टि-क्षेत्र[1] मे स्थित वस्तुओ से निकली हुई प्रकाश तरगें फोविया पर वहुत ही स्पष्ट प्रतिमाएँ वनाती ह और फलस्वरूप रेटिना के इस भाग से साफ-साफ दिखलाई पडता है। जो वस्तु दृष्टि-क्षेत्र के विल्कुल केन्द्र मे होती है, उसका प्रतिविम्ब फोविया के बीच मे पडने के कारण स्पष्टतम होता है और इसलिए फोविया को स्पष्टतम दृश्य का विन्दु[2] कहते हे। रेटिना के अन्य भागो की अपेक्षा पीतविन्दु तथा उसके आसपास के क्षेत्रो मे स्नायु-तन्तुओं का अन्त सम्वन्ध कुछ कम होता है। वल्कि फोविया मे स्थित प्रत्येक शकु का सम्वन्ध पृथक-पृथक स्नायु से होता है और उस भाग के स्नायु-तन्तु मस्तिष्क के साथ सीधे और स्वतन्त्र रूप से सम्वन्धित होते है। यह इस वात का प्रमाण है कि पीतविन्दु पर दण्डो का सर्वथा अभाव होता है। रेटिना पर पाये जाने वाले दण्डो से आवेग[3] ले जाने के लिए पृथक-पृथक नाडियाँ नही होतीं, वल्कि कई दण्डो से आवेग ग्रहण करके केवल कुछ नाडियाँ ही उन्हे मस्तिष्क-केन्द्रो तक पहुँचाती ह। अत अनुमान किया जाता है कि रग-दृश्य के अतिरिक्त दृष्टि-तीक्ष्णता[4] और स्थानगत विभेदीकरण[5] की क्षमताएँ भी शकुओं की विशिष्टताएँ हैं।

अधविन्दु

पीतविन्दु के निकट ही नाक की दिशा मे लगभग तीन मिलीमीटर की दूरी पर रेटिना के ऊपर अधविन्दु[6] स्थित होता है। इस भाग को अधविन्दु की सज्ञा इस कारण दी गई है क्योकि यहाँ न कोई शकु पाया जाता हे और न ही कोई दण्ड और इसलिए इस विन्दु पर प्रकाश-तरगो के पडने से दृष्टि-सवेदना नही होती। दृष्टि उत्तेजना के नाडीय आवेगो मे परिवर्तित हो जाने पर उन्हे मस्तिष्क के केन्द्रो तक ले जाने वाले दृष्टि-स्नायु[7] अधविन्दु नामक स्थान पर ही रेटिना से अलग होकर मस्तिष्क की ओर मुडते है। हमारे दृष्टि-क्षेत्र मे उपस्थित वस्तुओ से निकलकर जो प्रकाश-तरगें अधविन्दु पर गिरती है उनसे कोई प्रतिमा नही निर्मित हो पाती।

---

1 Visual field 2 Point of clearest vision 3 Impulse 4 Visual acuity 5 Spatial discrimination 6 Blind spot 7 Optic nerves
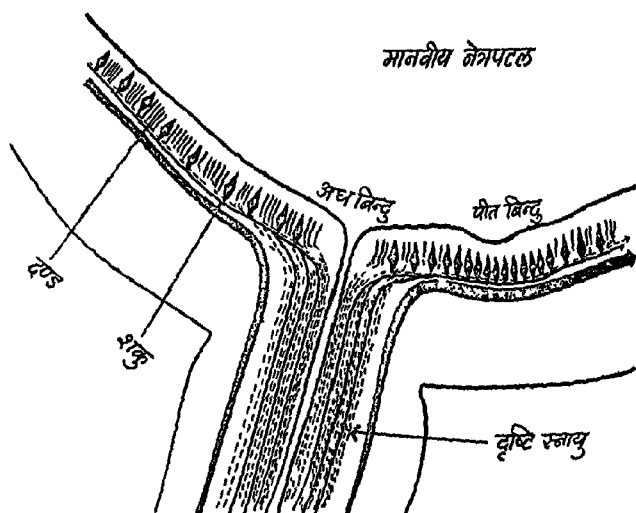
चित्र सख्या 3 2 मानवीय नेत्रपटल पर पाये जाने वाले शकु, दण्ड, पीतबिन्दु, अंधबिन्दु तथा दृष्टि-स्नायु चित्रित है।

शकुओ तथा दण्डो मे सरचनात्मक भेद

यद्यपि शकु और दण्ड रचना की दृष्टि से, बहुत समान दिखलाई पडते है, फिर भी इन दोनो मे निम्नाकित महत्त्वपूर्ण अतर पाया जाता है—

(1) शकुओ की तुलना मे दण्ड कुछ लघु आकार के और अविकसित से दिखलाई पडते है। शकुओ के सिरे आकृति मे त्रिकोणाकार होते है जबकि दण्डो के सिरे सादे तथा लम्बे आकार के होते हैं।

(2) शकुओ की स्थिति मुख्यत रेटिना के केन्द्रवर्ती भाग मे होती है, और दण्ड रेटिना के छोरो के निकट अधिक पाए जाते हैं, फिर भी उन भागो मे थोडे-बहुत शकु अवश्य होते है। फोविया ही एक ऐसा स्थान है जहाँ कोई भी दण्ड नही पाया जाता।

(3) दण्डो के भीतर एक रासायनिक तत्त्व रोडॉप्सिन पाया जाता है। इसका रग धूमिल होने के कारण इसे दृश्य धूम्र या विजुअल पर्पिल कहते है। यह तत्त्व शकुओ मे नही पाया जाता है।

(4) प्रत्येक शकु से पृथक-पृथक स्नायु सम्बन्धित होते हैं जो उत्तेजना को मस्तिष्क तक ले जाते हैं। परन्तु रेटिना के जिस भाग मे दण्ड अधिक होते है वहाँ स्नायुओ की अल्पता पाई जाती है और इसलिए कई दण्डो से आवेग ग्रहण करने

के लिए केवल एक ही नाडी होती है । यही कारण है कि जब हम आँख के कोनो से देखते हैं तो अस्पष्ट दिखलाई पडता है और केन्द्रीय भाग से देखने पर तीक्ष्ण सवेदना होती है ।

स्थानगत एव कालगत यौगिक अनुभूति[1]

जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है, नेत्रपटल पर शकुओ, दण्डो तथा स्नायुओ का एक सघन जाल सा बिछा हुआ है । अनेक शकु परस्पर एक नाडी द्वारा जुडे हुए होते हैं और इस प्रकार का पारस्परिक सम्बन्ध दण्डो तथा नाडियो मे भी पाया जाता है । ऐसा होने के कारण जब रेटिना के किसी एक बिन्दु को प्रकाश उद्दीपक प्रभावित करता है तो उद्दीपन केवल उसी बिन्दु तक सीमित नही रहता, अपितु आस-पास के बिन्दुओ तक फैल जाता है । इसी प्रकार आँख के सामने किसी प्रकाशमान उद्दीपक का एक छोटा सा अश रखने से जो सवेदना होगी उसकी तीव्रता उस समय बढ जायेगी जब उद्दीपक के आकार को बढा दिया जाएगा । यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि मूल उद्दीपक की तीव्रता नही बढाई गई, केवल उसकी मात्रा मे वृद्धि कर देने से ही प्रकाश की अनुभूति मे परिवर्तन हो गया । यह घटना इस तथ्य की ओर सकेत करती है कि प्रकाश की परिवर्तित अनुभूति रेटिना के कई बिन्दुओ की सयुक्त या यौगिक अनुभूति है । प्रकाश की चमक या तीव्रता मे इसलिए वृद्धि हो जाती है क्योकि उद्दीपक की मात्रा मे वृद्धि कर देने से अन्य पडोसी ग्राहक उद्दीप्त हो जाते है और सभी उद्दीप्त ग्राहको का प्रभाव जुड जाता है । रेटिना पर होने वाली इस घटना को "समेशन इफेक्ट"[2] कहा जाता है ।

उक्त प्रकार की यौगिक अनुभूति स्थानगत कही जाती है । परन्तु यह घटना रेटिना केन्द्र अर्थात् फोविया के निकट कम और फोविया से दूर वाले भागो मे अधिक देखने को मिलती है । यौगिक अनुभूति की घटना का मुख्य कारण रेटिना की सरचना ही होती है । चूँकि रेटिना के छोरो पर अनेक दृष्टि-सग्राहक एक ही नाडी से जुडे हुए होते हैं, इसलिए कई ग्राहको का जुडा हुआ आवेग एक साथ ही मस्तिष्क मे पहुँचता है और हमको एक ऐसा अनुभव होता है जो केवल एक पृथक ग्राहक की उत्तेजना से सम्भव नही है । समेशन-प्रभाव के कारण मूल बिन्दु के निकटवर्ती बिन्दुओ का सीमान्त नीचा हो जाता है और साथ ही दृष्टि की तीक्ष्णता भी घट जाती है ।

स्थानगत समेशन[3] की ही भाँति रेटिना पर कालगत समेशन[4] की भी घटना देखी जाती है । किसी निश्चित तीव्रता की उत्तेजना द्वारा थोडी देर तक रेटिना के उद्दीप्त होने से जो सवेदना होती है वह अधिक तीव्र अनुभूत होगी, यदि उससे रेटिना को कुछ देर तक और उद्दीप्त होने दिया जाय । अर्थात् उद्दीपन-काल[5]

---

1 Spatial and temporal summation 2 Summation effect 3 Spatial summation 4 Temporal summation 5 Stimulation time

निर्भर होती है। जैसा ऊपर बतलाया गया है, अन्धकार अनुकुलन पर अनुकूलन के पूर्व अनुभूत प्रकाश की तीव्रता, उस अन्धकार की तीव्रता जिसके साथ दृष्टि को अनुकूलित होना पडता है तथा अनुकूलन के पूर्व रेटिना का उद्दीपित क्षेत्र आदि घटको का वडा प्रभाव पडता है। यदि हम वहुत अधिक तीव्र प्रकाश से गहरे अन्धकार मे आते है तो इस परिस्थिति मे नेत्र को अनुकूलित होने मे अपेक्षाकृत अधिक समय लगेगा। ऐसा इसलिये होता है क्योकि वहुत तीव्र प्रकाश से वहुत गहरे अन्धकार मे आने पर प्रकाश उद्दीपक के सीमान्त मे भारी गिरावट हो जाती है। इसके विपरीत, यदि साधारण प्रकाश मे रहने के वाद हम साधारण अन्धकार मे आते है तो वहुत कम समय मे ही अन्धकार अनुकूलन स्थापित हो जाता है। उदाहरण के लिये, एक दशा यह हो सकती है कि हम तेज धूप मे रहने के वाद किसी अधेरे कमरे मे प्रवेश करें। एक दूसरी दशा यह हो सकती है कि हम एक ऐसे कमरे मे से जहाँ कुछ उजाला हो अधेरे कमरे मे जायें। पहली दशा मे अनुकूलन-काल लम्वा होगा जवकि दूसरी दशा मे अपेक्षाकृत छोटा। अन्धकार अनुकूलन की गति इस वात पर भी निर्भर होती है कि अन्धकार मे आने के पूर्व रेटिना का कितना और कौन-सा भाग प्रकाश उद्दीपक के प्रति अनुकूलित था। यदि वहुत अधिक शकु उद्दीप्त रहे होगे तो अधेरे मे पहुँचने पर अनुकूलन मे अधिक समय लगेगा।

अन्धकार-अनुकूलन रेटिना पर पाये जाने वाले दण्डो की क्रियाशीलता का परिणाम होता है। धूप मे दण्डो मे पाये जाने वाले रासायनिक पदार्थ रोडॉप्सिन का लोप हो जाता है। परन्तु जव हम अधेरे मे होते है तव पुन दण्डो के भीतर यह पदार्थ एकत्रित हो जाता है और फलस्वरूप हमे अधेरे मे दिखाई पडने लगता है। लेकिन रोडॉप्सिन जितनी जल्दी प्रकाश मे नष्ट हो जाता है उतनी शीघ्रता के साथ वह अधेरे मे पुनर्जीवित नही हो पाता। उसे पुनर्जीवित होने मे कुछ समय लगता है। यही कारण है कि आँख जितनी जल्दी प्रकाश के साथ अनुकूलित हो जाती है उतनी जल्दी अन्धकार के साथ अनुकूलित नही हो पाती।

यदि हम प्रकाश मे किसी प्रकार रोडॉप्सिन को नष्ट होने मे वचाये रखे तो निश्चय ही अधेरे मे आने पर हमारा अन्धकार-अनुकूलन शीघ्र स्थापित हो सकेगा। रेटिना पर पाये जाने वाले दण्ड लाल रग की किरणो के प्रति उतने अधिक सवेदनशील नही होते जितने कि अन्य रगो के प्रति होते है। इसलिये यदि आँख पर कोई ऐसा चश्मा लगा लिया जाये जिसमे से केवल लाल रग की लम्वी प्रकाश-तरगें ही गुजर सके और अन्य तरगो को रोका जा सके तो न तो रोडॉप्सिन ही नष्ट हो पायेगा और न दण्डो की क्रियाशीलता ही रुकेगी। ऐसी दशा मे जव हम अधेरे मे पहुँचकर चश्मा उतारेंगे तो तत्काल वहाँ का दृश्य स्पष्टत दिखलाई पडने लगेगा। इस उपक्रम से वास्तविक जीवन मे वडा लाभ पहुँच सकता है। रात मे अधेरे स्थान मे काम करने वालो के लिये यह वात अत्यन्त उपयोगी होगी। यदि वे उपयुक्त प्रकार का

उपर्युक्त विवेचन से यह नही समझना चाहिए कि उद्दीपक की तीव्रता वढ जाने से दृष्टि की तीक्ष्णता अवश्य वढ जायेगी। तीव्रता के साथ-साथ कुछ अन्य वातो पर भी ध्यान देना होगा। उद्दीपक जिस धरातल पर उपस्थित किया जाता है यदि वह अन्धकारमय होगा तो उद्दीपक की तीव्रता वढाने से दृष्टि की तीक्ष्णता नही वढेगी और फलत उद्दीपक स्पष्ट नही दिखलाई पडेगा। उदाहरण के लिये, यदि पास-पास ही दो विद्युत रॉड किसी अन्धकारमय धरातल पर जला दिये जाय तो सामान्य प्रकाश की तीव्रता मे तो दृष्टि-तीक्ष्णता वढेगी परन्तु तीव्रता वहुत अधिक वढा देने पर तीक्ष्णता मे वृद्धि नही हो पायेगी। इसका कारण यह है कि उद्दीपक के चारो और अन्धकार होने के कारण रेटिना के दण्ड वहुत अधिक क्रियाशील होगे और रेटिना का अधिकाश भाग अन्धकार के साथ अनुकूलित हो जायेगा। ऐसी दशा मे उद्दीपक की तीव्रता वढाने से कुछ शकु भी उत्तेजित होगे। एक ओर अँधेरे के कारण दण्डो की सक्रियता और दूसरी ओर प्रकाश के कारण शकुओ की क्रियाशीलता वढेगी। यह स्थिति ऐसी होगी जिसमे एक ही समय रेटिना के कुछ भाग अन्धकार-अनुकूलित और कुछ भाग प्रकाश-अनुकूलित होने लगेगे, जिसके परिणामस्वरूप धुँधलेपन का अनुभव होगा और दोनो विद्युत राड पृथक-पृथक नही दिखलाई पडेंगे। अत स्पष्ट है कि अन्धकारमय धरातल मे प्रकाश उद्दीपक की तीव्रता वढाने से आँख की तीक्ष्णता आवश्यक रूप से नही वढेगी।

तीक्ष्णता और रेटिना क्षेत्र—दृष्टि की तीक्ष्णता इस वात पर भी निर्भर करती है कि रेटिना का कौन सा या कितना भाग उद्दीप्त हो रहा है। रेटिना के कुछ भागो मे विशेषकर फोविया मे वहुत अधिक शकु होते है। प्रत्येक शकु के साथ सूचना को मस्तिष्क तक पहुँचाने के लिए पृथक नाडी सम्वद्ध होती है। इसलिए जव वाह्य उद्दीपक फोविया वाले भाग को उत्तेजित करता है तो यह सूचना मस्तिष्क तक उपयुक्त मात्रा मे पहुँच जाती है। फलस्वरूप उद्दीपक को हम स्पष्टत देख पाते है। इसके विपरीत, जव उद्दीपक फोविया से दूरस्थ भागो को उद्दीप्त करता है तो वहाँ शकुओ की सख्या कम होने के कारण मस्तिष्क तक उद्दीपक की सूचना उपयुक्त मात्रा मे नही पहुँच पाती, जिसके कारण उद्दीपक का प्रत्यक्ष ठीक ठीक नही हो पाता। दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि जव कोई उद्दीपक नेत्र के केन्द्र से देखा जाता है तो वह अधिक स्पष्ट दिखलाई पडता है और जव उसे नेत्र के कोनो से देखा जाता है तो वह धुँधला दिखलाई पडता है। अत जव हम उद्दीपक को नेत्रो के केन्द्र से देखेंगे तो नेत्र की तीक्ष्णता घट जायेगी क्योकि नेत्र के छोरो पर उद्दीपक की प्रतिमा स्पष्ट नही पडती।

दृष्टि-तीक्ष्णता का प्रयोगात्मक अध्ययन—दृष्टि की तीक्ष्णता का प्रयोगात्मक अध्ययन किया गया है। इन प्रयोगो मे मुख्यत छोटे उद्दीपको जैसे विन्दुओ, रेखाओ या दो विन्दुओ के वीच की विभिन्न दूरियो, वृत्तो के छोटे कटाव तथा अँग्रेजी के सी (C) अक्षर का प्रयोग किया जाता है। नेत्र-चिकित्सालयो मे तो अक्षरो या

धनात्मक पश्चात्-प्रतिमाएं — धनात्मक पश्चात्-प्रतिमाओं की मुख्य-विशेषता यह होती है कि उद्दीपक के हट जाने के बाद भी उद्दीपक दिखाई पड़ता है। उदाहरण के लिये यदि हम तेज प्रकाश पर थोड़ी देर तक अपनी आंखें केंद्रित करें और तब शीघ्रता से उन्हें प्रकाश से हटा कर किसी काली दीवार पर केंद्रित कर दें तो हमें पहले उद्दीपक अर्थात् सफेद प्रकाश की उपस्थिति का अनुभव होगा। यह धनात्मक पश्चात्-प्रतिमाओं का एक उदाहरण है। धनात्मक पश्चात्-प्रतिमाओं की अनुभूति दो बातों पर निर्भर होती है। पूर्वगामी उद्दीपक की चमक अर्थात् मूल उद्दीपक जितना ही अधिक चमकदार तथा पश्चात् उद्दीपक जितना ही चमकहीन होगा उतनी ही पश्चात् प्रतिमाएं स्पष्ट होंगी। उपर्युक्त उदाहरण में मूल उद्दीपक

---

1 Snellen chart 2 Mofadden 3 Positive after-images

तेज प्रकाश था और पश्चात् उद्दीपक काली दीवार। तेज प्रकाश मे चमक की मात्रा बहुत अधिक होती है तथा काली दीवार चमकहीन उद्दीपक है। अत जब हम प्रकाश से हटाकर अपनी आँखो को काली दीवार पर टिकाते है तो प्रकाश की प्रतिमा सामान्य से अधिक स्पष्ट और अधिक टिकाऊ होगी। इसके विपरीत, यदि हम भूरी दीवार से आँख हटाकर दूसरी किसी काली दीवार पर केन्द्रित करें तो पश्चात्-प्रतिमा बनने की सम्भावना कम होगी।

धनात्मक पश्चात्-प्रतिमाए इस बात को सिद्ध करती है कि दृष्टि उद्दीपको के हट जाने के बाद भी कुछ समय तक नेत्र के ग्राहको की क्रियाशीलता जारी रहती है। यहाँ तक कि यदि उद्दीपक बहुत तीव्र हो तो आँखे बन्द कर लेने पर भी धनात्मक पश्चात्-प्रतिमाए अनुभूत होगी। ऐसा अनुभव सूर्य को देखने के बाद होता है। यद्यपि इन प्रतिमाओ का रग और चमक वही होती है जो मूल उद्दीपक की होती है, फिर भी कुछ सेकेण्डो से अधिक देर तक पश्चात्-प्रतिमाए जीवित नही रह पाती हैं।

निषेधात्मक पश्चात्-प्रतिमाए—निषेधात्मक पश्चात्-प्रतिमाओ[1] मे मूल उद्दीपक रग के पूरक रग की सवेदना होती है, मूल उद्दीपक रग नही दिखलाई पडता। उदाहरण के लिये, यदि हम लगभग 30 सेकेण्ड तक लाल रग के किसी टुकडे पर आँख केन्द्रित किये रहे और फिर शीघ्रता से आँख हटाकर किसी भूरे धरातल पर टिकायें तो हमे लाल रग की सवेदना न होकर उसके पूरक अर्थात् हरे रग का आभास होगा। इसी प्रकार हरे रग को देर तक देखने के बाद लाल की, नीले के बाद पीले की और पीले के बाद नीले रग की सवेदना अनुभूत होगी। यह सभी निषेधात्मक पश्चात्-प्रतिमाओ के उदाहरण है। इसी प्रकार यदि सफेद आधार पर रखे काले रग पर आँख केन्द्रित की जाय और 30 सेकेण्ड बाद दूसरे सफेद आधार पर आँख टिकाई जाय तो सफेद और काले रगो का क्रम बदल जायेगा अर्थात् काले आधार पर रखा सफेद टुकडा काला दिखाई पडेगा। इस दशा मे उद्दीपक विलोम स्थिति मे आ जाता है। जो रग पहले आधार का था वह अब आकृति का हो जाता है और जो रग पहले आकृति का था वह आधार का हो जाता है।

निषेधात्मक पश्चात्-प्रतिमाओ के प्रयोगात्मक अध्ययनो से पता चलता है कि इनकी स्पष्टता कई घटको पर निर्भर होती है। मौलिक उद्दीपक की चमक, आधार की चमक तथा मौलिक उद्दीपक पर दृष्टि रखने की अवधि की उन तीन प्रमुख घटको मे गणना की जाती है जिनका पता प्रयोगो द्वारा लगाया गया है। यदि मौलिक उद्दीपक और मौलिक आधार की चमक मे अधिक अन्तर होगा तो पश्चात्-प्रतिमा अधिक स्पष्ट होगी। इसी प्रकार यदि उद्दीपक पर देर तक ध्यान

1 Negative after-images

केन्द्रित किया जायेगा तो भी पश्चात्-प्रतिमा सामान्य से अधिक स्पष्ट दिखलाई पडेगी। मिजियाक तथा लाजिटो[1] (1951) ने पश्चात्-प्रतिमाओ के सत्ताकाल या अवधि का अध्ययन किया है। अपने प्रयोगो मे उन्होने पाया कि जब प्रयोज्यो ने अपने दोनो नेत्रो को उद्दीपक पर केन्द्रित किया तो उस दशा मे पश्चात्-प्रतिमाए अधिक देर तक अनुभव की जा सकी।

निषेधात्मक पश्चात्-प्रतिमाओ मे सदा पूरक रगो की सवेदना क्यो होती है ? इसका कारण यग-हेल्महोल्ट्ज सिद्धान्त के अनुसार आंख के रेटिना पर पाए जाने वाले R, G, B तीन प्रकार के शकुओ की क्रियाशीलता होती है। हेल्महोल्ट्ज ने लाल, हरे तथा नीले रगो के प्रति सवेदनशील शकुओ को क्रमश R, G और B प्रकार का शकु कहा है। जब नीले रग के उद्दीपक को देर तक देखने के कारण B शकु अत्याधिक क्रियाशील होकर थक जाते है तो उनके पूरक रग वाले शकु अर्थात् पीले रग के शकु R तथा G (क्योकि पीले की उत्पत्ति R और G शकुओ से होती है) क्रियाशील हो जाते हैं और फलस्वरूप पश्चात्-सवेदना मे पीले रग की सवेदना होती है। इसी प्रकार यदि R शकु लाल रग के प्रति देर तक उत्तेजित रहने के कारण थक जाते है तो G शकु क्रियाशील हो उठते है क्योकि G शकु R शकु का पूरक होता है और पश्चात्-प्रतिमा मे हरे रग का आभास होता है। अत यह कहा जा सकता है कि निषेधात्मक पश्चात्-प्रतिमाओ की घटना यग-हेल्महोल्ट्ज के रग-सिद्धान्त के अनुरूप होती है।

रग दृश्य

हमारे दृष्टिगत अनुभव मे मुख्यत दो प्रकार के वर्ण-दृश्य[2] आते है—रगीन दृश्य (क्रोमेटिक विजन)[3] और रगहीन दृश्य (अक्रोमेटिक विजन)[4]। इन्द्रधनुषी रगो को रगीन दृश्य कहा जाता है जिसमे हर प्रकार के लाल, हरे, नीले और पीले रगो तथा उनके मिश्रण से बनी हुई विभिन्न रग-छायाओ का समावेश होता है। सफेद, भूरे, और काले रगो की विभिन्न छायाओ को रगहीन दृश्य माना गया है। रगीन दृश्यो और रगहीन दृश्यो की अपनी विशेपताएँ होती हैं। रगीन दशाओ अर्थात् लाल, हरे, नीले और पीले रगो की जितनी भी छायाएँ सम्भव हो सकती है, उन सभी को वर्ण[5] कहा जाता है। प्रत्येक रगीन वस्तु का कोई न कोई वर्ण होता है। इसी प्रकार सफेद, भूरे और काले के मिश्रण से भी विभिन्न छायाओ को उत्पन्न किया जा सकता है। इन विभिन्न छायाओ को चमक[6] कहा जाता है। परन्तु वर्ण और चमक के अतिरिक्त रगो की एक तीसरी विशेपता भी होती है जिसे सतृप्ति[7] कहा गया है। कोई भी रग हल्का हो सकता है या गहन। लाल रग की तीन वस्तुओ को देखने से पता चल सकता है कि उनमे से एक हल्के लाल रग की है, दूसरे का रग कुछ गाढा

---

1 Misiak and Lozito 2 Colour vision 3 Chromatic vision 4 Achromatic vision 5 Hue 6 Brightness 7 Saturation

है और तीसरी वस्तु अत्याधिक गाढे रग की है। इन तीनो वस्तुओ मे लाल रग की सतृप्ति अलग-अलग मात्रा मे है। अत एक ही वर्ण की सतृप्ति भिन्न-भिन्न हो सकती है। जो रग अपने ही समान चमक वाले भूरे रग से जितना अधिक भिन्न होगा उसके भीतर उतनी ही अधिक सतृप्ति पाई जायेगी। वास्तव मे किसी रग की सतृप्ति उस पर पडने वाली प्रकाश तरगो की विशुद्धता पर निर्भर होती है। केवल समान लम्वाई की तरगो द्वारा पूर्ण सतृप्ति उत्पन्न होती है। जव कई लम्वाइयो की प्रकाश-तरगें किसी वस्तु पर गिरती हैं तो उसके भीतर रग की सतृप्ति कम हो जाती है। इस सदर्भ मे स्मरणीय है कि वर्ण और सतृप्ति रगीन दृश्य की विशेपताएँ होती हैं, परन्तु चमक रगीन और रगहीन दोनो प्रकार के दृश्यो मे पायी जाती है। दृष्टि-उद्दीपको की उपर्युक्त तीनो भौतिक विशेपताओ मे परस्पर वहुत घनिष्ठ सम्वन्ध पाया जाता है। प्रकाश-तरगो की लम्वाई तथा उद्दीपक की तीव्रता के कारण वर्ण, चमक तथा सतृप्ति मे से किसी एक मे भी परिवर्तन आ सकता है।

जैसा ऊपर वताया जा चुका है, दृश्य वर्णक्रम या स्पेक्ट्रम का विस्तार लगभग 400 म्यू से 760 म्यू तक होता है। अर्थात् हमारी आँखें केवल उन्ही प्रकाश-तरगो से प्रभावित हो पाती है जिनकी लम्वाई 400 म्यू और 760 म्यू के वीच होती है। रगो और प्रकाश-तरगो का परस्पर वडा घनिष्ठ सम्वन्ध होता है। वडी प्रकाश-तरगो का सम्वन्ध लाल रग से होता है। ज्यो-ज्यो तरगें छोटी होती जाती हैं वे सिन्दूरी तथा पीले रगो को उत्पन्न करती है। विशेप रूप से 575 म्यू लम्वी तरगो का सम्वन्ध सिन्दूरी और पीले रग से होता है। इससे छोटी होने पर तरगें धानी रग तथा 505 म्यू की प्रकाश तरगें स्पष्ट हरे रग की सवेदना उत्पन्न करती है। तरगो के कुछ और छोटा होने पर हरे रग मे से पीले की छाया समाप्त हो जाती है और हरे रग मे नीले का मिश्रण दिखलाई पडने लगता है। जव तरगो की लम्वाई घटकर 480 म्यू रह जाती है तो स्पष्ट नीले का अनुभव होने लगता है परन्तु 480 म्यू से छोटी लहरो से वैंगनी दिखलाई पडता है।

दृश्य वर्णक्रम[1] या स्पेक्ट्रम के देखने से पता चलेगा कि लाल, पीला, हरा और नीला वर्ण प्राथमिक वर्ण[2] है, क्योकि जहाँ वर्णक्रम मे स्पष्ट पीला दिखलाई पडता है वहाँ लाल और हरे दोनो की छायाएँ समाप्त हो जाती हैं। यही वात नीले

चित्र सख्या 3 3 रग तथा प्रकाश तरगो की लम्वाई का पारस्परिक सम्वन्ध

1 Visible spectrum 2 Primary colours

केन्द्रित किया जायेगा तो भी पश्चात्-प्रतिमा सामान्य से अधिक स्पष्ट दिखलाई पड़ेगी। मिजियाक तथा लाजिटो[1] (1951) ने पश्चात्-प्रतिमाओं के सत्ताकाल या अवधि का अध्ययन किया है। अपने प्रयोगों में उन्होंने पाया कि जब प्रयोज्यों ने अपने दोनों नेत्रों को उद्दीपक पर केन्द्रित किया तो उस दशा में पश्चात्-प्रतिमाएं अधिक देर तक अनुभव की जा सकीं।

निषेधात्मक पश्चात्-प्रतिमाओं में सदा पूरक रंगों की संवेदना क्यों होती है ? इसका कारण यंग-हेल्महोल्ट्ज सिद्धान्त के अनुसार आंख के रेटिना पर पाए जाने वाले R, G, B तीन प्रकार के शंकुओं की क्रियाशीलता होती है। हेल्महोल्ट्ज ने लाल, हरे तथा नीले रंगों के प्रति संवेदनशील शंकुओं को क्रमश R, G और B प्रकार का शंकु कहा है। जब नीले रंग के उद्दीपक को देर तक देखने के कारण B शंकु अत्यधिक क्रियाशील होकर थक जाते हैं तो उनके पूरक रंग वाले शंकु अर्थात् पीले रंग के शंकु R तथा G (क्योंकि पीले की उत्पत्ति R और G शंकुओं से होती है) क्रियाशील हो जाते हैं और फलस्वरूप पश्चात्-संवेदना में पीले रंग की संवेदना होती है। इसी प्रकार यदि R शंकु लाल रंग के प्रति देर तक उत्तेजित रहने के कारण थक जाते हैं तो G शंकु क्रियाशील हो उठते हैं क्योंकि G शंकु R शंकु का पूरक होता है और पश्चात्-प्रतिमा में हरे रंग का आभास होता है। अत यह कहा जा सकता है कि निषेधात्मक पश्चात्-प्रतिमाओं की घटना यंग-हेल्महोल्ट्ज के रंग-सिद्धान्त के अनुरूप होती है।

रंग दृश्य

हमारे दृष्टिगत अनुभव में मुख्यत दो प्रकार के वर्ण-दृश्य[2] आते हैं—रंगीन दृश्य (क्रोमेटिक विजन)[3] और रंगहीन दृश्य (अक्रोमेटिक विजन)[4]। इन्द्रधनुषी रंगों को रंगीन दृश्य कहा जाता है जिसमें हर प्रकार के लाल, हरे, नीले और पीले रंगों तथा उनके मिश्रण से बनी हुई विभिन्न रंग-छायाओं का समावेश होता है। सफेद, भूरे, और काले रंगों की विभिन्न छायाओं को रंगहीन दृश्य माना गया है। रंगीन दृश्या और रंगहीन दृश्यों की अपनी विशेषताएं होती हैं। रंगीन दशाओं अर्थात् लाल, हरे, नीले और पीले रंगों की जितनी भी छायाएं सम्भव हो सकती हैं, उन सभी को वर्ण[5] कहा जाता है। प्रत्येक रंगीन वस्तु का कोई न कोई वर्ण होता है। इसी प्रकार सफेद, भूरे और काले के मिश्रण से भी विभिन्न छायाओं को उत्पन्न किया जा सकता है। इन विभिन्न छायाओं को चमक[6] कहा जाता है। परन्तु वर्ण और चमक के अतिरिक्त रंगों की एक तीसरी विशेषता भी होती है जिसे संतृप्ति[7] कहा गया है। कोई भी रंग हल्का हो सकता है या गहन। लाल रंग की तीन वस्तुओं को देखने से पता चल सकता है कि उनमें से एक हल्के लाल रंग की है, दूसरे का रंग कुछ गाढा

---

1 Misiak and Lozito 2 Colour vision 3 Chromatic vision 4 Achromatic vision 5 Hue 6 Brightness 7 Saturation

है और तीसरी वस्तु अत्याधिक गाढे रग की है। इन तीनो वस्तुओ मे लाल रग की सतृप्ति अलग-अलग मात्रा मे है। अत एक ही वर्ण की सतृप्ति भिन्न-भिन्न हो सकती है। जो रग अपने ही समान चमक वाले भूरे रग से जितना अधिक भिन्न होगा उसके भीतर उतनी ही अधिक सतृप्ति पाई जायेगी। वास्तव मे किसी रग की सतृप्ति उस पर पडने वाली प्रकाश तरगो की विशुद्धता पर निर्भर होती है। केवल समान लम्बाई की तरगो द्वारा पूर्ण सतृप्ति उत्पन्न होती है। जब कई लम्बाइयो की प्रकाश-तरगें किसी वस्तु पर गिरती हैं तो उसके भीतर रग की सतृप्ति कम हो जाती है। इस सदर्भ मे स्मरणीय है कि वर्ण और सतृप्ति रगीन दृश्य की विशेपताएँ होती हैं, परन्तु चमक रगीन और रगहीन दोनो प्रकार के दृश्यो मे पायी जाती है। दृष्टि-उद्दीपको की उपर्युक्त तीनो भौतिक विशेपताओ मे परस्पर बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। प्रकाश-तरगो की लम्बाई तथा उद्दीपक की तीव्रता के कारण वर्ण, चमक तथा सतृप्ति मे से किसी एक मे भी परिवर्तन आ सकता है।

जैसा ऊपर बताया जा चुका है, दृश्य वर्णक्रम या स्पेक्ट्रम का विस्तार लगभग 400 म्यू से 760 म्यू तक होता है। अर्थात् हमारी आँखें केवल उन्ही प्रकाश-तरगो से प्रभावित हो पाती हैं जिनकी लम्बाई 400 म्यू और 760 म्यू के बीच होती है। रगो और प्रकाश-तरगो का परस्पर बडा घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। बडी प्रकाश-तरगो का सम्बन्ध लाल रग से होता है। ज्यो-ज्यो तरगें छोटी होती जाती हैं वे सिन्दूरी तथा पीले रगो को उत्पन्न करती है। विशेप रूप से 575 म्यू लम्बी तरगो का सम्बन्ध सिन्दूरी और पीले रग से होता है। इससे छोटी होने पर तरगें धानी रग तथा 505 म्यू की प्रकाश तरगे स्पष्ट हरे रग की सवेदना उत्पन्न करती है। तरगो के कुछ और छोटा होने पर हरे रग मे से पीले की छाया समाप्त हो जाती है और हरे रग मे नीले का मिश्रण दिखलाई पडने लगता है। जब तरगो की लम्बाई घटकर 480 म्यू रह जाती है तो स्पष्ट नीले का अनुभव होने लगता है परन्तु 480 म्यू से छोटी लहरो से बैगनी दिखलाई पडता है।

दृश्य वर्णक्रम[1] या स्पेक्ट्रम के देखने से पता चलेगा कि लाल, पीला, हरा और नीला वर्ण प्रायमिक वर्ण[2] हैं क्योकि जहाँ वर्णक्रम मे स्पष्ट पीला दिखलाई पडता है वहाँ लाल और हरे दोनो की छायाएँ समाप्त हो जाती है। यही बात नीले

चित्र सख्या 3 3 रग तथा प्रकाश तरगो की लम्बाई का पारस्परिक सम्बन्ध

1 Visible spectrum 2 Primary colours
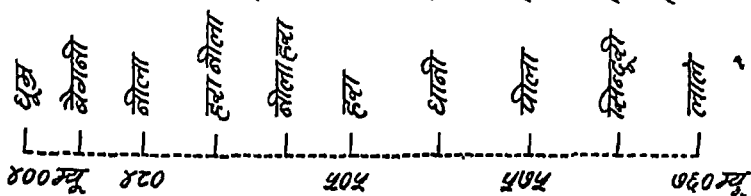
रग के साथ भी है। अत. लाल, पीला, हरा तथा नीला प्राथमिक रग माने जाते हैं। अन्य वर्ण किन्ही दो रगो के मिश्रण माने जाते है। रगो तथा प्रकाश-तरगो की लम्बाई का पारस्परिक सम्बन्ध चित्र सख्या 3 3 मे स्पष्ट किया गया है।

जिस प्रकार रगो का सम्बन्ध प्रकाश-तरगो की लम्बाई से होता है, उसी प्रकार रगो का सम्बन्ध प्रकाश-तरगो की तीव्रता से भी होता है। जब प्रकाश-तरगो की तीव्रता घटा दी जाती है, तो वर्णक्रम मे दिखलाई पडने वाले रग गाढ़े नही दिख लाई पडते। ऐसी अवस्था मे रग हल्के तथा अस्पष्ट से दिखलाई पडते है। यदि प्रकाश-तरगो की तीव्रता बहुत कम हो जाय, तो निश्चय ही वर्णक्रम या स्पेक्ट्रम का दृश्य रगहीन दिखलाई पडेगा।

रगो का मिश्रण

मनोविज्ञान की प्रयोगशालाओ मे रगो को मिश्रित करने के लिए एक रग-मिश्रण[1] उपकरण का उपयोग किया जाता है। यह यत्र बिजली द्वारा चलने वाला एक मोटर होता है। इसमे विभिन्न रगो के रगीन चक्र या डिस्क[2] लगा दिये जाते है। यत्र को तेजी से घुमाने पर सभी उद्दीपक रग परस्पर मिश्रित हो जाते हैं और भूरे रग की उत्पत्ति होती है। जब इस उपकरण पर केवल किन्ही दो रगो के डिस्क को चढाकर घुमाया जाता है तो उद्दीपक रगो के अनुसार या तो दोनो रगो के बीच का रग दिखलाई पडता है या कोई तीसरी रगीन छाया उत्पन्न होती है। दो या तीन रगो को इस प्रकार प्रयोगशाला के भीतर रग-मिश्रण यत्र पर चढाकर घुमाने से जो तीसरा रग उत्पन्न होता है, उसके विश्लेपण से रग-मिश्रण के अनेक नियमो पर प्रकाश पडता है। रगो के प्रयोगात्मक अध्ययनो के आधार पर रग-मिश्रण के नियम प्रतिपादित किये गए है। अत आजकल मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाओ मे इन्ही नियमो का सत्यापन करने के लिये रग-मिश्रण के प्रयोग किये जाते है।

रग मिश्रण की एक दूसरी विधि वह है जिसका प्रयोग चित्रकार करता है। इस विधि मे दो या अधिक वास्तविक रगो को मिश्रित किया जाता है। ऐसा करने से यह पता चल जाता है कि किन्ही दो रगो को मिलाने से तीसरा कौन सा रग उत्पन्न होगा। यही नही, यह भी निश्चित किया जा सकता है कि किसी निश्चित रग छाया को उत्पन्न करने के लिये दो या तीन रगो को किस अनुपात मे मिश्रित किया जाता है।

रग मिश्रण के प्रमुख नियम

सबसे पहले न्यूटन ने प्रकाश की सफेद किरण को प्रिज्म मे से होते हुए बाहर निकालकर वर्णक्रम का पता लगाया और इस आधार पर रगो के परस्पर मिश्रण की

---

1 Colour mixture 2 Disc

कल्पना की। आगे चलकर उसने रग-मिश्रण के कुछ नियम प्रतिपादित किये। इन नियमो का सक्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत है।

(1) **पूरक रगो का नियम**—वर्ण वैज्ञानिको ने लाल रग को हरे रग का पूरक रग या कम्पलीमेन्ट्री वर्ण[1] माना है। इसी प्रकार नीले और पीले रग भी एक-दूसरे के पूरक हैं। सफेद तथा काले मे भी इसी प्रकार का सम्वन्ध पाया जाता है। अत. प्राथमिक रगो के तीन जोडे अर्थात् लाल-हरा, नीला-पीला और सफेद-काला पूरक रगो की श्रेणी मे आते हैं। यदि दो जोडो मे से एक एक रग परस्पर मिला दिए जायँ, तो नये जोडे के रग अपूरक या नॉन कम्पलीमेन्ट्री[2] रग कहे जायेंगे। जैसे लाल-पीला, लाल-नीला, हरा पीला और हरा-नीला आदि परस्पर अपूरक रग होते हैं। रग-मिश्रण के पूरक रगो का नियम यह वतलाता है कि यदि दो पूरक रगो को एक निश्चित अनुपात मे मिलाया जाय तो भूरे रग की उत्पत्ति होगी। यहाँ भूरे रग से यह अभिप्राय है कि उद्दीपक रगो मे से किसी एक का रग नही दिखाई पडेगा, वल्कि दोनो उद्दीपक रगो की चमको के वीच की चमक ही दिखलाई पडेगी। अत पूरक रगो के नियम को इस प्रकार प्रतिपादित किया जा सकता है—दो पूरक रगो को निश्चित अनुपात मे मिश्रित करने पर एक ऐसे भूरे रग की उत्पत्ति होती है, जिसकी चमक उन रगो के बीच वाली होती है। उत्पन्न रग के भीतर सतृप्ति की मात्रा भी घट जाती है। ऐसी अनुभूति लाल-हरा, नीला-पीला और सफेद-काला मिलने से होती है। यदि हम रग-वृत्त (कलर-सर्किल) को ध्यानपूर्वक देखें, तो पता चलेगा कि एक रग अपने पूरक रग के ठीक विपरीत दिशा मे स्थित होता है।

(2) **अपूरक रगो के मिश्रण का नियम**—इस नियम को मध्यवर्तियो का नियम[3] भी कहा जाता है। इस नियम के अनुसार जव दो अपूरक रगो को मिश्रित किया जाता है, तो भूरे रग की उत्पत्ति न होकर एक ऐसी रग छाया की उत्पत्ति होती है, जो उन दोनो उद्दीपक रगो के वीच वाला वर्ण होता है। उदाहरण के लिए, लाल और पीले को मिलाने से सतरे या नारगी रग, हरे और पीले को मिलाने से धानी रग और लाल तथा नीले को मिलाने से बैंगनी रग उत्पन्न होता है। इन रगो को भिन्न-भिन्न अनुपातो मे मिश्रित करने से विभिन्न रग-छायाएँ उत्पन्न की जा सकती हैं। ऐसे मिश्रण की विशेपता यह होती है कि मिश्रित रगो मे उद्दीपक रगो के सभी मौलिक गुण विद्यमान रहते हैं, लेकिन दोनो उद्दीपको मे से जिसकी गहनता अधिक होगी उसका अश मिश्रित रग मे अधिक दिखलाई पडेगा। मिश्रित रग उद्दीपक रगो की अपेक्षा कम गाढा हो जाता है। अत अपूरक रगो के नियम या मध्यवर्तियो के नियम को इस प्रकार प्रतिपादित किया जा सकता है—यदि दो अपूरक रगो को एक निश्चित अनुपात मे मिश्रित किया जाय, तो मिश्रित रग उद्दीपक रगो

1 Complementary colours 2 Non-complementary colours. 3 Law of intermediates

के मध्य वाले रग का होगा। जैसे लाल और पीले रग के मिलने से इन दोनो के मध्य वाला अर्थात् सतरे का रग उत्पन्न होता है।

(3) **मिश्रित रगो के मिश्रण का नियम**—रग-मिश्रण का यह तीसरा नियम है, जो यह बतलाता है कि जिन दो रगो के मिलाने से भूरे रग की उत्पत्ति होती है उन्ही दो जोडे रगो को यदि पहले वाले अनुपात मे ही मिलाया जाय, तो उनसे भी भूरे ही रग की उत्पत्ति होगी। दूसरे शब्दो मे, लाल-हरे के मिलाने मे भूरा रग उत्पन्न होगा। नीले-पीले को मिलाने से भी भूरा रग ही उत्पन्न होगा। अब यदि हम लाल-हरे से उत्पन्न भूरे और नीले-पीले से उत्पन्न भूरे को उसी अनुपात मे मिलावे तो मिश्रित रग भी भूरा ही होगा। इसका अभिप्राय यह हुआ कि लाल-हरे, नीले और पीले चारो को मिलाने से परिणाम भूरा होगा। इससे इस बात पर प्रकाश पडता है कि सभी प्राथमिक रगो का मिश्रण भूरा होता है।

(4) **तीन रगो के मिश्रण का नियम**—ऊपर अपूरक रग मिश्रित करने के नियम मे यह देखा गया है कि दो अपूरक रगो को विभिन्न अनुपातो मे मिलाने से अनेक रग और रग-छायाएँ उत्पन्न की जा सकती हैं। दो अपूरक रगो के मिश्रण द्वारा यदि हम चाहे तो रगवृत्त के आधे रगो को उत्पन्न कर सकते हैं। इसी प्रकार यदि हम दो के स्थान पर रगवृत्त के तीन रगो का चुनाव करे तो उन्हे विभिन्न अनुपातो मे मिश्रित करके रगवृत्त के सभी भागो को उत्पन्न कर सकते हैं। इन तीन रग मे वृत्तो का कोई भी रग हो सकता है, आमतौर से लाल, हरे और नीले की सुनिश्चित छायाओ को लेकर मिलाया जाता है। इन तीनो रगो के मिश्रित करने से स्पेक्ट्रम के सभी रगो को उत्पन्न किया जा सकता है। इस अन्वेपण से यग-हेल्महोल्ट्ज का रग सिद्धान्त पुष्ट होता है, अर्थात् इससे यह बात सिद्ध होती है कि मानव के नेत्र पटल पर रग उद्दीपको को ग्रहण करने के लिये केवल तीन प्रकार के शकु होते हैं। स्पेक्ट्रम के सभी रगो की तरगो को ग्रहण करने के लिए अलग-अलग कई शकुओ की आवश्यकता नही होती। जब ये तीन प्रकार के शकु एक साथ ही उद्दीप्त होते है तो सभी प्रकार के रगो की सवेदनाए होती है।

रग-विरोध

रग-सवेदना के सदर्भ मे रग-विरोध[1] की घटना एक महत्वपूर्ण घटना समझी जाती है। यद्यपि हमारे सम्मुख पडी हुई वस्तुओ का वास्तविक रग कुछ और ही होता है तथापि जब दो भिन्न रगो की वस्तुएँ एक दूसरे के समीप रखी जाती है तो प्रत्येक का रग दूसरी वस्तु के रग को किसी न किसी प्रकार अवश्य प्रभावित करता है। जब हम एक रगीन उद्दीपक किसी अन्य रगीन धरातल के ऊपर रखते है तो भी उद्दीपक का रग धरातल के रग को और धरातल का रग उद्दीपक के रग को

1 Colour contrast

आशिक रूप से वदल देता है। ऐसी परिस्थिति मे वस्तुओ के केवल वर्ण मे ही परिवर्तन नही होता वल्कि रगो की चमक तथा सतृप्ति मे भी भिन्नता दिखलाई पडने लगती हे। उदाहरण के लिए, यदि लाल रग के धरातल पर भूरे रग के कागज का कोई टुकडा रख दिया जाय तो थोडी देर तक देखने के वाद उस भूरे टुकडे के रग पे नीले और हरे रगो की मिलावट दिखलाई पडेगी। यदि नीले आधार पर इस भूरे टुकडे को रखा जाय तो इस पर हल्के पीले रग की छाया दिखलाई पडेगी। इसी प्रकार सफेद आधार पर एक निश्चित सतृप्ति वाला भूरा रग अधिक भूरा तथा काले धरातल पर वही हल्का भूरा प्रतीत होता है। इन उदाहरणो से स्पष्ट होता है कि वस्तुओ का रग, उनकी चमक तथा उनकी सतृप्ति, अन्य समीपस्थ वस्तुओ अथवा पृष्ठभूमि[1] के रगो तथा उनकी चमको द्वारा प्रभावित होती है। ऐसा होने के कारण हमारे लिए यह जान पाना कठिन हो जाता है कि वस्तुओ का वास्तविक रग तथा उनकी वास्तविक चमक क्या है। इस सम्पूर्ण घटना को प्रयोगात्मक मनोविज्ञान की भाषा मे रग-विरोध कहा जाता है। जव किसी रग की छाया, चमक अथवा तीव्रता अपनी पृष्ठभूमि के रग के कारण वदल जाती है तो इस घटना को रग-विरोध की संज्ञा दी जाती है। रग-विरोध की घटना को एण्ड्रियाज[2] (1960) ने निम्नाकित शब्दो मे परिभाषित किया है—

"A visual phenomenon in which a portion of the visual field is changed in appearance as a result of stimulation in another part of the field is known as contrast"

रग-विरोध के प्रकार

रग-विरोध की समस्या का प्रयोगात्मक अन्वेपण मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाओ मे किया गया है और इस दिशा मे प्राप्त प्रायोगिक उपलब्धियो से रग-विरोध की घटना के अनेक पक्ष प्रकाश मे आये हे। रग-विरोध के मुख्य नियमो का प्रतिपादन भी प्रयोगात्मक अध्ययनो के आधार पर किया गया है। रग-विरोध की घटना दोनो प्रकार के दृश्यो अर्थात् रगीन दृश्य तथा रगहीन दृश्य मे देखी जाती हैं। दूसरे शब्दो मे, न केवल लाल, हरे, नीले और पीले रग ही परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं वल्कि सफेद, काले और भूरे रगो मे भी विरोध का प्रभाव देखा जाता है। इस दृष्टि से रग-विरोध को दो वर्गों मे वाटा जा सकता है—रगीन-विरोध (क्रोमेटिक कन्ट्रास्ट)[3] और रगहीन विरोध (अक्रोमेटिक कन्ट्रास्ट)[4]। परन्तु इस वर्गीकरण के अतिरिक्त रग-विरोध की घटना के दो अन्य प्रकारो को भी माना गया है—समकालीन रग-विरोध[5] और क्रमिक रग-विरोध[6]। जव हम दो रगो को एक ही समय देखते है और उनके वर्ण मे किसी प्रकार का परिवर्तन पाते हैं तो इस

1 Background 2 Andreas 3 Chromatic contrast 4 Achromatic contrast 5 Simultaneous contrast 6 Successive contrast

प्रभाव को समकालीन रग-विरोध कहते है। उदाहरण के लिये यदि हरे रग के आधार पर लाल रग के टुकडे को रखकर ध्यान केन्द्रित किया जाय तो आधार और लाल टुकडे दोनो ही के वास्तविक रगो और चमको मे परिवर्तन दिखलाई पडेगा। इस प्रक्रिया को समकालीन विरोध की प्रक्रिया इसलिये कहते हैं क्योकि दो रगो का अनुभव हमे एक ही समय होता है। दूसरे शब्दो मे, समकालीन रग-विरोध मे नेत्रपटल एक ही समय दो भिन्न रग उद्दीपको द्वारा प्रभावित होता है। इसके विपरीत, क्रमिक रग विरोध मे हम एक समय मे केवल एक उद्दीपक रग को देखते हैं और कुछ समय वाद एक दूसरे रग पर दृष्टि डालते है। ऐसा करने से वाद मे देखी जाने वाली वस्तु का वास्तविक रग कुछ बदला हुआ दिखलाई पडता है। उदाहरण के लिये, यदि हम हरे रग के किसी टुकडे पर लगभग एक मिनट तक ध्यान केन्द्रित किये रहने के उपरान्त किसी लाल रग के टुकडे को देखे तो वह टुकडा कुछ अधिक लाल दिखलाई पडेगा। यह घटना क्रमिक रग-विरोध का उदाहरण है। इस प्रक्रिया को क्रमिक रग-विरोध की प्रक्रिया इसलिये कहते है क्योकि दोनो रग एक ही समय नही देखे जाते वल्कि उन्हे वारी-वारी से दो भिन्न समयो मे देखा जाता है। दूसरे शब्दो मे, क्रमिक रग-विरोध मे हमारा नेत्रपटल दो उद्दीपको द्वारा दो भिन्न समयो मे उद्दीप्त किया जाता है। अत जब हम दो रगो को एक ही समय देखते है तो अनुभूति विरोध को समकालीन रग-विरोध कहते है और जब दो रगो को दो भिन्न समयो मे—एक के वाद दूसरे को देखते हैं तो अनुभूत विरोध को क्रमिक रग-विरोध की सज्ञा देते है। उपर्युक्त व्याख्या के आधार पर अब हम रग-विरोध के प्रकारो को निम्नलिखित वर्गों मे वाँट सकते है—

(1) रगीन समकालीन रग-विरोध
(2) रगीन क्रमिक रग-विरोध
(3) रगहीन समकालीन रग-विरोध
(4) रगहीन क्रमिक रग-विरोध

1 **रगीन समकालीन रग-विरोध**—रगीन समकालीन विरोध के अन्तर्गत रगो मे होने वाले उन सारे परिवर्तनो का समावेश है जो एक ही समय दो रगो को एक दूसरे के समीप अथवा एक दूसरे के ऊपर रखने के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं। जैसा "रगीन" शब्द से विदित होता है, इस प्रकार के रग-विरोध मे लाल, हरे, पीले तथा नीले रगो का परस्पर एक दूसरे पर प्रभाव देखा जाता हे। मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाओ मे रगीन रग-विरोध का अध्ययन करने के लिये उपर्युक्त वर्ण वाले रगीन कागज के टुकडो को लेते हैं और चार वर्ग इच वाले टुकडे काट कर पृष्ठभूमि के रूप मे प्रयोग करते है तथा एक वर्ग इच वाले टुकडो का प्रयोग उद्दीपक रगो के रूप मे किया जाता है। हेरिंग द्वारा निर्मित समकालीन रग-विरोध के यत्र की सहायता से यह प्रयोग अधिक अच्छी तरह किया जा सकता है। रगीन समकालीन

रग-विरोध के प्रयोगात्मक अध्ययनो से जो निष्कर्ष निकाले गये हैं उनका व्यौरा इस प्रकार है

(1) जब गहरे लाल, हरे, नीले या पीले रग की पृष्ठभूमि पर भूरे रग का टुकडा रखा जाता है तो रगहीन भूरा टुकडा आशिक रूप से रगीन दिखलाई पडने लगता है। इस भूरे रग के टुकडे पर पृष्ठभूमि वाले रग के पूरक रग का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। उदाहरण के लिये यदि पृष्ठभूमि का वर्ण लाल हो तो भूरे टुकडे का रग हरापन लिये हुये होगा क्योकि हरा, लाल रग का पूरक होता है। इसी प्रकार हरी पृष्ठभूमि होने पर लाल रग की छाया भूरे टुकडे पर दिखलाई पडती है। नीली पृष्ठभूमि के कारण भूरे टुकडे पर पीले और पीली पृष्ठभूमि के कारण नीले रग की छाया देखी जाती है।

(2) जब दो पूरक रग एक समीप अथवा एक दूसरे के ऊपर रखे जाते है तो पृष्ठभूमि तथा उद्दीपक रग दोनो ही की चमक बढ जाती हे। यदि लाल रग के आधार पर हरे रग का कोई टुकडा रखा जाय तो लाल अधिक लाल और हरा अधिक हरा दृष्टिगोचर होगा।

(3) जब दो अपूरक रग समीप रखे जाते है तो वे अपना प्रभाव एक दूसरे के ऊपर डालते हैं। उदाहरण के लिये, यदि लाल रग के आधार पर नीले रग का टुकडा रखा जाय तो लाल रग पर नीले का तथा नीले पर लाल रग का प्रभाव दिखलाई पडेगा। इसीलिये यदि किसी नीले रग की वस्तु को लाल रग के प्रकाश मे देखा जाता है तो वह बैगनी रग की दिखलाई पडती है क्योकि लाल और नीले रगो के मिश्रण से बैगनी रग की उत्पत्ति होती है।

(4) उपर्युक्त सभी प्रकार के विरोधी-प्रभाव[1] उद्दीपक रग वाले टुकडे (टैस्ट पैच)[2] के किनारो पर अधिक स्पष्ट दिखलाई पडते है। यदि इन टुकडो को पारदर्शक पतले कागज से ढक दिया जाय तो विरोधी-प्रभाव की स्पष्टता बढ जाती है।

2 **रगीन क्रमिक रग-विरोध**—जब हम एक रग को थोडी देर तक देखते रहने के पश्चात् किसी दूसरे रग पर दृष्टि डालते है तो बाद वाले रग की वास्तविक छाया मे परिवर्तन दिखलाई पडता हे। इस घटना को रगीन क्रमिक रग-विरोध की घटना कहते है। इस प्रकार के रग-विरोध मे नेत्रपटल को वारी-वारी से दो उद्दीपको से निकली हुई प्रकाश तरगो द्वारा प्रभावित होना पडता है। क्रमिक विरोध को कभी-कभी निषेधात्मक पश्चात् प्रतिमा भी कहा जाता है। रगीन क्रमिक रग-विरोध के प्रयोगात्मक अध्ययनो से जो निष्कर्ष निकले है वे निम्नवत् हैं

(1) जब हम थोडी देर तक एक रग को देखते रहने के बाद किसी भूरे

---

1 Contrast effect 2 Test patch

रग के अन्य धरातल पर दृष्टि डालते है तो हमे उद्दीपक रग का पूरक रग दिखलाई पडता हे। उदाहरण के लिए, यदि हम लाल रग को देखने के वाद भूरे धरातल को देखेगे तो हमे उस पर हरे रग की छाया दिखलाई पडेगी।

(2) जब हम थोडी देर तक एक रग को देखते रहने के वाद किसी दूसरे रग पर ध्यान केन्द्रित करते हैं तो वाद वाले रग की चमक मे परिवर्तन दिखलाई पडता है। अर्थात् धरातल के रग की चमक उस कोटि की हो जाती है जैसी उद्दीपक रग की चमक होती है।

3 **रगहीन समकालीन रग-विरोध**—रगहीन समकालीन रग-विरोध के अन्तर्गत सफेद, काले तथा भूरे रगो के पारस्परिक प्रभाव तथा तद्जनित परिवर्तनो का समावेश होता है। सफेद, काले और भूरे रगो को उस अर्थ मे रग नही माना जाता जिस अर्थ मे लाल, हरे, नीले और पीले रगो को वर्ण समझा जाता है। अत सफेद, काले, भूरे रगो से सम्वन्धित विरोध घटना को रगहीन विरोध की घटना कहा जाता है। उपर्युक्त रगो के सदर्भ मे विरोध घटना का अध्ययन करते समय निम्नाकित तथ्य प्रकाश मे आए है

(1) जव सफेद पृष्ठभूमि पर कोई सामान्य भूरे रग का टुकडा रखा जाता हे तो भूरे रग की चमक वढ जाती हे अर्थात् वह अधिक भूरा दिखलाई पडने लगता है।

(2) जव काली पृष्ठभूमि पर कोई सामान्य भूरे रग का टुकडा रखा जाता है तो उसका रग हल्का भूरा दिखलाई पडने लगता है। दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है कि पृष्ठभूमि की चमक उद्दीपक के ऊपर एक विरोधी प्रभाव छोडती है। यदि पृष्ठभूमि काली है तो उद्दीपक पर काले के विपरीत अर्थात् सफेद रग का प्रभाव पडेगा जिसके कारण भूरे रग का उद्दीपक कम भूरा दृष्टिगोचर होने लगता है।

(3) जब सफेद और काले रग की दो पट्टियाँ पास-पास रखी जाती हे तो सीमा पर भूरे रग का आभास होता है। इस घटना को मॉक-प्रभाव[1] (मॉक-इफेक्ट) कहा जाता है क्योकि उन्नीसवी शताब्दी मे जर्मन मनोवैज्ञानिक मॉक ने अपने प्रयोगो मे इस प्रकार का सीमा-प्रभाव[2] (वार्डर-इफेक्ट) सबसे पहली वार अनुभव किया।

4 **रगहीन क्रमिक रग-विरोध**—जव हम काले रग के उद्दीपक को थोडी देर तक देखने के पश्चात् सफेद, सफेद रग के उद्दीपक को देखने के वाद भूरे या भूरे रग के उद्दीपक को देखने के वाद सफेद रग के उद्दीपक को देखते है तो जो परिवर्तन उनकी चमको मे दिखलाई पडता है उसे रगहीन क्रमिक रग-विरोध कहा जाता है।

---

1 Mach effect 2 Border effect

उपर्युक्त घटना को रगहीन इस कारण कहा जाता है क्योकि यह अनुभव केवल सफेद, काले तथा भूरे रगो के प्रभाव के कारण होता है। इसे क्रमिक विरोध की घटना इसलिये माना जाता है क्योकि नेत्रपटल को वारी-वारी से दो भिन्न उद्दीपक उत्तेजित करते है। इस सदर्भ मे हुए प्रयोगात्मक अध्ययनो से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते है

(1) जब हम काले रग को देखने के बाद सफेद रग को देखते हैं तो सफेद पर काले रग की छाया दिखलाई पडती है, परन्तु यह प्रभाव क्षणिक होता है।

(2) जब सफेद रग को देखने के पश्चात काले रग को देखते है, तो क्षण भर के लिये वह कम काला दिखलाई पडता है।

रग-विरोध को प्रभावित करने वाले तत्त्व

उपर्युक्त उपलब्धियो के अतिरिक्त रग-विरोध के प्रयोगात्मक अध्ययनो के क्रम मे मनोवैज्ञानिको ने उन विशिष्ट तत्वो को भी ढूंढ निकाला है। जिनका प्रभाव रग-विरोध की मनोवैज्ञानिक अनुभूति पर किसी न किसी सीमा तक पडता है यदि आधार और उद्दीपक रग को पारदर्शी पतले कागज से ढक दिया जाय तो विरोधी-प्रभाव अधिक स्पष्ट हो जाता है। इसी प्रकार यदि इन दोनो को आँख के इतने समीप लाकर देखा जाय कि उनकी सीमा रेखाएँ न दिखलाई पडें तो भी विरोध के प्रभाव मे वृद्धि हो जाती है। इन दो तथ्यो के अतिरिक्त समकालीन रग-विरोध के जिन अन्य महत्वपूर्ण एव प्रभावशाली घटको का पता लगाया जा सका है वे निम्न-लिखित है —

(1) पृष्ठभूमि के रग की सतृप्ति।

(2) पृष्ठभूमि तथा उद्दीपक रगो की चमक मे पाई जाने वाली भिन्नता।

(3) पृष्ठभूमि और उद्दीपक के आकार।

(4) उद्दीपक रग की सीमा-रेखा (कन्टूअर)[1]।

(5) उद्दीपक और पृष्ठभूमि के किनारे (बार्डर)।

स्टीवर्ट[2] (1959) के अनुसार जब पृष्ठभूमि के रग मे अधिक और उद्दीपक रग मे कम सतृप्ति विद्यमान होती है तो विरोधी-प्रभाव अधिक स्पष्ट दिखलाई पडता है। यदि उद्दीपक रग की सतृप्ति शून्य होने के कारण वह भूरा दिखलाई पडने लगे तो विरोधी-प्रभाव अधिकाधिक हो सकता है। इसी प्रकार धरातल और उद्दीपक रगो की चमको मे जितना अधिक अतर होगा विरोधी-प्रभाव की मात्रा उतनी ही कम होगी। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यदि धरातल एव उद्दीपक रगो की चमक समान होगी तो विरोधी-प्रभाव अधिकतम होगा। परन्तु ऐसी बात

---

1 Contour 2 Stewart

रगीन विरोध मे ही पायी जाती है। काले, सफेद और भूरे रगो के सदर्भ मे पृष्ठ-भूमि और उद्दीपक रगो की चमक मे जितना ही अधिक अतर होगा विरोधी-प्रभाव उतना ही अधिक दृष्टिगोचर होगा। जेम्सन तथा हर्विक[1] (1961) ने अपने प्रयोगो मे देखा कि पृष्ठभूमि और उद्दीपक रगो की सीमा-रेखाओ पर रग-विरोध घटना अधिक स्पष्टत अनुभव की जा सकती है। रग-विरोध का एक प्रमुख नियम इस तथ्य की ओर भी सकेत करता है कि जब पृष्ठभूमि का आकार बडा और उद्दीपक का आकार छोटा होता है तो विरोधी-प्रभाव अधिक स्पष्ट दिखलाई पडता है। अत मे, इस सदर्भ मे मॉक-प्रभाव की चर्चा कर देना अनुपयुक्त न होगा। सर्वप्रथम जर्मन मनोवैज्ञानिक मॉक ने काली-सफेद आकृतियो के साथ प्रयोग करते हुए यह पाया कि काले और सफेद रगो के मिलन बिन्दुओ पर विरोधी-प्रभाव अत्यन्त स्पष्ट और अधिकाधिक मात्रा मे देखा जाता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो काले और सफेद रगो के बीच एक भूरे रग की पतली पट्टी निर्मित हो गई है।

खण्ड (ख)

श्रवण-सवेदनशीलता

प्राणी के जीवन मे नेत्रगत अनुभूतियो की ही भाँति श्रवण-अनुभूतियो का भी बहुत अधिक महत्व होता है। श्रवण अनुभूतियाँ हमे कान के माध्यम से प्राप्त होती हैं। श्रवण-सवेदना की क्षमता के कारण ही व्यक्ति अपने भौतिक एव सामाजिक वातावरणो के साथ अपना समुचित समायोजन स्थापित कर पाता है। दृष्टिहीन लोगो के लिए तो कान एक अत्यन्त आवश्यक शारीरिक अग समझा जाता है। आँख से हम एक समय मे किसी एक ही दिशा मे स्थित अथवा घटित होने वाले दृश्यो का अनुभव कर पाते हैं। परन्तु कान की सहायता से हमे अपने चारो ओर विद्यमान ध्वनि-स्रोतो[2] की उपस्थिति का ज्ञान होता रहता है। आँख की ही भाँति हमे कान से भी दूरी और दिशा का बोध होता है। कान के भीतर ध्वनियो की तीव्रताओ को पहचानने की कुशलता होने के कारण हम यह जान पाते है कि कौनसा ध्वनि-स्रोत हमारे निकट है और कौन सा हमसे दूर है। जब कोई खतरे की वस्तु हमारे पास आ रही होती है तो उससे उत्पन्न ध्वनि को सुनकर ही हम साव-धान हो जाते हैं। नित्यप्रति हम कान की सहायता से विभिन्न प्रकार की ध्वनियो को सुनते रहते है तथा सुरीली ध्वनि और कोलाहल का अन्तर समझ पाते हैं। कान से सुरीली ध्वनियो को सुनकर हम उतनी ही प्रसन्नता का अनुभव करते है जितनी सुन्दर दृश्यो को आँखो से देखने पर। यदि प्रकृति ने मानव को कर्णेन्द्रिय न दिया होता तो मनुष्य निश्चय ही टेलीफोन, रेडियो तथा ट्राजिस्टर के आधुनिक वैज्ञानिक चमत्कारो को न समझ पाता और श्रव्यात्मक अनुभूतियो के आनन्द से सर्वथा वचित रह जाता।

---

1 Jameson and Hurvich 2 Sources of sound

श्रवण-उद्दीपक

जिस प्रकार नेत्र को प्रकाश की तरगें उद्दीप्त करती हैं उसी प्रकार कान ध्वनि-तरगो[1] द्वारा उद्दीप्त होते हैं। अत ध्वनि-तरगें ही मूल रूप से श्रवण-सवेदना के लिए उद्दीपक का कार्य करती है। परन्तु इन ध्वनि-तरगो की उत्पत्ति किस प्रकार होती है ? जव भौतिक वातावरण मे कोई वस्तु अथवा ध्वनिस्रोत कम्पित होता है तो उसके चारो ओर उपस्थित हवा के कण भी कम्पित होकर आगे पीछे खिसकते हैं। ये हवा के कण अन्य समीपस्थ वायु-कणो को भी स्पन्दित करते है और फलस्वरूप ध्वनि-तरगो की उत्पत्ति होती है। ध्वनि-तरगें हवा के माध्यम से चारो ओर वातावरण मे फैलने लगती है। जब ध्वनि-तरगें हमारे कान तक हवा मे चलकर पहुँचती हैं, तो वे कान के पर्दे को प्रभावित करती हैं। शीघ्र ही वे मध्य-कान से होती हुई भीतरी कान मे प्रविष्ट हो जाती हैं और वहाँ स्थित ध्वनि के ग्राहको को उद्दीप्त करती है। उनके उद्दीपन की सूचना मस्तिष्क मे सम्बन्धित नाडियो द्वारा पहुँचा दी जाती है और तव हमे ध्वनि की सवेदना का अनुभव होता है।

श्रवण अनुभूतियो के रहस्य को समझने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि श्रवण के उद्दीपको अर्थात् ध्वनियो के स्वभाव तथा ध्वनि के ग्राहक-यन्त्र[2] की क्रियाशीलता दोनो की यथोचित जानकारी प्राप्त की जाय। जहाँ तक ध्वनि के स्वभाव का प्रश्न है, इसके भीतर अनेक भौतिक विशेपताएँ पाई जाती हैं। पहली वात तो यह है कि किसी ध्वनि-उत्पादक स्रोत मे कम्पन या स्पन्दन[3] होने पर ही ध्वनि उत्पन्न होती है। जव तक किसी वस्तु मे कम्पन न होगा तव तक आस-पास
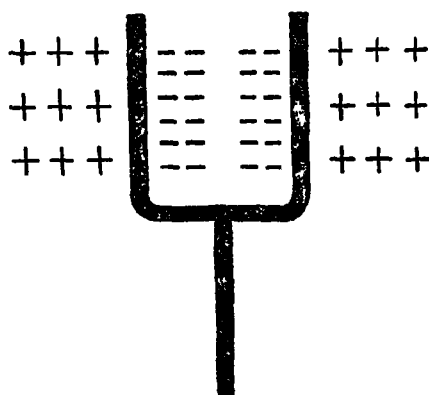
चित्र सख्या 3 4 ध्वनि उत्पादक यत्र-स्वरित्र (ट्यूनिग फोर्क)

के वायुकण स्पन्दित न हो सकेंगे और फलस्वरूप ध्वनि-तरगें उत्पन्न न हो पायेंगी। ध्वनि की लहरें हवा मे चलकर वायुमण्डल की प्रत्येक दिशा मे फैल जाती है। इन

---

1 Sound waves 2 Auditory receptor mechanism 3 Vibration

लहरो की गति 1100 फीट प्रति सेकेण्ड होती है। प्रयोगशाला मे ध्वनि उत्पन्न करने के लिए एक यन्त्र स्वरित्र या ट्यूनिंग-फोर्क[1] का प्रयोग किया जाता है। स्वरित्र धातु का एक छोटा सा यन्त्र होता है जिसकी दोनो भुजाएँ स्पन्दित की जा सकती है (देखिये चित्र सख्या 3 4) जब स्वरित्र की भुजाओ मे कम्पन होने लगता है तो आस-पास के वायुकण भी उसके धक्के खाकर आगे बढते है और अन्य कणो को कम्पित करते हुए गति देते हैं। जब स्वरित्र की भुजा बाहर की ओर कम्पित होती है तो वायुकणो पर दबाव पडता है और वे आगे बढते है परन्तु जब उसकी भुजा भीतर की ओर लौटती है तो वायु कणो पर दबाव हल्का हो जाता है। स्वरित्र के इस प्रकार नियमित कम्पन के कारण ध्वनि-तरगो मे आवर्ती गति (हारमोनिक मोशन)[2] पाई जाती है। यदि इस स्थिति को कीमोग्राफ[3] पर अकित किया जाय तो निम्नाकित चित्र प्राप्त होगा।
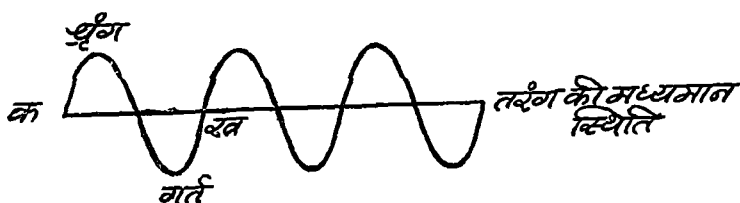
चित्र सख्या 3 5 ध्वनि-तरग का आयाम

जब ध्वनि उत्पादक स्रोत वायु-कणो को दबाता है तो वायुकणो मे सघनन[4] (सघनता) होने लगता है और ध्वनि तरग अपनी मध्यमान स्थिति से ऊपर उठ जाती है। जब स्रोत विपरीत दिशा मे लौटता है तो वायु कणो मे विरलन[5] (फैलाव) होने लगता है और लहर अपनी मध्यमान स्थिति से नीचे की ओर जाती है। यह ध्वनि का आयाम[6] कहा जाता है। पूरे एक कम्पन मे कोई वस्तु अपनी मध्यमान स्थिति के दोनो ओर अधिक से अधिक जितना स्थानान्तरण करती है उसे उसका आयाम अथवा कम्पन-विस्तार कहते है। ध्वनि की तरगें ध्वनि-स्रोत के नियमित कम्पन के कारण आवर्ती गति से जब आगे बढती है, तो उनमे नियमित चढाव-उतार या शृग[7] और गर्त[8] पाये जाते है। ऐसी गति से चलने वाली ध्वनि-तरगें जितनी उपर उठती है उतनी ही नीचे भी गिरती है। अर्थात् उनका स्थानान्तरण[9] मध्यमान स्थिति से ऊपर-नीचे समान मात्रा मे होता है।

परन्तु प्रत्येक ध्वनि उत्पादक स्रोत से समान रूप से कम्पन नही होता। विभिन्न स्रोतो मे प्रति सेकेण्ड होने वाले कम्पनो की सख्या अलग-अलग होती है।

---

1 Tuning fork 2 Harmonic motion 3 Kymograph 4 Condensation 5 Rarefaction 6 Amplitude 7 Crest 8 Trough 9 Displacement

इसीलिए भिन्न-भिन्न ध्वनि-तरगो मे प्रति सेकेण्ड होने वाले चक्रो की सख्या भी भिन्न-भिन्न होती है। कम्पन करने वाली कोई वस्तु एक सेकेण्ड मे जितनी बार आगे-पीछे हिलती है उस सख्या को उसकी आवृत्ति[1] कहा जाता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि ध्वनि-तरगें भिन्न-भिन्न आवृतियो की होती हैं। इस सदर्भ मे यह स्मरणीय है कि सभी प्रकार की आवृतियो वाली ध्वनि-तरगें हमारे कान पर अपना प्रभाव नही डाल पाती। मनुष्य के कान को प्रभावित केवल वही तरगें कर पाती हैं जिनकी आवृति प्रति सेकेण्ड 20 और 20,000 के बीच होती है। इस सीमा के वाहर की आवृति वाली ध्वनि-तरगें हमे सामान्यत सुनाई नही पडती।

ध्वनि की एक तीसरी विशेपता यह होती है कि यह एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचने के लिए सदा किसी न किसी माध्यम का सहारा लेती हे। सामान्यत हवा को ध्वनि का सर्वोत्तम माध्यम[2] समझा जाता है, परन्तु हवा के अतिरिक्त ध्वनि को ले जाने वाले अन्य माध्यम भी पाये जाते हैं। पानी के सहारे भी ध्वनि तरगें आगे वढती है। रेल की पटरी पर कान लगाने से दूर चलती गाडी की आवाज सुनाई देती है। जो स्थान वायु रहित होता है वहाँ होकर ध्वनि नही गुजर पाती। इस वात को समझने के लिए वेलजार[3] का प्रयोग किया जाता है। एक शीशे के वेलजार मे विजली की घटी लगाकर उसकी ध्वनि सुनी जा सकती है, परन्तु जव जार मे से सारी हवा वायु चूपक नली द्वारा निकाल दी जाती है तो घटी की ध्वनि नही सुनाई पडती। इससे यह सिद्ध होता है कि ध्वनि आगे वढने के लिए किसी लचीले माध्यम का सहारा ढूंढती है।

जिस प्रकार प्रकाश की तरगें किसी अवरोध के कारण परावर्तित हो जाती हैं उसी तरह ध्वनि-तरगें भी अवरोध के कारण परावर्तित हो जाया करती है। जव किसी वडे कमरे मे हमारी आवाज दीवार से टकराती है तो वह हमारी ओर वापस लौटती है। हमे प्रतिध्वनियो[4] का अनुभव इसी परावर्तन के कारण होता है। जव हम किसी गुम्वज वाले मकान मे वोलते हैं तो प्रतिध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। किसी कुए के मुंह पर वोलने से ध्वनि जल के धरातल से टकराकर वापस लौट जाती है। इसीलिए रहने के कमरो को ऐसा वनाया जाता है कि वह साधारण वातचीत की ध्वनि को अवशोपित कर लें। यदि ऐसा न होगा तो हमारी ध्वनियाँ वार-वार लौट कर हमे सुनाई पडती रहेगी।

ध्वनि-तरगें सदा उतार-चढाव के साथ आगे वढती है। जव कोई तरग शून्य विन्दु से एक वार ऊपर उठकर और एक वार नीचे गिरकर पुन अपनी मध्यमान स्थिति अर्थात् शून्य विन्दु पर आ जाती है तो इसे उस तरग का एक चक्र या सायकिल कहा जाता है। पृष्ठ 110 पर चित्र सख्या 3 5 मे क से ख

---

1 Frequency 2 Medium 3 Bell-jar 4 Echoes

विन्दु तक तरग का एक चक्र माना जायगा । कोई ध्वनि एक सेकेण्ड मे जितने चक्र लगाती है यह उसकी आवृत्ति या फ्रिक्वेंसी कही जाती है । किसी तरग को एक चक्र पूरा करने मे कुछ न कुछ समय लगता है । इस समय को तरग-काल[1] कहा जाता है । जिस तरग की आवृत्ति जितनी कम होगी उसका तरग-काल उतना ही अधिक होगा और जिसकी आवृत्ति जितनी अधिक होगी उसका तरग-काल उतना ही कम होगा । इस प्रकार ध्वनि-तरगो की आवृत्ति तथा उनके काल मे निषेधात्मक[2] सम्बन्ध पाया जाता है ।

सामान्य तौर पर ध्वनियो को दो प्रकारो मे बाँटा जा सकता है—एक प्रकार की वह ध्वनि होती है जो आवर्ती गति से उत्पन्न होती है । ऐसी ध्वनि-तरगो को "साइन"[3] तरग कहते है और इनसे शुद्ध तान[4] की सवेदना होती है । परन्तु जितनी ताने हम नित्यप्रति सुनते रहते है उनमे शुद्ध तानो की मात्रा बहुत ही कम रहती है । वायलिन तथा सितार आदि से निकली हुई तरगे जटिल[5] होती है । कोलाहल, बातचीत तथा सगीत मे इसी प्रकार की जटिल तरगे उत्पन्न होती हैं क्योकि ऐसी दशाओ मे जो विभिन्न ध्वनि-तरगें उत्पन्न होती है उनके आयामो, आवृत्तियो तथा कलाओ[6] मे परस्पर भिन्नता पाई जाती है । जब दो या अधिक ध्वनि-तरगो के आयाम आवृत्तियो तथा कलाओ मे भिन्नता होती है तो उनसे जटिल तानो की सवेदना होती है । इन जटिल तानो की सवेदना शुद्ध तानो की सवेदना से सर्वथा भिन्न होती है ।

ध्वनि-तरगो की उपर्युक्त भौतिक विशेषताओ के आधार पर यह कहा जा सकता है कि एक ध्वनि तरग दूसरी ध्वनि-तरग से मुख्यत तीन बातो मे भिन्न हो सकती है—आवृत्ति, आयाम और रूप मे । अर्थात् एक तरग एक सेकेण्ड मे एक दूसरी तरग की अपेक्षा कम या अधिक चक्र की गति से चल सकती है । किसी एक तरग मे दूसरी की अपेक्षा स्थानान्तरण होने के कारण उसका शृ ग और गर्त मध्यमान स्थिति से अधिक ऊँचे और नीचे हो सकते हैं और इस प्रकार दो तरगो का आयाम
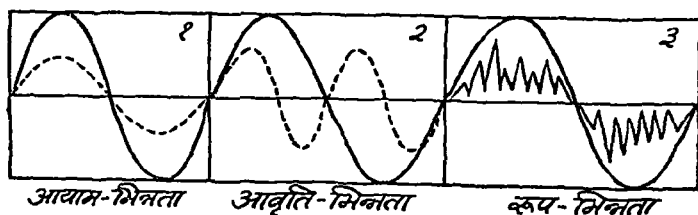
चित्र सख्या 3 6 तरग भिन्नता के आधार

1 Period of the wave 2 Negative 3 Sine Waves 4 Pure tone 5 Complex 6 Phases

भिन्न हो सकता है। अत मे, एक तरग शुद्ध साइन तरग हो सकती है, जबकि एक दूसरी तरग जटिल हो सकती है। ध्वनि-तरगो की इन भिन्नताओ को चित्र सख्या 3 6 मे दिखलाया गया है।

ध्वनि की मनोवैज्ञानिक विशेषताए

जिस प्रकार ध्वनि के भीतर आवृत्ति और तीव्रता जैसी भौतिक विशेपताएँ पाई जाती हैं, उसी प्रकार अनुभूत ध्वनि अर्थात् श्रवण अनुभूतियो मे कुछ मनोवैज्ञानिक विशेपताएं दिखलाई पडती हैं। श्रवण -अनुभूति की ये विशेपताएँ है—तारता[1], उच्चता[2] तथा लक्षण या गुण[3]। तारता ध्वनि-अनुभव के पतलेपन या मोटेपन को व्यक्त करती है। उच्चता यह वतलाती है कि कोई ध्वनि तीव्र है अथवा मन्द, सवल है या दुर्वल। इसी प्रकार ध्वनि के लक्षण से उसका गुण पता चलता है। अर्थात् सितार की ध्वनि और वासुरी की ध्वनि मे अन्तर ध्वनि-अनुभूति के लक्षण के आधार पर ही समझा जाता है। श्रवण अनुभूति की उक्त तीन विशेपताओ को भ्रमवश ध्वनि उद्दीपन की भौतिक विशेपताएँ नही समझना चाहिए क्योकि ये विशेपताएं अनुभूत विशेपताएँ हैं और इनका आधार मनोवैज्ञानिक है। परन्तु ध्वनि की मनोवैज्ञानिक विशेपताएं ध्वनि उद्दीपक की भौतिक विशेपताओ के साथ घनिष्ठ रूप से सम्वन्धित होती है। ध्वनि उद्दीपक की आवृत्ति, तीव्रता तथा रूप क्रमश तारता, उच्चता तथा लक्षण के भौतिक सहसम्वन्धी[4] समझे जाते हैं। अर्थात् ध्वनि की तारता ध्वनि तरगो की आवृत्ति पर, उच्चता ध्वनि तरगो की तीव्रता या आयाम पर और लक्षण ध्वनि-तरगो के रूप पर निर्भर होता है। अत स्पष्ट है कि ध्वनि की भौतिक और मनोवैज्ञानिक विशेपताओ के वीच कार्यात्मक सम्वन्ध[5] पाया जाता है। यहाँ श्रवण-अनुभूति की विशेपताओ तथा उनके भौतिक सहसम्वन्धियो पर सक्षेप मे प्रकाश डाला जायेगा।

1 तारता

तारता ध्वनि का वह गुण है जिसके आधार पर ध्वनि को मोटी या तीक्ष्ण कहा जाता है। दैनिक जीवन की श्रव्यात्मक अनुभूति मे मोटी एव तीक्ष्ण ध्वनियो के अनेक उदाहरण मिलते हैं। मच्छर की भनभनाहट यद्यपि वहुत मन्द होती है तथापि उसके भीतर तीक्ष्णता पायी जाती है। इसके विपरीत शेर की दहाड तीव्र होने के वावजूद भी मोटी होती है। हारमोनियम के वायी ओर मोटे स्वर और दाहिनी ओर तीक्ष्ण स्वर उत्पन्न होते है। मोटी ध्वनि को नीची तारता[6] (लो पिच) की तथा तीक्ष्ण ध्वनि को ऊँची तारता[7] (हाई पिच) की ध्वनि कहा जाता है। इस प्रकार मच्छर की भनभनाहट की तारता शेर की दहाड की तारता से ऊँची होती है।

तारता एव ध्वनि-तरगो की आवृति—ध्वनि की तारता उसकी आवृति पर

---

1 Pitch 2 Loudness 3 Timbre or quality 4 Physical correlates 5 Functional relationship 6 Low pitch 7 High pitch

निर्भर होती है और इस दृष्टि से आवृत्ति को तारता का सबसे प्रमुख भौतिक सह-सम्बन्धी माना जाता है। आवृत्ति के बढने और घटने के कारण ही तारता मे भी उतार या चढाव की अनुभूति होती है। ज्यो-ज्यो ध्वनि के कम्पनो की सख्या बढती जाती है ध्वनि अधिक तीक्ष्ण होती जाती है। कम लम्बाई से ध्वनि तीक्ष्ण और अधिक लम्बाई से वह मोटी हो जाती है। इसीलिए जब कोई रेल का इजन हमारे पास से गुजरता है तो उसकी आवाज तीक्ष्ण लगती है लेकिन जब वह दूर निकल जाता है तो उसकी ध्वनि मोटी हो जाती है और उसकी तारता नीची हो जाती है। सामान्यत ज्यो-ज्यो ध्वनि-लहरो की आवृत्ति बढती है, त्यो-त्यो ध्वनि की तारता बढती जाती है। विभिन्न कम्पनशील उपकरणो से प्रति सेकेण्ड उत्पन्न होने वाले कम्पनो की सख्या अलग-अलग होती है। उदाहरण के लिए, एक उपकरण 256 चक्र प्रति सेकेण्ड वाला हो सकता है और दूसरा उपकरण 1024 चक्र प्रति सेकेण्ड वाला। अत पहले उपकरण से उत्पन्न ध्वनि कम तारता की होगी जबकि दूसरे यन्त्र से उत्पन्न ध्वनि ऊँचे तारत्व की होगी।

2 उच्चता

उच्चता ध्वनि की वह मनोवैज्ञानिक विशेपता है जिसके कारण वह हमे मद या तीव्र, धीमी या तेज सुनाई पडती है। जब कोई हवाई जहाज हमारे मकान के ऊपर थोडी ऊँचाई पर उडता हुआ जाता है तो उसकी ध्वनि बडी तीव्र प्रतीत होती है। परन्तु जब वह बहुत ऊँचाई पर उडता है तो उसकी ध्वनि मद लगती है। ध्वनि की उच्चता या तीव्रता डेसीबेल[1] के रूप मे व्यक्त की जाती है। साधारण बातचीत मे ध्वनि की उच्चता 40 से 60 डेसीबेल तक होती है। बीस फीट दूर मोटर की साधारण भोपू की उच्चता 40 डेसीबेल समझी जाती है। इसी प्रकार जब कोई हवाई जहाज नीचे उतरने लगता है तो उसकी ध्वनि की उच्चता 100 डेसीबेल तक हो जाती है। किसी ध्वनि की उच्चता 120 डेसीबेल तक हो जाने पर वह कष्टदायक हो जाती है।

उच्चता एव ध्वनि-तरगो की तीव्रता—श्रव्यात्मक अनुभूति की उच्चता मुख्यत ध्वनि-तरगो की तीव्रता पर निर्भर होती है। ध्वनि-तरगो की तीव्रता बढने से ध्वनि की उच्चता भी बढ जाती है। परन्तु उच्चता प्रारम्भ मे धीरे-धीरे ही बढती है और बाद मे उसकी गति तीव्र हो जाती है। ध्वनि की उच्चता ध्वनि-तरगो के आयाम पर भी निर्भर होती है। आयाम जितना ही अधिक होगा ध्वनि मे उतनी ही अधिक तीव्रता पाई जायेगी। इसके अतिरिक्त जब ध्वनि चारो ओर फैल जाती है तो भी उसकी तीव्रता कम हो जाती है। यदि कोई ध्वनि किसी नली के माध्यम से कान तक पहुँचाई जाती है तो उसकी तीव्रता ज्यो की त्यो बनी रहती है। टेलीफोन इसी सिद्धान्त पर आधारित है।

---

1 Decibel

उच्चता एव ध्वनि-तरगो की आवृत्ति—श्रवण-अनुभूति की उच्चता ध्वनि-तरगो की आवृत्तियो पर भी आधारित होती है। सुनाई पडने के लिये यह आवश्यक है कि किसी निश्चित आवृत्ति की ध्वनि के भीतर एक निश्चित तीव्रता भी पाई जाये। अत ज्यो-ज्यो ध्वनि-तरगो की आवृत्तियो मे परिवर्तन होता है त्यो-त्यो उनकी तीव्रता मे भी परिवर्तन होता जाता है। केवल ऐसा होने पर ही किसी ध्वनि की उच्चता समान बनी रह सकती है।

3 लक्षण

ध्वनि की वह विशेषता जिसके कारण हम समान तीव्रता और समान आवृत्ति के दो स्वरो मे भिन्नता की पहचान कर सकते है, लक्षण या गुण कहलाती है। स्वर का लक्षण तरग के रूप पर निर्भर करता है। स्वर मुख्यत दो प्रकार के होते है—शुद्ध और जटिल। जैसा पहले बतलाया गया है, ध्वनि उत्तेजक साइन तरगो से शुद्ध स्वरो का अनुभव होता है। जब इस प्रकार के कई शुद्ध स्वर मिल जाते है तो उनसे जटिल स्वरो की उत्पत्ति होती है। दैनिक श्रव्यात्मक अनुभूति मे हमे शुद्ध स्वरो की अनुभूति बहुत ही कम हो पाती है। अधिकाश स्वर जटिल होते हैं। साधारण बातचीत, सगीत तथा कोलाहल मे ध्वनियो के स्वरो का स्वरूप जटिल ही होता है। इसके अतिरिक्त हारमोनियम, तबला तथा सितार से निकले हुए स्वर गुण या लक्षण मे एक दूसरे से भिन्न होते हैं। इसीलिए उनसे भिन्न प्रकार की श्रव्यात्मक अनुभूतियाँ श्रोता को होती है।

लक्षण एव आवृत्ति तथा तीव्रता—जब विभिन्न स्पन्दनशील उपकरणो से भिन्न-भिन्न आवृत्ति तथा तीव्रता की ध्वनि तरगें उत्पन्न होती है तो उनका रूप एक दूसरे से भिन्न होता है। ध्वनियो की आवृत्ति और तीव्रता मे परिवर्तन होने के कारण ही उनके रूप मे परिवर्तन आता है और फलस्वरूप पीरियाडिक तरगें जटिल तरगो मे बदल जाती है। वास्तव मे जटिल तरगो की उत्पत्ति शुद्ध साइन तरगो से ही होती है। किसी जटिल तरग का विश्लेषण करके शुद्ध तरगो या साइन तरगो को ढूंढ निकाला जा सकता है। निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार ध्वनि की आवृत्ति पर उसकी तारता और तीव्रता पर उच्चता निर्भर होती है उसी प्रकार ध्वनि के रूप पर उसका गुण या लक्षण निभर होता है।

अनुभूत स्वरो का वर्गीकरण

ऊपर ध्वनि की जिन विविध भौतिक एव मनोवैज्ञानिक विशेषताओ का उल्लेख किया गया है वे किसी एक प्रकार की ध्वनि तरग से सम्बन्धित होती है। हम अपने दैनिक जीवन मे अधिकाशत जटिल स्वरो को सुनते रहते हैं जिनका सम्बन्ध दो या अधिक तरगो से होता है। यहाँ कुछ श्रव्यात्मक अनुभूतियो का सक्षेप मे वर्णन किया गया है जो एक से अधिक ध्वनि-तरगो के मिलने से उत्पन्न होती है।

ताल

जव हम उन दो ध्वनि-तरगो को एक ही साथ सुनते है जिनकी आवृत्तियो मे वहुत थोडा अन्तर होता है तो हमे ताल[1] का अनुभव होता है। ताल के अनुभव के लिये यह आवश्यक है कि एक ही साथ सुनी जाने वाली दोनो ध्वनि-तरगो मे प्रति सेकेण्ड होने वाले चक्रो की सख्या मे केवल थोडा ही अन्तर हो। उदाहरण के लिये, यदि किसी प्रयोज्य के कान को 1000 चक्र प्रति सेकेण्ड वाली और दूसरी 1500 चक्र प्रति सेकेण्ड वाली दो ध्वनि-तरगो द्वारा एक ही साथ उत्तेजित किया जाए तो वह दो स्पष्ट स्वरो को सुनेगा जिनकी तारता एक दूसरे से भिन्न होगी। यदि इन दोनो ध्वनियो की आवृत्तियो का अन्तर कम कर दिया जाये अर्थात् एक ध्वनि 1000 और दूसरी 1100 आवृत्ति की हो तो उनके द्वारा उत्पन्न दोनो स्वर पहले की भाँति स्पष्ट नही होगे। यहाँ तक कि जब उक्त दोनो तरगो की आवृत्तियो का अन्तर 10 या 20 चक्र ही रह जाता है तो दो पृथक स्वर न सुनायी पडकर केवल एक ही स्वर सुनाई पडेगा। परन्तु यह स्वर ऐसा होगा जिसकी उच्चता घटती वढती प्रतीत होगी। इस घटना को ताल कहा जाता है।

ताल मे जो ध्वनि की उच्चता का उतार-चढाव अनुभव किया जाता है वह उन दोनो ध्वनियो के परस्पर सम्वन्ध के कारण होता है। मान लिया जाय कि एक ध्वनि-तरग 256 चक्र प्रति सेकेण्ड तथा दूसरी 257 चक्र प्रति सेकेण्ड वाली है। ऐसी दशा मे दूसरी तरग 1 सेकेण्ड मे एक चक्र अधिक लगायेगी जिसके कारण हमे एक ताल का अनुभव होगा। जव एक तरग 256 और दूसरी 258 चक्र की होगी तो एक सेकेण्ड मे दो तालो का अनुभव होगा। ऐसा इसलिये होता है क्योकि दोनो तरङ्गो की कलाओ मे अन्तर हो जाता है। अर्थात् दोनो तरगे एक ही साथ अपने स्रोतो से उत्पन्न होती हैं तो एक सेकेण्ड तक उन दोनो के शृङ्ग और गर्त एक दूसरे के समान होगे। परन्तु एक सेकेण्ड के वाद दोनो तरगो की आवृत्तियो मे जितना अन्तर होगा एक सेकेण्ड मे उतनी ही वार ध्वनि की उच्चता मे उतार अनुभव होगा। इस घटना के भौतिक आधार को समझ लेने से ताल की व्याख्या और अधिक सरल एव स्पष्ट हो जाती है। जव उक्त दोनो ध्वनि-तरगें हमारे कान मे प्रवेश करती हैं और वेसिलर मेम्ब्रेन को प्रभावित करती हैं, उस समय एक सेकेण्ड तक तो दोनो तरगें सम्मिलित रूप से वेसिलर मेम्ब्रेन के तन्तुओ को उत्तेजित करती हैं। ऐसा होने से सम्मिलित उत्तेजना एक तरग की अकेली उत्तेजना की अपेक्षा अधिक तीव्र हो जाती है। फलस्वरूप ध्वनि के भीतर उच्चता वढ जाती है। परन्तु जव एक सेकेण्ड वाद दोनो तरगो की कलाएं भिन्न हो जाती हैं तो वेसिलर मेम्ब्रेन के तन्तुओ पर वे एक दूसरे के प्रभाव को खत्म कर देती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि एक वार ध्वनि तीव्र सुनाई पडती है

1 Beats

और दूसरी वार मद। दूसरे शब्दो मे, ध्वनि की उच्चता मे उतार-चढाव का अनुभव होने लगता ह। यही ताल की विशेपता है।

अन्तर स्वर

जव दो भिन्न आवृत्तियो की तरगे एक ही समय हमारे कान को उद्दीप्त करती है और हमे अलग-अलग दो स्वरो का अनुभव होता है उस समय यदि ध्यान दिया जाय तो एक तीसरा स्वर भी हमे सुनायी पडेगा। उस तीसरे स्वर की तारता दोनो मौलिक स्वरो की तारता से नीची होती है और इस तीसरे स्वर को अन्तर स्वर[1] कहते है क्योकि इसकी तारता उतनी ही होती है जितनी दोनो मौलिक ध्वनि-तरगो की भिन्नता वाली तरग की होगी। उदाहरण के लिये, यदि एक स्वर 500 आवृत्ति तथा दूसरा 600 आवृत्ति वाला हो तो अन्तर स्वर अर्थात् तीसरे स्वर की आवृत्ति 600 – 500 = 100 होगी। अत अन्तर स्वर की आवृत्ति इतनी कम होने के कारण उसकी तारता भी नीची होगी। यदि दोनो मौलिक स्वर क्रमश 1000 और 1200 आवृत्तियो वाले होगे तो अन्तर स्वर की आवृत्ति 200 होगी और उसकी तारता उतनी होगी जितनी 200 आवृत्ति वाली तरग की होती है। अन्तर स्वर के भीतर निम्नलिखित मुख्य वातें पायी जाती ह

(1) अन्तर स्वर की तारता केवल उतनी ही आवृत्ति की तरग की तारता के वरावर होती है जितनी आवृत्ति का अन्तर दोनो मौलिक ध्वनि तरगो मे पाया जाता है।

(2) जव दोनो मौलिक स्वरो की आवृत्तियाँ काफी ऊँची होती है और जव दोनो की आवृत्ति मे काफी अन्तर होता है, तव अन्तर स्वर अधिक स्पप्ट रूप से सुना जा सकता है। जव दोनो मौलिक स्वरो की आवृत्तियो मे 30 से कम का अन्तर होगा तो अन्तर स्वर नही सुना जा सकता।

(3) जव दोनो मौलिक स्वरो की तीव्रता काफी ऊँची तथा काफी समान होती है, तव अन्तर स्वरो को अधिक अच्छी प्रकार सुना जा सकता है।

यौगिक स्वर

जव दो भिन्न आवृत्तियो वाली ध्वनि-तरगे एक ही समय हमारे कानो को उत्तेजित करती हैं तो हम अलग अलग शुद्ध स्वरो को सुनते हैं। परन्तु यदि हम इन दोनो स्वरो की उपेक्षा करे तो एक तीसरा स्वर ऐसा सुनाई पडेगा जिसकी आवृत्ति दोनो मौलिक स्वरो की आवृत्तियो का योग होगा। उदाहरण के लिये, यदि एक मौलिक स्वर की आवृत्ति 500 और दूसरे की 700 हो तो तीसरे स्वर की आवृत्ति 500 + 700 = 1200 होगी। इस तीसरे स्वर को यौगिक स्वर[2] कहते है। यौगिक स्वरो को सुन सकना वास्तव मे वडा कठिन होता है। यौगिक स्वरो

---

1 Difference tone 2 Summation tone

का अनुभव मानसिक वृत्ति पर बहुत कुछ निर्भर होता है। *अर्थात् यदि हम यौगिक* स्वरो को सुनना चाहे तो हमे दोनो मौलिक स्वरो तथा अन्तर स्वर की ओर ध्यान नही देना चाहिए। जितना ही अधिक हम मौलिक और अन्तर स्वरो की उपेक्षा करेंगे उतना ही अधिक हमारे लिये यौगिक स्वरो को सुन सकना सम्भव हो पायेगा।

स्वरो का अवगुण्ठन

दैनिक जीवन की श्रव्यात्मक अनुभूति मे यह देखा जाता है कि जब दो ध्वनियाँ एक ही समय दो भिन्न स्रोतो से निकलती है तो एक के कारण दूसरी को स्पष्टत नही सुना जा सकता। मनोवैज्ञानिक प्रयोगो से ज्ञात होता है कि जब दो ध्वनियो की आवृत्तियो मे बहुत थोडा अन्तर होता है तो एक ध्वनि दूसरी को बहुत अच्छी तरह ढक लेती है और फलस्वरूप केवल एक ही सुनी जा सकती है। इस घटना को अवगुण्ठन[1] कहा जाता है। वह ध्वनि जो किसी दूसरी ध्वनि को ढक लेती है अवगुण्ठक ध्वनि[2] और वह ध्वनि जो दूसरी द्वारा ढक ली जाती है अव-गुण्ठित ध्वनि[3] कहलाती है। पूर्ण अवगुण्ठन केवल उसी दशा मे सम्भव हो पाता है जब अवगुण्ठक ध्वनियो की आवृत्तियो मे कोई अन्तर नही होता। उदाहरण के लिये, यदि दोनो ध्वनियो की आवृत्ति 500 हो तो अवगुण्ठन पूर्णतया सम्भव होगा। जब एक ध्वनि की आवृत्ति 500 और दूसरी की 700 हो, तो 700 आवृत्ति वाली ध्वनि 500 आवृत्ति वाली ध्वनि को अवगुण्ठित कर लेगी। परन्तु ध्वनियो का अवगुण्ठन मुख्यतया ध्वनि की तीव्रता पर निर्भर होता है। साधारणत अधिक तीव्र ध्वनि कम तीव्रता की ध्वनि को अवगुण्ठित कर लेती है। इस प्रकार जिस ध्वनि की तीव्रता 20 डेसिवेल होगी, वह 50 डेसिवेल वाली ध्वनि को अवगुण्ठित कर लेगी। मनोवैज्ञानिक प्रयोगो द्वारा यह निश्चित रूप से पता लगाया जा सकता है कि समान आवृत्तियो वाली अथवा भिन्न आवृत्तियो वाली ध्वनि की तीव्रता मे कितना अन्तर होने पर महत्तम अवगुण्ठन होगा। वास्तव मे, अवगुण्ठन की घटना ध्वनि की तीव्रता और आवृत्ति के पारस्परिक सम्बन्धो पर निर्भर होती है। यदि एक ध्वनि 1000 आवृत्ति की हो और दूसरी 1500 आवृत्ति की और दोनो की तीव्रता समान रखी जाय तो 1500 आवृत्ति वाली ध्वनि दूसरी को ढक लेगी। परन्तु यदि 1000 आवृत्ति वाली ध्वनि की तीव्रता 80 डेसिवेल तथा 1500 आवृत्ति वाली ध्वनि की तीव्रता केवल 50 डेसिवेल रखी जाय तो निश्चय ही 1000 आवृत्ति वाली ध्वनि 1500 आवृत्ति वाली ध्वनि को अवगुण्ठित कर लेगी। इससे स्पष्ट होता है कि ध्वनि के अवगुण्ठन की घटना का सम्बन्ध ध्वनि की आवृत्ति और उसकी तीव्रता दोनो की सम्मिलित प्रक्रियाओ का परिणाम होती है।

---

1 Masking of tones, 2 Masking tone, 3 Masked tone

अधिस्वर

जब किसी वाद्य यन्त्र के कसे हुए तार को छेडा जाता है तो एक मौलिक स्वर उत्पन्न होता है। परन्तु यदि उस तार के दूसरे, तीसरे, चौथे तथा पाँचवे अश को भी अलग-अलग छेडे तो इनमे से भी अलग-अलग स्वर उत्पन्न होगे। इन स्वरो को अधिस्वर[1] कहा जाता है। अधिस्वरो की विशेपता यह होती है कि ये मूलस्वर की दूनी तिगुनी या चौगुनी आवृत्ति के होते हैं। उदाहरण के लिये, यदि तार को छेडने से 500 आवृत्ति का स्वर उत्पन्न होता है तो उसके दूसरे अश को छेडने से 1000, तीसरे अश के छेडने से 1500 और चौथे से 2000 आवृत्तियो वाले स्वरो की उत्पत्ति होगी। तार के दूसरे अश से उत्पन्न अधिस्वर को प्रथम अधिस्वर कहा जाता है। इसी प्रकार यदि तार के किसी सिरे से तिहाई अश पर तार झंकृत किया जाय तो उससे उत्पन्न स्वर द्वितीय अधिस्वर कहलायेगा। प्रथम अधिस्वर मूलस्वर की अपेक्षा दुगनी आवृत्ति का होता है, इसलिये उसकी तारता मूलस्वर की तारता से ऊँची होगी। इसी प्रकार द्वितीय अधिस्वर की आवृत्ति प्रथम अधिस्वर की आवृत्ति से अधिक होगी और उसकी तारता भी प्रथम अधिस्वर की तारता से ऊँची होगी। परन्तु इन अधिस्वरो को सुनने के लिए कानो का अभ्यस्त होना बहुत आवश्यक समझा जाता है। वाद्य स्वरो से मौलिक स्वरो के अतिरिक्त अधिस्वरो की उत्पत्ति भी बहुत अधिक होती है।

श्रवण-सग्राहक

प्राणी की श्रव्यात्मक अनुभूति[2] उसके कान की रचना तथा ध्वनि-तरगो के स्वरूप पर निर्भर होती है। ऊपर ध्वनि तरगो की विशेपताओ का विश्लेपण किया जा चुका है। इस स्थान पर सक्षेप मे कर्णेन्द्रिय की रचना तथा इसकी क्रिया पर प्रकाश डाला जायेगा। रचना की दृष्टि से कान को तीन भागो मे बाँटा गया है— बाहरी कान, मध्य कान तथा भीतरी कान। कान का बाहरी भाग श्रवण-उद्दीपक अर्थात् ध्वनि-तरगो को ग्रहण करता है तथा मध्य भाग उनकी तीव्रता और प्रभावशीलता बढाकर उन्हे भीतरी कान मे भेजता है। भीतरी कान मे भौतिक उद्दीपक विद्युत रासायनिक आवेगो[3] के रूप मे परिवर्तित होकर श्रवण-स्नायुओ[4] के माध्यम से मस्तिष्क तक भेज दिया जाता है। मस्तिष्क मे स्थित श्रवण-केन्द्र तक पहुँचने पर उक्त आवेग मनोवैज्ञानिक सवेदनाओ के रूप मे अनुभूत होने लगते है।

बाहरी कान—बाहरी कान मे तीन अग सम्मिलित हैं—बाहर लटकता हुआ भाग,[5] कान की नली[6] तथा कान का पर्दा[7]। बाहर लटकते हुए भाग का मुख्य कार्य ध्वनि-स्रोत का स्थान निर्धारण करना होता है। भिन्न-भिन्न प्राणियो मे यह भाग

1 Overtones 2 Auditory experience 3 Electro-chemical impulses 4 Auditory nerves 5 Pinna 6 Ear canal 7 Ear drum or tympanic membrane

अलग-अलग आकार का पाया जाता है। कुछ पशु इस अग को घुमा फिरा कर सरलता से यह पता लगा लेते है कि ध्वनि किस दिशा से आ रही है। बाहर की ध्वनि कान की नली मे से होकर कान के पर्दे तक पहुँचती है। कान के पर्दे पर ध्वनि तरगो के टकराने से पर्दे मे स्पन्दन प्रारम्भ हो जाता है। कान की नली से एक भूरे रग का चिपचिपा पदार्थ उत्पन्न होता है जो कान के पर्दे के पास एकत्र होता रहता है। इस पदार्थ के कारण बाहरी हानिकारक वस्तुओ से भीतरी भागो की रक्षा होती है। साथ ही इसके कारण ध्वनि अनियमित और अनियन्त्रित रूप से कान मे प्रवेश नही करने पाती।
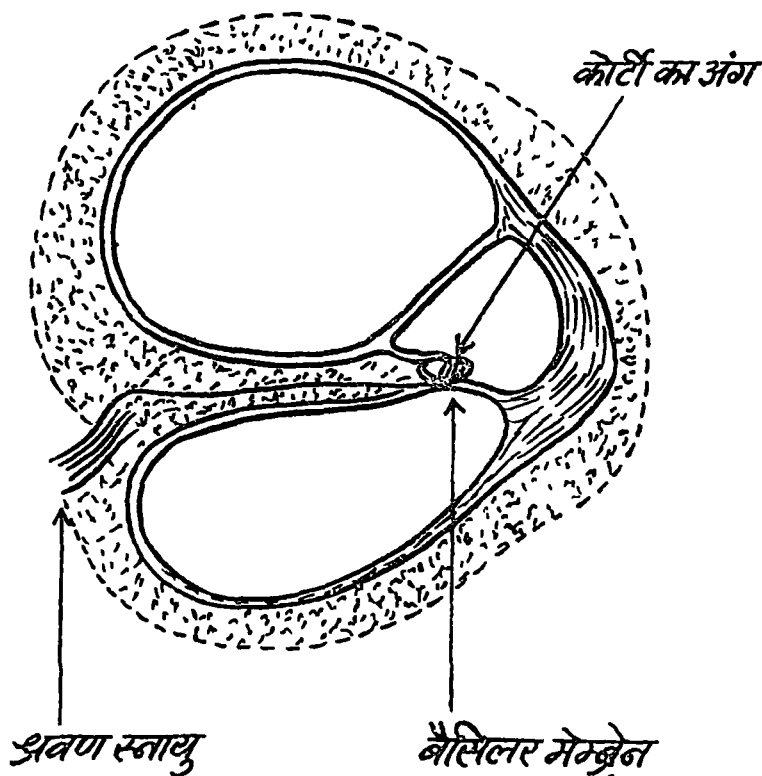
चित्र सख्या 3 7 श्रवण सग्राहक

मध्य कान—कान के पर्दे के पीछे हवा से भरा हुआ एक छोटा स्थान होता है जिसे बीच का कान कहा जाता है। इस भाग मे तीन मुख्य हड्डियाँ पाई जाती है

जिन्हे हथौडा[1], निहाई[2] तथा रकाव[3] कहते है। हथौडा कान के पर्दे से जुडा होता है और पर्दे के कपित होने पर हथौडे मे भी स्पन्दन होता है। हथौडे की गति निहाई को तथा निहाई की गति रकाब को स्पदित कर देती है। मध्य कान का मुख्य कार्य ध्वनि तरगो को तीव्र बनाकर भीतरी कान मे भेजना होता है। मध्य कान के अन्त मे एक अण्डाकार खिडकी[4] स्थित होती है जिसके साथ रकाब का एक छोर जुडा हुआ होता है। इसी खिडकी से होकर रकाव के स्पन्दन भीतरी कान मे प्रवेश करते है।

भीतरी कान—भीतरी कान की सरचना अपेक्षाकृत अधिक जटिल होती है। इस भाग मे मुख्य तीन अग होते है—वेस्टीब्यूलर नहर[5], अर्धवृत्ताकार नहर[6] तथा कॉक्लिया[7]। इसमे से प्रथम दोनो नहरो की क्रियाएँ श्रवण सवेदना से सम्बन्धित नही होती। केवल कॉक्लिया मे ही श्रवण-सग्राहक पाये जाते हैं। कॉक्लिया घुमावदार होने के कारण घोघे की शक्ल का दिखलाई पडता है जिसके भीतर एक तरल पदार्थ भरा होता है। कॉक्लिया के भीतर का एक मुख्य अग जिसे बैसिलर मेम्ब्रेन[8] कहते हैं, भौतिक ध्वनि-तरगो को विद्युत रासायनिक आवेगो मे परिवर्तित करता है। बैसिलर मेम्ब्रेन का एक छोर मध्य कान के रकाब से जुडा होता है और दूसरा छोर भीतरी कान से। ज्यो-ज्यो यह भीतरी कान मे अन्दर की ओर बढता जाता है इसकी चौडाई बढती जाती है। इस मेम्ब्रेन के ऊपर कई हजार रोम-ततु[9] पाये जाते हैं। इन रोम-तन्तुओ को सामूहिक रूप से कॉर्टी का अग[10] कहा जाता है और कान का यही भाग श्रवण सवेदना की अनुभूति के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता है। उक्त रोम तन्तु श्रवण-स्नायुओ से जुडे होते है। अत रोम-तन्तुओ के स्पदित होने पर आवेग श्रवण-स्नायुओ द्वारा मस्तिष्क मे पहुँचा दिया जाता है।

श्रवण-सिद्धान्त

हमारी कर्णेन्द्रिय किस प्रकार ध्वनि को ग्रहण करती है तथा हमे ध्वनि का अनुभव कैसे होता है, इस सन्दर्भ मे कई सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया गया है। इन सिद्धान्तो मे से प्रत्येक का आशिक रूप से समर्थन प्रयोगात्मक उपलब्धियो के आधार पर किया जाता है। प्रमुख श्रवण-सिद्धान्त कान की सरचना पर प्रकाश डालते हैं और इस प्रकार ध्वनि की तारता तथा उच्चता जैसी श्रव्यात्मक अनुभूतियो के भौतिक आधार की ओर सकेत करते है। इस स्थान पर कुछ मुख्य श्रवण-सिद्धान्तो का सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है।

(1) **अनुनाद सिद्धान्त**[11]

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन जर्मन मनोवैज्ञानिक हेलमहोल्ट्ज ने उन्नीसवी शताब्दी

---

1 Hammer 2 Anvil 3 Stirrup 4 Oval window 5 Vestibular canal 6 Semi-circular canal 7 Cochlea 8 Basilar membrane 9 Hair cells 10 Organ of corti 11 Resonance theory

रूदरफोर्ड[1] ने सन् 1886 ई० मे किया। इस आवृत्ति सिद्धान्त के अनुसार बैसिलर मेम्ब्रेन का न तो कोई विशेप स्नायु तन्तु किसी निश्चित आवृत्ति वाली ध्वनि-तरग द्वारा उत्तेजित होता है और न कोई विशेप क्षेत्र ही। जब कोई ध्वनि-तरग कान मे प्रविष्ट होकर बैसिलर मेम्ब्रेन मे पहुँचती है तो वह सम्पूर्ण मेम्ब्रेन को स्पन्दित करती है और मेम्ब्रेन आवेग को श्रवण-नाडियो की सहायता से ज्यो का त्यो मस्तिष्क मे भेज देता है। रूदरफोर्ड के इस सिद्धान्त को टेलीफोन सिद्धान्त इसलिये कहा जाता है क्योकि जिस प्रकार टेलीफोन का रिसीवर ज्यो का त्यो ध्वनि को कानो मे पहुँचा देता है। उसी प्रकार बेसिलर मेम्ब्रेन भी ध्वनि-तरगो को आवेगो मे बदलकर ज्यो का त्यो मस्तिष्क मे भेज देता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि सुनी गयी ध्वनि की तारता तथा उच्चता बैसिलर मेम्ब्रेन पर नही निर्भर होती बल्कि इनका अनुभव मस्तिष्क की क्रियाओ पर निर्भर होता है।

इस सदर्भ मे हमे यह भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि उक्त टेलीफोन सिद्धान्त तारता और उच्चता की श्रव्यात्मक अनुभूतियो की किस प्रकार व्याख्या करता है। टेलीफोन सिद्धान्त के अनुसार कोई ध्वनि-तरग जितनी आवृत्ति की होगी वह बैसिलर मेम्ब्रेन मे स्थित स्नायु तन्तुओ को प्रति सेकेण्ड उतनी ही बार स्पन्दित करेगी। उदाहरण के लिये, यदि कोई दस हजार चक्र प्रति सेकेण्ड की आवृत्ति वाली तरग कान मे प्रवेश करती है तो वह बैसिलर मेम्ब्रेन मे पहुँच कर वहाँ स्थित तन्तुओ को एक सेकेण्ड मे दस हजार बार स्पन्दित करेगी। ऐसा होने से मस्तिष्क के श्रवण केन्द्रो मे प्रति सेकेण्ड दस हजार बार आवेग की प्राप्ति होगी। फलस्वरूप जो ध्वनि हमे सुनायी पडेगी उसकी तारता ऊँची होगी। इस बात से स्पष्ट है कि तारता की व्याख्या मस्तिष्क का कार्य है, कान का नही। दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है कि तारता मस्तिष्क मे पहुँचने वाले आवेगो की आवृत्ति पर निर्भर होती है। इसी प्रकार ध्वनि की उच्चता का कारण भी समझा जा सकता है। जब कोई ध्वनि-तरग अधिक तीव्रता की होती है तो वह बैसिलर मेम्ब्रेन मे काफी ऊपर पहुँचकर बहुत अधिक तन्तुओ को उत्तेजित करती है। अत मस्तिष्क मे उन सभी तन्तुओ का स्पन्दन आवेग के रूप मे पहुँचता है और परिणामस्वरूप हम ऊँची ध्वनि सुन पाते हैं। अत इस प्रकार ध्वनि की उच्चता उत्तेजित तन्तुओ की सख्या पर निर्भर है। टेलीफोन सिद्धान्त तारता एव उच्चता दोनो का कारण मस्तिष्क को बतलाता है, कान को नही।

परन्तु रुदरफोर्ड का आवृत्ति सिद्धान्त उपर्युक्त अन्य सिद्धान्तो की अपेक्षा अधिक उपयुक्त होने पर भी पूर्णत सन्तोषप्रद नही माना जाता। इस सिद्धान्त के सामने एक गम्भीर कठिनाई इस बात से सबधित है कि प्रति सेकेण्ड कितनी बार कोई स्नायु तन्तु स्पन्दित किया जा सकता है। आधुनिक शोधो से प्राप्त परि-

---

1 Rutherford

णाम इस बात को प्रमाणित करते है कि कोई भी तन्तु एक सेकेण्ड मे 5000 से 8000 वार स्पन्दित हो सकता है जिसके बाद उसे कुछ समय तक विश्राम करना पडता है। तन्तुओ के विश्राम काल को रिफ्रैक्ट्री पीरियड[1] कहा जाता है। अब प्रश्न यह उठता है कि रूदरफोर्ड के सिद्धान्त के अनुसार ऊँची आवृत्तियाँ, जैसे 20000 चक्र प्रति सेकेण्ड वाली तरगो को मस्तिष्क मे कैसे भेजा जाता है ? इस कठिनाई का समाधान वेवर तथा ब्रे[2] ने उपस्थित करने का प्रयास किया है जिसका विवरण वॉली-सिद्धान्त[3] के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया है।

4 वॉली सिद्धान्त

वेवर तथा ब्रे ने सन् 1949 मे उपर्युक्त आवृत्ति सिद्धान्त का परिमार्जित रूप उपस्थित किया। इनके सिद्धान्त को वॉली-सिद्धान्त की सज्ञा दी गयी है। वॉली-सिद्धान्त भी इस बात को स्वीकार करता है कि वैसिलर मेम्ब्रेन ज्यो का त्यो ध्वनि तरगो को आवेगो मे परिवर्तित करके मस्तिष्क केन्द्रो मे भेज देता है। मस्तिष्क मे आवेगो के पहुँचने पर ही ध्वनि की तारता और उच्चता का विश्लेपण होता है। परन्तु इस सिद्धान्त का केन्द्रीय तथ्य यह है कि वैसिलर मेम्ब्रेन मे पाये जाने वाले स्नायु-तन्तु कई उपसमूहो मे बटे हुए है। चूंकि कोई भी तन्तु एक बार मे 5000 चक्र प्रति सेकेण्ड से अधिक स्पन्दित नही हो सकता इसलिये 5000 से अधिक आवृत्ति की तरगें उन्हे उत्तेजित नही कर सकती। इस कठिनाई का समाधान करने के लिये वेवर तथा ब्रे ने यह कल्पना की है कि सम्पूर्ण तन्तु समूह उपसमूहो मे विभक्त है और एक उपसमूह जब स्पन्दित होकर विश्राम करने लगता है उस समय एक दूसरे तन्तु समूह मे स्पन्दन प्रारम्भ हो जाता है और जब यह समूह भी थक जाता है तब एक तीसरा उपसमूह क्रियाशील हो जाता है। इस प्रकार ऊँची आवृत्ति जैसे 20000 आवृत्ति की तरगें भी आवेग मे बदल कर मस्तिप्क के केन्द्र मे उसी प्रकार पहुँचा दी जाती हैं जिस प्रकार कम आवृत्ति की तरगें।

जहाँ तक ध्वनि की उच्चता तथा तारता की बात है वॉली-सिद्धान्त द्वारा इन विशेपताओ की व्याख्या समुचित ढग से हो जाती है। चूँकि इस सिद्धान्त के अनुसार एक समय एक ही तन्तु-उपसमूह उत्तेजित होता है इसलिये तारता का अनुभव होता है। जो ध्वनि-तरग जितनी तीव्र होगी वह उतने ही अधिक तन्तुओ को उद्दीप्त करेगी और फलस्वरूप वह ध्वनि उतनी ही ऊँची सुनायी पडेगी।

ऊपर जितने सिद्धान्तो का विवरण प्रस्तुत किया गया है उन सभी मे सत्यता का कुछ अश अवश्य पाया जाता है। वास्तव मे सभी सिद्धान्त एक दूसरे से सम्बन्धित है, अन्तर केवल इतना ही है कि श्रव्यात्मक अनुभूतियो की व्याख्या करने मे एक सिद्धान्त एक तथ्य पर बल देता है और दूसरा सिद्धान्त किसी दूसरे तथ्य पर।

1 Refractory period 2 Wever and Bray 3 Volley theory

वॉली-सिद्धान्त अब तक प्रतिपादित अन्य श्रवण-सिद्धान्तो की अपेक्षा अधिक उपयुक्त समझा जाता है और मनोविज्ञान-जगत मे सबसे अधिक स्वीकार किया जाता है।

ध्वनि-सीमान्त[1]

हमारे कानो मे विभिन्न आवृत्तियो एव तीव्रताओ की ध्वनियो के बीच सूक्ष्म विभेदीकरण[2] कर सकने की क्षमता विद्यमान होती है। अत इस सदर्भ मे जो प्रयोगात्मक अध्ययन किये गये है उनके द्वारा यह ज्ञात करने का प्रयास किया गया है कि कम से कम और अधिक से अधिक कितनी तीव्रता अथवा आवृत्ति की ध्वनियो को ग्रहण किया जा सकता है। साथ ही यह भी पता लगाया गया है कि ध्वनि की दो तीव्रताओ मे कितना अन्तर होने पर उनके मध्य परस्पर भिन्नता को समझा जा सकता है। प्रयोगशाला के भीतर ध्वनि-उद्दीपक के उक्त दोनो प्रकार के सीमान्तो का जिस प्रकार पता लगाया जाता है उसका सक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत है।

प्रारम्भिक एव उच्चतम सीमान्तो का निर्धारण—ध्वनि सीमान्तो के निर्धारण के लिये साधारणत ऑडियो ऑसिलेटर[3] नामक उपकरण का प्रयोग किया जाता है। इस यत्र से साइन तरगे निकलती है जिनसे शुद्ध स्वरो का अनुभव होता है। इन तरगो की आवृत्ति तथा तीव्रता इच्छानुसार नियन्त्रित की जा सकती है। शात कमरे मे विषय पात्र को बैठाकर तथा उसके कान मे ईयरफोन[4] लगाकर ऑसिलेटर को चालू करते है। ऑसिलेटर के डायल को इस प्रकार व्यवस्थित करते है जिससे उसके द्वारा उत्पन्न हुई ध्वनि तरंगो की आवृत्ति 500 चक्र प्रति-सेकेण्ड हो। इस प्रकार आवृत्ति को नियन्त्रित करके ध्वनि की तीव्रता क्रमश बढाते जाने से यह पता चल जाता है कि एक निश्चित आवृत्ति (500 चक्र प्रति सेकेण्ड) वाली ध्वनि की उच्चतम सीमा क्या है और तीव्रता घटाते जाने से उसकी न्यूनतम सीमा ज्ञात हो जाती है। स्पष्ट है कि न्यूनतम सीमा से कम तीव्रता वाली ध्वनि को प्रयोज्य नही सुन सकता। इसी प्रकार उच्चतम सीमा से अधिक तीव्रता वाली ध्वनि उसके भीतर पीडा उत्पन्न करती है। अन्य आवृत्तियो वाली ध्वनियो के लिये न्यूनतम सीमाएँ भी इसी ढग से ज्ञात की जा सकती है। जब हम ध्वनि की तीव्रता को अचल रखकर उसकी आवृत्तियो को बदलते हैं और देखते है कि कम से कम और अधिक से अधिक कितने चक्र प्रति सेकेण्ड वाली ध्वनि को सुना जा सकता है तो हमारा उद्देश्य ध्वनियो की आवृत्ति के सीमान्तो का पता लगाना होता है। इस प्रकार के प्रयोग द्वारा हमे निश्चित आवृत्तियो तथा निश्चित तीव्रताओ वाली ध्वनियो की दो सीमाए ज्ञात हो जाती है। एक सीमा न्यूनतम सीमा होती है जिसे श्रवण सीमान्त कहते है और दूसरी सीमा उच्चतम सीमा होतो है जिसे दबाव या

---

1 Auditory threshold 2 Discrimination 3 Audio Oscillator 4 Ear phone

सीमा का सीमान्त कहते है। इन्ही दो सीमान्तो के बीच की तीव्रताओ और आवृत्तियो वाली ध्वनियो को सामान्यत सुना जा सकता है।

भेदीय सीमान्तो का निर्धारण—ध्वनि के प्रारम्भिक या उद्दीपक सीमान्त[1] की ही भांति उसका भेदीय सीमान्त[2] भी प्रयोगात्मक विधि द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। ऐसा करने के लिये ध्वनि की तीव्रता निश्चित करके उसकी आवृत्तियो को घटाते बढ़ाते हुए दो उद्दीपको की परस्पर तुलना की जा सकती है। उदाहरण के लिये, एक निश्चित तीव्रता की ध्वनि को 500 चक्र प्रति सेकेन्ड पर व्यवस्थित करके प्रयोज्य के कान तक पहुँचाया जा सकता है और एक सेकेन्ड बाद उस ध्वनि की आवृत्ति बढ़ाकर 502 चक्र प्रति सेकेण्ड किया जा सकता है और प्रयोज्य से पूछा जा सकता है कि उसे दोनो ध्वनियो मे कोई अन्तर ज्ञात हो रहा है या नहीं। इसी प्रकार 500 चक्र वाली ध्वनि की क्रमश 502, 504, 506 तथा 498, 496 और 494 चक्र वाली ध्वनियो से तुलना की जाती है। इस विधि द्वारा यह ज्ञात हो जाता है कि प्रयोज्य कितनी आवृत्ति वाली ध्वनि को 500 चक्रवाली ध्वनि से भिन्न समझ पाता है। यह आवृत्ति का भेदीय सीमान्त होगा। इसी प्रकार ध्वनि की आवृत्ति का निश्चित स्तर पर उसकी तीव्रताओ को बदल सकते है और पहले की ही भांति तीव्रता का भी भेदीय सीमान्त ज्ञात किया जा सकता है।

ध्वनियो का स्थान-निर्धारण[3]

ध्वनि की दूरी का बोध—कान की सहायता से ध्वनि की दूरी तथा दिशा का अनुमान लगाया जा सकता है। ध्वनि की दूरी तथा दिशा से यह अभिप्राय है कि जिस स्रोत से ध्वनि उत्पन्न हो रही है वह श्रोता से कितनी दूर है तथा उसके किस दिशा मे स्थित है। ध्वनि के आधार पर ही हम वातावरण मे उपस्थित वस्तुओ तथा घटनाओ को जान पाते है। जहा तक यह जानने का प्रश्न है कि कोई ध्वनि, सुनने वाले व्यक्ति से कितनी दूर है, इसका ज्ञान कई सकेतो द्वारा हो पाता है। इन सकेतो मे ध्वनि की उच्चता को एक प्रमुख सकेत समझा जाता है। साधारणत जो ध्वनि तेज सुनाई पडती है उसकी स्थिति निकट समझी जाती है और जो मद सुनाई पडती है उसे हम दूर स्थित समझते हैं। यदि किसी ध्वनि की तेजी घटती जाती है तो हम समझ लेते है कि वह हमसे दूर होती जा रही है और जब वह अधिक प्रबल होने लगती है तो हम उसे अपने निकट आते हुए समझते है। सडको पर चलती हुई मोटरो तथा स्कूटरो रेलगाडियो और जहाजो की आवाज सुनकर हम उनकी दूरी या निकटता का सही अनुमान लगा सकने मे प्राय समर्थ होते हैं। परन्तु इस प्रकार की ध्वनि-उच्चता केवल परिचित ध्वनियो के सम्बन्ध मे ही सही सकेत प्रदान कर सकती है। जिन ध्वनियो के साथ हमारा व्यक्तिगत अनुभव

---

1 Stimulus threshold 2 Differential threshold 3 Localization of sound

नही होता उनकी दूरी का सही अनुमान उनकी उच्चता के आधार पर लगा सकना कठिन होगा।

कभी-कभी ध्वनि की जटिलता को भी ध्वनि स्रोत की दूरी निर्धारित करने मे एक सकेत समझा जाता है। जब कोई रेलगाडी या हवाई जहाज हमसे काफी दूर होता है तो उसमे से आने वाली ध्वनि साधारण लगती है। परन्तु जब वह हमारे निकट आ जाता है तो उसकी आवाज मे घडघडाहट सुनाई पडती है। पुन जब रेलगाडी हम से दूर चली जाती है तो यह घडघडाहट धीरे-धीरे कम होने लगती है और अन्त मे केवल एक मामूली सी सीधी सादी ध्वनि सुनाई पडती है। दूर हो जाने पर जटिल ध्वनि सरल ध्वनि प्रतीत होने लगती है।

ध्वनि की दिशा का बोध—कोई ध्वनि श्रोता के सामने से आ रही है अथवा पीछे से, दाहिने से आ रही है अथवा बाएँ से, उसके ऊपर से आ रही है अथवा नीचे से इस बात का पता लगाकर हम ध्वनि की दिशा[1] का निर्धारण करते हैं। ध्वनि की दिशा-निर्धारण मे श्रोता के दोनो कानो की स्थिति का बडा महत्वपूर्ण योग होता है। हमारे दोनो कान दो भिन्न दिशाओ मे उन्मुख होते हैं और सिर तथा मुखमण्डल के दोनो ओर उनकी स्थिति समान दूरी पर होती है। अत जब दाहिनी ओर से कोई ध्वनि आती है तो दाहिना कान बाये कान की अपेक्षा अधिक जल्दी प्रभावित होता है। पर जब ध्वनि बायी ओर से आती है तो वह बायें कान को दाहिने कान की अपेक्षा अधिक जल्दी प्रभावित करती है। ऐसा इसलिये होता है क्योंकि दाहिनी ओर स्थित ध्वनि-स्रोत दाहिने कान से कुछ निकट होता है और बाएँ कान से कुछ दूर। अत दाहिनी ओर से आती हुई ध्वनि दाहिने कान तक पहुँचने मे अपेक्षाकृत कुछ कम समय लेती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि दाहिनी या बायी दिशा से आने वाली ध्वनि तरगें दोनो कानो को समान रूप से नही उद्दीप्त कर पाती। दोनो कानो पर उनका प्रभाव पृथक-पृथक पडता है। दोनो कानो की श्रव्यावस्था अनुभूति मे यह अन्तर मुख्यत निम्नलिखित तीन बातो के कारण पाया जाता है—

(1) एक ही ध्वनि तरग के दोनो कानो तक पहुँचने मे भिन्न-भिन्न समय लगता है।

(2) दोनो कानो तक एक ही ध्वनि तरग के पहुँचने मे चक्र की कला मे परिवर्तन हो जाता है।

(3) दोनो कानो तक पहुँचने मे ध्वनि तरग की तीव्रता मे अन्तर आ जाता है।

जब कोई ध्वनि-तरग अपने स्रोत से निकल कर हमारे कानो तक पहुँचती

1 Direction of sound

है तो जो कान तरग की दिशा मे होता है, उसे वह जल्दी स्पर्श करती है और इसलिये उसके उद्दीपन मे दूसरे कान की अपेक्षा कम समय लगता हे। इसके अतिरिक्त जव कोई तरग एक कान को उत्तेजित करती है, उम समय वह अपने आयाम के शृग पर हो सकती है और जव वह दूसरे कान तक पहुँचती है तब वह आयाम के गर्त मे हो सकती है। इस प्रकार दोनो कानो से ध्वनि की अनुभूति मे अतर तरग की कला के अन्तर[1] के कारण होता है। अन्त मे, जव कोई ऊँची तीव्रता की तरग, एक कान मे पहुंचती है तो वह तेज सुनायी पडती है परन्तु दूसरे कान तक पहुँचने के पहले वह सिर और मुखमण्डल के कारण अवरोधित हो जाती है। इस कारण दूसरे कान तक पहुंचने के पहले ही उसकी तीव्रता मे कमी आ जाती है। दोनो कानो की अनुभूति मे भिन्नता का यह कारण ध्वनि तरग की तीव्रता का अन्तर[2] समझा जाता है। अत स्पष्ट है कि उपर्युक्त अन्तरो के आधार पर श्रोता यह जान लेता है कि ध्वनि दाहिनी ओर से आ रही है अथवा बायी ओर से।

जब ध्वनि श्रोता के सामने से आती है और वह अपनी आँखो का प्रयोग न करे तो उसे यह पता नही चल सकेगा कि आगे की ध्वनि उसके आगे से आ रही है य पीछे से। इसका कारण यह है कि श्रोता के सामने या पीछे की दिशाओ से आने वाली ध्वनियो की दूरी उसके दोनो कानो से समान होती है और ऐसी दशा मे दोनो कान समान रूप से प्रभावित होते है। वास्तव मे, ऐसी परिस्थितियो मे या तो श्रोता अपनी आंखो की सहायता लेता है और ध्वनि स्रोत को देखकर तुरन्त उसकी स्थिति से अवगत हो जाता है या वह अपने सिर को इधर-उधर घुमाता है और उसका कोई एक कान ध्वनि-स्रोत की दिशा मे व्यवस्थित हो जाता है जिसके कारण ध्वनि आने वाली दिशा का उसे निश्चय हो जाता है।

अन्त मे ध्वनि अथवा ध्वनि-स्रोत की दिशा निश्चित करने मे श्रोता की अपनी निजी जानकारी अथवा पूर्व ज्ञान भी सहायक होता है। उदाहरण के लिये, हम अपने निजी अनुभव के कारण यह जानते है कि हवाई जहाज की आवाज सिर के ऊपर की ओर होगी, मोटर की ध्वनि सडक पर और रेलगाडी की गडगडाहट शहर की उत्तरी दिशा मे होगी इसलिए हमे इन वस्तुओ के स्थान-निर्धारण मे कोई कठिनाई नही होती।

ध्वनि के स्थान-निर्धारण सम्बन्धी प्रयोगो मे मुख्यत प्रयोगकर्ता का उद्देश्य ध्वनि-स्रोत की दूरी तथा दिशा को निश्चित करने मे प्रयोज्य द्वारा की गई त्रुटि की मात्रा ज्ञात करना होता है। साथ ही इस बात का भी पता लगाया जाता है कि ध्वनि के स्थान निर्धारण मे प्रयोज्य का निर्णय किन-किन तत्वो द्वारा प्रभावित होता है। अत मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाओ मे ध्वनि स्थान-निर्धारण की समस्या का

1 Difference in phase 2 Difference in intensity

अध्ययन करने के लिये कभी प्रयोज्य के केवल एक कान को और कभी उसके दोनो कानो को उद्दीप्त किया जाता है। जब प्रयोज्य के केवल एक ही कान को उद्दीप्त किया जाता है तो इस दशा को मोनोटिक उद्दीपन[1] कहते है। जब एक ही ध्वनि द्वारा प्रयोज्य के दोनो कानो को उद्दीप्त करते हैं तो इसे डायोटिक उद्दीपन[2] की सज्ञा दी जाती है। कभी-कभी प्रयोज्य के दोनो कानो को दो भिन्न ध्वनि-तरगो द्वारा भी उत्तेजित किया जाता है। इस तीसरी दशा को डायकाटिक उद्दीपन[3] की दशा कहा जाता है।

श्रव्यात्मक थकान[4]

साधारणत हम यह समझते हैं कि हमारे कानो की सवेदनशीलता तथा उनकी कार्यक्षमता असीम है और कर्णेन्द्रिय कभी थकान नही अनुभव करती। यदि हमे कोई मन्द ध्वनि भी बहुत देर तक सुननी पडे तो भी थकान न होने के कारण वह उसी प्रकार स्पष्ट सुनाई पडती रहेगी अर्थात् उसके सीमान्त मे कोई परिवर्तन न होगा। यदि ध्वनि का सीमान्त ऊंचा हो जाये तो इसका यह अर्थ होगा कि सुनायी पडने के लिये ध्वनि की तीव्रता बढानी पडेगी। चूँकि ऐसा नही करना पडता इसलिए यह अनुमान किया जाता है कि हमारे कान बहुत देर तक क्रियाशील रहने के उपरान्त भी नही थकते। अन्य ज्ञानेन्द्रियाँ जैसे नेत्र, जीभ, नाक तथा त्वचा तो शीघ्र ही एक विशेप तीव्रता के उद्दीपक के साथ अनुकूलित हो जाते हैं। उदाहरण के लिए, आँख प्रकाश और अन्धकार की विभिन्न मात्राओ के साथ, जीभ विभिन्न स्वादो के प्रति और नाक विभिन्न गन्धो के प्रति अनुकूलित हो जाती है। विशेप उद्दीपको के प्रति अनुकूलित हो जाने के उपरान्त उद्दीपक परिवर्तित कर देने पर इन ज्ञानेन्द्रियो को पुन अनुकूलित होने मे कुछ समय लगता है। परन्तु ऐसी बात कान के सम्बन्ध मे नही देखी जाती। श्रवण-उद्दीपक कुछ इस प्रकार क्रिया करते हैं कि श्रवण-सवेदनाओ मे बहुत अधिक परिवर्तन नही होने पाता।

परन्तु नवीन अनुसन्धानो से यह प्रमाणित होता है कि कान भी किसी सीमा तक अवश्य थक जाते हैं और व्यक्ति को थोडी बहुत श्रव्यात्मक थकान का अनुभव अवश्य होता है। यह थकान उस समय अधिक स्पष्ट हो जाती है जब बहुत तीव्र ध्वनियाँ, जैसे कोलाहल देर तक कान को प्रभावित करती हैं। श्रव्यात्मक थकान विशेप रूप से कल-कारखानो की मशीनो, हवाई जहाजो, रेलगाडियो तथा ट्रक इत्यादि द्वारा उत्पन्न किये गये शोरगुल के कारण अनुभव की जाती है। यदि इस कोटि के शोरगुल को प्रयोगशाला के भीतर उत्पन्न करके उसकी तीव्रता तथा सत्ता-काल को योजनानुसार परिवर्तित करने की सुविधा उपलब्ध की जाये तो ध्वनि की सवेदनशीलता पर थकान का प्रभाव देखा जा सकता है। यो तो श्रव्यात्मक थकान

---

1 Monotic stimulation 2 Diotic stimulation 3 Dichotic stimulation
4 Auditory fatigue

का अध्ययन करने के लिए किसी भी कोटि का कोलाहल प्रयोग मे लाया जा सकता है, लेकिन इस प्रयोजन के लिए एक विशेप प्रकार का कोलाहल जिसे 'श्वेत कोलाहल'[1] कहा जाता है अधिक उपयुक्त उद्दीपक समझा जाता है। जिस प्रकार 'श्वेत प्रकाश'[2] मे हर लम्बाई की प्रकाश-तरगे समान मात्रा मे विद्यमान रहती हैं, उसी प्रकार श्वेत कोलाहल मे सुनायी पडने वाली प्रत्येक आवृत्ति की ध्वनि-तरगे पायी जाती है और सभी आवृत्तियाँ समान रूप से तीव्र होती हैं।

सामान्यत प्रयोगशालाओ मे शोरगुल के पहले और फिर वाद मे निश्चित आवृत्तियो तथा तीव्रताओ की ध्वनि-तरगो के सीमान्त का पता लगाया जाता है और दोनो दशाओ मे पाये गये सीमान्तो के अन्तर को थकान का परिणाम समझा जाता है। कोलाहल जैसी तीव्र उत्तेजनाओ द्वारा उत्पन्न की गयी श्रव्यात्मक थकान का अध्ययन करने के लिए पहले शान्त वातावरण मे ध्वनि का सीमान्त ज्ञात कर लिया जाना है। तव 100 डेसीवेल से अधिक तीव्रता का श्वेत कोलाहल उत्पन्न करके प्रयोज्य के कानो को भली भाँति प्रभावित करते है। इस प्रकार कानो को प्रभावित करने के शीघ्र वाद पुन ध्वनि का सीमान्त ज्ञात किया जाता है। अव ध्वनि के दोनो सीमान्तो मे जो अन्तर दिखलाई पडता है उसका कारण श्रव्यात्मक थकान समझी जाती है। यदि थोडी-थोडी देर वाद कई वार ध्वनि-सीमान्त ज्ञात किया जाय तो यह पता चल जायेगा कि किस गति से यह थकान कम होती जा रही है।

श्रव्यात्मक थकान के प्रयोगात्मक अध्ययन से जो तथ्य प्राप्त हुए हैं उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि जव कान को ध्वनि उद्दीपक द्वारा उद्दीप्त किया जाता है तो उसकी सवेदनशीलता का क्रमिक रूप से ह्रास होने लगता है और जव उद्दीपन समाप्त हो जाता है तो उसकी सवेदनशीलता पुन स्वाभाविक दशा मे आ जाती है। सवेदनशीलता मे होने वाले इस ह्रास को ही श्रव्यात्मक थकान कह सकते है। अत श्रव्यात्मक थकान की दशा मे ध्वनि-सीमान्त मे चढाव या वृद्धि देखी जाती है जो थकान का एक प्रमुख लक्षण अथवा सकेत है। दूसरे शब्दो मे, श्रव्यात्मक थकान आ जाने पर प्रयोज्य को सुनाई पडने के लिए ध्वनि की तीव्रता सामान्य से अधिक होना आवश्यक हो जाता है। कासी एव चवासी[3] (1947) ने श्रव्यात्मक थकान के सदर्भ मे किये गये अपने अध्ययनो मे उन दशाओ का पता लगाया जिनके कारण श्रव्यात्मक थकान वढ जाती है। उनके अनुसार श्रव्यात्मक थकान ध्वनि-उद्दीपक की तीव्रता तथा उद्दीपन-काल की लम्वाई दोनो पर निर्भर होती है। अधिक तीव्र ध्वनि द्वारा कान के अधिक देर तक उद्दीप्त रहने पर श्रव्यात्मक थकान शीघ्र अनुभव होने लगती है। हैरिस तथा केल्सी[4] (1951) के अनुसार श्रव्यात्मक थकान

---

1 White noise 2 White light 3 Causse' and Chavasse 4 Harris and Kelsey

का सम्बन्ध ध्वनि-तरगो की आवृत्तियो के साथ भी देखा जाता है। 1000 से 4000 आवृत्ति वाली ध्वनि-तरगो द्वारा उद्दीपन होने पर श्रव्यात्मक थकान कम अनुभूत होती है परन्तु इस प्रसार से कम या अधिक आवृत्तियो वाली तरगो द्वारा उद्दीप्त होने पर थकान की मात्रा बढ जाती है।

श्रवण-सम्बन्धी प्रयोगो मे नियन्त्रण

दृष्टि सम्बन्धी प्रयोगो की भाँति श्रवण प्रयोगो मे भी अनेक प्रकार की सावधानियाँ रखनी पडती है। इस सदर्भ मे प्रयोज्य की आयु प्रयोगशाला का वातावरण तथा प्रयोग-विधि से सम्बन्धित कुछ तत्त्वो को समुचित नियन्त्रण मे रखना आवश्यक होता है अन्यथा उपलब्ध परिणामो के भीतर शुद्धता न मिल सकेगी।

(1) **प्रयोज्य की आयु**—अनेक मनोवैज्ञानिक प्रयोगो मे जिन प्रयोज्यो का उपयोग किया जाता है उनकी आयु के विषय मे कोई विशेष सावधानी नही रखनी पडती। सामान्यत वयस्को को अधिकाश प्रयोगो मे प्रयोज्य बनाया जाता है। परन्तु श्रवण सम्बन्धी प्रयोगो मे प्रयोज्य की आयु एक महत्वपूर्ण तत्व मानी जाती है। ज्यो-ज्यो व्यक्ति की आयु बढती जाती है त्यो-त्यो मन्द ध्वनियो के प्रति उसकी सवेदनशीलता घटने लगती है। मुख्य रूप से ऊँची आवृत्तियो की ध्वनियो के प्रति तो उसकी सवेदनशीलता काफी घट जाती है। प्रयोगो से पता चला है कि एक 50 वर्षीय प्रयोज्य तथा एक 20 वर्षीय प्रयोज्य के कानो को यदि 8000 आवृत्ति वाली ध्वनि द्वारा उत्तेजित किया जाये तो 50 वर्षीय प्रयोज्य के लिये उक्त ध्वनि की तीव्रता 25 डेसीबेल और अधिक बढानी होगी। ऐसा होने पर ही दोनो को समान रूप से ध्वनि सुनायी पडेगी। इसका अर्थ यह हुआ कि कम अवस्था के प्रयोज्य जितनी मन्द ध्वनि के प्रति सवेदनशील हो सकते हैं उतनी मन्द ध्वनि के प्रति एक अधिक अवस्था का प्रयोज्य नही हो सकता। विशेष रूप से जब हम ध्वनि के सीमान्तो का निर्धारण करने के लिये कोई प्रयोग करते हैं तो उस समय प्रयोज्य की आयु एक महत्वपूर्ण वस्तु हो जाती है। अत श्रवण सम्बन्धी प्रयोगो मे प्रयोज्यो का चुनाव करते समय हमे बहुत अधिक आयु वाले व्यक्तियो को नही लेना चाहिये।

(2) **प्रयोगशाला का वातावरण**—सामान्यत किसी भी श्रवण-सम्बन्धी प्रयोग मे प्रयोगशाला के भीतर का वातावरण शात होना वाछनीय है। परन्तु कुछ प्रयोगो मे प्रयोग का कमरा पूर्णत शान्त होना नितान्त आवश्यक समझा जाता है जबकि कुछ अन्य प्रयोगो मे आशिक शान्ति ही आवश्यक मानी जाती है। यदि हम ध्वनियो के सीमान्तो का निर्धारण करना चाहते हैं तो इसके लिये जितना ही अधिक शान्त कमरा हो उतना ही अच्छा होगा। ध्वनि रहित कमरो को ऐसे प्रयोगो के लिये आदर्श परिस्थिति समझा जाता है क्योकि वहाँ वाहरी ध्वनि रचमात्र भी नही पहुँच पाती। परन्तु जिन प्रयोगो मे कर्णफोन[1] का प्रयोग होता है या जिनमे काफी तीव्र ध्वनियो

---

1 Ear phone

का प्रयोग किया जाता है उनमे प्रयोग के कमरे का पूर्णतया शान्त होना नितान्त आवश्यक नही समझा जाता। वास्तव मे, प्रयोगशाला का वातावरण कितना शान्त होना चाहिये यह वात एक विशेप तथ्य पर निर्भर करती है। उन ध्वनियो को जिनका प्रयोग उद्दीपक के रूप मे किया जाता है कोई वाहरी ध्वनि अवगुण्ठित न कर सके, यही सावधानी श्रव्यात्मक प्रयोगो मे रखनी सवसे मुख्य वात होती है। उद्दीपक ध्वनियाँ जितनी ही तीव्र होगी उनका अवगुण्ठन उतना ही कठिन होगा। अत तीव्र उद्दीपको का प्रयोग करते समय पूर्णतया शान्त वातावरण की उतनी आवश्यकता नही होती जितनी मद उद्दीपको का प्रयोग करते समय, क्योकि मद ध्वनियाँ अन्य वाहरी ध्वनियो द्वारा शीघ्र ही अवगुण्ठित हो जाती हैं।

(3) **उद्दीपक नियन्त्रण**—एक तीसरी सावधानी जो विशेप रूप से सीमान्त-निर्धारण के प्रयोगो से सम्वन्धित होती है वह यह है कि जव हम ध्वनि-तीव्रता के सीमान्त का पता लगाना चाहते हैं और ध्वनि की तीव्रता को क्रमश घटाते या वढाते जाते हैं तो हमे चाहिए कि हर वार जव हम तीव्रता मे क्रमिक परिवर्तन करते हैं, थोडी देर के लिये ध्वनि उद्दीपक देना वन्द कर दें। ऐसा करने से प्रयोज्य सरलता पूर्वक दो ध्वनि-तीव्रताओं मे भेद न कर पायेगा। वास्तव मे ध्वनि-उद्दीपक की निरन्तरता मे इस प्रकार अवरोध ला देना प्राय मभी श्रवण-सवधी प्रयोगो के लिये आवश्यक समझना चाहिये क्योकि ऐसा करने से प्रयोज्य को निर्णय लेने मे अर्थात ध्वनि-विभेदीकरण मे वहुत अधिक सहायता मिलती है।

(4) **क्लिक्स का नियन्त्रण**—अनेक श्रव्यात्मक प्रयोगो मे ध्वनि-उद्दीपक उत्पन्न करने के लिये एक विशेप यत्र ऑसिलेटर का प्रयोग किया जाता है। जव प्रयोग प्रारम्भ करते समय ऑसिलेटर झटके के साथ चलाया जाता है तो प्रयोज्य के कान मे किरकिराहट सुनाई पडती है। यही वात झटके के साथ ऑसिलेटर वन्द करते समय भी होती है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रयोज्य शुद्ध स्वर न सुनकर जटिल स्वर सुनता है। जटिल स्वर का प्रभाव जितनी देर तक वना रहता है उतनी देर तक प्रयोज्य उद्दीपक ध्वनि के वारे मे सही निर्णय नही दे पाता। इस दृष्टि से यह आवश्यक है कि किरकिराहट अर्थात् क्लिक को न उत्पन्न होने दिया जाय। यदि हम ऑसिलेटर चलाने और वन्द करने मे थोडी सावधानी वरते अर्थात् उसे धीरे-धीरे चालू करें तथा झटके का प्रयोग न करें तो अवश्य ही क्लिक्स के प्रभाव से प्रयोज्य को वचाया जा सकता है।

सहायक ग्रन्थ सूची

ऐण्ड्रियाज, बी० जी० — एक्सपेरिमेन्टल साइकालोजी, विली ईस्टर्न प्राइवेट लिमिटेड, 1960

ग्राहम, सी० एच० ऐण्ड कुक, सी० — विजुअल ऐक्वीटी ऐज ए फक्शन आफ इटेन्सिटी ऐण्ड ऐक्सपोजर टाइम, अमेरि० ज० साइको० 1937

जेम्सन, डी० ऐण्ड हर्विक, एल० एस० — काम्प्लेक्सिटीज आफ पर्सीव्ड ब्राइटनेस, साइस, 1961

पोस्टमैन, एल ऐण्ड ईगन, जे० पी० — एक्सपेरिमेन्टल साइकालोजी, हार्पर ऐण्ड रो, 1949

मिजियाक, एच० ऐण्ड लाजिटो, सी० सी० — लेटेंसी ऐण्ड ड्यूरेशन आफ मोनोक्यूलर ऐण्ड बायनोक्यूलर आफटर इमेजेज ज० एक्सपे० साइको० 1951

मैक्फेडेन, एच० बी — द पर्फामर्स आफ द इफेक्ट्स आफ, ट्रेनिंग आन विजुअल ऐक्वीटी, आप्टोमीट्रिक एक्सटेशन प्रोग्राम, 1940

रूदरफोर्ड, डब्ल्यू० — ए न्यू थियरी आफ हियरिंग, ज० ऐनाट० फिजिया० 1886

वाल्ड, जी० ऐण्ड क्लार्क, ए० बी० — विजुअल एडैप्टेशन ऐण्ड केमिस्ट्री आफ द राड्स, ज० जेने० फिजिया० 1937

वेवर ई० जी० ऐण्ड ब्रे, सी० डब्ल्यू० — आडिटोरी नर्व इम्पल्सेज, साइस 1930

स्टीवर्ट, ई० सी० — द गेल्ब इफेक्ट, ज० एक्सपे० साइको० 1959

हेच, एस० — द नेचर आफ फोवियल डार्क एडैप्टेशन, ज० जेने० फिजिया 1921

हेल्मोज, एच० — आन द सेंसेशन आफ टोन न्यूयार्क, लागमैन्स ग्रीन। 1863

हैरिस, जे० डी०, ऐण्ड केत्सी, पी० — फ्रीक्वेंसी डिफरेंसेज ऐज ए फक्शन आफ इन्टेसिटी, ज० एक्सपे० साइको० 1951

अध्याय 4

संवेदनशीलता—त्वचीय एवं रासायनिक

खण्ड (क) त्वचीय सवेदना

त्वचीय सवेदनशीलता
त्वचीय सग्राहक
ताप-सवेदनाएँ
पीडा-सवेदना
दवाव की सवेदना

खण्ड (ख) गध-सवेदना

उद्दीपक एव सग्राहक
गधो का वर्गीकरण
गध-अनुकूलन
गध-मिश्रण
गधो का प्रयोगात्मक अध्ययन
गध सीमान्त

खण्ड (ग) रस सवेदना

उद्दीपक एव सग्राहक
रसो का वर्गीकरण
रस-अनुकूलन
रस-मिश्रण
रसो का प्रयोगात्मक अध्ययन
रस-सीमान्त

सवेदनशीलता—त्वचीय एव रासायनिक

खण्ड (क)

त्वचीय सवेदनशीलता

जब कोई भौतिक अथवा रासायनिक उद्दीपक त्वचा के सम्पर्क मे आता है तो त्वचीय सवेदना[1] उत्पन्न होती है । त्वचा के ऊपर मुख्य चार प्रकार की सवेदनाओं की अनुभूति होती है । ये सवेदनाएँ उष्णता, शीत, पीडा तथा दबाव की अनुभूतियाँ कही जाती है । स्पर्श और भार की सवेदनाओ को भी दबाव की सवेदना माना जाता है । इन चार प्राथमिक सवेदनाओ के अतिरिक्त त्वचा पर हमे खुजली और जलन, सूखेपन और गीलेपन, खुरदरेपन तथा चिपकनेपन की सवेदनाओ का भी अनुभव होता है । परन्तु विशेषज्ञो का मत है कि ये सवेदनाएं उपर्युक्त चार प्राथमिक सवेदनाओ से सर्वथा भिन्न नही होती बल्कि इनकी उत्पत्ति गर्मी, सर्दी, पीडा और दबाव की सवेदनाओ से ही होती है ।

प्राणी को अनुभूत होने वाली अन्य सवेदनाओ जैसे दृष्टि श्रवण आदि तथा त्वचीय सवेदनाओ के स्वभाव मे बहुत अन्तर होता है । अत त्वचीय सवेदनशीलता के सदर्भ मे यह नितान्त आवश्यक है कि उसकी प्रमुख विशेषताओं को भली-भाति समझ लिया जाय । त्वचा पर होने वाली सवेदनाएँ बिन्दुगत[2] होती हैं, क्षेत्रगत[3] नही । अर्थात् गर्मी शीत, पीडा और दबाव के उद्दीपक त्वचा के ऊपर निश्चित बिन्दुओं[4] को प्रभावित करते हैं, किसी क्षेत्र को नही । सम्पूर्ण त्वचा के ऊपर भिन्न-भिन्न सवेदनाओ के लिये अलग-अलग स्थान होते है । किसी एक बिन्दु को उद्दीप्त करने से उष्णता की सवेदना होती है और किसी दूसरे बिन्दु को उद्दीप्त करने से शीत की । ऐसा नही कहा जा सकता कि किसी एक इच वर्ग क्षेत्र मे केवल एक ही प्रकार की सवेदना होगी । हाँ यह अवश्य सम्भव है कि त्वचा के किसी विशेष भाग मे एक प्रकार के सवेदन-बिन्दु[5] घने रूप से पाये जायँ । एक क्षेत्र मे जितने त्वचीय बिन्दु होंगे उतने स्थानो पर ही सवेदना का अनुभव होगा । अत त्वचा के ऊपर सवेदनशील क्षेत्र नही पाए जाते बल्कि निश्चित बिन्दुओ पर ही ये सवेदनाएँ अनुभूत होती है । दूसरे शब्दो मे, त्वचीय सवेदनशीलता का वितरण क्षेत्रगत न होकर बिन्दु-

---

1 Cutaneous sensation 2 Punctate 3 Areal 4 Points 5 Sensory spot

गत होता है। इस सन्दर्भ मे यह भी स्मरणीय है कि त्वचा के ऊपर एक निश्चित विन्दु पर सामान्यत केवल एक ही प्रकार की सवेदना हो सकती है, सभी प्रकार की नही। ऐसा नही हो सकता कि एक ही विन्दु पर कभी उष्णता की सवेदना हो, कभी शीत की और कभी पीडा की। इन त्वचीय विन्दुओ का पता सर्वप्रथम स्वेडन मे ब्लिक्स,[1] जमनी मे गोल्डस्काइडर[2] तथा अमरीका मे डोनाल्डसन[3] ने स्वतन्त्र रूप से 1882 ई० से 1885 ई० के वीच लगाया। आश्चर्य की वात है कि तीनो वैज्ञानिक समान निष्कर्षों पर पहुँचे।

दृष्टि और श्रवण सवेदनाओ की भाँति त्वक् सवेदनाओ के लिये त्वचा का कोई विशिष्ट भाग निश्चित नही होता। यह नही कहा जा सकता कि त्वचा के एक भाग मे उष्णता की सवेदना होगी और दूसरे भाग मे शीत की। जिस प्रकार आँख और कान के भीतर उत्तेजना ग्रहण करने और उसके प्रभाव को मस्तिष्क तक पहुँचाने के लिए विशिष्ट ग्राहक-ततु पाये जाते है, उसी प्रकार त्वचा के भीतर अनेक नाडी-शिराएँ और ग्राहक-तन्तु फैले हुए होते है जो त्वचा के सम्पर्क मे आने वाले उद्दीपको के प्रभाव को ग्रहण करते है। परन्तु त्वचा का कोई भाग ऐसा नही होता जहाँ केवल एक ही प्रकार के त्वचीय ग्राहक उपस्थित हो। किसी एक प्रकार की त्वचीय सवेदना से सम्वन्धित ग्राहक त्वचा के भीतर कही समूह बनाकर नही रहते, वल्कि वे स्वतन्त्र एव अनियमित रूप से सम्पूर्ण त्वचा पर बिखरे होते है। अत यह कहना कठिन है कि त्वचा के किसी विशेप क्षेत्र मे केवल एक विशेप प्रकार की ही सवेदना अनुभव की जा सकती है। त्वचा के ऊपर किसी निश्चित बिन्दु पर किस प्रकार की सवेदना अनुभूत होगी यह तभी पता चल सकता है जब हम यह जान पाये कि वह विन्दु किस प्रकार के उद्दीपक के प्रति सवेदनशील हो पाता है।

त्वचा के ऊपर जिन चार प्रकार की सवेदनाओ की अनुभूति होती है उनसे सम्वन्धित विन्दुओं का वितरण त्वचा के ऊपर समान रूप से नही होता। एक प्रकार के बिन्दु किसी एक क्षेत्र मे अधिक पाए जाते है और किसी दूसरे क्षेत्र मे उनकी सख्या कम होती है। उदाहरण के लिए, आँख की कनीनिका[4] मे पीडा के बिन्दु तथा उंगली की नोक, होठ तथा वाल वाले क्षेत्रो मे दवाव के विन्दु अधिक सख्या मे पाये जाते हैं। अत त्वचा के ये भाग वहुत अधिक सवेदनशील होत है। इसके विपरीत, पीठ और पैर के तलवे त्वचा के ऐसे भाग है जहाँ सावेदनिक बिन्दु कम सख्या मे होते है। फलस्वरूप ये अग अन्य अगो की अपेक्षा कम सवेदनशील होते हैं।

त्वचीय सवेदनशीलता मे एक अद्भुत विशेपता यह पाई जाती है कि त्वचा के सम्पर्क मे आने के कुछ ही क्षणो वाद उद्दीपक के साथ त्वचा अनुकूलित हो जाती

---

1 Blix 2 Goldscheider 3 Donaldson 4 Cornea

है । इस घटना को त्वचीय अनुकूलन[1] व्यापार कहा जाता है । इस प्रकार का अनु-कूलन त्वचा पर अनुभूत प्रत्येक प्रकार की सवेदना मे देखा जाता है । उदाहरण के लिये, यदि त्वचा के किसी स्थान पर सुई चुभोई जाय तो पहले पीडा की तीव्र सवेदना होगी, परन्तु धीरे-धीरे सवेदना की तीव्रता मे कमी आने लगेगी । इसी प्रकार जब हम जाडे के मौसम मे गर्म कपडे पहनना प्रारम्भ करते है तो थोडी देर तक शरीर के ऊपर दबाव या स्पर्श की सवेदना होती है, परन्तु कुछ देर बाद हमे यह चेतना नही रह पाती कि हमारे कपडे त्वचा के ऊपर दबाव डाल रहे है । यदि हाथ के किसी भाग पर कागज का एक टुकडा बाँध दिया जाये तो थोडी देर बाद स्पर्श की सवेदना क्षीण पडने लगेगी । इसका अर्थ यह हुआ कि स्पर्श के ग्राहकों की क्रियाशीलता धीरे-धीरे मन्द पडने लगती है और अन्त मे उद्दीपक पदार्थ का कोई प्रभाव उन पर नही पडता । परन्तु त्वचीय अनुकूलन मे लगा हुआ समय अलग-अलग व्यक्तियो, भिन्न-भिन्न त्वचीय क्षेत्रो तथा उद्दीपक-भिन्नता के कारण पृथक् पृथक् होता है । इस सदर्भ मे किये गए प्रयोगो से यह परिणाम निकला है कि यदि 100 ग्राम भार के कागज का वृत्त हाथ की भुजा पर ऊपर या नीचे बाँधा जाय तो अनु-कूलन व्यापार मे लगभग चार सेकेण्ड का समय लगेगा । परन्तु यदि यही उद्दीपक माथे या गाल पर रखा जाय तो छ सेकेण्ड का समय अनुकूलन स्थापित होने मे लगेगा ।

अनुकूलन व्यापार ताप सवेदनाओ मे भी पाया जाता है । आम तौर से हमारे शरीर का सामान्य तापमान 33° से० ग्रे० रहता है । इस तापमान-स्तर पर शरीर के ऊपर गर्मी या सर्दी का अनुभव नही किया जा सकता । शरीर की इस स्थिति को दैहिक शून्य[2] की स्थिति कहा जाता है । पर यह दैहिक शून्यता शरीर के भिन्न-भिन्न भागो मे अलग-अलग होती है । एक ही अग की दैहिक शून्यता वाह्य तापमान के कारण बदलती रहती है । जब कोई 33° सेन्टीग्रेड तापमान वाला उद्दीपक त्वचा के सम्पर्क मे आता है तो त्वचा पर न गर्मी और न सर्दी अनुभूत होती है । लेकिन यदि कोई उद्दीपक 33° से० ग्रे० से अधिक तापमान का होगा तो उससे गर्मी की सवेदना ज्ञात होगी और यदि वह 33° तापमान से कम का होगा तो वह सर्दी की सवेदना उत्पन्न करेगा । परन्तु त्वचा धीरे-धीरे कम और अधिक तापमान वाले उद्दीपको के साथ अनुकूलित हो जाती है । उदाहरण के लिये, यदि हम अपना एक हाथ गरम पानी की बाल्टी मे डालें और दूसरा ठण्डे पानी की बाल्टी मे तो पहले हाथ मे गर्मी और दूसरे हाथ मे ठडक का अनुभव होगा । परन्तु थोडी देर बाद दोनो हाथो मे एक समान ताप अनुभूत होने लगेगा । यह घटना ताप अनुकूलन का एक सुन्दर उदाहरण है ।

त्वचा पर होने वाली प्रत्येक सवेदना के लिये विशिष्ट उद्दीपक होते है ।

---

1 Cutaneous adaptation 2 Physiological zero

उष्णता की सवेदना गर्म उद्दीपक से उत्पन्न होती है। इसी प्रकार ठडी वस्तुओं से शीत की तथा चुभने वाली वस्तुओं से पीडा की सवेदनाए उत्पन्न होती है। जिन उद्दीपकों का तापमान शरीर के तापमान के बराबर होता है उन्हे त्वचा के सम्पर्क मे लाने से स्पर्श की सवेदना अनुभूत होती है। अत गर्मी, शीत और चुभने वाले उद्दीपकों को क्रमश गर्मी, शीत और पीडा का स्वाभाविक उद्दीपक कहा जायेगा। पीडा की सवेदना बहुत अधिक गर्मी और बहुत अधिक ठडी वस्तुओं से भी उत्पन्न होती है। यदि हथेली पर आग या बर्फ का टुकडा देर तक रहने दिया जाय तो दोनो ही दशाओ मे पीडा की सवेदना अनुभूत होने लगेगी। इसी प्रकार कुछ रासायनिक पदार्थ भी ऐसे होते हैं जो त्वचा के सम्पर्क मे आने पर पीडा उत्पन्न करते है। उदाहरण के लिये, कटे हुए अग पर फिटकरी या डिटोल डालने से पीडा होने लगती है।

वॉन फ्रे तथा कीसो[1] ने अपने प्रयोगो मे यह देखा कि त्वक सवेदनाएँ अस्वाभाविक उद्दीपको द्वारा भी उत्पन्न की जा सकती है। उन्होने लकडी के बारीक टुकडे से उष्णता और शीत के बिन्दुओ को उद्दीप्त किया और यह देखा कि उष्णता और शीत के बिन्दु पर शीत की सवेदना उत्पन्न हुई। इस प्रयोग से यह निष्कर्ष निकलता है कि एक विशिष्ट प्रकार की सवेदना किसी अस्वाभाविक उद्दीपक द्वारा भी उत्पन्न की जा सकती है। वान फ्रे ने शीत के बिन्दुओ को उष्ण उद्दीपक द्वारा उत्तेजित करने पर शीत की सवेदना पायी। इस प्रकार की शीत सवेदना को विरोधाभासी शीत[2] कहा गया है। इसी प्रकार विरोधाभासी उष्णता[3] भी सम्भव है। परन्तु इसका अनुभव उतनी सरलता से नही हो पाता। प्रयोगो से यह भी ज्ञात हुआ है कि विरोधाभासी शीत बहुत अधिक गर्म उद्दीपक द्वारा नही उत्पन्न किया जा सकता क्योकि अत्यधिक गर्म उद्दीपक आसपास के उष्ण बिन्दुओ को भी उत्तेजित कर देता है और उनकी सवेदनाएँ शीत की सवेदना को दबा देती है।

त्वचीय सग्राहक[4]

त्वचा की रचना तीन परतो से हुई है। ऊपरी त्वचा एपिडर्मिस[5] मुख्यत शरीर पर एक खोल का कार्य करती है। इस परत मे न तो कोई स्नायु पायी जाती है और न रक्त की वाहनियाँ[6] ही। इसलिये अनुमान किया जाता है कि इस परत की रचना निर्जीव कोषो[7] से हुई है। साधारण बोल-चाल की भाषा मे त्वचा की इस ऊपरी परत को चमडा कहते है। ऊपरी परत के नीचे आन्तरिक त्वचा होती है जिसे वास्तविक त्वचा या कोरियम[8] कहा जाता है। यह परत अत्यन्त सवेदनशील होती है। इस परत मे अनेक प्रकार के स्नायु-तन्तु, पसीने की नालियाँ तथा बालो

---

1 Von Frey and Kiesow 2 Paradoxical cold 3 Paradoxical warmth 4 Cutaneous receptors 5 Epidermis 6 Blood vessels 7. Dead cells 8 Corium

की थैलिया[1] जिनमे बालो की जडे गडी होती है पायी जाती है। त्वचा की तीसरी परत को उपत्वचा[2] कहा जाता है। इस परत मे भी बहुत सी नाडियां पाई जाती है। यह परत चर्बी से बनी होती है।

त्वचा पर पाये जाने वाले सावेदनिक बिन्दुओ का अध्ययन प्रयोगात्मक विधियो द्वारा किया गया है। इन अध्ययनो से न केवल यह ज्ञात होता है कि त्वचा के किसी विशेष भाग मे किस प्रकार के बिन्दुओ का अस्तित्व है बल्कि इनसे इस बात पर भी प्रकाश पडता है कि त्वचा के सम्पर्क मे आने वाले विभिन्न प्रकार के उद्दीपको को ग्रहण करने वाले कौन-कौन ग्राहक पाये जाते है। ब्लिक्स, गोल्डस्काइडर तथा डोनाल्डसन ने सावेदनिक बिन्दुओ का पता सबसे पहले लगाया तथा वॉन फ्रे ने उनकी उपलब्धियो का सत्यापन किया। वॉन फ्रे ने उष्णता, शीत तथा दबाव के अतिरिक्त एक चौथे प्रकार अर्थात् पीडा-सवेदना के सग्राहको का भी पता 1894 ई० मे लगाया। अत वॉन फ्रे की देन त्वचीय सवेदनशीलता के क्षेत्र मे सराहनीय समझी जाती है। इनके पूर्व त्वचा के सम्बन्ध मे लोगो का ज्ञान अ यन्त सीमित था।

त्वचा की विभिन्न परतो मे उपस्थित त्वचीय ग्राहक कई प्रकार के होते है। इन ग्राहको मे जिन मुख्य ग्राहको का पता लगाया जा सका है, उनका सक्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत है।

(1) क्रासे बल्ब—क्रासे बल्ब[3] शीत के ग्राहक माने जाते है। ये शीत की सवेदना मस्तिष्क तक ले जाने वाली नाडियो के सिरे होते है। इन सिरो को बल्ब इसलिये कहा जाता है क्योकि ये लट्टू के समान गोल आकार के होते हैं। ये ग्राहक वास्तविक त्वचा अर्थात् त्वचा की बीच वाली परत मे स्थित होते है। ऐसा अनुमान है कि सख्या मे क्रासे बल्ब अन्य त्वचीय ग्राहको की अपेक्षा अधिक होते हैं। कान तथा माथे पर इन ग्राहको की सख्या अधिक पाई जाती है।

(2) रफीनी सिलेण्डर—रफीनी सिलेण्डर[4] त्वचा मे पाए जाने वाले एक दूसरे प्रकार के ग्राहक होते है जो उष्णता के प्रति सवेदनशील होते हैं। त्वचा के ऊपर जिन बिन्दुओ पर उष्ण उद्दीपक स्पर्श कराने से गर्मी की सवेदना अनुभव की जाती है वहाँ रफीनी सिलेण्डर की उपस्थिति अनुमान की जाती है। उष्णता के ये ग्राहक त्वचा की बीच वाली परत मे काफी नीचे स्थित होते है। इसी कारण इनके उत्तेजित होने से क्रासे बल्ब की अपेक्षा थोडा अधिक समय लगता है। रफीनी सिलेण्डर सख्या मे क्रासे बल्ब की अपेक्षा कम होते हैं। गालो के ऊपर ये ग्राहक सबसे अधिक पाये जाते है।

(3) मेसनर कार्पसल्स—मेसनर कार्पसल्स[5] स्पर्श या दबाव के ग्राहक होते हैं। ये कार्पसल्स मास के छोटे-छोटे टुकडो की भाति होते है और इसलिये इन्हे

---

1 Hair folticles 2 Sub-cutaneous tissue 3 Krause bulbs 4 Ruffini cylinders 5 Meissner corpuscles

देहाणु कहा जा सकता है। ये देहाणु त्वचा के रोम-रहित भागो मे पाये जाते है। इनकी स्थिति त्वचा की ऊपरी परत के समीप ही होती है। अत केवल हल्के दवाव वाले उद्दीपको के त्वचा के सम्पर्क मे आने पर ही ये ग्राहक क्रियाशील होते है। उगलियो की नोक तथा होठ पर ये ग्राहक अधिक सख्या मे पाये जाते है।

(4) **पैसिनी कार्पसल्स**—पैसिनी कार्पसल्स[1] भी स्पर्श या दवाव के ग्राहक माने जाते है। परन्तु ये ग्राहक केवल भारी उद्दीपको द्वारा ही उद्दीप्त किए जा सकते हैं। इस प्रकार के ग्राहक त्वचा की अतिम परत मे पाये जाते है। आकार मे ये बडे और पूर्णतया विकसित होते है।
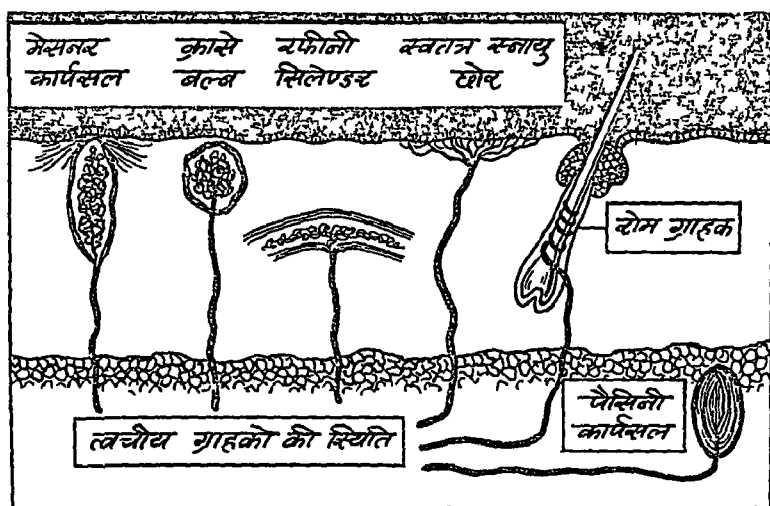
चित्र सख्या 4 1 त्वचीय ग्राहको की स्थिति

(5) **रोम ग्राहक (हेयर रिसेप्टर्स)**—बाल की जडो के चारो ओर लिपटे हुए रोम ग्राहक[2] भी स्पर्श के ग्राहक समझे जाते हैं। रचना मे ये ग्राहक स्वतन्त्र-स्नायु छोरो से मिलते-जुलते है। इन ग्राहको के उत्तेजित होने से भी हल्के दबाव या स्पर्श की सवेदना उत्पन्न होती है। ये ग्राहक केवल उन्ही क्षेत्रो मे पाये जाते है जहाँ बालो की जडे होती हैं। अत यदि बालो की जडो को किसी बारीक उद्दीपक से स्पर्श किया जाय तो रोम ग्राहक क्रियाशील होगे।

(6) **स्वतन्त्र स्नायु छोर (फ्रीनर्व एण्डिग)**—स्वतन्त्र स्नायु छोर[3] पीडा के ग्राहक माने गए है। ये ग्राहक भी त्वचा की ऊपरी परत के निकट ही स्थित होते है। ये ग्राहक गाल के भीतरी भाग मे नही पाये जाते परन्तु आँख की कनीनिका मे इनकी सख्या सबसे अधिक होती है पीडा के ये ग्राहक शरीर के ऊपर सख्या मे सबसे अधिक होते है। पीडा के स्वतन्त्र स्नायु छोरो के अतिरिक्त कुछ स्वतन्त्र

---

1 Pacini corpuscles 2 Hair receptors 3 Free nerve endings

स्नायु छोर स्पर्श के प्रति भी सवेदनशील होते है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि स्पर्श के स्वतन्त्र स्नायु-छोर त्वचा पर सभी स्थानो मे फैले हुए होते है।

ताप सवेदनाएँ

ताप सवेदनाओ[1] के अन्तर्गत उष्णता और शीत सवेदनाएँ सम्मिलित है। जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है, शरीर का सामान्य ताप जिसे दैहिक शून्य कहा जाता है लगभग 33° सेन्टीग्रेड हाता है। जब इतने ही ताप वाला कोई उद्दीपक त्वचा पर रखा जाता है तो न तो शीत का अनुभव होता है और न उष्णता का। अत किसी भी ताप उद्दीपक को प्रभावशाली होने के लिए दैहिक शून्यता से भिन्न तापमान का होना आवश्यक है। जिन उद्दीपको के भीतर 33° सेन्टीग्रेड से कम तापमान होता है वे शीत की सवेदना उत्पन्न करते है और जिनका तापमान 33° सेन्टीग्रेड से अधिक होता है उनसे उष्णता की सवेदना जाग्रत होती है। परन्तु कोई ताप-उद्दीपक दैहिक शून्यता से भिन्न ताप रखने के कारण ही प्रभावशाली नही होता बल्कि वह अपने कुछ भौतिक गुणो के कारण भी ताप-सवेदनाएँ उत्पन्न करने मे समर्थ होता है। कुछ उद्दीपक गर्मी के अच्छे वाहक[2] होते हैं और कुछ अच्छे वाहक नही होते। यदि 33° सेन्टीग्रेड से कम ताप वाले किसी धातु और रूई दोनो को त्वचा के ऊपर रखा जाय तो पहले दोनो ही समान रूप से ठण्डे प्रतीत होगे। परन्तु थोडी देर मे धातु का टुकडा रूई की अपेक्षा अधिक ठण्डा लगने लगेगा क्योकि शरीर के ताप को शीघ्रता के साथ बाहर निकाल देता है जबकि रूई उसकी गति को मन्द कर देती है। अत ताप-उद्दीपको मे पाई जाने वाली भौतिक विशेषताओ पर भी ताप-सवेदनाओ की अनुभूति निर्भर होती है, केवल उनके तापमान के दैहिक शून्यता से भिन्न होने पर ही नही।

अन्य सवेदनाओ की भाँति ताप-सवेदनाओ मे भी अनुकूलन व्यापार पाया जाता है। ताप-अनुकूलन[3] से यह अभिप्राय है कि जब कोई ठण्डा या गर्म उद्दीपक त्वचा के सम्पर्क मे आता है तो वह शीत या उष्णता की सवेदना उत्पन्न करता है, लेकिन शीघ्र ही त्वचा उद्दीपक के साथ अनुकूलित हो जाती है और ताप-सवेदना की तीव्रता घटने लगती है। उदाहरण के लिए यदि एक हाथ गर्म पानी और दूसरा ठडे पानी की बल्टी मे डाला जाय तो पहले हाथ मे उष्णता तथा दूसरे हाथ मे ठडक की सवेदना होगी। परन्तु धीरे-धीरे दोनो हाथो मे अनुभूत सवेदनाओ की तीव्रता मे कमी आती जायेगी और अन्त मे दोनो हाथो पर लगभग समान तापमान का अनुभव होने लगेगा। लेकिन इस सदर्भ मे यह स्मरणीय है कि पूर्ण ताप-अनुकूलन तभी सम्भव है जब ताप-उद्दीपको का तापमान दैहिक शून्य के आस-पास ही हो। प्रयोगो से पता चला है कि 15° से० ग्रे० से कम और 40°

1 Temperature sensitivity 2 Good conductor of heat 3 Thermal adaptation

से० ग्रे० से अधिक ताप वाले उद्दीपको के साथ पूर्ण ताप-अनुकूलन सभव नही है। इसी प्रकार जब उद्दीपको का तापमान दैहिक शून्य से बहुत अधिक भिन्न होता है तो ताप अनुकूलन असभव हो जाता है अर्थात् जब उद्दीपक का तापमान 10° से० ग्रे० से कम और 40° से० ग्रे० से अधिक होता है तो त्वचा इन उद्दीपको के साथ अनुकूलित नही हो पाती। फलस्वरूप इन उद्दीपको द्वारा उत्पन्न की गई शीत अथवा उष्णता की सवेदनाओ की तीव्रता घट नही पाती।

यद्यपि शीत और उष्णता की सवेदनाओ की उत्पत्ति के लिए क्रमश ठडी और गर्म वस्तुएँ स्वाभाविक उद्दीपक समझी जाती है, तथापि इन सवेदनाओ की उत्पत्ति के लिये यह आवश्यक है कि उद्दीपको के भीतर एक निश्चित मात्रा मे तापमान विद्यमान हो। जिस प्रकार अत्यन्त क्षीण उद्दीपक विशिष्ट सवेदनाओ को उत्पन्न करने मे असमर्थ होते है उसी प्रकार यह भी सत्य है कि अत्यन्त न्यून ताप वाले तथा अत्यन्त अधिक ताप वाले उद्दीपक स्वाभाविक शीत और उष्णता नही उत्पन्न कर पाते। ऐसी दशाओ मे शीत के स्थान पर पीडा का अनुभव और उष्णता के स्थान पर जलन का अनुभव होने लगता है। जब उद्दीपक का तापमान लगभग 5° से० ग्रे० हो जाता है तो शीत की सवेदना पीडा की सवेदना मे बदल जाती है। जब हम हथेली पर बर्फ का टुकडा बहुत देर तक रखे रहते है तो ऐसे ही पीडा-युक्त ठडक[1] का अनुभव होता है। ठीक इसी प्रकार जब उद्दीपक का तापमान लगभग 40° से० ग्रे० हो जाता है तो जला देने वाली गर्मी[2] का अनुभव होने लगता है। आग के अगारे को हथेली पर कुछ देर रखने से ऐसा ही अनुभव होगा।

त्वचा पर साधारणत विभिन्न प्रकार के सवेदन-बिन्दुओ का वितरण समान ढग से नही होता। कही शीत के बिन्दु अधिक पाए जाते हैं और कही कम। यही बात उष्ण बिन्दुओ के विषय मे भी सत्य है। अतएव सामान्य ढग से जब शीत-बिन्दु को शीत-उद्दीपक से उत्तेजित किया जाता है तो शीत की सवेदना होती है और उष्ण बिन्दु को गर्म उद्दीपक से उत्तेजित करने पर उष्णता का अनुभव होता है। परन्तु त्वचा पर किसी विशेष क्षेत्र मे सभी प्रकार के बिन्दु कम या अधिक सख्या मे पाये जाते है। अत जब अधिक तीव्र उद्दीपको को शरीर के किसी भाग पर स्पर्श कराया जाता है तो ताप की सवेदना अवश्य होती है। ऐसा इसलिए होता है क्योकि अधिक गर्म या अधिक ठडी वस्तुओ का प्रभाव त्वचा के ऊपर बिखर जाता है और समीपस्थ सभी उष्ण-बिन्दु या शीत-बिन्दु एक साथ ही उद्दीप्त हो जाते हैं। अत अधिक तीव्र उद्दीपक किसी एक निश्चित बिन्दु को नही बल्कि एक क्षेत्र मे पाए जाने वाले सभी ताप-बिन्दुओ को उद्दीप्त कर देते है।

जैसा ऊपर सकेत किया जा चुका है, शीत बिन्दु को उष्ण उद्दीपक द्वारा उत्तेजित करने पर विरोधाभासी शीत का अनुभव होता है। इस सन्दर्भ मे यह

---

1 Painful cold 2 Burning heat

स्मरणीय है कि विरोधाभासी शीत के लिए उद्दीपक का तापमान 45° से० ग्रे० होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त विरोधाभासी शीत का अनुभव क्षेत्रीय उद्दीपन से नही किया जा सकता। यह अनुभव केवल विन्दुगत उद्दीपन से ही सभव होता है। यदि 45° से० ग्रे० तापमान वाले किसी उद्दीपक को किसी त्वचीय क्षेत्र पर रखा जाय तो तत्काल ही अनेक उष्ण विन्दु भी उत्तेजित हो जायेंगे और विरोधाभासी शीत का अनुभव नही हो पायेगा।

त्वचा पर ताप-सवेदनाओ के सदर्भ मे ऐसा अनुभव किया गया है कि जब शीत और उष्ण दोनो प्रकार के विन्दु एक ही साथ उत्तेजित किए जाते है तो न तो शीत की सवेदना होती है और न उष्णता की। ऐसी स्थिति मे जलन का अनुभव होता है। यदि हम त्वचा पर एक शीत-विन्दु को 20° सेन्टीग्रेड तापमान वाले उद्दीपक से उत्तेजित करे और उसी के निकट किसी उष्ण विन्दु का 38° सेन्टीग्रेड ताप वाले उद्दीपक से उत्तेजित करे तो वारी-बारी से उत्तेजित करने पर इन दोनो विन्दुओ पर क्रमश शीत और उष्णता का अनुभव होगा। परन्तु यदि इन दोनो विन्दुओ को एक ही साथ उद्दीप्त किया जाय तो जलन का ही अनुभव होगा। ऐसे प्रयोग को "सिन्थेटिक हीट प्रयोग"[1] कहा गया है।

त्वचा पर स्वाभाविक शीत की सवेदना शीत-ग्राहको की क्रियाशीलता के कारण होती है। शीत के ग्राहको को क्रासे वल्व कहा जाता है। ये ग्राहक वास्तविक त्वचा मे पाये जाते हैं। इसी प्रकार उष्णता के ग्राहको को रफीनी सिलेण्डर की सज्ञा दी गई है जो वास्तविक त्वचा के भीतर काफी नीचे स्थित होते है। इसीलिए शीत के ग्राहक उष्ण ग्राहको की अपेक्षा जल्दी क्रियाशील हो जाते है। त्वचा के भीतर पीडा और दवाव के ग्राहको की अपेक्षा शीत तथा उष्णता के ग्राहक सख्या मे कम पाए जाते हैं। फिर भी अनुमान है कि शीत विन्दु लगभग पाँच लाख और उष्ण विन्दु इससे कुछ कम होते है। उष्ण विन्दु गालो पर सवसे अधिक पाए जाते हैं। शीत-विन्दु भी माथे तथा कानो मे वहुलता के साथ पाए जाते है।

त्वचा के ऊपर शीत तथा उष्ण-विन्दुओ की खोज प्रयोगात्मक विधि द्वारा की गई है। ऐसे प्रयोगो मे धातु के कुन्द शलाखो का प्रयोग किया जाता है। इन्हे गर्म और ठडे पानी मे गर्म या ठडा करके त्वचा के ऊपर कराया जाता है। रवड की मुहर की सहायता मे त्वचा के किसी भाग पर (आमतौर से वाहुओ के ऊपर) ताप विन्दुओ की खोज करते है। उद्दीपक को गर्म पानी मे गर्म करने की अपेक्षा विजली से गर्म करना अधिक अच्छा समझा जाता है क्योंकि ऐसा करने से उसका तापमान समान वना रहता है। उष्ण विन्दुओ की खोज के लिये साधारणत 40° से० ग्रे० और शीत-विन्दुओं की खोज के लिये 15° से० ग्रे० तापमान वाले उद्दीपक को ही प्रयोग मे लाया जाता है। ताप-विन्दुओ के प्रयोगो से पता चलता है कि ये

---

1 Synthetic heat experiment

बिन्दु विभिन्न क्षेत्रो मे अलग अलग सख्या मे पाये जाते है। शीत के बिन्दुओ का वितरण भी कई प्रकार का होता है। कही पर शीत-बिन्दु अलग-अलग होते हैं, कही चेन की भाँति और कही पर समूहो मे पाए जाते है।

पीडा-सवेदना

पीडा की सवेदना उस समय उत्पन्न होती है जब किसी उद्दीपक की सहायता से पीडा के ग्राहको को चोट पहुँचाई जाती है। पीडा की उत्पत्ति कई प्रकार के उद्दीपको से हो सकती है। सुई या कोई अन्य चुभने वाली वस्तु जब त्वचा पर चुभोई जाती है तो पीडा के ग्राहक क्रियाशील हो जाते है। परन्तु पीडा का अनुभव तीव्र ताप-उद्दीपको के कारण भी होता है। अत्यन्त गर्म या अत्यन्त ठडी वस्तु जैसे आग या बर्फ के हाथ पर कुछ देर तक रहने से भी पीडा का अनुभव होता है। कुछ रासायनिक उद्दीपक भी पीडा के ग्राहको को उत्तेजित करते हैं, जैसे तेजाब, डिटोल आदि। अत पीडा की उत्पत्ति ताप या रासायनिक पदार्थों या किसी चुभनशील यन्त्र द्वारा की जा सकती है।

सम्पूर्ण त्वचा के ऊपर पीडा के बिन्दु सख्या मे सबसे अधिक पाये जाते है। सख्या मे पीडा के बिन्दु बीस से चालीस लाख के बीच बतलाये जाते हैं। यद्यपि त्वचा के सभी भागो मे पीडा के बिन्दु समान रूप से नही वितरित होते फिर भी त्वचा के बहुत ही कम भाग ऐसे होगे जहाँ पीडा के बिन्दु न पाए जाते हो। ऐसा अनुमान है कि जो स्नायु और रक्त की नलियाँ त्वचा की ऊपरी परत के समीप स्थित होती हैं उनके आस-पास पीडा के बिन्दु विशेष रूप से अधिक पाये जाते है। परन्तु पीडा के बिन्दु उस क्षेत्र मे नही पाये जाते जहाँ दबाव या स्पर्श के बिन्दु अधिक घने रूप से उपस्थित होते है। उदाहरण के लिए, आँख की कनीनिका के केन्द्र मे पीडा ही की अनुभूति होती है—स्पर्श, शीत और उष्णता की नही।

पीडा-सवेदना की उत्पत्ति के लिये यह आवश्यक है कि यत्र को त्वचा पर एक निश्चित दबाव के साथ चुभाया जाय। परन्तु भिन्न-भिन्न क्षेत्रो मे दबाव की तीव्रता अलग-अलग होनी चाहिए। उदाहरण के लिए आख की कनीनिका मे तो यन्त्र का दबाव केवल 0 2 ग्राम प्रति वर्ग मिलीमीटर ही पर्याप्त है लेकिन पीडा उत्पन्न करने के लिए उँगली की नोक पर कम से कम 300 ग्राम प्रति वग मिली-मीटर दबाव की आवश्यकता होती है।

अन्य सवेदनाओ की भाँति पीडा-सवेदना मे भी अनुकूलन व्यापार देखा जाता है। जब किसी उद्दीपक के त्वचा पर चुभने से पीडा आरम्भ होती है तो वह पहले बहुत तीव्र लगती है परन्तु धीरे-धीरे पीडा की तीव्रता मे कमी आती जाती है क्योकि त्वचा उस उद्दीपक के साथ अनुकूलित हो जाती है। लेकिन पूर्ण अनुकूलन स्थापित होने मे कुछ समय लगता है। किसी स्थान पर पूर्ण अनुकूलन लगभग दस सेकेण्ड मे भी हो जाता है परन्तु किसी-किसी स्थान पर इसके लिये दस मिनट का समय लग जाता है। पूर्ण अनुकूलन मे कितना समय लगेगा यह इस बात पर भी निर्भर होता है कि पीडा किस प्रकार के उद्दीपक द्वारा उत्पन्न की जा रही है और त्वचा के

किस क्षेत्र से सम्बन्धित है। सामान्यत दैनिक अनुभव के आधार पर लोगो का विश्वास है कि पीडा की सवेदना मे अनुकूलन की घटना नही घटित होती है। परन्तु यह धारणा असत्य है। वास्तव मे जब त्वचा पर कोई नुकीली वस्तु चुभती है और थोडी-थोडी देर बाद वह हिलती डुलती रहती है तो पीडा की सवेदना पुन तीव्र हो जाती है। यदि हम उद्दीपक को हिलने न दे और उसे स्थिर रखे तो पीडा के अनुभव मे कमी मालूम पडेगी।

पीडा से सम्बन्धित गाहक ततुओ को स्वतन्त्र नाडी छोर कहा जाता है। ये गाहक त्वचा की ऊपरी परत के निकट ही स्थित होते हैं। पीडा के गाहक गाल के भीतरी भाग मे नही पाये जाते, परन्तु आँख की कनीनिका मे सबसे अधिक होते है।

पीडा-सवेदना के विन्दुओ का पता लगाने के लिये भी उसी प्रकार प्रयोग की योजना बनाते है जैसी ताप-विन्दुओ की खोज के लिये। पीडा विन्दुओ का पता लगाने के लिए आल्गोमीटर[1] का प्रयोग किया जाता है। यह यत्र एक प्रकार की सूई होती है जो एक मुठिये से जुडी होती है।

दवाव की सवेदना

सवसे पहले वॉन फ्रे ने दवाव के विन्दुओ की खोज की और प्रयोगो से यह पता लगाया कि दवाव के विन्दु पीडा के विन्दुओ से भिन्न होते हैं। इसके पूर्व विद्वानो की धारणा थी कि एक ही विन्दु पर जब हल्का उद्दीपक स्पर्श कराया जाता है तो दवाव या स्पर्श की सवेदना होती है और जब भारी उद्दीपक रखा जाता है तो पीडा का अनुभव होता है। परन्तु वॉन फ्रे ने त्वचा पर अनेक विन्दुओ को उपयुक्त उद्दीपको (बारीक और मोटे बालो) की सहायता से उत्तेजित किया और देखा कि कुछ विन्दु केवल बारीक और हल्के उद्दीपको के द्वारा उत्तेजित होकर स्पर्श की सवेदना प्रदान करते है और कुछ विन्दु बारीक उद्दीपको द्वारा उत्तेजित न होकर मोटे और भारी उद्दीपको के द्वारा ही उत्तेजित हो पाते हैं तथा पीडा की सवेदना जाग्रत करते है। इस प्रकार वॉन फ्रे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि स्पर्श तथा पीडा दोनो से सम्बन्धित दो भिन्न प्रकार के विन्दु त्वचा पर पाये जाते है। एक दूसरे प्रयोग मे वॉन फ्रे ने एक स्पर्श विन्दु तथा एक पीडा-विन्दु को सूई द्वारा उद्दीप्त किया और यह देखा कि प्रयोज्य ने स्पर्श-विन्दु उत्तेजित करने पर स्पर्श की सवेदना का अनुभव किया और पीडा-विन्दु को उद्दीप्त करने पर पीडा का। इस प्रयोग से यह धारणा और अधिक पुष्ट हो गई कि स्पर्श के विन्दु पीडा के विन्दुओ से भिन्न होते है।

जब त्वचा पर कोई स्पर्श-उद्दीपक रखा जाता है तो उद्दीप्त स्थान विकृत हो जाता है। इस प्रकार की विकृति के कारण ही स्पर्श के ग्राहक उत्तेजित होकर दवाव की सवेदना उत्पन्न करते है। परन्तु स्पर्श की सवेदना उत्पन्न करने के लिए

---

1 Algometer

त्वचा पर भिन्न भिन्न क्षेत्रो के लिए भिन्न-भिन्न सीमान्तो के उद्दीपको की आवश्यकता पडती है। उगलियो तथा होठो पर तो एक ग्राम प्रति वर्ग मिलीमीटर दवाव से ही स्पश के ग्राहक क्रियाशील हो जाते हैं। परन्तु पैर के तलवो मे सौ ग्राम प्रति वग मिलीमीटर से भी अधिक दवाव की आवश्यकता पडती है। स्पर्श-उद्दीपको के भार के अतिरिक्त दबाव-सवेदना की उत्पत्ति पर इस वात का भी प्रभाव पडता है कि उद्दीपक कितनी शक्ति के साथ त्वचा पर रखा जाता है। यदि किसी उद्दीपक को शीघ्रता से त्वचा पर स्पर्श कराते है तो उसके हल्का होने पर भी दवाव की सवेदना अनुभूत होगी। इसी प्रकार यदि किसी उद्दीपक को धीरे-धीरे त्वचा पर स्पर्श कराते है तो सवेदना उत्पन्न करने के लिए उसे भारी होना आवश्यक है।

अनुमान किया जाता है कि सपूर्ण त्वचा पर स्पर्श या दवाव के बिन्दु लगभग पाँच लाख होते हैं। यद्यपि इन बिन्दुओ का वितरण त्वचा के सभी भागो मे समान नही होता, फिर भी त्वचा का कोई भाग (कनीनिका को छोडकर) ऐसा नही है जो स्पश-बिन्दुओ से रहित हो। अधिकाश स्पश-बिन्दु तो वालो वाले क्षेत्रो मे पाये जाते है। परन्तु रोमरहित क्षेत्रो, जैसे उगली की नोक तथा होठ पर भी स्पर्श बिन्दु घने रूप से पाये जाते है। ऐसे स्थानो पर लगभग 100 बिन्दु प्रति वर्ग सेन्टीमीटर पाये जाते है। आँख की कनीनिका मे स्पर्श-बिन्दुओ का सर्वथा अभाव होता है।

अन्य सवेदनाओ की भाँति स्पर्श-सवेदना मे भी अनुकूलन व्यापार देखा जाता है। जव कोई स्पश-उद्दीपक त्वचा पर रखा जाता है तो थोडी देर वाद त्वचा उस उद्दीपक के साथ अनुकूलित हो जाती हे और स्पर्श या दबाव का अनुभव मद पडने लगता है। परन्तु पूर्ण स्पश-अनुकूलन मे कितना समय लगेगा यह इस बात पर निर्भर है कि त्वचा का कौनसा भाग स्पर्श किया जाता हे तथा उद्दीपक किस आकार का है।

स्पर्श-सग्राहक तीन प्रकार के माने जाते हैं—मेसनर कार्पसल्स पैसिनी कार्पसल्स तथा रोम ग्राहक। मेसनर कार्पसल्स हल्के उद्दीपको द्वारा ही उत्तेजित किये जाते हैं। ये ग्राहक त्वचा की ऊपरी परत के निकट ही स्थित होते है और त्वचा के रोम रहित भागो मे बहुलता के साथ पाये जाते है। पैसिनी कार्पसल्स जो त्वचा की अतिम परत मे स्थित होते है, भारी उद्दीपको के द्वारा उत्तेजित हो पाते हैं। तीसरे प्रकार के स्पश ग्राहक वालो की जडो के पास पाये जाते है। प्रत्येक बाल की जड एक थैली मे गढी हुई होती है। इन थैलियो के चारो ओर रोम ग्राहक लिपटे हुए होते है। अत बाल की जडो को स्पर्श करने से दबाव या स्पश की सवेदना अनुभूति होती है।

स्पर्श-बिन्दुओ का पता लगाने के लिए जो प्रयोग किये जाते है उनमे छोटे वर्गो वाली रवड की मुहर[1] की आवश्यकता पडती है। ऊँट या घोडे के वाल को

1 Grid

उद्दीपक के रूप मे प्रयोग किया जाता है। स्पर्श-विन्दुओ को इस्थीशियोमीटर[1] से भी उद्दीप्त किया जाता है। वाटसन के अनुसार एक वर्ग सेन्टीमीटर मे कम से कम सात और अधिक से अधिक 300 स्पर्श-विन्दु पाये जाते है।

खण्ड (ख)

रासायनिक सवेदनशीलता

मनुष्य के जीवन मे गध एव रस सवेदनाओ का भी वडा महत्व होता है। खाने-पीने की वस्तुओ की गध और स्वाद अच्छा होने के कारण हम उनका उपभोग अधिक रुचि के साथ करते है। सडी-गली वस्तुओ मे न तो उत्तम गध ही होती है और न उनका स्वाद हो वढिया होता है। इसलिये हम उन्हे नही खा पाते। यदि हमारे भीतर गध और रस विभेदीकरण की क्षमता न होती तो कदाचित् हम हानिकारक पदार्थों को खा-पीकर अहित कर वैठते। सुवासित और सुगधित वस्तुओ की ओर हम सहज ही आकर्षित हो जाते है। इमलिये सावुन, तेल, क्रीम, पाउडर इत्यादि सुगधो के मिश्रण के साथ तैयार किया जाता है। हमारा अन्य व्यक्तियो की ओर आकर्षित होना तथा सुगन्ध मे सने हुए छोटे वच्चो को गोद मे उठाकर उन्हे प्यार करना काफी सीमा तक हमारी गध की पसदगी के कारण ही होता है। गध और स्वाद परस्पर सवधित होते हैं। खाने-पीने की सामग्रियो मे पाये जाने वाले स्वाद मात्र से ही हम प्रभावित नही होते वलिक उनकी गधो का भी प्रभाव हमारे ऊपर पडता है। प्राय सुगधित वस्तुओ का स्वाद भी अच्छा होता है और स्वादिष्ट वस्तुओ मे अच्छी गध विद्यमान होती है। सर्दी-जुकाम मे न केवल गधो का अनुभव अवरुद्ध हो जाता है वलिक खाने-पीने की वस्तुओ का स्वाद भी वदल जाता है। कुत्तो तथा चीटियो मे गध सवेदना की क्षमता वडी प्रवल होती है। लेकिन गध और उस सवेदनशीलता के विषय मे हमारा ज्ञान अपेक्षाकृत सीमित है। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि गध तथा रस के सग्राहक नाक और जीभ के भीतर ऐसे स्थानो पर स्थित है जिनका निरीक्षण सभव नही है। इस कठि-नाई के कारण उन विधियो का प्रयोग जो अन्य ज्ञानेन्द्रियो के अध्ययन मे प्रयुक्त होती है, नाक और कान की सवेदनशीलता के अध्ययन मे नही किया जा सकता।

गध उद्दीपक तथा गध-सग्राहक

गध की सवेदना नाक के माध्यम से होती है। नाक के भीतर सवसे ऊपरी भाग मे ऑल्फैक्ट्री एपियेलियस[2] नामक एक छोटा भाग पाया जाता है जिसके भीतर गध के ग्राहक स्थित होते है। गध के ये ग्राहक पतले सूत के समान होते है जिनके सिरो पर रेशे पाये जाते हैं और मस्तिष्क के गध केन्द्र मे पाये जाने वाले ऑल्फैक्ट्री वल्व से सम्वन्धित होते है। गध की सवेदना केवल गैस या हवा के माध्यम से उत्पन्न होती है। उद्दीपक से निकलकर गध हवा की लहरो के साथ गध-ग्राहको तक पहुँच

---

1 Aesthesiometer 2 Olfactory epithelium

पाती है। गध की सवेदना कभी उद्दीपक के गध-ग्राहको क सीधे सम्पर्क मे आने से नही होती। यदि किसी सुगधित तरल पदार्थ को नाक के छिद्रो मे भर दिया जाय तो हमे गध की सवेदना बिल्कुल न होगी। इसके विपरीत, यदि उसे नाक के द्वार पर लगा दिया जाय तो सुगन्ध का अनुभव होगा। ऑल्फैक्ट्री एपिथेलियम स्वय एक प्रकार की झिल्ली से ढका होता है, इसलिये साँस मे भीतर जाने वाली हवा उस तक नही पहुँच पाती। आमतौर से गध की सवेदना प्राप्त करने के लिये हमे ग्राहको को खीच कर सूँघने की आवश्यकता पडती है। ऐसा करने से हवा मे चक्कर उत्पन्न हो जाते है और केवल चक्करो के रूप मे जाने वाली हवा ही आल्फैक्ट्री एपिथेलियम मे प्रवेश करके गध-ग्राहको को उत्तेजित कर पाती है। खाने-पीने वाली वस्तुओ की गध मुँह के भीतरी रास्ते से भी नाक मे प्रविष्ट हो जाती है।
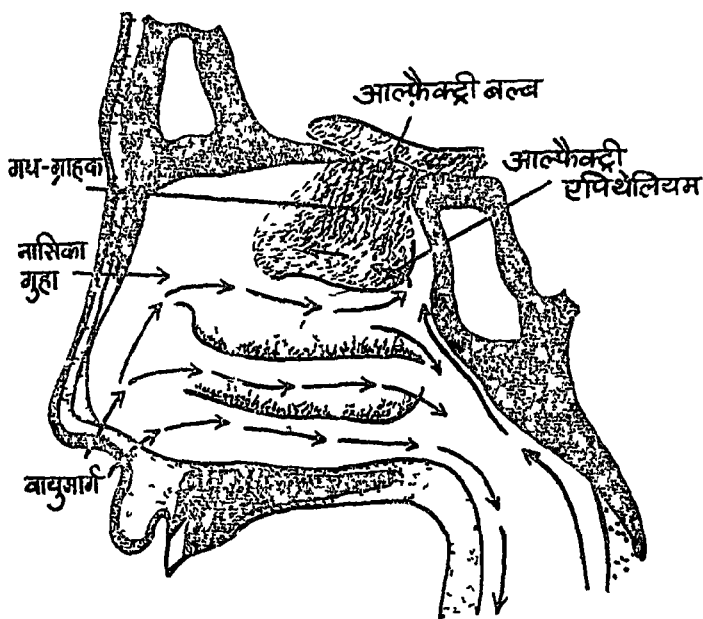
चित्र सख्या 4 2 नाक मे गध ग्राहको की स्थिति

गधो का वर्गीकरण

गधो का वैज्ञानिक ढग से वर्गीकरण करना बहुत कठिन है। साधारण बोलचाल मे हम गधो को दो सामान्य वर्गों मे बाट देते है—सुगन्ध और दुर्गन्ध। इन्ही को हम प्रिय और अप्रिय गध भी कहते हैं। परन्तु सुगन्ध और दुर्गन्ध स्वय कई प्रकार की होती है और साथ ही कई गधो से मिलकर मिश्रित गध की उत्पत्ति हो जाती है। वास्तव मे गधो की विभिन्न विशेषताओ या गुणो को व्यक्त करने के लिये हमारे पास उपयुक्त शब्दावली का अभाव है। सामान्यत हम किसी विशेष प्रकार की गध

को व्यक्त करने के लिये उन पदार्थों का नाम जोड देते है जिनमे वह गन्ध पाई जाती है, जैसे मूली, प्याज या पोदीने की गन्ध ।

गन्ध-वर्गीकरण की दिशा मे प्रथम वैज्ञानिक प्रयास हालैंड निवासी शरीर वैज्ञानिक ज्वाडमेकर[1] द्वारा किया गया जिसने विभिन्न प्रकार के गन्धो को कुल नौ वर्गों मे विभाजित किया । लोगो के भीतर गन्ध के मनोविज्ञान के प्रति अभिरुचि जाग्रत करने का श्रेय ज्वाडमेकर को ही है। परन्तु आगे चलकर हेनिंग[2] ने ज्वार्ड-मेकर की योजना मे थोडा सशोधन किया और समस्त गन्धो को केवल छ प्राथमिक वर्गों मे रखा । हेनिग का गन्ध-वर्गीकरण काफी वैज्ञानिक समझा जाता है । उसके गन्ध-विश्लेषण का आधार मनोवैज्ञानिक है । हेनिग द्वारा बतलाई हुई छ प्राथमिक गन्धो का ब्यौरा निम्नवत् है—

(1) सुगन्ध[3]—पुष्पो से निकलने वाली गन्ध
(2) वायव्य गन्ध[4]—फलो से निकलने वाली गन्ध
(3) मसाले की गन्ध[5]—मसालो से निकलने वाली गन्ध
(4) राल गन्ध[6]—तारपीन इत्यादि की गन्ध
(5) जलने की गन्ध[7]—काफी, तारकोल, कोयले आदि की गन्ध
(6) दुर्गन्ध[8]—सडी-गली वस्तुओं की गन्ध

गन्ध के प्रयोगात्मक अध्ययन मे हेनिग ने अपने प्रयोज्यो को विभिन्न गन्ध-उद्दीपक सुंघाकर उन गन्धो का विवरण मांगा । प्रयोज्यो ने कुल 415 गन्ध के नाम
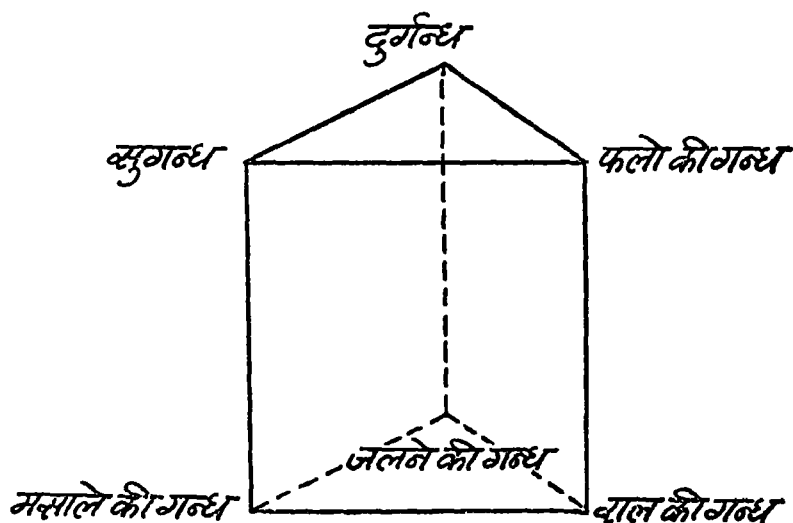
चित्र सख्या 4 3 हेनिग द्वारा निर्मित गध-प्रिज्म

1 Zwaardemaker 2 Henning 3 Fragrant 4 Ethereal 5 Spicy 6 Resinous 7 Burut 8 Purrid

वतलाये । बाद मे हेनिग ने केवल उन छ प्रयोज्यो को चुना जिनके विवरण बहुत अधिक विश्वसनीय थे । उक्त छ प्रयोज्यो के विवरणो म परस्पर काफी समानता मिली । फलस्वरूप हेनिग ने 415 गन्धो को केवल छ प्राथमिक वर्गो मे बाटा । इन प्राथमिक गन्धो के आधार पर उसने चित्र सख्या 4 3 की भाँति गन्ध-प्रिज्म[1] तैयार किया ।

अपने गध-प्रिज्म के माध्यम से हेनिग ने जिस महत्वपूर्ण तथ्य की ओर सकेत किया है वह यह हे कि दो भिन्न गधो के बीच निरन्तरता पायी जाती है । उसके अनुसार गध-प्रिज्म की विभिन्न भुजाओ पर गधो को उनकी तीव्रता के क्रम मे व्यवस्थित किया जा सकता है । उदाहरण के लिए, लौग और इलायची को सुगन्ध और मसाले की गध वाली रेखा पर रखा जायेगा । साथ ही इनके भीतर किस मात्रा मे सुगध और मसाले की गध विद्यमान है इसके आधार पर इनकी वास्तविक स्थिति उक्त रेखा पर निश्चित की जायेगी । इसी प्रकार शुद्ध गधो को रेखाओ पर अकित किया जायेगा और मिश्रित गधो को प्रिज्म की गहराई मे दिखलाया जा सकता है ।

जब हमारी नाक मे केवल एक ही उद्दीपक का गध प्रवेश करता है तो हमे शुद्ध गध का अनुभव होता है । परन्तु प्राय हमे कई गधो का मिला-जुला अनुभव होता रहता है । ऐसे गधो को मिश्रित गध कहते है । रसोई घरो मे पाई जाने वाली गध मिश्रित गध का एक अच्छा उदाहरण है । इसी प्रकार कुछ गधे बहुत अधिक तीव्र होती है, जैसे रासायनिक पदार्थों की गधे । परन्तु फूलो और फलो की गधें अपेक्षाकृत मन्द होती हैं । कुछ गधें तो इतनी अधिक तीव्र होती हैं कि उनसे नाक मे तकलीफ होने लगती है, जैसे, सुर्ती, सरसो के तेल या अमोनिया गैस की गध । कुछ गधे व्यक्ति को बेहोश कर देती हैं और कुछ उसे होश मे वापस लाती हैं ।

गध-अनुकूलन[2]

अन्य सवेदनाओ की भाँति गध सवेदनशीलता मे भी अनुकूलन की घटना देखने को मिलती है । यदि बहुत देर तक कोई गध नाक मे पहुँचती रहती है तो उसके प्रति हमारी सवेदनशीलता घट जाती है । यहाँ तक कि धीरे-धीरे हमको गध की बिल्कुल अनुभूति नही हो पाती । जो लोग सदैव एक निश्चित गध वाले वातावरण मे कार्य करते है, वे उस वातावरण के साथ इस प्रकार अनुकूलित हो जाते है कि उन्हे वहाँ उपस्थित गध का पता नही चल पाता । परन्तु इस सदर्भ मे यह स्मरणीय है कि एक गध के साथ अनुकूलित हो जाने पर अन्य गधो के साथ अनुकूलन नही हो पाता । अन्य गधें तो सामान्य रूप से अनुभूत होती रहेगी । गध-अनुकूलन की क्षमता के कारण कोई भी व्यक्ति एक निश्चित गध वाले वातावरण मे बहुत देर तक बिना किसी उलझन के कार्य कर सकता है । उदाहरण के लिये, चिकित्सालयो मे चिकित्सक तथा चिकित्सा पढने वाले विद्यार्थी वहाँ की गध से इस प्रकार अनुकूलित होकर कार्य करते रहते है, जैसे सामान्य व्यक्ति सामान्य

8 Smell prism 2 Smell adaptation

वातावरण मे। चीनी की मिलो या अन्य रासायनिक कारखानो मे भी कार्यकर्ता अनुकूलन के कारण ही निरन्तर अपना कार्य करते रहते हैं।

गध-अनुकूलन की घटना के स्वभाव का वैज्ञानिक निरीक्षण करने के लिये प्रयोगशालाओ मे कुछ अध्ययन किये गये है। गध-अनुकूलन के प्रयोगात्मक अध्ययनो से जो निष्कर्ष निकाले गए है उनके अनुसार गध-अनुकूलन मे विभिन्न उद्दीपको की तीव्रता और उनके गुण के कारण अलग-अलग समय लगता है। जो उद्दीपक तीव्र गध वाले होते हैं उनके प्रति शीघ्र ही अनुकूलन स्थापित हो जाता है। कपूर की गध के साथ अनुकूलित होने मे दो मिनट का समय लगता है। गध-अनुकूलन प्राय पाँच मिनट वाद समाप्त भी हो जाती है। यदि उद्दीपक बहुत तीव्र न हो और हम पूर्णत अनुकूलित न हुए हो तो और शीघ्र ही अनुकूलन का प्रभाव समाप्त हो सकता है। अनुकूलन की प्रक्रिया मे यह भी देखा जाता है कि जो गध पहले अच्छी मालूम होती है कुछ देर बाद वही अप्रिय लगने लगती है। इस बात से इस तथ्य की ओर सकेत मिलता है कि अनुकूलन के समय गध-उद्दीपक का कभी-कभी गुण भी परिवर्तित हो जाता है।

गध-मिश्रण

दो या अधिक गध उद्दीपको को एक ही साथ प्रयोग करने से हमे मिश्रित गधो की सवेदना होती है। गधो के मिश्रण तथा अन्य सम्बन्धित घटनाओं का अध्ययन ज्वार्डमेकर तथा हेनिंग ने किया है। दो गधो की तीव्रताओ और गुणो मे परस्पर अन्तर होता है। इसलिए जब दो या अधिक गध-उद्दीपको द्वारा गध-ग्राहको को एक ही साथ उद्दीप्त किया जाता है तो उसके कई परिणाम दिखलाई पड़ते है। कभी-कभी नाक के दोनो नथुनो से भी अलग-अलग गध की अनुभूति होती है क्योंकि प्रत्येक नथुने का सम्बन्ध पृथक ग्राहक-ततुओ से होता है। जब हम दो गधो को एक ही साथ सूंघते है तो दोनो गधो से मिश्रित एक ऐसी गध अनुभूत होती है जिसमे दोनो ही तत्वो की उपस्थिति ज्ञात होती है। यदि दोनो तत्व काफी समान गध वाले होते है तो वे भली-भाँति मिश्रित हो जाते हैं और उन दोनो का पृथक्-पृथक् अस्तित्व पहचान सकना कठिन हो जाता है। परन्तु यदि उनकी गधो मे अधिक भिन्नता हुई तो दोनो को पहचाना जा सकता है। इन दोनो मे जिस गध की तीव्रता अधिक होगी वह दूसरी गध को ढक लेगी। दो गधो के इस प्रकार के मिश्रण को ब्लेण्ड या फ्यूजन[1] कहा जाता है। परन्तु जब दो गध-उद्दीपक बिल्कुल भिन्न-भिन्न गन्ध वाले होते हैं तो उनका परस्पर मिश्रण सभव नही हो पाता और वे बारी-बारी से गन्ध ग्राहको को उत्तेजित करते है।

यदि मिश्रित की जाने वाली दोनो गधो की तीव्रता मद होती है तो उन्हे एक साथ सूंघने से अत्यन्त क्षीण सवेदना होती है। कुछ विशेष प्रकार के [illegible]

---

1 Blend or fusion

गधो को एक साथ सूँघने से तो पूण रूप से एक गध दूसरे को काट देती है और फलस्वरूप किसी भी तत्व का अनुभव नही हो पाता। इस घटना का 'नियुट्रलाइ-जेशन'[1] कहा जाता है। परन्तु 'नियुट्रलाइजशन' की घटना के सबध मे मनोवैज्ञानिको के बीच मतैक्य नही है। ज्वाडमेकर तथा टिचनर इस घटना के पक्ष मे अपनी सम्मति प्रदान करते है। परन्तु हेनिंग के अनुसार 'नियुट्रलाइजेशन' सभव नही है।

जब दो गधो मे से एक बहुत तीव्र होती है और दूसरी बहुत मद तो एक नए प्रकार की सवेदना होती है। ऐसी दशा मे केवल उसी गध की सवेदना होगी जो तीव्र होती है। इसका कारण यह है कि मद गध पर तीव्र गध छा जाती है और उसकी सवेदना को ढक लेती है। इस स्थिति को आच्छादन या मास्किग[2] की सज्ञा दी गई है। मास्किग का सिद्धान्त व्यावहारिक जीवन मे बहुत अधिक उपयोग मे लाया जाता है। जब अप्रिय गध या दुगन्ध से बचना होता है तो लोग तेज सुगध वाली वस्तुओ का प्रयोग करते हैं। पाउडर, क्रीम, इत्र, सुगधित तेल, लौंग, इलायची तथा धूपवत्ती इत्यादि इसी उद्देश्य से प्रयोग मे लाई जाती हैं।

गधो के मिश्रण मे कभी-कभी ऐसा भी देखने मे आता है कि दो गधो को एक ही साथ सूंघने से दोनो गध मिलकर एक नई गध की सवेदना उत्पन्न करती हे और साथ ही पृथक-पृथक भी अनुभूत होती है। ऐसी बात दोनो नथुनो द्वारा सूंघने मे भी पाई जाती है और केवल एक नथुने के प्रयोग से भी।

वास्तव मे गध-मिश्रण का अध्ययन तथा प्राथमिक गधो का पता लगाना उतनी सरल बात नही है जितनी हम समझते है। जब हम प्रयोज्य को कोई विशेप गध सूँघाते हैं, उस समय वातावरण मे अनेक गध किसी न किसी मात्रा मे मिश्रित होकर उसके नथुनो से होकर गध-ग्राहको को प्रभावित करते रहते हैं। इस स्थिति को पूर्णत नियत्रण मे ला सकना असम्भव नही तो कठिन अवश्य है। अत प्रयोज्य को जो भी गध-अनुभूति होती है उसे केवल एक या दो सुँघाई हुई गधो का ही प्रभाव नही माना जा सकता।

गधो का प्रयोगात्मक अध्ययन

गधो के प्रयोगात्मक अध्ययन मे मनोवाछित प्रगति सम्भव नही हो पाई है क्योकि गध ग्राहक नाक के बहुत भीतरी भाग मे स्थित होने और म्यूकस झिल्ली से ढके होने के कारण सीधे उद्दीप्त नही किये जा सकते। फिर भी शरीर वैज्ञानिको तथा मनोवैज्ञानिको ने विभिन्न विधियो द्वारा गध-सवेदनाओ का प्रयोगात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया है। गधो के प्रयोगात्मक अध्ययन मे सबसे महत्वपूर्ण बात उद्दीपक नियत्रण[3] भी होती है अर्थात् यह देखना आवश्यक होता है कि जिन गध-उद्दीपको द्वारा हम गध ग्राहको को उत्तेजित करना चाहते है वे विशुद्ध हो। इसके लिये यह आवश्यक है कि प्रयोज्य जिस कमरे मे बैठाया गया हो उस कमरे को पहले

---

1 Neutralization 2 Masking 3 Stimulus control

हर प्रकार की गध से मुक्त कर दिया जाय। साथ ही यह भी देखना चाहिये कि प्रयोज्य के भीतर गध-सवेदना की क्षमता का अभाव तो नही है। इसके अतिरिक्त उद्दीपक की कितनी मात्रा प्रयोज्य की नाक मे पहुँचे और उसे किस प्रकार पहुँचाई जाय आदि समस्याएँ कुछ जटिल समस्याएँ समझी जाती हैं। उपर्युक्त कोटि की समस्याएँ उद्दीपक-नियत्रण से सवधित हैं। अत उद्दीपक-नियत्रण को ध्यान मे रखते हुए गध-सवधी प्रयोगो मे निम्नाकित विधियो का प्रयोग किया गया है।

(1) ऑल्फैक्टोमीटर विधि—ऑल्फैक्टोमीटर[1] एक ऐसा उपकरण होता है जिसकी सहायता से एक निश्चित मात्रा मे गन्ध-उद्दीपक प्रयोज्य की नाक के भीतर पहुँचाया जा सकता है। सबसे पहले ज्वार्डमेकर ने 1887 मे ऑल्फैक्टोमीटर का प्रयोग किया। इस उपकरण मे दो शीशे की नलियाँ होती हैं जिसमे से एक नली दूसरी के भीतर इस प्रकार व्यवस्थित होती है कि वह सरलता से आगे-पीछे खिसक सके। भीतरी नली पाँच इच लम्बी होती है और उसका अगला सिरा कुछ मुडा
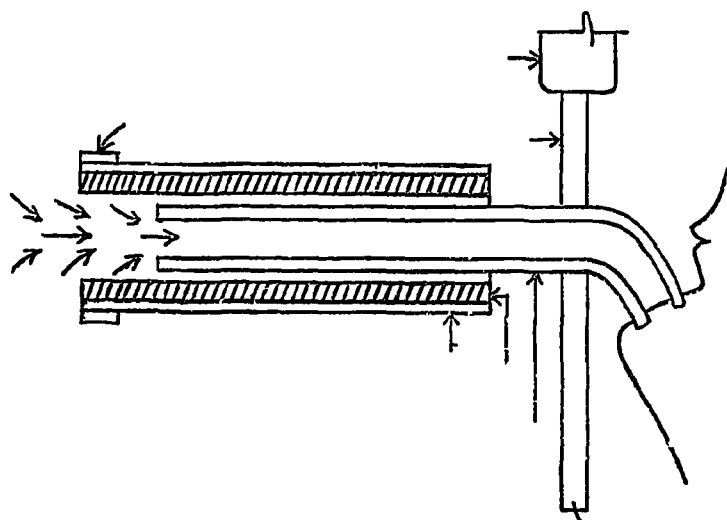
चित्र सख्या 4 4 ज्वार्डमेकर का आल्फैक्टोमीटर

हुआ होता है जिससे वह नाक के छिद्र मे सरलता पूर्वक प्रविष्ट हो सके। वाहरी नली की ऊपरी सतह पर गन्ध-उद्दीपक विद्यमान होता है। जव भीतरी नली को वाहर की ओर वढाया जाता है तो हवा घुसती है और गध-उद्दीपक को लेती हुई प्रयोज्य की नाक क भीतर भाग तक पहुँचती है। इस उपकरण मे गध की जो मात्रा हवा के साथ नाक मे जाती है उसे नापने के लिये चिन्ह अकित होते हैं। इस प्रकार आल्फैक्टोमीटर की सहायता से प्रयोगकर्त्ता एक निश्चित मात्रा मे गध-उद्दीपक

1 Olfactometer

प्रयोज्य की नाक तक पहुँचाकर गध सवेदना के प्रारम्भिक सीमान्त को ज्ञात करता है। अर्थात् यह जानने का प्रयास करता है कि गन्ध की वह कौन सी छोटी से छोटी मात्रा है जो प्रयोज्य के भीतर गन्ध सवेदना जाग्रत कर सकने मे समर्थ होती है।

(2) **ब्लास्ट इजेक्शन विधि**—ज्वाडमेकर द्वारा निर्मित ऑल्फैक्टोमीटर के प्रयोग मे अनेक सुविधाएँ होते हुए भी यह कठिनाई अनुभव की जाती है कि प्रयोज्य यदि खीचकर उद्दीपक को सूँघ लें तो आवश्यकता से अधिक गन्ध की मात्रा उसके गन्ध-ग्राहको तक पहुच जायेगी। अत प्रयोज्य के साँस खीचने और छोडने की गति पर उद्दीपक की तीव्रता निर्भर होगी। यदि ऐसा होगा तो सहज ही गन्ध-सवेदना के प्रारम्भिक सीमान्त के निर्धारण मे त्रुटियाँ होने लगेगी और परिणाम विश्वसनीय न होगा। अत इस दोप से बचने के लिये एल्सबर्ग[1] ने ब्लास्ट इजेक्शन विधि[2] का विकास किया। इस विधि द्वारा उद्दीपक की तीव्रता को नियन्त्रित किया जा सकता है। ब्लास्ट इजेक्शन विधि मे एक बोतल के भीतर गध-उद्दीपक तरल अथवा ठोस पदार्थ के रूप मे रख दिया जाता है और उसका मुँह कस कर बन्द कर दिया जाता है। इस बोतल मे दो ट्यूबो की व्यवस्था होती है। एक से बोतल के भीतर हवा जाती है और दूसरे से समान मात्रा मे हवा बाहर निकलती है। जब हवा भीतर जाती है तो वहाँ गन्ध-उद्दीपक के सपर्क मे आने से वह उस गध को लेकर बाहर निकलती है। जिस नली से हवा बाहर निकलती है उसे प्रयोज्य की नाक मे लगाया जाता है। इस विधि की मुख्य विशेपता यह है कि निरतर एक निश्चित मात्रा मे ही हवा मे मिली गध को नाक के भीतर पहुँचने देती है। ऐसा होने के कारण गध का प्रारम्भिक सीमान्त निर्धारित करने मे अधिक त्रुटि नही होती। वेजेल[3] (1948) ने एल्सबर्ग की विधि को थोडा सशोधित करके प्रयोग किया।
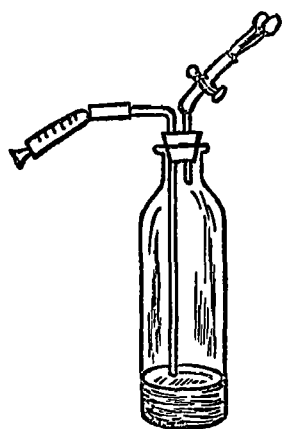
चित्र स० 4 5 एल्सबर्ग का ब्लास्ट इजेक्शन बोतल

(3) **ऑल्फैक्टोरियम विधि**—गध-उद्दीपको को और अधिक नियन्त्रित करने के लिए एक अन्य उपाय काम मे लाया जाता है। किसी एक विशेप गध की सवेदना का अध्ययन करते समय यह आवश्यक है कि प्रयोग का कमरा अन्य गधो से पूर्णतया मुक्त हो। सम्पूर्ण वातावरण गधहीन होना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ऑल्फैक्टोरियम[1] के निर्माण की योजना बनाई गई। ऑल्फैक्टोरियम शीशे और स्टेनलेस स्टील का बना हुआ एक छोटा कमरा होता है जिसके भीतर प्रयोज्य अपना सिर डालकर गध-उद्दीपक को ग्रहण करता है। यह कमरा चारो ओर से बन्द रहता

1 Elsberg 2 Blast injection method 3 Wenzel 4 Olfactorium

है और हवा जाने के लिए समुचित व्यवस्था रहती है। मर्करी वेपर लैम्प की सहायता से इस कमरे के वातावरण को पूर्णत गध-रहित कर दिया जाता है। इस उपाय से गध का सीमान्त काफी कम निकलता है। स्वय प्रयोज्य के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने वालो को गधहीन बना लेने के बाद ही ऑल्फैक्टोरियम के भीतर अपना सिर डाले। साथ ही उसे अपने मुखमण्डल पर एक विशेष प्रकार का वेस्लीन मल लेना पडता है,जिससे उसके अपने शरीर का गध ऑल्फैक्टोरियम के भीतर विद्यमान न रह सके। ऑल्फैक्टोरियम विधि का प्रयोग फोस्टर[1] तथा उनके सहयोगियो ने (1950) गध-सीमान्त ज्ञात करने के लिये किया है।

गध-सीमान्त

उपर्युक्त विधियो का प्रयोग करके वैज्ञानिको ने गध-सीमान्तो[2] को पता लगाने का प्रयास किया है। गध-सम्बन्धी प्रारम्भिक सीमान्त कई तत्वो पर निर्भर होता है। भिन्न-भिन्न विधियो द्वारा ज्ञात करने पर गध के प्रारम्भिक सीमान्त के मूल्य पृथक-पृथक निकलते है। जैसा ऊपर सकेत किया गया है, ऑल्फैक्टोमीटर या ब्लास्ट इजेक्शन बोतल विधियो के प्रयोग से गध-सीमान्त कुछ अधिक तथा ऑल्फैक्टोरियम की विधि से काफी कम पाया जाता है। इसी प्रकार गध-सीमान्त भिन्न-भिन्न गधो के लिए अलग-अलग होता है क्योकि स्वभाव से ही कुछ गधे अन्य गधो की अपेक्षा अधिक तीव्र होती है। उदाहरण के लिये, मुश्क की गध, जो हिरण की नाभि मे पाया जाता है, अत्यन्त तीव्र होती है। इसलिए इसका सीमान्त बहुत ही कम होता है। कस्तूरी की गध अति तीव्र होने के कारण इसका भी प्रारम्भिक सीमान्त अत्यन्त अल्प होता है। कस्तूरी का 0000002 मिलीग्राम ही एक घन मीटर हवा मे गध-सवेदना उत्पन्न कर सकता है। ऐलिसन एव काट्ज[3] (1919) ने विभिन्न गधीले पदार्थों का प्रारम्भिक सीमान्त ज्ञात किया है। उनके अनुसार एक लीटर हवा मे निम्नाकित मात्रा गध की न्यूनतम अनुभूति के लिए आवश्यक है—

Ethyl ether	5 83 mg	Valeric acid	029 mg
Chloroform	3 30 ,,	Butyric acid	009 ,,
Methyl Salicylate	100 ,,	Artificial musk	00004 ,,

गध सम्बन्धी प्रारम्भिक सीमान्त के निर्धारण मे उद्दीपक का मापन प्राय दो ढगो से किया जाता है। एक विधि वह है जिसमे यह पता लगाया जाता है कि उद्दीपक की कितनी मात्रा एक घन मीटर मे गध की सवेदना उत्पन्न कर सकती है। दूसरे शब्दो मे इस विधि मे उद्दीपक का भार ज्ञात किया जाना है। एक दूसरा तरीका यह है जिसमे यह देखा जाता है कि गध-उद्दीपक के कितने कण गध सवेदना उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त होते हैं। इन दोनो विधियो का प्रयोग करके गध-सम्बन्धी प्रारम्भिक सीमान्त ज्ञात किया गया है।

---

1 Foster 2 Olfactory thresholds 3 Allison and Katz

जहाँ तक भिन्नता सीमान्त का प्रश्न है, गध के भिन्नता सीमान्त को ज्ञात करने के लिए उन्ही मनोदैहिक विधियो का प्रयोग किया जाता है जो अन्य ज्ञानेन्द्रियो के साथ प्रयोग मे लाई जाती है। भिन्नता सीमान्त के निर्धारण मे प्रयोज्य को दो भिन्न तीव्रताओ के गध उद्दीपक को सुघाकर उन दोनो का अन्तर ढूँढा जाता है। यद्यपि बहुत से प्रयोज्य इस प्रकार का गध-विभेदीकरण[1] कर सकने मे समर्थ होते हैं, फिर भी अन्य ज्ञानेन्द्रियो की अपेक्षा गध-विभेदीकरण की क्षमता निम्न स्तर की ही पाई जाती है। आम तौर से इस सदर्भ मे किए गए प्रयोगो मे देखा गया है कि गध का मूल उद्दीपक 30 प्रतिशत या उससे भी अधिक बढा देने पर ही गध-विभेदीकरण सम्भव हो पाता है। अर्थात् गध का भिन्नता सीमान्त 1/3 के आस-पास ही पाया जाता है। वेबर के अनुसार भी गध का भिन्नता सीमान्त इतना ही होता है। गैम्बुल[2] ने सत्रह ठोस पदार्थों तथा तेरह घोलो के लिये भिन्नता सीमान्त निर्धारित किया और अपनी उपलब्धियो के आधार पर वेबर के निष्कर्षों की पुष्टि की।

गध सम्बन्धी भिन्नता सीमान्त ज्ञात करने के लिए ज्वार्डमेकर की ऑल्फैक्टो मीटर विधि तथा एल्सबर्ग की ब्लास्ट इजेक्शन विधि बडी उपयोगी विधियाँ समझी जाती है क्योकि इन विधियो द्वारा मूल उद्दीपक की मात्रा या तीव्रता तुरन्त बढाई या घटाई जा सकती है। इतनी सुविधा जनक होने के कारण ही भिन्नता सीमान्त सम्बन्धी अधिकाश गध परीक्षण प्रारम्भ मे आल्फैक्टोमीटर विधि द्वारा ही सम्पन्न किये गये।

रस-सवेदना

रस या स्वाद की सवेदना[3] भी गध-सवेदना की भाँति एक रासायनिक अनुभूति होती है। जीभ को स्वाद की अनुभूति प्रदान करने वाली मुख्य ज्ञानेन्द्रिय माना जाता है। यह सत्य है, परन्तु स्वाद का अनुभव उतना सरल नही होता जितना हम उसे समझते है। रसो की अनुभूति वास्तव मे एक जटिल अनुभूति होती है। उदाहरण के लिये, जब हम चाय या कॉफी पीते है तो हमे कई प्रकार की सवेदनाएँ होती है। इनमे मुख्य सवेदनाएँ हैं स्वाद की, गध की, स्पर्श की, गति की, उष्णता की तथा मादकता की। स्वाद की उत्पत्ति मे उक्त सभी प्रकार की सवेदनाओ का हाथ होता है। यदि हम नाक और त्वचा के माध्यम से होने वाली किसी भी सवेदना को न उत्पन्न होने दें तो निश्चय ही खाने-पीने वाली वस्तुओ से वह रसानुभूति न हो सकेगी जो साधारणत होती रहती है। स्वाद की सवेदना उत्पन्न करने मे हमारी नाक या गध-ग्राहको का तो विशेष योग होता है। यदि हम प्रयोज्य की जीभ पर नीबू या कोकाकोला की एक बूंद रखें और उसकी गध किसी भी प्रकार उसकी नाक मे न पहुँचने दे तो प्रयोज्य केवल इतना ही बतला पायेगा कि उसकी

---

1 Smell discrimination 2 Gamble 3 Gustation

जीभ पर कोई खट्टा या कडवा उद्दीपक रखा गया है। वह नीबू को नीबू या कोका-कोला को कोकाकोला नही पहचान सकता।

रस-उद्दीपक तथा रस-सग्राहक

स्वाद की सवेदना उत्पन्न करने मे स्वाद के ग्राहको को उत्तेजित होना अत्यावश्यक है। जीभ की ऊपरी सतह पर अपने छोटे-छोटे अकुर[1] उभरे हुए होते है। जीभ के अग्र भाग मे, अगल बगल तथा जीभ के भीतरी भाग मे प्राय सभी स्थानो पर ये अकुर फैले हुए होते है। ये अकुर पृथक्-पृथक् स्वाद के लिए अलग-अलग पाये जाते हैं। इनमे से प्रत्येक अकुर के नीचे एक या अधिक स्वाद-कलिकाएँ होती हैं। इन कलिकाओ के भीतर अनेक रस-ग्राहक पाये जाते है जिनके सिरो पर पतले रेशे होते है। जब कोई रस-उद्दीपक इन सिरो तक पहुँचता है तो ये उद्दीप्त होकर रस-सवेदना उत्पन्न करते हैं। इन रेशो का सम्बन्ध मस्तिष्क तक जाने वाली नाडियो के साथ होता है जिनके माध्यम से रस की उत्तेजना मस्तिष्कीय रस-केन्द्र तक पहुँचती रहती है।

चित्र सख्या 4·6 मनुष्य की जीभ मे रस ग्राहको की स्थिति

स्वाद की सवेदना किसी उद्दीपक को जीभ के ऊपर रखने या उसे खाने-पीने से उत्पन्न होती है। परन्तु रस-सवेदना उत्पन्न होने के लिए यह आवश्यक है कि

---

1 Papillae

उद्दीपक शीघ्रता से और उचित मात्रा मे स्वाद के ग्राहकों तक पहुंच सके। इसलिए ठोस उद्दीपको की अपेक्षा तरल पदार्थ जैसे नमक का घोल, चीनी का शरबत या नीबू का रस इत्यादि अधिक उपयुक्त और प्रभावशाली प्रकार के उद्दीपक समझे जाते है। स्वाद-सवेदना के प्रयोगात्मक अध्ययनो मे इन्ही घोलो या रसो का प्रयोग किया जाता है क्योकि ये उद्दीपक शीघ्र ही अच्छी तरह स्वाद के ग्राहको तक पहुँच जाते है जबकि ठोस उद्दीपको को द्रवित होकर लार के साथ घुलमिल सकने मे समय लगता है। जो उद्दीपक घुलनशील नही होते उनका स्वाद नही ज्ञात किया जा सकता।

आमतौर से घोलो को रस-सवेदना के लिये समुचित एव उपयुक्त प्रकार का उद्दीपक समझा जाता है। परन्तु अभी तक यह निश्चित नही हो पाया हे कि कौन-कौन से रासायनिक पदार्थ किसी विशिष्ट रस की उत्पत्ति कर सकते है। फिर भी ऐसा अनुभव है कि ऐसिड से खट्टेपन की सवेदना उत्पन्न होती है। वैज्ञानिक अनुसधानो के आधार पर समझा जाता है कि ऐसेटिक ऐसिड से सिरके का खट्टापन मिलता है जबकि सायट्रिक ऐसिड से नीबू का खट्टापन प्राप्त होता है। जिस वस्तु मे जितनी अधिक मात्रा मे ऐसिड पाया जायेगा वह उतनी तेज खट्टेपन की सवेदना जाग्रत करेगी। नमकीन सवेदना के लिए सोडियम क्लोराइड या वह नमक जो हम खाने पीने मे प्रयोग करते हैं, उपयुक्त उद्दीपक का काय करता है। अन्य प्रकार के नमक जैसे काला नमक, सेंघा नमक या सुलेमानी नमक से भी नमकीन सवेदना उत्पन्न की जा सकती है। इसी प्रकार कुनैन से कडुवेपन तथा चीनी और सैक्रीन से मिठास की सवेदनाएँ उत्पन्न होती है।

रसो का वर्गीकरण

मनोवैज्ञानिक प्रयोगो के आधार पर अब यह निश्चित हो गया है कि प्राथमिक स्वाद केवल चार प्रकार के होते है—मीठा, नमकीन, खट्टा तथा कडुवा। अन्य प्रकार के स्वाद इन्ही चार प्राथमिक स्वादो के मिश्रण होते है। कुछ स्वाद तो रस-ग्राहको के उद्दीपन के कारण नही बल्कि गध-ग्राहको के उद्दीपन के कारण अनुभूत होते है। जिस व्यक्ति की घ्राण-शक्ति दुर्बल होती है या जिसके भीतर स्थायी अथवा अस्थायी रूप से गध की क्षमता का लोप हो जाता है उसे विविध स्वादो का अनुभव नही हो पाता। अस्थायी गध-लोप की दशा मे जो सर्दी-जुकाम के कारण उत्पन्न हो जाती है हमारा स्वाद बुरी तरह विकृत हो जाता है। नाक के अतिरिक्त स्वाद-सवेदना के लिए मुँह के भीतर स्थित त्वचीय ग्राहक भी उत्तरदायी होते है। भोजन का सम्पूर्ण रसास्वादन जीभ, नाक तथा त्वचीय सभी प्रकार के ग्राहको के सहयोग पर निर्भर होता है। अत जब हम प्राथमिक स्वादो का पता लगाना चाहते है तो हमारे लिये यह आवश्यक होता है कि हम जीभ के अतिरिक्त अन्य ज्ञानेन्द्रियो पर यथा सभव नियन्त्रण रखें।

जीभ के पृथक्-पृथक् भागो को उत्तेजित करने पर अलग-अलग सवेदनाएँ प्राप्त होती हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि जीभ की ऊपरी सतह पर प्राथमिक स्वादो के भिन्न-भिन्न क्षेत्र निर्धारित है। प्रत्येक क्षेत्र मे, भिन्न-भिन्न प्रकार के ग्राहक ततुओ का जाल-सा बिछा हुआ है। जीभ की नोक पर मीठेपन की सवेदना होती है। उसके अगल बगल मे खट्टेपन तथा पिछले भाग मे कडुवेपन की सवेदनाएँ अनुभूत होती है। प्रयोगो से पता चला है कि नमकीन सवेदना जीभ के मध्य भाग को छोडकर शेप सभी क्षेत्रो मे पाई जाती है। ऐसा अनुमान है कि जीभ के मध्य भाग मे किसी भी प्रकार की सवेदना अनुभव नही की जाती है।

रस-अनुकूलन

अन्य सवेदनाओ की भाँति बहुत देर तक एक ही स्वाद का अनुभव करते रहने के कारण स्वाद-अनुकूलन होने लगता है। आधी प्याली चाय पी लेने के बाद उसकी मिठास कुछ कम सी लगने लगती है। ज्यो-ज्यो जीभ एक विशिष्ट स्वाद के साथ अनुकूलित होती जाती है, त्यो-त्यो अन्य स्वादो के प्रति उसकी सवेदनशीलता बढती जाती है। उदाहरण के लिए, मीठा पकवान खाने के बाद नमकीन पकवान और अधिक नमकीन लगने लगता है। इसीलिए लोग मिठाई खाने के बाद चाय पीना पसन्द नही करते बल्कि नमकीन खाकर चाय पीते हैं। प्रयोगो से पता चलता है कि स्वाद-अनुकूलन की गति प्रारम्भ मे तीव्र रहती है परन्तु आगे चलकर यह मद होने लगती है। स्वाद-अनुकूलन की घटना मे सम-कालीन तथा उत्तरोत्तर दोनो ही प्रकार के विरोध देखे जाते हैं। उत्तरोत्तर विरोध मे कोई स्वाद-उद्दीपक एक अन्य उद्दीपक के साथ एक प्रकार का और दूसरे उद्दीपक के साथ एक दूसरे प्रकार का स्वाद देता है। उदाहरण के लिए, चीनी खाने के बाद सतरा खट्टा लगता है, परन्तु नीबू खाने के बाद सतरा मीठा लगता है। हान (1934) ने अपने प्रयोगो मे प्रयोज्यो की जीभ पर एक निश्चित क्षेत्र मे सोडियम क्लोराइड एक निश्चित समय तक रखा और देखा कि स्वाद-अनुकूलन पूर्ण रूप से केवल तीस सेकण्ड मे ही स्थापित हो गया। इससे सिद्ध होता है कि स्वाद-अनुकूलन बहुत ही शीघ्र सम्भव हो पाता है, यद्यपि दैनिक जीवन मे हमारा अनुभव ऐसा नही होता। इसका कारण यह है कि जब हम कुछ खाते-पीते है तो जीभ का एक निश्चित भाग ही उद्दीप्त नही होता बल्कि वस्तु जीभ के भिन्न-भिन्न भागो को स्पर्श करती है जिसके कारण नई उत्तेजना का अनुभव होता रहता है। यदि हर ग्रास जीभ के ऊपर एक ही स्थान पर रखा जाय तो अवश्य ही हमे स्पष्ट अनुकूलन की घटना दैनिक जीवन मे भी प्रतीत होगी, किन्तु ऐसा सम्भव ही नही है।

स्वाद-अनुकूलन के सदर्भ मे यह स्मरणीय है कि सभी प्रकार के स्वादो मे न तो अनुकूलन समान गति से स्थापित हो पाता है और न अनुकूलन की मात्रा ही समान हो पाती है। हान के प्रयोगात्मक निष्कर्ष इस तथ्य पर प्रकाश डालते है कि अनुकूलन सबसे शीघ्र और सबसे अधिक नमकीन सवेदना मे होता है, फिर क्रमश

मीठे और खट्टेपन मे तथा सबसे देर मे और सबसे कम मात्रा मे कडुवेपन की सवेदना मे अनुकूलन हो पाता है। अनुकूलन का प्रभाव कडुवे उद्दीपन की दशा मे अत्यन्त मद गति से ही समाप्त भी होता है।

रस-सवेदना का प्रयोगात्मक अध्ययन

यद्यपि गध-ग्राहको की अपेक्षा स्वाद-ग्राहको को उद्दीप्त कर सकना अधिक सरल है, तथापि स्वाद-परीक्षण मे कई प्रकार के नियन्त्रण की आवश्यकता पडती है। जिस प्रकार गध सम्बन्धी प्रयोगो मे उद्दीपक नियन्त्रण पर बल दिया जाता है और उद्दीपक को अन्य गधो के प्रभाव से सर्वथा मुक्त रखने का यथासम्भव प्रयास किया जाता है, उसी प्रकार स्वाद के प्रयोगो मे सबसे आवश्यक बात जीभ पर उद्दीप्त किये जाने वाले क्षेत्र का आकार निर्धारित करना होता है। साथ ही उद्दीपक की मात्रा तथा उद्दीपन मध्यान्तर को पूर्णत नियन्त्रित करना भी अत्यन्त आवश्यक है। आमतौर से जब हमारा उद्देश्य किसी रस-उद्दीपक के स्वाद को पता लगाना होता है तो हम उस उद्दीपक को जीभ के ऊपर रखते हैं और देखते है कि किस प्रकार की स्वाद-सवेदना अनुभूत होती है। परन्तु ऐसा करने मे एक विशेप प्रकार की कठिनाई उपस्थित होती है। उद्दीपक तरल होने के कारण बहकर जीभ के विभिन्न भागो मे पहुँच जाता है। फलस्वरूप कई प्रकार के स्वाद ग्राहक उद्दीप्त होने लगते है। ऐसी दशा मे परिणाम केवल भ्रामक होता है।

स्वाद-सवेदना का पता लगाने के लिए जीभ को अधिक वैज्ञानिक ढग से उद्दीप्त किया जा सकता है। सबसे पहले यह निश्चित कर लेना चाहिए कि जीभ के किस क्षेत्र को उद्दीप्त करना है। फिर उद्दीपक पदार्थ को घोल का रूप देना चाहिए। घोल को किसी बारीक ब्रुश या कपडे की सहायता से जीभ के ऊपर पूर्व-निर्धारित क्षेत्र पर टपकाना चाहिए। इस सदर्भ मे यह सावधानी भी रखनी चाहिए कि एक निश्चित मात्रा से अधिक घोल जीभ पर न गिरने पाए। आजकल जीभ पर उद्दीपक पहुँचाने के लिए एक विशेप यन्त्र गस्टोमीटर[1] का प्रयोग किया जाता है। गस्टोमीटर का प्रयोग सबसे पहले 1932 ई० मे हान एव गुथर[2] ने किया था। इस यन्त्र मे एक छोटी नली लगी होती है जिसकी सहायता से घोल जीभ पर एक निश्चित मात्रा मे डाला जाता है और प्रयोग के बाद उस उद्दीपक के प्रभाव को इस यन्त्र की सहायता से ही मिटा दिया जाता है। रस-सग्राहक के स्वभाव को समझने के लिए हल्की विद्युत-धारा द्वारा भी जीभ के विभिन्न भागो को उद्दीप्त किया जाता है।

स्वाद के मनोवैज्ञानिक प्रयोगो मे यह देखा गया है कि अन्य तत्वो के साथ ही उद्दीपक के तापमान का स्वाद-सवेदना की अनुभूति पर गहरा प्रभाव पडता है। उदाहरण के लिए, जब हम मीठी चाय को अधिक गरम करके पीते है तो वह उतनी

---

1 Gustometer 2 Hahn and Gunther

मीठी नही लगती जितनी वह ठडी हो जाने पर लगती है। इसी तरह गरम सब्जी खाने से अधिक कडुवी मालूम पडती है और ठडी हो जाने पर उसका कडुवापन कुछ कम हो जाता है।

स्वाद के मनोविज्ञानिक प्रयोगो मे जिन भिन्न-भिन्न समस्याओ का वैज्ञानिक अध्ययन किया गया है, उनमे मुख्यत विभिन्न स्वाद-उद्दीपको के सीमान्तो के निर्धारण की समस्याएँ है। स्वादो के सीमान्त-निर्धारण का विवरण नीचे अलग शीर्षक के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जायेगा। सीमान्त-निर्धारण के अतिरिक्त प्रयोगो द्वारा स्वाद सग्राहको का स्वरूप समझने की चेष्टा भी की गई है। प्रयोगो से पता चला है कि जीभ के अग्र भाग मे मिठास, पीछे के भाग मे कडुवेपन तथा अगल बगल के भागो मे खट्टेपन के ग्राहक फैले हुए है। नमकीन स्वाद के ग्राहक प्राय सभी क्षेत्रो मे पाये जाते है। जीभ के मध्य भाग मे किसी प्रकार के ग्राहक नही पाये जाते।

रस-सीमान्त

जैसा ऊपर वतलाया जा चुका है, रस-सवेदना का अधिकाश प्रयोगात्मक अध्ययन स्वाद-सीमान्तो के निर्धारण से सम्बन्धित है। चारो प्रकार के प्राथमिक स्वादो के लिए दोनो प्रकार के सीमान्तो—प्रारम्भिक तथा भेदीय—का पता लगाया गया है। इन अध्ययनो का उद्देश्य यह देखना है कि चीनी, नमक, ऐसिड या कुनैन जैसे उद्दीपको की वह कौन सी छोटी से छोटी मात्रा है जो प्रयोज्य के भीतर मिठास नमकीन, खट्टेपन या कडुवेपन की सवेदनाओ की न्यूनतम अनुभूति उत्पन्न कर सकने मे समर्थ होती है। इस प्रकार स्वाद-सीमातो का पता लगाने के लिए उद्दीपक की विभिन्न तीव्रताओ की आवश्यकता पडती है। उदाहरण के लिए, यदि चीनी का प्रारम्भिक सीमान्त ज्ञात करना है तो एक लीटर पानी मे दस घन सेन्टीमीटर चीनी का घोल दिया जायेगा। यदि इस घोल मे से 1/10 भाग निकालकर पानी मिलाकर उसे दस गुना कर लिया जाता है तो अब इस घोल मे पहले घोल की अपेक्षा चीनी का 1/10 अश ही मिश्रित रह जायेगा। ऐसा करके हमने पानी मे चीनी की मात्रा घटा दी। इस विधि द्वारा हम चीनी की मात्रा प्रति लीटर कम करते जा सकते हैं। इस प्रकार अन्त मे हमे चीनी की अनेक तीव्रताएँ उपलब्ध हो जायेंगी। फिर इन सभी घोलो को हम बारी-बारी से न्यूनतम परिवर्तन की विधि[1] द्वारा प्रयोज्य की जीभ पर रख सकते हैं और चीनी की मिठास का प्रारम्भिक सीमान्त ज्ञात कर सकते है। प्राप्त हुए परिणामो से यह पता चल जायेगा कि प्रति लीटर पानी मे चीनी की कितनी मात्रा घोलने से प्रयोज्य के भीतर मिठास की सवेदना जाग्रत हो सकती है। इसी प्रकार अन्य स्वादो का भी प्रारम्भिक सीमान्त ज्ञात किया जा सकता है।

---

1 Method of Minimal Changes

रस सम्बन्धी प्रयोगो मे विभिन्न स्वादो के प्रारम्भिक सीमान्त निम्नवत प्राप्त किये गये हैं—

उद्दीपक	रस	सीमान्त (प्रतिशत मे)
चीनी	मीठापन	0 5
नमक	नमकीन	0 25
हाइड्रोक्लोरिक ऐसिड	खट्टापन	0 007
सैक्रीन	मीठापन	0 0001
कुनैन	कडवापन	0 00005

उपर्युक्त प्रारम्भिक सीमान्तो का अवलोकन करने से विदित होता है कि कुनैन की बहुत ही अल्प मात्रा कड़ुवेपन का अनुभव करा देने मे समर्थ होती है। चीनी की अपेक्षा सैक्रीन का सीमान्त बहुत कम होता है जबकि दोनो से मिठास की सवेदना प्राप्त होती है। इसी प्रकार नमकीन उद्दीपक की अपेक्षा खट्टे उद्दीपक का सीमान्त कम होता है।

परन्तु स्वाद-सीमान्त जीभ के सभी भागो मे एक-सा नही पाया जाता। यह मूल्य जीभ के अलग-अलग क्षेत्रो मे पृथक्-पृथक् निकलता है। उदाहरण के लिए, यदि हम मिठास का प्रारम्भिक सीमान्त ज्ञात करें तो यह जीभ के अग्र भाग मे सबसे कम निकलेगा क्योकि इस भाग मे अन्य भागो की अपेक्षा मिठास के ग्राहक अधिक सख्या मे पाये जाते हैं। दूसरे शब्दो मे, यह कहा जा सकता है कि अन्य स्थानो की अपेक्षा जीभ के अग्रिम भाग मे थोडा मिठास होने पर भी मीठेपन की सवेदना अनुभव की जा सकती है। इसी प्रकार जीभ के अन्य भागो को उद्दीप्त करने के लिये कडवा उद्दीपक अपेक्षाकृत अधिक मात्रा मे आवश्यक होग। जबकि जीभ के पिछले भाग मे अत्यन्त अल्प उद्दीपन से ही कडवेपन की सवेदना उत्पन्न हो जायेगी। यही बात खट्टी वस्तुओ के साथ भी पाई जाती है अर्थात् जीभ के अगल-बगल मे खट्टे उद्दीपको का सीमान्त कम और अन्य स्थानो पर अधिक पाया जायेगा।

जीभ के उद्दीप्त क्षेत्र[1] के अतिरिक्त स्वाद के प्रारम्भिक सीमान्त पर उद्दीपन-मध्यान्तर का भी प्रभाव पडता है। शुद्ध प्रारम्भिक सीमान्त ज्ञात करने के लिए यह आवश्यक है कि उद्दीपक कम से कम उतनी देर तक जीभ के सम्पर्क मे रहे जब तक वह रस-ग्राहको तक नही पहुँच जाता। ऐसा होने मे कुछ सेकण्डो का समय लगता है।

अन्त मे सीमान्त-निर्धारण के सदर्भ मे प्रयोज्य की शारीरिक और मानसिक दशाओ का भी ध्यान रखना आवश्यक है। जिस प्रकार कुछ व्यक्ति वर्णान्धता से पीडित होते हैं, उसी प्रकार कुछ लोगो मे एकाध उद्दीपको के प्रति आशिक

1 Stimulated area

रूप से रसास्वादन की क्षमता का लोप देखा जाता है। ऐसी दशा मे कोई विशिष्ट स्वाद-सवेदना उत्पन्न करने के लिए अधिक तीव्र उद्दीपक की आवश्यकता पडेगी। जिन व्यक्तियो की ऐड्रीनल ग्रथि[1] काटकर निकाल दी जाती है उनके भीतर नमक की कमी होने लगती है। ऐसे लोगो को अधिक मात्रा मे नमक का उपभोग करना पडता है। इस कारण यदि नमकीन उद्दीपक के प्रति ऐसे व्यक्तियो का प्रारम्भिक सीमान्त पता लगाया जाय तो वह बहुत अधिक निकलेगा अर्थात् नमक की जो मात्रा सामान्य व्यक्तियो के भीतर नमकीन स्वाद की सवेदना उत्पन्न कर सकती है वह उन व्यक्तियो के लिये पर्याप्त न होगी जिनके भीतर ऐड्रीनल ग्रथि सम्बन्धी दोप पाया जाता है।

जहाँ तक भिन्नता सीमान्त का प्रश्न है, यह उतनी सरलता के साथ नही निर्धारित हो पाता जितनी सरलता से प्रारम्भिक सीमान्त। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि इस कार्य मे प्रयोज्य को दो उद्दीपक देकर परस्पर तुलना करने को कहा जाता है। पहली बार उद्दीपक को दे चुकने के बाद प्रयोज्य की जीभ को सवेदना रहित कर देना आवश्यक है अन्यथा जीभ के अनुकूलित हो जाने के कारण वह दूसरे उद्दीपक की वास्तविक तीव्रता को ठीक-ठीक न पहचान सकेगा और शुद्ध परिणाम न ज्ञात हो पायेगा। परन्तु प्रयोज्य की जीभ को धोकर पहली सवेदना के प्रभाव को दूर कर सकने मे जो समय व्यतीत होता है उसके कारण पहले उद्दीपन का अनुभव भूलने लगता है। इसलिए प्रयोज्य को दोनो स्वादो की तुलना करने मे कठिनाई का अनुभव होता है। फलस्वरूप स्वाद के भिन्नता-सीमान्त के निर्धारण पर अपेक्षाकृत कम प्रयोगात्मक अनुसधान हो पाये है। फिर भी इस दिशा मे जो उपलब्धियाँ हैं, उनके अनुसार स्वाद का भिन्नता सीमान्त 1/5 पाया गया है अर्थात् मूल रस-उद्दीपक मे कम से कम उसके 1/5 अश की वृद्धि कर दी जाय तब वह स्वाद-सवेदना मे न्यूनतम परिवर्तन का अनुभव करा सकने मे समर्थ होगा।

सहायक ग्रन्थ सूची

एल्सवर्ग, सी० ए० एण्ड लेवी, आई० — ए न्यू एण्ड सिम्पुल मैथड आफ क्वान्टिटेटिव आल्फैक्टोमीट्री, बुले० निवरो० इन्स्टी० 1935

ऐलिसन, वी० सी० एण्ड काट्ज एस० एच० — ऐन इन्वेस्टिगेशन आफ स्टेन्चेज एण्ड ओडर्स फॉर इण्डस्ट्रियल पर्पजेज, ज० इन्ड० इजीनि० केमिस्ट्री 1919

गैम्बुल, ई० ए० — द ऐप्लिकेबिलिटी ऑफ वेबर ला टु स्मेल, अमेरि० ज० साइकोलोजी, 1898

---

1 Adrenal gland

ज्वार्डमेकर, एच०	डाई फिजियालॉजी डस जेरूक, लेप० एन्जिलमैन, 1895
डोनाल्डसन, एच० एच०	ऑन द टेम्परेचर सेन्स, माइन्ड, 1885
फ्रोस्टर, डी०, स्काफील्ड, ई० एच० एण्ड डेलेनबाक, के० एम०	ऐन आल्फैक्टोरियम, अमेरि० ज० साइकोलोजी 1950
वेंजेल, बी० एम०	टेक्नीक्स इन आल्फैक्टोमीट्री, ए क्रिटिकल रिव्यू ऑफ द लास्ट वन हण्ड्रेड ईयर्स, साइको० बुले०, 1948
हान, एच०	डाई एडैप्टेशन डस जेस्कमैक्सिन, जेड साइन्स फिजियालॉजी 1934
हेनिंग, एच०	डस जेरूक, वाल्यूम्स 1—4, जेड साइको० 1915

अध्याय 5

प्रत्यक्षीकरण-प्र म

प्रत्यक्षीकरण प्रक्रम—जन्मजात या अर्जित
आकृति तथा पृष्ठभूमि
आकृतिक सातत्य
आकृति तथा पृष्ठभूमि की परावतनशीलता
प्रत्यक्षीकरण का सातत्य
आकृति के प्रत्यक्षीकरण का पश्चात् प्रभाव
प्रात्यक्षिक स्थैर्य
काल प्रत्यक्षीकरण—प्रायोगिक समस्यायें, विधियाँ तथा उपलब्धियाँ
दूरी प्रत्यक्षीकरण
गति प्रत्यक्षीकरण

प्रत्यक्षीकरण-प्रक्रम

प्रत्यक्षीकरण-प्रक्रम—जन्मजात या अर्जित

प्रत्यक्षीकरण प्राणी का जन्मजात गुण है या परिवेश के साथ सम्पन्न होने वाली अन्त क्रिया द्वारा अर्जित होता है। यह मनोविज्ञान तथा दर्शन का सर्वाधिक चर्चित विषय रहा है। आरम्भ मे विचारको के एक समूह ने यह मत व्यक्त किया था कि प्रत्यक्षीकरण पूर्णत जन्मजात है तथा दूसरे समूह ने प्रत्यक्षीकरण की व्याख्या केवल ग्राहको द्वारा प्राप्त सूचना के आधार पर करने का यत्न किया। यह दूसरा उपागम इन्द्रियानुभववाद[1] कहा जाता है। गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिको ने सावेदिक सगठन[2] का सिद्धान्त प्रतिपादित किया जिसमे सावेदिक अनुभव तथा उसके चिन्हो के मध्य 'अर्जित सम्बन्धो' का कोई स्थान नही है। ये सम्बन्ध पूर्णत आन्तरिक हैं। गेस्टाल्ट सम्प्रदाय के क्षेत्र-सिद्धान्त के अनुसार प्रथम दर्शन मे ही सभी पदार्थ तत्काल सभी विशेषताओ के साथ 'पूर्णरूपाकार'[3] के रूप मे प्रत्यक्षित होते हैं। एतदर्थ पदार्थ के विभिन्न पक्षो की पूर्व अनुभूति या पूर्व प्रत्यभिज्ञा अनावश्यक है। मस्तिष्क के त्वक्षीय प्रक्रम तथा प्रत्यक्षीकरण के भौतिक प्रक्रम के मध्य समानता, इस सिद्धान्त की आधार-भूत स्थापना है। इस सिद्धान्त को 'समाकृतिकता'[4] की सज्ञा दी गई है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्यक्षित हो रही भौतिक घटना तथा उसके समानान्तर त्वक्षीय प्रक्रम के मध्य सदैव साम्य रहता है। यह साम्य ज्यामितीय न होकर सास्थितिक[5] होता है। गेस्टाल्ट अवधारणा के अनुसार, प्रत्यक्षीकरण पदार्थ द्वारा उद्भूत उत्तेजक-सरूप तथा त्वक्षीय प्रक्रम की अन्त क्रिया की परिणति है। कोफ्का ने पहले को वाह्यशक्ति तथा दूसरे को अन्त शक्ति की संज्ञा दी है। अन्त शक्तियो की प्रकृति सुन्दर रूप प्रत्यक्ष की ओर उन्मुख होती है। इसीलिए हमे सदा सामान्य तथा व्यवस्थित आकार ही प्रत्यक्षित होता है। दूसरी महत्वपूर्ण स्थापना आकृति और पृष्ठभूमि के मध्य पृथक्करण की है जिसके अनुसार प्रत्येक उद्दीपक का प्रत्यक्षीकरण किसी पृष्ठभूमि के सम्मुख ही सम्पन्न होता है। यह पृथक्करण तत्काल होता है और इसके लिए किसी प्रकार के अधिगम की उपेक्षा नही होती है।

सम्प्रति मनोवैज्ञानिक, प्रत्यक्षीकरण की एक ऐसी सैद्धान्तिक व्याख्या की

---

1 Empiricism 2 Sensory Organization 3 Whole 4. Isomorphism
5 Topological

ओर अग्रसर हो रहे है जिसमे गेस्टाल्ट सम्प्रदाय के सावेदिक सगठन के सिद्धान्त को परिष्कृत कर अधिगम के प्रभाव को भी समाविष्ट किया जा सके। अब प्रत्यक्षीकरण के स्वरूप को एक नये परिप्रेक्ष्य मे सोचा जाने लगा है तथा प्रत्यक्षीकरण के कौन से भाग पूर्वानुभव के अभाव मे भी विद्यमान रहते हैं ? और किन अगो को अधिगम द्वारा अर्जित किया जाता है ? तथा किस प्रकार अर्जित एव जन्मजात प्रात्यक्षिक क्रियाओ के मध्य अन्त क्रिया होती है ? ये विचारणीय प्रश्न हो गये है। प्रत्यक्षीकरण के कुछ पक्ष जन्म के समय ही विद्यमान रहते है जबकि जटिल पक्ष अनुभव द्वारा अर्जित होते है तथा परिष्कृत होते रहते है। हेब्ब (1949) ने स्नायु-दैहिकी पर आधृत प्रत्यक्षीकरण का तर्कसगत एव वस्तुनिष्ठ विवेचन उपस्थित किया है। हेब्ब ने प्रत्यक्षीकरण को तीन स्तरो मे विभाजित किया है। ये स्तर है—मौलिक सवेदी पृथक्करण, अर्जित असगठित सरचना तथा तादात्म्य। यहाँ पर इन तीनो स्तरो के विषय मे जान लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

मौलिक सावेदिक पृथक्करण[1]

सामान्य आकृतियाँ भी तत्काल ही पूर्णाकार के रूप मे अनुभूत नही होती हैं। किन्तु उनकी आकृति और पृष्ठभूमि का सम्बन्ध तत्काल प्रत्यक्षित होता है। इसके लिए पूर्वानुभव या किसी प्रकार का अधिगम आवश्यक नही है। यह आकृति का मौलिक सगठन, प्रत्यक्षीकरण का आधारभूत प्रक्रम है। इसका तात्पर्य पृष्ठभूमि तथा आकृति की एकता एव पृथक्करण से है जो उद्दीपन के सरूप एव स्नायुमडल के अन्तर्निहित गुणो पर आधृत होता है। रूबिन (1921) ने आकृति-पृष्ठभूमि के प्रत्यक्ष की विस्तृत व्याख्या की है। किन्तु इनके आकृति विषयक निष्कर्ष अस्पष्ट आकृतियो की दशा मे ही पूर्णत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। वस्तुत प्रत्येक प्रत्यक्षीय उद्दीपक एक व्यापक क्षेत्र मे एकत्व का आभास कराता है तथा अपने परिवेश से भिन्न दीखता है। सामान्य व्यक्ति तथा प्रथम वार दृष्टि प्राप्त करने वाले व्यक्ति भी इसका अनुभव करते हैं।

प्रथम वार दृष्टि प्राप्त करने वाले जन्मान्ध व्यक्तियो पर किये गये प्रयोगो से यह तथ्य ज्ञात हुआ कि वे एक साथ उपस्थित की गयी वस्तुओ के मध्य अन्तर को पहचान सकते थे तथा रगो के नामो को सीखकर सचिन कर सकते थे। हेब्ब ने चूहो पर किये गये प्रयोगो मे यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि जन्म से ही अन्धकार मे पोषित चूहे भी आकृति-पृष्ठभूमि के मध्य अन्तर करने मे समर्थ थे। रीसेन (1947) ने दो चिंपाजियो का 16 मास तक पूर्ण अन्धकार मे पालन किया। तत्पश्चात किये गये प्रथम परीक्षण मे ही इनमे प्रकाश की मात्रा मे परिवर्तन के अनुरूप उत्कृष्ट स्तर की पुतलियो की सहज क्रिया का प्रमाण प्राप्त हुआ। इन प्रायोगिक अध्ययनो के आलोक मे यह निष्कर्ष उचित प्रतीत होता है कि आकृति का परिवेश से

1. Primitive sensory segregation

पृथक्करण प्रत्यक्षीकरण का आधारभूत प्रक्रम है और इसके लिए अधिगम आवश्यक नही है।

अर्जित असावेदिक सगठन[1]

प्रत्यक्षीकरण के इस जटिल स्तर पर आकृति की सीमा रेखाये दृष्टि-क्षेत्र मे प्रकाश के विभिन्न स्तर द्वारा निर्धारित नही होती है। विशेप रूप से जब प्रयोज्य चयनात्मक दृष्टिकोण से सजातीय दृष्टि के एक अश के ही प्रति अनुक्रिया करता है। प्रात्यक्षिक प्रक्रम मे ऐसे अनेक आकृति-सगठन भी होते है जो मात्र सवेदी पृथक्करण पर ही निर्भर नही करते। आकृति की सीमारेखा द्वारा अनेक वैकल्पिक आकृतियाँ उत्पन्न हो सकती हैं किन्तु जिस (एक) विशिष्ट आकृति का प्रत्यक्ष होता है वह प्राय पूर्वानुभव द्वारा निर्धारित होती है। लीपर (1935) ने बोरिंग की प्रसिद्ध 'पत्नी या सास' की अस्पष्ट आकृति के प्रत्यक्ष को अधिगम द्वारा निर्धारित होने का प्रमाण प्राप्त किया था।

सामान्यत गेस्टाल्ट सम्प्रदाय के मनोवैज्ञानिको ने अधिगम को अनावश्यक मानकर केवल सावेदिक प्रचालको को ही सशक्त आकृति-पृष्ठभूमि सगठन के लिए पर्याप्त माना है। इनकी अवधारणा मे आधारभूत एव सद्य प्रत्यक्षित आकृति पृष्ठ-भूमि का प्रत्यय केन्द्रीय विपय रहा है। वस्तुत प्रात्यक्षिक सगठन पूर्णतया जन्मजात नही है। अपितु अनर्जित सगठनात्मक आधार के पश्चात् प्रात्यक्षिक सगठन पूर्वानुभव या अधिगम द्वारा परिष्कृत होना है। गेस्टाल्ट सिद्धान्त के प्रत्यक्षीकरण के अनर्जित अश को प्रदर्शित करने का अवदान निश्चय ही सराहनीय है। किन्तु अधिगम एव अनुभव जन्य प्रभावो की पूर्ण अस्वीकृति विवादग्रस्त है।

प्रत्यक्षीकरण मे तादात्म्य[2]

रेखाओ के एक समूह से आकृति वन सकती है। किन्तु किसी पदार्थ विशेप के रूप मे रेखाओ के उस समूह की प्रत्यभिज्ञा नही होगी। अनुभव के वाद ही इन रेखाओ का वर्ग, वृत्त आदि के रूप मे प्रत्यक्ष सभव होता है। यह पूर्णतया भेद या अन्तर करने का ही प्रश्न नही है क्योकि प्रत्यभिज्ञा के अभाव मे भी दो पदार्थों के रग रूप के मध्य अन्तर किया जा सकता हैं। किन्तु प्रात्यक्षिक सगठनो के साथ भिन्न-भिन्न अनुक्रियायें सम्वद्ध होती है। यही अनुक्रियायें प्रत्यभिज्ञित सरूपो को अर्थवत्ता या तादात्म्य[2] की विशेपता से सवलित करती है। विशिष्ट चाक्षुप सरूप विभिन्न सम्वन्धो के रूप मे प्रत्यभिज्ञित होते है। इसके दो पक्ष है—

(1) आकृति का जव तादात्म्य होता है तव वह किसी अन्य आकृति के समान तथा किसी अन्य आकृति से भिन्न प्रतीत होती है अर्थात् प्रत्यक्षित पदार्थ किसी श्रेणी मे वट जाता है।

---

1 Acquired non-sensory organization 2 Identification

(2) तादात्म्य गुण से सम्पन्न पदार्थ अन्य वस्तु या क्रिया के साथ शीघ्रता से सम्बद्ध हो सकता है। इसके विपरीत तादात्म्य गुण से रहित आकृतियो का शीघ्रता से प्रत्यावाहन सभव नही होता है।

थार्नडाइक (1931) ने यह प्रस्तावित किया है कि तादात्म्य, विभिन्न साहचर्यों के निर्माण को विकसित करता है तथा वह एक आकृति से प्रत्यक्षित अन्तर ही नही हैं अपितु इसमे स्मृति विपयक अन्तर भी अन्तर्निहित हैं। इसमे प्रत्यभिज्ञा भी सन्निविष्ट है। इस सन्दर्भ मे प्रमुख तथ्य यह है कि अनेक सरूपो के साहचर्यत्व मे अन्तर होता है तथा प्रत्यभिज्ञा की स्थापना मे भी पर्याप्त अन्तर होता है। प्रत्यभिज्ञा की स्थापना मे अधिक अभ्यास अपेक्षित होता है। प्रत्यभिज्ञा मे सामान्यीकरण या चयनात्मक समानता होती है। शीघ्रता से प्रत्यक्षित आकृति एक विशिष्ट श्रेणी को धारणा करती है तथा आकृति के रूप मे प्रत्यक्षित होती है तथा उसी प्रकार उसकी स्मृति भी होती है।

तादात्म्य मात्रा का विपय है तथा जिस सीमा तक सामान्यीकरण चयनात्मक होता है वही प्रत्यभिज्ञा की तत्परता तथा उसकी सीमा होती है। यह आकृति की एकता तथा अर्थवत्ता से भिन्न होती है। एकता जन्म द्वारा निर्धारित होती है किन्तु तादात्म्य दीर्घकालिक अनुभव पर निर्भर करता है। आरम्भ मे इन दोनो का पृथक्करण न होने के कारण प्रात्यक्षिक सगठन को अनर्जित कहा गया है।

सामान्य आकृतियो मे एकता तथा तादात्म्य का स्वतन्त्र अस्तित्व

किसी वृत्त को एक सशक्त[1] आकार के रूप मे तथा स्वतन्त्र पदार्थ के रूप मे (जिसकी चयनात्मक प्रत्यभिज्ञा सभव है) प्रत्यक्ष एक समान नही है। हेब्ब (1949) ने सेनडेन के साक्ष्यो को उद्धृत किया है जिनसे यह स्पष्ट है कि प्रथम बार दृष्टि प्राप्त करने वाले व्यक्ति भी आकृति पृष्ठभूमि के पृथक्करण के प्रत्यक्ष मे तो समर्थ होते हैं परन्तु अनेक प्रत्यक्षीकरण मे तादात्म्य का पूर्ण अभाव रहता है। तादात्म्य के अभाव मे भी एकता बनी रहती है। इस विषय पर शोधकर्ताओ का यह सर्वस्वीकृत मत है कि वृत्त त्रिभुज आदि का प्रत्यक्ष बडा निम्न कोटि का होता है। इनमे से किसी एक आकृति को विशिष्ट गुणो से युक्त पूर्ण पदार्थ के रूप मे अधिक काल तक देखना सभव न था, अधिकतम बुद्धि वाला तथा अभिप्रेरित प्रयोज्य को भी 'कोना' को खोजने मे वडा परिश्रम करना पडता था। एक वृत्त तथा त्रिभुज मे भी अन्तर करना उनके लिए कठिन कार्य था। नवीन दृष्टि वाला प्रयोज्य एक साथ उपस्थित करने पर आकृतियो को अलग तो कर सकता था परन्तु उनके मध्य अन्तर याद करने मे असमर्थ था। अनेक सप्ताहो तक आकृतियो के नामो को पहचानने की क्षमता भी शून्य थी। जब कि त्वचीय प्रत्यभिज्ञा पूर्ण थी। इसके अतिरिक्त सामान्यीकरण का भी अभाव था। किसी एक पदार्थ के ही नामकरण करने मे सफल होने

---

1 Cohesive

के बाद वस्तु को थोडा सा परिवर्तन करने पर ही प्रतिभिज्ञा पूरी तरह समाप्त हो जाती थी। रग के नामो को सीखने मे सभी रोगी सफल थे किन्तु सीधी सादी आकृतियो के भी तादात्म्य मे उन्हे अधिक कठिनाई होती थी।

पशुओ पर किये गये अनेक प्रयोगो मे प्राप्त साक्षो तथा उपचारात्मक प्रदत्तो से यह ज्ञात होता है कि साधारण रेखाकृति के भी स्वतन्त्र सत्तायुक्त पूर्ण-रूपाकार के रूप मे प्रत्यक्ष तत्काल नही होता है, अपितु इसे क्रमिक अधिगम की सहायता से अर्जित किया जाता है। प्रयोगो से यह भी स्पष्ट है कि तादात्म्य के प्रत्यक्ष मे अन्तर होने पर भी विभिन्न प्राणियो मे मौलिक एकता एक प्रकार की ही होती है। एकता और तादात्म्य की स्वतन्त्र सत्ता का प्रमाण, चूहे द्वारा प्रदर्शित विचित्र समानताओ या सामान्यीकरण के व्यवहार मे उपलब्ध होता है। तादात्म्य मनुष्य तथा पशु मे समान नियम के अनुरूप परिचालित होता है किन्तु सामान्य मानव मे अत्यधिक विकसित रहता है।

सामान्य निष्कर्ष के रूप मे यह कहा जा सकता है कि दृष्टि क्षेत्र का साधारण सवेदी पृथक्करण, सीमारेखा का निर्माण, विरोध तथा कुछ सहज अवधानात्मक यत्नन्यास दृष्टि स्नायुमडल की जन्मजात विशेषताये हैं। ये मौलिक गुण है। दूसरी ओर असवेदी आकृति प्रत्यक्ष तथा तादात्म्य आदि सगठनात्मक गुण स्पष्ट रूप से अधिगम से सम्बद्ध है।

प्रत्यक्षीकरण स्थिर न होकर एक गतिशील प्रक्रम है। आकार-प्रत्यक्ष मे उद्भूत सघटन प्राणी के व्यवहार से युक्त होता है, विशेष रूप से आँख की गति अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। हेब्ब ने एक सभाव्य यन्त्रन्यास द्वारा इसे उपस्थापित करने का श्लाध्य यत्न किया है। उदाहरणार्थ, त्रिभुज के प्रत्यक्षीकरण मे कई स्तर की क्रिया सम्पन्न होती है। सर्व प्रथम कोशा उत्तेजित होती है। तत्पश्चात् उत्तेजित कोशा के निकटस्थ अन्य कोशायें भी उत्तेजित होती हैं और बार-बार की इस अनुभूति के बाद त्रिभुज की अनुभूति होती है। हेब्ब की यह सम्बोधी व्यवस्था स्नायुदैहिकी की उपलब्धियो तथा मनोविज्ञान के समष्टिगत[1] प्रयासो के मध्य की रिक्तता भरने का यत्न करती है। हेब्ब ने विभिन्न पशुओ पर किये गये प्रयोगो तथा जन्मान्ध व्यक्तियो की प्रथम दृष्टि के अध्ययन के आधार पर यह प्रमाणित करने का यत्न किया कि आकार का प्राथमिक प्रत्यक्षीकरण इतना पूर्ण एव सगठित नही होता है जितना गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिको का विचार है। प्रत्यक्षीकरण के कुछ अत्यन्त आवश्यक अग भी जन्मजात न होकर सीखे जाते हैं। गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिको द्वारा प्रस्तावित उत्तेजक सरूपो द्वारा क्रियाशील तत्काल पूर्ण एव सगठित जन्मजात मस्तिष्क क्षेत्र की पूर्ण प्रायोगिक सम्पुष्टि नही हो सकी है।

1 Molar

स्पष्ट ही आकृति और पृष्ठभूमि का प्रत्यक्षीकरण व्यक्ति को जन्म से ही उपलब्ध होता है। यहाँ तक गेस्टाल्ट सिद्धान्त के साथ पूर्ण सहमति है। किन्तु आधारभूत एकता के अतिरिक्त आकृति का कुछ असवेदी पक्ष भी होता है जिसमे पूर्वानुभव महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। आच्छादित आकृतियो के प्रत्यक्षीकरण मे यह अधिक स्पष्ट होता है। पूर्ण की सघटना अश को आच्छन्न किये रहती है। ऐसी दशा मे किस पक्ष को देखे इस विपय मे यदि पूर्वानुभव से कोई सकेत न प्राप्त हो तो अश को स्वतन्त्र इकाई के रूप मे देख सकते हैं। अन्त मे आकृति-प्रत्यक्ष मे तादात्म्य भी सम्मिलित हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप कोई देखा गया या अनुभूत चित्र बाद मे पहचाना जा सकता है तथा चयनात्मक साम्य और सामान्यीकरण का आधार बन सकता है, जिसकी सहायता से कोई सम्बन्ध विकसित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त तादात्म्य के ही माध्यम से वस्तु मे साहचर्य गुण भी आता है।

वस्तुत' अधिगम विभिन्न उत्तेजक सरूपो के प्रति भिन्न सवेदना के रूप मे प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करता है। परिवेश के प्रति समायोजन के सन्दर्भ मे अनुभव के सहयोग से प्राणी भौतिक शक्ति के विभिन्न रूपो की अर्थवत्ता के प्रति सचेत हो जाता है। किसी उत्तेजक के साथ व्यक्ति का पूर्वानुभव एक विशिष्ट 'फीडबैक' रखता है जो स्वय मे एक उत्तेजक का कार्य करता है। यह फीडबैक सवेदी सरचना को पुष्ट भी कर सकता है और दुर्बल भी कर सकता है। सवेदी सरचना पुष्ट होगी या दुर्बल होगी यह इस पर निर्भर करता है कि अनुक्रिया वाछित लक्ष्य की प्राप्ति मे कितनी सफल थी। परिवेश की जटिलता मे वृद्धि होने पर विभिन्न आयामो के प्रति भिन्न-भिन्न अनुक्रिया के द्वारा सही समायोजन आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार अधिगम मे एक आयाम की सार्थकता की अनुभूति के अतिरिक्त विभिन्न सरूपो मे समानता और भेद की अनुभूति भी सम्मिलित है।

प्रत्यक्षीकरण और अधिगम के मध्य जटिल अन्त क्रिया होती है। इन दोनो प्रक्रमो के मध्य विद्यमान सम्बन्धो के सम्यक् अध्ययन के लिए प्रात्यक्षिक अधिगम का स्वतन्त्र विपय के रूप मे अध्ययन आरम्भ हुआ है जिसके अन्तर्गत प्रत्यक्षीकरण के विभिन्न प्रक्रमो का अधिगम द्वारा परिमार्जन का अध्ययन किया जाता है। एपस्टीन (1967) ने इस विपय का सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया है। प्रात्यक्षिक अधिगम मे सम्प्रति नियन्त्रित तथा दीर्घकालीन पूर्वानुभव का प्रभाव, प्रात्यक्षिक अन्तर्द्वन्द आकृति पृष्ठभूमि का प्रत्यक्ष तथा परिष्कृत दशाओ मे समायोजन आदि समस्याओ का अध्ययन हो रहा है।

आकृति तथा पृष्ठभूमि

किसी वस्तु या पदार्थ के प्रत्यक्ष के लिए भिन्न स्तरो की उत्तेजना आवश्यक होती है। पूर्णत एकरूप या सजातीय[1] उत्तेजना की दशा मे वस्तु का प्रत्यक्ष

[1] Homogereous

सभव नहीं है। प्राय ग्राहको को उद्दीप्त[1] करने वाली भौतिक उत्तेजना विषम-जातीय[2] होती है और प्राणी व्यापक पृष्ठभूमि के सन्दर्भ मे आकृति का प्रत्यक्ष करता है। आकृति और पृष्ठभूमि का यह पृथक्करण प्रत्यक्षीकरण का आधारभूत और सरलतम प्रक्रम है। आकृति शीघ्रता से प्रत्यक्षित होती है और अधिक अवधि तक सचित रहती है। आकृति और पृष्ठभूमि के सम्बोध का वैज्ञानिक अध्ययन रूविन ने आरम्भ किया। यह सम्बोध हेव्व के मौलिक एकता'[3] के सम्बोध के अधिक निकट है। अपने प्रयोगो मे रूविन (1921) ने यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि आकृति और पृष्ठभूमि की अलग-अलग स्वतन्त्र विशेषतायें होती हैं। गेस्टाल्ट सम्प्रदाय के मनोवैज्ञानिको ने प्रत्यक्षीकरण के अपने सिद्धान्त मे आकृति और पृष्ठभूमि को प्रमुख स्थान दिया है। आकृति की सरचना तत्वो की समानता, विरोध, समीपता, अर्थवत्ता आदि नियमो द्वारा निर्दिष्ट होती है।

रूविन ने आकृति और पृष्ठभूमि के मध्य अधोलिखित सावृतिक अन्तरो का उल्लेख किया है।

1 आकृति रूपयुक्त होती है। पृष्ठभूमि आकृति की उपेक्षा कम रूपवान होती है।

2 पृष्ठभूमि आकृति के पीछे विस्तार मे फैली हुई प्रतीत होती है।

3 पृष्ठभूमि की अपेक्षा आकृति वस्तुगुण[1] से युक्त प्रतीत होती है।
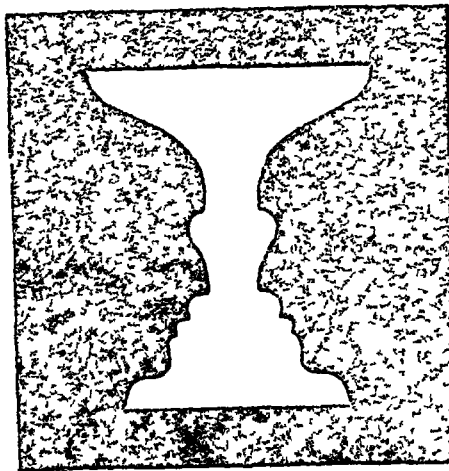
चित्र सख्या 5 1 आकृति और पृष्ठभूमि

[इस चित्र मे एक दीप स्तम्भ वना हुआ है, परन्तु एक दूसरा विकल्प भी उक्त चित्र मे निहित है। दो मुखाकृतियां भी दृष्टिगत होती हैं।]

---

1 Stimulate 2 Hetrogeneous 3 Primitive unity 4 Object character

4 आकृति सामने की ओर उभरी हुई तथा पृष्ठभूमि की अपेक्षा निकट प्रतीत होती है।

5 आकृति अधिक प्रभावशाली होती है और उत्तम स्मृति और अर्थवत्ता से सम्पन्न होती है।

चित्र सख्या 5 1 के निरीक्षण से ये अन्तर अधिक स्पष्ट हो जाते हैं।

वेवर (1927) ने विभिन्न काल-अन्तरालो तथा काली आकृति और श्वेत पृष्ठभूमि की सहायता से कुछ महत्वपूर्ण प्रयोग किये और आकृति पृष्ठभूमि के मध्य एक अन्य अन्तर की ओर ध्यान आकृष्ट किया। आकृति का दिक् मे एक निश्चित स्थान होता है और धरातल तुल्य सरचना[1] होती है किन्तु पृष्ठभूमि का स्थान अपेक्षाकृत कम निश्चित होता है और चित्रीय सरचना[2] होती है। वेवर ने यह निष्कर्ष भी प्राप्त किया कि दृष्टि अन्तराल मे क्रमिक वृद्धि करने पर आकृति के विभिन्न गुण (यथा रूप[3] सीमारेखा[4] आदि) विभिन्न गति से विकसित होते हैं।

कोफ्का ने आकृति-सगठन को एक गतिशील प्रक्रम स्वीकार कर यह विचार व्यक्त किया कि प्रत्यक्ष के अस्तित्व के लिए आकृति मे पृष्ठभूमि की अपेक्षा अधिक सघन शक्ति होती है। इस विचारधारा के कुछ परीक्षणीय आपादन[5] है जिनका प्रयोगो द्वारा सत्यापन हुआ है। यथा—

(1) जब रगीन अश का प्रयोग परिवर्तनशील आकृति के लिये किया जाता है तो आकृति वाला अश पृष्ठभूमि की अपेक्षा अधिक रगीन प्रतीत होता है।

(2) आकृति मे उपभागो के प्रत्यक्ष के लिए उपभाग शेष आकृति के मध्य तीव्रता के सन्दर्भ मे अधिक अन्तर अपेक्षित होता है। इसके विपरीत पृष्ठभूमि मे उपभाग के प्रत्यक्ष के लिए कम अन्तर की आवश्यकता होती है। एक प्रयोग मे समान चमक के क्षेत्रो मे (जो आकृति और पृष्ठभूमि दोनो ही रूपो मे सक्रिय हो सकते थे) एक बिन्दु को जोडकर उसके प्रत्यक्ष के लिए आवश्यक न्यूनतम तीव्रता ज्ञात की गयी। निष्कर्षों से यह ज्ञात हुआ कि आकृति मे बिन्दु के प्रत्यक्ष के लिए पृष्ठभूमि मे बिन्दु के प्रत्यक्ष के लिए अपेक्षित तीव्रता की तुलना मे अधिक तीव्रता अपेक्षित होती है।

आकृति और पृष्ठभूमि के निर्धारको के विषय मे अनेक प्रयोग किये गये है। इन प्रयोगो द्वारा प्राप्त निष्कर्षो की दृष्टि से निम्नलिखित कारक विशेष महत्व-पूर्ण है।

1 **चमक का अन्तर**—आकृति और पृष्ठभूमि के मध्य चमक का अन्तर आकृति और पृष्ठभूमि के पृथक्करण को अधिक सहज और त्वरित बनाता है। यदि चमक समान रहे तो आकृति का प्रत्यक्ष सभव नही होगा। ज्यो-ज्यो यह अन्तर बढता है, आकृति की अनुभूति शीघ्रता और सरलता से होने लगती है।

---

1 Surface texture 2 Filmy texture 3 Form 4 Contour 5. Implitions

2 आकार—यदि दो भिन्न क्षेत्र एक दूसरे में अन्तर्निहित हों तो छोटे क्षेत्र को आकृति के रूप में प्रत्यक्षित होने की अधिक सम्भावना होती है। जब दोनों क्षेत्र बराबर रहते हैं तो आकृति और पृष्ठभूमि का स्थायी पृथक्करण नहीं हो पाता है और आकृतियों में दोलन की अनुभूति होती है।

3 आकृति की पूर्णता—उत्तेजक अभिकल्प[1] की सीमारेखा की पूर्णता आकृति के प्रत्यक्ष को सहज बनाती है। अधूरी सीमारेखा की अवस्था में आकृति का शीघ्र प्रत्यक्ष नहीं होता।

4 प्रदर्शनकाल[2] की अवधि—आकृति प्रत्यक्ष की स्पष्टता, प्रयोज्य को प्रत्यक्ष करने के लिए उपलब्ध उत्तेजक के प्रदर्शनकाल की अवधि पर निर्भर करती है। सामान्यत 10 मिली सेकण्ड की अवधि आकृति प्रत्यक्ष के लिए अपेक्षित न्यूनतम प्रदर्शनकाल है। इस देहली के ऊपर प्रदर्शनकाल में वृद्धि के साथ-साथ आकृति के प्रत्यक्षीकरण की स्पष्टता में वृद्धि होती है।

5 रंग—आकृति और पृष्ठभूमि की उद्भावना के लिए रंग का अन्तर अनिवार्य है। आकृति और पृष्ठभूमि में रंग साम्य होने पर आकृति की अनुभूति में कठिनाई होती है। इसके विपरीत रंग वैषम्य में आकृति की अनुभूति सरल हो जाती है। उदाहरणार्थ, श्वेत आकृति को हल्के भूरे रंग की पृष्ठभूमि में देखने की अपेक्षा काली पृष्ठभूमि में देखने पर आकृति का शीघ्र अनुभव होता है।

6 अधिगम—आकृति और पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य में अधिगम के प्रभाव का व्यापक अध्ययन प्रात्यक्षिक अधिगम के अन्तर्गत आरम्भ किया गया है। एटकिन्सन तथा एमोन्स (1952) का प्रयोग इस प्रकार के अध्ययन को अभिव्यक्त करता है। इन लोगों ने रोर्शा परीक्षण के स्याही के धब्बों को प्रयोज्य के सम्मुख उपस्थित किया तथा प्रयोज्य को उन धब्बों में एक निर्दिष्ट आकृति के प्रत्यक्ष के लिए कहा। प्रयोगकर्ता ने प्रयोज्य की प्रत्यभिज्ञा का प्रतिक्रियाकाल अंकित किया। निर्दिष्ट आकृति के प्रत्यक्ष होने पर प्रयोगकर्ता को एक निश्चित कुन्जी दबाकर प्रतिक्रिया करनी थी। आकृति देखने के बाद प्रयोज्य को एक पत्रिका पढ़ने के लिए दी जाती थी। तत्पश्चात् पुन वही आकृति उसी स्याही के धब्बे में देखने के लिए स्याही का धब्बा उपस्थित किया गया। पहले प्रयास की ही भाँति आकृति देखने के बाद एक नई पत्रिका देखने को प्रदान की गयी। इसी विधि से कुल 10 प्रयास किए गये। इन प्रयासों के बाद प्रयोज्य को प्राचीन स्याही के धब्बे में एक नई आकृति को देखने के लिए निर्देश दिया गया। उपलब्ध प्रदत्तों से यह ज्ञात हुआ कि नयी आकृति के प्रत्यक्ष के लिए अधिक अवधि का प्रदर्शनकाल अपेक्षित था। आकृति प्रत्यक्ष के इस प्रयोग में दोनों ही प्रकार की आकृतियों के प्रत्यक्ष में सामान्य अधिगम प्रयोग में प्राप्त वक्र की ही तरह का

---

1 Design 2 Exposure time

अधिगम वक्र प्राप्त हुआ। प्रत्येक प्रयास मे अपेक्षित प्रदर्शनकाल मे क्रमश कमी प्राप्त हुई। किन्तु पहली आकृति की अपेक्षा दूसरी आकृति के प्रत्यक्ष के लिए सभी प्रयासो मे अधिक प्रदर्शनकाल अपेक्षित था। प्रयोगकर्ताओ ने इस प्रभाव को अवरोधन प्रभाव की सज्ञा दी है। इसके अनुसार प्रथम आकृति की अनुभूति नई आकृति के अधिगम मे अवरोध उत्पन्न करती है।

7 **अन्य कारक**—निश्चित आकृति के प्रत्यक्षीकरण के पूर्व, प्रकाश का प्रत्यक्ष आवश्यक है। उत्कृष्ट वैषम्य, सुष्ठु-आकृति, आकृति की अर्थवत्ता आदि कारक आकृति-पृष्ठभूमि के प्रत्यक्ष को सरल बनाते है। इनके अतिरिक्त अभिप्रेरणा तथा वैयक्तिक भिन्नता भी महत्वपूर्ण कारक हैं जो आकृति-पृष्ठभूमि के अनुभव को निर्धारित करते है। पुनर्बलन भी आकृति-प्रत्यक्षीकरण का एक प्रमुख निर्धारक है। द्विवेदी (1970) ने विभिन्न आयु-समूहो के प्रयोज्यो पर प्रयोग द्वारा चाक्षुप, श्रव्य तथा त्वक्-पदार्थों के प्रत्यक्ष मे पुनर्बलन की भूमिका का व्यापक अध्ययन किया तथा यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि तटस्थ तथा दण्ड की अवस्था की अपेक्षा पुरस्कार अधिक प्रभावशाली होता है। इस अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि पुनर्बलन द्वारा भेदगत प्रत्यक्षीकरण मे सहायता प्राप्त होती है। प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करने वाले कारको की विशद चर्चा अन्यत्र की गयी है। अत यहाँ सक्षेप मे इनकी चर्चा की गयी है।

आकृति और पृष्ठभूमि की अनुभूति केवल चाक्षुप उत्तेजना मे ही नही होती है अपितु अन्य सवेदनाओ मे भी होती है। बर्नन ने इस सम्बोध का सफल उपयोग श्रवण प्रत्यक्ष के सन्दर्भ मे किया है। एक अनवरत एव एकरूप ध्वनि पृष्ठभूमि का कार्य करती है और ध्वनि क्षेत्र का प्रखर विभाजन आकृति के रूप मे अनुभूत होता है। बर्नन ने सगीत मे आकृति के लक्षणो की भी व्याख्या इस प्रकार की है—आकृति की उच्चता, नाद्गुण, पृष्ठभूमि की तुलना मे अधिक तीव्र होता है। आकृति मे अधिक गति होती है और एक भिन्न लय होती है। त्वक् उत्तेजना मे भी आकृति और पृष्ठभूमि की अनुभूति होती है।

आकृति-प्रत्यक्षीकरण के नियम

आकृति तथा पृष्ठभूमि का अनुभव गेस्टाल्ट प्रम्प्रदाय के लिए विशेप महत्व का विपय रहा है। वर्थाइमर (1923) ने इस अनुभव की सैद्धान्तिक व्याख्या के निमित्त अनेक प्रयोग किये और यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि आकृति का अनुभव कोई स्वतन्त्र प्रक्रम न होकर कुछ निश्चित नियमो के अन्तर्गत परिचालित होता है। ये नियम आकृति के सगठन मे अन्तर्निहित होते हैं। इन्हे अधिगम द्वारा अर्जित नही किया जाता।

दृष्टिक्षेत्र मे निकटता, समानता, दिशा, सुन्दरता आदि प्रमुख नियम है (इन नियमो की विशद विवेचना अगले अध्याय मे की गयी है)। कोफ्का (1935) ने

इन नियमो के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये है तथा ये नियम एक सीमा तक प्रत्यक्षीकरण की सफल व्याख्या करते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ अध्ययन गेस्टाल्ट नियमो की सक्रियता की विशिष्ट दशाओ मे प्रायोगिक निदर्शन के लिए भी किये गये हैं जिनसे यह स्पष्ट होता है कि ये नियम साधारण रूप मे नही अपितु जटिल रूप मे क्रियाशील होते है। यहाँ पर इस प्रकार के अध्ययनो की सक्षिप्त चर्चा समीचीन प्रतीत होती है। अत कुछ प्रमुख अध्ययनो को यहाँ उपस्थित किया जा रहा है।

हार्कबर्ग तथा सिल्वर स्टीन (1956) एव रश (1937) ने प्रयोगो द्वारा यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि गेस्टाल्ट नियम बडे ही जटिल है तथा बालको की अपेक्षा प्रौढो के प्रत्यक्ष मे अधिक लागू होते हैं। हार्कबर्ग तथा उनके सहयोगियो ने इन नियमो का मात्रात्मक अध्ययन किया है तथा एक प्रयोग मे यह निर्धारित करने का यत्न किया गया कि निकटता के तत्वो की कितनी मात्रा समानता के प्रभाव को समाप्त करने के लिए अपेक्षित है। इस प्रयोग से दिशा के कारक का महत्व ज्ञात हुआ जो निकटता और समानता की सापेक्ष्य क्षमता को प्रभावित करता है। समानता या निकटता मे से जिस किसी भी कारक को स्थिर परिवर्त्य स्वीकार कर प्रयोग आरम्भ किया गया उसी के अनुकूल प्रयोज्य का प्रत्यक्ष भी हुआ।

गेस्टाल्ट नियम प्रत्यक्षीकरण को सहज बनाते हैं, यह सुनिश्चित है। विवाद तो इस नियम की सापेक्ष्य शक्ति तथा इन पर अधिगम के प्रभाव के विषय मे है। गेस्टाल्ट सम्प्रदाय के मनोवैज्ञानिको के अनुसार ये नियम अधिगम से निरपेक्ष हैं। किन्तु अनेक प्रायोगिक अध्ययन इन नियमो की सक्रियता मे पूर्वानुभव की भूमिका की महत्वता स्पष्ट करते है।

एहनीव (1954) ने सूचना सिद्धान्त का प्रयोग गेस्टाल्ट सम्प्रदाय के प्रत्यक्षीकरण के नियमो के अकीकरण के लिए किया है। इनके अनुसार अधिकाश दृष्टि सूचना[1] अनावश्यक हुआ करती है। यह अनावश्यक उत्तेजना (1) सजातीय रग या चमक, या (2) सजातीय दिशा वाली सीमारेखा या आकार के उदभूत होती है। अनिवार्य सूचना, सीमारेखा मे तथा सीमारेखा के उन स्थलो मे जहाँ पर दिशा शीघ्रता से परिवर्तित होती है (यथा कोण आदि), सन्निविष्ट रहती है।

अनावश्यक सूचना अधिक होने पर सप्रेपण व्यवस्था के भाराक्रान्त होने की सभावना रहती है। परन्तु चाक्षुप यन्त्र न्यास इस प्रकार निर्मित है कि अनावश्यक सूचना पर प्रतिबन्ध लग जाता है। सगठन के गेस्टाल्ट नियम इस प्रक्रिया मे सूचना सम्प्रेपण मे मितव्ययिता की दृष्टि से प्रमुख कार्य करते हैं। ये अधिकाशत सम्भव मात्रा मे आवश्यकता से अधिक सूचना प्रदान करते है।

कुछ अध्ययन पूर्वानुभव को केन्द्र बनाकर किये गये है जिनमे आकार की

---

1 Redundent information

स्मृति तथा गेस्टाल्ट नियमो के मध्य के सम्बन्धो की खोज की गयी है। इन अध्ययनो से स्पष्ट है कि मूलत प्रभावकारी या आधारभूत अनुक्रियाये अनिवार्यत वे ही नही हुआ करती जो प्रौढो के व्यवहार कोष मे प्रभावकारी होती हैं। पूर्वानुभव विपयक कारक सरचनात्मक कारको की कमी को पूरा कर सकते है तथा कुछ दशाओ मे अर्जित न किये गये आकारो के प्रति अनुक्रिया की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होते है। सुस्थिर और स्थायी आकृति की स्थापना के लिए पूर्वानुभव महत्वपूर्ण है।

आकृतिक सातत्य

रूबिन (1921) ने आकृति पृष्ठभूमि की समस्या पर किये गये अपने प्रयोगो मे 'साम्प्रतिक आकृति-पृष्ठभूमि[1] सरचना' के विगत आकृति-पृष्ठभूमि सरचना के अनुकूल, निर्धारण की प्रवृत्ति प्राप्त की। दूसरे शब्दो मे, यदि प्रयोज्य को एक प्रकार की आकृति पृष्ठभूमि की अनुभूति होती है तो बाद के प्रत्यक्ष मे आकृति-पृष्ठभूमि की अनुभूति प्रथम अनुभूति के अनुकूल ही होगी। इस प्रवृत्ति को रूबिन ने आकृति का पश्चात् प्रभाव की सज्ञा दी है। किन्तु यह शब्द अन्य अर्थ मे (कोहलर तथा वालेख 1944) प्रयुक्त हुआ है। अन इस प्रवृत्ति को आकृतिक-सातत्य कहेगे। इस सम्बोध को समझने के लिए पहले रूबिन के प्रयोग पर विचार कर लेना आवश्यक है।

रूबिन ने पर्याप्त सख्या मे निरर्थक आकृतियो का निर्माण किया तथा हरे रग की लालटेन के सामने रखकर एक पर्दे पर प्रक्षिप्त किया। (चित्र स० 5 2)
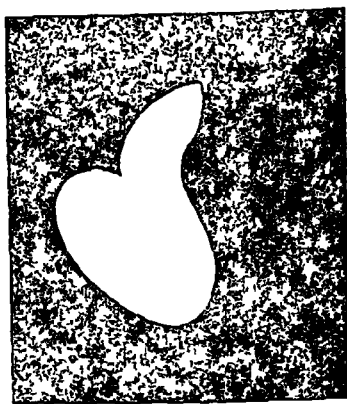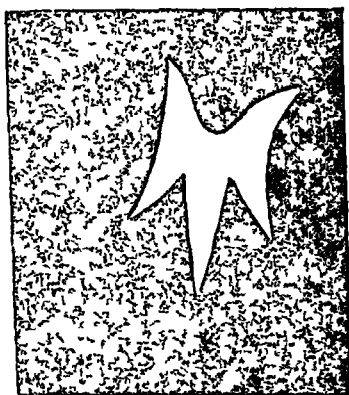
चित्र सख्या 5 2 रूबिन द्वारा आकृतिक सातत्य प्रयोग मे प्रयुक्त निरर्थक आकृतियां

पर्दे पर एक हरी आकृति (काले रग से परिविष्ट) दिखाई पडी। इस प्रकार की 9 आकृतियो मे से प्रत्येक को क्रमश 4 सेकण्ड के प्रदर्शन काल की गति से प्रस्तुत किया

[1] Current figure ground organization

गया। प्रत्येक आकृति चार बार प्रस्तुत की गयी। इस प्रशिक्षण में प्रयोज्य को परिसीमित हरी आकृति और काली पृष्ठभूमि देखने के लिए निर्देश दिया गया था। तत्पश्चात् 9 अन्य (किन्तु समान) आकृतियों को पृथक् उपस्थित किया गया किन्तु काले प्रखण्ड को आकृति और हरे खण्ड को पृष्ठभूमि के रूप में देखने का निर्देश दिया गया। इसके अनन्तर 30-45 मिनट के पश्चात् इन 10 आकृतियों को 9 अन्य आकृतियों के साथ सम्मिलित कर प्रस्तुत किया गया।

प्रयोज्यों को प्रत्यक्ष के विषय में निष्क्रिय रहने के लिए निर्देश दिया गया तथा आकृति के परिसीमित[1] या परिवेष्टक[2] प्रखण्डों में से किस भाग में चित्र का प्रत्यक्ष हो रहा है, यह बताने के लिए कहा गया।

प्रयोग के परिणामों से यह तथ्य ज्ञात हुआ कि आरम्भिक या पूर्व अनुभव के ही अनुरूप द्वितीय अवसर का प्रत्यक्ष होता है। निष्क्रिय रहने पर भी प्रयोज्यों ने प्रथम (अनुभूत) आकृति-पृष्ठभूमि के संगठन के अनुरूप ही प्रत्यक्ष किया। समस्त चित्रों में से 64% चित्र मूल प्रत्यक्ष के अनुरूप प्रत्यभिज्ञात हुए, 33 5% चित्र विपरीत आकृति पृष्ठभूमि सम्बन्ध के साथ तथा 2 5% चित्र (मौलिक तथा विपरीत आकृति पृष्ठभूमि संगठन) दोनों ही रूपों में प्रत्यभिज्ञात हुए। एक अवसर से दूसरे अवसर के मध्य आकृति-पृष्ठभूमि संगठन का स्थानान्तरण ही आकृतिक-सातत्य है।

रूबिन के बाद किये गये प्रायोगिक अध्ययनों में आकृतिक सातत्य की सीमाओं का ज्ञान हुआ। गाटशाल्ट के निष्कर्षों के अनुसार परीक्षण का पूर्वानुमान तथा परिचित आकृति को देखने के सेट के अभाव में सातत्य की अनुभूति नहीं होती है। इसी प्रकार कुछ अन्वेषकों के अनुसार मात्र अत्यधिक अनुशासित प्रयोज्यों में ही आकृति सातत्य का प्रमाण मिलता है।

रॉक तथा केमेन (1957) ने रूबिन के प्रयोग का विश्लेषण किया तथा पद्धति में अनेक दोष प्राप्त किया। दोषों का परिमार्जन कर इन प्रयोगकर्ताओं ने पुनः एक परिष्कृत प्रयोग सम्पन्न किया। प्रमुख परिमार्जन निम्नलिखित थे।

(1) प्रशिक्षण के उत्तेजक अभिकल्प[3] अर्ध आकृतियां थीं। रूबिन के प्रयोग में पूरी आकृति प्रयोज्य के सम्मुख उपस्थित की गयी थी।

(2) परीक्षण के अनुमान के सेट (परिचित चित्र देखने की प्रवृत्ति) को परीक्षण के बाद तथा परीक्षण के पूर्व 5 मिनट के अन्तराल में चित्र बनाने के कार्य के द्वारा समाप्त कर दिया गया।

(3) एक नियन्त्रित समूह भी प्रयोग में सम्मिलित कर लिया गया जिसने अस्पष्ट आकृति पृष्ठभूमि स्वरूप के प्रति बिना किसी प्रशिक्षण के अनुक्रिया दी।

प्रशिक्षण चित्र (परीक्षण चित्र के) श्वेत या काले अर्ध खण्ड थे। ये अर्धचित्र

1 Inclosed 2 Inclosing 3 Design

(परीक्षण चित्र की पृष्ठभूमि की तरह) पूरी पृष्ठभूमि पर उपस्थित किये गये। प्रशिक्षण काल मे 8 अर्धचित्रो को आठ-आठ बार 2 सेकण्ड के लिए प्रदर्शित किया गया। इस प्रशिक्षण के पश्चात् प्रयोज्यो को 5 मिनट तक साधारण आकृतियाँ बनाने को कहा गया। अन्त मे प्रशिक्षण-अर्धचित्रो से युक्त तथा 10 अन्य सामान गये चित्रो की शृंखला उपस्थित की गयी। प्रत्येक चित्र को 1 सेकण्ड के लिए उपस्थित किया गया तथा इन आकृतियो मे प्रत्यक्षित आकृति के रग तथा पक्ष बताने को कहा गया। इस प्रयोग मे आकृति-सातत्य का प्रमाण नही प्राप्त हुआ। प्रायोगिक तथा नियन्त्रित दोनो ही समूहो ने अस्पष्ट परीक्षणाकृतियो के प्रति समान अनुक्रियाये की।

रूबिन तथा रॉक एव क्रेमेन के निष्कर्षों के मध्य विद्यमान अन्तर किन कारणो से उत्पन्न हुआ है, यह कहना कठिन है। क्योकि रॉक एव क्रेमेन ने रूबिन के प्रयोग मे पर्याप्त परिवर्तन किया था। कार्नवेल (1963) ने इस समस्या को ध्यान मे रखकर एक नवीन परिमार्जित रूप मे रॉक एव क्रेमेन के प्रयोग की आवृत्ति की। कानवेल ने यह उपकल्पना प्रतिपादित की कि आकृति-सातत्य के लिए प्रशिक्षण तथा परीक्षण की आकृतियो म समान सन्दर्भ अत्यावश्यक है। इस उपकल्पना के परीक्षण के लिए कार्नवेल ने एक प्रयोग किया जिसमे रॉक-क्रेमेन की आकृतियो को परिष्कृत किया गया। कार्नवेल ने प्रशिक्षण काल मे असन्तुलित सीमारेखा का प्रयोग किया किन्तु सफेद काले सदर्भ प्रशिक्षण तथा परीक्षण मे एक ही प्रकार का था। (निम्नांकित चित्र देखें)।
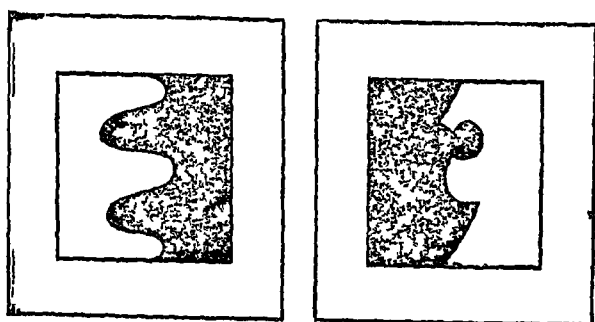
चित्र सख्या 5 3 कार्नवेल द्वारा प्रयुक्त आकृतियो की अनुकृति

इस प्रयोग मे प्रशिक्षण के बाद 15 मिनट तक विभिन्न अकित वाक्यो के प्रत्यक्ष करने के लिए प्रयोज्यो से कहा गया और तब 18 परीक्षण चित्रो मे आकृति के प्रत्यक्ष के विपय मे प्रयोज्यो की प्रतिक्रियाये अकित की गयी। प्रयोग के परिणामो से यह स्पष्ट हुआ कि प्रयोज्यो ने प्रशिक्षण काल मे प्रत्यक्षित आकृति के ही अनुकूल परीक्षण काल मे भी प्रत्यक्ष किया। दूसरे शब्दो मे, प्रयोज्यो ने उसी क्षेत्र का चित्र के रूप मे प्रत्यक्ष किया जिसे उसने असन्तुलित प्रशिक्षण चित्रो मे प्रत्यक्षित किया था। इस प्रकार यह प्रयोग आकृति सातत्य के पक्ष मे प्रमाण उपस्थित करता है।

आकृति सातत्य की वैधता और सत्यता आज भी गम्भीर चर्चा का विषय बनी हुई है। इस प्रमेय के पक्ष मे तथा विपक्ष मे अनेक प्रकार के प्रायोगिक प्रमाण प्राप्त है। कुछ परोक्ष प्रमाण इस प्रक्रम को अधिक सबल आधार देते है। इनकी संक्षिप्त चर्चा अप्रासंगिक न होगी।

लीपर (1935) ने अपने प्रयोग मे यह प्राप्त किया कि किसी एक चाक्षुष अभिकल्प को एक निश्चित संगठन के अनुसार प्रत्यक्षित करने के पश्चात् उसी अभिकल्प की अन्य सम्भव संगठन की उपलब्धि कठिन हो जाती है। यह निष्कर्ष स्पष्ट रूप से एक प्रकार की आकृति पृष्ठभूमि के सातत्य की पुष्टि करता है।

एपस्टीन तथा राक (1960) ने आकृति पृष्ठभूमि संगठन पर अनुमान सेट, बारम्बारता तथा तात्कालिकता के सापेक्ष्य प्रभाव का अध्ययन किया। प्रशिक्षण काल मे अभिकल्प के अस्पष्ट विकल्पो को स्वल्प काल के लिए प्रदर्शित किया गया। तैयारी की शृंखला की सहायता से अनुमान-सेट, बारम्बारता और तात्कालिकता को घटाया बढ़ाया गया। प्रयोग का निष्कर्ष यह प्राप्त हुआ कि वर्तमान संगठन को तत्काल पूर्व अनुभूत संगठन के अनुकूल प्रत्यक्ष की प्रबल प्रवृत्ति पायी गयी।

इन प्रयोगो के अतिरिक्त कुछ अन्य अध्ययनो मे भी आकृति सातत्य की उपकल्पना की पुष्टि के लिए परोक्ष प्रमाण मिलता है। ऊपर वर्णित प्रयोगो से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि विगत प्रात्यक्षिक संगठन, बाद के प्रात्यक्षिक संगठन की दिशा को निर्धारित करता है। किन्तु आकृति सातत्य को निर्धारित करने वाली दशाओ के सम्बन्ध मे बहुत कम जानकारी है। आकृति सातत्य को एक प्रकार का स्थानान्तरण स्वीकार कर बहुत-सी उपकल्पनाये विकसित की जा सकती है। यथा प्रशिक्षण काल तथा परीक्षण काल के मध्य व्यतीत समय का स्वरूप, प्रशिक्षण की मात्रा, प्रशिक्षण तथा परीक्षण काल की आकृतियो की समानता आदि परिवर्त्यो का निर्धारक कारको के रूप मे अध्ययन किया जा सकता है।

आकृतिक सातत्य की व्याख्या के लिए जो स्पष्टीकरण दिये गये है वे किसी एक प्रयोग के निष्कर्षों की व्याख्या करते हैं और बहुत सीमित है। उदाहरणार्थ एपस्टीन तथा डिशाजो (1961) ने शैफिर मर्फी आकृतियो पर किये गये प्रयोग के निष्कर्षों की व्याख्या के लिए एक स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया। इन लोगो ने आसन्नता प्रभाव[1] को समान रूप से उपलब्ध विकल्पो के मध्य चयन पर तात्कालिक अनुभव का प्रभाव स्वीकार किया है। इन लोगो ने यह उपकल्पना विकसित की कि प्रदर्शन के आरम्भिक क्षणो मे आकृति और पृष्ठभूमि के मध्य तीव्र दोलन[2] होता है तथा आसन्नपूर्व काल मे प्रत्यक्षित अस्पष्ट आकृति के पक्ष मे स्थिर करना होता है। इस उपकल्पना का प्रायोगिक सत्यापन भी प्राचीन अनुबन्धन विधि के एक प्रयोग द्वारा किया गया। किन्तु यह स्पष्टीकरण आकृतिक सातत्य की सभी दशाओ की व्याख्या

---

1 Recency effect 2 Oscillation

करने मे समर्थ नही है। इसके द्वारा केवल साधारण आकृतियो की ही व्याख्या सम्भव है।

आकृतिक सातत्य की अनुभूति की खोज प्राय चाक्षुप उत्तेजको को ही लेकर की गयी है। किन्तु आकृति-पृष्ठभूमि का अनुभव सभी प्रकार के उत्तेजको के प्रत्यक्ष मे व्याप्त रहता है। अत आकृति सातत्य भी प्रत्यक्षीकरण की एक सामान्य प्रक्रिया प्रतीत होता है। इस सम्भावना पर अभी तक कोई कार्य नही हुआ है।

आकृति तथा पृष्ठभूमि की परावर्तनशीलता

जब किसी वस्तु या आकृति का सवेदी प्रक्षेपण[1] प्रत्यक्ष की एक से अधिक वैकल्पिक सम्भावनाओ का प्रतिनिधित्व करता है तथा समाधान की सामग्री या तो इतनी कम होती है कि आभासी आकार, गति की दिशा और अभिविन्यास आदि विशेपताये दोलित होती है या पूर्णत अनुपस्थित रहती हैं, तो हमे प्रत्यक्ष मे अस्थिरता की अनुभूति होती है। वस्तुत सावेदिक प्रदत्त की क्रमबद्धता और स्थिरता प्रात्यक्षिक प्रक्रम का अस्थायी प्रभाव है। यह तथ्य किसी रेखाकृति का देर तक प्रत्यक्ष करने पर स्पष्ट हो जाता है। यदि हम किसी सावेदिक क्षेत्र का अधिक अवधि तक निरीक्षण करे तो सावेदिक क्षेत्र मे परिवर्तन दृष्टिगत होता है। जब सावेदिक सूचना जानबूझ कर अस्पष्ट बना दी जाती है (जैसा कि परावर्तनशील आकृति पृष्ठभूमि सरूप मे होता है) तो यह प्रवृत्ति अधिक तीव्र होती है। सामान्य प्रत्यक्ष मे एक प्रकार की सगठन[2] निश्चित रूप से अन्य सम्भावित सगठनाओ की अपेक्षा अधिक प्रवल हुआ करती है। किन्तु जब दो वैकल्पिक सम्भावनायें विद्यमान रहती है तो कुछ काल तक निरीक्षण के पश्चात् कभी एक सम्भावना आकृति बनती है और कभी दूसरी। इस प्रकार आकृति और पृष्ठभूमि मे परावर्तन होता है। वैकल्पिक सम्भावनाये उत्तेजक परिवर्त्यों तथा जैविक परिवर्त्यों की सहायता से परिष्कृत की जा सकती हैं। इनकी चर्चा आगे की जायेगी। आकृति-पृष्ठ-भूमि का परावर्तन या अस्थिरता की दशा मे पूर्वानुभव से विकसित अभिनतियाँ[3] प्रत्यक्षी-करण के निर्धारण मे प्रमुख निर्धारक का कार्य करती है। प्रायोगिक मनोविज्ञान के विकास के आरम्भिक वर्षों मे ही प्रत्यक्षीकरण के इस पक्ष मे उत्सुकता थी किन्तु इस विपय का सामान्य अध्ययन न करके प्रत्येक घटना का स्वतन्त्र अन्वेपण किया गया है। उन्हे अन्य समस्याओ के सन्दर्भ से
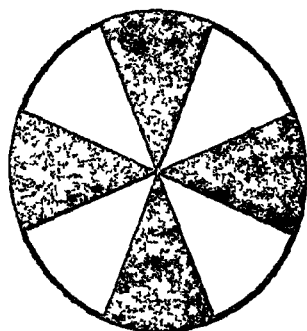
चित्र सख्या 5 4 परावर्तनशील आकृति

1 Sensory Projection 2 Organization 3 Assumptions

विछिन्न कर अध्ययन किये गये है। फलत प्रात्यक्षिक अस्थिरता की समस्या अभी भी विद्यमान है। अभिकल्पो को इस प्रकार भी निर्मित किया जा सकता है कि अनेक वैकल्पिक सभाव्य आकृतियाँ व्यक्ति के सम्मुख उपस्थित की जा सके। माइल्स (1931) ने काइनफैंटास्कोप नामक उपकरण विकसित किया जिसमे यह व्यवस्था है कि एक धातु का दड प्रकाशित पर्दे के पीछे चक्कर काटता रहता है और प्रयोज्य को सतत रूप से विभिन्न प्रकार की छायाओ की क्रमिक शृखला दृष्टिगत होनी है। इसमे आकृति के अनेक रूपो के प्रत्यक्ष की व्यवस्था है। ये विभिन्न वैकल्पिक सम्भावनाये सुझाव द्वारा सरलता से प्रभावित की जा सकती हैं। विभिन्न मनोवैज्ञानिको ने परावर्तनशील आकृतियो का निर्माण किया है (उदाहरणार्थ बोरिंग की पत्नी तथा सास की आकृति आदि)।

आकृति और पृष्ठभूमि के परावर्तन के वेग का भी अध्ययन किया गया है। यह अनेक आत्मगत कारको पर निर्भर करता है। नेकर (1832) ने रोम्वाइड क्रिस्टल की अनुकृति मे परावर्तन का प्रदर्शन किया। श्रोडर (1858) ने सीढी की प्रक्षेपी रेखाकृति के विषय मे इसी प्रभाव को प्राप्त किया। इन आकृतियो मे आभासी परावर्तन या अभिविन्यास मे दोलन कुछ काल तक निरीक्षण करने पर प्राप्त होता है। परावर्तन की अनुभूति एक आँख से देखने पर भी प्राप्त होती है। नेकर ने यह सुझाव दिया था कि आकृति का वह विन्दु जिस पर दृष्टि केन्द्रित होती है, निर्दिष्ट आकृति के प्रत्यक्ष का महत्वपूर्ण निर्धारक होता है। इसी प्रकार एक प्रकार की आकृति का दूसरे प्रकार की आकृति मे परावर्तन आँख की गति पर भी निर्भर करता है। आँख की गति के अनुकूल ही आकृति मे दृष्टिकेन्द्र का स्थल परिवर्तित होता रहता है। किन्तु नये अनुसन्धानो से यह स्पष्ट हो गया है कि आँख की गति की आकृति-दोलन मे कोई विशेष भूमिका नही होती। फेफीर तथा उनके सहयोगियो (1956) ने यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि आँख की गति तथा निरीक्षक द्वारा वताये गये परावर्तन के समय के अध्ययन से यह पता चला कि आँख की गति परावर्तन की अनुगामी हुआ करती है। प्रिचार्ड (1958) ने अक्षिपटलीय प्रतिमा को स्थिर करने पर भी आभासी परावर्तन प्राप्त किया।

आकृति का परावर्तन प्रतियोगी प्रात्याक्षिक सगठनो की सापेक्ष्य शक्ति पर प्रमुख रूप से निर्भर करता है। किसी भी सभाव्य सगठन की शक्ति उत्तेजक परिवर्त्यों के प्रहस्तन द्वारा या निरीक्षक की मनोवृत्ति, सेट तथा मूल्यो को परिष्कृत करके घटायी-बढाई जा सकती है। उदाहरणार्थ, शैफिर तथा मर्फी (1943) ने परावर्तनशील आकृति के प्रत्यक्ष को पुरस्कार और दण्ड की सहायता से परिष्कृत किया। दूसरा महत्वपूर्ण कारक थकान है। सामान्यत अधिक अवधि तक निरीक्षण करने पर उत्तेजक सरूप मे परिवर्तन की अधिक सभावना रहती है। परावर्तनमूलक आकृतियो[1] मे

1 Reversible figures

आकृति का परिवर्तन तीव्र गति से होता है। कोहलर तथा फिलिप एवं फिशिचेली (1945) ने इस प्रकार के निष्कर्ष प्राप्त किये हैं। इनके प्रयोगो मे परावर्तन की मात्रा एक मिनट के निरीक्षण काल के उत्तरार्ध मे पूर्वार्ध की अपेक्षा अधिक तीव्र थी। इन लोगो ने दृष्टि प्रक्षेपण व्यवस्था के व्यक्तिगत न्यूरोनो की थकान को व्याख्या के रूप मे स्वीकार किया है।

आकृति के प्रत्यक्षीकरण का पश्चात् प्रभाव[1]

जे० जे० गिब्सन (1933) ने आकृति-प्रत्यक्ष के प्रयोगो के सन्दर्भ मे एक विशेष प्रमेय का उद्घाटन किया। उर्ध्वाधार[2] दशा मे यदि किसी थोडी-सी टेढी रेखा को 5 से 10 मिनट तक सतत निरीक्षण किया जाय तो वह रेखा कम टेढी प्रतीत होती है और इसके बाद यदि तत्काल कोई सीधी रेखा दिखाई जाय तो वह सीधी रेखा टेढी प्रतीत होती है। यह प्रभाव आरम्भ मे प्रबल होने पर भी क्रमश क्षीण हो जाता है। गिब्सन ने इस प्रभाव की कोई दैहिक व्याख्या नही दी और इसे अभि-योजन-प्रभाव से सम्बन्धित किया। इनके अनुसार स्वल्प टेढी रेखा के निरीक्षण के कारण निरीक्षक का टेढापन से अभियोजन हो जाता है। इसी अभियोजन के कारण ऋणात्मक पश्चात् प्रभाव होता है जिसके फलस्वरूप बाद मे प्रस्तुत सीधी रेखा भी टेढी प्रतीत होती है। प्राय निरीक्षणकाल मे रेखा के टेढ़ेपन मे कमी, परीक्षण काल मे सीधी रेखा मे टेढापन की उपलब्धि के समान ही होती है।

कोहलर तथा वालेख (1944) को इस तथ्य मे रूप प्रत्यक्षीकरण के दैहिक सिद्धान्त के विकास की सभावना सन्निहित प्रतीत हुई। इसके फलस्वरूप इन प्रयोग-कर्त्ताओ ने अनेक प्रयोग किये और सतृप्ति[3] सिद्धान्त विकसित किया। यहाँ पर एक प्रयोग का उल्लेख किया जा रहा है।
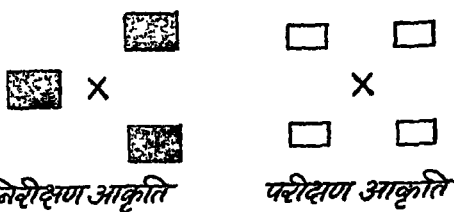
चित्र सख्या 5 5 आकृति प्रत्यक्षीकरण का पश्चात् प्रभाव

निरीक्षक को निरीक्षण आकृति (चित्र स० 5 5) के मध्य स्थित × बिन्दु पर दृष्टि केन्द्रित करने के लिए कहा जाता है। कुछ देर तक सतत देखने के पश्चात् परीक्षण आकृति उपस्थित की जाती है। परीक्षण आकृति के बाईं ओर के वर्ग निरीक्षण आकृति के × बिन्दु के ठीक-ठीक ऊपर तथा नीचे स्थित है। इसी प्रकार दायी ओर के वर्ग निरीक्षण आकृति के × बिन्दु के ऊपर नीचे स्थित वर्गों के मध्य

1 Figural after effect 2 Vertical 3 Satiation

मे स्थित है। परीक्षण आकृति को दिखाने पर प्रयोज्य को दायी ओर के वर्ग परस्पर आकृष्ट तथा बायी ओर के वर्ग परस्पर अनाकृष्ट और दूर-दूर प्रतीत होते है।

कोहलर तथा वालेख ने उक्त आकृतियो से भिन्न अनेक आकृतियो के साथ प्रयोग किया है तथा आकृतिक पश्चात् प्रभाव की पुष्टि की है। इनके अनुसार एक आकृति को कुछ देर तक देखने के कारण त्वक्ष मे कोशाओ का ध्रुवण[1] होता है और वह ध्रुवित सभाग विद्युतधारा के प्रति सतृप्त हो जाता है। इस सतृप्ति के फलस्वरूप उसकी अवरोधन[2] क्षमता बढ जाती है। ऐसी अवस्था मे परीक्षण आकृति उपस्थित करने पर इसकी उत्तेजना से उत्पन्न विद्युतधारा पूर्व सतृप्त माध्यम से दूर फैलती है तथा क्षीण हो जाती है या बिखर जाती है। विद्युतधारा का प्रवाह अधिक अवरोधन क्षेत्र से कम अवरोधन क्षेत्र की ओर होता है। कोहलर तथा वालेख के अनुसार कोई भी चाक्षुप क्षेत्र की पृथक् इकाई स्नायुमडल के चाक्षुप प्रखड से एक विद्युतधारा द्वारा सम्बद्ध है तथा यह आकृतिक विद्युतधारा जिस ऊतक[3] के माध्यम से प्रकाशित होती है, उसे ध्रुवित करती है। इसी ध्रुवण के कारण आकृतिक पश्चात् प्रभाव दृष्टिगत होते हैं। जब परीक्षण आकृति की विद्युतधारा प्रभावित माध्यम मे फैलती है तो वह बिखर जाता है। इस सिद्धान्त द्वारा ऊपर चर्चित प्रयोग की व्याख्या इस प्रकार होगी—त्वक्ष के चाक्षुप प्रखड, जो ध्रुवण के कारण सतृप्त हो गये है, निरीक्षण वर्गों की सीमारेखा द्वारा उत्तेजित अश है। पुन जब परीक्षण आकृति दिखायी जाती है तो मस्तिष्क के निकटवर्ती सभाग भी ध्रुवित हो जाते हैं और विद्युतधारा सतृप्त क्षेत्र से निकटवर्ती क्षेत्रो मे फैलती है। इस प्रकार यह बाईं दिशा मे बाहर की ओर तथा दाईं दिशा मे अन्दर की ओर फैलती है। इसका परिणाम यह होता है कि बाईं ओर के वर्ग दूर-दूर तथा दाई ओर के वर्ग निकट प्रतीत होते है।

निरीक्षण के लिए उपलब्ध समय तथा निरीक्षण और परीक्षण के मध्य व्यतीत होने वाला समय अन्तराल[4], पश्चात् प्रभाव को विशेप रूप से प्रभावित करते हैं। हैम्मर (1949) ने अपने प्रयोग मे निरीक्षण काल मे वृद्धि के अनुरूप विस्थापन की मात्रा मे वृद्धि प्राप्त की। किन्तु यह वृद्धि 50 सेकण्ड से 100 सेकण्ड तक ही थी। इसके बाद विस्थापन लगभग स्थिर हो गया। कुछ जापानी मनोवैज्ञानिको ने इस समस्या पर महत्वपूर्ण कार्य किया है जिससे यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि निरीक्षण-काल की समाप्ति और परीक्षण के आरम्भ के मध्य समय अन्तराल की वृद्धि के साथ-साथ पश्चात् प्रभाव मे कमी होती है। किन्तु पश्चात् प्रभाव मे कमी का वेग निरीक्षण की अवधि पर आधृत था। यह वेग कम निरीक्षण अवधि मे बहुत अधिक था और दीर्घ अवधि के निरीक्षण कालो के लिए बहुत धीमा था।

---

1 Polarization 2 Resistance 3 Tissue 4 Time interval

विरोधी पश्चात् प्रभाव[1]– अधिगम और सतृप्ति

इकेडा तथा ओवनाई (1955) ने प्रयोग द्वारा यह प्रदर्शित किया कि पश्चात् प्रभाव और विपयय प्रभाव, निरीक्षण करने तथा परीक्षण करने के मध्य के अन्तर को शून्य रखने पर एक तरह के प्रतीत होते है। यह तथ्य इस ओर सकेत करता है कि विपयय और पश्चात् प्रभाव लगभग एक ही प्रकार की घटनाये है। अनेक प्रयोगो मे अभ्यास या अधिगम के फलस्वरूप विपर्यय की मात्रा मे कमी प्राप्त की गयी है। कोहलर तथा फिशवुक (1950) ने यह प्रतिपादित किया कि मुलर लायर विपयय रेखा के मात्र अन्तिम सिरे (>तथा<) के सतत निरीक्षण द्वारा भी विपर्यय मे उतनी ही कमी होती है जितनी अधिगम के कारण प्राप्त होती है। इनके अनुसार सतत निरीक्षण के कारण सतृप्ति होती है और विपर्यय की मात्रा कम हो जाती है। वस्तुत यह स्थापना कोहलर का अन्य गेस्टाल्ट सम्प्रदाय के मनोवैज्ञानिको की ही तरह प्रत्यक्ष के क्षेत्र से अधिगम के बहिष्कार का एक प्रयत्न है। कोहलर ने तो यहाँ तक कह दिया है कि अधिगम के प्रयोगो मे जो भी निष्कर्ष प्राप्त होते है वे वस्तुत सतृप्ति के कारण उत्पन्न होते है। किन्तु अधिगम के अपेक्षाकृत स्थायी प्रभाव को ध्यान मे रखकर इस विचारधारा को स्वीकार करना सम्भव नही है। सतृप्ति पर आधृत कोहलर का प्रत्यक्षीकरण का सिद्धान्त आकृति की उत्तेजना से उत्पन्न विद्युत्धारा की मस्तिष्कीय क्रिया की सत्यता पर निर्भर करता है। अनेक मनोवैज्ञानिको ने इस सिद्धान्त का प्रायोगिक और सैद्धान्तिक विश्लेपण किया है तथा शोध की वर्तमान अवस्था मे सतृप्ति सिद्धान्त को अधिगम के स्थान पर स्वीकृत करने की उपयुक्तता एक विवादास्पद विपय है।

लैश्ली, चो तथा सेम्मस (1951) ने सतृप्ति सिद्धान्त का प्रायोगिक परीक्षण किया। इस प्रयोग मे एक बन्दर के त्वक्ष मे स्वर्ण शलाकाये रख दी गयी तथा विभिन्न चाक्षुप आकारो के विभेदन[2] कार्य उनके समक्ष उपस्थित किया गया। निष्कर्षो से यह ज्ञात हुआ कि चाक्षुप रूप के विभेदन मे किसी प्रकार का दोप नही था। बन्दरो ने पूर्ववत् विभेदन किया। इन प्रयोगकर्ताओ की तर्कना यह थी कि स्वर्ण विद्युतधारा को शार्ट सर्किट[3] कर देगा और चाक्षुप रूप के उत्तेजना द्वारा उत्पन्न सरूप नष्ट भ्रष्ट हो जायगा। यह निष्कर्ष सतृप्ति सिद्धान्तो की पुष्टि नही करता। कोहलर ने इस निष्कर्ष का अभी तक कोई प्रतिवाद नही दिया है। किन्तु इस प्रयोग की तर्कना परिपक्व नही है। इन तथ्यो को ध्यान मे रखकर फार्गुस (1966) ने इसकी समीचीनता पर सदेह व्यक्त किया है।

मोड (1959) ने सतृप्ति सिद्धान्त पर आधृत कुछ उपकल्पनाओ की परीक्षा की। उसने यह विचार किया कि सतृप्ति सिद्धान्त के अनुसार एक ही दिशा मे

---

1 Negative after effect 2 Discrimination 3 Short circuit

मस्तिष्क की उत्तेजना की पुनरावृत्ति करने पर तीव्र गति से सतृप्ति होती है और विपर्यय[1] नष्ट होता है।

सांख्यिकीय सिद्धान्त—विरोधी प्रमाणो को दृष्टि मे रखकर आकृति के पश्चात् प्रभाव की व्याख्या के लिए नये सिद्धान्त विकसित हुए है। यहाँ पर डे (1956) द्वारा विकसित सांख्यिकीय सिद्धान्त की चर्चा की जायगी। डे ने सतृप्ति सिद्धान्त के विरुद्ध आरोप निम्न आधारो पर उपस्थित किये है —

1 कोहलर द्वारा चर्चित सतृप्ति तथा विकिरण[2] के मध्य समानता का अभाव।

2 कार्टेक्स या त्वक्ष की स्नायु के शरीर शास्त्रीय अध्ययन मे नयी गवेषणायें।

डे ने मार्शल तथा टावट (1942) के दृष्टि की स्नायु दैहिकी की समस्याओ पर किये गये प्रयोगो के आधार पर यह स्थापना की है कि रूप की उत्तेजना से उत्पन्न स्नायु प्रवाह, सीमा-रेखा के लिए अधिकतम होता है और ज्यो-ज्यो सीमा-रेखा से दूरी बढती है, स्नायु प्रवाह दुर्बल होता जाता है। यदि इस तथ्य को वक्र द्वारा प्रदर्शित किया जाय तो एक सामान्य सभावना वक्र[3] निर्मित होता है जिसके अन्तगत सीमा रेखा मध्यविन्दु होती है।

यदि भौतिक उत्तेजक पर्याप्त प्रबल नही है तो स्नायविक उत्तेजना का शीर्ष (या उच्चतम विन्दु) सीमा-रेखा के स्पष्ट प्रत्यक्ष हेतु अपेक्षित देहली के नीचे होगा। सीमा-रेखा के समीप के क्षेत्रो मे स्नायविक शक्ति का वितरण लगभग बिखरा होता है और सबका सयुक्त प्रभाव उत्तेजना के एक रूप वितरण मे परिणत होता है। सीमा-रेखा के निकट यदि उत्तेजना कुछ उच्च तीव्रता की है तो भी वह सीमा-रेखा के स्पष्ट प्रत्यक्ष के लिए उपयुक्त नही होता है और इसके परिणामस्वरूप रूपगुण अस्पष्ट ही रहता है।

इसी प्रकार का सांख्यिकीय सिद्धान्त आस्गुड तथा हेयर (1952) ने भी विकसित किया है। परीक्षण तथा निरीक्षण आकृतियो की सीमा रेखायें उत्तेजना का सामान्य सभावना वक्र निर्मित करती हैं जिसके अन्तर्गत सीमा-रेखा उच्चतम विन्दु होती है। निरीक्षण काल मे उत्तेजना के लिए 'उद्दीपक वक्र' उत्तेजक आकृति के हटाये जाने पर बिखर जाती है किन्तु परीक्षण आकृति उपस्थित करने के समय बनी रहती है तथा परीक्षण आकृति की सीमा रेखा पूर्ण निरीक्षित सीमा-रेखा के एक या दूसरी ओर गिरता है।

सम्प्रति सांख्यिकीय तथा सतृप्ति सिद्धान्त के मध्य चुनाव करना कठिन है। इन सिद्धान्तो की अनेक सीमायें है और न इनकी पूर्ण परीक्षा ही हो सकी है।

प्रात्यक्षित स्थैर्य

निरीक्षण दशाओ की अस्थिरता के कारण प्राणी को प्रत्यक्ष के लिए उपलब्ध

---

1 Illusion 2 Diffusion 3 Normal Probability Curve

सावेदिक सूचना भी पर्यावरण के कारको के अनुकूल भिन्न-भिन्न हुआ करती है। किन्तु प्राणी एक सीमा तक प्रत्यक्षीकरण मे इन परिवर्तनो की अवहेलना करता है और सुस्थिर जगत का प्रत्यक्ष करता है। उत्तेजक पदार्थों के कुछ विशिष्ट गुण भौतिक परिवतनो से अशत स्वतन्त्र होते है। इन्ही गुणो के कारण प्रत्यक्षीकरण मे स्थिरता की अनुभूति होती है। इस प्रमेय को आगे चर्चित उदाहरण की सहायता से अधिक सहजता से समझा जा सकता है। प्राय सभी व्यक्तियो को विभिन्न अवस्थाओ मे पदार्थों का प्रत्यक्ष करना पडता है। कम प्रकाश की परिस्थिति मे और अधिक प्रकाश की स्थिति मे हम विभिन्न वस्तुये देखते है किन्तु काली वस्तु दोनो ही स्थितियो मे काली और श्वेत वस्तु दोनो ही स्थितियो मे श्वेत प्रतीत होती है। इसी प्रकार हम विभिन्न दूरियो पर स्थित वस्तुओ का प्रत्यक्ष करते हैं किन्तु (एक सीमा तक) वस्तु का आकार एक-सा प्रतीत होता है। वस्तु के अक्षिपटलीय प्रतिबिम्ब को ध्यान मे रख-कर विचार करने पर यह तथ्य स्वीकरणीय नही प्रतीत होता है। अक्षिपटल पर प्रत्यक्षित वस्तु का प्रतिबिम्ब दूरी बढने के साथ-साथ छोटा होता जाता है। अत वस्तु का प्रत्यक्षित आकार भी छोटा होना चाहिए। किन्तु वस्तु का आकार एक सीमा तक स्थिरता प्रदर्शित करता है और हमे भिन्न दूरियो पर भी वस्तु का एक-सा ही आकार दीखता है। वस्तुओ की चमक भी स्थिर हुआ करती है। वस्तुओ के श्वेत, धूसर और काले रग प्रकाश की मात्रा मे पर्याप्त परिवर्तन होने पर भी स्थिर रहते है। प्रत्यक्ष का यह अपरिवर्तनीय गुण चमक का स्थैर्य कहा जाता है। वस्तु के रूप मे भी स्थिरता होती है। प्रत्यक्षित रूप सदैव अक्षिपटल के प्रतिबिम्ब के अनुरूप नही हुआ करता है। उसमे भी एक सीमा तक अपरिवर्तनीयता बनी रहती है।

परम्परागत ये सभी प्रकार के स्थैर्य एक ही प्रक्रम के अन्तर्गत स्वीकृत हैं। क्योकि सभी प्रकार के स्थैर्य इस तथ्य की ओर सकेत करते हैं कि प्रत्यक्षित भौतिक आयाम, भौतिक आयाम मे परिवर्तन के अनुरूप परिवर्तित नही हुआ करता है। किन्तु अब प्रायोगिक साक्ष्यो से यह सिद्ध हो चुका है कि चमक स्थैर्य की सगठना मूलत अक्षिपटलीय प्रकाश शक्ति के वितरण पर आधृत है जबकि आकार तथा रूप स्थैर्य निरीक्षक की अभिवृत्ति, अनुभव आदि पर निभर करते है। वस्तुत प्रात्यक्षिक स्थैर्य वस्तु के अन्तर्निहित गुणो को वातावरण की परिस्थितियो के परिवर्तनीय गुणो से अलग करने की क्षमता पर निर्भर करता है।

प्रात्यक्षिक स्थैर्य के प्रमेय की चर्चा थाउलेस ने की तथा बाद मे कोफ्का ने भी इसे पर्याप्त महत्व दिया। थाउलेस ने इसे सावृतिक ह्रास[1] की सज्ञा दी तथा कोफ्का ने इसे स्थैर्य[2] कहा है। कोफ्का ने विभिन्न प्रकार के स्थैर्य की व्याख्या के नाडीय त्वक्षीय स्नायुमडल के कुछ प्रक्रमो से सम्बद्ध प्रत्यक्षीकरण के सामान्य नियमो

---

1 Phenomenal regression to the real object 2 Constancy

द्वारा किये जाने की सभावना पर ध्यान दिया। ये नियम समाकृतिकता के सिद्धान्त से सम्बन्धित हैं। बाद के प्रयोगो से यह पता चला है कि आकार, रूप तथा रग के स्थैर्य अनिवार्यत कोफ्का द्वारा प्रस्तावित अभिनति के अनुरूप नही परिचालित होते। ये स्थैर्य परिवेश के स्वरूप तथा निरीक्षक के गुणो पर निर्भर करते हैं।

प्रात्यक्षिक स्थैर्य के प्रायोगिक अध्ययन का एक महत्वपूर्ण पक्ष इसकी मात्रा का निर्धारण है। यह मात्रा किसी वस्तु को भिन्न-भिन्न अभिविन्यासो दूरियो पर स्थापित कर इसकी तुलना सामान्य अभिविन्यास मे स्थित उसी वस्तु के साथ करके ज्ञात की जाती है। इन तुलनाओ द्वारा प्रत्यक्षित रूप आकार आदि मापा जा सकता है तथा शुद्ध आकार एव रूप तथा प्रक्षिप्त प्रतिबिम्ब के साथ तुलना की जा सकती है। यह तुलना एक सूत्र द्वारा व्यक्त की जा सकती है। थाउलेस द्वारा सावृतिक ह्रास की मात्रा के मापन का निम्न सूत्र प्रस्तावित किया गया है।

$$\frac{\text{लघुगणक प्र० आ० — लघुगणक प्रक्षिप्त आकार}}{\text{लघुगणक वा० आ० — लघुगणक वास्तविक आकार}}$$

जहाँ

प्र० आ० = प्रत्यक्षित आकार या रूप

वा० आ० = वास्तविक आकार या रूप

प्रक्षिप्त आ० = प्रक्षिप्त आकार या रूप

ब्रान्स्विक (1928) ने भी प्रात्यक्षिक स्थैर्य के मापक का निर्धारण किया है —

$$\text{प्रात्यक्षिक स्थैर्यांक} = \frac{\text{प्रत्यक्षित आकार या रूप — प्रक्षिप्त आकार या रूप}}{\text{वास्तविक आकार या रूप तथा — प्रक्षिप्त आकार या रूप}}$$

प्रात्यक्षिक स्थैर्य की मात्रा शून्य से लेकर 1 के मध्य विद्यमान रहती है। यहाँ पर यह स्मरणीय है कि स्थैर्य की मात्रा के विषय मे उपलब्ध प्रदान्त अधिक काल तक वस्तुओ के निरीक्षण द्वारा अनुमानित निर्णयो पर आधृत है। अत रूप, आकार आदि के तात्कालिक प्रत्यक्ष के स्वरूप के विषय मे कुछ नही कहा जा सकता है। विभिन्न प्रकार के स्थैर्य के निर्धारण तथा मापन की स्वतत्र विधियाँ है जिनकी चर्चा आगे की जायेगी।

स्थैर्य के प्रकार

उत्तेजक पदार्थ के कुछ विशेष अन्तर्निहित गुणो मे ही स्थिरता विद्यमान रहती है। ये गुण हैं रूप, आकार, रग तथा चमक। अब हम इन विभिन्न गुणो के स्थैर्य के स्वरूप, मापन तथा निर्धारक तत्वो की चर्चा करेंगे।

आकार स्थैर्य

दृष्टि-कोण[1] के नियम के अनुसार वस्तु का प्रत्यक्षित आकार आँख से वस्तु

1 Visual angle

की दूरी मे वृद्धि के अनुपात मे क्रमश छोटा होता जाता है। दूरी मे वृद्धि होने पर भी वस्तु का भौतिक आकार स्थिर रहता है और अक्षिपटलीय प्रतिबिम्ब छोटा होता जाता है। बहुत अधिक दूरी पर स्थित वस्तुये छोटी प्रतीत होती है। किन्तु प्रत्यक्षित आकार दृष्टिकोण के नियम का पूर्णत पालन नही करता है। दूरी के एक निश्चित क्षेत्र के अन्तर्गत से प्रत्यक्षित आकार मे दूरी के अनुरूप ह्रास का अभाव ही आकार स्थैर्य कहा जाता है।

प्रयोगशाला मे आकार-स्थैर्य का अध्ययन एक परीक्षण उत्तेजक को एक आदर्श उत्तेजक के समान समायोजित करने की विधि द्वारा किया जाता है। प्राय आदर्श उत्तेजक एक निश्चित दूरी पर स्थिर रहता है और प्रयोज्य विभिन्न दूरियो पर स्थित परीक्षण उत्तेजक के आकार के अनुरूप आदर्श उत्तेजक का आकार व्यवस्थित करता है। विभिन्न प्रयासो के आधार पर आदर्श उत्तेजक के औसत सयोजन को निर्धारित किया जा सकता है। इस विधि के अन्य रूप भी है। यथा आदर्श उत्तेजक का आकार स्थिर हो और परीक्षण उत्तेजक को आदर्श उत्तेजक के अनुरूप व्यवस्थित किया जाय। आकार स्थैर्य की मात्रा को प्राय ब्रान्स्विक अनुपात के रूप मे व्यक्त किया जाता है।

ब्रान्स्विक ने प्राकृतिक दशा मे विभिन्न आकार की वस्तुओ के प्रत्यक्ष का अध्ययन किया तथा यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि निरीक्षक 10 कि० मी० तक की दूरी का शुद्ध निणय करते हैं किन्तु उनके निर्णय मे न्यूनानुमान होता है। गिलिंस्की (1951) ने यह प्रदर्शित किया है कि प्रत्यक्षित दूरी की अधिकतम सीमा पर स्थैर्य मे ह्रास होता है। कुछ प्रयोगो मे अति स्थैर्य[1] प्राप्त किया गया या दूसरे शब्दो मे दूर की वस्तु निकट की वस्तु की तुलना मे अधिक बडी प्रतीत हुई। इसका एक कारण पियाजे तथा लैम्बर्सियर (1943) द्वारा प्रस्तावित प्रतिमान की अशुद्धि[2] है। चूंकि प्रतिमान उत्तेजक अवधान केन्द्र मे रहता है, अत इसकी मात्रा[3] परिवर्ती उत्तेजको की तुलना मे अधिक अनुमानित होती है। बहुत मे प्रयोगो मे प्रतिमान उत्तेजक दूरी पर रखा जाता है। अति स्थैर्य प्राय निकटस्थ वस्तुओ के प्रत्यक्ष मे अधिक होता है। दूरी मे वृद्धि के अनुसार इसमे कमी होती है।

परिवेश के अस्पष्ट प्रत्यक्ष मे (जब सकेतो की कमी होती है[4]) स्थैर्य मे ह्रास होता है और कभी-कभी स्थैर्य पूर्णत समाप्त भी हो जाता है। होल्वे तथा बोरिंग (1941) ने प्रकाश के एक वृत्त की तुलना करने की क्षमता का अध्ययन किया। यह प्रकाश का वृत्त 10 फीट से 120 फीट तक की दूरियो पर एकरूप दृष्टिकोण का निर्माण करता था तथा निरीक्षक को 10 फीट की दूरी पर स्थित एक अन्य वृत्त के आकार को व्यवस्थित करना था। इस प्रयोग मे यह निष्कर्ष

1 Over constancy 2 Error of the standard 3 Magnitude
4 Reduction conditions

प्राप्त किया गया कि वस्तु के परिवेश के दोनो आँखो के द्वारा निरीक्षण की पूर्ण सुविधा होने पर अति स्थैर्य (1 09 स्थैर्यांक) था। एक आंख का प्रयोग करने पर भी पूर्ण (1 0 स्थैर्यांक) स्थैर्य प्राप्त हुआ। किन्तु कृत्रिम पुतली धारण करने पर स्थैर्यांक 4 4 हो गया।

यदि निरीक्षक दृष्टिकोण के आकार की कमी को दूरी मे वृद्धि के द्वारा पूरा करता है तो प्रत्यक्षित आकार के अनुमान तथा दूरी के मध्य स्थिर सम्बन्ध होना चाहिए। किन्तु अनुमानित आकार और दूरी के मध्य किसी प्रकार का सहसम्बन्ध नही प्राप्त हुआ है। स्मिथ तथा स्मिथ (1966) ने अनेक प्रकार की परिचित तथा अपरिचित वस्तुओ का प्रतिबंधित[1] तथा अप्रतिबंधित दृष्टियो की दशा मे बच्चो तथा वयस्को द्वारा प्रत्यक्ष कराया। इस अध्ययन मे आकार तथा दूरी के मध्य सह-सम्बन्ध नही प्राप्त हुआ। बेयर्ड (1963) के अनुसार आकार तथा दूरी के निर्णय के मध्य निकट तथा दूर की वस्तुओ के वास्तविक भौतिक आकार के विषय मे निर्देश दिये जाने पर धनात्मक सहसम्बन्ध होता है। किन्तु यह सम्बन्ध दृष्टि-कोण के अनुकूल निर्णयो के निर्देश की अवस्था मे नही प्राप्त होता है।

वस्तु के सही आकार के ज्ञान का प्रभाव भी प्रत्यक्षित स्थैर्य को प्रभावित करता है, विशेषत जब परिवेश आच्छन्न हो और दूरी के सकेत दुर्बल हो। अनेक दशाओ मे प्रत्यक्षित आकार तथा दूरी, निरीक्षक की अभिनति[2] पूर्वानुभव आदि पर आधृत होता है। हाकवर्ग तथा हाकवर्ग (1952) ने यह प्राप्त किया कि एक पर्दे पर प्रदर्शित एक दूसरे बच्चे के छोटे चित्र का एक आँख द्वारा प्रत्यक्ष करने पर, उसी बच्चे के बडे चित्र की अपेक्षा दूर प्रतीत हुआ। इटिल्सन (1951) ने एक प्रयोग मे यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि एक आँख मे देखे जाने पर आधे आकार का 'ताश का पत्ता'[3] सामान्य आकार के ताश के पत्ते की तुलना मे दुगनी दूरी पर स्थित प्रत्यक्षित किया गया जब कि दुगुने आकार का ताश का पत्ता आधी दूरी पर स्थित प्रत्यक्षित किया गया। ये प्रभाव कम परिचित आकृति की वस्तुओ के लिए कम मात्रा मे पाया गया।

आकार स्थैर्य अनेक वैयक्तिक गुणो द्वारा प्रभावित होता है। आयु इस प्रकार का एक महत्वपूर्ण परिवर्त्य है, जिसके प्रभाव का पर्याप्त अन्वेषण किया गया है। किन्तु इसके प्रभाव के विषय मे उपलब्ध साक्ष्यो मे एकरूपता नही है। निकटस्थ वस्तु के लिए स्थैर्य एक वर्ष की आयु मे ही पूर्ण हो जाता है। बोवर (1966) ने 6 सप्ताह से लेकर 8 सप्ताह की आयु के बच्चो को एक निश्चित आकार के घन[4] के प्रति अनुक्रिया करने के लिए प्रशिक्षित किया। प्रशिक्षण के पश्चात् अधिक दूरी पर स्थित घन के प्रति पूर्वार्जित अनुक्रिया का स्थानातरण प्राप्त किया गया। इस निष्कर्ष के विपरीत अनेक प्रयोगो से यह निष्कर्ष मिला कि छोटी आयु के बच्चो

---

1 Restricted vision 2 Assumptions 3 Playing card 4 Cube

मे परिचित और निकटस्थ वस्तुओ की प्रायोगिक तुलना की अवस्था मे स्थैर्य की मात्रा अपेक्षाकृत स्वल्प थी। कोहेन (1958) ने यह निष्कर्ष पाया था कि 5 वर्ष की आयु से लेकर 12 वर्ष की आयु तक के बच्चो के लिए 8 मीटर की दूरी पर स्थैर्य की मात्रा अधिक थी। यह मात्रा 12 वर्ष से 17 वर्ष की आयु मे निर्णय की परिपक्वता होने पर बढ गई। स्मिथ तथा स्मिथ (1966) ने परिचित आकार की वस्तुओ का प्रतिवन्धित अवस्था मे विभिन्न आयु के प्रयोज्यो द्वारा किये गये प्रत्यक्ष का अध्ययन किया। पाँच वष की आयु के कुछ बच्चे ही दृष्टि-कोण के अनुसार तुलना कर सके थे। कोई भी वयस्क इस प्रकार की तुलना न कर सके थे। 6 वर्ष तथा 12 वष की आयु के मध्य के बच्चे ही तुलना करने मे सफल थे। इसके विपरीत अप्रतिवन्धित दशा मे पूर्ण आकार स्थैर्य प्राप्त हुआ।

बुद्धि तथा आकार स्थैर्य के मध्य भी अस्पष्ट सम्वन्ध प्राप्त हुआ है। जेनकिन तथा फिएलाक(1960) ने प्रत्यक्ष की प्रतिवन्धित दशा मे 15 वर्ष की आयु के मन्द बुद्धि वाले बालको तथा समान मानसिक आयु के बालको के आकार स्थैर्य की तुलना की तथा यह प्राप्त किया कि मन्द बालको मे स्थैर्य की अधिक मात्रा प्रदर्शित की गई। 15 वर्षीय सामान्य बालको द्वारा, प्रदर्शित स्थैर्य की मात्रा इन मन्द बुद्धि बालको द्वारा प्रदर्शित स्थैर्य के ही समान थी। ऐसा प्रतीत होता है कि स्थैर्य आयु और परिपक्वता के अनुरूप होता है। हैमिल्टन (1966 अ) ने यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि कम बुद्धि के 12 वर्षीय बच्चो (औसत बुद्धिलब्धि 74) ने सामान्य दृष्टि की अवस्था मे अतिस्थैर्य प्रदर्शित किया। किन्तु उसी आयु के सामान्य बालको की अपेक्षा यह मात्रा न्यून थी। आयु तथा बुद्धि मे वृद्धि के अनुसार अतिस्थैर्य मे वृद्धि होती प्रतीत होती है। आकार स्थैर्य विपयक वयस्को के निर्णयो मे अनेक वैयक्तिक भेद प्राप्त होते है।

आकार स्थैर्य पर व्यक्तित्व गुणो के प्रभाव का भी अध्ययन किया गया है। काहीसन (1960) ने यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि अधिक बुद्धि वाले निरीक्षक आभासी आकार के निर्णय मे न्यूनानुमान करते है तथा सुझाव ग्रहण करने वाले निरीक्षक अधिकानुमान करते है। सिगर (1952) ने यह निष्कर्ष प्राप्त किया था कि वहिर्मुखी व्यक्ति सश्लेषण[1] की प्रवृत्ति के कारण अधिक स्थैर्य प्रदर्शित करता है। इसके विपरीत अन्तर्मुखी व्यक्ति विश्लेषण[2] की प्रवृत्ति के कारण कम स्थैर्य प्रदर्शित करते है।

रूप स्थैर्य[3]

प्रत्यक्षित वस्तु का अक्षिपटलीय प्रतिविम्ब निरीक्षक की प्रत्येक गति[4] के अनुसार परिवर्तित होता है। यथा निरीक्षक के सम्मुख रखी हुई वृत्ताकार वस्तु का प्रतिविम्व वलयाकार[5] होता है तथा यह वलयाकार प्रतिविम्ब भी सिर की स्थिति

---

1 Synthesis 2 Analysis 3 Shape constancy 4 Movement
5 Ellipse

परिवर्तित होने पर परिवर्तित हो जाता है। इन परिवर्तनो से निरपेक्ष वृत्ताकार वस्तु का आभासी रूप सदा वृत्ताकार ही रहता है। विभिन्न कोणो से देखने पर वस्तु का प्रत्यक्षित रूप नही वदलता है पर वस्तु का अक्षिपटलीय प्रतिविम्ब वदलता है। वस्तुत रूप स्थैय का तात्पय यह है कि वस्तुओ का प्रत्यक्षित रूप विभिन्न विकृत परिस्थितियो मे भी अपरिवर्तित रहता है।

प्रयोगशाला मे रूप स्थैर्य के अध्ययन के लिए प्रयोज्य के सम्मुख एक निश्चित आकृति को प्रतिमान के रूप मे रखा जाता है तथा लगभग 5 फीट की दूरी पर उसी प्रकार की कुछ अन्य आकृतियाँ रखी रहती हैं। प्रयोगकर्त्ता प्रतिमान आकृति को टेढा वना देता है तथा प्रयोज्य परिवर्तनशील आकृति के अनुरूप प्रतिमान आकृति वनाने के लिए एक समायोजनशील पर्दे को घटाने-वढाने का निर्देश प्रयोगकर्त्ता को देता है। जव प्रयोज्य प्रतिमान तथा परिवर्तनशील उत्तेजक को एकरूप घोपित करता है तव प्रयोगकर्त्ता प्रतिमान आकृति के altitude का मापन कर लेता है। यह प्रक्रिया कई प्रयासो मे दुहराई जाती है तथा तुलित altitude का मध्यमान प्राप्त किया जाता हे। व्रन्स्विक अनुपात निम्नलिखित सूत्र की सहायता से प्राप्त किया जाता है।

$$\frac{\text{तुलित altitude का मध्यमान (परिवर्ती)—सापेक्ष अक्षिपटीय उत्तेजक}}{\text{प्रतिमान उत्तेजक का भौतिक altitude—सापेक्ष अक्षिपटीय उत्तेजक}}$$

परिवेश मे व्यक्ति की अवस्थिति मे परिवर्तन के कारण अक्षिपटलीय प्रतिविम्व मे परिवतन को ध्यान मे रखकर यह धारणा कि रूप स्थैर्य भी दिक् अभिविन्यास[1] के सकेतो मे कमी होने पर कम हो जायगा, समीचीन प्रतीत होता है। इस धारणा की सत्यता जानने के लिए अनेक प्रयोग किये गये। थाउलेस (1932) ने इस सन्दर्भ मे आरम्भिक प्रयोग किये। इस प्रयोग मे एक वृत्त, प्रतिमान[2] उत्तेजक था तथा वृत्तानुरूप अनेक वलयाकृतियाँ परिवर्ती उत्तेजक के रूप मे उपस्थित की गयी थी। प्रतिमान वृत्त इस प्रकार रखा गया था कि उसकी अक्षिपटलीय प्रतिमा वलयाकार हो गयी। प्रयोज्य से प्रतिमान वृत्त के आकार के अनुरूप परिवर्ती आकृतियो के मध्य एक आकृति का चयन करने को कहा गया। सामान्य निष्कर्ष यह प्राप्त हुआ कि प्रयोज्यो ने ऐसी वलयाकृतियो का चयन किया जो अक्षिपटलीय (प्रतिमान वृत्त के प्रतिविम्व) वलयाकृति की अपेक्षा कम वलयाकार थी। स्थैर्यांक 60 तथा 80 के मध्य प्राप्त किये गये। इमी प्रकार के निष्कर्ष चतुर्भुज तथा अन्य आकृतियो के साथ भी प्राप्त हुए हैं। वाद के प्रयोगो से यह ज्ञात हुआ कि दिक् सकेतो को समाप्त कर देने पर स्थैर्यांक शून्य भी हो सकता है। उदाहरणार्थ, यदि प्रतिमान रूप को एक आँख से काली पृष्ठभूमि मे देखा जाय तो प्रत्यक्षित रूप लगभग अक्षिपटलीय रूप के समान था। इस अवस्था मे रूप स्थैर्य शून्य था।

ऐसा प्रतीत होता है कि रूप स्थैर्य की मात्रा दिक् अभिविन्यास की समझ

1 Spatial orientation 2 Standard

पर निर्भर करती है। ईसलर ने इस उपकल्पना की परीक्षा की। उदग्राधार दशा मे उसने प्रतिमान वस्तु को विभिन्न कोणो पर वक्र कर दिया। इस अध्ययन के तीन प्रमुख निष्कर्ष इस प्रकार थे —

1 वक्रता मे वृद्धि होने पर स्थैर्य मे वृद्धि हुई।

2 वक्रता मे अत्यधिक वृद्धि होने पर प्रत्यक्षित आकार तथा वास्तविक आकार के मध्य अन्तर बहुत अधिक हो गया। फलत स्थैर्य कभी भी पूर्ण न हो सका।

3 प्रत्यक्षित रूप तथा निर्णीत वक्रता[1] के मध्य सम्बन्ध प्राप्त हुआ।

कोफ्का ने ईसलर के निष्कर्षों की इस आधार पर आलोचना की है। उनके प्रयोज्य दिक् के पूर्ण प्रत्यक्ष मे असमर्थ थे। स्टेवरियन्स (1945) ने ईसलर के प्रयोग को परिष्कृत कर दुहराया। इस प्रयोग मे भी रूप के प्रत्यक्ष तथा वक्रता के निर्णय के मध्य बहुत थोडा सम्बन्ध प्राप्त हुआ। रूप-स्थैर्य सामान्यत उत्तम था किन्तु वक्रता के निर्णय मे अशुद्धि और विचलन प्राप्त हुआ। केवल थोडे से प्रयोज्यो मे रूप प्रत्यक्ष तथा वक्रता के मध्य (एक आँख से देखने की दशा मे) सम्बन्ध प्राप्त हुआ। कुछ दशाओ मे वस्तु के प्रत्यक्षित रूप तथा इसकी प्रत्यक्षित वक्रता अधिक थी किन्तु पूर्ण नही थी। लैंगडन (1951, 53) के प्रयोग परिणामो से यह स्पष्ट होता है कि स्थैय की मात्रा गति, बनावट तथा छाया जैसे सकेतो को हटाने से कम की जा सकती है।

बेक तथा गिब्सन (1955) ने रूप प्रत्यक्ष मे दिक् सन्दर्भ के अवदान की प्रायोगिक परीक्षा की तथा यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि प्रत्यक्षित रूप मूलत पृष्ठभूमि धरातल के दिक् परिप्रेक्ष्य द्वारा निर्धारित होता है। इन अध्ययनो के आधार पर यह निष्कर्ष उचित प्रतीत होता है कि रूप स्थैर्य परिवेश के प्रत्यक्ष पर प्रमुख रूप से आधृत होता है। लीबोविट्ज तथा बाउर्न (1956) के प्रयोग प्रदशन-काल तथा प्रकाश की तीव्रता को भी महत्वपूण कारक सिद्ध करते है। अत्यधिक प्रदर्शन काल, अत्यन्त मद्धिम प्रकाश होने पर व्यर्थ सिद्ध होता है और स्थैर्य की मात्रा शून्य होती है। अधिक प्रकाश होने पर स्थैर्य अधिक होता है।

रूप-स्थैर्य के निर्णय, रूप के पूर्वज्ञान द्वारा भी प्रभावित होते हैं। बोर्रेसन तथा लिचे (1962) ने पूर्णत अव्यवस्थित तथा अपरिचित रूपो की सहायता से एक प्रयोग किया। प्रयोज्यो को आकृतियो के वास्तविक रूपो के साथ वक्र रूपो की तुलना, इन रूपो की छायाओ को ध्यान मे रखकर (जो एक पर्दे पर विभिन्न कोणो से प्रदर्शित थी), करनी थी। इसके पूर्व प्रयोज्यो को विभिन्न मात्रा मे परिचय हेतु अभ्यास दिये गये। परिचय प्रयासो के अभाव मे ब्रन्स्विक अनुपात 5 था किन्तु 15 परिचय प्रयासो के बाद यह मात्रा 7 हो गयी।

आयु का रूप स्थैर्य से सम्बन्ध अभी भी स्पष्ट नही हो सका है। वर्पिल्लाट

---

1 Tilt

(1964) के प्रयोग आयुजन्य परिवर्तनो के विषय मे महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत करते है । इन्होने एक अपरिचित रूप (विभिन्न कोणो पर झुके एक वर्ग) 5 से 12 वर्ष की आयु के बच्चो के सम्मुख उपस्थित किया । इन्ही आकृतियो के समान अनेक आकृतियाँ मेज पर रखी थी । तथा इन आकृतियो से तुलना करनी थी । दो प्रकार के निर्देशो का पालन किया गया । प्रथम प्रकार के निर्देश मे बच्चो को प्रति-मान के अधिकतम तुल्य परिवर्ती को चुनना था तथा दूसरे प्रकार के निर्देश मे उस परिवर्ती को चुनना था जो यदि प्रतिमान को मेज पर लिटा देने की अवस्था मे समान हो । इस प्रयोग का प्रमुख निष्कर्ष यह था कि सबसे छोटे बच्चे इन दोनो दशाओ मे अतर करने मे असफल थे । कुछ ने भौतिक रूप चुना तथा कुछ ने प्रक्षिप्त रूप चुना, जबकि शेष बच्चे दोनो प्रकार के निर्णयो के बीच भटक गये । सात वर्ष की अवस्था मे दोनो दशाओ मे अतर स्पष्ट हो गया किन्तु सदेह निवृत्त नही हो सका । बच्चे आभासी निर्णयो को स्पष्टता से अलग करने मे सफल थे । आर्डिस तथा फ्रेसर (1957) ने अतर्मुखी व्यक्तियो मे वहिमुखी व्यक्तियो की अपेक्षा कम स्थैर्य प्राप्त किया ।

चमक तथा रग स्थैर्य

किसी वस्तु की चमक उस वस्तु को प्रकाशित करने वाले स्रोत की शक्ति द्वारा नही निर्धारित होता अपित वस्तु द्वारा परावर्तित प्रकाश की मात्रा द्वारा निर्धा-रित होता है जो परिवेश मे स्थित अन्य वस्तुओ द्वारा परावर्वित प्रकाश के सापेक्ष्य होता है । हम प्राय देखते हैं कि भिन्न वस्तुओ के श्वेत, काले तथा भूरे रग प्रकाश के विविध परिवर्तनो के होने पर भी पर्याप्त स्थिर प्रतीत होते हैं और अपरिवर्तित ही रहते हैं । वस्तु की चमक की यह अपरिवर्तनीय विशेपता ही चमक स्थैर्य कही जाती है । काली वस्तु कम प्रकाश मे और अधिक प्रकाश मे काली, तथा सफेद वस्तु सफेद ही प्रतीत होती है ।

काट्ज (1935) ने सर्वप्रथम रगो के सावृतिक पक्ष की व्यवस्थित व्याख्या करने का यत्न किया । इसने विभिन्न प्रकार की भौतिक दशाओ मे रगो के प्रत्यक्षित रूप का वर्णन किया । रगो को इसने दो श्रेणियो मे बाँटा—धरा रग तथा फिल्मी रग । दूसरी श्रेणी के रग किसी वस्तु से सम्बद्ध नही होते जबकि प्रथम श्रेणी के रग वस्तु की सतह से सम्वन्धित होते है । चमक स्थैर्य मात्र धरा रगो मे प्राप्त होता है यह वस्तु की प्रकाश परावर्तनशक्यता[1] पर निर्भर करती है । यह वस्तु का एक स्थिर भौतिक गुण है । प्रत्येक वस्तु का धरातल उस पर पडते हुए प्रकाश को परावर्तित करने की क्षमता रखता है । यह परावर्तित प्रकाश के अनुपात के रूप मे व्यक्त किया जाता है । इसे निम्न सूत्र की सहायता से ज्ञात करते है—

$$\text{प्रकाश परावर्तनशक्यता} = \frac{\text{परावर्तित प्रकाश की तीव्रता}}{\text{वस्तु पर पडने वाले प्रकाश की तीव्रता}}$$

---

1 Albedo

दैनिक जीवन मे विद्यमान वस्तुये भिन्न मात्रा मे प्रकाश परावर्तित करती हैं तथा साधारणतया विभिन्न प्रकाश की अवस्थाओ मे भी उनकी चमक मे कोई अन्तर नही होता है। इसका कारण यही है कि वे प्राप्त प्रकाश की एक निश्चित मात्रा ही परावर्तित करती है।

रग के प्रत्यक्ष मे प्रकाश के कारक की अवहेलना ही रग स्थैर्य है। फलत दो रगो के मध्य प्रतीत होने वाला अन्तर दो रगो की प्रकाश परावर्तनशक्यता के मध्य विद्यमान अन्तर के अधिक निकट होता है न कि परावर्तित प्रकाश की पूर्ण मात्रा के अन्तर पर निर्भर करता है। निकटस्थ क्षेत्र के द्वारा परावर्तित प्रकाश का अनुपात रग स्थैर्य को प्रभावित करता है।

प्रयोगशाला मे रग स्थैर्य के अध्ययन मे साधारणत दो भिन्न प्रकाश की अवस्था मे रखे गये दो पदार्थों के धरा रगो की तुलना की जाती है और निरीक्षक को दोनो ही रगो को एकरूप करने को कहा जाता है। ऐसा करने के लिए एक धरातल की प्रकाश परावर्तनशक्यता तब तक परिवर्तित की जाती है जब तक कि उस धरातल का रग दूसरे धरातल के रग के समान न हो जाय। उदाहरणार्थ, एक भूरा रग चक्र (प्रतिमान) मद्धिम प्रकाश मे परिचलित कर दिया जाता है। एक अन्य रग चक्र (जिस पर काला तथा श्वेत रग का कार्ड लगा है) उत्तम प्रकाश की अवस्था मे परिचलित कर दिया जाता है। दूसरे रग चक्र के श्वेत तथा काले रग की मात्रा तब तक घटायी-बढाई जाती है जब तक कि वह पहले रग चक्र के रग की तरह प्रतीत न होने लगे। प्राय अधिकांश निरीक्षक पूर्ण समानता नही प्राप्त कर पाते हैं। प्रकाश मे अन्तर भी प्रत्यक्षित होता है जो दोनो ही रग चक्रो के मध्य गुणात्मक अन्तर उत्पन्न करता है।

रग स्थैर्य कभी भी पूर्ण नही होता है। वस्तु द्वारा परावर्तित पूर्ण प्रकाश की मात्रा की तुलना प्रतिबाधक पर्दे[1] की सहायता से की जाती है। इस पर्दे मे एक छिद्र बना होता है। जिसके माध्यम से उत्तेजक रग चक्रो का निरीक्षण करना पडता है। उक्त पर्दा दोनो ही रग चक्रो को समान परिवेश प्रदान करता है। प्रतिबाधक पर्दे की अवस्था मे निरीक्षक वस्तु रग की तुलना नही करता है अपितु व्याप्त रग[2] की प्रतीति करता है। यहाँ पर एक प्रयोग की चर्चा कर देना समीचीन प्रतीत होती है। वर्जलाफ(1931)ने 48 भूरे रग के कार्ड तैयार किये। ये कार्ड अधिकतम श्वेत तथा अधिकतम कालिमा की सीमा के मध्यवर्ती रगो के थे। इन कार्डों के दो प्रकार थे। एक प्रकार के कार्ड का आकार 6 से० मी० वर्ग का था तथा दूसरे प्रकार के कार्ड का आकार 60×80 से० मी० था। एक प्रकार के कार्ड खिडकी के पास रखे गये थे तथा दूसरे प्रकार के कार्ड पीछे कमरे मे रखे गये थे। कमरे मे विद्यमान प्रकाश की तीव्रता खिडकी के पास विद्यमान प्रकाश का 1/20 था। प्रयोज्य दोनो ही प्रकार के

1 Reduction screen 2 Expanse colour

कार्डो को देखता था तथा खिड़की के पास स्थित किसी एक कार्ड को प्रतिमान मानकर पीछे के कमरे मे रखे गये कार्डों मे से प्रतिमान तुल्य हरे रग के कार्ड के साथ तुलना तथा समान, कम भूरा, गाढा के रूप मे प्रतिक्रिया देता था। अनेक प्रतिमानो के साथ यह कार्य किया गया तथा सततोद्दीपक विधि[1] से वैयक्तिक समानता बिन्दु[2] ज्ञात किया गया। निष्कर्ष यह प्राप्त हुआ कि निरीक्षको ने लगभग भूरे को ही 'समान' घोषित किया था। प्रकाश की मात्रा मे पर्याप्त अन्तर होने पर भी समान रग के कार्डों को समान कहा गया।

सामान्यत यदि निरीक्षक वस्तु के धरातल पर पडते प्रकाश के प्रत्यक्ष मे असफल रहता है तो चमक स्थैर्य लुप्त हो जाता है। चमक स्थैर्य का परिवेशीय वस्तुओ की प्रकाश परावर्तन शक्ति के साथ भी घनिष्ट सम्बन्ध है। गेल्ब (1926) ने यह निष्कर्ष प्राप्त किया था कि यदि कोई प्रकाश का चमकीला धब्बा घुमावदार काले रग-चक्र पर इस प्रकार प्रक्षिप्त किया जाय कि प्रकाश केवल रग-चक्र को ही आच्छादित करे तथा काले परिवेश से असम्बद्ध हो तो स्थैर्य शून्य होता है तथा रग-चक्र श्वेतिमा लिये हुए भूरे रग का प्रतीत होता है। किन्तु यदि एक श्वेत कागज चक्र के निकट रख दिया जाय और प्रक्षिप्त प्रकाश इस पर भी पडे तब रग स्थैर्य उपलब्ध हो जाता है और रग-चक्र गाढा भूरा या काले रग का प्रतीत होने लगता है। इसका तथ्य का स्टिवार्ट (1959) ने पुन अध्ययन किया। इन्होने अनेक प्रकार के श्वेत पत्रो को क्रमश एक बडे काले चक्र व चक्र केन्द्र मे विभिन्न दूरियो पर उपस्थित किया। छोटे श्वेत चक्रो के आकार मे वृद्धि के अनुरूप बडे चक्र के गाढेपन मे वृद्धि हुई। किन्तु इस प्रभाव मे बडे चक्र के केन्द्र से श्वेत चक्र की दूरी मे वृद्धि होने पर ह्रास प्राप्त हुआ। वालेख (1963) ने अपने प्रयोगो मे यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि प्रतिबाधित दशा मे धरातल और परिवेश की चमक का अनुपात ही धरातल की प्रतीति को निर्धारित करता है।

प्रत्यक्षित वस्तु की अवस्थिति तथा चमक स्थैर्य के मध्य के सम्बन्धो की खोज बेंक (1965) ने की है। इन्होने एक धरातल को ऊर्ध्वाधर रूप मे दो भागो मे विभक्त किया। ये विभाजन वक्रता की विभिन्न मात्रा के आधार पर किये गये थे। धरातल को इस प्रकार उपस्थित किया गया कि वह अशत छाया मे तथा अशत प्रकाश मे रहे। एक आँख से देखने की अवस्था मे धरातल 'पडा' प्रतीत हुआ तथा छाया वाला अश गाढा लगा अर्थात् श्वेतता कम थी। किन्तु दोनो आँखो का प्रयोग करने पर आधा धरातल वक्र दिखाई दिया तथा एक सतत धरातल के प्रत्यक्ष की प्रवृत्ति पायी गयी। बेंक ने यह निष्कर्ष निकाला कि चमक स्थैर्य की मात्रा क्षेत्र की सगठना के सरूप पर निर्भर करती है जो उत्तेजक सरूप से आवद्ध करने वाले सकेतो को धरातल की अवस्थिति तथा प्रकाश की दिशा से सम्बद्ध करते हैं।

---

1 Method of constant stimuli 2 Point of subjective equality

चमक स्थैर्य की मात्रा आकार तथा रूप स्थैर्य की अपेक्षा कम होती है। ब्रन्स्विक (1956) ने 45 स्थैर्यांक प्राप्त किया था। शीहान (1938) ने 6 स्थैर्यांक प्राप्त किया था। यह मात्रा प्रायोगिक दशाओ पर निर्भर करती है। परन्तु यह मात्रा कभी भी पूर्ण नही होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि चमक स्थैर्य की परिशुद्ध की मात्रा की स्मृति दुर्बल होती है। फलत चमक स्थैर्य अधिक नही होता है।

स्थैर्य विषयक अध्ययनो के आधार पर आसगुड (1960) ने कुछ महत्वपूर्ण सामान्यीकरणो[1] की चर्चा की है। प्रायोगिक एव सैद्धान्तिक आपादन की दृष्टि से उपयोगी होने के कारण इन सामान्यीकरणो की सक्षिप्त चर्चा की जा रही है।

(1) प्रत्यक्षीकरण, सवेदी सूचना तथा वस्तु-सन्दर्भ के मध्य सतुलन की ओर उन्मुख समझौता होता है। स्थैर्य की समस्या पर किये गये प्रायोगिक अध्ययनो मे न तो पूर्ण उत्तेजक साम्य मिलता है और न पूर्ण स्थैर्य ही प्राप्त होता है। इन दोनो सीमाओ के मध्य निरीक्षक सन्तुलन करने का यत्न करता है।

(2) स्थैर्य की मात्रा प्रतिमान तथा तुलनीय उत्तेजको के मध्य अन्तर मे वृद्धि के अनुपात मे बढती है। हृसिया (1943) ने इस सामान्यीकरण के विषय मे उपलब्ध प्रायोगिक साक्ष्यो की विवेचना की हे तथा दो क्षेत्रो के मध्य प्रकाश की तीव्रता के अन्तर मे वृद्धि के अनुपात मे स्थैर्य की मात्रा मे वृद्धि का प्रमाण प्राप्त किया है। ब्रन्स्विक (1940) को भी इसी प्रकार के निष्कर्ष प्राप्त हुए थे।

(3) प्रतिमान तथा तुलनीय उत्तेजको के साम्य से तादात्म्य स्थापित करने वाले सकेतो मे वृद्धि होने पर अधिक स्थैर्य होता है। बर्जलाफ (1931) के प्रयोगो मे यह साक्ष्य प्राप्त हुआ कि प्रकृत[2] अवस्था मे प्रयोगशाला की कृत्रिम अवस्था की अपेक्षा अधिक स्थैर्य प्राप्त होता है।

(4) कार्य के प्रति वस्तुनिष्ठ अभिवृत्ति होने पर स्थैर्य प्रभाव मे वृद्धि होती है। समान निर्देशो तथा समान प्रायोगिक अवस्थाओ के होने पर भी सभी निरीक्षको के निर्णय मे एकरूपता नही मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह अन्तर निरीक्षको की व्यक्तिगत अभिवृत्ति के स्वरूप पर निर्भर करती है।

काल प्रत्यक्षीकरण

काल एक अमूर्त किन्तु अपरिहार्य सहृति है। जिस कालान्तराल[3] से व्यक्ति, अवगत होता है उसे, भौतिक काल से अलग करने की दृष्टि से, 'काल विस्तार'[4] कहा जाता है। प्रचलित अवधारणा के अनुसार काल विस्तार की मात्रा अनुभव की उस भौतिक अवधि पर निर्भर करती है जिसके साथ यह गुण सम्बद्ध होता है। टिचनर ने काल विस्तार को सवेदना का एक प्रमुख गुण माना है। काल की अनुभूति के विषय मे अधिकाश चिन्तको का यह मत रहा है कि मात्र परिवर्तनशील उत्तेजको से उद्भूत परिवर्तनशील घटनाओ की अनुभूति से ही काल की प्रतीति होती है। यह

1 Generalization 2 Natural 3 Interval 4 Protensity

अवधारणा इस विचार पर आधृत है कि परिवर्तन रुकने पर काल भी रुक जायगा। इसका तात्पय यह हुआ कि एक कालावधि मे पूर्णत स्थिर उत्तेजक कालहीन होगा। किन्तु यह तर्क एक रूप सवेदना के अनुभव की अवधि को प्रत्यक्षत या तत्काल अनुभव करने के सिद्धान्त के अनुरूप नही है। ऐसा प्रतीत होता है कि काल विषयक निर्णय किसी न किसी सकेत देने वाले प्रक्रम की सहायता से लिए जाते है। यह सकेत कोई भी ऐसा प्रक्रम हो सकता है जो काल व्यतीत होने के साथ-साथ परिवर्तित होता है।

काल के अनेक सकेत सुझाये गये है। लिप्स (1883) ने प्रतिमा-सकेत के आधार पर काल-चेतना की व्याख्या करने का यत्न किया है। जेम्स (1908) ने उक्त सिद्धान्त को परिमार्जित किया तथा मस्तिष्क-चिन्हो[1] को काल-सकेत के रूप मे स्वीकार किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार जितना ही मद्धिम या धूमिल चिन्ह होगा उतना ही अधिक काल उस चिन्ह को उत्पन्न करने वाले अनुभव के पश्चात् व्यतीत हुआ होगा।

काल के प्रस्तावित सकेतो का दूसरा समूह अवधान की प्रक्रिया के साथ सम्बद्ध है। कुछ मनोवैज्ञानिको ने अवधानजन्य तनाव[2] को काल निर्णय का प्रमुख सकेत स्वीकार किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी मध्यान्तर की अवधि के अनुमान के लिए ध्यान की क्रिया आवश्यक है तथा यह क्रिया तनाव उत्पन्न करती है। यह केन्द्रीय प्रक्रम के रूप मे भी हो सकता है या घटना के प्रति ध्यान की दिशा के साथ विद्यमान पेशीय तनावो के माध्यम से भी हो सकता है। यह तनाव की सवेदना ध्यान की अवधि मे वृद्धि के साथ बढती है।

क्लीन (1919) ने काल के निर्णय के प्रक्रम को दो भागो मे विभक्त किया है। प्रथम प्रकार 'एस टाइप' है। इसका आशय तात्कालिक स्मृति-प्रतिमा के धूमिल होने की मात्रा अवधि के सकेत के रूप मे स्वीकार करता है। दूसरा प्रकार 'पी टाइप है। इसका तात्पर्य क्रियात्मक अनुभूतिपरक सकेत के प्रयोग से है, जो तीव्रता के लिए अवधान या इच्छा की क्रिया पर निर्भर करता है। यह 'पी' यत्नन्यास क्रिया की अनुभूति' को उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त लम्बे कालान्तराल के प्रत्यक्ष मे प्रयुक्त होता है।

तनाव की सवेदना या अनुभूति के अतिरिक्त अनेक अन्य सकेतो का भी नि सन्देह प्रयोग किया जाता है। इनका प्रयोग प्राय उन कालान्तरालो के लिए किया जाता है जो एकता की उच्चसीमा के ऊपर विद्यमान होते है। मुस्टरवर्ग (1889) ने श्वांसीय[3] सवेदना की महत्ता की ओर सकेत किया है। मिनटो के अन्तराल का साधारण व्यक्ति अपने मन मे एक-दो-तीन आदि अको को गिनकर अनुमान लगाता है। अधिक लम्बे अन्तरालो का साधारण शारीरिक अवस्थाओ से

---

1 Brain traces 2 Strain 3 Respiratory

या उस घटना मे लगने वाले काल की अवधि की जानकारी की सहायता से अनुमान किया जाता है।

काल कोई मूर्त पदार्थ नही है। इसलिए काल मे अवस्थित उत्तेजक और उसके सरूपो के प्रति प्रत्यक्षीकरण, निर्णय, तुलना तथा अनुमान आदि के द्वारा अनुक्रिया की जाती है। पुस्तक की सीमाओ को ध्यान मे रखकर प्रस्तुत अध्याय मे काल प्रत्यक्ष के सैद्धान्तिक पक्ष की व्याख्या न कर काल प्रत्यक्षीकरण के प्रायोगिक अध्ययन की समस्याओ, अध्ययन विधियो तथा विभिन्न परिवर्त्यों के प्रभावों से सम्बन्धित प्रायोगिक उपलब्धियो को उपस्थित करने का प्रयास किया गया है।

काल-प्रत्यक्षीकरण की समस्यायें

कालिक उत्तेजको की अनुभूति सदा एक प्रकार की नही होती है। अत्यन्त स्वल्प काल की हमे अनुभूति ही नही होती है। किन्तु इसकी मात्रा मे वृद्धि होने पर अस्थायी या क्षणिक काल की अनुभूति होती है। यह मात्रा और बढाने पर स्थायित्व का भी अनुभव होता है और क्रमश हम दो उत्तेजको के मध्य क्रमिकता का भी अनुभव करने लगते हैं। काल प्रत्यक्ष की ये समस्यायें मनोभौतिकी की विधियो की सहायता से सुलझायी जा सकती हैं। इन समस्याओ का तात्पर्य उन दशाओ की खोज तथा व्याख्या करना है जिसके अन्तर्गत 'काल' एक प्रत्यक्षित सत्य के रूप मे अनुभूत होता है। काल प्रत्यक्ष की तीन प्रमुख समस्याये हैं —

(1) क्षणिकता की देहली—सक्षिप्त अवधि के काल विषयक उत्तेजक, स्थायित्व के अभाव मे भी प्रत्यक्षित हो सकते है। सिद्धान्तत कालिक उत्तेजक मे स्थायित्व-बोध की देहली के नीचे स्थित सभी उत्तेजक एक समान होते हैं। किन्तु वास्तविकता यह है कि क्षणिकता के अनुभव तथा समकालीनता के अनुभव के मध्य जब भौतिक अवधि कम होती है तब समानान्तर सवेदना की आभासी तीव्रता भी कम हो जाती है। क्षणिकता की अनुभूति या काल की प्रथम सवेदना जिस बिन्दु पर होती है उसे काल बिन्दु[1] भी कहते हैं। एक मिली कैंडिल प्रति वग से० मी० की शक्ति के प्रकाश उत्तेजक के लिए 124 सेकण्ड तथा 100 मिली कैंडिल प्रति वर्ग से० मी० की शक्ति के प्रकाश उत्तेजक के लिए 113 सेकण्ड की अवधि प्रत्यक्ष के लिए आवश्यक है। (डुरप तथा फेसर्ड (1940)। 500 साइकिल प्रति सेकण्ड के ध्वनि उत्तेजक के लिए 01 सेण्कड से लेकर 05 सेकण्ड के मध्य देहली प्राप्त की गयी है। क्षणिकता के प्रत्यक्ष की सीमा उद्दीपन की सम्पूर्ण प्रक्रिया की अवधि पर निभर करती है। काल विन्दु के लिए अधिकतम मूल्य उत्तेजक की अवधि के रूप मे व्यक्त किया जाता है। काल विन्दु की मात्रा सम्बन्धित सवेदकाग द्वारा सूचना ग्रहण तथा त्वक्षीय उत्तेजना मे अपेक्षित काल पर निर्भर करता है। कुछ मनोवैज्ञानिको ने काल विन्दु को मनोवैज्ञानिक काल की इकाई भी माना है।

---

1 Point of time

(2) समकालीनता की देहली[1]--जब कोई उत्तेजक पर्याप्त अधिक काल तक विद्यमान रहता है तब वह क्षणिक नहीं रह जाता है तथा जब नक्षिप्त उत्तेजक क्रम म उपस्थित होते है तो क्रमिकता की अनुभूति होती है। इन दोनो सीमाओ के बीच का अन्तराल ही मध्यान्तराल है। जब कोई मध्यान्तराल नही होता है तब समकालीनता का अनुभव होता है। सामान्य दृष्टिकोण के अनुसार जब दो घटनाये एक ही क्षण मे घटे तो वे समकालीन होती है। किन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से समकालीन का तात्पर्य उस अवस्था से है जिसके अन्तर्गत घटनाये, मनोवैज्ञानिक वर्तमान[2] मे उपस्थित होती है और जिन्हे काल मे क्रमबद्ध नही किया जा सकता। यहां पर यह भी स्मरणीय है कि जिस क्रम मे भौतिक उत्तेजक उपस्थित होते है ठीक उसी क्रम मे हमारा अनुभव नहीं होता है। उदाहरणार्थ, बादलो का गर्जन, विद्युत के प्रत्यक्ष के बाद प्रत्यक्षित होता है। इसके विपरीत निकट तथा दूर स्थित दो प्रकाशो को भौतिक दृष्टि से क्रम मे उपस्थित करने पर भी समकालीनता का बोध होता है। हमारी मूल समस्या आभासी समकालीनता तथा भौतिक प्रभेद के मध्य विद्यमान जटिल सम्बन्ध को स्थापित करना है। उक्त उदाहरणो से यह तो स्पष्ट ही हो गया है कि भौतिक समकालीनता सदैव समकालिक अनुभव ही नही उत्पन्न करती है और न ही मनोवैज्ञानिक समकालीनता भौतिक समकालीनता का ही पालन करती है। यह वैषम्य अनेक उत्तेजक तथा जैविक परिवर्त्यो पर निर्भर करता है। यहा पर कुछ प्रमुख परिवर्त्यो की चर्चा की जा रही है। ध्वनि और प्रकाश के वेग मे अन्तर होता है। फलत सवेदकाग के साथ इनका सम्पर्क भी भिन्न अवधि मे होता है। सवेदकागो द्वारा त्वक्षीय केन्द्रो को सूचना प्रेषित करने मे भी भिन्न-भिन्न समय लगता है। किन्तु इन सबमे महत्वपूर्ण कारक मनुष्य की जैविक सीमा है। एक साथ सम्पर्क मे आने वाले सभी उत्तेजको का भी एक साथ अनुभव नही सभव है। इसके अतिरिक्त अव्यक्त[3] काल प्रत्येक सवेदकाग का भिन्न-भिन्न होता है तथा उत्तेजक की तीव्रता के अनुसार घट-बढ सकता है। क्लेम्म (1925) ने इस तथ्य के पक्ष मे प्रायोगिक साक्ष्य भी प्राप्त किया था। मस्तक तथा जघा पर समकालिकता के अनुभव के लिए 20 मि० से० से लेकर 35 मि० से० तक का मध्यान्तर आवश्यक है। यह अन्तर जघा और मस्तक के स्नायु प्रवाहो को त्वक्ष तक पहुँचाने मे लगे काल के लगभग समान था। ऐसा प्रतीत होता है कि समकालीनता की अनुभूति भौतिक समकालीनता की अपेक्षा त्वक्षीय उद्दीपन की समकालीनता पर आधृत होती है। इसके अतिरिक्त हम दो घटनाओ के प्रति एक ही काल मे ध्यान नही दे सकते। फलत हमे किसी एक उत्तेजक के प्रति अनिवार्यत ध्यान देना पडता है। जिस उत्तेजक के प्रति हम ध्यान देते है वह दूसरे उत्तेजक का अनुगमन करता प्रतीत होता है। यह अवधारणा प्रायोगिक साक्ष्यो द्वारा भी पुष्ट है। शुद्ध समकालीनता के प्रत्यक्ष के लिए यह

---

1 Threshold of simultaneity 2 Psychological present 3 Latent

नितान्त आवश्यक है कि उत्तेजको को इस प्रकार सगठित किया जाय कि बिना ध्यान को विभक्त किये ही 'एक साथ' का अनुभव हो सके । उत्तेजक का स्वरूप तथा वैयक्तिक भिन्नताओ से समकालीनता की अनुभूति मे पर्याप्त अन्तर प्राप्त होता है। क्वेसवर्थ (1924) ने सतत प्रकाश के उत्तेजक के लिए उच्चतम सीमा 6 सेकण्ड प्राप्त की थी। सतत ध्वनि के लिए यह अवधि 5 सेकण्ड थी। अन्तर्निरीक्षणात्मक विवरणो से यह पता चलता है कि इस सीमा के ऊपर की ध्वनियाँ या प्रकाशीय उत्तेजक के विद्यमान होने का अनुभव नही होता। क्षणिक उत्तेजना के अनुभव के बाद ज्यो-ज्यो उत्तेजक काल की मात्रा बढती है, हमे समकालिकता की अनुभूति होती है । वुर्ट ने अनेक शोधकर्ताओ के अध्ययनो के आधार पर ध्वनि के लिए 002 से० से लेकर 016 से० तक स्पर्श उत्तेजक के लिए 027 से०, तथा प्रकाश के उत्तेजक के लिए 043 से० न्यूनतम देहली निर्धारित की है।

(3) **क्रमिकता की देहली**[1]—यदि दो उत्तेजक पर्याप्त अवधि के बाद उपस्थित किये जाते हैं तब उनसे भिन्नता की अनुभूति होती है। दो कालिक उत्तेजको के मध्य क्रमिकता विभेदन की शक्ति को कालिक तीक्ष्णता[2] भी कहा जाता है। पियरॉ (1923) ने क्रमिकता की तीन अवस्थाओ का उल्लेख किया है —

1 दो उत्तेजक एक रूप मे हो तथा एक ही स्थल पर सक्रिय हो।
2 दो उत्तेजक एक रूप हो किन्तु दो भिन्न स्थलो पर सक्रिय हो।
3 दो उत्तेजक भिन्न-भिन्न सवेदनाओ को उत्पन्न करते हो।

प्रथम अवस्था मे यदि उत्तेजक एक दूसरे को तत्काल अनुगमित करते हो तो वे सवेदना के सातत्य मे मिल जाते हैं और हम अधिक या कम मात्रा मे एक स्थायी काल सवेदना की अनुभूति करते हैं। यदि कालिक उत्तेजको के मध्य की अवधि थोडी लम्बी हो तो हमे सतत उत्तेजना का प्रत्यक्ष होता है किन्तु थोडी भिन्न तीव्रता होने पर सही क्रमिकता के स्थान पर एक परिवर्तन की अनुभूति होती है। वह अवधि, जब प्रयोज्य सातत्य के प्रत्यक्ष से तीव्रता मे परिवर्तन की अनुभूति करता है, ग्राहको के ऊपर निर्भर करती है। वास्तविक विच्छिन्नता की देहली स्पर्श तथा ध्वनि की सवेदना के लिए 10 मिली सेकण्ड तथा दृष्टि सवेदना के लिए 100 मिली सेकण्ड होती है।

जब उत्तेजक प्राणी के शरीर के विभिन्न बिन्दुओ पर क्रियाशील होता है तब समकालिकता तथा क्रमिकता के मध्य क्रमिक उद्दीपक की सगठना का अनुभव होता है जिनसे अनेक जटिल प्रकार के प्रत्यक्ष उत्पन्न होते है। उदाहरणार्थ, अक्षिपटल पर दो बिन्दुओ की त्वरित क्रमिक उत्तेजना से आभासी गति का प्रत्यक्ष होता है। हम अवयवो के द्वित्व का नही अपितु एक गतिशील उत्तेजक का प्रत्यक्ष करते हैं। वर्थाइमर के अनुसार 60 मिली सेकण्ड के अन्तर पर दो प्रकाश उत्तेजको को यदि

---

1 Threshold of succession 2 Temporal acuity

उपस्थित किया जाय तो गति का प्रत्यक्ष होगा। यह अन्तर यदि बढा दिया जाय तो क्रमश गति प्रत्यक्ष कम होने लगता है तथा 200 मि० से० के अन्तर पर गति अनुभव समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार की अनुभूति त्वचीय संवेदना तथा ध्वनि मे भी होती है। इसकी विशद् चर्चा गति प्रत्यक्ष के अन्तर्गत की गयी है।

जब संवेदनाये भिन्न-भिन्न संवेदकांगो द्वारा ग्रहण की जाती है तब उनकी क्रमिकता के प्रत्यक्ष की देहली अधिक होती है। इसका कारण यह है कि उनका शीघ्र संगठन नही हो पाता है। इस अवस्था मे विभिन्न लेखको ने 50 मि० से० से लेकर 100 मि० से० के मूल्य निर्धारित किये है। फेसी के अनुसार, स्पर्श तथा ध्वनि उत्तेजको के लिए समकालिकता की तथा क्रमिकता की देहली क्रमश 10 मि० से० तथा 20 मि० से० के मध्य तथा 10 मि० से० प्राप्त की गई है। किन्तु दृष्टि उत्तेजको के लिए यह देहली क्रमश 100 मि० से० से 120 मि० से० तथा 100 मि० से० है। जब भिन्न उत्तेजक प्रयुक्त होते हैं तब यह देहली 50 मि० से० से 100 मि० से० के मध्य प्राप्त होती है।

प्रत्यक्षित मध्यान्तर

मनोवैज्ञानिक वतमान की सीमाओ के मध्य ही काल का प्रत्यक्ष सम्भव है। किन्तु इस प्रत्यक्ष का स्वरूप प्रत्यक्षित परिवर्तन के भौतिक स्वरूप के आधार पर गुण तथा मात्रा मे वदलता रहता है। निम्न सीमा जहा (दो उत्तेजको के मध्य अन्तर का प्रथम अनुभव होता है) तथा अधिक उच्चतम सीमा (जहाँ एक उत्तेजक भूतकाल का अग बन जाता है तथा दूसरा उपस्थित होता है) के मध्य शुद्ध क्रमिकता तथा क्रमिक उत्तेजको के मध्य बढते हुए अन्तराल का अनुभव होता है। ज्यो-ज्यो यह अन्तराल बढता है, उत्तेजक की क्रमिकता गुणात्मक दृष्टि से विविध प्रकार के प्रत्यक्षो का अनुभव कराती है।

जब हमे क्रमिक तथा स्पष्टतया भिन्न उत्तेजक का अनुभव होता है तब भी हमे शून्य अन्तराल का अनुभव नही होता है। हम स्पष्टतया भिन्न किन्तु सतत संवेदना का अनुभव करते हैं। जब यह अन्तराल थोडा और बढ जाता है तब उत्तेजको के संघठित युग्म की अनुभूति होती है। जब उत्तेजको के मध्य का अन्तर लगभग 6 सेकण्ड हो जाता है तो हमे एक अन्तराल का प्रत्यक्ष तो होता है किन्तु वह अपनी सीमाओ से स्वतन्त्र नही अनुभूत होता है। जब यह अन्तर 1 सेकण्ड से अधिक हो जाता है तब हमे स्वतन्त्र अन्तराल का अनुभव होता है। अन्तत जब यह अन्तर 1 8 सेकण्ड से 2 से० तक के मध्य पहुँचते हैं तब दोनो उत्तेजक एक वर्तमान काल के अंग के रूप मे अनुभूत नही हो पाते तथा हमे एक मध्यान्तर का अनुभव न होकर भूत तथा वर्तमान के मध्य एक दूरी का अनुभव होता है। वीरोरडट (1868) ने मेट्रोनाम की सहायता से यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि तीव्र का निर्णय 42 सेकण्ड के मध्यान्तर के लिए, तटस्थ का निर्णय 64 से० के मध्यान्तर के लिए तथा मद्धिम का निर्णय 1 07 से० के उत्तेजक के लिए प्रयोज्यो द्वारा प्रयुक्त किया गया। काट्ज

(1960) ने तीन प्रकार के अन्तराल प्राप्त किये। न्यून (25 से 55 से० तक), आरामदायक (60 से 65 से० तक) और लम्बा (65 से० से अधिक)। वेनुसी ने अधिक परिशुद्धता के साथ काल अन्तरालो का विभाजन किया है। इनके अनुसार अत्यन्त न्यून अतराल 09 से 23-25 से० तक, न्यून अन्तराल 23-25 से लेकर 58 63 से० तक, तटस्थ अन्तराल 58-63 से 1 08-1 17 से० तक, लम्बे अन्तराल 1 08-1 17 से 2 07 से० तक तथा अत्यन्त लम्बे अन्तराल इस अवधि के ऊपर होते हैं। इन विभाजनो के आधार पर तीन प्रकार के काल क्षेत्रो को विभक्त किया जा सकता है।

1 **न्यूनान्तराल**— 50 सेकण्ड से कम अवधिक मध्यान्तर जिनकी सीमायें मात्र प्रत्यक्षित होती हैं और मध्यान्तर का अनुभव नही होता है।

2 **तटस्थान्तराल**— 50 सेकण्ड से लेकर एक सेकण्ड तक की अवधि के मध्यान्तरो को तटस्थ अन्तराल कहते है। यह मध्यान्तर एक इकाई के रूप मे प्रत्यक्षित होता है तथा उत्तेजक सीमाये और मध्यान्तर दोनो ही प्रत्यक्षित होते हैं।

3 **दीर्घान्तराल**—1 सेकण्ड से अधिक अवधि के मध्यान्तर मे अन्तर या शून्यता की अनुभूति होती है तथा दोनो सीमाओ को एक इकाई के रूप मे प्रत्यक्षित करने के लिए यत्न आवश्यक होता है।

इन सभी अन्तरालो के प्रत्यक्षीकरण के भिन्न-भिन्न नियम हैं। होरिंग (1864) ने वहुत पहले यह निष्कर्ष प्राप्त किया था कि 3 सेकण्ड से लेकर 1 4 सेकण्ड के मध्य स्थित न्यूनावधि के मध्यान्तरो का अधिकानुमान होता है तथा अधिक अवधि के मध्यान्तर का न्यूनानुमान होता है। इसी तथ्य के आधार पर तटस्थान्तराल के प्रत्यय का विकास हुआ, जिसका व्यक्ति लगभग शुद्ध प्रत्यक्ष करता है।

तटस्थान्तराल विषयक आरम्भिक अध्ययनो में परस्पर विरोधी निष्कर्ष प्राप्त हुए। वुडरो (1934) के अनुसार यह क्षेत्र 3 तथा 5 सेकण्ड की अवधि के मध्य विद्यमान रहता है। किन्तु वस्तुत यह क्षेत्र लगभग 6 सेकण्ड तथा 8 सेकण्ड के मध्य स्थित है। वुण्ट (1886) ने 72 सेकण्ड को तटस्थान्तराल माना है तथा उनके शिष्यो ने 71 सेकण्ड तथा 75 सेकण्ड मध्य के मूल्य प्राप्त किये हैं।

वुडरो ने अनेक प्रयोज्यो पर प्रयोग किया तथा 59 सेकण्ड से लेकर 62 सेकण्ड के मध्य तटस्थान्तराल प्राप्त किया। तटस्थान्तराल अनेक परिवर्त्यों पर निर्भर करता है जिनमे प्रत्यक्षीकरण की अवस्थायें, दैहिक प्रक्रम एव माध्यमिक प्रवृत्ति[1] का विकास प्रमुख कारक है। मितव्ययिता नियम के अनुरूप हम सभी उत्तेजको का एक मध्यमान विन्दु के अनुकूल प्रत्यक्ष करते है तथा स्वल्प अन्तरो पर ध्यान

Central tendency

नही देते हैं और यदि अतर बहुत अधिक होता है तो अधिकानुमान करते है। सात्मीकरण के नियम का परिणाम यह होता है कि यदि हम अनेक उत्तेजको की एक शृखला का निर्णय करते है तो उनमे मध्यामानमूल्य के नीचे के उत्तेजको का अधिकानुमान करते हैं तथा मध्यमानमूल्य से अधिक मूल्य के उत्तेजको का न्यूनानुमान करते हैं।

फ्रेसी (1963) ने पुनरोत्पादन विधि के प्रयोग के द्वारा 2 सेकण्ड तथा 1 5 सेकण्ड के मध्य के कालिक उत्तेजको के लिए 1 14 सेकण्ड तटस्थान्तराल प्राप्त हुआ तथा 3 सेकण्ड एव 12 सेकण्ड के मध्य के उत्तेजको के लिए 3 65 सेकण्ड तटस्थान्तराल प्राप्त हुआ। ये मूल्य तटस्थान्तराल के परिमार्जन को अभिव्यक्त करते हैं। अन्य उत्तेजको की अवधि का अनुमान सदर्भ उत्तेजक के मूल्य द्वारा भी प्रभावित होता है। इसके अतिरिक्त उत्तेजको को उपस्थित करने का क्रम भी प्रभावकारी कारक है।

ऐसा प्रतीत होता है कि 6 सेकण्ड तथा 8 सेकण्ड के मध्य स्थित तटस्थ क्षेत्र प्रत्यक्षणीय अवधियो के सापेक्ष्य होता है। इस दशा मे विभिन्न अध्ययनो मे प्राप्त समान निष्कर्षों को 70 के निकट के क्षेत्र (जो माध्यमिक प्रवृत्ति के समानान्तर है तथा एक स्वतत्र अतराल के लिए 1 से 1 8 सेकण्ड के मध्य होता है) की सहायता से समझा जा सकता है। यह माध्यमिक प्रवृत्ति तटस्थान्तराल के परिमार्जन की व्याख्या उपस्थित करती है। 70 सेकण्ड का क्षेत्र विशिष्ट दैहिक प्रक्रम के समानान्तर होता है।

प्रत्यक्षित अवधि तथा भौतिक परिवर्तन

शून्यकाल[1] का प्रत्यक्ष

जब शान्त उत्तेजक मध्यान्तर मात्र दो ध्वनि या प्रकाश की सीमा से आवद्ध हो तो उन्हें शून्य मध्यान्तर[2] कहा जाता है। इसके विपरीत जब उत्तेजक मध्यान्तर अनेक उत्तेजको मे परिपूर्ण हो तो उसे आपूरित मध्यान्तर[3] कहते है। सिद्धान्तत शून्य काल की दो अवस्थायें हो सकती हैं

1 अस्पष्ट पृष्ठभूमि की अवधि जो दो सक्षिप्त उत्तेजको से बधी हो।

2 अवधि एक सुनिश्चित उत्तेजक के समापन के समान्तर हो, यथा किसी प्रकाश या ध्वनि उत्तेजक का व्यवधान।

प्रथम दशा का ही अधिक प्रायोगिक अध्ययन किया गया है। दूसरी दशा बहुत अस्पष्ट है तथा प्रात्यक्षिक दृष्टि से उत्तेजक का समापन एक अस्पष्ट पृष्ठभूमि की भाँति है जिससे आपूरितकाल या सातत्य का प्रत्यक्ष होता है। 75 सेकण्ड से कम अवधि के शून्य अन्तराल का अधिकानुमान तथा इससे अधिक अवधि के अन्तराल का न्यूनानुमान होता है। किन्तु शून्यकाल का प्रत्यक्ष स्वतत्र प्रक्रम न होकर अनेक

---

1 Empty tıme 2 Empty ınterval 3 Fılled ınterval

कारको पर निर्भर करता है क्योकि हम मात्र शुद्ध अवधि का ही नही अपितु उत्तेजको की सगठना की अवधि का प्रत्यक्ष करते हैं। यहाँ पर सक्षेप मे विभिन्न निर्धारित कारको तथा उनके प्रभाव की चर्चा की जा रही है।

उत्तेजक का स्वरूप

यदि उत्तजक समान भौतिक अवधि के है तब समानान्तर सावेदिक प्रक्रम जितना ही दीर्घ होगा, उत्तेजक मध्यान्तर भी उतना ही लम्बा प्रतीत होगा। उत्तेजक अतराल की त्वचीय एव श्रव्य सीमायें चाक्षुष सीमाओ की अपेक्षा लघु प्रतीत होती हैं। उत्तेजक की तीव्रता भी काल प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करती है। सक्षिप्त अवधि के अधिक तीव्र श्रव्य उत्तेजक लघु प्रतीत होते हैं। तीव्रता के आधिक्य के कारण उत्तेजक अधिक सघन लगते है और परिणाम यह होता है कि हमे उत्तेजक अतराल का न्यूनानुमान करते है। किन्तु अधिक दीर्घ अवधि के मध्यान्तरो के प्रत्यक्ष मे यह तथ्य नही प्राप्त होता क्योकि सावेदिक प्रक्रियाओ का अन्तर बहुत कम होता है। प्रथम उत्तेजक तीव्र हो तो उत्तेजक का न्यूनानुमान तथा द्वितीय उत्तेजक तीव्र हो तो अधिकानुमान होता है।

सीमा उत्तेजक का पिच यदि अधिक हो तो अधिकानुमान होता है। आवद्धक उत्तेजक की अवधि यदि बढा दी जाय तब भी उत्तेजक अधिक दीर्घ लगता है। यदि एक ध्वनि दीर्घ हो और दूसरी न्यून हो तो उनके मध्य के अन्तराल का अधिकानुमान होता है। किन्तु जब दीर्घ ध्वनि बाद मे आती है तो न्यूनानुमान होता है।

शून्यकाल की अवस्थिति

प्रत्यक्ष सन्दर्भ मे शून्य मध्यान्तर अनेक अवस्थितियो मे स्थित हो सकता है। बेनुसी ने शून्य अवधि के प्रत्यक्ष पर प्रत्याशी की अवधि के प्रभाव का अध्ययन किया। यदि सकेत के 45 से० बाद शून्यकाल उपस्थित किया जाय तो न्यूनानुमान होता है किन्तु जब यह 3 15 से० के बाद उपस्थित होता है तब अधिकानुमान होता है। यह प्रत्याशा-प्रभाव दीर्घावधि के मध्यान्तरो पर नही लागू होती। इसरायली (1930) ने कुछ भिन्न निष्कर्ष प्राप्त किये। इनके अनुसार 18 सेकण्ड से लेकर 54 सेकण्ड तक के सक्षिप्त प्रत्याशा काल के अनुगामी शून्यकाल का अधिकानुमान होता है। यह अधिकानुमान शून्य काल की अवधि मे ह्रास के साथ बढता है। दोनो निष्कर्षो के मध्य अतर का कारण प्रयुक्त विधि तथा प्रयोज्यो की अभिवृत्ति प्रतीत होती है।

अपूरितकाल का प्रत्यक्ष

छोटे मध्यान्तरो का अधिकानुमान तथा दीर्घ मध्यान्तरो का न्यूनानुमान का सामान्य नियम आपूरितकाल के प्रत्यक्ष मे भी लागू होता है। आपूरित तथा शून्य अवधि के बीच एक मध्यवर्ती दशा भी होती है जिसमे दो सीमाओ के मध्य की

कालावधि विच्छिन्न उत्तेजको से भरी होती है। इस प्रकार के मध्यान्तर को विभक्त कालान्तराल[1] कहते है। हमारा सामान्य अनुभव है कि विभक्त अन्तराल उसी के समान अवधि वाले शून्य अन्तराल की अपेक्षा दीर्घ प्रतीत होता है। प्रायोगिक साक्ष्य इस अभिनति की पुष्टि करते है। वोडेन (1907) के अनुसार विभक्त कालान्तराल के अधिकानुमान का अतिरिक्त प्रभाव उत्तेजक मध्यान्तर की अवधि मे वृद्धि के साथ-साथ क्रमश कम होता है। अधिक विभाजनो वाला मध्यान्तर कम विभाजनो वाले मध्यान्तर की अपेक्षा अधिक दीर्घ प्रत्यक्षित होता है।

उत्तेजक का स्वरूप

1 सेकण्ड से लेकर 16 सेकण्ड तक की अवधि के श्रव्य तथा दृष्टि उत्तेजक का शुद्ध पुनरोत्पादन प्राप्त किया गया है। हाक्म, बेली तथा वार्म (1960) ने तीन विधियो के प्रयोग की सहायता से श्रव्य, चाक्षुप तथा त्वचा की वैद्युत उत्तेजना (लगभग 5 तथा 4 सेकण्ड की अवधि) की परिशुद्धता के साथ अनुमान प्राप्त किया। अधिक तीव्र उत्तेजक कम तीव्रता की ध्वनि की अपेक्षा लम्बा प्रतीत होता है। मध्यान्तर की अवधि मे वृद्धि के साथ-साथ उक्त प्रभाव मे ह्रास होता है। ऊंचे तारत्व वाले उत्तेजक का भी अधिकानुमान होता है।

शून्य काल तथा आपूरित काल

प्राय अधिकाश लेखको का यह निश्चित मत है कि भौतिक दृष्टि मे समान अवधि का आपूरित मध्यान्तर शून्य मध्यान्तर की तुलना मे दीर्घ प्रतीत होता है। किन्तु वास्तविकता यह है कि आपूरित मध्यान्तर तभी दीर्घ प्रतीत होता है जब शून्य मध्यान्तर आपूरित मध्यान्तर का अनुगामी हो। ट्रिप्लेट (1931) ने पुनरोत्पादन विधि द्वारा 5 तथा 1 सेकण्ड के शून्य तथा आपूरित मध्यान्तरो के अनुमानो के मध्य कोई सार्थक अन्तर प्राप्त नही किया। इसी प्रकार डोहरिंग (1961) ने 5 तथा 8 सेकण्ड के आपूरित तथा शून्य मध्यान्तरो के पुनरोत्पादनो की परिशुद्धता तथा विश्वसनीयता मे किसी प्रकार का अन्तर प्राप्त नही किया।

कालानुमान[2]

प्राय अनुमान या मूल्याकन अशुद्ध होते है फिर भी हम दैनिक जीवन मे अपनी विविध क्रियाओ मे व्यतीत काल को आँकने का प्रयास करते है। काल का यह व्यक्तिगत अनुमान कुछ निश्चित आधारो पर किया जाता है। प्राय काल के अनुमान को निरपेक्ष निर्णय के रूप मे व्यक्त किया जाता है। किन्तु इन निरपेक्ष निर्णयो मे तुलना भी अन्तर्निहित होती है। जब हम किसी कार्य को अधिक लम्बा कहते हैं तब हम एक काल अन्तराल के विषय मे निर्णय लेते हैं। किन्तु यह निर्णय सदा किसी न किसी सन्दर्भ के परिप्रेक्ष्य मे लिया जाता है जो सभावित कालावधि

---

1 Divided interval 2 Time Estimation

के आरम्भ होने के समय की प्रत्याशा पर तथा पूर्वानुभवजन्य आदतो पर निर्भर करता है। प्रयोगशाला में काल के अनुमान के अध्ययन में अनेक विधियो का प्रयोग किया जाता है। यहा पर कुछ मुख्य विधियो का उल्लेख किया जा रहा है।

(1) वाचिक अनुमान विधि

घटा, मिनट तथा सेकण्ड आदि काल की प्रचलित इकाइयाँ है। काल की मात्रा को शिक्षित व्यक्ति इन्ही इकाइयो के माध्यम से व्यक्त करते है। घडियो के प्रयोग से व्यक्ति इन इकाइयो से परिचित हो जाता है। इस विधि के प्रयोग मे प्रयोगकर्ता एक निश्चित उत्तेजक को उपस्थित करता है तथा प्रयोज्य से उस उत्तेजक मध्यान्तर का काल की इकाइयो के माध्यम से अनुमान करने को कहता है। इस विधि की प्रमुख विशेषता यह है कि प्रयोगकर्ता प्रकाश, ध्वनि या किसी अन्य उत्तेजको से सीमाबद्ध काल के मध्यान्तर को स्वय उपस्थित करता है। प्रथम उत्तेजक, मध्यान्तर के आरम्भ को तथा द्वितीय उत्तेजक, मध्यान्तर की समाप्ति को व्यक्त करता है। इन दोनो सीमाओ के मध्य व्यतीत काल का प्रयोज्य अनुमान लगाकर घटा, मिनट या सेकण्ड के रूप मे व्यक्त करता है।

(2) उत्पादन विधि

इस विधि को सक्रियात्मक अनुमान विधि[1] भी कहा जाता है। प्रयोगकर्ता प्रयोज्य को एक निश्चित मध्यान्तर उत्पादित करने का निर्देश देता है। प्रयोज्य बटन दबाकर या अन्य किसी उपकरण की सहायता से प्रकाश या ध्वनि के उत्तेजक को प्रयोगकर्ता द्वारा निर्दिष्ट मध्यान्तर की अवधि तक उत्पादित करता है। वाचिक अनुमान विधि के विपरीत इस विधि मे प्रयोज्य कालानुमान की प्रक्रिया मे सक्रिय भाग लेता है। दूसरे शब्दो मे उत्तेजक वाचिक होता है किन्तु उसका अनुमान सक्रियात्मक होता है।

(3) पुनरोत्पादन[2] विधि

इस विधि मे प्रयोगकर्ता काल के एक निश्चित मध्यान्तर के लिए प्रकाश या ध्वनि के उत्तेजक को उपस्थित करता है तथा प्रयोज्य को यह निर्देश दिया जाता है कि वह प्रयोगकर्ता द्वारा प्रस्तुत मध्यान्तर के समान मध्यान्तर उत्पादित करे। स्पष्ट ही इस विधि मे प्रयोगकर्ता तथा प्रयोज्य अधिक सक्रिय होते है। प्रयोगकर्ता द्वारा उत्तेजक मध्यान्तर का उपस्थापन तथा प्रयोज्य द्वारा उसका अनुमान दोनो ही सक्रियात्मक ढग से सम्पन्न होते हैं। 4 सेकण्ड से कम अवधि के मध्यान्तरो के लिए पुनरोत्पादन अधिक परिशुद्ध होता है। 2 सेकण्ड से लेकर 2 0 सेकण्ड के मध्य के अन्तरालो का सर्वोत्कृष्ट पुनरोत्पादन होता है।

कालानुमान के आधार

काल के मध्यान्तर के अनुमान विषयक निर्णय अनेक प्रकार की सूचनाओ

---

1 Operative estimation method 2 Reproduction method

पर निर्भर करते हैं। ये सूचनायें मापन सम्बन्धी, मात्र सम्बन्धी तथा प्रत्यक्ष सम्बन्धी होती हैं। इनके विषय में हम क्रमश विचार करेंगे।

(क) **मापन सम्बन्धी सूचनाओं पर आधृत कालानुमान**—व्यक्ति द्वारा किये गये काल के विभिन्न मध्यान्तरों के अनुमान में पर्याप्त विचलन होता है। इस तथ्य से सभी लोग अवगत हैं तथा प्राय घड़ी के मापन के आदर्श उपाय के रूप में उपयोग करते हैं। किन्तु घड़ी जो सदैव एकरूप वेग से घूमती है तथा जितनी दूरी तय करती है उसकी गणना का वास्तविक अनुभव से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। जब हमारे पास घड़ी नहीं रहती है तब लम्बी अवधि के काल के अन्तराल का धूप, छाया जैसी प्राकृतिक घड़ियों की सहायता से अनुमान करते हैं। इसके अतिरिक्त शरीर में विभिन्न काल में विविध परिवर्तन होते रहते हैं। इन परिवर्तनों के आधार पर भी काल का अनुमान किया जा सकता है। घड़ी के सिद्धान्त का भी उपयोग कालानुमान में किया जा सकता है। घड़ी की एकरूप गति का वेग दिन रात के चक्र के साथ अभियोजित रहता है। इसके स्थान पर कोई अन्य गति भी प्रयुक्त की जा सकती है। यह पूर्ण संभव है कि मापन की इकाई घड़ी की गति पर निर्भर हो। उदाहरणार्थ, हम यह जानते हैं कि एक व्यक्ति 10 मील एक घंटे में चलता है। अत उस व्यक्ति ने कितनी दूरी तय की है यह जानकर हम काल का भी अनुमान कर सकते हैं। उसी प्रकार कितने पृष्ठ लिखे गये या टाइप हुए यह जानकर भी काल का अनुमान किया जा सकता है। यदि कालानुमान की इकाई अच्छी तरह परिभाषित न होकर अस्पष्ट हो तब हमारे निर्णयों की परिशुद्धता कम हो जाती है।

(ख) **मात्रात्मक निर्णय**—काल का ज्ञान मूलत काल की चेतना के द्वारा होता है। काल की चेतना व्यक्ति के काल निर्णय में सहायक होती है। जब हम काल के प्रति सचेत होते हैं तब कालान्तराल का अधिकानुमान करते हैं। उसके विपरीत जब हम कालान्तराल के प्रति सचेत नहीं हो पाते तब इसका न्यूनानुमान करते हैं। उदाहरणार्थ, जब हम किसी की प्रतीक्षा करते हैं तब काल के प्रति हमारी संवेदनशीलता अधिक होती है फलत थोड़ा भी समय अधिक लम्बा प्रतीत होता है किन्तु रोचक वार्तालाप में समय का भान ही नहीं होता क्योंकि हम काल के प्रति सचेत नहीं होते हैं। इस प्रकार के निर्णय कालानुमान को प्रभावित करते हैं।

(ग) **अन्तराल के प्रत्यक्ष-निर्णय**—काल का मध्यान्तर वस्तुत क्रमिक परिवर्तनों से निर्मित होता है। मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों से निर्मित प्रत्यक्षित सत्य होते हैं। किन्तु सभी परिवर्तनों की समान चेतना नहीं होती है। एक ही काल में अनेक उत्तेजक ग्राहकों के सम्पर्क में आते हैं किन्तु प्राणीमात्र कुछ चुने हुए उत्तेजकों का ही प्रत्यक्ष करता है। उत्तेजकों का चयन उत्तेजकों के गुणों तथा अभिवृत्ति पर निर्भर करता है। एक ही समय हमारे ग्राहकों पर सक्रिय अनेक उत्तेजकों के मध्य मात्र उन्हीं उत्तेजकों का प्रत्यक्ष होता है जो अत्यधिक तीव्र होते हैं या हमारी

तात्कालिक अभिवृत्ति के अनुकूल होते हैं। ये विभिन्न प्रकार की सूचनायें सदैव एक साथ उपस्थित नही रहती है तथा जब अनेक प्रकार की सूचनायें उपलब्ध रहती हैं तब हम कुछ सूचनाओ की उपेक्षा कर देते है। किस प्रकार की सूचना उपेक्षित होगी, यह निरीक्षक के व्यक्तित्व पर प्रमुख रूप से निर्भर करती है। कुछ लोग काल के वस्तुनिष्ठ सकेतो को अधिक महत्व देते है जबकि कुछ लोग काल की सचेतना पर ही निर्भर करते है। यहा यह भी स्मरणीय है कि ऊपर चर्चित विविध प्रकार की सूचनाये एक दूसरे से पूर्णतया भिन्न नही हैं तथा वे परस्पर प्रभावित भी होती है।

कालानुमान के निर्धारक

कालानुमान के विचलन को ध्यान मे रखकर इसे निर्धारित करने वाले कारको पर विचार करना उपयुक्त प्रतीत होता है। इन कारको को दो प्रमुख भागो मे विभक्त किया जा सकता है। प्रथम, उत्तेजक विषयक तथा द्वितीय, व्यक्तिपरक। यहाँ पर इन दोनो ही प्रकार के कारको की सक्षिप्त चर्चा की जा रही है।

उत्तेजक विषयक कारक

कालानुमान को निर्धारित करने वाले कारको मे उत्तेजक स्वरूप से सम्बद्ध कारक विशेष महत्वपूर्ण हैं। हेरिंग (1864) ने 30 सेकण्ड से लेकर 1 4 सेकण्ड के मध्य के कालान्तराल के अनुमान का पुनरोत्पादन विधि से अध्ययन किया तथा यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि लघु तथा दीर्घ अन्तरालो का क्रमश अधिकानुमान तथा न्यूनानुमान होता है। इसके अतिरिक्त तटस्थ मध्यान्तर का लगभग शुद्ध अनुमान होता है। कालान्तराल की अपूर्णता और पूर्णता भी एक महत्वपूर्ण कारक है। प्राय आपूरित अन्तराल का न्यूनानुमान तथा अपूर्ण अन्तराल का अधिकानुमान किया जाता है। दैनिक जीवन मे इस तथ्य के अनेक दृष्टान्त मिलते हैं। रोचक ग्रन्थ पढते समय या वार्तालाप करते समय हमे समय का ज्ञान ही नही होता है। किन्तु स्टेशन पर रेलगाडी की प्रतीक्षा करना एक कठिन समस्या होती है। मध्यान्तर आपूरित होने पर भी सदा न्यूनानुमान ही नही होता है। अपितु अनुमान का स्वरूप आपूरक उत्तेजक के स्वरूप पर भी निर्भर करता है। मधुर सगीत का अपेक्षाकृत अधिक न्यूनानुमान होता है। किन्तु कुछ अध्ययनो मे आपूरित और अपूर्ण अन्तराल के प्रत्यक्ष मे किसी प्रकार का अन्तर नही प्राप्त हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि मध्यान्तर का आपूरित या अपूर्ण होना कालानुमान को अन्य दशाओ की सापेक्ष्यता मे ही प्रभावित करता है।

कालिक उत्तेजक की तीव्रता का स्वतन्त्र परिवर्त्य के रूप मे अध्ययन किया गया है। कुगेडा (1931) ने अधिक तीव्र उत्तेजको से आवद्ध[1] मध्यान्तर का कम तीव्रता के उत्तेजक की तुलना मे अधिकानुमान प्राप्त किया। ट्रिपलेट (1931) ने

---

[1] Bounded interval

124 साइकिल प्रति सेकण्ड से लेकर 1024 सा० प्र० से० के मध्य की ध्वनि के उत्तेजकों को लेकर प्रयोग किया तथा यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि कम तीव्र उत्तेजकों की अपेक्षा अधिक तीव्र उत्तेजकों का अधिकानुमान होता है। जीमैन (1951) ने आपूरक प्रकाश के उत्तेजकों का अध्ययन किया तथा दुर्बल प्रकाश का अधिकानुमान प्राप्त किया। कोहन तथा उनके सहयोगियों (1954) ने यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि यदि मध्यान्तर की सीमा के रूप में अधिक तीव्र उत्तेजकों का प्रयोग किया जाय तब कालोत्तेजक का अधिकानुमान होता है। फ्रेसी (1963) ने भी इन निष्कर्षों की पुष्टि की है।

कालानुमान करते समय विद्यमान व्यवधान के कारण भी अधिकानुमान होता है। चटर्जी (1960) ने सतत कोलाहल की अवस्था में अधिकानुमान प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त यदि मध्यान्तर का आपूरक उत्तेजक सशक्त होता है तब न्यूनानुमान होता है। उत्तेजक अन्तराल की अभिव्यक्ति में प्रयुक्त संवेदकांग भी एक महत्वपूर्ण कारक है। बेहर तथा बेहन (1961) ने श्रव्य संकेतों द्वारा आवद्ध अन्तराल का दृष्टि संकेतों से आवद्ध अन्तराल की अपेक्षा 20% अधिकानुमान प्राप्त किया। गोल्डस्टोन तथा गोल्डफार्ब (1963) ने पूर्ण तथा अपूर्ण श्रव्य तथा दृष्टि उत्तेजकों द्वारा आवद्ध कालान्तराल के अनुमान में कोई अन्तर प्राप्त नहीं किया। म्यूमैन (1893) ने त्वचीय, श्रव्य तथा दृष्टि उत्तेजक का अन्तराल सीमा के रूप में प्रयोग किया तथा त्वचीय एवं श्रव्य उत्तेजक का न्यूनानुमान प्राप्त किया। इन परस्पर असंगत निष्कर्षों के आधार पर कोई अन्तिम निर्णय लेना अनुचित होगा। इस क्षेत्र में नवीन प्रायोगिक साक्ष्य अपेक्षित है।

व्यक्तिपरक कारक

आयु, यौनभेद, अभिप्रेरणा आदि कारक अन्य मानसिक प्रक्रमों की ही भाँति कालानुमान को भी प्रभावित करते हैं। सामान्य विचारधारा के अनुसार कम आयु के प्रयोज्यों के काल निर्णय में अधिक अशुद्धि होती है। इसका प्रायोगिक प्रमाण भी प्राप्त होता है। बच्चों द्वारा लिए गये निर्णय वस्तुनिष्ठ न होकर आत्मकेन्द्रित होते हैं। 7 या 8 वर्ष की अवस्था होने पर बच्चों में काल का प्रत्यय विकसित होने लगता है और इस प्रकार अभिप्रेरणा हमारे व्यक्तिनिष्ठ मूल्यांकन को परिष्कृत करती है। अभिप्ररणा में कमी होने पर ध्यान विचलित होता रहता है। फलत काल की संवेदनशीलता में वृद्धि हो जाती है। अधिक सशक्त अभिप्रेरणा की अवस्था में काल शीघ्रता से व्यतीत होता हुआ प्रतीत होता है।

मापन विधियों का प्रभाव

उपर्लिखित अनेक प्रायोगिक अध्ययनों में परस्पर विरोधी निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं। इन निष्कर्षों की व्याख्या की समस्या उपस्थित होने पर मनोवैज्ञानिकों का ध्यान प्रयोग-विधि के अध्ययन की ओर आकृष्ट हुआ तथा प्रयोग विधि को ही स्वतंत्र परिवर्त्य के रूप में स्वीकार कर अध्ययन आरम्भ किये गये। गिलिलैंड तथा हम्फ्री

(1943) ने एक से लेकर 180 सकण्ड के मध्यान्तरों का वाचिक अनुमान, उत्पादन तथा पुनरोत्पादन विधि द्वारा किये गये अनुमान का अध्ययन किया। न्यूनतम निर्णयात्मक अशुद्धि पुनरोत्पादन विधि मे प्राप्त हुई तथा अधिकतम विचलन उत्पादन विधि मे प्राप्त हुए। क्लासन (1950) ने 5, 10 तथा 15 सेकण्ड के आपूरित तथा शून्य अन्तरालो के प्रत्यक्षीकरण का 43 मनोविकार ग्रस्त रोगियो द्वारा प्रत्यक्षीकरण करने पर प्रयोग किया। वाचिक अनुमान मे अधिकानुमान प्राप्त हुआ किन्तु अन्य विधियो मे 5 सकण्ड का अधिकानुमान प्राप्त हुआ। कोहलमैन (1950) ने 3 मिनट के अन्तराल का वाचिक तथा पुनरोत्पादन विधि से अध्ययन किया। वाचिक विधि मे 12% से लेकर 28% तक तथा पुनरोत्पादन विधि मे 30% से लेकर 78% तक अशुद्धि प्राप्त हुई। पुनरोत्पादन विधि तथा उत्पादन विधि द्वारा विश्वसनीय निष्कष प्राप्त किये गये। राय (1968) ने वाचिक अनुमान विधि के प्रयोग मे अधिकानुमान तथा उत्पादन विधि के प्रयोग मे न्यूनानुमान प्राप्त किया। पुनरोत्पादन विधि मे उत्पादन विधि से कम न्यूनानुमान प्राप्त हुआ। इस अध्ययन मे 15 से०, 30 से०, 60 से०, तथा 120 से० के अन्तरालो का प्रयोग किया गया।

विभिन्न विधियो की परिशुद्धता तथा विश्वसनीयता मे अन्तर के कारणो पर विचार करने से यह ज्ञात होता है कि उत्पादन विधि मे प्रयोज्य को भाषिक माध्यम से काल अन्तराल को निर्देशित करना पडता है। इसमे भूतकाल मे अनुभव किये गये काल के चिन्हो को प्रत्यावाहित करना पडता है। कालान्तराल प्रायोगिक प्रमाण भी प्राप्त होता है। बच्चो द्वारा लिए गये निर्णय वस्तुनिष्ठ न होकर आत्म-केन्द्रित होते है। सात या आठ वर्ष की अवस्था होने पर बच्चो मे काल का प्रत्यय विकसित होने लगता है और वे कालान्तराल के गुणात्मक पक्षो के प्रति वयस्को की अपेक्षा अधिक सवेदनशील हो जाता है। आयु मे वृद्धि के साथ-साथ काल निर्णय की परि-शुद्धता मे भी वृद्धि होती है। फ्रीडमैन (1945) ने कालानुमान तथा प्रयोज्यो की आयु के मध्य सहसम्बन्ध प्राप्त किया। ब्रैडले (1949) ने काल की सवेदना तथा आयु के मध्य धनात्मक सहसम्बन्ध प्राप्त किया। किन्तु वृद्धावस्था मे काल का न्यूनानुमान प्राप्त किया। यह विशेष स्मरणीय है कि यह निर्णय मात्र दिन, मास और वर्ष की इकाइयो मे ही लागू होते है। घटा, मिनट की इकाई के प्रयोग करने पर ये निष्कर्ष नही प्राप्त होते हैं। युवावस्था मे अधिकानुमान कम होता है और वह वास्तविकता के अधिक निकट होता है। प्रौढ होने के बाद क्रमश न्यूनानुमान मे वृद्धि की प्रवृत्ति पाई जाती है।

यौनभेद के विषय मे मैकडूगल (1904) ने यह विचार व्यक्त किया है कि स्त्रियाँ पुरुषो की अपेक्षा अधिक अधिकानुमान करती हैं। बाद के प्रयोगो से इस निष्कर्ष की पुष्टि भी हुई है। इसके विपरीत हार्टन (1939) ने 4 मिनट के आपूरित

अन्तराल का मिया मे अधिक न्यूनानुमान प्राप्त किया। स्मिथ तथा गोल्ड स्टोन (1957) ने यानगत भेद का कोई प्रमाण नहीं प्राप्त किया।

सुबुद्धि तथा मन्द बुद्धि बालकों के काल प्रत्यक्ष का भी अध्ययन किया गया है तथा सुबुद्धि बच्चों द्वारा उत्तम काल-प्रत्यक्ष का प्रमाण प्राप्त हुआ है। मानसिक दृष्टि से रुग्ण बच्चों मे अभ्यास द्वारा काल के न्यूनानुमान मे ह्रास प्राप्त किया गया है। अनेक अध्ययनों मे अभ्यास द्वारा न्यूनानुमान के अन्तरा मे कमी तथा स्थैर्य मे वृद्धि प्राप्त की गयी है।

अनुमान क्रिया के विभिन्न स्थलों पर ध्यान को अभिकेन्द्रित करने से काल प्रत्यक्ष मे अन्तर प्राप्त होता है। अधिक काल तक ध्यान देने पर उत्तेजक लम्बा प्रतीत होता है। जब किसी कार्य को पूरा करने के लिए कठिन परिश्रम करना पड़ता है या खतरा रहता है, तब भी अधिकानुमान होता है। ठीक इसके विपरीत वे सभी कारक जो प्रत्यक्षित परिवर्तनों की संख्या कम करने मे सहायक होते है, प्रत्यक्षित अन्तराल का न्यूनानुमान कराते है। इस ह्रास मे मानव मस्तिष्क की संघटनात्मक क्रिया प्रमुख कार्य करती है। हम कार्य के प्रत्येक अंग पर ध्यान न देकर केवल कार्य के उद्देश्य पर ही ध्यान दे सकते है। यह उद्देश्य कार्य के स्वरूप तथा अभिवृत्ति दोनों पर निर्भर करता है। यह अभिवृत्ति अन्तर्निहित अभिप्रेरणा पर निर्भर करती है। हम उपलब्धि की प्रत्याशा मे कार्य करते है। इस विधि मे स्मृति-चिन्ह तत्कालपूर्व उत्तेजक से उत्पन्न काल की अनुभूति की तुलना मे कम स्पष्ट होगा। उत्पादन मे ध्वनि द्वारा या प्रकाश उत्पन्न करने से अवधानगत या पेशीय तनाव की अनुभूति होती है, जिससे स्वस्थ्य संवेदी प्रभाव स्नायुमंडल मे बनते है। ये अधिक स्पष्ट और स्थायी होते है। वाचिक विधि मे पूरा प्रक्रम विपरीत दिशा मे प्रवाहित होता है। इसके अन्तर्गत उत्तेजक प्रयोज्य के समक्ष वस्तुनिष्ठ विधि से उपस्थित किया जाता है। किन्तु भाषा के द्वारा अनुमान लगाने के कारण अस्पष्टता बनी रहती है और हम कालान्तराल का अधिकानुमान करते है। पुनरोत्पादन विधि मे अधिक परिशुद्ध एवं विश्वसनीय निर्णय की संभावना रहती है क्योंकि प्रयोज्य को अधिकतम वस्तुनिष्ठ संकेत प्राप्त होते है।

दूरी का प्रत्यक्षीकरण

दूरी का प्रत्यक्षीकरण तीसरे आयाम से सम्बद्ध है। प्रत्यक्षित वस्तु की अक्षिपटल पर निर्मित प्रतिमा द्विआयामीय होती है। इस प्रतिमा द्वारा वस्तु की दिशा का ज्ञान तो सम्भव है किन्तु वस्तु की दूरी के विषय मे कोई सूचना नहीं मिलती है। विभिन्न दिशाओ से आने वाली प्रकाश तरंगे अक्षिपटल के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों मे पहुँचती हैं किन्तु एक दिशा मे होने के कारण अक्षिपटल के एक ही क्षेत्र मे प्रक्षिप्त होती हैं। इस अवस्था मे इन प्रतिमाओ के आधार पर दूरी का ज्ञान सम्भव नहीं है। फलतः दिक् सम्बन्धी अभियोजन मे व्यक्ति कई सांवेदिक व्यवस्थाओं का उपयोग करता है।

यथा चाक्षुप सवेदना तथा श्रवण सवेदना द्वारा वस्तु की अवस्थिति के विपय मे महत्वपूर्ण सूचना मिलती है। वस्तु का शरीर के साथ सम्पर्क भी उस वस्तु की अवस्थिति के विपय मे सकेत देता है। पेशियो आदि से उद्‌भूत गति सवेदना दिक् मे शरीर की गति के विपय मे सूचना देती है। इन सवेदी व्यवस्थाओ के सहयोग से ही हमारा सफलदिक् अभिविन्यास सभव होता है। चाक्षुपदिक् प्रत्यक्ष दृष्टि की कुछ आधारभूत विशेपताओ के अभाव मे सभव नही है। सुस्थिर चाक्षुप जगत् के इन निर्धारको को जान लेना आवश्यक प्रतीत होता है। ये निर्धारक अधोलिखित हैं :—

(1) भौतिक वस्तु तथा उसकी अक्षिपटलीय प्रतिमा मे महत्वपूर्ण समानता होती है। भौतिक वस्तु के सुव्यवस्थित प्रतिनिधित्व के अभाव मे भी वस्तु की यह प्रतिमा वस्तु के मूलभूत भौतिक आयामो को सुरक्षित रखती है।

(2) आँख से वस्तु की दूरी मे परिवर्तन के अनुपात मे वस्तु की अक्षिपटलीय प्रतिमा भी परिवर्तित होती रहती है। दृष्टि-कोण के इस नियम के अनुसार जैसे-जैसे वस्तु की आँख से दूरी वढती है वैसे-वैसे उसकी प्रतिमा भी छोटी होती जाती है। किन्तु आकार स्थैर्य द्वारा यह नियम अशत प्रतिवन्धित हो जाता है। फिर भी प्रत्यक्षित आकार और दूरी के मध्य विद्यमान उक्त नियमवद्ध सम्वन्ध एक महत्वपूण तथ्य है।

(3) आँख मे दो वस्तुओ के मध्य अन्तर करने की क्षमता है। इसे चाक्षुप तीक्ष्णता कहते है। वस्तुओ के मध्य सम्वन्ध के प्रत्यक्ष के पूर्व वस्तु का प्रत्यक्ष आवश्यक है। इस दृष्टि से चाक्षुप तीक्ष्णता एक अनिवार्य प्रक्रम है।

दूरी-प्रत्यक्ष की समस्या

अक्षिपटल की प्रतिमा दिक् प्रत्यक्ष के लिए स्वय मे अपर्याप्त है तथा इसके माध्यम से प्रत्यक्षित वस्तु की दिशा का ज्ञान तो सभव है पर दूरी के लिए किसी प्रकार की सूचना नही मिलती। ऐसा प्रतीत होता है कि द्विआयामीय अक्षिपटलीय प्रतिमा कुछ अन्य सकेतो की सहायता से तीन आयामो के प्रत्यक्ष मे परिणत होती है। इन सकेतो का पर्याप्त अध्ययन हुआ है। किन्तु इनके विवेचन के पूर्व दूरी-प्रत्यक्ष विपयक सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि की सक्षिप्त चर्चा उचित प्रतीत होती है।

दाशनिक, मनोवैज्ञानिक एव चित्रकार प्राचीनकाल से ही तीसरे आयाम की व्याख्या के प्रति उत्सुक रहे है। जर्मनी के प्रमुख मनोविज्ञानवेत्ता हेरिंग ने स्थानीय चिन्हो के आधार पर दिक् प्रत्यक्ष की समस्या का समाधान प्रस्तुत किया। इस सिद्धान्त के अनुसार अक्षिपटल पर प्रत्यक्षित उत्तेजक द्वारा प्रक्षिप्त प्रत्येक विन्दु मे ऊँचाई, गहराई, लम्वाई आदि जन्मजात गुण विद्यमान रहते है। इन्ही के माध्यम से दिक् प्रत्यक्ष सभव होता है। स्पप्ट ही दूरी का प्रत्यक्ष जन्मजात है तथा अनुभव निरपेक्ष है। वाद मे काट्ज ने यह अवधारणा स्थापित की कि उत्तेजक की तीव्रता ..प से उत्पन्न स्थानीय चिन्ह सीखकर अर्जित किये जाते है। किन्तु इस सिद्धान्त

मे उत्तेजक तीव्रता को ग्रहण करने की मस्तिष्क मे अन्तर्निहित प्रवृत्ति के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। यह प्रक्रम दिक् से असम्बद्ध होकर भी दिक् को व्यवस्थित करने के लिए प्रत्यक्षित किया गया है। यह किस प्रकार सम्भव होता है? इसकी कोई व्याख्या नहीं हो सकी है।

हेल्महोल्ट्ज ने दिक् प्रत्यक्ष का अपेक्षाकृत अधिक विज्ञानसम्मत सिद्धान्त विकसित करने का प्रयत्न किया। इस सिद्धान्त के अनुसार दिक् संकेत सर्वप्रथम अनुभव द्वारा अर्जित किये जाते हैं। किन्तु एक बार सीख लेने के बाद दिक् प्रत्यक्ष की प्रक्रिया स्वचालित हो जाती है तथा इन संकेतों के आधार पर दिक् अवस्थिति के सम्बन्ध मे हम अवचेतन अनुमान लगाते हैं। किन्तु यह सिद्धान्त यह नहीं स्पष्ट कर पाता है कि अनुभव के द्वारा प्राणी किस प्रकार दिक् आयामो को विभेदित करने की शक्ति अर्जित करता है। कोफ्का (1935) तथा गिब्सन (1950) ने उक्त सिद्धान्तों की त्रुटियों की चर्चा की है। कोफ्का ने गेस्टाल्ट मत के अनुकूल यह तर्क उपस्थित किया है कि दिक् का उत्तेजक विच्छिन्न अवयवों से निर्मित न होकर अतः क्रियाशील शक्तियों के पूर्ण स्वरूप के रूप मे होता है। गिब्सन ने यह स्थापना की है कि दिक् परिवेश से उत्पन्न अक्षिपटलीय उत्तेजना विन्दु, विन्दु की स्वतन्त्र उत्तेजना का परिणाम न होकर धरातल पर की उत्तेजना के सम्बन्धी स्वरूप द्वारा निर्धारित होती है। गिब्सन ने प्राचीन संकेत सिद्धान्त के दो परिमार्जनों की ओर संकेत किया है।

प्रथम, यह कि दिक् के प्रत्येक विन्दु का अक्षिपटल पर प्रतिबिम्बित्व अनावश्यक प्रत्यय है। विन्दुओं के मध्य विद्यमान अतः सम्बन्ध तथा उनसे उद्भूत ऊर्जा स्वरूप ही दिक् प्रत्यक्ष के लिए अनिवार्य है। द्वितीय, प्रस्तावित परिमार्जन के अनुसार संकेतों के मध्य पारस्परिक अन्तःक्रिया होती है तथा भिन्न-भिन्न दशाओं मे भिन्न-भिन्न संकेत प्रबल होते हैं।

दूरी-प्रत्यक्षीकरण के संकेत

दूरी प्रत्यक्ष के आधारभूत संकेत दो प्रकार के होते है। कुछ संकेत एकाक्षीय होते है जो केवल एक आँख के उपयोग के समय ही प्रयुक्त होते है तथा कुछ संकेत दोनों आँखों के एक साथ उपयोग करते समय प्रयुक्त होते हैं। इन संकेतों का निर्धारण प्रयोगों की सहायता से सम्भव है। मानव प्रयोज्यों पर किये जाने वाले दूरी प्रत्यक्ष विषयक प्रयोगों मे प्रयोज्य से किसी वस्तु की दूरी का(फीट आदि इकाइयों मे) अनुमान करने को कहा जाता है। इसके अतिरिक्त दो वस्तुओं को एक ही दूरी पर स्थापित करने को भी कहा जा सकता है। इन प्रयोगों की प्रमुख समस्या उन भौतिक एवं जैविक परिवर्त्यों का निर्धारण करना होता है जो दूरी प्रत्यक्ष को प्रभावित करते हैं। दीर्घकालिक तथा अज्ञात अव्यक्त अधिगम द्वारा अर्जित होने के कारण प्रायः व्यक्ति इन संकेतों से अवगत नहीं रहते है।

एकाक्षीय[1] सकेत

एक आख के उपयोग की अवस्था मे दूरी प्रत्यक्ष के निम्नलिखित सकेत प्रयुक्त होते हैं—

आकार

दूरी का प्रत्यक्ष वस्तु की अक्षिपटीय प्रतिमा तथा उस वस्तु के साथ पूर्वानुभव प्रत्यक्षित दूरी का एक महत्वपूर्ण निर्धारक है। पूर्व परिचित वस्तुओं के प्रत्यक्षित आकार के आधार पर आँख तथा उस वस्तु के मध्य की दूरी का लगभग सही अनुमान सभव है। परिचित वस्तु यदि वास्तविक आकार की अपेक्षा छोटी दीखती है तो हम कह सकते ह कि वह अधिक दूरी पर स्थित है। अपने इस निर्णय मे निरीक्षक दृष्टि-कोण के नियम का उपयोग करता है। स्पष्ट ही वस्तु का प्रत्यक्षित आकार केवल परिचित वस्तु की ही दशा मे दूरी के सही सकेत का कार्य कर सकता हे। अपरिचित निरीक्षक के लिए यह सकेत उपयोगी नही है। रेल की पटरियाँ अधिक दूरी पर एक दूसरे से मिली हुई प्रत्यक्षित होती है। रेखाकृतिक परिप्रेक्ष्य के तथ्य से अपरिचित व्यक्ति के लिए मिली हुई पटरियाँ ही यथार्थ हैं जबकि वास्तविकता यह है कि रेल की पटरियाँ समानान्तर होती है। मात्र दूरी मे वृद्धि के अनुपात मे उनकी प्रतिमा छोटी होती जाती है और उनके मध्य का प्रत्यक्षित अतर कम हो जाता है।

पदार्थो का आच्छादन

आच्छादित वस्तु, आच्छादक वस्तु की अपेक्षा दूर प्रतीत होती है। यह सकेत उसी अवस्था मे लागू होता है जब आच्छादक वस्तु की सीमारेखा की दिशा आच्छा-

चित्र सख्या 5 6 आकृति का आच्छादन-दूरी का एक सकेत
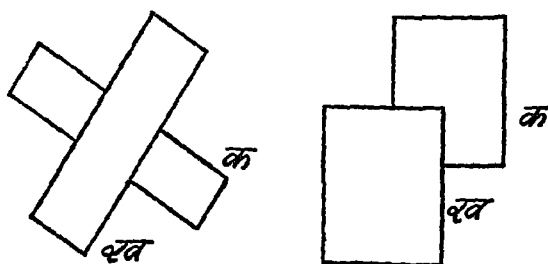
दित वस्तु की सीमारेखा के साथ मिलन विन्दु पर अपरिवर्तित रहे। निकट वस्तु द्वारा दूर स्थित वस्तुओ को छिपाने की उपकल्पना हेल्महोल्ट्ज ने उपस्थित की थी। बाद मे हैटुश (1949) ने इसे परिष्कृत किया और यह कहा कि दो वस्तुओ के मध्य सम्मिलन बिन्दु आच्छादन के सकेत का एकमात्र आधार है अर्थात् वह सीमा-

---

[1] Monocular

रेखा जो पूर्ण क्रमबद्ध तथा एक दिशा में सतत हो—निकट प्रतीत होती है। इसके विपरीत ऐसी सीमारेखा जो किसी दिशा में घूमी हुई हो तो अधिक दूर प्रतीत होती है, जैसा कि चित्र संख्या 5 6 से स्पष्ट है।

क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य

अधिक दूरी पर स्थित पदार्थों का रंग नीला या बैंगनी या गाढ़ा प्रतीत होता है। शिखर पर स्थित हरी वनस्पति क्षितिज के निकट अधिक नीली दीखती है। रंग के निरीक्षण में परिवर्तन का यह संकेत वातावरण की धुन्ध और प्रकाश की मात्रा पर निर्भर करता है। अधिक दूरी होने पर क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य के संकेत का प्रयोग होता है। दूर स्थित पर्वत शिखर नीला प्रतीत होता है और दूर स्थित मकान का रंग भूरा प्रतीत होता है। वायु में विद्यमान जल तथा धूल के कण ये प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

छाया तथा प्रकाश

भिन्न-भिन्न दूरियों पर स्थित विविध आयामों वाली वस्तुओं की छाया के विभिन्न स्वरूप होते हैं। चित्रकार इस संकेत का अधिक प्रयोग करते हैं। प्रकाश स्रोत स्पष्ट होने पर एक वस्तु की दूसरे वस्तु की छाया पर निर्मित छाया के निरीक्षण से यह ज्ञात हो जाता है कि कौन-सी वस्तु दूर है और कौन-सी वस्तु निकट है।

प्रत्यक्षित वस्तु विषयक सूचना की स्पष्टता

प्रत्यक्षित वस्तु के विषय में उपलब्ध सूचना चाक्षुष तीक्ष्णता[1] पर निर्भर करती है। दूर पर स्थित वस्तु को देखने में वस्तु की बहुत सी ऐसी विशेषतायें प्रत्यक्षित नहीं होती हैं जो निकट से देखने पर प्रत्यक्षित होती हैं। दूसरे शब्दों में, वस्तु की बहुत-सी विशेषताओं की अस्पष्टता अधिक दूरी की ओर इंगित करती है।

गति वैषम्य

सापेक्ष्य गति का प्रत्यक्ष दूरी के निर्णय में सहायक होता है। निरीक्षक की अवस्थिति में परिवर्तन से उत्पन्न वस्तु की दिशा में परिवर्तन को गति-वैषम्य कहते हैं। द्विअक्षीय वैषम्य दोनों आंखों की स्थिति के मध्य विद्यमान अन्तर के कारण होता है। किन्तु सिर की अवस्थिति का 6 इंच दायें या बायें घुमाने पर अधिक वैषम्य उत्पन्न होता है। इस प्रकार के परिवर्तन से वस्तु के प्रत्यक्षित रूप में महत्त्व-पूर्ण परिवर्तन उत्पन्न हो जाते हैं। दांयी ओर घूमने पर सम्मुख स्थित समस्त वस्तुये बायीं ओर घूमती प्रतीत होती हैं। किन्तु दूर स्थित वस्तुओं का कोणिक विस्थापन[2] निकटस्थ वस्तुओं की तुलना में बहुत कम होता है। कोणिक विस्थापन का आधार यह है कि शरीर या सिर की अवस्था में परिवर्तन के समय निरीक्षक की आँखें निष्क्रिय नहीं रहती हैं, अपितु आंखों को निश्चित रूप से किसी न किसी स्थल पर दृष्टि

---

1 Visual acuity 2 Angular displacement

को केन्द्रित करना पडता है। यदि मध्यम श्रेणी की दूरी पर स्थित वस्तु पर दृष्टि केन्द्रित हो तब उस वस्तु की प्रतिमा 'फोविया' पर निर्मित होगी और यदि दाँयी ओर सिर घुमाया जाय तो अन्य सभी निकटवर्ती वस्तुओ की प्रतिमा भी उसी दिशा मे गतिशील हो जायेगी तथा सभी दूरस्थ वस्तुओ की प्रतिमा विपरीत दिशा मे गतिशील होती है। दूरस्थ वस्तुयें पीछे की ओर घूमती है। वस्तु जितनी निकट स्थित होती है उतनी ही तीव्र 'सापेक्ष्य पृष्ठगामी गति[1]' होती है तथा जितनी दूर होती है उतनी ही तीव्र अग्रगामी गति होती है। जब एक आंख का ही प्रयोग करते हैं और दूर की वस्तु पर दृष्टि केन्द्रित रखते है तो निकटस्थ प्रयोग करते हैं और वस्तु सिर के घूमने की दिशा के विपरीत घूमती प्रतीत होती है। इसे एकाक्षीय गति वैपम्य कहते है।

समजन[2]

समजन वह प्रक्रम है जिसकी सहायता से विभिन्न दूरियो पर स्पष्ट दृष्टि सभव होती है। समजन मे परिवर्तन तथा प्रत्यक्षित दूरी के मध्य अनेक सहसम्बन्ध प्राप्त हुए है। वस्तुत समजन की दृष्टि प्रक्रम मे वही भूमिका है जो कैमरे के अभि-केन्द्रण[3] की है। वस्तु के स्पष्ट चित्र खीचने के लिए कैमरे को विभिन्न दूरियो पर अभिकेन्द्रित करना पडता है। यह अभिकेन्द्रण कैमरे के दर्पण को आगे-पीछे खिसका-कर किया जाता है। किन्तु आंखो का अभिकेन्द्रण दर्पण की शक्ति और अवतलता को परिवर्तित करके किया जाता है। यह क्रिया सिलियरी पेशी[4] द्वारा सम्पन्न होती है। जब वस्तु 8 फीट या उससे अधिक दूरी पर स्थित रहती है तब पेशी मे प्रसारण होता है किन्तु ज्यो-ज्यो वस्तु निकट आती है पेशी मे आकुचन होता है और दर्पण अधिक अवतल हो जाता है। समजन के सकेत के महत्व के विषय मे कोई अतिम निष्कर्ष नही प्राप्त हो सका है क्योकि अध्ययन के समय समजन के अतिरिक्त अन्य सभी सकेतो का नियत्रण सभव नही है। किन्तु समजन द्वारा प्रत्यक्षित पदार्थों की सूक्ष्म-सरचना के ज्ञान मे वृद्धि निर्विवाद है।

दूरी के द्विअक्षीय[5] सकेत

दूरी प्रत्यक्ष के कुछ प्रमुख सकेत दोनो आँखो की सरचना और क्रियाशीलता पर निर्भर करते हैं। दोनो नेत्रो का सम्मिलित दृष्टिक्षेत्र प्रत्येक स्वतन्त्र आँख के दृष्टिक्षेत्र से भिन्न होता है। प्रत्येक आँख का दृष्टिक्षेत्र लगभग 130 अश का है। वस्तुत यह क्षेत्र वातावरण की वह सीमा है जो सतत अभिकेन्द्रण के अन्तर्गत प्रत्य-क्षित हो सकती है। किन्तु जब दोनो नेत्रो का प्रयोग होता है तब एक सामान्य द्विअक्षीय दृष्टिक्षेत्र[6]' निर्मित हो जाता है। यह क्षेत्र अतिव्याप्त क्षेत्र हाता है। सामान्यत विन्दु पर दृष्टि को अभिकेन्द्रित करने पर दृष्टि रेखायें अभिकेन्द्रण बिन्दु पर अभिसरित

---

1 Relative backward movement 2 Accomodation 3 Focus
Ciliary muscle 5 Binocular 6 Field of binocular vision

हो जाती है। किन्तु यदि क्षितिज के सदर्भ मे वस्तु प्रत्यक्षित होती है तब दृष्टि रेखायें समानान्तर होती है और अभिसरण नही होता है। यहाँ पर प्रमुख द्विअक्षीय सकेतो की चर्चा की जा रही है।

द्विअक्षीय वैपम्य

जब प्रतीक्षित पदार्थ से आती हुई किरणे अक्षिपटल के असमानान्तर क्षेत्र मे पहुँचती है तब दो प्रतिमाओ का निर्माण होता है। जब दोनो आँखो की दृष्टि का किसी एक अभिकेन्द्रित वस्तु पर सम्मिलन होता है तब अक्षिपटल के समानान्तर क्षेत्र पर प्रतिमान नही है। सम्मिलन विन्दु की दूरी पर स्थित वस्तुयें अकेली प्रत्यक्षित होती हैं तथा समानान्तर क्षेत्रो मे उनकी प्रतिमायें बनती है। किन्तु सम्मिलित बिन्दु से निकट या दूर स्थित पदार्थ का प्रतिविम्ब अक्षिपटल के असमानान्तर क्षेत्रो मे पडता है तथा इनमे विपमता परिलक्षित होती है। यहाँ पर असमानान्तर तथा समानान्तर अक्षिपटलीय क्षेत्र के विपय मे जान लेना आवश्यक है। जब किसी केन्द्रण विन्दु पर दृष्टि का सम्मिलन होता है तब वह बिन्दु अकेला दीखता है। इस अकेले विन्दु द्वारा उत्तेजित अक्षिपटलीय विन्दु को समानान्तर अक्षिपटलीय विन्दु कहते हैं। किन्तु सम्मिलन विन्दु से दूरस्थ और निकटस्थ विन्दुओ की दो प्रतिमाये निर्मित होती हैं तथा जब एक विन्दु का द्वित्व के साथ प्रत्यक्ष होता है तब प्रत्येक अक्षिपटल पर स्थित विन्दुओं को असमानान्तर विन्दु कहा जाता है। जब कोई पदार्थ दोनो आँखो से प्रत्यक्षित होता है तब उसके दो भिन्न रूप (दोनो आँखो को अलग-अलग) प्रत्यक्षित होते हैं। दोनो आँखो के मध्य 2 5 इच की दूरी है। जब किसी ठोस वस्तु के किसी विन्दु पर दृष्टि केन्द्रित होती है तब अक्षिपटलीय प्रतिमा का क्षैतिज सरूप भिन्न होता है। दाँयी आँख से दाँयी दिशा का कुछ अधिक भाग तथा बायी आँख से बाँयी दिशा का कुछ अधिक भाग प्रत्यक्षित होता है। इसी अतर को द्विअक्षीय वैपम्य कहा गया है तथा इसी के कारण प्रतिमा का कुछ अश समानान्तर और कुछ अश असमानान्तर क्षेत्र मे पडता है। वैपम्य की मात्रा का मापन भी सम्भव है। निकट विन्दु के सम्मिलन कोण मे से दूरस्थ विन्दु के सम्मिलन कोण को घटा देने पर वैपम्य की मात्रा प्राप्त होती है। दूसरे शब्दो मे, वैपम्य एक विन्दु से दूसरे विन्दु के मध्य सम्मिलन मे परिवर्तन के तुल्य होता है।

अभिसरण[1]

जब प्रत्यक्षित वस्तु अधिक दूरी पर अवस्थित होती है तब वस्तु के प्रति केन्द्रण रेखायें समानान्तर होती हैं। किन्तु जब वस्तु निकटवर्ती होती है तब निरीक्षक की आँखे परस्पर सहयोग से इस प्रकार गतिशील होती हैं कि केन्द्रण रेखाये केन्द्रित वस्तु पर परस्पर मिल जाती हैं। यह सम्मिलन एक प्रमुख दूरी-सकेत है। आँखो की वाह्यपेशिया सम्मिलन का नियत्रण करती है। इनकी क्रियाशीलता से गतिवाही

---

1 Convergence

प्रवाह उत्पन्न होते है जो दूरी के सकेत का कार्य करते है। किन्तु यह सकेत आँख से 60 फीट की दूरी के अन्दर ही क्रियाशील होता है। इसके अधिक दूरी पर दृष्टि-रेखा समानान्तर हो जाती है। इसकी क्षमता के विषय मे उपलब्ध प्रायोगिक प्रमाण विवादास्पद है। यह सकेत तभी प्रयुक्त हो सकता है जब किसी अन्य सकेत या प्रयास और त्रुटि द्वारा 'एक दृष्टि' प्राप्त कर ली गयी हो।

द्विप्रतिमायें[1]

जब दोनो आँखो का प्रयोग किया जाता है तब दो प्रतिमाओ का एक प्रमुख सकेत उपलब्ध रहता है। अभिसरण विन्दु से निकट या दूर स्थित विन्दु अक्षिपटल के असमानान्तर विन्दुओ को उद्दीप्त करते हैं। फलत इन (दूरस्थ विन्दु की दोनों प्रतिमाये अनान्तरित नही होती है तथा प्रत्येक आँख अपनी ही ओर प्रतिमा का दर्शन करती है।) इस प्रकार जब दोनो प्रतिमाये अनान्तरित होती हैं नो वस्तु अभिकेन्द्रण विन्दु के निकट होती है तथा जब प्रतिमाये अनान्तरित नही होती हैं तो
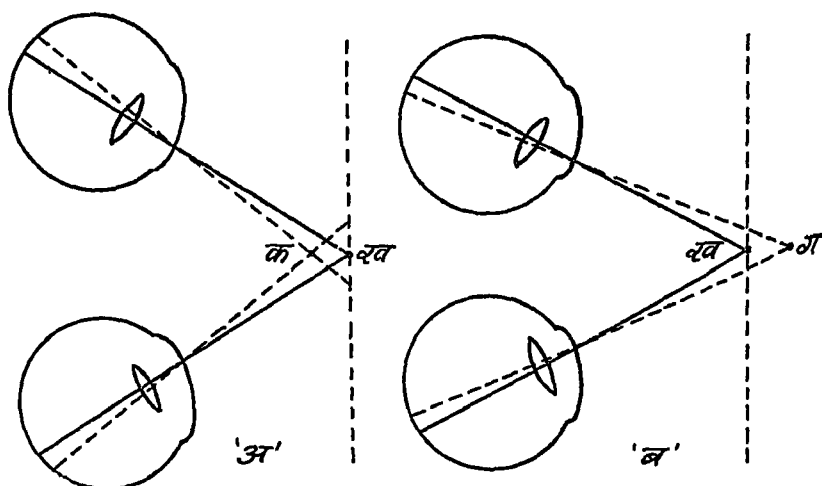
चित्र सख्या 5 7 द्विप्रतिमायें

[उक्त चित्र के अ खण्ड मे 'ख' अभिसरण बिन्दु तथा 'क' अभिसरण विन्दु के निकट पूर्व स्थित विन्दु तथा ब मे दूरस्थ विन्दु के देखने की प्रतिमा अंकित है। जब वस्तु निकट होती है तब प्रतिमा अनान्तरित होती है किन्तु जब वह दूर होती है तब प्रतिमा अनान्तरित नही होती है।]

वस्तु अभिकेन्द्रण विन्दु से दूर होती है। साधारणत इसका अनुभव नही होता है और इसी आधार पर इस सकेत के महत्व के विषय मे कुछ लोग आक्षेप करते हैं।

---

[1] Double images

जा सकती है। इसी प्रकार चित्रो और दर्पण के मध्य की दूरी को समायोजित करके उपयुक्त समजन प्राप्त किया जाता है। उपयुक्त समजन और अभिसरण की अवस्था मे प्राप्त दो अक्षिपटलीय प्रतिमाये यथार्थवस्तु के प्रत्यक्ष के समान होती हैं। इन दो चित्रो को आँख इस प्रकार अभिसरित करती है तब तृतीय आयाम का प्रत्यक्ष होता है। दर्पण स्टीरियोस्कोप के अनेक लाभ हैं। इसमे बाँयी आँख तथा दाँयी आँख के चित्र कार्डों को एक दूसरे स्थान पर बदला जा सकता है तथा विपरीत गहराई प्रभाव प्राप्त किया जा सकता है। अक्षिपटलीय वैपम्य विपरीत हो जाता है। इस अवस्था मे दर्पण स्टिरियोस्कोप को 'पिस्डोस्कोप' कहा जाता है। इसी प्रकार जब दर्पण को बहुत बडे दर्पण से बदल दिया जाय तो दृष्टिरेखा वातावरण की वस्तुओ के बाह्य दिशा के प्रति उन्मुख रहती है। लम्बे दर्पणो के मध्य अधिक दूरी से अलग होने के कारण वैपम्य बढ जाता है तथा द्विअक्षीय गहराई प्रभाव अधिक दूरी तक प्रभावकारी हो जाता है। इस प्रकार के स्टिरियोस्कोप को 'टेलिस्टेरियोस्कोप' कहा जाता है।

प्रिज्म स्टीरियोस्कोप

यह ब्रिवस्टर द्वारा विकसित किया गया। इसमे दर्पणो के स्थान पर प्रिज्म का प्रयोग होता है। ये प्रिज्म प्रकाश तरगो को परावर्तित[1] करते है तथा अपनी दिशा परिवर्तित करके आँखो को अभिसरण का अवसर प्रदान करते है। इन प्रिज्मो के आधार बाहर स्थित होते हैं। एक पतली लकडी की सहायता से दोनो आँखो के चित्र अलग अलग हो जाते है। नवीन तकनीकी उपलब्धियो के सहयोग से श्रेष्ठ कोटि के और सहज स्टीरियोस्कोपो का विकास हुआ है। रगीन पारदर्शी फोटो चित्रो को अवतल दर्पण से देखने पर दूरस्थ वस्तुओ के लिए अभिसरण और समजन व्यवस्थित किया जा सकता है। इसी प्रकार एनेग्लिफ़ लाल हरा स्टीरियोस्कोप का प्रयोग सामूहिक अवलोकन की अवस्था मे किया जाता है।

स्टीरियोस्कोप मे उपस्थित की जाने वाली रेखाकृतियाँ फोटो या चित्र होते है। यदि दोनो ही चित्र एकरूप होंगे तो कोई गहराई प्रभाव नही प्राप्त होगा। विषम होने पर ही स्टीरियोस्कोपिक विलयन सम्भव है। विषमता या अन्तर की मात्रा पर ही गहराई निर्भर करती है। इस उपकरण का प्रत्यक्षीकरण की अनेक समस्याओ के अध्ययन मे प्रयोग किया जाता है। प्रत्यक्षित गहराई के निर्धारक के रूप मे द्विअक्षीय वैपम्य का प्रायोगिक निदर्शन करने मे इसका उपयोग किया जाता है। दूसरा प्रमुख उपयोग समजन और अभिसरण के प्रभाव के अध्ययन मे किया जाता है। स्टीरियोग्राम को देखते समय अभिसरण की मात्रा को परिवर्तित करने के लिए दर्पण और प्रिज्म का प्रयोग होता है। इसके अतिरिक्त स्टीरियोग्राम तथा परिवर्ती दर्पण के मध्य की दूरी को परिवर्तित करके समजन भी व्यवस्थित किया जाता

1 Refraction

है । समजन और अभिसरण के, प्रत्यक्षित दूरी पर प्रभाव के अध्ययन मे उत्तेजक सामग्री को उपस्थित करने मे इसका प्रयोग किया जाता है ।

क्रमण[1]

ज्यो-ज्यो दूरी मे वृद्धि होती है त्यो-त्यो धरातल की बनावट अधिक घनी होती जाती है, इसी तथ्य को क्रमण की सज्ञा दी गयी है। गिब्सन (1950) ने क्रमण के महत्व की ओर मनोवैज्ञानिको का ध्यान आकृष्ट किया । जब व्यावहारिक अवस्था मे दूरी का अनुमान करना होता है धरातल की दृष्टिगोचर बनावट या रेखाकन, दूरी मे वृद्धि के अनुसार घने प्रतीत होते है । बनावट के क्रमण की अक्षिपटलीय प्रतिमा वास्तविक दूरी के साथ सम्बद्ध है और निरीक्षक दूरी का यथार्थ अनुमान भी करता है । इस सकेत की प्रायोगिक सम्पुष्टि के लिए प्रायोगिक अध्ययन अपेक्षित है ।

सकेतो की अन्त क्रिया और उनका उपयोग

दूरी प्रत्यक्षीकरण के ऊपर चर्चित सकेत स्वतन्त्र रूप से क्रियाशील होने पर प्रभावशाली नही होते है अपितु किसी अवसर पर दिक् प्रत्यक्ष के निर्धारण हेतु इन सकेतो मे अन्त क्रिया होती है । इन सकेतो मे कौन अधिक महत्वपूर्ण है यह प्रायोगिक अध्ययनो से स्थापित नही हो सका है किन्तु उपलब्ध प्रमाण इस तथ्य की ओर इगित करते हैं कि प्राचीन अवधारणा के अनुसार मौलिक सकेत (समजन, अभिरण, द्विअक्षीय वैषम्य आदि) उतने महत्वपूर्ण नही है जितना कि विश्वास किया जाता है । वस्तुत सन्दर्भ पर आधृत सकेत (यथा आकार आदि सकेत) अपेक्षाकृत अधिक प्रभावकारी है । परिवेश के साथ अभियोजन मे इन सकेतो का उपयोग निर्विवाद है । जब ये सकेत उपलब्ध नही रहते है या इनमे द्वन्द होता है तब निरीक्षक उस अवस्था मे विद्यमान अन्य सकेतो के आधार पर अपने आचरण को सुस्थिर करने का प्रयत्न करते हैं । ऐसी अवस्थाओ मे सम्भवत वास्तविक आकार, रूप स्थैर्य जैसे सकेतो का उपयोग किया जाता है । जब दूरी प्रत्यक्ष के अनेक सकेत प्राप्त रहते है तब अधिक विश्वसनीय तथा परिशुद्ध दूरी प्रत्यक्षीकरण सम्भव होता है ।

दूरी प्रत्यक्ष का विकास कुछ नवीन उपलब्धियाँ

वयस्क निरीक्षको का दूरी प्रत्यक्षीकरण दिक् परिप्रेक्ष्य विषयक विविध प्रकार की सूचनाओ पर आधृत होता है । द्विअक्षीय वैषम्य, आकार, प्रतिच्छाया तथा बनावट के क्रमण आदि सकेत आवश्यकता से पर्याप्त अधिक सूचना प्रदान करते हैं जिससे प्रत्यक्षीकरण अधिक परिशुद्ध होता है । कम सकेत उपलब्ध रहने पर दूरी का समुचित प्रत्यक्ष नही हो पाता है । ल्यूरिया तथा किन्नी (1968) ने सकेतो को घटाकर दूरी प्रत्यक्ष का अध्ययन किया तथा यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि समग्र परिवेश के दृष्टिगोचर होने पर 15 फीट तक की निरपेक्ष दूरी का शुद्ध निर्णय प्राप्त होता है । किन्तु

---

1 Gradients

एक बडे और शून्य कक्ष मे उसी दूरी का निरीक्षण करने पर प्रयोज्यों ने अधिकानुमान किया। यह अधिकानुमान पर्दे मे एक वृत्ताकार छिद्र द्वारा एक आँख से निरीक्षण करने पर और अधिक बढ गया। स्पष्ट ही दूरी प्रत्यक्ष की परिशुद्धता की मात्रा उपलब्ध सकेतो की मात्रा पर निर्भर करती है। इसके अतिरिक्त निरीक्षक उपलब्ध सकेतो के मध्य चयन भी करता है।

त्रिविमात्मक दिक् के प्रति सभी पदार्थों, प्रत्ययो तथा अनुक्रियाओ की सगठित व्यापक व्यवस्था बच्चो मे शनै-शनै विकसित होती है। पियाजे (1955) के अनुसार आरम्भ के तीन चार मास की आयु तक शिशु दिक् के विभिन्न पक्षो के प्रति, अपनी क्रियाओ से सम्बद्ध पदार्थ के रूप मे अनुक्रिया करते है तथा उन्हे दिक् के विभिन्न पक्षो के पारस्परिक सकेत की कोई चेतना नही होती है। छ मास की अवस्था मे शिशु तिगुनी दूरी पर स्थित वस्तु तथा मूलवस्तु के मध्य अन्तर करने मे समक्ष होते है। दूरी के मूल्याकन का विकास विभिन्न वस्तुओ को प्राप्त करने के क्रम मे निष्पन्न गतियो द्वारा होता है। प्रथम वर्ष के उत्तरार्ध मे पहुँचकर प्राप्त की जा सकने वाली निकटस्थ वस्तुओ तथा पहुँचकर न पा सकने योग्य दूर की वस्तुओ के मध्य अन्तर स्थापित हो जाता है।

बोअर (1965) ने अपने प्रायोगिक अध्ययन मे यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि 6 से 8 सप्ताह की आयु मे बच्चो मे सापेक्ष्य दूरी की कुछ चेतना विकसित हो जाती है तथा सापेक्ष्य दूरी का निर्णय गति वैपम्य पर निर्भर करता है। स्मिथ तथा स्मिथ (1966) ने यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि पाँच वर्ष की अवस्था के बच्चे 20 फीट की दूरी तक की दूरियो की (एकाक्षीय तथा द्विअक्षीय दोनो ही दशाओ मे) परिशुद्ध तुलना करने मे समर्थ थे।

सक्षेप मे, प्रारम्भिक वर्षों मे बच्चो मे निकटस्थ वस्तुओ की दूरी के विषय मे परिशुद्ध निर्णय विकसित हो जाते है। दूसरे वर्ष मे वस्तु का परिवेश के साथ के दिक् सम्बन्धो की समझ विकसित हो जाती है। किन्तु वस्तुओ के दिक् सम्बन्ध की पूर्ण तथा व्यवस्थित समझ कई वप बाद विकसित होती है। दो से तीन वर्ष की आयु के मध्य बच्चे दिक् प्रत्ययो का नामकरण तथा उपयोग आरम्भ कर देते है। पियाजे तथा इनहेल्डर (1956) ने यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि परिप्रेक्ष्य की यथार्थ ग्राह्यता 8 वर्ष की आयु मे परिपक्व होती है।

यह अवधारणा समुचित प्रतीत होती है कि गति वैपम्य तथा द्विअक्षीय वैपम्य की सहायता से दूरी का प्रत्यक्ष जन्मजात है। बाल्यावस्था मे परिलक्षित होने पर भी दूरी प्रत्यक्ष विपयक निर्णय अनुभव द्वारा सम्पुष्ट होते है। इन निर्णयो मे शिशु यह सीखता है कि उसे परिवेश मे स्थित वस्तुओ के लिए लम्बे या छोटे पहुंचने के प्रयास करने चाहिए। अततोगत्वा वह कई प्रकार की सूचनाओ को एक दिक् व्यवस्था के रूप मे सगठित करता है। वयस्क होने पर दूरी अनुमान के सप्रत्यात्मक पक्ष को विशिष्ट प्रशिक्षण द्वारा परिष्कृत किया जा सकता है। निर्विवाद न होने पर भी यह

सुनिश्चित है कि प्रशिक्षित निरीक्षक उपलब्ध प्रात्यक्षिक सूचना का अधिक उपयुक्त प्रयोग करने मे समर्थ होता है। इसके अतिरिक्त प्रतिबन्धित दशाओ मे किसी विशिष्ट सकेत का अधिक प्रभावकारी प्रयोग करने के लिए प्रयोज्यो को प्रशिक्षित किया जा सकता है।

सामान्य दशाओ मे सामान्य व्यक्ति दिक् सम्बन्धो से सम्बद्ध सूचनाओ के, आवश्यकता से अधिक, प्रात्यक्षित सकेतो का प्रयोग करता है। ये सकेत एक प्रतिष्ठित दिक् व्यवस्था मे व्यवस्थित होते हैं जिनकी सहायता से परिवेश के स्वरूप का निर्णय करना सम्भव होता है। जब परस्पर विरोधी प्रात्यक्षित प्रदत्त उपलब्ध होने पर दिक् सम्बन्धो के शुद्ध निर्णय क्षीण हो जाते हैं। दिक् प्रत्यक्ष के लिए अर्जित साम्प्रदायिक कौशल को हम परिपक्व होने पर प्राप्त करते हैं। उनमे वस्तुओ के तीन आयामो का आकृनिक प्रतिनिधित्व प्रमुख है। अत सास्कृतिक अध्ययनो से यह स्पष्ट हो गया है कि कम शिक्षित निरीक्षक चित्रो मे दूरी प्रभाव के प्रत्यक्ष मे असफल रहते है।

गति-प्रत्यक्षीकरण

व्यक्ति के पर्यावरण मे स्थिर पदार्थों के अतिरिक्त गतिशील पदार्थ भी विद्यमान रहते है। इन गतिशील पदार्थों का तथा विविध प्रकार की गतियो का प्रत्यक्ष, प्रत्यक्षीकरण का एक महत्वपूर्ण अग है। गति की अनुभूति स्थिर तथा गतिशील दोनो ही प्रकार के उत्तेजको द्वारा होती है। जव गति की अनुभूति किसी विस्थापित उत्तेजक से उद्भूत होती है तव उसे वास्तविक गति कहते है। इसके विपरीत जव किसी स्थिर उत्तेजक से गति की अनुभूति होती है तब उसे आभासी गति कहते हैं। वस्तुत यह अन्तर भौतिकीय दृष्टिकोण पर आधृत है क्योकि अनुभव की दृष्टि से व्यक्ति दोनो ही परिस्थितियो मे गति की ही अनुभूति करता है। गतिशील वस्तु का प्रत्यक्ष अक्षिपटल के ग्राहको के क्रमिक तथा विच्छिन्न उद्दीपन से उद्भूत होता है। सतत गतिशील उत्तेजना नही होती है। इस दृष्टि से विचार करने पर सभी प्रकार के गति अनुभव मात्र आभासी[1] प्रतीत होते हैं। परन्तु मनोविज्ञानिक शब्दावली मे 'आभासी' तथा 'वास्तविक गति' का प्रयोग ऊपर चर्चित सन्दर्भ मे ही किया गया है। अनेक लेखको ने उत्तेजक विच्छिन्नता को ध्यान मे रखकर इनके मध्यअतर नही स्वीकार किया है। उदाहरणार्थ, फाग्रुसं(1966)ने यह स्थापना करने का प्रयास किया है कि जीव की सत्यता अनुभूत सत्य ही होता है। तथाकथित आभासी एव वास्तविक गति की अवस्थाओ मे निरीक्षक का अनुभूत सत्य एक ही प्रकार का होता है। फलत दोनो ही प्रकार के गति अनुभव एक ही प्रकार के गति अनुभव है। बर्टले (1958) ने भी इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया है और यह तर्क उपस्थित किया है कि दोनो ही अवस्थाओ मे 'गति' का आशय अनुभूत गति है न कि भौतिक गति। अत

---

1 Apparant

एक बडे और शून्य कक्ष मे उसी दूरी का निरीक्षण करने पर प्रयोज्यो ने अधिकानुमान किया। यह अधिकानुमान पर्दे मे एक वृत्ताकार छिद्र द्वारा एक आँख से निरीक्षण करने पर और अधिक बढ गया। स्पष्ट ही दूरी प्रत्यक्ष की परिशुद्धता की मात्रा उपलब्ध सकेतो की मात्रा पर निर्भर करती है। इसके अतिरिक्त निरीक्षक उपलब्ध सकेतो के मध्य चयन भी करता है।

त्रिविमात्मक दिक् के प्रति सभी पदार्थों, प्रत्ययो तथा अनुक्रियाओ की सगठित व्यापक व्यवस्था बच्चो मे शनै-शनै विकसित होती है। पियाजे (1955) के अनुसार आरम्भ के तीन चार मास की आयु तक शिशु दिक् के विभिन्न पक्षो के प्रति, अपनी क्रियाओ से सम्बद्ध पदार्थ के रूप मे अनुक्रिया करते है तथा उन्हे दिक् के विभिन्न पक्षो के पारस्परिक सकेत की कोई चेतना नही होती है। छ मास की अवस्था मे शिशु तिगुनी दूरी पर स्थित वस्तु तथा मूलवस्तु के मध्य अन्तर करने मे समक्ष होते हैं। दूरी के मूल्याकन का विकास विभिन्न वस्तुओ को प्राप्त करने के क्रम मे निष्पन्न गतियो द्वारा होता है। प्रथम वर्ष के उत्तरार्ध मे पहुँचकर प्राप्त की जा सकने वाली निकटस्थ वस्तुओ तथा पहुँचकर न पा सकने योग्य दूर की वस्तुओ के मध्य अन्तर स्थापित हो जाता है।

वोअर (1965) ने अपने प्रायोगिक अध्ययन मे यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि 6 से 8 सप्ताह की आयु में बच्चो मे सापेक्ष्य दूरी की कुछ चेतना विकसित हो जाती है तथा सापेक्ष्य दूरी का निर्णय गति वैषम्य पर निर्भर करता है। स्मिथ तथा स्मिथ (1966) ने यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि पाँच वर्ष की अवस्था के बच्चे 20 फीट की दूरी तक की दूरियो की (एकाक्षीय तथा द्विअक्षीय दोनो ही दशाओ मे) परिशुद्ध तुलना करने मे समर्थ थे।

सक्षेप मे, प्रारम्भिक वर्षों मे बच्चो मे निकटस्थ वस्तुओ की दूरी के विषय मे परिशुद्ध निर्णय विकसित हो जाते है। दूसरे वर्ष मे वस्तु का परिवेश के साथ के दिक् सम्बन्धो की समझ विकसित हो जाती है। किन्तु वस्तुओ के दिक् सम्बन्ध की पूर्ण तथा व्यवस्थित समझ कई वर्ष बाद विकसित होती है। दो से तीन वर्ष की आयु के मध्य बच्चे दिक् प्रत्ययो का नामकरण तथा उपयोग आरम्भ कर देते हैं। पियाजे तथा इनहेल्डर (1956) ने यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि परिप्रेक्ष्य की यथार्थ ग्राह्यता 8 वर्ष की आयु मे परिपक्व होती है।

यह अवधारणा समुचित प्रतीत होती है कि गति वैषम्य तथा द्विअक्षीय वैषम्य की सहायता से दूरी का प्रत्यक्ष जन्मजात है। बाल्यावस्था मे परिलक्षित होने पर भी दूरी प्रत्यक्ष विषयक निणय अनुभव द्वारा सम्पुष्ट होते है। इन निर्णयो मे शिशु यह सीखता है कि उसे परिवेश मे स्थित वस्तुओ के लिए लम्बे या छोटे पहुँचने के प्रयास करने चाहिए। अततोगत्वा वह कई प्रकार की सूचनाओ को एक दिक् व्यवस्था के रूप मे सगठित करता है। वयस्क होने पर दूरी अनुमान के सप्रत्यात्मक पक्ष को विशिष्ट प्रशिक्षण द्वारा परिष्कृत किया जा सकता है। निर्विवाद न होने पर भी यह

सुनिश्चित है कि प्रशिक्षित निरीक्षक उपलब्ध प्रात्यक्षिक सूचना का अधिक उपयुक्त प्रयोग करने मे समर्थ होता है। इसके अतिरिक्त प्रतिबन्धित दशाओ मे किसी विशिष्ट सकेत का अधिक प्रभावकारी प्रयोग करने के लिए प्रयोज्यो को प्रशिक्षित किया जा सकता है।

सामान्य दशाओ मे सामान्य व्यक्ति दिक् सम्बन्धो से सम्बद्ध सूचनाओ के, आवश्यकता से अधिक, प्रात्यक्षित सकेतो का प्रयोग करता है। ये सकेत एक प्रतिष्ठित दिक् व्यवस्था मे व्यवस्थित होते है जिसकी सहायता से परिवेश के स्वरूप का निर्णय करना सम्भव होता है। जब परस्पर विरोधी प्रात्यक्षित प्रदत्त उपलब्ध होने पर दिक् सम्बन्धो के शुद्ध निर्णय क्षीण हो जाते हैं। दिक् प्रत्यक्ष के लिए अर्जित साम्प्रदायिक कौशल को हम परिपक्व होने पर प्राप्त करते है। उनमे वस्तुओ के तीन आयामो का आकृनिक प्रतिनिधित्व प्रमुख है। अत सास्कृतिक अध्ययनो से यह स्पष्ट हो गया है कि कम शिक्षित निरीक्षक चित्रो मे दूरी प्रभाव के प्रत्यक्ष मे असफल रहते हैं।

गति-प्रत्यक्षीकरण

व्यक्ति के पर्यावरण मे स्थिर पदार्थों के अतिरिक्त गतिशील पदार्थ भी विद्यमान रहते हैं। इन गतिशील पदार्थों का तथा विविध प्रकार की गतियो का प्रत्यक्ष, प्रत्यक्षीकरण का एक महत्वपूर्ण अग है। गति की अनुभूति स्थिर तथा गतिशील दोनो ही प्रकार के उत्तेजको द्वारा होती है। जब गति की अनुभूति किसी विस्थापित उत्तेजक से उद्भूत होती है तब उसे वास्तविक गति कहते है। इसके विपरीत जब किसी स्थिर उत्तेजक से गति की अनुभूति होती है तब उसे आभासी गति कहते हैं। वस्तुत यह अन्तर भौतिकीय दृष्टिकोण पर आधृत है क्योकि अनुभव की दृष्टि से व्यक्ति दोनो ही परिस्थितियो मे गति की ही अनुभूति करता है। गतिशील वस्तु का प्रत्यक्ष अक्षिपटल के ग्राहको के क्रमिक तथा विच्छिन्न उद्दीपन से उद्भूत होता है। सतत गतिशील उत्तेजना नही होती है। इस दृष्टि से विचार करने पर सभी प्रकार के गति अनुभव मात्र आभासी[1] प्रतीत होते है। परन्तु मनोविज्ञानिक शब्दावली मे 'आभासी' तथा 'वास्तविक गति' का प्रयोग ऊपर चर्चित सन्दर्भ मे ही किया गया है। अनेक लेखको ने उत्तेजक विच्छिन्नता को ध्यान मे रखकर इनके मध्यअतर नही स्वीकार किया है। उदाहरणार्थ, फाग्रुर्स(1966)ने यह स्थापना करने का प्रयास किया है कि जीव की सत्यता अनुभूत सत्य ही होता है। तथाकथित आभासी एव वास्तविक गति की अवस्थाओ मे निरीक्षक का अनुभूत सत्य एक ही प्रकार का होता है। फलत दोनो ही प्रकार के गति अनुभव एक ही प्रकार के गति अनुभव है। बर्टले (1958) ने भी इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया है और यह तर्क उपस्थित किया है कि दोनो ही अवस्थाओ मे 'गति' का आशय अनुभूत गति है न कि भौतिक गति। अत

---

1 Apparant

दोनो को सावृतिक[1] गति कहना अधिक उपयुक्त होगा। यहाँ पर इस पक्ष की जटिलता को दृष्टि मे रखकर उक्त समस्या का विश्लेषण न करके विभिन्न प्रकार की गति अनुभूतियो के स्वरूप, प्रकार तथा उन्हे प्रभावित रखने वाले कारको की चर्चा की जायगी।

भौतिक गति

गति का तात्पर्य किसी एक स्थिति[2] से दूसरी स्थिति के मध्य विस्थापन[3] है। स्थिति भौतिक दिक् मे स्थिति का अर्थ वस्तु की तात्कालिक स्थिति, वेग[4] तथा त्वरण[5] से है। वस्तु की स्थिति किमी ज्यामितीय व्यवस्था के सन्दर्भ मे ज्ञात की जा सकती है। वस्तु के वेग का तात्पर्य दिक् मे दूरी तय करने की दिशा तथा मात्रा[6] से है। इसके लिए दो भौतिक आयाम अपेक्षित हैं–दूरी तथा समय। त्वरण का तात्पर्य वेग मे परिवर्तन है। स्वतत्र परिवर्त्यों के रूप मे गति प्रत्यक्ष मे इनका अध्ययन सभव है। यहाँ पर यह भी स्मरणीय है कि भौतिक गति मे तथा इसके प्रत्यक्ष मे सदैव पूर्ण समानता नही होती है। कभी तो उत्तेजक मे गति न रहने पर भी (यथा चल-चित्र मे) गति की अनुभूति होती है तो कभी उत्तेजक मे गति विद्यमान रहने पर भी गति का प्रत्यक्ष नही होता है (यथा घडी मे घटे की सुई की गति)।

वास्तविक गति

यह साधारण अनुभव है कि सभी गतिशील वस्तुओ का प्रत्यक्ष गति की अनुभूति उत्पन्न नही करता है। एक निश्चित वेग के बाद ही गति का प्रत्यक्ष होता है। वास्तविक गति के अधिकाश अध्ययनो मे विविध प्रकार की दशाओ मे गति प्रत्यक्ष की देहली का निर्धारण करने की चेष्टा की गयी है। यह देहली भौतिक गति की अनिवार्यत अपेक्षित मात्रा होती है जिसके अभाव मे गति का प्रत्यक्ष सभव नही होता है। यह देहली गतिशील पदार्थ के आकार, प्रकाश की तीव्रता, तथा अक्षिपटल के उत्तेजित अग आदि कारको पर निर्भर करती है। इसके अतिरिक्त परिवेश तथा दूरी भी इसे प्रभावित करते हैं।

गति प्रत्यक्ष की देहली

औवर्न (1886) ने वेग देहली[7] का अनेक परिस्थितियो मे अध्ययन किया जिसमे विभिन्न प्रकार की दीर्घाकार, लम्बवत् रेखा आदि का उत्तेजको के रूप मे प्रयोग करके देहली का निर्धारण किया गया। जब निरीक्षक की दृष्टि गतिशील वस्तु पर केन्द्रित थी तथा उपकरण के स्थिर अग सुस्पष्ट थे तब देहली 1 मि० से० आर्क प्रति सेकण्ड थी। किन्तु उपकरण के स्थिर अगो को दृष्टि क्षेत्र से बहिष्कृत कर देने पर गति देहली मे 10 गुनी वृद्धि हुई अर्थात् 10 मि०से० से लेकर 20 मि०से० तक हो गयी। बाद के प्रयोगकर्त्ताओ ने भी इन निष्कर्षों की पुष्टि की है। सीमान्त दृष्टि

---

1 Phenomenal 2 Location 3 Displacement 4 Velocity
5 Accelar ιtion 6 Rate 7 Rate threshold

की अवस्था मे गति की देहली केन्द्रीय दृष्टि की अवस्था मे प्राप्त गति की देहली की अपेक्षा अधिक होती है।

वेसलर (1906) द्वारा किया गया प्रयोग गति की न्यूनतम विभेद्य मात्रा या विस्थापन देहली[1] पर किये गये शोध का प्रतिनिधित्व करता है। वेसलर ने फोटोपिक प्रकाश की अवस्था मे 20 से० के दृष्टि-कोण[2] की विस्थापन देहली प्राप्त की थी। वेसलर के प्रमुख गुणात्मक निष्कर्ष इस प्रकार थे —

(1) विस्थापन देहली तीव्र प्रकाश की अवस्था मे मद्धिम प्रकाश की अवस्था की अपेक्षा कम होती है।

(2) तीव्र वेग के लिए विस्थापन देहली कम होती है।

(3) सीमान्त दृष्टि की अवस्था मे विस्थापन देहली केन्द्रीय दृष्टि की दशा की अपेक्षा कम अधिक होती है।

विस्थापन देहली तथा वेग देहली दोनो ही अनेक कारको द्वारा निर्धारित होती है। ब्राउन (1931) ने इस सन्दर्भ मे कुछ उत्कृष्ट प्रयोग किये है जिनमे विभिन्न प्रकार की गति देहलियो तथा उन्हे प्रभावित करने वाले कारको का अध्ययन किया गया है। यहाँ पर इस सदर्भ मे एक प्रयोग का उल्लेख किया जा रहा है।

इस प्रयोग मे प्रयोज्य को एक परीक्षण उत्तेजक की गति एक प्रतिमान उत्तेजक के समान व्यवस्थित करनी थी। परीक्षण उत्तेजक वेलनाकार वस्तु थी जिस पर कागज चिपका दिया गया था। कागज पर अनेक चित्र बने हुए थे। सन्दर्भ उत्तेजक सदा एक निश्चित गति से घूमता था और परीक्षण उत्तेजक की गति प्रयोज्य द्वारा निर्धारित होती थी। दोनो ही उत्तेजक प्रयोज्य से समान दूरी पर रखे गये थे। परीक्षण उत्तेजक को विभिन्न आयामो मे परिवर्तित करके गति देहली निर्धारित की गयी। ब्राउन ने यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि एक वर्ग की भौतिक गति को शून्य से बढाकर 200 से० मी० प्रति सेकण्ड कर देने पर अनेक देहलियाँ (0 से 200 से० मी० के मध्य) निर्धारित की जा सकती है।

1 **तत्काल विभेद्य गति**—यह 11 से० मी० प्रति सेकण्ड से लेकर 30 से० मी० प्रति सेकण्ड के मध्य प्राप्त की जाती है। इतनी गति होने पर दो भिन्न गतियो के मध्य अन्तर की अनुभूति होती है।

2 **विपरीत गति**—इसके अन्तर्गत वर्ग दृष्टिक्षेत्र के शिखर की ओर गतिशील प्रतिभासित होकर लुप्त हो जाता है तथा बाद मे वर्ग दृष्टिक्षेत्र के अधोभाग मे दिखता है। यह गति 10 से० मी० प्रति सेकण्ड से लेकर 30 से० मी० प्रति सेकण्ड के मध्य पायी जाती है।

3 **दो या दो से अधिक आकृतियो के तुल्य गति**—गतिशील वस्तु की सख्या

---

1 Displacement threshold 2 Visual angle

मे वृद्धि की अनुभूति 25 से० मी० प्रति सेकण्ड से लेकर 50 से० मी० प्रति सेकण्ड के मध्य होती है।

4 उत्तेजक विलयन या सतत भूरे रग का प्रत्यक्ष—50 से० मी० प्रति सेकण्ड से लेकर 115 से० मी० प्रति सेकण्ड के मध्य उत्तेजक, परिवेश मे सम्पृक्त हो जाता है और धूसर वर्ण का प्रत्यक्ष होता है।

वास्तविक प्रत्यक्ष की देहली वस्तु के वेग पर नही अपितु अन्य अनेक कारको पर आधृत है। सक्षेप मे, इन कारको की तथा इन कारको के विषय मे किये गये प्रमुख अध्ययनो की चर्चा की जा रही है।

दूरी का प्रभाव

उत्तेजक पदार्थ की आँख से दूरी उस उत्तेजक पदार्थ की अक्षिपटीय प्रतिमा के स्वरूप को निर्धारित करती है। अधिक दूर रहने पर वस्तु की प्रतिमा अधिक धीमी गति से घूमती है। फलत वस्तु धीमी गति से घूमती प्रतीत होती है। इन दोनो कारको के मध्य का सम्बन्ध वस्तु के प्रत्यक्षित आकार तथा दूरी के मध्य विद्यमान सम्बन्ध की ही भाँति है। जिस प्रकार प्रत्यक्षित आकार एक सीमा तक स्थैर्य प्रदर्शित करता है उसी प्रकार प्रत्यक्षित गति मे भी स्थैर्य होता है। किन्तु यह स्थैर्य पूर्ण स्थैर्य नही होता है।

उत्तेजक के आकार का प्रभाव

ब्राउन ने अपने प्रयोग मे रेखीय आकार का प्रत्यक्षित गति पर प्रभाव का अध्ययन किया। उन्होने परीक्षण उत्तेजक के सभी रेखीय आयामो को आधा कर दिया तथा प्रयोज्य से 'सन्दर्भ उत्तेजक[1]' और परीक्षण उत्तेजक की गति को एक समान करने के लिए कहा। जब परीक्षण उत्तेजक 5 3 से०मी० के वेग से गतिशील था तभी सन्दर्भ उत्तेजक (जिसकी वास्तविक गति 10 से०मी० प्रति सेकण्ड थी) के समान प्रतीत हुआ।

दृष्टि की अवस्था

कोहेन (1965) ने गति-प्रत्यक्ष के प्रयोग मे यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि गतिशील वस्तुओ के सीमान्त[2] दृष्टि की दशा मे प्रत्यक्ष होने पर निरीक्षक उस वस्तु के प्रति शीघ्रता से अभ्यस्त हो जाता है। इन्होने एक लम्बवत् घूमती विन्दुओ की शृंखला उपस्थित की। यह शृंखला 15 सेकण्ड से लेकर 100 सेकण्ड तक की अवधि के मध्य धीमी प्रतीत हुई और क्रमश लुप्त हो गई। बिन्दुओ की अपेक्षा दीघ आकार की वस्तुये अधिक काल तक गतिशील प्रत्यक्षित हुई। सीमान्त दृष्टि की अवस्था म निरीक्षक से जितनी ही अधिक दूरी पर वस्तु रखी गयी उतनी शीघ्रता से गति की अनुभूति समाप्त हुई। इसके विपरीत केन्द्रीय दृष्टि मे इस प्रकार गति-अनुभव की समाप्ति प्राप्त नही हुई। इन तथ्यो के आधार पर कोहेन ने

---

1 Reference stimulus 2 Peripheral

यह उपकल्पना स्थापित की कि सीमान्त दृष्टि की अवस्था मे तात्कालिक सावेदिक अनुक्रिया होती है जो शीघ्रता से अभ्यस्त हो जाती है। इसके विरुद्ध आँख के केन्द्र या फोविया मे इस अनुक्रिया के अतिरिक्त रूप का स्पष्ट प्रत्यक्ष भी होता है जो अधिक स्थायी होता है। अत सामान्य दशाओ मे गति के प्रति तात्कालिक अनुक्रिया अनेक रूपो मे भ्रमणशील वस्तुओ के प्रत्यक्ष द्वारा परिवर्धित और परिमाजित होता है। इस प्रकार गति-प्रत्यक्ष दृष्टि की अवस्था द्वारा प्रमुख रूप से निर्धारित होता है।

पृष्ठभूमि

जव सन्दर्भ क्षेत्र या पृष्ठिभूमि स्पष्टत दृष्टिगम्य होती है तव गति का प्रत्यक्ष शीघ्रता से होता है तथा देहली भी कम होती हे। वस्तु का आभासी वेग भी पृष्ठिभूमि के स्वरूप पर निर्भर करता है। ब्राउन ने अपने प्रयोगो मे यह निष्कर्ष प्राप्त किया था कि आभासी वेग विपमजातीय क्षेत्र मे अधिक था। जव वर्ग तथा दृष्टि क्षेत्र के आयाम वढा दिये गये तो वस्तु की वास्तविक गति भी (गति के प्रत्यक्ष के लिए) दुगुनी करनी पडी। किन्तु कोहेन (1964) के अनुसार यह अनुपात दुगुना नही होता है। यह अनुपात 1 1 25 का होता है। ब्राउन के अनुसार वस्तु को दृष्टि क्षेत्र मे भ्रमण करने मे व्यतीत किया गया समय अधिक महत्वपूर्ण कारक है किन्तु कोहेन की नवीन उपलब्धियो को ध्यान मे रख कर गति के माग की लम्वाई अपेक्षाकृत अधिक प्रभावकारी कारक प्रतीत होता है।

गति की पश्चात् प्रतिमा

दीर्घ अवधि तक किसी चाक्षुप उत्तेजक के निरीक्षण करने के पश्चात् जिस प्रकार चाक्षुप पश्चात् प्रतिमा का अनुभव होता है उसी प्रकार गति के दीर्घ काल तक प्रत्यक्ष के उपरान्त प्रत्यक्षित स्थिर वस्तुओ मे गति का भान होता है। गति की पश्चात् प्रतिमाओ मे प्राय विपरीत दिशा मे गति की अनुभूति होती हे। उदाहरणार्थ, यदि किसी झरने के प्रवाह को अधिक काल तक निरन्तर देखा जाय और तव किसी स्थिर पृष्ठभूमि पर दृष्टि केन्द्रित की जाय तो स्थिर पृष्ठभूमि पूर्वानुभून गति की विपरीत दिशा मे गतिशील प्रतिभासित होगी। यह प्रभाव वच्चो मे नही प्राप्त होता है। इस प्रमेय के स्वरूप और व्याख्या के विपय मे मनोवैज्ञानिको मे पर्याप्त चर्चा हुई है। यह प्रक्रम अक्षिपटीय सतृप्ति तथा समायोजन पर निर्भर करता है या किसी त्वक्षीय प्रक्रिया पर निर्भर करता है, यह विवाद का विपय रहा है। फ्रायड (1964) ने यह निष्कप प्राप्त किया है कि यदि गति को एक अक्षिपटल के अर्द्ध भाग पर प्रक्षिप्त किया जाय तो पश्चात् प्रभाव दूसरे अक्षिपटल के समानान्तर अर्द्ध भाग मे विद्यमान प्राप्त हुआ। उससे प्रतीत होता है कि त्वक्षीय अन्त क्रिया विद्यमान थी। आस्टिस तथा ग्रिगोरी (1965) ने अपने प्रायोगिक साक्ष्यो के आधार पर यह स्थापना की है कि वे यह सिद्ध करने मे सफल हो गये है कि यह प्रभाव पूर्णत अक्षिपटीय प्रक्रम है तथा इसका त्वक्षीय प्रक्रिया मे

कोई भी सम्बन्ध नही है। क्षैतिज गतिशील पट्टियो वाले दृष्टि क्षेत्र को 45 सेकण्ड के लिए प्रदर्शित किया गया। निरीक्षको ने या तो अपनी आँखो से इसका अनुगमन नही किया या एक स्थिर विन्दु पर दृष्टि केन्द्रित कर ली। पहली दशा मे मात्र मौलिक गति प्राप्त की गयी जवकि दूसरी दशा मे पश्चात् प्रभाव भी प्राप्त हुआ। जव रेखाये स्थिर थी किन्तु केन्द्रण विन्दु धीरे धीरे बदलता गया तव पश्चात् प्रभाव प्राप्त किया गया।

आभासी गति—वर्थाइमर (1912) ने यह प्रदर्शित किया कि यदि विन्दु, या रेखा, जैसे अति सामान्य उत्तेजक भी विभिन्न स्थितियो मे अत्यन्त कम समयान्तराल के वाद प्रदर्शित किये जायँ तो निरीक्षक को गति की अनुभूति होगी। यह अन्वेपण मनोविज्ञान मे गेस्टाल्ट सम्प्रदाय के उद्भव का प्रवर्तक सिद्ध हुआ। अपने अन्य सहयोगियो, विशेपत कोफ्का तथा कोहलर की सहायता से वर्थाइमर ने प्रत्यक्षीकरण के विभिन्न प्रक्रमो की नयी व्याख्यायें उपस्थित की। स्थिर उत्तेजक द्वारा उत्पन्न गति की अनुभूति को वर्थाइमर ने 'फाई प्रमेय' की सज्ञा दी है।

फाई प्रमेय मध्यम स्तर का आदिम प्रत्यक्षीय प्रक्रम है। टाउवर तथा कोफलर (1966) ने अपने प्रयोगो मे यह साक्ष्य प्राप्त किया है कि नवजात शिशुओ के एक समूह के अधिकाश सदस्य स्थिर काली रेखाओ के एट्रोबोस्कोपिक प्रकाश से उत्पन्न आभासी गति का अपनी आँखो द्वारा अनुगमन करने मे सफल रहे। वहुत पहले भी मेली तथा टोवलर (1931) ने यह प्रदर्शित किया था कि दो प्रकाशित रेखाओ के सतत अन्तरण से उत्पन्न आभासी गति का बच्चो ने वयस्को की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से प्रत्यक्ष किया। इन अध्ययनो से आभासी प्रत्यक्ष की निम्न स्तर पर विद्यमानता तथा सामान्यता का पता चलता है।

आरम्भ मे (तथा आज भी) अनेक लोगो ने आभासी गति तथा वास्तविक गति मे साम्य स्थापित करने की चेष्टा की। व्राउन तथा वोथ (1937) ने एक प्रयोग इसी उद्देश्य से सम्पन्न किया। इन लोगो ने क्रम से एक आकृति के चारो कोनो के रूप मे चार प्रकाशो को प्रदर्शित किया। प्रकाश को प्रदर्शित करने की अवधि एक प्रकाश के तथा दूसरे प्रकाश के प्रस्तुत करने के मध्य व्यतीत समय के वरावर थी। प्रदर्शनकाल 150 मिली सेकण्ड था।

आभासी गति के प्रकार—स्थिर उत्तेजना मे प्रत्यक्षित गति के लिए 'आभासी गति' का प्रयोग किया गया है। गेस्टाल्ट सम्प्रदाय के प्रमुख प्रवर्तक वर्थाइमर ने आभासी गति का पर्याप्त अध्ययन करने के पश्चात् यह वताया है कि यह अनुभव अनेक कारको पर निर्भर करता है। उत्तेजक प्रदर्शन काल दो उत्तेजको के मध्य का समयान्तराल, उत्तेजक का स्वरूप (यथा रूप तथा तीव्रता आदि) तथा व्यक्तिगत दशाये (यथा अभिवृत्ति, निर्देश आदि) महत्वपूर्ण कारक है। वर्थाइमर ने उत्तेजको के मध्य समयान्तराल का विशेप अध्ययन किया तथा प्रायोगिक निरीक्षणो के आधार पर तीन प्रकार की आभासी गति की चर्चा की है।

यदि दो प्रकार के उत्तेजक 30 मिली सेकण्ड तक के व्यवधान के पश्चात् उपस्थित किये जायं तो 'समसामयिकता' का बोध होता है अर्थात् दोनो प्रकाशो का एक साथ अनुभव होता है। व्यवधान की मात्रा 60 मि० से० तक बढाने पर अधिकतम गति[1] की अनुभूति होती हे। यह मात्रा यदि 200 मि० से० तक बढा दी जाय तब क्रमिक[2] उत्तेजना का अनुभव होता है अर्थात् एक प्रकाश का प्रत्यक्ष होने पर दूसरे प्रकाश का प्रत्यक्ष होता है। अधिकतम गति तथा समसामयिकता की सीमा (30 मि० से० से लेकर 60 मि० से०) के मध्य आशिक गति की अनुभूति होती है। अधिकतम गति की अनुभूति को वर्थाइमर ने 'फाई प्रमेय' की सज्ञा दी है। वर्थाइमर के प्रारम्भिक अध्ययन के पश्चात् कोफ्का की प्रयोगशाला मे गति विषयक अनेक महत्वपूण अध्ययन किये गये। यहाँ पर आभासी गति के कुछ महत्वपूर्ण अध्ययनो की चर्चा की जा रही है।

केन्केल (1913) ने आकृतियो के क्रमिक उपस्थापन से उत्पन्न तीन प्रकार की गति-अनुभूति की चर्चा की हे। ये अनुभूतियाँ क्रमश॰ अल्फा, गामा तथा बीटा कही जाती है।

अल्फा गति—क्रमिक उपस्थापन से वस्तु के आकार मे आभासी परिवर्तन को 'अल्फा गति' कहते ह। ज्यामितीय विपयय के दो भागो को एक क्रम मे उपस्थित करने पर इसकी अनभूति होती है। उदाहरणार्थ, यदि मुलर लायर विपर्यय के दो भागो को भिन्न अवस्था मे उपस्थित करने पर क्षैतिज रेखीय भाग मे प्रसारण या आकुचन की अनुभूति होती है। यह अनुभूति प्रथम उपस्थित उत्तेजक पर आधृत होती है। रेखाओ के 'तीर' एक स्थिति से दूसरी स्थिति मे 'आगे-पीछे' होते प्रतीत होते है।

गामा गति—यदि दृष्टिक्षेत्र मे स्थित किसी चाक्षुप उत्तेजक के प्रकाश की तीव्रता अकस्मात् बहुत बढा दी जाय तो आकृति फैलती प्रतीत होती है किन्तु थोडी ही देर मे आकुचित हो जाती है। इसी प्रकार जब प्रकाश की मात्रा अचानक बहुत कम हो जाती है तो आकृति आकुचित प्रतीत होती है। प्रकाश की तीव्रता मे अतर के कारण किसी आकृति मे आकुचन या प्रसारण की अनुभूति को गामा गति कहते हैं।

बीटा गति—यदि स्थिर उत्तेजक भी एक निश्चित अन्तराल पर उत्तेजित किये जायें तथा उनके मध्य की दूरी स्वल्प हो तो उन उत्तेजको से गति की अनुभूति होती है। चलचित्र इस प्रकार की गति का सर्वविदित उदाहरण है। उत्तेजक तीव्रता, उनके मध्य की दूरी और उत्तेजित होने के मध्य का समयातराल इस प्रकार की गति के महत्वपूर्ण कारक हैं।

डेल्टा गति—इसका उल्लेख कोर्टि (1915) ने किया। इस गति अनुभव मे

---

1 Optimal movement 2 Successive

प्रकाश की मात्रा, उद्दीपक की तीव्रता, उत्तेजको के मध्य की दूरी की निश्चित मात्रा होने पर कुछ विशिष्ट अवस्थाओ मे विपरीत गति की अनुभूति होती है। इसके लिए प्रथम उद्दीपक की अपेक्षा बाद वाला उद्दीपक अनिवार्यत अधिक चमकदार होना चाहिए।

कोर्टि ने प्रायोगिक निरीक्षण के आधार पर आभासी गति के विभिन्न परिवर्त्यों के मध्य सम्बन्धो को कुछ नियमो के रूप मे व्यक्त किया है। अधिकतम गति फाई प्रमेय की अनुभूति विपयक नियमो मे उत्तेजको की तीव्रता, उत्तेजक के प्रदर्शन की अवधि तथा दो उत्तेजको के मध्य की दूरी तथा उनके मध्य समयान्तराल प्रमुख कारक है। ये नियम इस प्रकार है

(1) यदि उत्तेजक का प्रदर्शनकाल तथा मध्यान्तराल स्थिर हो तो उत्तेजको की तीव्रता मे वृद्धि के साथ-साथ उत्तेजको के मध्य की दूरी मे भी वृद्धि होती है।

(2) यदि उत्तेजको के मध्य की दूरी तथा प्रदर्शन काल स्थिर हो तो उत्तेजक तीव्रता घटती है और मध्यान्तराल मे वृद्धि होती है।

(3) यदि तीव्रता तथा प्रदर्शन काल स्थिर हो तो दूरी और मध्यान्तराल मे वृद्धि होती है।

(4) यदि तीव्रता और उत्तेजको के मध्य की दूरी स्थिर हो तो मध्यान्तराल तथा प्रदर्शन काल घटता है।

डेल्टा गति की व्याख्या के सन्दर्भ मे एक अन्य नियम प्रतिपादित किया गया है।

(5) यदि प्रदर्शनकाल, दूरी तथा मध्यान्तराल .स्थिर रहे तो प्रथम तथा द्वितीय उत्तेजक की तीव्रता के मध्य अन्तर दूसरे उत्तेजक की तीव्रता बढने के साथ बढता है।

(6) यदि प्रदर्शनकाल, मध्यान्तराल तथा दूसरे उत्तेजक की तीव्रता स्थिर रहे तो तीव्रता के अन्तर दूरी बढने के साथ बढता है।

(7) यदि दूरी, प्रदर्शन काल तथा दूसरे उत्तेजक की तीव्रता स्थिर रहे तो दोनो उत्तेजको के मध्य अन्तर मध्यान्तराल मे वृद्धि के साथ बढता ह।

निउहास (1930) न आभासी गति को प्रभावित कग्ने वाले कारको का अध्ययन किया। नेफ (1936) ने इन कारको का विश्लेपण किया है। कुछ प्रमुख काग्क इम प्रकार है

1 **उत्तेजको के मध्य व्यतीत होने वाला कालान्तराल**—इस तथ्य पर प्राय - पूर्ण सहमति है कि आभासी गति के दो उत्तेजको के मध्य का कालान्तराल आभासी गति को विशेप रूप से प्रभावित करता है। वर्थाइमर द्वारा निर्धारित गति देहली (60 मि० से०) सभी दशाओ मे उपयुक्त है। निउहास के प्रायोगिक अध्ययनो से कोर्टि के नियमो की उपयोगिता पर अनेक प्रतिबन्धो का पता चलता है। ये नियम

सभी परिस्थितियो मे भिन्न-भिन्न परिवर्त्यों के मध्य वास्तविक सम्बन्ध नही व्यक्त करते।

2 **उत्तेजक प्रदर्शन काल**—निउहास के प्रदत्तो से यह ज्ञात होता हे कि उत्तेजक को कितनी अवधि तक निरीक्षक के सम्मुख उपस्थित किया जाता है, यह प्रमुख रूप से आभासी गति के प्रत्यक्ष को प्रभावित करता है। यदि उत्तेजको के प्रदर्शन काल मे किसी प्रकार का परिवर्तन किया जाता है तो अन्य परिवर्त्यों मे भी परिवर्तन अपेक्षित होता हे।

3 **उत्तेजको के मध्य की दूरी**—आभामी गति के उत्तेजको के मध्य की दूरी उन उत्तेजको के उपस्थित करने के मध्य के कालान्तराल के अनुरूप बढानी चाहिए, अन्यथा गति का प्रत्यक्ष नही होगा।

4 **उत्तेजक का स्वरूप**—कोर्टि तथा अन्य प्रयोगकर्ताओ ने यह साक्ष्य प्राप्त किया कि उत्तोजक पदार्थ के क्षेत्र को बढाने या आकार को परिवर्तित करने पर उत्तेजको के मध्य दूरी मे वृद्धि तथा मध्यान्तराल मे कमी आभासी गति की अनुभूति के लिए अनिवार्य है।

5 **तीव्रता मे सापेक्ष्य अन्तर**—कोर्टि के अनुसार डेल्टा गति की अनुभूति के लिए दूसरे उत्तोजक की तीव्रता पहले उत्तेजक की अपेक्षा अधिक तीव्र होनी चाहिए। इस नियम की पुष्टि अपक्षित है।

6 **व्यक्ति की दशायें**—व्यक्ति के पूर्व इतिहास द्वारा निर्धारित प्रयोज्यो की दशाएँ आभासी गति को विशिष्ट रूप से प्रभावित करती है। निर्देशो का प्रभाव यह प्राप्त किया गया कि जो प्रयोज्य पहले गति की अनुभूति नही करते ये वह भी गति को देखने का निर्देश प्राप्त करने के वाद गति की अनुभूति करने लगे थे। अभिवृत्ति और सेट भी गति के प्रति निरीक्षको की अनुक्रिया को प्रभावित करते हैं। सामयिकता तथा क्रमिकता का निर्णय अभ्यस्त होने पर गति की अनुभूति का निर्णय हो जाता है इसके अतिरिक्त पर्याप्त प्रशिक्षण पाने के वाद निरीक्षक गति का अधिक शुद्ध विवरण देते हैं।

त्वचीय तथा श्रव्य गति

त्वचीय उत्तेजको के त्वचा पर परिचालन से हमे त्वचा पर गति की अनुभूति होती है। इसके अतिरिक्त स्थिर उत्तेजक को क्रमिक शृ खला मे प्रयुक्त करने पर भी त्वचीय गति की अनुभूति होती है। वर्ट (1917) ने 'गति के त्वचीय विपर्यय' पर कुछ महत्त्वपूर्ण प्रयोग किये। स्पर्श की अनुभूति के मध्य का कालान्तराल, प्रदर्शनकाल तथा सस्पर्शों के मध्य दूरी का अन्तर प्रमुख कारक थे। वर्ट ने यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि सस्पर्शों के मध्य अधिक दूरी होने पर आभासी गति का अनुभव करने के लिए दीर्घ प्रदर्शनकाल अपेक्षित था। इसके विपरीत उत्तेजक की तीव्रता अधिक होने पर कम प्रदर्शनकाल पर ही आभासी गति का प्रत्यक्ष होता

था। यदि उत्तेजको के मध्य की दूरी अधिक हो तब अधिक तीव्र उत्तेजक के प्रयोग से ही गति की अनुभूति होती है। जब दूसरे उत्तेजक की तीव्रता पहले उत्तेजक से बढ जाती है तब विपरीत दिशा मे गति की अनुभूति होती है। हुलिन (1935) ने त्वचीय गति के चार प्रमुख निर्धारक बताये हैं

(1) दबाव[1]
(2) सातत्य[2] तथा अन्य सम्बन्धित कारक
(3) दृष्टि प्रतिमा
(4) गति सवेदना[3]

गति[4]

कभी-कभी त्वचा पर एक स्थल से दूसरे स्थल के मध्य गति की अनुभूति होती है। किन्तु गति का माध्यम शरीर की त्वचा न होकर त्वचा तल के ऊपर वायु मे होता है। इस अनुभूति के आधार कुछ लोग यह विचार रखते है कि त्वचीय गति की अनुभूति दृष्टि जन्य हैं। शरीर से भिन्न-भिन्न गति के लिए दृष्टि प्रतिमा वाहक का कार्य करती है। बर्टले के दोनो ही प्रकारो (दृष्टि प्रतिमा तथा कल्पनाजन्य त्वचीय गति तथा शुद्ध त्वचीय गति) का अध्ययन दिक् पर निर्भर करता है तथा दृष्टि अनुभव से युक्त होता है तथा दूसरे प्रकार का गति अनुभव प्रतिबन्धित होता है तथा शरीर मे निश्चित स्थान पर होता है तथा अधिक मूर्तत त्वचीय अनुभूति से सम्पन्न होता है।

श्रव्य गति—यदि दोनो कानो को अलग-अलग उत्तेजित किया जाय तथा दोनो उत्तेजको मे निरन्तर फेज[5] का अन्तर बना रहे तो श्रव्य गति की अनुभूति होती है। यहाँ फेज के अन्तर को जान लेना आवश्यक है। किसी एक ध्वनि तरग की दूसरी ध्वनि तरग के सन्दर्भ मे काल पर स्थिति को सूर्व ध्वनि का फेज कहते हैं। दो ध्वनि उत्तेजको के मध्य विद्यमान फेज का अन्तर जब 180° हो जाता है तब ध्वनि मूल स्थान की ओर कूदती प्रतीत होती है। इसे फैंटम ध्वनि कहा गया है। वर्ट (1917) ने गति के श्रव्य विपर्ययों का अध्ययन किया तथा उत्तेजक के प्रदशनकाल तथा गति अनुभव के लिए आवश्यक अन्तराल के म॰य महत्वपूर्ण सम्बन्ध प्राप्त किया। प्रदशनकाल अधिक होने पर कम तीव्रता का उत्तेजक गति अनुभव के लिये पर्याप्त होता है।

स्वपेशीय गति[6]—परिप्रेक्ष्य का गति से विशिष्ट सम्बन्ध का सर्वोत्तम उदाहरण स्वपेशीय गति है। दिक् परिप्रेक्ष्य के अभाव मे प्रकाश का स्थिर विन्दु गतिशील प्रत्यक्षित होता है। यदि किसी पूर्णत अन्धकारछन्न कक्ष मे कोई व्यक्ति किसी एक प्रकाश विन्दु पर अपनी दृष्टि केन्द्रित करे तो थोड़ी ही देर मे प्रकाश

---

1 Pressure irradiation 2 Preservation 3 Kinesthesis 4 Bow movement 5 Phase difference 6 Autofinetic movement

विन्दु किसी एक दिशा मे घूमता दृष्टिगोचर होता है। गति की दिशा तथा मात्रा मे पर्याप्त व्यक्तिगत भिन्नतायें प्राप्त होती हैं। 40 अश तक का विचलन का विवरण प्राप्त होता है। इस विषय का व्यापक अध्ययन समाज मनोविज्ञान मे प्रतिमान निर्माण की प्रक्रिया के सन्दर्भ मे किया जाता है। प्राय सभी निरीक्षक इस प्रकार की गति का अनुभव करते हैं। वस्तुत दिक् परिप्रेक्ष्य के अभाव मे निरीक्षक, प्रकाश विन्दु का स्थानीयकरण करने मे असफल रहता है। फलत प्रकाश विन्दु गतिशील प्रत्यक्षित होता है। अभ्यास के द्वारा प्रत्यक्षित (प्रकाश विन्दु की गति की मात्रा) परिष्कृत की जा सकती है।

आरोपित गति[1]—यदि पूर्णत अन्धकाराच्छादन कक्ष मे दो प्रकाशित आकृतियाँ उपस्थित की जायँ जिनमे से एक गतिशील हो और दूसरी स्थिर हो तो उनका प्रत्यक्ष उनके भौतिक स्वरूप पर उतना नही निर्भर करता है जितना दिक् सगठना के कुछ, तत्वों पर निर्भर करता है। उदाहरणार्थ, यदि दो आकृतियाँ उपस्थित की गई हो जिनमे से एक वडी और गतिशील हो तथा दूसरी स्थिर हो तो इस दशा मे वडी तथा गतिशील वस्तु पृष्ठभूमि आरोपित की गयी है। आरोपित गति, गति अनुभूति की दिक् सगठना पर निर्भरता का निदर्शन है।

सहायक ग्रन्थ सूची

आर्डिस, जे० ए० तथा फ्रेसर, इ० — पर्सनैलिटी एण्ड परसेप्शन दि कान्स्टैन्सी एफेक्ट्स एण्ड इन्ट्रोवर्जन, ब्रिटिश ज० साइका० 1957

आस्गुड, सी० इ० — मेथड्स एण्ड थियरी इन एक्सपेरीमेटल साइकालोजी 1960

इकेडा, एच० तथा ओवनाई, जे० — फिगुरल आफटर एफेक्ट, रिट्रोऐक्टिव एफेक्ट एण्ड साइमल्टैनियस इल्यूजन, वी० जा० ज० सा० 1955

एटकिन्सन, आर० वी० तथा एमोन्स, आर० वी० — एक्सपेरिमेन्टल फैक्टर्स इन विजुअन फार्म परसेप्शन 1952

एपस्टीन, डब्ल्यू० — वेराइटीज आफ परसेप्चुअल लर्निंग मैकग्राहिल 1967

एपस्टीन, डब्ल्यू तथा राक, — आई परसेप्चुअल सेट ऐज एन आर्टी फैक्ट आफ रिसेन्सी अमे० ज० साइकालोजी, 1960

कोहेन, आर० एल० — प्रावलम्व इन मोशन परसेप्शन, 1964

---

1 Induced movement

केन्केल, — विजुअल परसेप्शन, सी० एच० ग्राहम के लेख मे उद्धृत एम० एस० स्टिवेन्स सम्पादित हैण्ड बुक आफ एक्सपेरिमेटल साइकालोजी

कवेसवर्थ, के० — बुडरो के लेख, 'टाइम परसेप्शन' स्टिवेन्स सम्पादित हैड बुक आफ एक्सपेरिमेटल साइकालोजी मे उद्धृत, 1951

कोफ्का — दि प्रिंसपिल्स आफ गेस्टाल्ट साइकालोजी, न्यूयार्क हारकोर्ट प्रेस एण्ड वर्ल्ड, 1935

कोहलर, डब्ल्यू तथा वालेख एच० — फिगुरल आफ्टर ऐफेक्स ऐन इनेवस्टिगेशन आफ विजुअल प्रासेसीज प्रास्य अमे० पिलो० सो०, 1944

कोहलमैन, टी० — फ्रेसी द्वारा 'साइकालोजी आफ टाइम' मे उद्धृत, 1950

गिलिन्स्की, ए० एस० — दि एफेक्ट आफ एटीट्यूड आन दि परसेप्शन आफ साइज, अमे ज० साइका०, 1951

चेपनिस, ए०, तथा मैक्लियरी आर० ए० — इटरपोजीशन ऐज ए क्यू फार दि परसेप्शन आफ रिलेटिव डिस्टैन्स ज० जेनटिक साइकालोजी, 1953

फ्रेसी, पी० — साइकालोजी आफ टाइम, 1964

थार्नडाइक, इ० एल० — ह्यूमन लर्निंग, 1931

डे, आर० एच० — ऐप्लीकेशन आफ दि स्टैटिस्टिकल थियरी टू फार्म परसेप्शन, साइका० रिव्यू०, 1956

डे, आर० एच० — ह्यूमन परसेप्शन, वीली प्रकाशन, 1969

द्विवेदी, सी० बी० — रोल आफ रीइन्फोर्समेट एण्ड नानरीइन्फोर्समेट इन डिफरेंशियल परसेप्शन आफ विजुअल, 'आडिटोरी एण्ड काइने स्थेटिक आब्जेक्टस, अप्रकाशित पी० एच० डी० शोध प्रबन्ध बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, 1970

निउहास, डब्ल्यू — सी० एच० ग्राहम द्वारा 'विजुअल परसेप्शन' लेख से (स्टिवेन्स द्वारा सम्पादित हैण्ड बुक ऑफ एक्सपेरिमेटल साइकालोजी मे) उद्धृत 1930

नेफ, डब्ल्यू, एस० ए० — क्रिटिकल इन्वेस्टीगेशन आफ दि विजुअल ऐप्रिहेन्सन आफ मूवमेट, अमे० ज० साइका०, 1936

बर्टले — दि प्रिंसीपल आफ परसेप्शन, हार्पर तथा रो, 1958

मुस्टरबर्ग, एच० — (1889) वुडरो द्वारा 'टाइम परसेप्शन' स्टिवेन्स सम्पादित हैंड बुक आफ एक्सपेरिमेंटल साइकालोजी मे उद्धृत, 1951

म्यूमैन, इ० — (1893) एस० एन० राय के शोध प्रबन्ध 'दि एफेक्ट आफ प्रजेन्टेशन मेथड्स आन टाइम एस्टीमेशन, 1968

राय, एस० एन० — दि एफेक्ट आफ प्रजेन्टेशन मेथडस आन टाइम एस्टीमेशन, अप्रकाशित पी० एच०डी० शोध प्रबन्ध विश्वविद्यालय गोरखपुर रोसेन, 1968

वेवर, इ० जी० — फीगर एण्ड ग्राउण्ड इन दि विजुअल परसेप्शन आफ फार्म अमे० ज० साइका०, 1927

वीरोटरडट बुडरो के लेख — टाइम परसेप्शन' स्टिवेन्स द्वारा सम्पादित हैड बुक आफ एक्सपेरिमेटल साइकालोजी मे उद्धृत

हैमिल्टन, वी० — साइज कान्स्टैन्सी एण्ड इटेलीजेन्स, ए रिइग्जामिनेशन, ब्रिटिश ज० साइका०, 1966

अध्याय 6

प्रत्यक्षीकरण-निर्धारक

प्रत्यक्षीकरण तथा अधिगम

- दीर्घकालिक पूर्वानुभव का प्रभाव
- नियन्त्रित पूर्वानुभव तथा प्रायोगिक अभ्यास का प्रभाव
- प्रात्यक्षिक अन्तर्द्वन्द के अध्ययन
- विकासात्मक अध्ययन

प्रत्यक्षीकरण समूहीकरण के नियम

- निकटता
- समानता
- उत्तम निरन्तरता
- समान नियति
- परिसीमन
- समानुरूपता
- अभिविन्यास
- सहजता
- प्रत्यक्षीकरण समूहीकरण के नियमो की सामान्यता

प्रत्यक्षीकरण का सत्यता-भ्रम

- मुलर लायर भ्रम
- ऊर्ध्वाधार तथा क्षैतिज रेखा का भ्रम
- पोन्जो भ्रम
- पोगेन्डार्फ भ्रम
- भ्रम का मापन

भ्रम के प्रमुख सिद्धान्त

- आँखो की गति का सिद्धान्त
- समानुभूति का सिद्धान्त
- क्षेत्रीय कारक का सिद्धान्त
- परिप्रेक्ष्य या स्थिरता सिद्धान्त
- भ्रम पर अभिवृत्ति और अभ्यास का प्रभाव

प्रत्यक्षीकरण की चयनात्मकता

सेट

अभिवृत्ति

प्रेरणा

मूल्य

व्यक्तित्व

संवेग

पीडा तथा भय

प्रत्यक्षीकरण-निर्धारक

प्रत्यक्षीकरण तथा अधिगम

प्रत्यक्षीकरण और अधिगम की प्रकृति सैद्धान्तिक विवाद का विषय है। अस्तु, प्रत्यक्षीकरण और अधिगम का पारस्परिक सम्बन्ध का भी निर्धारण कई दृष्टियो से सभव है। ऐसी अवस्था मे प्रत्यक्षीकरण और अधिगम के सम्बन्धो को समझने के पूर्व इनके अर्थ को जान लेना श्रेयस्कर प्रतीत होता है। अधिगम वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा नई क्रिया उत्पन्न होती है या किसी क्रिया मे परिवर्तन होता है। इस प्रकार अधिगम व्यवहार मे परिवर्तन उत्पन्न करने वाली क्रिया है। परन्तु यह परिमार्जन अनुभवजन्य होता है न कि परिपक्वता, जन्मजात प्रवृत्ति या प्राणी की अस्थायी अवस्था से। स्पष्ट ही व्यवहार मे परिवर्तन के निरीक्षण से ही अधिगम का ज्ञान सभव है। इस दृष्टि से विचार करने पर प्रत्यक्षीकरण एक 'आनुमानिक' प्रक्रिया है।

प्रत्यक्षीकरण भी एक अनुमानिक प्रक्रिया है तथा अधिगम की ही भाँति इसका भी प्रत्यक्ष निरीक्षण सभव नही है। किन्तु 'प्रत्यक्षीकरण' का उपयोग 'प्रक्रिया' और 'परिणाम' दोनो अर्थो मे किया गया है। फलत प्रत्यक्षीकरण के स्वरूप के विषय मे अधिक विवाद है। किन्तु यह सभी मनोवैज्ञानिको द्वारा स्वीकृत है कि प्रत्यक्षीकरण के लिए किसी भौतिक उत्तेजक की उपस्थिति तथा उसके द्वारा किसी सग्राहक की उत्तेजना भी आवश्यक है। सग्राहक उत्तेजक के सपर्क की समाप्ति के पश्चात् भी प्रात्यक्षिक अनुभव कुछ काल तक विद्यमान रहता है। तत्पश्चात् वह स्मृति-छाप के रूप मे परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार प्रत्यक्षीकरण के लिए उत्तेजना तथा एक वाह्य अनुक्रिया दोनो ही अनिवार्य हैं।

साली तथा मर्फी (1960) ने प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया को निम्न रूप मे प्रस्तुत किया है —
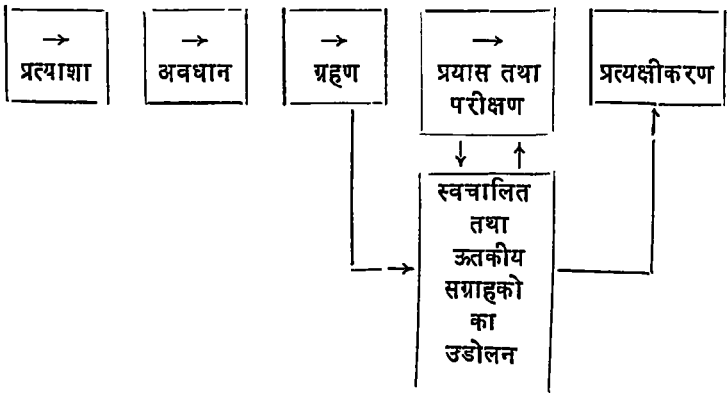
प्रत्यक्षीकरण का प्रथम चरण भौतिक उत्तेजना के ग्रहण के पूर्व विद्यमान प्रत्याशा है। यह प्रत्याशा व्यक्ति के प्रत्यक्षीकरण की दिशा नियन्त्रित करती है। दूसरा चरण उत्तेजक ग्रहण करने वाली अवधानात्मक क्रियाओ का है। तीसरा चरण सगाहको द्वारा उत्तेजना के ग्रहण का है। यह प्रक्रिया परिपक्वता पर निर्भर करती है परन्तु इसे अधिगम भी प्रभावित करता है। चतुथ चरण प्रयास तथा परीक्षण का है जो सूचना सग्रह तथा अतिम रूप के प्रत्यक्ष के मध्य विद्यमान रहता है। इसके अन्तर्गत अचेतन अनुमान तथा उपकल्पनाओ के परीक्षण आदि की क्रियायें आती हैं। पचम तथा अतिम स्तर 'रूप' का प्रत्यक्षीकरण है। इसे उत्तेजक छाप का Consolidation भी कहा जा सकता है। इस प्रक्रिया मे अर्थवत्ता भी समाविष्ट है।

अधिगम, प्रत्यक्षीकरण के ऊपर चर्चित विभिन्न स्तरो पर सक्रिय होकर प्रत्यक्षीकरण मे विविध प्रकार के परिवर्तन उत्पन्न करता है। प्रत्यक्षीकरण प्रक्रम मे अधिगम के प्रयोग को प्रात्यक्षिक अधिगम की सज्ञा दी गयी है। सम्प्रति प्रात्यक्षिक अधिगम के क्षेत्र विपय मे प्रभूत मात्रा मे अध्ययन सम्पन्न हो रहे है तथा अनेक सिद्धान्त प्रकाश मे आये है।

ऊपर की चर्चा से स्पष्ट है कि प्रात्यक्षिक अधिगम का आशय प्रत्यक्षीकरण मे अधिगम द्वारा उद्भूत परिवर्तन है। ये परिवतन अपरिवर्तित चाक्षुप उद्दीपन के प्रति प्रतिक्रिया के रूप मे होते है। इस दृष्टि से चक्षु या केन्द्रीय प्रक्षेपण क्षेत्र मे भौतिक रासायनिक स्थिति मे परिवर्तन प्रात्यक्षिक अधिगम के क्षेत्र से बहिष्कृत है। आकृतिक पश्चात् प्रभाव, रग दृष्टि मे समायोजन आदि प्रात्यक्षिक घटनाये भी सतृप्ति आदि के परिणाम होने के कारण प्रात्यक्षिक अधिगम मे नही आते।

अधिगम द्वारा प्रभावित घटनाओ की मात्रा बहुत अधिक है। अत इस आधार पर प्रात्यक्षिक अधिगम का विभाजन श्रेयस्कर नही है। अत प्रात्यक्षिक घटना मे परिवर्तन मे प्रयुक्त अधिगम प्रक्रिया की विशिष्टता के आधार पर विभाजन किया गया है (एपस्टीन, 1967)। यहाँ पर प्रात्यक्षिक अधिगम के प्रमुख प्रकारो का तथा उनके अन्तर्गत सम्पन्न हो रहे अध्ययनो का परिचय दिया जा रहा है।

दीर्घकालिक पूर्वानुभव का प्रभाव

दैनिक जीवन के अनुभवो के फलस्वरूप व्यक्ति परिवेश मे व्याप्त उत्तेजको के विपय मे अनेक मान्यताये विकसित कर लेता है। ये मान्यताये उत्तेजको के प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति को निर्धारित करती है। अनेक मनोवैज्ञानिको ने इस प्रकार की मान्यताओ द्वारा प्रत्यक्षीकरण के नियमन का प्रायोगिक अध्ययन किया है। इस प्रकार के अध्ययन मे प्राय दो प्रकार की विधियो का उपयोग किया गया है

(1) प्रथम विधि मे प्रयोगकर्त्ता प्रयोज्य के सम्मुख एक प्रतिमान उत्तेजक उपस्थित करता है तथा यह मापने का प्रयास करता है कि उस प्रतिमान उत्तेजक का प्रत्यक्षीकरण सामान्य अनुभव की मान्यताओ के साथ सम्पन्न हो रहा है या नही।

इस प्रकार के प्रयोगों का अभिकल्प इस प्रकार होता है कि मान्यताओं की प्रायोगिक अवस्था मे अभिव्यक्त हो सके ।

(2) दूसरी विधि मे किसी अस्वाभाविक प्रतिमान उत्तेजक के विषय मे प्रायोगिक अवस्था मे किसी मान्यता को स्थापित करने का प्रयास होता है । इसके लिए प्रयोज्य को किन्ही परस्पर असम्बद्ध उत्तेजकों के मध्य किसी प्रकार के सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कहा जा सकता है ।

इन विधियो को समझने के लिए यहाँ कुछ प्रायोगिक अध्ययनो का उल्लेख किया जा रहा है जिसमे दीर्घकालिक तथा प्रयोगावस्था मे विकसित मान्यताओ के प्रभाव का अध्ययन किया गया है ।

कार्लसन तथा टेसोन (1962) ने दूरी मे वृद्धि के साथ प्रत्यक्षित वस्तु के आकार मे ह्रास की प्रतीति की सामान्य मान्यता का अध्ययन किया । प्रयोग के प्रथम चरण मे प्रयोज्यो को एक वाचिक परीक्षण दिया गया जिसमे 12 पद थे । प्रत्येक पद तीन शब्दो से निर्मित था । इन पदो मे बडा—बहुत दूर—छोटा, निकट—बडा—बहुत दूर, छोटा—निकट—बडा, तथा बहुत दूर—निकट—चमकीला, ये पद महत्वपूर्ण पद थे । प्रयोज्यो की अर्थ विभेदन मापनी[1] पर प्रत्येक पद के मध्य वाले शब्द का किनारे वाले शब्दो के साथ सम्बन्ध की मात्रा व्यक्त करनी थी । दूसरे चरण मे प्रयोज्यो ने 10 से लेकर 40 फीट तक की विभिन्न दूरियो पर स्थित प्रतिमान उत्तेजक के आकार के विषय मे निर्णय लिया ।

उक्त अध्ययन मे वाचिक परीक्षण के द्वारा आकार—दूरी तथा चमक—दूरी के साहचर्य का अध्ययन किया गया । प्रयोज्यों की अनुक्रियाओं से ज्ञात हुआ कि 'छोटा', 'मद्धिम', 'अधिक दूर' या 'दूर' के साथ सम्बद्ध था तथा 'बडा' और 'चमकीला' 'निकट' के साथ सम्बद्ध था । ये परिणाम आकार तथा दूरी के मध्य विद्यमान सम्बन्ध के विषय मे सामान्य मान्यता को व्यक्त करते हैं । प्रयोग के दूसरे चरण मे प्रयोज्यो द्वारा दूरी के विषय मे जो निर्णय लिये गये वे प्रथम चरण के आकार तथा दूरी के सम्बन्ध मे व्यक्त साहचर्य के साथ धनात्मक रूप से सहसम्बद्ध थे । इस प्रकार यह प्रयोग व्यक्ति के सामान्य जीवन की मान्यता का प्रत्यक्षीकरण पर प्रभाव का स्पष्ट निदर्शन करता है ।

दूसरी प्रयोगविधि का उपयोग वेयर्ड (1963) ने अनुमानित आकार पर प्रत्यक्षित दूरी की निर्भरता के अध्ययन मे किया । इस प्रयोग मे प्रयोज्यो के सम्मुख एक 12 इच ऊँचे सर्वांगसम त्रिभुज को न्यून एकाक्षीय दृष्टि की अवस्था मे 25 फीट की दूरी पर उपस्थित किया गया । तत्पश्चात् उसी दूरी 6, 12 तथा 24 इच लम्बी एक आयताकार प्रकाश की पट्टी उपस्थित की गयी तथा यह कहा गया कि 'यह 12 इच का एक रूलर है ।' तत्पश्चात् त्रिभुज दिखाया गया और कहा गया कि

---

1 Semantic differential scale

त्रिभुज उतनी ही दूरी पर है जितनी दूरी पर प्रकाश की पट्टी थी। इस प्रकार एक ही त्रिभुज को अनेक आभासी आकार प्रदान किया गया। त्रिभुज का प्रत्यक्ष सामान्य रूलर की अवस्था मे 12 इच, बडे रूलर की दशा मे 6 इच तथा छोटे रूलर की दशा मे 24 इच के आकार का बताया गया। आभासी आकार के ये अतर त्रिभुज की आभासी दूरी के निर्णय को भी प्रभावित किये थे ।

नियन्त्रित पूर्वानुभव तथा प्रायोगिक अभ्यास का प्रभाव

इस श्रेणी मे वे अध्ययन आते है जिनमे प्रयोग की अवस्था मे विशेप प्रकार के अभ्यास का प्रत्यक्षीकरण पर प्रभाव का अध्ययन किया गया है। ये अध्ययन अधिकाशत हेब्ब (1949) के सिद्धान्त द्वारा प्रेरित होकर किये गये हैं। इन अध्ययनो मे पूर्वानुभव का चाक्षुप विभेदन आदि प्रात्यक्षिक प्रक्रमो पर प्रभाव का 'स्थानान्तरण' के प्रारूप के अन्तर्गत अध्ययन किया गया है। मनोभौतिक अनुक्रिया मे ह्रास, वृद्धि तथा चयनात्मक प्रत्यक्षीकरण के विविध प्रकार के अध्ययन इसी श्रेणी मे आते है। यहाँ पर एक अध्ययन का उल्लेख किया जा रहा है जिसमे दूरी के वाचिक निर्णय पर अभ्यास के प्रभाव का अध्ययन किया गया है।

गिब्सन तथा बर्गमैन (1954) ने प्रायोगिक तथा नियन्त्रित समूहो की सहायता से दूरी के वाचिक निर्णय पर अभ्यास का अध्ययन किया। दोनो समूहो को 52 से लेकर 395 गज की दूरी के मध्य की दूरियो के 18 अशुद्ध वाचिक अनुमान दिये गये। प्रायोगिक समूह को 39 से 435 गज की दूरी के मध्य की अनेक दूरियो के शुद्ध निर्णय के 90 अवसर प्रदान किये गये। इसके विपरीत नियन्त्रित समूह को कोई प्रशिक्षण नही दिया गया। अभ्यास के प्रभाव का मापन तीन प्रकार के मापको–शिथराशुद्धि, परवर्ती अशुद्धि तथा प्रयासो की अशुद्धि का प्रयोग किया गया। प्रायोगिक तथा नियन्त्रित समूहो की तुलना से ज्ञात हुआ कि प्रायोगिक समूह ने नियन्त्रित समूह की अपेक्षा स्वल्पस्थिराशुद्धि की।

प्रात्यक्षिक अन्तर्द्वन्द्व के अध्ययन

अनेक परिस्थितियो मे प्रत्यक्षीकरण के लिए पर्याप्त सूचना उपलब्ध रहती है। दूसरे शब्दो मे, अनेक सकेत उपलब्ध रहते हैं। ऐसी अवस्था मे विभिन्न प्रकार के सकेतो के पारस्परिक सम्बन्ध तथा उनके सापेक्ष्य महत्व का अध्ययन सभव है। उदाहरणार्थ किसी प्रयोग मे ऐसी प्रायोगिक स्थिति उत्पन्न की जा सकती है जिसमे विभिन्न सकेत परस्पर विरोधी अवस्था मे विद्यमान हो सकते हैं। ऐसी परिस्थिति मे प्रत्यक्षीकरण किस सकेत द्वारा निर्देशित होता है इसका अध्ययन किया जा सकता है। सकेत व्यवस्था तथा प्रत्यक्षीकरण के सामान्य सम्बन्ध का अध्ययन इसी प्रकार के अध्ययनो द्वारा सभव है।

इस प्रकार का एक अध्ययन वालेख, मूर तथा डेविड्सन (1963) ने किया। इन प्रयोगकर्त्ताओ ने प्रयोज्यो के सम्मुख अतिशय अक्षिपटलीय वैपम्य को दूरी की

सूचना के साथ परस्पर विरोधी अवस्था मे उपस्थित किया । यह कार्य गतिशील रूप के प्रयोग द्वारा सम्पन्न किया गया । इसके फलस्वरूप व्यक्ति की प्रत्यक्षित दूरी तथा वैषम्य के मध्य सामान्य सम्बन्ध का शीघ्र परिमार्जन हुआ तथा वाद के स्थानान्तरण परीक्षण मे भी उक्त परिमार्जन की पुष्टि हुई । सम्प्रति प्रात्यक्षिक अन्तर्द्वन्द्व के अध्ययन द्वन्द्वात्मक प्रात्यक्षिक दशाओ मे अधिगम को नियमित करने वाले उत्तेजक परिवर्त्यों की गवेषणा के विषय मे किये जा रहे हैं । इसके अतिरिक्त कुछ अध्ययन इस प्रकार के अधिगम के अभिप्रेरणात्मक आधार के ज्ञान प्राप्त करने के लिए भी किये जा रहे हैं ।

विकासात्मक अध्ययन

आयु मे वृद्धि के अनुरूप प्रत्यक्षीकरण मे अनेक प्रकार के परिवर्तन होते हैं । गेस्टाल्ट विचारधारा तथा पियाजे द्वारा किये गये अध्ययनो से प्रेरित होकर ऐसे परिवर्तनो के विषय मे अनेक विकासात्मक अध्यगन किये गये हैं । इन अध्ययनो मे विभिन्न प्रात्यक्षिक क्रियाओ के मूलस्वरूप तथा उनमे आयु मे वृद्धि के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तनो का अध्ययन किया गया है । साथ ही इन परिवर्तनो को निर्धारित करने वाले अनाश्रित कारको का भी अध्ययन किया गया है । दूरी, गति और रूप के प्रत्यक्षीकरण का प्रभूत मात्रा मे विकासात्मक अध्ययन हुआ है । यहाँ पर दूरी के प्रत्यक्षीकरण के एक विकासात्मक अध्ययन का उल्लेख किया जा रहा है ।

होलविल (1964) ने दूरी के निर्णयो पर अभ्यास के प्रभाव का अध्ययन किया । प्रयोज्यो को एक वडे वाक्स मे एक ऑख से निरीक्षण करना था । विभिन्न अभिकल्पो के उपयोग से वाक्स के धरातल की सरचना को शून्य सरचना से विभिन्न मात्रा की सघनता और नियमितता के मध्य घटाया-वढाया जा सकता था । प्रयोज्यो को 90 सेन्टीमीटर लम्बे वाक्स के धरातल को दो वरावर भागो मे वाँटना था । दूरी को एक लाल तीर के निशान द्वारा रेखाकित किया गया था । प्रयोज्य को प्रयोगकर्त्ता को निर्देश देना था । प्रयोगकर्त्ता जव लाल तीर के निशानो के ठीक-ठीक वीच मे पहुँच जाय तव उसे रोक देना था । ६ प्रकार के धरातलो के लिए आरोही तथा अवरोही क्रम मे निर्णय प्राप्त किये गये । निर्णय लेने के वाद एक प्रयास अभ्यास के लिए दिया जाता था । पाँच समूह के प्रयोज्यो ने इस प्रयोग मे भाग लिया । 6 वर्ष 10 मास, 8 वर्ष 10 मास, 11 वर्ष, 13 वर्ष 11 मास तथा 16 वर्ष 10 मास की औसत आयु वाले पाँच समूहो पर प्रयोग किया गया । प्रयोग से धरातल के विभाजन विषयक निर्णय तथा आयु के मध्य सार्थक सम्वन्ध प्राप्त हुए । आयु मे वृद्धि के साथ इस प्रकार के निर्णय मे अशुद्धि की मात्रा मे क्रमिक वृद्धि का प्रमाण प्राप्त हुआ ।

गिव्सन, गिव्सन, पिक तथा ओसेर (1962) ने अक्षरतुल्य रूप के विभेदन की क्षमता के विकास का अध्ययन किया है । इसके अतिरिक्त ग्रेनट (1957) ने आभासी गति का विकासात्मक अध्ययन किया है ।

विकासात्मक अध्ययनो मे विभिन्न आयु के स्तरो पर विद्यमान प्रात्यक्षिक अनुक्रिया के स्वरूप का तो पर्याप्त मापन हुआ है तथा उनके मध्य विद्यमान अतरो का उल्लेख किया गया है। किन्तु ये अतर किन कारणो से उत्पन्न होते हैं इसके अध्ययन का स्वल्प प्रयास ही किया गया है। आयु के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तनो की व्याख्या के लिए अतिरिक्त अध्ययन अपेक्षित है।

प्रत्यक्षीकरण समूहीकरण के नियम

प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया एक व्यवस्थित एव सगठित प्रक्रिया है और परिवेश मे विद्यमान उत्तेजक सगठित आकृति के रूप मे प्रत्यक्षित होते है। परन्तु दृष्टिक्षेत्र मे सदैव एक ही उत्तेजक नही रहता है। अपितु एक ही साथ अनेक उत्तेजक विद्यमान रहते है। ये सभी उत्तेजक समूह के रूप मे एकत्र होकर प्रत्यक्षित होते हैं। उत्तेजको का इस प्रकार का समूहीकरण स्वच्छन्द न होकर कुछ नियमो के द्वारा अनुशासित रहता है। समष्टिवादी गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिको ने इन नियमो का व्यापक अध्ययन किया है। वर्थाइमर (1923) ने इन नियमो का प्रायोगिक निदर्शन किया। इन नियमो की प्रवृत्ति सगठन की सुन्दरता की ओर अभिमुख होती है। ये नियम अनुभव द्वारा अर्जित न होकर उत्तेजक मे निहित होते हैं। ये उत्तेजक की उन विशेषताओ के साथ आवद्ध है जो उत्तेजको को एक सरूप के रूप मे प्रत्यक्ष करने के लिए व्यक्ति को वाध्य करती हैं। यहाँ पर उत्तेजक की प्रकृति से सम्बद्ध कुछ प्रमुख समूहीकरण के नियमो का उल्लेख किया जा रहा है।

(1) निकटता

दृष्टिक्षेत्र मे विद्यमान उत्तेजको का एक सरूप के रूप मे सगठन उत्तेजक
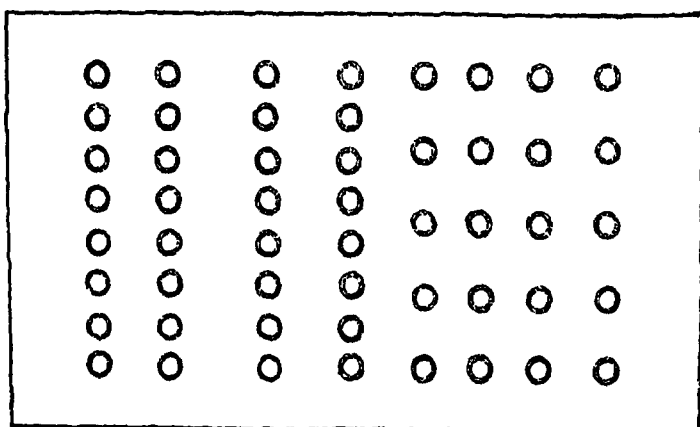
चित्र सख्या 6 1 निकटता का नियम

अवयवो के मध्य की दूरी द्वारा निर्धारित होता है। परस्पर निकट उत्तेजक एक समूह का निर्माण करते हैं। इसके लिए उपर्युक्त चित्र द्रष्टव्य है।

प्रस्तुत चित्र मे पक्ति के रूप मे एक प्रकार के उत्तेजको का अनुभव हो रहा है। कई परिस्थितियाँ ऐसी होती है कि अनेक समूहो का निर्माण सभव होता है। ऐसी स्थिति उस समूह का प्रत्यक्षीकरण होता है जो न्यूनतम दूरी के आधार पर बनता है।

(2) समानता

जब कोई अन्य प्रतियोगी प्रात्यक्षिक नियम सक्रिय नही होता है तब प्रात्यक्षिक सगठन समानता द्वारा नियत्रित होता है जिसके फलस्वरूप दृष्टिक्षेत्र मे स्थित समान अवयव वाले उत्तेजक एक समूह के रूप मे प्रत्यक्षित होते है। निम्न चित्र मे यह नियम प्रदर्शित है।

O X O X O X O
O X O X O X O
O X O X O X O
O X O X O X O
O X O X O X O
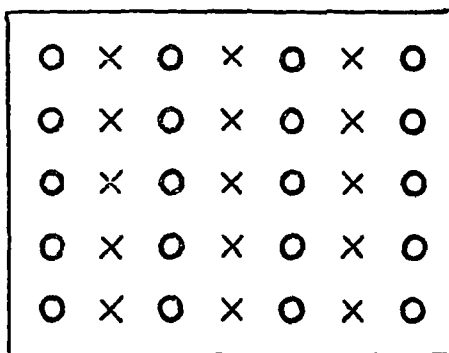
चित्र सख्या 6 2 समानता का नियम

उक्त चित्र मे X आकृति O आकृति के अधिक निकट है और इसी प्रकार O आकृति X आकृति के अधिक निकट है किन्तु X तथा X एक समूह और O तथा O एक दूसरे समूह के रूप मे प्रत्यक्षित होते हैं। इस प्रकार का समूहीकरण समानता के कारण ही सभव है।

(3) उत्तम निरन्तरता[1]

यदि अनेक सगठनो का निर्माण सभव होता है तो केवल उसी सगठन का प्रत्यक्षीकरण होता है जिसमे विच्छिन्नता का अभाव रहता है। निम्न चित्र मे हमारा प्रत्यक्षीकरण एक (निरन्तर उत्तेजक) तरग का अनुभव हो रहा है। उक्त उत्तेजक का प्रत्यक्ष विच्छिन्न रूप मे (ख) की भाँति भी हो सकता है। किन्तु हमारा प्रत्यक्षीकरण 'ख' की तरह न होकर 'क' की तरह होता है।

---

1 Good continuation
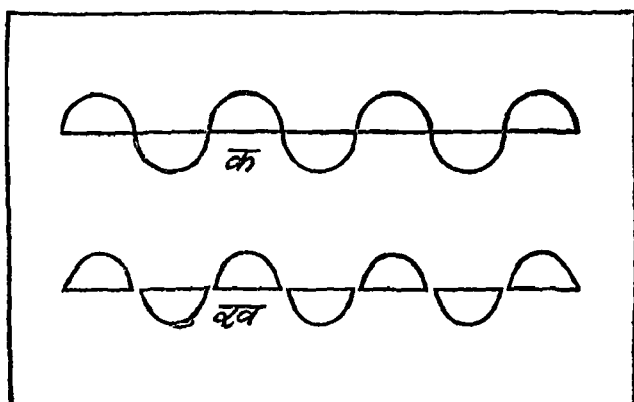
चित्र सख्या 6 3 निरन्तरता का नियम

(4) समान नियति[1]

यह नियम गतिमान् उत्त जक अवयवो के प्रत्यक्षीकरण मे अनुभूत होता है। निम्न चित्र के 'क' खड मे कुछ बिन्दु याहच्छिक क्रम मे रखे गये हैं। इन बिन्दुओं मे से यदि कुछ बिन्दुओ को गाढा कर दिया जाय तो 'म' अक्षर का प्रत्यक्षीकरण सभव है। यह चित्र के 'ख' खड मे व्यक्त है। यह परिणाम इन बिन्दुओ को एक साथ गतिशील होने पर भी प्राप्त किया जा सकता है। 'म' अक्षर का अनुभव एक विशेष प्रकार की समानता, समानगति या समान नियति के कारण सभव है।
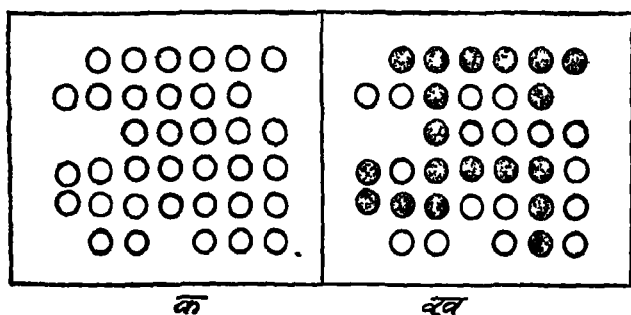
चित्र सख्या 6 4 समान नियति का नियम

(5) परिसीमन[2]

अनेक परिस्थितियो मे प्रात्यक्षिक सगठन उत्तेजक की सीमा द्वारा निर्धारित होता है। सीमावद्ध क्षेत्र अपूर्ण और सीमाहीन क्षेत्रो की तुलना मे अधिक शीघ्रता से प्रत्यक्षित होता है। यह नियम चित्र 6 5 मे परिलक्षित है।

---

1 Common fate 2 Closure
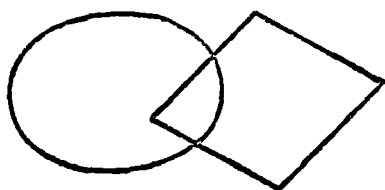
चित्र सख्या 6 5 परिसीमन का नियम

ऊपर के चित्र मे दो आकृतियो का प्रत्यक्षीकरण हो रहा है न कि तीन आकृतियो का। इस प्रकार का प्रत्यक्षीकरण परिसीमन के ही कारण सम्भव होता है।

(6) समानुरूपता[1]

किसी क्षेत्र के 'रूप' की समानुरूपता के ही अनुपात मे वह रूप आकृति के स्वरूप मे प्रत्यक्षित होता है।

निम्न चित्र के क खड मे सफेद स्तम्भ काली पृष्ठभूमि मे प्रत्यक्षित होते है जब कि ख खड मे काले स्तम्भ सफेद पृष्ठभूमि मे प्रत्यक्षित होते हैं। यह प्रत्यक्षीकरण समानुरूपता द्वारा निर्देशित है।
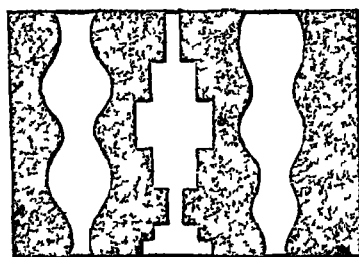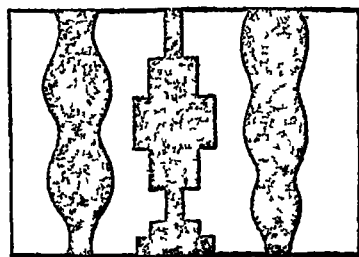
चित्र सख्या 6 6 समानुरूपता का नियम

(7) अभिविन्यास[2]

कुछ सरूपो मे दिक् अभिविन्यास के साथ उत्तेजक का सम्बन्ध प्रत्यक्षित रूप को प्रभावित करता है। रूविन ने इस नियम का पर्याप्त अध्ययन किया। निम्न चित्र मे 'क' खण्ड के वृत्त मे काले क्रास का ऊर्ध्वाधार तथा क्षैतिज दशा मे निर्माण हुआ है जबकि 'ख' खण्ड मे क्रास दूसरे कोण पर निर्मित है। अभिविन्यास के नियम के अनुरूप 'क' खण्ड मे बनी काली आकृति का क्रास के रूप मे प्रत्यक्षीकरण अधिक सभावित है।

---

1 Symmetry 2 Orientation
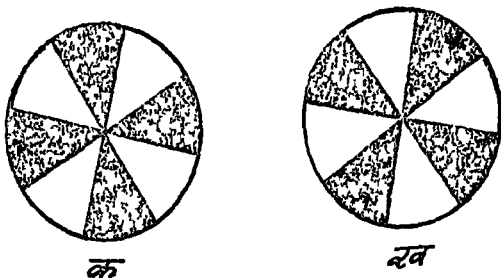
चित्र सख्या 6 7 अभिविन्यास का नियम

(8) सहजता

उत्तेजको के प्रत्क्षीकरण की अनेक वैकल्पिक सभावनायें होती है किन्तु सभी विकल्पो का प्रत्यक्षीकरण हम नही करते । केवल एक विकल्प का ही प्रत्यक्षीकरण होता है जो दूरी तथा रेखा आदि की सर्वाधिक एकरूप व्यवस्था को व्यक्त करता है तथा उत्तेजक सरूप के अनुरूप होता है। परावर्तनशील आकृतियो के प्रत्यक्षीकरण मे इस सहजता के नियम का प्रमाण प्राप्त हुआ है। निम्न चित्र मे अनेक सम्भावनायें है किन्तु केवल उसी विकल्प का प्रत्यक्ष होता है जो दूरी तथा सीमा रेखा का ऐसा सगठन है जो सर्वाधिक एक रूप वस्तु गुण से सम्पन्न है। हम एक रूप क्रास का प्रत्यक्षीकरण एक आवृति के रूप मे कर रहे हैं न कि भिन्न-भिन्न आकृतियो के रूप मे ।
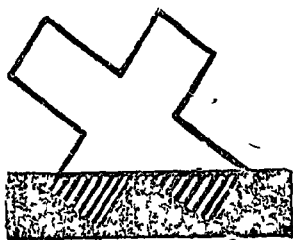
चित्र सख्या 6 8
सहजता का नियम

प्रत्यक्षीकरण समूहीकरण के नियमो की सामान्यता

गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिको ने ऊपर चर्चित नियमो का व्यापक अध्ययन किया है। इसके अतिरिक्त अनेक अध्ययन इन नियमो के ऊपर विभिन्न परिवर्त्यों के प्रभाव के विपय मे तथा इनके सामान्यीकरण के विपय मे किये गये है। यहाँ पर इस प्रकार के कुछ प्रमुख अध्ययनो का उल्लेख अप्रासगिक न होगा ।

मुसट्टी (1931) ने ऊपर चर्चित नियमो को 'एकरूपता'[1] के नियम के रूप मे सामान्यीकृत किया है। प्रत्यक्षीकरण मे हम एक न्यूनतम सिद्धान्त का पालन करते हैं और यदि अन्य कारक स्थिर हो तो सहजतम और एकरूप आकृति का प्रत्यक्ष होता है। जेम्स (1890) ने यह विचार व्यक्त किया था कि सर्वाधिक सभाव्य और निश्चित विकल्प का ही प्रत्यक्षीकरण होता है। ब्रन्स्विक ने इसे स्पष्ट किया और कहा कि वस्तुओ की किसी उपलब्ध व्यवस्था को किसी सरूप विशेप की उत्तेजना

1 Homogeneity

के प्रति प्रतिक्रिया करने की प्रवृत्ति उक्त सत्ता की उत्तेजना ग्रहण करने की बारम्बारता पर निर्भर करती है। यह सिद्धान्त अधिगम पर आवृत है। हम जिस रूप का प्रत्यक्ष करते है वह संवेदना द्वारा ही नही अपितु व्यक्ति के पूर्वानुभव पर निर्भर करता है।

प्रत्यक्षीकरण की संगठना के इन नियमो की प्रायोगिक प्रमाणो द्वारा भी पुष्टि हुई है। ये नियम निश्चित रूप से प्रात्यक्षिक अनुभव के संगठन का दिशा निर्देश करते है।

प्रत्यक्षीकरण का सत्यता-भ्रम

सामान्य विचारधारा के अनुसार प्रत्यक्षीकरण व्यक्ति के परिवेश मे व्याप्त उत्तेजको का अन्तरिक परिशुद्ध प्रतिनिधित्व करना है तथा अक्षिपटल पर निर्मित प्रतिमा भौतिक उत्तेजक का विश्वस्त प्रतिरूप होती है। किन्तु दैनिक जीवन मे अनुभूत विभिन्न प्रकार के भ्रम इस विचारधारा को पुष्ट नही करते। हमारे प्रत्यक्षीकरण और भौतिक वस्तु दोनो के मध्य सदैव एकरूपता प्राप्त नहीं होती। अब यह स्पष्ट हो चुका है कि अक्षिपटल की प्रतिमा भौतिक वस्तु की वास्तविक प्रतिलिपि नहीं होती है। यह प्रतिमा प्रत्यक्षीकरण का मात्र प्रथम चरण है। हमारा प्रत्यक्षीकरण अनेक परिवेशीय, प्राणिगत तथा उत्तेक्षक कारको की जटिल अन्तःक्रिया की परिणति होता है। फलत हमारा प्रत्यक्षीकरण सदैव यथार्थ नही हुआ करता। अनेक प्रकार के उत्तेजको की प्रत्यक्षित लम्बाई, वक्रता आदि उस वस्तु की वास्तविक लम्बाई और वक्रता से भिन्न होती है। ऐसी घटनाओ को भ्रम की संज्ञा दी गयी है। प्रत्यक्षीकरण की यह अशुद्धि यादृच्छिक न होकर विशेष परिवर्तन से सम्बद्ध रहती है तथा सामान्य वातावरण, अनियमित आकृतियो मे तथा वास्तविक भौतिक वस्तुओ के अनुभव मे भी दृष्टिगोचर होती है। इन भ्रमो का अध्ययन रूप प्रत्यक्ष की व्याख्या के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ है।

अनेक परिस्थितियो मे ये भ्रम पूर्णाकृति तथा अंश के मध्य की अंतःक्रिया पर या विभिन्न अंशो के मध्य की अंतःक्रिया पर निर्भर करते हैं। मनोवैज्ञानिको ने अनेक प्रकार के भ्रमो का अध्ययन किया है। यहाँ पर कुछ प्रमुख भ्रमो का उल्लेख किया जा रहा है।

(1) मुलर लायर भ्रम
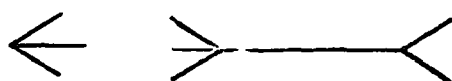
चित्र संख्या 6 9 मुलर लायर भ्रम

पूर्णाकृति के अंग होने का अंग के प्रत्यक्षीकरण पर प्रभाव का प्रमुख निदर्शन मुलर लायर भ्रम है। यह भ्रम उपर्युक्त चित्र द्वारा प्रदर्शित है।

चित्र मे प्रदर्शित दोनो ही रेखाये समान हैं किन्तु खुले पखो वाली रेखा अन्य रेखा से बडी प्रतीत होती है। एक पूर्ण आकृति दूसरी पूर्ण आकृति से वडी है। दोनो रेखाओ को एक आकृति के अगो के रूप मे न देखने से यह भ्रम होता है। इस अवधारणा की पुष्टि वर्पिल्लाट (1963) के अध्ययन द्वारा हुई। इन्होने बच्चो मे अधिक मात्रा मे भ्रम प्राप्त किया क्योकि बच्चे आकृति से अश को अलग करने मे सक्षम नही होते। यदि भ्रम की आकृति को कई बार उपस्थित किया जाय या अधिक काल तक दिखाया जाय तो भ्रम की मात्रा मे कमी होती है। यदि प्रयोज्य विश्लेपक अभिवृत्ति का है तब भी भ्रम की माला मे कमी होती है। आँख की गति का भी अध्ययन किया गया है तथा यह परिणाम प्राप्त हुआ है कि आँख की अधिक गति होने पर रेखा लम्बी प्रतीत होती है तथा आँख की गति कम होने पर रेखा छोटी प्रतीत होती है।

(2) **ऊर्ध्वाधार तथा क्षैतिज रेखा का भ्रम**

यदि व्यक्ति को समान लम्बाई की ऊर्ध्वाधार तथा क्षैतिज रेखायें उपस्थित की जायँ तो ऊर्ध्वाधार रेखा का अधिकानुमान होता है और वह क्षैतिज रेखा से बडी प्रत्यक्षित होती है। यह भ्रम प्रस्तुन चित्र मे प्रदर्शित है।

यह भ्रम परिवेशीय प्रभाव द्वारा निर्धारित होता है। साथ ही दृष्टि-क्षेत्र के विभिन्न अगो मे आभामी मात्रा मे अतर भी महत्वपूर्ण कारक है। यह भ्रम वास्तविक जीवन मे दृष्टिगत होता है। अधिक लम्बी वस्तुओ के ऊर्ध्वाधार आयाम का हम अधिकानुमान करते है। इस भ्रम मे अत सास्कृतिक अन्तर भी प्राप्त किये गये है।

चित्र सख्या 6 10 ऊर्ध्वाधार तथा क्षैतिज रेखा का भ्रम

(3) **पोन्जो भ्रम**[1]

यह भ्रम अश तथा पूर्णाकृति के मध्य के सम्वन्ध पर निर्भर करता है।
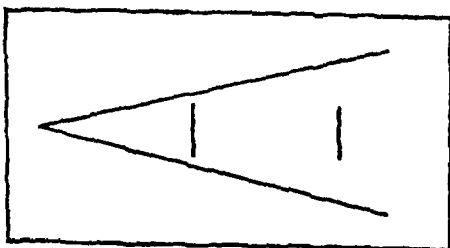
चित्र सख्या 6 11 पोन्जो भ्रम

उपर्युक्त चित्र मे कोण की दोनो रेखाओ के वीच दो स्थानो पर दो छोटी रेखाये

1 Ponzo

अकित है । एक रेखा कोण की दोनो रेखाओ के सम्मिलन स्थल के निकट है जब कि दूसरी रेखा दूर है । निकटस्थ रेखा दूरस्थ रेखा की अपेक्षा वडी प्रतीत होती है ।

अश के पूर्ण आकृति से स्वतत्र होने के फलस्वरूप इस भ्रम का अनुभव होता है । अत यह भ्रम पूर्ण अश के विभेदन पर निर्भर है । विभेदन की क्षमता वच्चो मे कम तथा वयस्को मे अधिक होती है । परिणामस्वरूप यह भ्रम वच्चो मे स्वल्प मात्रा मे तथा वयस्को मे अधिक मात्रा मे प्राप्त होता है ।

(4) पोगेन्डार्फ[1] भ्रम

यह भ्रम पूर्णाकृति के अगो को एकरूप करने की क्षमता पर निर्भर करता है । प्रस्तुत चित्र मे ऊर्ध्वाधार रेखाओ के साथ लगी दो स्वतन्त्र रेखायें सतत प्रतीत होती है । ये रेखायें भिन्न-भिन्न स्वतन्त्र रेखाओ के रूप मे प्रत्यक्षित नही होती हैं ।

ऊर्ध्वाधार रेखाओ के मध्य जितनी ही अधिक दूरी होती है उतना ही अधिक भ्रम होता है । इस भ्रम की मात्रा पर आयु का भी प्रभाव पडता है । पाँच से दस वर्ष की आयु के मध्य भ्रम की मात्रा मे क्रमिक ह्रास का प्रमाण प्राप्त किया गया है ।

चित्र सख्या 6 12
पोगेन्डार्फ भ्रम

भ्रम का मापन

ज्यामितिक भ्रमो के मापन मे समायोजन तथा सतत उद्दीपक विधि का प्रयोग किया गया है । पहली विधि के अन्तर्गत प्रयोज्य को उत्तेजक दिया जाता है तथा उसे समायोजित करने के लिए कहा जाता है । उदाहरणार्थ, मुलर लायर भ्रम के अध्ययन मे (>—<) तथा (←→) रेखाओ को एक समान करने के लिए कहा जायगा । प्रयोज्य द्वारा कहा समायोजन करने के पश्चात् अशुद्धि की मात्रा का मापन किया जाता है । यह मापन अनेक प्रयासो मे किया जाता है जिससे विचलन तथा स्थिराशुद्धि का मापन सम्भव हो जाता है । दूसरी विधि के अन्तर्गत एक आकृति स्थिर लम्बाई की होती है । यह प्रतिमान उत्तेजक कहा जाता है । दूसरी आकृति परिवर्तित होती रहती है । प्रयोज्य प्रत्येक प्रयास मे यह निर्णय लेता है कि दूसरी आकृति पहली आकृति के समान है, छोटी है या वडी है । इस प्रकार के आरम्भिक अध्ययन हेमन्स (1896) तथा जड (1899) ने किये थे । सम्प्रति उत्तेजक सरूप मे परिवर्तन के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तनो के मात्रात्मक मापन के विषय मे हो रहे हैं ।

---

1 Poggendorff

भ्रम के प्रमुख सिद्धान्त

भ्रमो के विपय मे पर्याप्त मात्रा मे अध्ययन सम्पन्न हुए है फलत अनेक प्रकार के भ्रम प्रकाश मे आये है तथा इन भ्रमो की सम्यक् व्याख्या के लिए अनेक सिद्धान्त भी प्रस्तुत किये गये है। कुछ प्रमुख सिद्धान्तो का उल्लेख किया जा रहा है।

(1) आँख की गति का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार लम्वाई की अनुभूति उत्तेजक के एक सिरे से दूसरे सिरे तक आँख को घुमाने से सम्भव होता है। उदाहरणार्थ, ऊर्ध्वाधर-क्षैतिज भ्रम (चित्र स० 9) की व्याख्या इस सिद्धान्त के अनुसार इस प्रकार होगी—समान दूरी के लिए भी ऊर्ध्वाधर गति मे क्षैतिज गति की अपेक्षा अधिक प्रयास की आवश्यकता होती है। फलत क्षैतिज रेखा (—) की अपेक्षा ऊर्ध्वाधर रेखा (|) लम्बी प्रतीत होती है। इस सिद्धान्त की समीचीनता के विपय मे प्रमुख आक्षेप यह है कि आँख की गति न प्रदान करने वाले बहुत स्वल्प प्रदर्शन काल मे भी ये भ्रम प्रत्यक्षित होते हैं। यार्बुस (1967) ने मुलर लायर भ्रम की आकृति के निरीक्षण के समय होने वाली आँख की गति का चित्र लिया और आकृति के दोनो छोरो की भिन्न आकृतियो तथा आँख की गति के मध्य सम्वन्ध निर्धारित करने का प्रयास किया। किन्तु ये सम्बन्ध आँख की गति के सिद्धान्त के अनुरूप व्याख्या नही कर पाते।

इस सिद्धान्त के पोषको ने यह मत भी व्यक्त किया है कि उत्तेजक सरूप स्वय ही ऊपर चर्चित प्रणाली की आँख की गति की प्रवृत्ति स्थापित कर देता है। यह प्रवृत्ति ही लम्बाई के अनुभव के लिए पर्याप्त होती है। पर यह विचारधारा प्रायोगिक परिणामो द्वारा पुष्ट नही हो सकी है।

(2) समानुभूति[1] का सिद्धान्त

लिप्स (1897) ने वास्तु कृतियो के सौन्दर्यात्मक प्रभावो की व्याख्या इस आधार पर करने का प्रयास किया कि निरीक्षक अपने कार्यों के रूप मे सावेगिक प्रतिक्रिया करता है। उदाहरणार्थ, ऊर्ध्वाधर रेखा, आकर्पण का प्रतिरोध करती है और अधिक प्रयास अपेक्षित है इसको ओर सकेत करती है। इसके फलस्वरूप समान होने पर भी ऊर्ध्वाधर रेखा क्षैतिज रेखा की अपेक्षा लम्वी प्रतीत होती है। इसी प्रकार मुलर लायर भ्रम मे दाहिना अश विस्तार और वायाँ अश सीमा की ओर सकेत करता है। फलत दायाँ अश वडा प्रतीत होता है। इस सिद्धान्त के द्वारा सामान्य भ्रम की व्याख्या तो सम्भव है पर भ्रम के सभी पक्षो का विश्लेपण सम्भव नही।

(3) क्षेत्रीय कारक का सिद्धान्त

गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिको के अनुसार भ्रम किसी अश की प्रतीति के ऊपर समस्त

---

1 Empathy

क्षेत्र के प्रभाव का परिणाम है। आर्विमन ने इसी प्रकार की सैद्धान्तिक व्याख्या उपस्थित की है। इसके अनुसार आकर्षण की शक्तियाँ दृष्टि-क्षेत्र मे विद्यमान दो रेखाओ के बीच सक्रिय हो सकती हैं और ये शक्तियाँ विकर्षण शक्तियो के विरुद्ध होगी। इन्ही दोनो प्रकार की शक्तियो की सक्रियता से वुण्ट तथा हेरिंग के भ्रम अनुभूत होते हैं। रेखाओ के क्षेत्र मे भी एक ऐसा सतुलन क्षेत्र होता है जहाँ आकर्षण और विकर्षण की शक्तियाँ समान होती हैं और यदि कोई अन्य रेखा उस क्षेत्र मे जोडी जाती है, तो वह रेखा सतुलन केन्द्र की दशा मे परिवर्तित हो जाती है। वृत की रेखायें मूल आकृति मे जोडी जाने पर सतुलन क्षेत्र की प्रवृत्ति के अनुकूल परिवर्तित हो जाती हैं। फलत वृत्त की सीधी रेखाओ की अपेक्षा अशत वक्र रेखायें दृष्टिगत होती हैं। किन्तु आकर्षण तथा विकर्षण शक्तियो का यह सिद्धान्त अन्य ज्यामितिक भ्रमो की व्याख्या नही कर पाता है।

(4) परिप्रेक्ष्य या स्थिरता सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार किसी रेखा की लम्बाई की प्रतीति समस्त चित्र के परिप्रेक्ष्य द्वारा निर्धारित होती है। उदाहरणार्थ, किसी कलाकृति मे छोटी ऊर्ध्वाधर रेखा लम्बी क्षैतिज रेखा को व्यक्त कर सकती है। इसी प्रकार मुलर लायर भ्रम मे पख, परिप्रेक्ष्य को व्यक्त करता है और दाँयी ओर की रेखा दूर और लम्बी प्रतीत होती है और बाँयी ओर की रेखा छोटी प्रतीत होती है। भ्रम वस्तुत दूरी सकेतो के गलत उपयोग का परिणाम है। इस सिद्धान्त का प्रयोग प्राय सभी प्रकार के भ्रमो की व्याख्या के लिए किया गया है। विभिन्न अन्वेषको द्वारा किये गये अध्ययनो मे प्राप्त अत सास्कृतिक अन्तर के प्रमाण इस सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं।

सेगल, कैम्पबेल तथा हर्स्कोविट्स (1966) ने कुछ भ्रमो के प्रति यूरोपीय, अफ्रीकी तथा अन्य कई सस्कृतियो के समूहो से अनुक्रियाये प्राप्त की। परिणामो से ज्ञात हुआ कि यूरोपीय प्रयोज्यो ने मुलर लायर भ्रम के प्रति तथा सेण्डर के समानान्तर चतुर्भुज के प्रति अधिक अशुद्धि की और शेष सस्कृतियो के प्रयोज्यो ने ऊर्ध्वाधर और क्षैतिज रेखा के भ्रम के प्रति अधिक अशुद्धियाँ की।

परिप्रेक्ष्य सिद्धान्त के विरुद्ध निम्न आक्षेप प्रस्तुत किये गये हैं

(1) भ्रमो के मात्राविषयक जिन अन्तरो को सस्कृति विशेष का परिणाम कहा गया है वे अन्तर अन्य अज्ञात कारणो के परिणाम भी हो सकते हैं। ये अन्तर प्रात्यक्षिक अभिवृत्ति या सावेदिक अन्तर के भी परिणाम हो सकते हैं। अत वर्तमान ज्ञान की अवस्था मे सस्कृति विषयक उपकल्पना को स्वीकार करना अपरिपक्व होगा।

(2) बहुत से ऐसे भी भ्रम है जिनकी व्याख्या परिप्रेक्ष्य या स्थिरता सिद्धान्त द्वारा सम्भव नही है।

(3) जिन विशेष भ्रमो की व्याख्या इस सिद्धान्त द्वारा होती है उनकी

व्याख्या अन्य सिद्धान्तो द्वारा भी सम्भव है। कुन्नापास (1957) के अनुसार दृष्टि-क्षेत्र की सरचना के कारण (ऊर्ध्वाधर-क्षैतिज भ्रम मे) ऊर्ध्वाधर रेखा का अधिकानुमान होता है क्योकि यह दृष्टिक्षेत्र की सीमा के निकट पडता है।

हेल्मोज ने अचेतन अनुमान के प्रत्यय का उल्लेख किया है। इसके अनुसार हमारे प्रत्यक्षीकरण सावेदिक सूचना के आधार पर की गई गणना के परिणाम होते हैं। जब अचेतन अनुमान मे कोई त्रुटि होती है तो प्रत्यक्षीकरण अयथार्थ हो जाता है और भ्रम का अनुभव होता है। इस सदर्भ मे ग्रिगोरी ने दो प्रकार के प्रक्रमो पर प्रकाश डाला है।

(1) **प्राथमिक मापन**[1]—इसके अन्तर्गत प्रात्यक्षिक व्यवस्था विद्यमान दूरी के सकेतो के अनुरूप आकार विपयक निर्णय को स्वत शुद्ध करती है। इन दूरी सकेतो द्वारा गहराई के सकेत प्राप्त भी हो सकते हैं और नही भी प्राप्त हो सकते है।

(2) **द्वितीयक मापन**[2]—इसके अनुसार प्रत्यक्षित दूरी, प्रत्यक्षित आकार को निर्धारित करती है। भ्रम की अवस्था मे केवल ऊपर चर्चित प्राथमिक मापन ही प्रयुक्त होता है। क्योकि साधारण दृष्टि के लिए उपलब्ध विभिन्न सकेत रेखाओ के स्थान निरूपण मे सहायक होते है। सक्षेप मे, परिप्रेक्ष्य या स्थिरता सिद्धान्त अनेक प्रकार के भ्रमो की अशत सफल व्याख्या करता है।

भ्रम पर अभिवृत्ति और अभ्यास का प्रभाव

उपलब्ध परिणामो के आधार पर सभी प्रकार के भ्रमो की व्याख्या के लिए किसी एक सिद्धान्त को स्वीकार करना सम्प्रति सभव नही है। यहाँ पर यह भी स्मरणीय है कि भ्रम केवल उत्तेजक के गुणो पर ही निर्भर नही करता अपितु इसे व्यक्ति की अभिवृत्तियाँ और अधिगम भी प्रभावित करते है। एक उपयुक्त तथा स्वीकार्य सिद्धान्त के लिए यह आवश्यक है कि इन कारको को भी ध्यान मे रखा जाय।

वेनुसी ने मुलर लायर भ्रम के प्रत्यक्षीकरण पर प्रयोज्य की अभिवृत्ति के प्रभाव का अध्ययन किया। इस प्रयोग मे 'पूर्ण का प्रत्यक्षीकरण' तथा 'अशो का अलग अलग प्रत्यक्षीकरण' की दो अभिवृत्तियाँ प्रयोज्यो मे विकसित की गयी। परिणामो से ज्ञात हुआ कि प्रयोज्यो के प्रथम समूह मे (जो पूर्ण के प्रत्यक्षीकरण की अभिवृत्ति से युक्त था) भ्रम की मात्रा द्वितीय समूह की अपेक्षा अधिक थी।

इसी प्रकार अभ्यास के भी प्रभाव का अध्ययन किया गया है। दीर्घ अभ्यास से भ्रम की मात्रा मे कमी का प्रमाण प्राप्त हुआ है। लेविस (1908), सेल्किन एव वर्थाइमर (1957) तथा डे (1962) आदि ने मुलर लायर भ्रम मे अभ्यास के

---

1 Primary sealing 2 Secondary sealing

प्रभाव का अध्ययन किया। इन लोगो के प्रयोगो के परिणामो से स्पष्ट है कि अभ्यास के फलस्वरूप भ्रम की मात्रा कम होती है। पर यह परिणाम तभी पाया गया जब उत्तेजक सरूप मूल अवस्था मे ही विद्यमान रहा। यदि उसे थोडा भी परिवर्तित कर दिया जाय तो भ्रम की मात्रा बढ जाती है।

अभ्यास भ्रम को क्यो कम करता है, इसकी कई व्याख्याये उपस्थित की गयी है। एक व्याख्या के अनुसार प्रयोज्य भ्रम के विपय मे निर्णय के अभ्यास के अन्तर्गत एक विश्लेपक अभिवृत्ति विकसित कर लेना है तथा आकृति की दॉयी और बाँयी व्यवस्था के साथ अभियोजित पद्धति के प्रयोग द्वारा अपना ध्यान क्षैतिज रेखा की दिशा मे सीमित कर देता है। कोहलर तथा फिशवैक (1950) ने एक अन्य व्याख्या दी है जो सतृप्ति की प्रक्रिया पर निर्भर है। इसी प्रकार कोरेन तथा फेस्टिजर (1967) ने अनुपयुक्त अक्षिगति की शुद्धि का सिद्धान्त विकसित किया है।

प्रत्यक्षीकरण की चयनात्मकता

प्रत्यक्षीकरण परिवेश के उत्तेजक के प्रनि की गयी प्राणी की एक प्रतिक्रिया है। फलत प्रत्यक्षीकरण की व्याख्या उत्तेजक और प्राणी दोनो की ही विशेपताओ और गुणो के सम्यक् अव्ययन द्वारा ही सभव है। किन्तु प्रायोगिक मनोविज्ञान की आरम्भिक अवस्था मे मनोवैज्ञानिको की रुचि केवल उत्तेजको की व्याख्या तक ही सीमित रही और प्राणी की विशेपताओ की प्रत्यक्षीकरण मे क्या भूमिका है ? यह प्रश्न उपेक्षित-सा रहा। परन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद मनोवैज्ञानिक चिन्तन मे एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ और उत्तेजना—प्रतिक्रिया के व्यवहारवादी सिद्धान्त को परिष्कृत कर उत्तेजना—प्राणी--प्रतिक्रिया के सिद्धान्त को प्रतिष्ठित किया गया और प्रत्यक्षीकरण का अध्ययन प्राणी की विशेपताओ के दृष्टिकोण से किया जाने लगा।

सम्प्रति प्रेरणा, सेट, सवेग तथा व्यक्तित्व जैसे प्राणिगत कारको के प्रत्यक्षीकरण पर प्रभाव का प्रभूत मात्रा मे अध्ययन किया जा रहा है। ये केन्द्रीय कारक प्रत्यक्षीकरण को एक विशिष्ट दिशा मे निर्देशित करते हैं तथा वातावरण मे व्याप्त उत्तेजको का चयनात्मक प्रत्यक्षीकरण करने के लिए प्राणी को वाध्य करते है। उदाहरणार्थ, जब व्यक्ति मे एक विशेप प्रकार का सेट विकसित हो जाता है तब वह प्रत्यक्षीकरण की अन्य वैकल्पिक सभावनाओ से विमुख होकर केवल उसी सेट के ही अनुरूप प्रत्यक्षीकरण करता है। इसी प्रकार अन्तर्मुखी और वहिर्मुखी व्यक्तित्व के व्यक्ति एक ही उत्तेजक का दो भिन्न रूपो मे प्रत्यक्षीकरण करते है। यहाँ पर यह भी स्मरणीय है कि वातावरण मे विद्यमान सभी उत्तेजको का प्रत्यक्षीकरण नही होता अपितु उसके किसी पक्ष विशेप का ही प्रत्यक्षीकरण होता है। प्रत्यक्षीकरण की इस चयनात्मक प्रवृत्ति के प्राणिगत निर्धारको को यहाँ पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

(1) सेट

सेट अभिप्रेरणा की एक अस्थायी अवस्था है जो व्यक्ति को एक विशेष प्रकार से प्रत्यक्ष करने या प्रतिक्रिया करने के लिए सतर्क करती है। जीवन की अनेक परिस्थितियो मे हमारा अवधान तात्कालिक उत्तेजक द्वारा निर्धारित न होकर पहले से विद्यमान सेट द्वारा निर्देशित होता है। ऐसी दशाओ मे व्यक्ति परिस्थिति के किसी विशेष पक्ष के प्रत्यक्षीकरण के लिए तत्पर हो जाता है। ब्रुनर (1957) ने इस प्रकार की प्रात्यक्षिक सतर्कता का उल्लेख करते हुए यह स्थापना की है कि उत्तेजक सरूपो का तादात्म्यीकरण उत्तेजको को वस्तुओ या घटनाओ की विभिन्न श्रेणियो के रूप मे विभक्त करने से सभव होता है। यह विभाजन उत्तेजक साम्य पर ही नही अपितु श्रेणियो की सापेक्ष्य पहुँच पर निर्भर करता है। प्राय व्यक्ति भूतकाल मे अनुभूत घटना के अग के रूप मे ही किसी वर्तमान घटना के प्रत्यक्ष के लिए तत्पर रहता है। साथ ही वस्तुओ के पूर्वानुभव के अनुरूप तादात्म्य करने के लिए शीघ्रता से उपकल्पनाओ का निर्माण भी कर लेता है, पर सदैव ऐसा नही होता है। विशेषत जब कोई आवश्यकता या प्रेरणा विद्यमान रहती है तब हम सम्बद्ध वस्तुओ को अनायास खोजने का प्रयास करते है।

सेट द्वारा वस्तु का प्रत्यक्षीकरण अनेक प्रकार से प्रभावित होता है तथा इसके परिणाम भी भिन्न-भिन्न होते है। अभ्यास, प्रयोगकर्त्ता द्वारा प्रदत्त सूचना या निर्देशो का सेट उत्पन्न करने के लिए इसका प्रभूत मात्रा मे प्रयोग किया गया है। सेट के द्वारा व्यक्ति व्यवहार विशेष को सम्पादित करने के लिए तैयार हो जाता है और सक्रिय रहता है। स्पष्ट ही सेट एक चयनात्मक प्रक्रम है। सेट प्राय अचेतन स्तर पर क्रियाशील रहते है तथा एक श्रेणी की क्रियाओ मे उसका सामान्यीकरण भी हो सकता है।

साली तथा मर्फी (1960) ने सेट के निम्नलिखित कार्य बताये हैं —

(अ) सेट के विद्यमान होने पर सभावित क्रिया की रीतियाँ सीमित हो जाती है।

(ब) सेट द्वारा कुछ दशाओ मे हमारी क्रियाओ के सम्पादित होने की सभावना बढ जाती है।

(स) कुछ दशाओ मे सेट पुरस्कार गुण से भी सम्पन्न रहता है।

(द) सेट से व्यक्ति की सक्रियता मे वृद्धि होती है।

सेट के प्रभाव का अध्ययन अनेक प्रकार की प्रात्यक्षिक समस्याओ के सन्दर्भ मे किया गया है। यहाँ पर कुछ प्रमुख प्रयोगो का उल्लेख किया जा रहा है।

साइपोला(1935,ने एक प्रयोग मे प्रयोज्यो के सम्मुख 10 सेकण्ड के लिए कुछ अशुद्ध तथा कुछ शुद्ध शब्द प्रस्तुत किये। उदाहरणार्थ, एक समूह से कहा गया कि उन्हे पशुओ के नाम दिखाये जायेंगे। दूसरे समूह से कहा गया कि उन्हे यातायात से

सम्बद्ध शब्द दिखाये जायेंगे। इन दो भिन्न सेट की अवस्थाओ मे प्रयोज्यो ने wharl शब्द का क्रमश whale तथा wheel के रूप मे प्रत्यक्षीकरण किया।

पोस्टमैन तथा क्रचफील्ड (1952) के अनुसार सेट तथा आवश्यकता, और सेट तथा उत्तेजक सरचना के मध्य की अत क्रिया द्वारा सेट का प्रभाव निर्धारित होता है। इन लोगो ने एक प्रयोग किया जिसमे प्रयोज्यो को रिक्त स्थानो की पूर्ति करनी थी। इस काय मे अग्रेजी के शब्दो का प्रयोग करना था। सभी शब्दो का एक समाधान भोज्य पदार्थ से सम्बद्ध था। अध्ययन मे तीन प्रमुख परिवर्त्यों का प्रहस्तन किया गया।

(1) न्यून, मध्यम तथा उच्च सभावना वाले शब्द,

(2) पॉच स्तर का सेट—0, 1, 2, 3, 4 या 5 भोजन विषयक प्रतिक्रिया देने वाले प्रयोज्य,

(3) भूख के तीन स्तर—0 से 1 घटा, 2 से 3 घटा, 4 से 6 घटा की अवधि की भूख।

प्रयोग के परिणाम से ज्ञात हुआ कि भोजन सम्बन्धी पूर्तियो की सख्या अधिक सभावना के शब्दो मे अधिक थी तथा सेट की मात्रा मे वृद्धि के अनुरूप ही उसमे भी वृद्धि हुई। भूख की मात्रा का कोई प्रभाव न था। पोस्टमैन तथा क्रचफील्ड ने यह निष्कर्ष निकाला कि आवश्यकता चयनात्मक सेट को प्रभावित करती है।

ब्रुनर तथा मिन्टर्न (1955) ने एक प्रयोग मे दो सेट के कारण एक ही उत्तेजक के दो भिन्न प्रकार के प्रत्यक्षीकरण का प्रमाण प्राप्त किया। आरम्भ मे एक समूह के प्रयोज्यो को चार अँग्रेजी के 'बडे अक्षर' दिखाये गये थे तथा दूसरे समूह के प्रयोज्यो को अक दिखाये गये थे। इस प्रकार के पूर्वानुभव के बाद दोनो ही समूहो को एक आकृति दिखायी गयी। प्रथम तथा दूसरे समूह दोनो ने ही भिन्न-भिन्न प्रत्यक्षीकरण किया।

ऊपर चर्चित प्रयोगो से स्पष्ट है कि सेट प्रत्यक्षीकरण को एक निश्चित दिशा प्रदान करता है तथा इसके फलस्वरूप व्यक्ति के प्रत्यक्षीकरण मे चयनात्मकता आ जाती है।

(2) अभिवृत्ति

अनुभव के द्वारा परिवेश की वस्तुओ के प्रति अनेक प्रकार की अभिवृत्तियाँ विकसित हो जाती है। हम कुछ वस्तुयें पसन्द करते है तथा कुछ से घृणा करते हैं। साथ ही जब हम प्रसन्न मन स्थिति मे रहते हैं, तो वस्तुयें अच्छी प्रतीत होती है। ये जीवन के सामान्य अनुभव हैं। अभिवृत्तियो के प्रभाव के प्रायोगिक अध्ययन का भी प्रयास किया गया है। उदाहरणार्थ, ल्यूबा तथा ल्यूकस (1945) ने तीन प्रयोज्यो को सम्मोहन की अवस्था मे तीन भिन्न मन स्थितियाँ उत्पन्न की। ये परिस्थितियाँ

क्रमश 'प्रसन्नता', 'सतर्कता' और 'चिन्ता' की थी। इन परिस्थितियो मे 6 चित्र प्रयोज्यो के सम्मुख उपस्थित किये गये और प्रयोज्यो से चित्रो का अपनी भाषा मे वर्णन करने के लिए कहा गया। प्रयोग के परिणाम बडे रोचक थे और प्रयोज्यो का वर्णन मन स्थितियो के अनुरूप प्राप्त किया गया। एक ही प्रयोज्य ने एक ही चित्र का तीनो मन स्थितियो मे भिन्न-भिन्न वर्णन किया। स्पष्ट ही यह प्रयोग व्यक्ति की अभिवृत्ति के अनुरूप उत्तेजक के प्रत्यक्षीकरण को अभिव्यक्त करता है।

(3) प्रेरणा

प्रेरणा व्यक्ति को सक्रिय बनाती है और व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण आदि क्रियाओ के द्वारा उस प्रेरणा को सतुष्ट करने का प्रयास करता है। ऐसी अवस्था मे प्रत्यक्षीकरण एक स्वतत्र प्रक्रम नही रह जाता अपितु प्रेरणा द्वारा नियमित हो जाता है। प्रेरणा प्रात्यक्षिक खोज[1] को नियमित करती है और अशत सावेदिक सूचना के सग्रह की सभावना को नियन्त्रित करती है। इसकी सहायता से व्यक्ति की सवेदनशीलता का स्तर भी घटाया-बढाया जा सकता है। प्रेरणा द्वारा प्रयास और निरीक्षण भी प्रभावित होता है।

यहाँ पर यह भी स्मरणीय है कि व्यक्ति की प्रेरणा-व्यवस्था परिपक्वता और अधिगम के अनुरूप परिवर्तित होती रहती है। आयु मे परिवर्तन के अनुसार प्रेरणाओ का मूल्य भी परिवर्तित होता है और प्रबलको की सापेक्ष्य शक्ति मे भी ह्रास होता है। अत प्रेरणा की भूमिका के सम्यक् अध्ययन मे इन विकासात्मक तथा अधिगम विषयक कारको पर ध्यान देना आवश्यक है।

प्रेरणा द्वारा प्रत्यक्षीकरण किस प्रकार प्रभावित होता है, इसके विषय मे मतैक्य नही है। कुछ मनोवैज्ञानिको के अनुसार प्रेरणा द्वारा सेट प्रभावित होता है और उक्त परिवर्तित सेट के द्वारा प्रात्यक्षिक प्रक्रम अशत निर्देशित होता है। दूसरे विचार के मनोवैज्ञानिक, प्रेरणा के इस प्रकार के परोक्ष प्रभाव को नही स्वीकार करते और यह मतव्यक्त करते हैं कि प्रेरणा सीधे-सीधे प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करती है।

प्रयोगशाला मे प्रयोज्य को प्रेरित करने के लिए प्राय दो प्रकार की विधियो अभाव[2] तथा उत्तेजना[3] का प्रयोग किया गया है अभाव की विधि मे व्यक्ति को किसी आवश्यक वस्तु से वचित कर दिया जाता है जबकि उत्तेजना के अन्तर्गत व्यक्ति को उद्दीपन प्राप्त होता है। प्रभाव मे समानता होने पर भी दोनो ही विधियो मे कुछ मूलभूत अतर है। सत्ताकाल, तीव्रता तथा विलम्ब की दृष्टि से दोनो विधियो द्वारा उत्पन्न प्रेरणा मे अतर होता है। प्रेरणा की स्थिति मे व्यक्ति को आभ्यतर उत्तेजना प्राप्त होती है और उसके द्वारा कुछ सवेगात्मक तथा भावात्मक प्रति-

---

1 Perceptual search 2 Deprivation 3 Stimulation
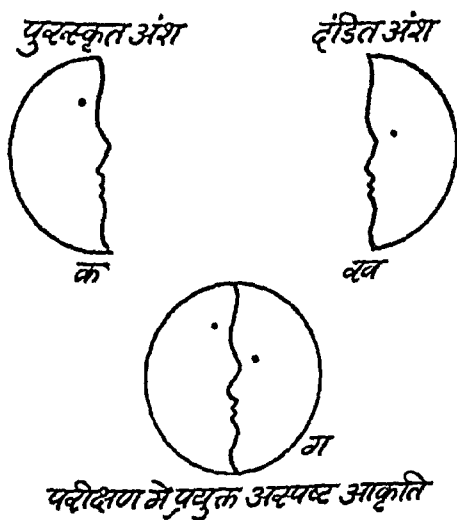
चित्र सख्या 6 13 शैफिर तथा मर्फी द्वारा प्रयुक्त आकृति

मैक्‌क्लिलैंड तथा एटकिन्सन (1948) ने भी इस दिशा मे एक महत्वपूर्ण प्रयोग किया। इनके प्रयोग मे अस्पष्ट आकृतियाँ एक पर्दे पर प्रदर्शित की गयी तथा प्रयोज्यो से यह पूछा गया कि उन्होने कौन-सी आकृति देखी। ये प्रयोज्य 1, 4

तथा 16 घटो तक भूखे रखे गये थे। निष्कर्षो से यह परिणाम प्राप्त हुआ कि भूख की मात्रा मे वृद्धि के ही अनुपात मे भोजन सम्बन्धी अनुक्रिया की मात्रा अधिक थी।

गिलक्राइस्ट तथा नेसबर्ग (1952) ने आवश्यकतापरक वस्तुओ के प्रत्यक्षीकरण का अध्ययन किया। इस प्रयोग मे प्रयोज्यो को भूखा तथा प्यासा रखा गया। प्यासे समूह के प्रयोज्यो को 0, 2, 4, 6 तथा 8 घटे की प्यास के बाद तथा भूखे समूह के प्रयोज्यो की शून्य 6 तथा 12 घटे की भूख के बाद परीक्षा की गयी। इन प्रयोज्यो को भोजन सम्बन्धी, प्यास सम्बन्धी तथा तटस्थ वस्तुओ के चित्र एक निश्चित प्रकाश स्तर पर दिखाये गये। तत्पश्चात् प्रकाश समाप्त कर दिया गया। प्रयोज्यो को प्रकाश स्तर के पहले प्रदर्शित प्रकाश स्तर पर ले आना था। परिणामो से स्पष्ट हुआ कि अभाव की स्थिति मे अनुरूप चित्रो के लिए कालाशुद्धि धनात्मक थी। भूखे प्यासे दोनो ही समूहो के लिए अभाव की अवधि मे वृद्धि के अनुरूप धनात्मक कालाशुद्धि मे भी वृद्धि प्राप्त हुई।

ऊपर चर्चित अध्ययनो से स्पष्ट है कि प्रेरणा प्रत्यक्षीकरण की दिशा को निर्देशित करती है। जब व्यक्ति प्रेरित रहता है तब यह विभिन्न वैकल्पिक लक्ष्य वस्तुओ की दिशा मे भिन्न-भिन्न रूप से निर्देशित होकर प्रात्यक्षिक कार्य करता है। इस प्रसग मे व्यक्ति द्वारा किये गये प्रयास की शक्ति प्रेरणा की मात्रा पर निर्भर करता है। वस्तुत प्रेरणा प्रात्यक्षिक कार्य के चेतना स्तर को प्रभावित करता है तथा प्रत्यक्षीकरण की चयनात्मकता का निर्देशन करती है। यह अवरोधक भी हो सकती है तथा सहजता भी उत्पन्न कर सकती है।

(4) मूल्य

अनुभव द्वारा व्यक्ति सामाजिक, आर्थिक और अन्य कई प्रकार के मूल्य विकसित कर लेता है। ये मूल्य महत्वपूर्ण सज्ञानात्मक कारक है तथा प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करते हैं। क्योकि वस्तु का प्रत्यक्षित आयाम व्यक्ति के मूल्य से उसकी सम्बद्धता पर निर्भर करता है। यहाँ पर कुछ प्रमुख प्रायोगिक अध्ययनो का उल्लेख किया जा रहा है जो प्रत्यक्षीकरण पर मूल्य के प्रभाव को अभिव्यक्त करते हैं।

ब्रुनर तथा गुडमैन (1947) ने 10 वर्ष की आयु के बालको के दो समूह चुने। एक समूह गरीब घरो के बच्चो का था तथा दूसरा समूह धनी घर के बच्चो का था। प्रयोज्यो का कार्य एक से लेकर पचास पेस के सिक्को के भौतिक आकार का अनुमान करना था। यह अनुमान प्रयोज्यो द्वारा एक मुट्ठी को प्रहस्तित करके किया जाता था। मुट्ठी के घूमने पर एक प्रकाश का धब्बा बन जाता था। विभिन्न प्रयोज्यो द्वारा प्रस्तुत किये गये अनुमानित आकार तथा सिक्के के वास्तविक आकार के मध्य अन्तर देखकर अधिकानुमान या न्यूनानुमान की मात्रा ज्ञात की गयी। एक नियन्त्रित समूह ने काड बोर्ड के टुकडो के साथ समान कार्य किया। प्रयोग के परिणामो से पता चला कि गरीब घर के बच्चो ने, धनी घर के बच्चो की अपेक्षा, प्रत्येक

सिक्के का अधिकानुमान किया। जब अनुमान का कार्य सिक्को की अनुपस्थिति मे हुआ या स्मृति से अनुमान करने को रह गया तब अधिकानुमान की मात्रा कम थी।

यह प्रयोग अनेक प्रकार की उत्तेजक सामग्रियो तथा वयस्को के साथ भी किया गया है परन्तु सदैव एक ही प्रकार के निष्कर्ष प्राप्त नही हुए है। किन्तु सामान्य निष्कर्ष यही प्राप्त किया गया है कि मूल्यवान वस्तुओ का अधिकानुमान होता है और कम मूल्य की वस्तुओ का न्यूनानुमान होता है।

व्यक्ति विशेष के मूल्य उस मूल्य से सम्वद्ध शब्दो की प्रत्यभिज्ञा की गति को निर्धारित करते हैं। पोस्टमैन, ब्रुनर तथा मैकगिनिस (1948) ने 25 छात्रो के मूल्यो का अध्ययन किया तथा सैद्धान्तिक, आर्थिक, सौदर्यात्मक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक श्रेणियो के लिए उनके प्राप्ताक प्राप्त किये। तत्पश्चात् प्रयोज्यो को टैचिस्टोस्कोप की सहायता से 36 शब्द दिखाये गये। इनमे से छ शब्द मूल्य विशेप से सम्वद्ध थे। शब्दो को 09 सेकण्ड के लिए दिखाया गया। यह अवधि क्रमश वढायी गयी और प्रत्यभिज्ञा देहली का पता लगाया गया। यह परिणाम प्राप्त किया गया कि जिस प्रयोज्य ने जिस मूल्य पर सर्वाधिक अक प्राप्त किया था उस शब्द की प्रत्यभिज्ञा कम समय पर ही हो गयी।

वीम्स तथा थाम्पसन (1952) ने 10 से 12 वर्प की आयु के वच्चो पर एक प्रयोग किया। इस प्रयोग मे सर्वप्रथम बच्चो से विभिन्न वस्तुओ के विपय मे पसन्दगी के विपय मे सूचना प्राप्त की गयी। तत्पश्चात् भोजन की एक वस्तु दिखाई गयी। प्रयोज्यो को उस वस्तु के आकार का अनुमान करना था। प्रयोज्य द्वारा अनुमानित तथा वस्तु के वास्तविक आकार के अन्तर का मापन किया गया। चाही तथा अनचाही वस्तुओ के आकार मे पर्याप्त अन्तर था। चाही हुई वस्तुओ के अधिकानुमान का प्रमाण प्राप्त हुआ।

इन प्रयोगो से यह पूर्ण स्पष्ट है कि मूल्य प्रत्यक्षीकरण का एक महत्वपूर्ण निर्धारक है।

(5) व्यक्तित्व

प्रत्यक्षीकरण परिवेश के साथ व्यक्ति के समायोजन को निर्धारित करने वाला एक प्रमुख कारक है तथा व्यक्तित्व व्यक्ति की उन मनोभौतिक व्यवस्थाओ का गत्यात्मक सगठन है जो समायोजन को निर्धारित करता है। इस दृष्टि से विचार करने पर प्रत्यक्षीकरण और व्यक्तित्व का सम्वन्ध वडा घनिष्ठ प्रतीत होता है। मनोवैज्ञानिको ने व्यक्तित्व के विभिन्न आयामो का व्यापक अध्ययन प्रक्षेपी विधियो की सहायता से किया है। इन विधियो की आधारभूत अवधारणा यह है कि

1 Projective techniques

प्रक्षेपी विधियो (टी० ए० टी० आदि) मे प्रयुक्त उत्तेजको के प्रत्यक्षीकरण की सहायता से व्यक्ति के व्यक्तित्व का अध्ययन सम्भव है। स्पष्ट ही इस अवधारणा मे यह तथ्य भी अन्तर्निहित है कि व्यक्ति का प्रत्यक्षीकरण उसके व्यक्तित्व द्वारा निर्देशित होता है। व्यक्तित्व तथा प्रत्यक्षीकरण के सम्बन्ध का स्वतन्त्र वैज्ञानिक अन्वेषण भी हुआ है। यहाँ पर कुछ प्रमुख अध्ययनो का उल्लेख किया जा रहा है।

व्यक्तित्व द्वारा प्रत्यक्षीकरण की रीति के निर्धारण के अध्ययन थर्स्टन (1944) तथा वर्नन (1947) आदि के द्वारा किये गये। इन लोगो ने ज्यामितिक भ्रम, आभासीगति, स्थैर्य आदि का व्यापक अध्ययन किया। किन्तु इन अध्ययनो मे विभिन्न प्रायोगिक परिस्थितियो मे भिन्न प्रकार की प्रत्यक्षीकरण की रीति के विद्यमान होने का केवल आशिक प्रमाण ही प्राप्त हो सका तथा इन रीतियो और व्यक्तित्व गुणो के मध्य किसी सम्बन्ध की पूर्ण पुष्टि भी नही हो सकी। बाद मे इस दिशा मे अनेक प्रयास किये गये। उदाहरण के लिए, अन्तर्मुखी तथा बहिर्मुखी व्यक्तित्व तथा प्रत्यक्षीकरण की रीति के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया गया है। बहिर्मुखी व्यक्ति बाह्य वातावरण मे अधिक रुचि रखते हैं जबकि अन्तर्मुखी व्यक्ति मात्र अपने हो विचारो के प्रति सवेदनशील होते है। इसके अतिरिक्त बहिर्मुखी व्यक्ति का दृष्टिकोण परिवेश की ओर उन्मुख रहता है जबकि अन्तर्मुखी व्यक्ति का दृष्टिकोण विधिसगत तथा सक्रिय निरीक्षण का होता है। इस प्रकार के चिन्तन के अनुसार अन्तर्मुखी व्यक्ति मे विश्लेपण तथा बहिर्मुखी व्यक्ति मे सश्लेपण की पद्धति पायी जानी चाहिए। जेनकिन (1958) ने इस अवधारणा का प्रायोगिक अध्ययन किया और यह निष्कर्प प्राप्त किया कि बहिर्मुखी व्यक्ति अन्तर्मुखी व्यक्तियो की तुलना मे विश्लेपक निर्देशो के पालन करने मे असफल रहे।

व्यक्तित्व के प्रभाव का अध्ययन सम्प्रति बहुत अधिक मात्रा मे सम्पन्न हो रहा है। अत सबका उल्लेख सम्भव नही है। इसलिए यहाँ पर इस दिशा मे किया गया एक प्रतिनिधि अध्ययन का उल्लेख किया जा रहा है।

विटकिन का अध्ययन

विटकिन (1954) तथा उनके सहयोगियो ने प्रत्यक्षीकरण की सामान्य रीतियो तथा व्यक्तित्व के सामान्य प्रकारो के बीच सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया। इस अध्ययन मे तीन परीक्षणो का निर्माण किया गया।

राड तथा फ्रेम परीक्षण—इस परीक्षण मे प्रयोज्यो को एक अधकाराच्छन्न कक्ष मे एक ऊर्ध्वाधार प्रकाशित राड को व्यवस्थित करना था। राड का फ्रेम 20 अश टेढा था। प्रयोज्य को निर्देश देकर प्रयोज्यकर्ता द्वारा राड को ऊर्ध्वाधार दशा मे ले आना था। स्पष्ट ही इस परीक्षण मे प्रयोज्य को परिवर्तित फ्रेम के प्रभाव को समाप्त करना था।

वक्र-कक्ष तथा वक्र-कुर्सी का परीक्षण—इस परीक्षण मे ऐसी व्यवस्था थी

कि प्रयोज्य को ही वक्र किया जा सकता था। दूसरी दशा मे कक्ष तथा फ्रेम को वक्र किया जा सकता था। कुछ प्रयासो मे प्रयोज्य से कक्ष को सीधा करने को कहा जाता था और कुछ प्रयासो मे कुर्सी को। इस प्रकार प्रयोज्य के अपने शारीरिक अभिविन्यास के प्रभाव का मूल्यांकन सम्भव था।

भ्रमणशील कक्ष परीक्षण—इस परीक्षण मे प्रयोज्यो का कार्य पूर्ववत् था। किन्तु प्रयोज्यो को गुरुत्वाकर्षण पर भी ध्यान देना था क्योकि कक्ष 18 8 चक्कर प्रति मिनट के वेग से भ्रमण कर रहा था।

इन सभी परीक्षणो मे निरीक्षको को शुद्ध ऊर्ध्वाधार का अनुमान करना था। परिणामो से यह स्पष्ट हुआ कि कुछ निरीक्षको ने इस समस्या का समाधान चाक्षुप सन्दर्भ के समानान्तर स्थापित करके किया तथा शेप निरीक्षको ने ऊर्ध्वाधार की अपनी सवेदना के अनुरूप स्थापित करके किया। दूसरे प्रकार के निरीक्षक पहले प्रकार के निरीक्षको की अपेक्षा सामान्य छिपी आकृतियो को जटिल आकृति से अलग करने मे अधिक सफल थे। विटकिन आदि की यह उपकल्पना थी कि जो निरीक्षक चाक्षुप परिप्रेक्ष्य पर अपने निर्णय आधृत करते हैं वे क्षेत्र निर्भर होते है और उनके प्रतिमान वातावरण के प्रभाव से अधिक प्रभावित होते है। इसके विपरीत कुछ व्यक्ति अपनी शरीर-स्थिति की सवेदना को अधिक महत्व देते है और अपने अनुभव पर अधिक विश्वास करते हैं। ऐसे व्यक्ति क्षेत्र निर्भर न होकर क्षेत्र मे स्वतन्त्र होते है।

प्रयोग मे प्रयोज्यो को रोर्शा, टी० ए० टी० तथा आकृति रेखांकन के परीक्षण दिये गये। इन परीक्षणो तथा ऊपर चर्चित परीक्षणो मे प्राप्त परिणामो मे स्पष्ट हुआ कि क्षेत्र निर्भर व्यक्ति अपेक्षाकृत निष्क्रिय, कम आत्म-विश्वास वाले तथा किसी वाह्य शक्ति के प्रति समर्पण करने वाली प्रवृत्ति के थे। ठीक इसके विरुद्ध क्षेत्र निर्भर न रहने वाले निरीक्षक सक्रिय थे, स्वतन्त्र प्रवृत्ति के थे तथा सम्मान आदि के लिए सघर्पशील थे। वे अपने प्रात्यक्षिक निष्पादन का विश्लेषण करने को प्रस्तुत थे।

विटकिन आदि के अनुसार तीन प्रमुख व्यक्तित्व आयाम व्यक्ति की वातावरण के साथ होने वाली प्रात्यक्षिक अत क्रिया को निर्धारित करते है —

(1) परिवेश के साथ सक्रिय सहयोग की क्षमता,

(2) व्यक्ति द्वारा अपने शरीर का प्रत्यक्षीकरण,

(3) व्यक्ति की अपनी भूमिका के प्रति चेतना।

विटकिन आदि ने क्षेत्र से स्वतन्त्रता का वालको मे विकास का भी अध्ययन किया। इस अध्ययन से ज्ञात हुआ कि क्षेत्र से स्वतन्त्रता का विकास मानसिक विभेदता तथा 'स्व' को स्व से भिन्न' से अलग करने की क्षमता पर निर्भर करता है। 10 वर्ष से 13 वर्ष की आयु के मध्य यह शीघ्रता से वढता है। क्षेत्र से स्वतन्त्र व्यक्ति वातावरण के उदार दृष्टिकोण रखता है तथा आत्मनिर्भर होता है परन्तु

समाज के प्रतिमान की पुष्टि मे अधिक सफल नही होता है। क्षेत्र निर्भरता या स्वतन्त्रता के विकास मे शरीर रचना भी अशत महत्वपूर्ण है। साथ ही अभिभावको की अभिवृत्ति भी महत्वपूर्ण होती है। बालक बालिकाओ की अपेक्षा अधिक क्षेत्र-निरपेक्ष होते है।

प्रत्यक्षीकरण पर व्यक्तित्व के प्रभाव के अध्ययन की दिशा मे क्लीन (1951) का प्रयोग भी महत्वपूर्ण है। इन्होने प्रत्यक्षीकरण मे दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ तीखापन[1] तथा समानीकरण[2] प्राप्त की। प्रत्यावाहन की इन परस्पर दो विरोधी प्रवृत्तियो का क्रमिक पुनरोत्पादन मे पाया गया। प्रत्यक्षीकरण मे भी इन प्रवृत्तियो का प्रमाण मिला है। एक प्रयोग मे वर्गों की एक शृ खला प्रस्तुत की गयी जिनमे उनका आकार क्रमश छोटा होता गया था। पाँच वर्गों को उपस्थित करने के बाद सबसे छोटा वर्ग हटा दिया गया तथा एक बडा वर्ग शृ खला मे सम्मिलित कर लिया गया। इस परिवर्तन से निरीक्षक अवगत नही थे। किन्तु तीखेपन की प्रवृत्ति वाले निरीक्षको ने अपने निर्णयो मे इसके अनुसार परिवर्तन किया जब कि समानीकरण की प्रवृत्ति वाले निरीक्षक इस परिवर्तन के प्रति बहुत कम सवेदनशील थे। इसी प्रकार के परिणाम ब्रुनर तथा ताजफेल (1961) को भी प्राप्त हुये। इन्होने सीमित तथा व्यापक श्रेणी के निर्माण की प्रवृत्ति पायी। सीमित श्रेणी वाले प्रयोज्य, उत्तेजक मे परिवर्तित होने पर तत्काल प्रभावित होते थे और अपनी प्रतिक्रिया मे तदनुरूप परिवर्तन करते थे जबकि व्यापक क्षेणी वाले प्रयोज्य मे ऐसे परिवर्तन बहुत कम पाये गये।

व्यक्तित्वगुण प्रत्यक्षीकरण की रीति का सज्ञानात्मक नियत्रण करते हैं। इनके मध्य विद्यमान सम्बन्ध पर्याप्त जटिल है तथा आयु के अनुसार इन सम्बन्धो मे परिवर्तन भी होता है। अत व्यक्तित्व के कारको द्वारा उद्भूत प्रत्यक्षीकरण की विविध सीमाओ का सतर्कता के साथ अध्ययन होना आवश्यक है।

(6) सवेग

अन्य प्रात्यक्षित प्रक्रमो की ही भाँति सावेगिक परिस्थितियाँ प्रत्यक्षीकरण का भी नियमन करती है। इनके द्वारा विविध प्रकार के उत्तेजको का प्रत्यक्षीकरण सहज भी हो सकता है और अवरुद्ध भी हो सकता है। सवेग की भूमिका के अध्ययन के लिए प्रयोगकर्ता किसी सवेग को प्रयोज्य मे आरोपित करता है तथा किसी उत्तेजक के प्रत्यक्षीकरण विपयक उसकी अनुक्रिया की तुलना किसी सामान्य व्यक्ति की उसी उत्तेजक के प्रति की गयी अनुक्रिया के साथ करता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के उत्तेजको के भिन्न-भिन्न सवेगात्मक प्रभावो का भी अध्ययन किया गया है। यहाँ पर इस दिशा मे किये गये कुछ प्रमुख प्रायोगिक अध्ययनो का उल्लेख किया जा रहा है।

---

1 Sharpening 2 Levelling

ब्रुनर तथा पोस्टमैन (1947) ने स्वतन्त्र साहचर्य पद्धति से सावेगिक प्रतिक्रिया का प्रत्यक्षीकरण के सन्दर्भ मे प्रायोगिक अध्ययन किया। इस प्रयोग मे प्रत्येक प्रयोज्य के सम्मुख 6 अधिकतम प्रतिक्रियाकाल वाले तथा 6 न्यूनतम प्रतिक्रियाकाल वाले उत्तेजक शब्द टैचिस्टास्कोप के माध्यम से उपस्थित किये गये। कुछ प्रयोज्यो ने अप्रिय शब्दो के प्रत्यक्षीकरण मे अधिक समय की उपेक्षा की। इस समय मे उत्तेजक शब्द की अप्रियता की मात्रा मे वृद्धि के ही अनुरूप वृद्धि प्राप्त की गयी। किन्तु कुछ प्रयोज्यो मे यह वृद्धि एक सीमा तक ही हुई तत्पश्चात् उसमे ह्रास परिलक्षित हुआ। अनेक प्रयोज्यो ने प्रात्यक्षित सुरक्षा[1] के भी प्रयास प्रदर्शित किये।

मैकगिनिस (1949) का प्रायोगिक अध्ययन इस दिशा मे बडा ही महत्वपूर्ण है। इन्होने प्रयोज्यो को 11 तटस्थ तथा 7 सावेगिक दृष्टि से महत्वपूर्ण शब्दो को प्रस्तुत किया। 8 बालक तथा 8 बालिकाओ के समूह पर यह प्रयोग किया गया। प्रत्येक शब्द 09 सेकण्ड के लिए उपस्थित किया गया। साथ ही एक गैल्वानो मीटर प्रयोज्य की सावेगिक प्रतिक्रिया अंकित कर रहा था। प्रयोज्यो को शब्दो को पढकर बताना था। प्रयोज्य की न्यूनतम प्रदर्शन देहली तथा पी० जी० आर० के दो मापन इस प्रयोग मे उपलब्ध थे। प्रयोग के परिणामो से तटस्थ तथा सावेगिक शब्दो के प्रत्यक्षीकरण मे सार्थक अन्तर प्राप्त हुए। सावेगिक शब्दो के लिए अपेक्षित प्रदर्शनकाल की मात्रा अधिक थी। मैकगिनिस ने इस परिणाम की व्याख्या प्रात्यक्षिक सुरक्षा के प्रयास के रूप मे की तथा यह कहा कि देहली मे वृद्धि चिन्ता-निराकरण की प्रतिक्रिया थी।

मैकगिनिस के परिणामो की पर्याप्त आलोचना भी हुई है। एरोनफ्लीड (1953) ने अप्रिय शब्दो का धीमा प्रत्यक्ष तथा सुखप्रद और तटस्थ शब्दो का समान सरलता से प्रत्यक्ष होने का प्रमाण प्राप्त किया। न्यूविगिंग (1961) ने यह परिणाम प्राप्त किया कि प्रिय शब्दो के लिए प्रतिक्रियाकाल तथा प्रत्यभिज्ञ देहली अप्रिय की अपेक्षा कम था। वस्तुत किसी पदार्थ के प्रिय और अप्रिय होने का उसके प्रत्यक्षीकरण पर क्या प्रभाव पडता है ? इस विषय मे उपलब्ध प्रदत्तो मे एकरूपता नही है।

(7) पीडा तथा भय

अनेक प्रायोगिक अध्ययनो मे पीडा और भय का प्रत्यक्षीकरण पर प्रभाव का अध्ययन किया गया है। पीडा की उत्तेजना से व्यक्ति मे नाना प्रकार के व्यवहार पाये जाते हैं। इससे उडोलन और सतर्कता मे वृद्धि होती है। इससे प्रात्यक्षिक स्थिति से अवधान का विकर्पण भी सम्भव है। पलायन के मार्ग न हो तो व्यक्ति

---

1 Perceptual defence

अव्यवस्थित व्यवहार भी प्रदर्शित कर सकता है। पीडा से अवरोध की भी स्थिति उत्पन्न हो सकती है और कुछ पक्षो का दमन भी सम्भव है पर किसी उत्तेजक को पीडा से सम्बद्ध करने पर उत्तेजक अधिक विशिष्ट हो सकता है जिससे उसकी स्मृति बढ सकती है।

हैटफील्ड(1959) ने पीडाप्रद विद्युत् आघात के निरर्थक पद के प्रत्यक्षीकरण पर प्रभाव का अध्ययन किया तथा यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि यदि निरर्थक शब्दो की सूची को कई बार प्रस्तुत किया जाय तो, वे निरर्थक पद जो विद्युत् आघात से सयुक्त थे, बाद के प्रत्यक्षीकरण मे अधिक शीघ्रता से प्रत्यक्षित होते हैं। किन्तु लावेनफेल्ड (1961) के युगल पदो के अधिगम मे विद्युत आघात से युक्त युगल पदो का बाद मे कम शुद्ध प्रत्यक्षीकरण हुआ। यह परिणाम सम्भवत आघात के द्वारा दमन के कारण प्राप्त हुआ। एक अन्य प्रयोग मे प्रयोज्यो को विद्युत आघात के विषय मे अवगत करा दिया गया और तब युगल पदो का प्रत्यक्षीकरण कराया गया। बाद मे विद्युत आघात का भय समाप्त कर दिया गया और युगल पदो का प्रत्यक्षीकरण कराया गया। इस स्थिति मे पहले के प्रयासो मे विद्युत आघात से युक्त युगल पदो का अधिक शीघ्रता से प्रत्यक्षीकरण हुआ।

अन्य प्रयोगो मे पीडा के फलस्वरूप प्रत्यक्षीकरण की विच्छिन्नता तथा विलम्ब का प्रमाण प्राप्त किया। जोन्स (1959) ने अस्पष्ट आकृतियाँ प्रयोज्यो के समक्ष उपस्थित की। ये आकृतियाँ क्रमश अधिक स्पष्ट होती गयी। इनमे से कुछ आकृतियो के प्रत्यक्षीकरण के साथ आघात प्राप्त होता था। निष्कर्ष यह पाया गया कि आघात युक्त आकृतियो के प्रत्यक्षीकरण के लिए अधिक स्पष्टता की आवश्यकता थी। अधिक आघात होने पर प्रत्यक्षीकरण मे अधिक विच्छिन्नता पायी गयी।

रोजेन (1954) ने निरर्थक पदो को एक समूह के समक्ष उपस्थित किया। प्रत्येक अशुद्ध प्रत्यक्ष के लिए आघात प्राप्त होता था तथा वह आघात शुद्ध अनुक्रिया देते ही समाप्त हो जाता था। एक अन्य समूह को यादृच्छिक क्रम मे आघात दिया गया। पहले समूह का प्रत्यक्षीकरण दूसरे समूह की अपेक्षा शीघ्रता से हुआ तथा दूसरे समूह का प्रत्यक्षीकरण नियन्त्रित समूह की अपेक्षा धीमा था। स्पष्ट ही पहले समूह मे आघात से सतर्कता उत्पन्न हो गयी थी।

इन अध्ययनो से स्पष्ट है कि पीडा तथा भय प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया को निर्देशित करता है। इसका प्रत्यक्षीकरण पर प्रभाव प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया तथा पीडा या भयप्रद उत्तेजक के स्वरूप पर निर्भर करता है। इसके द्वारा प्रत्यक्षीकरण मे अवरोध और सहजता दोनो ही प्रकार के प्रभाव प्राप्त किये गये हैं।

सहायक ग्रन्थ सूची

एपस्टीन, डब्ल्यू — वेराइटीज आफ परसेप्चुअल लर्निंग मैकग्राहिल प्रकाशन, (1967)

एरोन्फ्रीड, जे एम, मेसिक, एस ए तथा डिग्गोरी, जे सी — दी इग्जामिनिंग इमोशनैलिटी एण्ड परसेप्चुअल डिफेन्स, ज० पर्स० 1953

फार्लसन, वी आर तथा टेसोन, इ पी — ए वर्बल मेजर आफ दि पर्सपेक्टिव एटीच्यूड, अमे० ज० साइकालोजी, 1962

क्लीन, जी एस. — 'दि पर्सनल वर्ल्ड थ्रू परसेप्शन', परसेप्शन ऐन एप्रोच टु पर्सनैलिटी मे प्रकाशित, न्यूयार्क रोनाल्ड प्रेस।

कोरेन, एस० तथा फेस्टिजर, एल, — ऐन अल्टरनेटिव व्यू आफ दि गिब्सन नार्मलाइजेशन एफेक्ट, परसेप्शन एण्ड साइकोफिजिक्स, 1967

गिब्सन, इ जे, गिब्सन, जे जे, पिक, ए डी तथा ओसेर एच — ए डेवलपमेंटल स्टडी आफ दि डिस्क्रिमिनेशन आफ लेटर लाइक फार्म्स, ज० कम्प० फिजियो० साइकालोजी 1962, 55

वर्गमैन, आर — दि एफेक्ट आफ ट्रेनिंग आन ऐबसोल्यूट एस्टीमेशन आफ डिस्टेन्स ओवर दि ग्राउण्ड ज० एक्स० साइकालोजी, 1954, 48

कुन्नापास, टी एम — दि वर्टिकल-होरीजाटल एल्यूजन एण्ड दि विजुअल फील्ड ज० एक्स० साइकालोजी, 53

गिलक्राइस्ट, जे सी तथा नेसवर्ग, एल एस — नीड एण्ड परसेप्चुअल चेन्ज इन नीड रिलेटेड आब्जेक्ट्स ज० एक्स० साइकालोजी, 1952, 44

जेम्स० डब्ल्यू० — प्रिंसिपिल्स आफ साइकालोजी (1890) न्यूयार्क हाल्ट

जोन्स, ए — दि एफीशिएन्सी आफ यूटिलाइजेशन आफ विजुअल इन्फार्मेशन एण्ड दि एफेक्ट्स आफ स्ट्रेस, ज० एक्स० साइकालोजी, 1959, 58

जेनकिन, एन — साइज कान्स्टैंन्सी ऐज ए फंक्शन आफ पर्सनल ऐडजस्टमेंट एण्ड डिस्पोजीशन, ज० ऐब० सोशल० साइकालोजी, 1958

जड, सी० एच० — ए स्टडी आफ जिओमेट्रिकल इल्यूजन्स, साइका० रिव्यू, 1899

डे, आर० एच०	एफेक्ट्स आफ रिपीटेड ट्रायल्स एण्ड प्रोलोग्ड फिक्सेशन आन एरर इन दि मुलर लायर इल्यूजन, साइका० मोनोग्राफ, 1962,
थर्स्टन, एल एल	ए फैक्टोरियल स्टडो आफ परसेप्शन, यूनिवर्सिटी आफ शिकागो प्रेस, 1944
न्यूबिंगिग, पी० एल०	दि परसेप्चुअल रेडिन्टीग्रेशन आफ वर्ड्स ह्विच डिफर इन कोनोटेटिव मीनिंग कनैडियन ज० साइका० 1961
ब्रुनर, जे एस	आन परसेप्चुअल रेडीनेस साइका० रिव्यू 1957
ताजफेल, एच०	काग्नीटिव रिस्क एण्ड इनवर्नमेटल चेन्ज, ज. ऐब सोशल साइकालोजी 1961, 62
पोस्टमैन, एल	इमोशनल सेलेक्टेविटी इन परसेप्शन एण्ड रिऐक्शन, ज पर्स 1947
मिन्टर्न, ए एल	परसेप्चुअल आइडेन्टीफिकेशन एण्ड परसेप्चुअल आर्गनाइजेशन, जनरल साइकालोजी 1955
गुडमैन सी सी	वैल्ट ऐड नीड ऐज आगनाइजिंग फैक्टर्स इन परसेप्शन, जे एब सोशल साइकालोजी, 1947
वेयर्ड, जे सी	रेटिनल एण्ड एज्यूम्ड साइज क्यूज ऐज डिटरमिनैट्स आफ साइज एण्ड डिस्टैन्स परसेप्शन ज एक्स साइकालोजी, 1963
ब्रेनर, एम डब्ल्यू	दि डेवलपमेटल स्टडी आफ ऐपरेंट मूवमेट क्वा ज एक्स साइकालोजी 1957
मैकक्लिलैंड, डी सी तथा एटकिन्सन जे डब्ल्यू	दि प्रोजेक्टिव एक्सप्रेशन आफ नीड्स, दि एफेक्ट आफ डिफरेंट इटेसिटीज आफ दि हगर ड्राइव आन परसेप्शन ज साइकालोजी 1948, 25
यार्बुस, ए एल	दि परसेप्शन आफ ऐन इमैज फिक्स्ड विथ इसपेक्ट टु दि रेटिना, बायोफिजिक्स, 1957
रोजेन ए सी	चेन्जेज इन परसेप्चुअल थ्रेशोल्ड ऐज ए प्रोटेक्टिव फक्शन आफ दि आर्गनिज्म, ज पर्स, 1954
लावेनफील्ड, जे०	निगेटिव एफेक्ट ऐज ए काजल फैक्टर इन दि आकरेन्स आफ रिप्रेशन, सबसेप्शन एण्ड परसेप्चुअल डिफेन्स, ज पर्स

लैविस, इ ओ — दि एफेक्ट आफ प्रैक्टिस आन दि परसेप्शन आफ दि मुलर लायर इल्यूजन, ब्रि ज साइकालोजी, 1908

ल्यूबा, सी तथा लूकस, सी — दि एफेक्ट्स आफ एटीट्यूड आन डिसक्रिप्शन आफ पिक्चर्स, ज एक्स साइकालोजी, 1945

वर्नन, एम डी — डिफरेंट टाइप्स आफ परसेप्चुअल एबिलिटी, ब्रि ज साइकालोजी, 1947

विटकिन, एच ए, लेविस, एच बी, हर्टजमैन एम, मैकोवर, के, नीसेर, पी बी तथा वैपनर, एस — परसनैलिटी थ्रू परसेप्शन 1954, न्यूयार्क, हार्पर

वालेख, एच — मूर, एम इ तथा डेविड्सन, एल माडीफिकेशन आफ स्टीरियोस्कोपिक डेप्थ परसेप्शन, अमे० ज साइकालोजी, 1963

वर्थाइमर, एम — प्रिंसिपिल्स आफ परसेप्चुअल आर्गनाइजेशन, वर्ईस्ली तथा वर्थाइमर द्वारा सम्पादित रीडिंग्स आफ परसेप्शन, 1958

वर्पिल्लाट, इ — एम डी वर्नन की पुस्तक परसेप्शन थ्रू एक्सपीरियेंस 1963

शैफिर, आर, मर्फी, जी — दि रोल आफ आटिज्म इन ए फीगर ग्राउन्ड रिलेशनशिप, ज एक्स साइकालोजी 1943

सेगल, एम एच, कैम्पबेल, डी टी तथा हस्कोविट्स — दि इन्फ्लुएन्स आफ कल्चर आन विजुअल परसेप्शन इंडियाना पोलिस बाल्स-मेटिल, 1966

सेल्किन, जे तथा वर्थाइमर, एम — डिसएपीयरेन्स आफ दि मुलर लायर इल्यूजन अण्डर प्रोलाग्ड इस्पेक्शन, परसेप्चुअल एण्ड मोटर-स्किल्स, 1957

साली, सी एम तथा मर्फी, जी — डेवलपमेंट आफ दि परसेप्चुअल वर्ल्ड, 1960 बेसिक बुक्स इंक. न्यूयार्क

साइपोल्स, इ एम — ए स्टडी आफ सम एफेक्ट्स आफ प्रिपेरेटोरी सेट, साइकालोजिकल मोनोग्राफ, 1935, 46

सैनफोर्ड, आर एन — दि एफेक्ट्स आफ एब्स्टीनेंस फ्राम फूड अपान इमैजिनल प्रासेसीज ए प्रिलिमिनरी एक्सपेरीमेंट्स साइकालोजी 1936

हेब्ब, डी ओ — दि आर्गनाइजेशन आफ बिहेवियर, न्यूयार्क वीलि प्रकाशन, 1949

होलविल, जे एफ — चेन्जेज इन डिस्टैन्स जजमेंट्स ऐज ए फंक्शन आफ करेक्टेड एण्ड नानकरेक्टेड प्रैक्टिस परसेप्चुअल मोटरस्किल्स, 1964

हैटफील्ड, आर ओ — दि इन्फ्लुएन्स आफ ऐन एफेक्टिव सेट आन डिसिलेबिल रिकाग्निशन थ्रेशोल्ड ज ऐन सोशल साइकालोजी, 1959, 47

अध्याय 7

अधिगम-अनुबंधन

विषय प्रवेश

अनुबधन

प्राचीन अनुबधन

प्राचीन अनुबधन की प्रायोगिक समस्याए

प्रक्रिया-भेद

प्राणी प्रकार तथा अनुबधनशीलता

अनुबधित उद्दीपक तथा प्रतिक्रिया प्रकार

अनुबधित तथा अनानुबधित प्रतिक्रिया की तुलना

नैमित्तिक अनुबधन

पुरस्कार द्वारा नैमित्तिक अधिगम

परिहार द्वारा नैमित्तिक अनुबधन

अक्रम नैमित्तिक अनुबधन

दण्ड द्वारा नैमित्तिक अनुबधन

नैमित्तिक अनुबधनो मे प्रयुक्त प्रयोज्यों की जाति

प्राचीन तथा नैमित्तिक अनुबधन मे उपलब्ध गोचर

विलोप तथा सम्बन्धित गोचर

विलोप

स्वत पुनरावर्तन

वाह्यावरोध

विलम्ब अवरोध

अनुबधित अवरोध

अनावरोध अथवा अवरोध का अवरोध

सामान्यीकरण एव विभेदन सम्बन्धी गोचर

उद्दीपक सामान्यीकरण

प्रतिक्रिया सामान्यीकरण

विभेदन

प्राचीन तथा नैमित्तिक अनुबधनो की तुलना

प्रतिद्वत और घटित प्रतिक्रियाएँ

अ० प्र० तथा अना० प्र० की समानता-असमानता

प्राचीन अनुबधन उद्दीपक तथा नैमित्तिक अनुबधन प्रतिक्रिया अधिगम के रूप मे

प्राचीन अनुबधन मे समीपता तथा नैमित्तिक अनुबधन मे प्रभाव का नियम

अनुबधित प्रतिक्रियाओ पर ऐच्छिक घटको का प्रभाव

अधिगम–अनुबन्धन

विषय-प्रवेश

प्रायोगिक मनोविज्ञान का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषय अधिगम-प्रक्रम है। इसके अन्तर्गत अनुबंधित[1] सहज-क्रिया से लेकर मानवीय समस्या-निराकरण तक सम्मिलित है। वस्तुत आधुनिक वैज्ञानिकों निर्विवाद रूप से सिद्ध कर दिया है कि मानवीय व्यवहारों तथा मानसिक क्रियाओं के प्रत्येक पहलू सीखने की क्रिया से प्रभावित होते हैं। इसीलिए, आज के मनोवैज्ञानिक लेखन और अन्वेषण में प्रत्यक्षपरक अधिगम, संबोध-अधिगम, संवेगात्मक सीखना, प्रत्यक्षपरक-पेशीय अधिगम, इत्यादि पद और क्षेत्र बहुचर्चित हैं। सीखने के प्रक्रम की इसी व्यापकता के परिणामस्वरूप इसकी परिभाषा तथा स्वभाग निरूपण से सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है। सीखने के प्रक्रम पर उपलब्ध साहित्य-सर्वेक्षण से स्पष्ट विदित होता है कि इसकी दो प्रकार की परिभाषाएँ की गई हैं। प्रथम प्रकार की परिभाषाओं को हम वर्णनात्मक अथवा तथ्यात्मक कह सकते हैं, तथा दूसरी प्रकार की परिभाषाओं को सैद्धान्तिक अथवा विवेचनात्मक।

तथ्यात्मक परिभाषा करते हुये बुश तथा मास्टेल्लर (1955) ने लिखा है कि 'हम व्यवहार के किसी भी क्रमबद्ध परिवर्तन को सीखना मानते हैं, चाहे वह परिवर्तन अभियोजनोत्पादक, किसी उद्देश्य पूर्ति के लिए वांछनीय अथवा ऐसे ही किसी और मानदण्ड के अनुसार हो या न हो।" डब्ल्यू० एस० हण्टर (1934) ने लिखा कि "जब एक ही उद्दीपन-परिस्थिति की पुनरावृति के कारण व्यवहार में प्रगतिशील परिवर्तन या प्रवाह होता हो, तथा विश्रान्ति एवं ग्राहक-प्रभावकों में परिवर्तन के आधार पर उस परिवर्तन की व्याख्या नहीं की जा सके, उस दशा में हम कह सकते हैं कि सीखने की क्रिया घटित हो रही है।" मैगाश तथा ईरियन (1954) ने बताया कि "जैसा कि हम मापते हैं, सीखना निष्पादन में परिवर्तन है जो अभ्यास की दशाओं में होता है।" मन्न (1955) के अनुसार, "सीखना व्यवहार का अपेक्षाकृत स्थायी और सवधनशील परिमार्जन है जो प्रशिक्षण अथवा निरीक्षण के परिणामस्वरूप क्रिया-विशिष्ट में होता है।" थार्पे (1956) ने लिखा है कि "सीखने की परिभाषा हम उस प्रक्रम के रूप में कर सकते हैं जो अनुभव के

---

1 Conditioned

परिणामस्वरूप, व्यक्ति के व्यवहार मे अनुकूलनशील परिवर्तनो के माध्यमो से प्रकट होते हैं।" मेडनिक (1964) ने सीखने की विशेपता बताते हुये लिखा है कि 'सीखना अभ्यास के परिणामस्वरूप व्यवहार मे अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन लाता है।'

इन परिभापाओ से कतिपय बाते स्पष्ट होती है। प्रथम, तो यह कि सीखना व्यवहार मे अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन है। दूसरा, यह कि ये परिवर्तन एक ही उद्दीपक परिस्थिति के पुनरावृत्ति के कारण अनुभवो के परिणामस्वरूप होता है। इस प्रकार, सीखना वस्तुत उद्दीपक-प्रतिक्रिया मे मध्यस्थ परिवर्त्य है जिसका अनुमान बारम्बार आने वाले उद्दीपको, क्रिया, अभ्यास, प्रशिक्षण, निरीक्षण, एव अनुभव के कारण व्यवहार मे आने वाले परिवर्तन के आधार पर किया जा सकता है। इन परिभापाओ मे पर्याप्त स्पष्टता के रहते हुये भी प्रायोगिक दृष्टिकोण से इनकी उपादेयता सीमित है। इनसे सीखने की क्रिया मे अन्तर्निहित क्रिया-तन्त्र की ओर कोई सकेत नही है। इसीलिये यह स्पष्ट नही होता है कि सीखने के प्रक्रम मे वस्तुत क्या होता है और उनका अध्ययन तथा विवेचन किस प्रकार हो सकता है। इस उद्देश्य की पूर्ति सैद्धान्तिक परिभापाओ से होती है।

यदि सैद्धान्तिक परिभापाओ का सिंहावलोकन किया जाय तो ज्ञात होता है कि अधिकाश परिभापाएँ कायिक पदो मे दी गई है। उनकी विश्लेपणात्मक समीक्षा से यह निष्कर्ष निकलता है कि सीखना वस्तुत दो घटनाओ के बीच साहचर्य या सम्बन्ध स्थापित होना है। दूसरे शब्दो मे, सीखना साहचर्य-निर्माण है। जब दो घटनाओ के स्वभाव-निरूपण की बात आती है तो सीखने के सिद्धान्तो मे विरोध उत्पन्न हो जाता है। हल्ल (1943, 1951, 1952), स्पेन्स (1942), गथरी (1935), स्किनर(1938)आदि प्रभृति व्यवहारवादियो के अनुसार सीखना उद्दीपक-प्रतिक्रिया के बीच साहचर्य स्थापित होना है। दूसरी ओर टालमैन (1932, 1933, 1938 आदि) तथा अन्य मनोवैज्ञानिको ने सीखने को उद्दीपक-सकेत तथा सकेतार्थ के बीच सम्बन्ध या साहचर्य की स्थापना माना है। दूसरे शब्दो मे, साहचर्य उद्दीपक-उद्दीपक के बीच स्थापित होता है। जब हम यह पूछते हैं कि यह साहचर्य स्थापना क्यो होती है तो सिद्धान्तो मे मतभेद और गहरा हो जाता है। कुछ व्यवहार-वादी जैसे कि गथरी, पवलव तथा टालमैन, किसी उद्दीपक-व्यवहार युग्म को एक साथ घटित हो जाने को ही सीखने का कारक मानते हैं, जबकि हल्ल, स्पेन्स, स्किनर इत्यादि पुनर्बलन सीखने का कारक मानते हैं। वैसे तो इस प्रकार के सभी प्रश्न विवादास्पद है, किन्तु सैद्धान्तिक परिभापाओ से प्रायोगिक मनोवैज्ञानिक के लिये इतनी स्पष्टता तो मिल ही जाती है कि सीखना वस्तुत साहचर्य स्थापित होना है जिसके परिणामस्वरूप किसी उद्दीपक-परिस्थिति के उपस्थित होने पर एक सुनिश्चित व्यवहार होने लगता है।

सीखने की इसी परिभापा के सदर्भ मे हम सर्वप्रथम उन प्रयोगो का वर्णन

करेंगे जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि इस प्रकार की साहचर्य स्थापना मे किस प्रकार के प्रायोगिक प्रक्रिया का अनुप्रयोग होता है और वह साहचर्य-स्थापना अपने सरलतम रूप मे किस प्रकार होती है। इस प्रकार के प्रयोगो को हम अनुवधन-प्रयोग कहते हैं और साहचर्य-स्थापना के प्रक्रम को अनुबधन।

अनुबधन

आधुनिक मनोविज्ञान के अधिकाश विद्वान अनुवधन के दो प्रकार मानते हैं—प्राचीन अथवा क्लासिकल अनुवधन और नैमित्तिक अनुवधन। प्रथम प्रकार का अनुवधन पवलाव (1849-1936) की देन है तथा नैमित्तिक अनुवन्धन वेरवटेरव तथा थार्नडाइक की (1857-1927) प्राचीन अनुवधन मे सन्निहित प्रक्रमो की व्याख्या जितनी भी कठिन हो, उसका वर्णन सरल है। प्राचीन अनुवधन उद्दीपक-प्रतिक्रिया के वीच साहचर्य स्थापित होने की घटना का स्पष्टतम उदाहरण प्रस्तुत करता है।

प्राचीन अनुवधन

यदि किसी भूखे कुत्ते के पास घटी वजाई जाय तो उस घटी को सुनकर कुत्ता उस ओर आकृष्ट तो होगा, किन्तु उसके मुख से लार-स्राव की प्रतिक्रिया नही होगी। इसलिये कि घटी की ध्वनि लार-स्राव का नैसर्गिक या स्वाभाविक उद्दीपक नही है। लार-स्राव का स्वाभाविक उद्दीपक खाद्य पदार्थ अथवा किसी अन्य पदार्थ के साथ जिह्वा का सम्पर्क है। किन्तु यदि किसी भी प्रकार कुत्ता घटी की ध्वनि सुनकर लार-स्राव करने लगे तो यह निश्चित रूप से कहा जायेगा कि कुत्ते ने घटी की ध्वनि के प्रति प्रतिक्रिया-स्वरूप लार-स्रावित करना सीख लिया है। ऐसा सीखना उद्दीपक-प्रतिक्रिया के वीच साहचर्य स्थापित होने का, अथवा अनुवधन का, सरलतम उदाहरण होगा। इस सम्बन्ध मे प्रथम उद्धरणीय प्रयोग ऐनरेप(1920) द्वारा प्रकाशित विवरणो से लिया जाता है। इस प्रयोग के वर्णन से प्राचीन अनुवधन करने की विधि की आवश्यक विशेपताएँ स्वय स्पष्ट हो जाती हैं।

प्रयोग प्रारम्भ करने के पहले कुत्ते के कपोल मे शल्य-चिकित्सा द्वारा ऐसा छिद्र किया गया कि पैरोटिड-ग्रन्थि से लार-स्रावित होकर रवड की नली से एक पात्र मे इस प्रकार एकत्र हो जाय कि एक वूंद के दशवें भाग तक लार की मात्रा मापी जा मके। साथ ही साथ कुत्ते को इस प्रकार प्रशिक्षित किया गया कि वह एक ध्वनि-नियत्रित कमरे मे स्थित मेज पर ढीले ढाले जुवे मे शान्त होकर खडा रह सके। प्रयोगकर्त्ता पार्श्ववर्ती कमरे की दीवाल मे छेद से कुत्ते का प्रेक्षण करता था तथा स्वचालित यत्रो की सहायता से उद्दीपको को उपस्थित कर सकना था। इस प्रकार की प्रारम्भिक तैयारी के वाद भूखे कुत्ते को मेज पर जुवे मे वॉधकर खडा कर दिया जाता था। तत्पश्चात् ध्वनि-यत्र से ध्वनि को उत्पन्न किया जाता था। इस ध्वनि उद्दीपक के सात या आठ सेकण्ड के वाद कुत्ते के मुख के पास तश्तरी मे थोडी-सी मात्रा मे सूखा हुआ भोजनचूर्ण उपस्थित कर दिया जाता था। इस प्रकार के प्रथम प्रयासो मे

ध्वनि-उद्दीपक के बाद लार बिल्कुल नही स्रावित होता था, किन्तु कुत्ता खाते समय प्रचुर मात्रा मे लार-स्राव करता था। प्रतिदिन इस प्रकार के तीन प्रयास कराये जाते थे। तीसरे प्रयत्न मे भोजन नही उपस्थित किया जाता था, बल्कि 30 सेकण्ड तक केवल ध्वनि-उद्दीपक ही प्रस्तुत किया जाता था और यह देखा जाता था कि कुत्ता ध्वनि के प्रति लार-स्राव करता है या नही। यदि हाँ, तो कितना ? प्रत्येक दो प्रयास के बीच 5 से लेकर 30 मिनट का मध्यान्तर दिया जाता था। दस युग्मित उद्दीपको को प्रस्तुत करने के पश्चात् पाया गया कि कुत्ता मात्र ध्वनि-उद्दीपक के प्रति भी किंचित मात्रा मे लार-स्राव करने लगा था। तीस प्रयासो के पश्चात पाया गया कि कुत्ते ने मात्र ध्वनि-उद्दीपक के प्रति 60 बूद लार-स्राव किया। इस लार-स्राव को पवलाव ने अनुबधित लार-स्राव कहा। साथ ही साथ यह भी पाया गया कि अनुबधित लार-स्राव के प्राथमिक परीक्षण-प्रयासो मे लार-स्राव का प्रारम्भ ध्वनि-प्रारम्भ के 18 सेकण्ड पश्चात् होता था किन्तु बाद के परीक्षण-प्रयासो मे ध्वनि उद्दीपक के प्रारम्भ होने के एक या दो सेकण्ड बाद ही प्रचुर मात्रा मे लार-स्राव प्रारम्भ हो जाता था। प्रशिक्षण प्रयासो की सख्या मे वृद्धि के साथ अनुबधित क्रिया (लार-स्राव) की मात्रा भी बढती गई तथा प्रतिक्रिया-काल कम होता गया। इन दोनो मापो से स्पष्ट हुआ कि प्रशिक्षण की वृद्धि के साथ अनुबधित क्रिया की शक्ति भी बढती गई।

यदि प्राचीन अनुबधन के इस उदाहरण का विवेचन किया जाय तो अनुबधन के कई मौलिक पदो को स्पष्ट किया जा सकता है। भोजन-चूर्ण को उद्दीपक माना जा सकता है। यह स्वाभाविक रूप से लार-स्राव की नियमित एव मापनीय प्रतिक्रिया को उत्पन्न करता हे। इसको अनुबधन की भाषा मे अनानुबधित उद्दीपक (अन० उ०)[1] कहते है। अनानुबधित उद्दीपक के उपस्थित किये जाने पर जो नियमित एव मापनीय प्रतिक्रिया होती है उसे अनानुबधित प्रतिक्रिया (अन० प्र०)[2] कहते है। यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि अनुबधित प्रतिक्रिया सर्वथा जन्मजात नही होती है। उदाहरण के लिए, खट्टे आम को देखते ही मुँह मे पानी आ जाना अर्जित प्रतिक्रिया है, न कि जन्मजात। इस विधि मे अनुबधित अनुक्रिया के लिए जो तटस्थ उद्दीपक प्रस्तुत किया जाता है उसे अनुबधित उद्दीपक (अ० उ०) कहते है। ज्ञातव्य है कि अनुबधित उद्दीपक[3] प्रारम्भ मे कुछ प्रतिक्रियाएँ तो उत्पन्न करता ही है, किन्तु वे प्रतिक्रियाएँ अनानुबधित प्रतिक्रियाएँ नही अपितु पवलाव के शब्दो मे 'उन्मुखता प्रतिक्रियाएँ'[4] अथवा सिन्द्रा (1960) के शब्दो मे नवीनता प्रतिक्रियाएँ[5] होती है। जब अनानुबधित प्रतिक्रिया अनानुबधित तथा अनुबधित उद्दीपको के साथ-साथ प्रस्तुत करने के कारण आगे चलकर मात्र अनुबधित उद्दीपक के उपस्थित किये जाने पर ही होने लगती है तो उसे ही अनुबधित प्रतिक्रिया (अ० प्र०) कहते है। इस अनुबधन विधि को आगे दिये हुये चार्ट से स्पष्ट किया जा सकता है।

---

1 Unconditioned stimulus 2 Conditioned response 3 Conditioned stimulus 4 Orienting response 5 Novelty reactions

तथा उसका अन्त अनानुबधित उत्तेजक के प्रारम्भ के साथ या अन्त के साथ होता है।

(3) चिह्न अनुबधन[1]—इस प्रकार की विधि मे अनुबधित उद्दीपक का प्रारम्भ और अन्त अनानुबधित उद्दीपक के प्रारम्भ के कुछ सेकण्ड पहले ही हो जाता है। इसको चिन्ह अनुबधन इसलिए कहा जाता है कि, पवलाव के अनुसार, इस प्रकार के अनुबधन मे प्रतिक्रिया का साहचर्य अनुबधित उद्दीपक से उत्पन्न स्नायविक चिन्ह के साथ होता है क्योकि अनुबधित उद्दीपक अनानुबधित उद्दीपक के प्रारम्भ होने के पहले ही समाप्त हो जाता है और इसके द्वारा उत्पन्न अन्तर्गामी स्नायविक आवेग ही अनानुबधित उद्दीपक के प्रारम्भ के समय साहचर्य के लिये उपलब्ध होता है।

(4) पृष्ठमुखी अनुबधन—इस विधि मे अनानुबधित उद्दीपक का प्रारम्भ पहले तथा अनुबधित उद्दीपक का प्रारम्भ बाद मे होता है। मध्यान्तर अनानु० उ०-

कालिक घटक (अ०उ०-अना० उ० मध्यान्तर) के आधार पर
प्राचीन अनुबध के उपप्रकार

सह सामयिक अनुबन्धन — अ० उ० / अना० उ०

विलम्बित अनुबन्धन — अ० उ० / अना० उ० / अना० उ० / अना० उ०

चिन्ह अनुबन्धन — अ० उ० / अना० उ०

पृष्ठोन्मुख अनुबन्धन — अ० उ० / अना० उ०
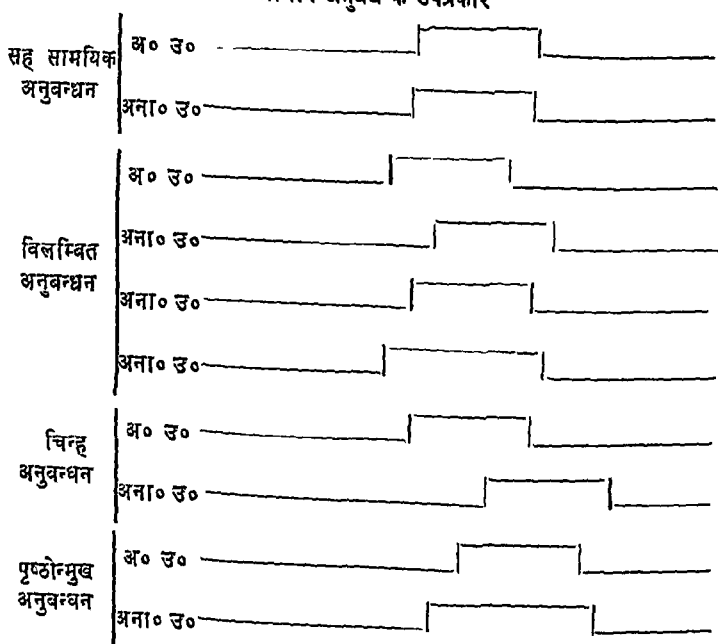
चित्र सख्या 7 ।

---

1 Trace conditioning 2 Backward conditioning

अ० उ० के बीच में होता है। इस प्रकार का अनुबन्धन अप्राप्य है किन्तु राजरान (1956) ने बताया है कि रूप के कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इस प्रकार की स्थायी अनुबन्धित क्रियाएँ प्राप्त की है।

उर्ध्वलिखित चित्र में पंक्तियों का उन्नयन उद्दीपक-प्रारम्भ तथा निम्नोन्मुख होना उद्दीपक-समाप्ति का द्योतक होता है। अन०प्र०-अना० उ० के उपस्थित होने के कुछ ही सेकण्ड के पश्चात होती है।

पवलाव द्वारा वर्णित इन उपप्रकारों का वास्तविक महत्व बहुत नहीं है। जैसा कि ऊपर कहा गया है पृष्ठोन्मुख अनुबन्धन तो अप्राप्य है। वोरफल (1932) ने विद्युतीय धक्के को अना०उ०, ध्वनि को अ०उ० तथा अंगुली हटाने की प्रतिक्रिया को अ० प्र० के रूप में अनुप्रयुक्त कर किंचित मात्रा में अनुबन्धन प्राप्त किया था
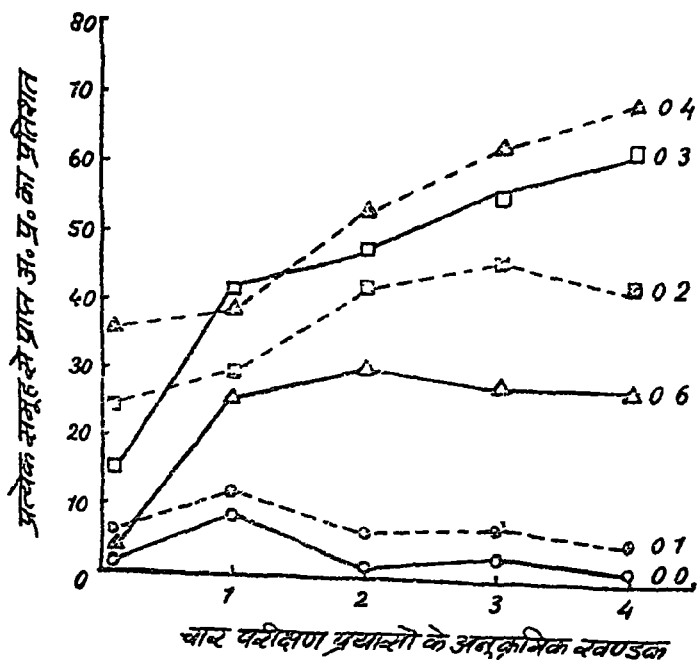
चित्र संख्या 7 2

[विभिन्न अ० उ०—अन० उ० मध्यान्तरों से प्रशिक्षित समूहों की अनुबंधित प्रतिक्रियाओं के प्रतिशत में सापेक्षिक सुधार। प्रत्येक वक्र के अन्त में दी संख्या अ० उ०—अन० उ० मध्यान्तर का द्योतन करती है। (फिट्जवाटर तथा थ्रस के परिणामों पर आवृत)]

किन्तु जब स्पूनर तथा केल्लाग (1947) ने वोल्फल के प्रयोग की पुनरावृत्ति की तो ज्ञात हुआ कि प्रतिक्रिया-काल के आधार पर पृष्ठोन्मुख अनुवधन मे प्राप्त प्रतिक्रिया वस्तुत साधारण अनुबधन से भिन्न है। जहाँ तक दूसरे उपप्रकारो का प्रश्न है फिजवाटर तथा थ्रस (1957) के प्रयोग से अ०उ० तथा अन०उ० के मध्यान्तर का महत्व पर्याप्त रूप से स्पष्ट हो जाता है। इन लोगो ने विद्युत-ग्रिड से तर्जनी को हटा लेने की प्रतिक्रिया को अनुवधन के लिये चुना। अन०उ० विद्युतीय धक्का था और अ० उ० ध्वनि थी। प्रत्येक प्रयोज्य को सो प्रयत्न दिये गये। इन प्रयत्नो मे अस्सी प्रयत्नो मे अ०उ० के पश्चात् अन०उ० उपस्थित किया गया। मध्यान्तो 0 06, 0 4, 0 3, 0 2, 0 1 तथा 0 00 सेकण्ड के आधार पर प्रयोज्यो को समूहो मे विभक्त कर दिया गया और एक समूह को एक मध्यान्तर पर अ०उ० तथा अनु० उ० दिया गया। इन सौ प्रयत्नो मे प्रत्येक समूह को बीस प्रयत्नो पर केवल ए०ए० ही दिया गया। प्रत्येक समूह मे 10 विद्यार्थियो ने भाग लिया। प्रत्येक पाँच प्रयत्नो मे एक प्रयत्न परीक्षण का था। इन समूहो से प्राप्त प्रदत्तो को निम्नाकित रेखाचित्र मे दिया गया है। किसी भी वक्र रेखा का प्रत्येक विन्दु क्रमश आने वाले चार परीक्षण प्रयत्नो मे होने वाले सम्भावित चालीस(4 परीक्षण प्रयत्न 10 प्रयोज्य) का अनुवधित क्रिया के पूर्ण योग के अनुपात का द्योतक करता है।

चित्र 7 2 से स्पष्ट है कि 0 0 अथवा 0 1 सेकण्ड का मध्यान्तर (सहसामयिक अनुबधन) कोई अनुबधन नही उत्पन्न करता है। 0 6 सेकण्ड के मध्यान्तर से अ० उ० तथा अन० उ० प्रस्तुत करने मे अनुवधन तो होता है किन्तु पूणरूप से प्रभावशाली अनुवधन के लिये 0 4 सेकण्ड का मध्यान्तर ही सर्वाधिक उपादेय है, ऐसा इस प्रयोग से ज्ञात होता हे। तात्पर्य यह है कि विलम्बित अनुबधन की प्रक्रिया ही सर्वाधिक प्रभावशाली है।

जहाँ तक चिन्ह अनुवधन का प्रश्न है, लास्सन (1960) ने लिखा है कि यह अनुवधन विलम्वित अनुबधन का ही विशिष्ट रूप है। अन्तर इतना है कि अ०उ०, अन०उ० के प्रारम्भ होने के पहले ही समाप्त हो जाता है। वार्नस (1956), किम्वल (1947) तथा रिनाल्ड्स (1945) के अध्ययनो के आधार पर चिन्ह अनुवधन के सम्वन्ध मे दो नियम वनाए जा सकते हैं—

(1) अ०उ० तथा अन०उ० 45 सेकण्ड के मध्यान्तर के अन्तर्गत किसी ने अनुवधन की प्रभावशीलता मे चिन्ह तथा विलम्वित अनुबधन विधि मे अन्तर प्रदर्शित नही किया है।

(2) 45 सेकण्ड के मध्यान्तर के ऊपर विलम्वित विधि चिन्ह विधि से अधिक प्रभावशाली है। जव मध्यान्तर 1 00 सेकण्ड से अधिक हो जाता है तो दो विधियो मे इस कारण अन्तर होता है कि अन० उ० के प्रारम्भ के समय अ०उ० उपस्थित है कि नही। न्यूनतर मध्यान्तरो के लिए दो उद्दीपको के प्रारम्भ का

मध्यान्तर महत्वपूर्ण है। यह प्रायोगिक उपलब्धि स्नायविक चिन्ह परिकल्पना[1] के अनुरूप है इससे ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि अ०उ० का अन्त तथा अन०उ० का मध्यान्तर जितना बड़ा होगा, स्नायविक चिन्ह उतना ही क्षीण होगा और अनुबधन की प्रक्रिया भी कमजोर होती जायेगी।

प्राणी प्रकार तथा अनुबधनशीलता—दूसरा प्रश्न यह है कि क्या अनुबधन प्रक्रिया हर प्रकार के प्राणियो मे होती है तथा इसी के साथ यह भी प्रश्न है कि एक ही प्रकार के प्राणी जाति मे आयु का अनुबधन प्रक्रम पर क्या प्रभाव पडता है। इस सम्बन्ध मे उपलब्ध साहित्य के सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि उन प्राणियो, जिनके स्नायुसस्थान मे मस्तिष्क गांठ होती है, हैय मे लेकर मनुष्य तक मे अनुबधन की क्रिया होती है।

टामसन तथा मैक्कानेल (1955) ने प्रदर्शित किया है कि प्लेनेरिया को अनुबंधित किया जा सकता है। उसने प्रकाश किरणो को अ० उ०, विद्युतीय धक्के को अन० उ० और सिर घुमाने तथा पूरे शरीर मे आकुचन की क्रिया को अन० प्र० के रूप मे लेकर इस जाति के जीव पर प्रयोग किया। 150 प्रयासो के बाद इन दोनो प्रतिक्रियाओ मे किसी भी प्रतिक्रिया के घटित होने की सम्भावना 30 प्रतिशत से बढकर 40 प्रतिशत से कुछ अधिक हो गई। ई० एल० हन्ट (1949) ने चुज्जो पर प्रयोग किया। उसने विद्युतीय धक्के (अन० उ०) तथा घटी ध्वनि (अ० उ०) उपस्थित कर पूरे शरीर द्वारा गति की क्रिया को अनुबधित किया। विकास क्रम मे इसके ऊपर के प्राणियो मे प्राचीन अनुबधन की प्रक्रिया के अनेक सफल प्रयोग हुये हैं।

जहाँ तक उम्र का प्रश्न है, उपलब्ध प्रयोगो से ज्ञात होता है कि प्राचीन अनुबधन भ्रूणावस्था मे ही प्रारम्भ हो जाता है और वृद्धावस्था मे इसकी उपादेयता का ह्रास होने लगता है। स्पेल्ट (1938, 1948) ने साढ़े छ तथा साढे आठ महीने के मानवीय भ्रूणो मे प्राचीन अनुबधन विधि द्वारा अनुबधित क्रिया की उत्पत्ति की। प्रबल कोलाहल के कारण चौंक जाने जैसी प्रतिक्रिया भ्रूणो मे होती है। इस कोलाहल को अन० उ० तथा माँ के पेट पर स्पर्शीय स्पन्दन को अ० उ० के रूप मे प्रयुक्त कर उसने माँ के पेट पर टम्बूर बाँधकर भ्रूण की गति का मापन किया। अ० उ० तथा अन० उ० के साथ अनेक बार उपस्थित करने के परिणामस्वरूप अ० उ० के कारण ही भ्रूण मे गति क्रिया (अ० प्र०) पाई गयी। डोरोथी मारक्विस (1931) ने घण्टी की ध्वनि (अ० उ०) से चूसने की मौखिक क्रिया को सद्य जात शिशुओ मे अनुबधित किया। ब्रान तथा गाइसेलहाट (1959) ने शिशुओ, युवको तथा प्रौढो मे पलक की सहज क्रियाओ का अनुबधन किया। इस प्रयोग से प्राप्त प्रदत्तो को चित्र सख्या

---

1 Neural trace hypothesis

7 3 मे दिया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि ज्यो ज्यो आयु बढती जाती है, अनुबधन की प्रक्रिया भी शिथिल होती जाती है।
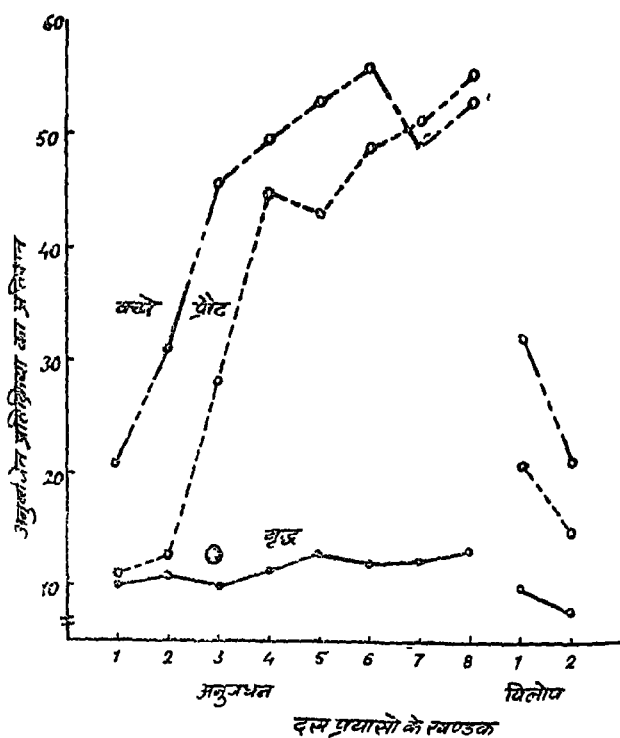
चित्र सख्या 7 3

पलको की सहज-किया के अनुबधन और विलोप पर आयु का प्रभाव

अनुवधित उद्दीपको तथा प्रतिक्रियाओ के प्रकार—प्राचीन अनुबधन की प्रक्रिया का अध्ययन अनेक प्रकार की अन० प्र० तथा अनेक प्रकार के अनुबधित उद्दीपको को लेकर किया गया है। प्रतिक्रियाओ मे लार-स्राव, ई० ई० जी० की अल्फागति का अवरोध, चर्मनिरोध मे परिवर्तन, पाचक रग-स्राव होना, स्वास-गनि परिवर्तन इत्यादि प्रकार की क्रियाओ जैसी सहज क्रिगाओ का उल्लेख किया जा सकता है। कुछ ही सहज क्रियाएँ ऐसी है जिनका अनुबधन दुष्कर है। किम्बल (1960) ने निष्कर्ष निकाला कि (1) रीढ की हड्डी वाले प्राणियो मे उन सहज क्रियाओ का अनुबधन दुष्कर है जिनकी उत्पत्ति केन्द्रीय स्नायुमण्डल के द्वारा नही होती—जैसे कि किसी अग का निष्क्रिय आकुचन अथवा सुषुम्नाविक्षत पशु की सहज क्रियाएं। (2) कुछ सहज क्रियाओ जैसे कि ऐवडामिनल पैटेल्लर, प्लान्टर तथा आँख की पुतलियो से सम्बन्धित सहज-क्रियाएँ।

अनुबधित उद्दीपको के रूप मे किसी भी उद्दीपक को अनुबधनीय प्रतिक्रिया के रूप मे चुना जा सकता है। किसी भी परिवेशीय परिवर्तन को जिमसे ज्ञानेन्द्रियाँ प्रभावित हो सकती हैं अनुवधित उद्दीपक के रूप मे लिया जा सकता है। वहुधा इस रूप मे दृष्टि सम्बन्धी उद्दीपको—विभिन्न वर्णों की प्रकाश तरगें तथा ज्यामिति आकार, श्रवण सम्बन्धी उद्दीपको, शुद्ध ध्वनि, घण्टी, कोलाहल तथा विभिन्न प्रकार की घ्राणीय अथवा स्पर्शीय उद्दीपको का अनुप्रयोग किया जा सकता है। वस्तुत अनुबधन का प्रक्रम वहुत व्यापक है और इसका प्रयोग अनेक प्रकार की सहज क्रियाओ पर अनेक प्रकार के अनुवधित उद्दीपको के साथ हुआ है।

अनुवधित तथा अनानुवधित प्रतिक्रियाओ की तुलना—वहुत दिनो तक मनोवैज्ञानिको का विश्वास था कि अनुवधित तथा अनानुवधित प्रतिक्रियाओ मे तादात्म्य सम्बन्ध है, अथवा अनुवधित प्रतिक्रिया अनानुवधित प्रतिक्रिया का ही प्रतिरूप है। किन्तु जव मनोवैज्ञानिको ने, उदाहरणार्थ, क्यूलर, फिन्स, गर्डन तथा ब्राग्डेन (1935) एव केल्लाग (1938), अनुवधित प्रतिक्रिया का प्रायोगिक अध्ययन वहुत समय तक किया तो ज्ञात हुआ कि कुत्तो द्वारा पैर खीच लेने की अनुवधित प्रतिक्रिया अपनी प्रारम्भिक अवस्था मे वैसी ही होती थी जैसी कि विद्युनीय धक्के के कारण। किन्तु कुछ समय वाद उस प्रतिक्रिया का मात्रात्मक रूप परिवर्तित हो जाता था। कोनोर्स्की (1948) ने पवलाव के प्रयोगो की पुनरावृत्ति कर यह प्रदर्शित किया कि अ० उ० द्वारा उद्दीप्त प्रतिक्रिया अपने मौलिक रूप से स्पष्टत भिन्न थी। अत आज अ० प्र० तथा अन० प्र० के पारस्परिक समानता के सम्वन्ध मे कई प्रदत्तात्मक निष्कर्ष निकले हैं। प्रथम तो यह कि अ० प्र० तथा अन० प्र० मात्रात्मक रूप से भिन्न होते हैं। उदाहरणार्थ, कुत्ते की अनुवधित लार-स्राव-क्रिया अपने मौलिक मात्रा के समान प्रचुर नही होती। दूसरा यह कि अ० प्र० गुणात्मक रूप मे न्यूनतर पेशियो के तनाव को सन्निहित करती हैं तथा कई अन० प्रतिक्रियाएँ अनुवधित प्रक्रिया मे लुप्त हो जाती हैं। मावरर तथा मिल्लर (1942) ने इस निष्कर्ष को वडी स्पष्टता से प्रदर्शित किया है। इन्होने एक ऐसी मञ्जूषा का निर्माण किया जिसका अग्रिम भाग निरीक्षण की सुविधा के लिये पारदर्शी था और जिसके फर्श मे विद्युत प्रवाहित किया जा सकता था। कोने मे एक ऐसा पहिया था जिसे चूहा घुमा दे तो तीव्र पीडा पहुँचाने वाला विद्युतीय प्रवाह बन्द किया जा सकता था। विद्युत प्रवाहित करने के पहले (अन० उ०) के एक घटी (अ० उ०) वजा दी जाती थी। चूहे को मञ्जूषे मे रखकर अनुवधन-विधि का उपयोग किया गया। चूहे के प्रारम्भिक अनुकूलन के पश्चात घटी एक सेकण्ड तक जोर से वजा दी जाती थी। इसके पाँच सेकण्ड वाद फर्श मे विद्युत प्रवाहित किया जाता था। इस पीडादायी उद्दीपन के परिणामस्वरूप प्राय चूहे उत्तेजित होकर हवा मे उछलने, कूदने, फादने, नाचने, पजा मारने तथा इधर-उधर दौडने लगते थे। यह प्रवाह तव तक जारी रखा जाता था जव तक कि चूहे पहिये को न घुमा दे। कई प्रयासो के पश्चात् चूहो के व्यवहार मे परिवर्तन

परिलक्षित होने लगा। प्रारम्भिक कुछ प्रयासो के पश्चात् घटी की आवाज से ही चूहे काँपने लगते थे, पंजे ऊपर-नीचे करते थे तथा पहिये के पास पहुँच जाते थे। कुछ और प्रयासो के बाद घटी बजते ही चूहे पहिये के पास पहुँच जाते थे। अनेक ऐसे प्रयासो के बाद घटी बजते ही सब कुछ छोडकर पहिये के पास पहुँच जाते थे और विद्युतीय धक्का आने के पहले ही पहिया घुमा देते थे। कभी कभी चूहे घटी बजने के बाद भी कुछ देर तक निष्क्रिय रहते थे और विद्युत आने के समय के ठीक पहले या आते ही पहिया घुमा देते थे। यहाँ स्पष्ट है कि अनानुबधित उद्दीपक के प्रति प्रतिक्रियाएँ अनेक और उत्तेजनापूर्ण होती थी। किन्तु अनुबधित प्रतिक्रियाएँ कम उत्तेजनापूर्ण और पहिया घुमाने तक ही सीमित थी। इस प्रकार आज अनुबधित प्रतिक्रिया को अनानुबधित प्रतिक्रिया का आशिक रूप माना जाता है।

अनुबधित प्रतिक्रिया के सैद्धान्तिक विवेचनो मे मतभेद है। हल्ल (1952) इस प्रक्रिया को 'लक्ष्य-प्रतिक्रिया का आशिक पूर्वभाग' मानता है। दूसरी ओर मावरर (1940) तथा जेनर (1937) इसको 'उद्धृत करने वाली' प्रतिक्रिया मानते हैं। इन मतो की भिन्नता अत्यन्त रुचिकर विवाद का विषय है और इसको हम आगे के अध्यायो मे सविस्तार विवेचित करेंगे।

नैमित्तिक अनुबधन

उत्तेजक प्रतिक्रिया के बीच क्रियात्मक साहचर्य स्थापित करने की दूसरी विधि नैमित्तिक अनुबधन की है। लासन (1960) के शब्दो मे, इस प्रकार का सीखना हमारे दैनिक जीवन की विशेषता है। इसको 'समस्या-हल करना' प्रयत्न तथा त्रुटि द्वारा सीखना अथवा नैमित्तिक सीखना कहते है। इस विधि का आविर्भाव बेखटेर तथा थार्नडाइक के प्रयोगात्मक अध्ययनो से हुआ। इसको नैमित्तिक सीखना इसलिये कहते है कि इस विधि मे सीखने वालो के लिए पुरस्कार या पुनर्बलन की उपलब्धि उसकी प्रतिक्रियाओ पर आश्रित रहती है।

इस विधि की चार उपविधियाँ हैं। इस प्रकार का विभाजन पुनर्बलन की निषेधात्मकता-विधेयात्मकता तथा प्रक्रम के अग्र-पृष्ठ-गमनता पर आधारित है। कोनोर्स्की (1948) ने पुरस्कार प्रशिक्षण, परिहार प्रशिक्षण, प्रशिक्षण तथा दण्ड प्रशिक्षण प्रक्रियात्मक विविधता के आधार पर नैमित्तिक अनुबधन को चार भागो—पुरस्कार[1], परिहार[2], दण्ड[3], और अकर्म[4] प्रशिक्षणो—मे विभाजित किया है।

पुरस्कार द्वारा नैमित्तिक अधिगम—पुरस्कार नैमित्तिक सीखने के प्रायोगिक अध्ययन मे अनेक जाति के प्राणियो तथा अनेक प्रकार की प्रतिक्रियाओ का उपयोग किया गया है। इसी प्रकार का प्रयोग थार्नडाइक (1948) ने किया था। उसने ऐसा मजूषा बनाया जिसकी दीवारे सीकचो की थी। बिल्ली को बाहर रखा हुआ

---

1 Reward 2 Avoidance 3 Punishment 4 Omission

भोजन दिखाई पड सकता था। मञ्जूषा मे एक दरवाजा था जिसको बिल्ली एक निश्चित प्रतिक्रिया कर, मञ्जूषा के छत से लटकती हुई रस्सी खीचकर, या कुन्डी दवाकर, खोल सकती थी और बाहर आकर भोजन प्राप्त कर सकती थी। जब बिल्ली इस मञ्जूषा मे रख दी जाती थी तो वह विविध प्रकार की प्रतिक्रियाएँ करती थी, जसे कि पजे मारना तथा मञ्जूषे मे इधर-उधर दौडना। ये प्रयत्न त्रुटिपूर्ण थे क्योंकि इनके द्वारा न दरवाजा खुल सकता था न भोजन की प्राप्ति। ऐसी अनेक प्रकार की प्रतिक्रियायें करते-करते बिल्ली ने अकस्मात सही प्रतिक्रिया, रस्सी खीच देना, कर दिया। फलत मञ्जूषा का दरवाजा खुल गया और बिल्ली बाहर जाकर भोजन पा सकी। बाद के प्रायोगिक प्रयासो मे बिल्ली की सभी प्रतिक्रियाएँ दरवाजा खोलने वाले यन्त्र के समीप केन्द्रित होने लगी, त्रुटिपूर्ण प्रयत्न क्रमश न्यूनतर होने लगे और सही प्रतिक्रिया शीघ्र और बार-बार होने लगी। अन्ततोगत्वा बिल्ली मञ्जूषा मे पहुँचते ही सही प्रतिक्रिया करने लगी।

उपरोक्त प्रयोग मे प्रशिक्षण के लिए चुना हुआ व्यवहार अथवा प्रतिक्रिया अपेक्षाकृत रूप से जटिल थी जिसका प्रायोगिक अध्ययन सीमित रूप से ही हो सकता था। इसीलिये स्किनर (1938) तथा ग्राहम-मैग्ने (1940) ने क्रमश स्किनर-मञ्जूषा तथा ग्राहम-मैग्ने दौडपथ की रचना की। 'स्किनर ने चूहो को दण्ड दवाकर और ग्राहम ने चूहो को दौडकर भोजन प्राप्त करने का प्रशिक्षण दिया। इनके प्रयोगो मे प्रयोज्य द्वारा एक पूर्व निश्चित प्रतिक्रिया करने पर पुरस्कार की प्राप्ति होती थी। प्रयोज्य को या तो स्वय प्रतिक्रिया कर पुरस्कार के पास पहुँचना पडता था या कोई प्रतिक्रिया कर पुरस्कार को अपने पास लाना पडता था। स्किनर-मञ्जूषा मे चूहा मञ्जूषा मे बना हुआ दण्ड दबाता है और इस प्रतिक्रिया के तत्काल बाद चूहे के पास खाने का टुकडा गिर पडता है। चूहा इस प्रतिक्रिया के अतिरिक्त चाहे जितनी भी अन्य प्रतिक्रियाए करे, खाने का टुकडा नही मिलता। यहाँ यह ध्यातव्य है कि प्रतिक्रिया और पुरस्कार मे कार्य कारण सम्बन्ध नही है। बल्कि प्रयोगकर्ता द्वारा अभियोजित सहसम्बन्ध है। एक प्रयोग मे थार्नडाइक ने बिल्ली को अपना ही शरीर चाटने के लिए प्रशिक्षण दिया था। इसी शरीर चाट लेने से दरवाजा खुल जाता था और बिल्ली भोजन प्राप्त कर लेती थी। दूसरी बात ध्यान देने योग्य यह है कि इस विधि के अधिकाश प्रयोगो मे प्रयोज्य प्रारम्भ मे अनेक प्रकार की प्रतिक्रियाएँ करता है। बहुधा प्रयोज्य को मञ्जूषा मे रखने तथा सही प्रतिक्रिया के घटित होने तक एक प्रयास ही माना जाता है। दूसरा प्रयास प्रयोज्य को पुन रखकर सही प्रतिक्रिया करने तक होता है किन्तु स्किनर (1938) अपने अधिकाश प्रयोगो मे स्वतत्र प्रतिक्रिया की विधा का उपयोग करता है। चूहा मञ्जूषा मे रखने के बाद दण्ड दबाने के लिये पूर्ण स्वतत्र होता है, और दण्ड को दबाकर बार बार भोजन प्राप्त करने के लिए पूर्णत स्वतत्र है। इस विधा मे अधिगम की मात्रा का मापन समयान्तरो के माध्यम से किया जाता है। उदाहरण के लिए, यह

देखा जाता है कि चूहा प्रति दो मिनट के समयान्तर मे दण्ड को कितनी बार दबाता है। जैसे-जैसे ऐसे समयान्तरो की सख्या बढती जाती है, दण्ड दबाने की बारम्बारता बढती जाती है।

परिहार द्वारा नैमित्तिक अनुबधन

इस प्रकार के नैमित्तिक अनुबधन की विधि के भी कई भेद है। साधारणत इस प्रकार के अनुबधन प्रयोगो मे प्रयोज्य किसी दिये हुये सकेत के प्रति प्रतिक्रिया कर पीडादायी उद्दीपक का परिहार करता है। वाटसन के (1915, 1916) प्रयोग इस विधि के उदाहरणस्वरूप उद्धृत किये जा सकते हैं। इन प्रयोगो मे प्रकाश-स्रोत से प्रकाश उत्पन्न किया गया। तत्पश्चात् फर्श मे विद्युत प्रवाहित किया गया। यदि प्रकाश के आते ही कुत्ते ने अगला पैर उठा लिया तो विद्युत नही प्रवाहित की गई और कुत्ता पीडादायी आघात से बचा रहा। स्मरण रहे कि यदि विद्युत तन्तु कुत्ते के पैर से बधा होता और प्रत्येक प्रयास मे पैर उठाने के पहले मिलता और अनिवार्य रीति से आघात किया जाता तो यही विधि प्राचीन अनुबधन का उदाहरण हो जाती। उपरोक्त प्रकार के अनेक प्रयोग विविध प्रकार के पशु-प्रयोज्यो पर किये गये हैं। इन प्रयोगो मे अधिकाशत लिवर दबाने, पहिया घुमाने तथा कूदकर अवरोध पार करने जैसी प्रतिक्रियाओ को अनुबधित किया गया है।

इस प्रकार के सभी प्रयोग निश्चित प्रयासक्रम मे नही किये जाते। सिडमैन (1953 अ, 1953 ब) ने स्वतन्त्र प्रतिक्रिया वाली दशा मे इस तरह का प्रयोग चूहो पर किया है। एक परिवर्द्धित स्किनर मजूषा मे यदि चूहे ने 20 सेकण्ड के मध्यान्तर मे दण्ड को नही दबाया तो उसे विद्युतीय आघात दिया जाता था। यदि चूहे ने दण्ड का लिवर दबा दिया तो निश्चित समय के लिए आघात से बच गया। इन प्रयोगो मे किसी और सावधान करने वाले सकेतो का उपयोग नही किया गया। सिडमैन के चूहो ने इन प्रयोगो मे निश्चित प्रयास क्रम मे किये जाने वाले प्रयोगो की तुलना मे दण्ड दबाना अति शीघ्रतर रीति से सीख लिया।

परिहार प्रशिक्षण की दूसरी उपविधि पलायन अनुबधन की है। माबरर (1940) ने इस प्रकार का प्रयोग किया। एक ऐसी मजूषा मे जिसके फर्श मे विद्युत प्रवाहित कर आघात दिया जा सकता था, चूहे को रखकर विद्युत प्रवाहित किया गया। विद्युत प्रवाह इस प्रकार किया गया कि वह 2 25 मिनट मे क्रमश तीव्रतर होता हुआ निर्धारित तीव्रता का हो गया। मजूषा के दूसरे छोर पर एक ऐसे चबूतरे का प्रबध था जिसके दबाये रहने पर पीडादायी विद्युतीय आघात रोका जा सकता था। जब तक चबूतरा दबा रहता था विद्युत आघात घटित नही होता था, किन्तु चबूतरा के उठते ही विद्युतप्रवाह पुन प्रारम्भ होकर तीव्रतर होता हुआ निर्धारित सीमा तक पहुँच जाता था। प्रारम्भिक प्रयासो मे चूहे कई प्रकार की उत्तेजनापूर्ण प्रतिक्रियाओ मे अधिक से अधिक 3 से 6 मिनट लगे रहे। दशवें प्रयास

पर चूहे विद्युत-प्रवाह प्रारम्भ होते ही चबूतरे को दबाने लगे। इस प्रयोग मे प्रारम्भ का क्षीण विद्युताघात सकेत के रूप मे माना गया और बाद का तीव्र आघात पीडादायी उद्दीपक के रूप मे। क्षीण विद्युताघात के सकेत पर चबूतरा दबाकर चूहा तीव्र आघात से अपने को बचा लेता था। दूसरे प्रकार के पलायन-अनुबधन मे पीडादायी उद्दीपक प्रारम्भ म पूर्ण रूप से आ जाता है और प्रयोज्य को शीघ्रता से निश्चित प्रतिक्रिया कर पीडादायी उद्दीपक से बचना पडता है (शेफील्ड तथा टेम्पर, 1950)। इस उपविधि की विशेपता यह है कि इसमे प्रयोज्य को पीडादायी उद्दीपक अवश्य प्राप्त होता है और उसे निश्चित प्रतिक्रिया कर इस पीडादायी उद्दीपक को समाप्त करना पडता है, जबकि अन्य परिहार उपविधियो मे प्रयोज्य निश्चित प्रतिक्रिया कर पीडादायी उद्दीपक का प्रारम्भ ही नही होने देता।

अकर्म नैमित्तिक अनुबधन

उपरोक्त दो प्रकार के सीखने की प्रक्रियाएँ वास्तविक जीवन मे अधिकाशत घटती रहती है, किन्तु कभी कभी सीखने की ऐसी भी प्रक्रिया होती है जिसमे व्यक्ति किसी प्रतिक्रिया को दमन करना सीखता है क्योकि उस प्रतिक्रिया के होने से विधेयात्मक पुनर्बलन या पुरस्कार की प्राप्ति नही होती है। उदाहरण के लिए, यदि कोई बालक अवाछित व्यवहार करता है तो उसका कुछ दिन के लिये जेबखर्च बन्द कर दिया जाता है। इस प्रकार के सीखने पर कोनोर्स्की (1948) ने कई प्रयोग किये है। ऐसे प्रयोग मे पहले प्रचीन अनुबधन विधि से कोई प्रतिक्रिया किसी अनुबधित उद्दीपक के साथ अनुबधित करदी जाती है जैसे कि मेट्रोनोम के साथ कुत्ते द्वारा लार-स्रवित करना। इसके पश्चात् इस प्रकार के सीखने की प्रक्रिया पर प्रयोग प्रारम्भ होता है। कभी कभी मेट्रोनोम को सक्रिय कर दिया जाता है और कुत्ते के अगले पैर को प्रयोगकर्ता स्वय उठा देता है। ऐसे प्रयासो पर कुत्ते को खाद्य-चूर्ण से पुरस्कृत नही किया जाता है। इस प्रकार की प्रोयोगिक दशा मे कोनोर्स्की ने पाया कि कुछ प्रयासो के पश्चात् पैर उठाना लार-स्राव की क्रिया का अनुबधित अवरोधक बन गया। मेट्रोनोम के साथ जब कभी भी पैर उठाया जाता था तो कुत्ता लार-स्रवित नही करता था तथा साथ ही साथ वह पैर उठाने का विरोध अपने पैर मे तनाव पैदा करता था। अन्ततोगत्वा प्रत्येक प्रयास पर पैर उठाने की विरोधी क्रिया पैर मे तनाव लाकर फर्श पर टेके रहना, कुत्ते के व्यवहार की स्थायी विशेपता बन गई। इस प्रायोगिक उपलब्धि की महत्वपूर्ण विशेपता यह है कि इस विधि द्वारा सीखने मे पुरस्कार की अनुपस्थितियो का मात्र अनुबधित प्रतिक्रिया की अवरोधित नही होती अपितु एक विपरीत क्रिया का प्रबलीकरण होने लगता है।

दण्ड द्वारा नैमित्तिक अनुबधन

इस नैमित्तिक सीखने की उपविधि मे किसी प्रतिक्रिया के होने पर किसी पीडादायी उद्दीपक को प्रस्तुत किया जाता है, जैसे विद्युत आघात अथवा मुँह मे

कडवा पदार्थ। इस प्रकार यह उपविधि अकर्म द्वारा सीखने के बिल्कुल विपरीत है। दण्ड द्वारा सीखने मे किसी व्यवहार के होने पर दण्ड दिया जाता है ताकि वह व्यवहार विलुप्त हो जाय। दण्ड द्वारा नैमित्तिक सीखने की क्रिया पर स्किनर (1953) ने विस्तृत रूप से प्रयोग किया है। एस्टीज (1944) ने दण्ड के प्रत्येक सम्भावित प्रभाव का प्रायोगिक अध्ययन किया है। इस विधि मे दण्ड का उपयोग विलोप-विधि मे जोडकर किया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य यह होता है कि कोई प्रतिक्रिया दण्ड के कारण शीघ्र विलुप्त हो जाती है।

इस प्रकार नैमित्तिक सीखने मे कई प्रकार की उपविधियो का प्रयोग होता है। नैमित्तिक सीखने की विधियो का सक्षेप मे प्रतीकात्मक विवरण निम्न प्रकार से दिया जा सकता है—

	अनुबंधित उत्तेजक (अ०उ०)	अनुबंधित प्रतिक्रिया (अ०प्र०)	पुनर्बलन (पु०)
पुरस्कार द्वारा नैमित्तिक सीखना	लिवर	लिवर दबाना	खाद्य पदार्थ
परिहार प्रशिक्षण	क्षीण विद्युत आघात अथवा	पहिया घुमाना पहिया घुमाना	पीडादायक धक्के का समाप्त होना
	सकेतोद्दीपक	लिवर दबाना	पीडादायी धक्के का समाप्त होना
अकर्म प्रशिक्षण	ध्वनि	पैर उठाना पैर फर्श पर दबाना	खाद्य-चूर्ण न मिलना खाद्य-चूर्ण की प्राप्ति
दण्ड प्रशिक्षण	पीडादायी उद्दीपक	प्रतिक्रिया का दमन	दण्ड से मुक्ति

यहाँ यह कई बातो को स्पष्ट कर देना आवश्यक है। नैमित्तिक सीखने मे प्राचीन अनुबंधन विधि के विपरीत अ० उ० तथा अ० प्र० को स्पष्ट रूप से निर्धारित नही किया जा सकता। दूसरी ओर इस विधि मे अनुबंधिन क्रिया के घटित होने मे प्रयोगकर्ता का प्रत्यक्ष नियन्त्रण नही होता। तीसरी बात यह है कि इस प्रकार के सीखने मे पुनर्बलन की प्राप्ति निश्चित प्रतिक्रिया के घटित होने पर आधारित है। चौथी बात यह कि इस प्रकार के सीखने मे प्रयोज्य का अभिप्रेरित होना अनिवार्य है। यदि सीखने की प्रेरणा न रही तो सीखने की प्रक्रिया होगी ही नही। अन्तिम विशेषता यह है कि इस प्रकार के सीखने मे पुनर्बलन स्पष्टत परिभाषित रहता है।

नैमित्तिक अनुबंधनो मे प्रयुक्त प्रयोज्यो की जाति

नैमित्तिक अनुबंधन प्रयोगो के प्रारम्भिक काल मे यह समस्या उठी कि इस प्रकार का सीखना किस प्रकार के जीवित प्राणियो मे हो सकता है। फलत अनेक प्रकार के प्राणियो पर प्रयोग किया गया। जहाँ तक वैकासिक क्रम मे उच्च प्राणियो

पर प्रयोग का सम्बन्ध है ऐसे प्रयोग चूहो, बिल्लियो, मुर्गों, बन्दरो, हाथियो, वन-मानुषो तथा अन्य प्रकार के प्राणियो पर सफलतापूर्वक किये गये है। किन्तु उपलब्ध प्रयोगो के आधार पर लगता है कि विकास क्रम मे जितना नीचे उतरा जाय, नैमित्तिक अधिगम दुष्कर होता जाता है। वैसे तो गैल्बर (1952, 54, 56अ, 56ब) ने एककोषीय जीव पैरामेशियम पर प्रयोग किया तथा प्रमाणित करने का प्रयत्न किया कि इस प्रकार के जीवो मे भी नैमित्तिक अधिगम का प्रक्रम होता है। किन्तु जेन्सन (1957) तथा काट्ज एव डेटरलाइन (1958) ने अधिक विश्वसनीय प्रदत्तो के आधार पर प्रदर्शित किया है कि एककोषीय जीवो मे नैमित्तिक अधिगम नही हो सकता। फ्लूयर तथा वाल्टन (1907) ने सी० एनीमोन पर प्रयोग किया। विकास-क्रम मे ये जीव एककोषीय जीवो मे अधिक विकसित होते है। इन प्रयोगकर्ताओ ने इन जीवो के मूढो पर फिल्टर कागज के टुकडे 24 घण्टे के म०यान्तर मे रख देते थ। ये जीव कागज को मुँह के पास ले जाते थे, निगल लेते थे और पुन उसे उगल देते थे। 2 से लेकर 5 प्रयासो बाद सूट कागज को पकडते ही नही थे। इस प्रकार इन जीवो ने कागज को पकडने तथा मुँह मे ले जाने की प्रतिक्रिया का अवरोध करना सीख लिया किन्तु ध्यान देने योग्य बात है कि इन जीवो मे उ० प्र० के बीच नूतन साहचर्य की प्रक्रिया का प्रदर्शन नहीं हो सका। अत यह कहना कठिन है कि ऐसे छोटे जीवो मे भी नैमित्तिक अनुबधन हो सकता है।

प्राचीन तथा नैमित्तिक अनुबधन मे उपलब्ध गोचर

प्राचीन तथा नैमित्तिक सीखने की प्रायोगिक प्रक्रियाओ मे विशेष अन्तर है। किन्तु इस प्रकार के अधिगमो के विस्तृत प्रायोगिक अध्ययनो से ज्ञात हुआ कि दोनो विधियो द्वारा सीखी हुई प्रतिक्रियाओ मे कई महत्वपूर्ण विशेषताएँ समान रूप मे पाई जाती है। इनको हम गोचर कह सकते है। इन दोनो प्रकार की विधियो मे एक ही प्रकार के गोचर पाए जाते है। ये गोचर क्या है तथा इनको दोनो प्रकार के प्रयोगो द्वारा कैसे प्रदर्शित किया गया है—इसका विवरण इस अनुमान मे प्रस्तुत है। प्रत्येक गोचर के विवेचन मे एक प्रयोग प्राचीन अनुबधन तथा एक प्रयोग नैमित्तिक अनुबधन से प्रस्तुत किया जायेगा।

विलोप तथा सम्बन्धित गोचर—अनुबधन द्वारा अ०उ०–अ०प्र० के बीच स्थापित साहचर्य कितना भी प्रबल रूप से स्थापित किया गया हो, अनेक परिस्थितिया मे यह साहचर्य ही नहीं, अपितु विलुप्त भी हो जाता है। यदि बिना व्यवधान अ०उ०-अ०प्र० का क्रम पुनर्बलन द्वारा पुष्ट न किया जाय तो अ०प्र० क्रमश क्षीण हो जाती है, तथा अन्ततोगत्वा उसका विलोप हो जाता है। इस विलोप का तात्पर्य अनुबधित प्रतिक्रिया के अवरुद्ध होना है। इस प्रकार के साहचर्य का आन्तरिक अवरोध, वाह्यावरोध, अनुबधित अवरोध, विलम्बावरोध होता है। इन्ही अवरोधा-त्मक गोचरो से सम्बन्धित दो और गोचर अनुबधन द्वारा सीखने मे पाये जाते है

जिन्हे स्वत पुनरावर्तन तथा अवरोधावरोध कहते है। जब पवलाव ने पहली बार इन गोचरो का प्रायोगिक प्रदर्शन किया तो बहुत दिनो तक मनोवैज्ञानिको का ध्यान इनकी ओर आकृष्ट नही हुआ। किन्तु बाद मे चलकर पाया गया कि ये गोचर, विशेषत विलोप, गोचर थार्नडाइक द्वारा प्रतिपादित अभ्यास के नियम के विपरीत था। फलत इन गोचरो तथा इनको प्रभावित करने वाले कारको का विस्तृत रूप से प्रायोगिक अध्ययन हुआ। इन अध्ययनो से इन गोचरो की सत्यता तो पुष्ट हुई ही, साथ ही साथ अनेक सैद्धान्तिक समस्याओ पर भी पर्याप्त प्रकाश पडा।

विलोप—पवलाव(1927) ने कुत्ते मे लार-स्राव की प्रतिक्रिया को अनुबन्धित किया। कुछ दर्शको के सामने उसने अ०उ० मेट्रोनोम को चालू कर दिया। मेट्रोनोम 30 सेकण्ड तक चला और दो मिनट के लिये बन्द कर दिया। दो मिनट बाद दूसरा प्रवास पुन प्रारम्भ किया। इसी प्रकार सात प्रयास किये गये। किसी भी प्रयास मे
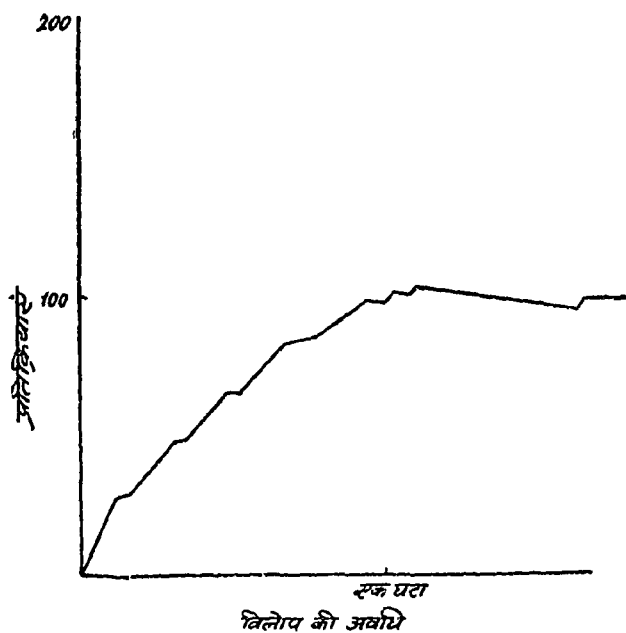
चित्र संख्या 7 4

[स्किनर मञ्जूषा मे दण्ड दबाने की अनुबन्धित प्रतिक्रिया का विलोपसूचक संचयात्मक वक्र। प्रारम्भ मे पुनर्बलन बन्द करने के पश्चात् भी प्रतिक्रिया की आवृत्ति ऊँची ह, किन्तु क्रमश निम्नतर होती गई है। 1 घंटा पश्चात् बहुत अल्पसंख्या मे अनुबन्धित प्रतिक्रिया हुई है (स्किनर, 1938 के आधार पर)।]

कुत्ते की लार-स्राव की अनुवधित प्रतिक्रिया पर भोजन का पुनर्वलन नही दिया गया। पवलाव ने इन सात प्रयासो मे क्रमश 10, 7 2, 7. 9, 5 4, 7 2, 4 तथा 3 बूंद ही लार-स्राव किया। इस प्रकार देखा गया कि निरन्तर विलोप प्रयासो के परिणामस्वरूप प्राचीन अनुवधन मे अ० प्र० क्रमिक रूप से क्षीण होती जाती है और उसका विलोप हो जाता है। स्पष्ट है कि प्राचीन अनुवधन से स्थापित अ०प्र० का विलोप पुनर्वलन के अभाव मे हो जाता है।

नैमित्तिक अनुवधन मे विलोप गोचर को प्रदर्शित करने के लिए स्किनर (1938) द्वारा प्रस्तुत केरलर तथा केर्र के प्रयोग को उद्धृत किया जा सकता है। इन प्रयोगकर्ताओ ने चूहो को स्किनर-मजूषा मे दण्ड दवाने की क्रिया को भोजन पुरस्कार के माध्यम से अनुवधित किया। अनुवधन स्थापित होने के वाद पुरस्कार वन्द कर दिया गया तथा पुरस्कार वन्द करने अथवा विलोप के प्रारम्भ करने के कुछ देर वाद तक सभी चूहे दण्ड दवाते रहे किन्तु औसतन 1 घण्टा वाद दण्ड दवाने की प्रतिक्रिया समाप्त प्राय हो गई। चित्र 7 4 मे दी हुई वक्र-रेखा से इस निष्कर्ष का प्रदर्शन होता है।

इस प्रकार पुनर्वलन के अभाव मे अ०उ०—अ०प्र० के वीच के साहचर्य का विलोप दोनो प्रकार के अनुवधनो मे होता है। प्रयोगकर्त्ताओ ने विलोप की विशेषताओ एव इसको प्रभावित करने वाले परिवर्त्यो का विस्तृत अध्ययन किया है। परिणामस्वरूप विलोप के सम्वन्ध मे कितने ही महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकले है।

(1) विलोप प्रयास के अभाव मे मात्र समय व्यतीत हो जाने के कारण अनुवधित प्रतिक्रियाओ की प्रवलता का ह्रास नही होता। लिडेल, जेम्स तथा ऐण्डरसन (1934) ने पाया कि भेडो मे अनुवधित पेशीयक्रिया का सचय दो वर्ष तक सचित रहा। इसी प्रकार मार्क्विस तथा हिलगार्ड (1936) ने कुत्तो मे अनुवधित पलक प्रतिक्रियाओ का सचय 16 महीने तक, हिलगार्ड तथा कैम्पवेल (1936) ने इसी प्रकार के अ०प्र० का सचय 20 सप्ताह तक वताया है। स्किनर (1950) ने वताया कि कवूतरो मे चोच मारने की अ० प्र० चार वर्ष तक सचित रही। इससे किम्वल (1960) ने निष्कर्ष निकाला हे कि थोडे समय मे विलोप प्रयासो के द्वारा अनुवधन के ह्रास मे किसी सक्रिय प्रक्रम का योग है। इस प्रक्रम के सम्वन्ध मे कितनी ही परिकल्पनाएँ जिनकी समीक्षा यहाँ सभव नही है, की गई है।

(2) आसगुड (1953) ने लिखा है कि विलोप अ० उ० के अपुरस्कृत पुनरावृति की निषेधात्मक रूप से प्रवद्धिति क्रिया है। तात्पर्य यह है कि अनुवधित क्रिया का ह्रास प्रारम्भिक अपुरस्कृत प्रयासो मे द्रुततर तथा अन्तिम प्रयासो मे लघुतर होता है।

(3) अनुवधित प्रतिक्रिया जितनी ही दुष्कर होती है, विलोप उतनी ही

तीव्रतर गति से होता है। केपहार्ट, विनय तथा ह्यूलिका (1
सम्बन्ध मे उद्धृत किया जा सकता है। स्किनर मजूषा मे चूहे
के लिए दण्ड दबाने का प्रशिक्षण दिया गया। बाद मे तुलना
प्रयत्नशीलता के विभिन्न अशो के साथ अनुभव को सतुलित क
को 5, 40 तथा 70 ग्राम के भार वाले दण्डो के साथ 30 प्रय
मे कराया गया। फिर चूहो को तीन समूहो मे विभक्त कर दि
के चूहो को 5 ग्राम भार वाले बार पर, दूसरो को 40 ग्राम
70 ग्राम भार वाले बार पर विलोप प्रयास दिये गये। चित्र
निष्कर्ष नीचे दिये गये है—
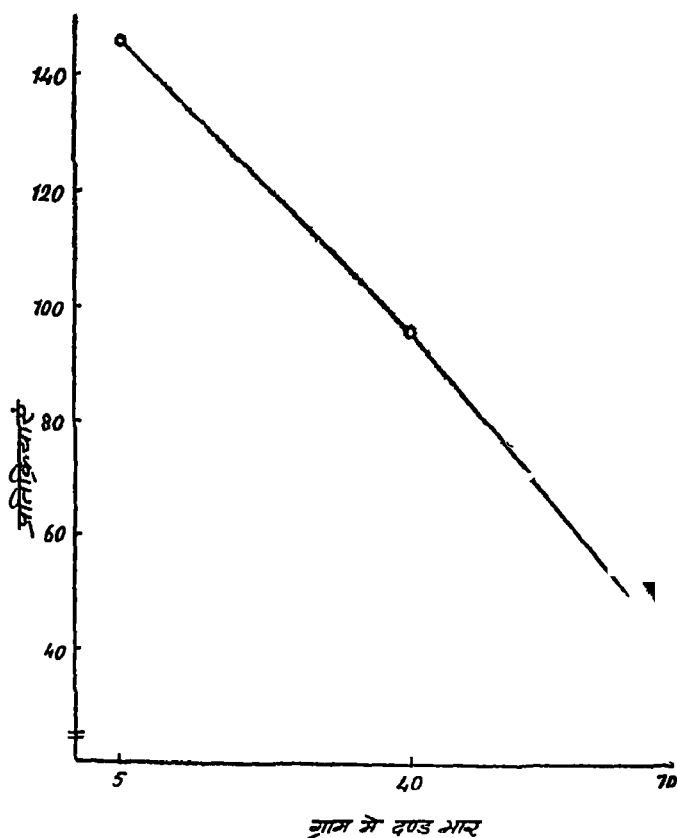
चित्र सख्या 7 5

[अनवधित प्रतिक्रिया के विलोप पर प्रतिक्रिया की कठिनता का प्रभाव (केपहार्ट, विनय तथा ह्यूलिका, 1958, के अध्ययन पर आधारित)।]

स्पष्ट है कि प्रयास मे जितनी अधिक वर्जितता थी उतनी ही तीव्रगति से अनुबधित प्रतिक्रिया का विलोप हुआ। मावरर तथा जोन्स ने 1943 मे ही इस विशेषता का प्रदर्शन किया था।

(4) अनुबधित क्रिया का विलोप दुष्कर हो जाता है यदि अनुबधन स्थापित करने की प्रक्रिया मे पुनर्बलन की प्राप्ति कुछ प्रयासो मे हुई और कुछ प्रयासो मे नही। तात्पय यह कि आशिक तथा अनियमित पुनर्बलन द्वारा अर्जित अनुबधन मे साहचर्य का विलोप शीघ्र और सरलता से नही होता। इस विशेषता का उल्लेख हम्फ्री (1939) ने पहली बार किया। इसीलिए इस विशेषता को 'हम्फ्री प्रभाव' अथवा 'हम्फ्री विरोधाभास' के नाम से जाना जाता है। इस सम्बन्ध मे फिन्गर (1942) के प्रयोग को उद्धृत किया जा सकता है। इस प्रयोग मे पाया गया कि (1) उस समूह के चूहो से, जिन्हे शत-प्रतिशत प्रयासो पर पुनर्बलन दिया गया, अनुबधन अर्जन के लिए 16 प्रयास कराये गये थे, विलोप के मानदण्ड की प्राप्ति मे प्रयासो की औसत सख्या 15 2 थी (2) दूसरे समूह के चूहो को, जिन्हे अनुबन्ध अर्जन के 16 प्रयासो मे 50 प्रतिशत प्रयासो पर ही पुनर्बलन दिया गया था, विलोम मानदण्ड की प्राप्ति औसत 27 1 प्रयासो मे हुई तथा (3) तीसरे समूह के चूहो को मात्र 8 ही अर्जन प्रयास शत-प्रतिशत प्रयासो पर पुनर्बलन देकर किया गया, तथा इन चूहो ने विलोप के लिए औसत 23 8 प्रयास किया। अन्तिम समूह के निष्कर्ष से सकेत मिलता है कि सम्भवत विलोप की दुष्करता पर अर्जन प्रयासो की सख्या का भी प्रभाव पडता है। फिन्गर की उपलब्धि के विपरीत, पेरिन (1942) ने पाया कि अर्जन प्रयासो की सख्या जितनी अधिक थी, विलोप उतना ही दुष्कर था।

(5) विलोप प्रयासो के वितरण से भी प्रभावित होता है। पवलाव (1928) ने बताया था कि एकत्र प्रयासो से विलोप की प्राप्ति शीघ्रतर होती है और उतने ही प्रयासो के वितरित कर देने से विलोप की गति मन्द हो जाती है। हिलगार्ड तथा मारक्विस (1935) के प्रयोग से ज्ञात हुआ कि कुत्तो के अक्षिपलक की अनुबधित प्रतिक्रिया का विलोप वितरित प्रयासो की अपेक्षा एकत्रित प्रयासो के कारण शीघ्रतर होती है। नैमित्तिक अनुबधन मे विलोप गोचर की इस विशेषता की पुष्टि रिनाल्ड (1945) तथा रोहरर (1947) के प्रयोगो से होती है।

स्वत. पुनरावर्तन[1]—विलोप से सम्बन्धित एक दूसरा गोचर जिसको स्वत पुनरावर्तन कहते हैं। प्राचीन एव नैमित्तिक अनुबधनो मे व्यापक रूप से पाया जाता है। पवलाव (1927) ने पाया कि अनुबधित प्रतिक्रिया का विलोप हो जाने के कुछ समय पश्चात् उस प्रतिक्रिया की मूल प्रबलता आशिक रूप को स्वत प्रत्यावर्तन कहते हैं। पवलाव के प्रयोग मे अनुबधित लार-स्राव की प्रतिक्रिया 7 परिशमन-प्रयासो मे 10 बूंद से घटकर 3 बूंद तथा प्रतिक्रियाकाल 3 सेकण्ड से बढकर 13 सेकण्ड हो

---

1 Spontaneous recovery

गया । 23 मिनट बाद जब अ० उ० उपस्थित कर प्रयास कराया गया तो लार-स्राव की मात्रा 6 बूंद तथा प्रतिक्रिया काल 5 सेकण्ड पाया गया । स्पष्ट है कि 23 मिनट के अवकाश के कारण अ० प्र० की प्रबलता स्वत आंशिक रूप से लौट आई ।

नैमित्तिक अनुबधन मे स्वत पुनरावर्तन का प्रायोगिक प्रदर्शन विश्वसनीय ढग से एल्लसन (1938) ने किया है । स्किनर-मञ्जूषा मे चूहो के चार समूहो को दण्ड दबाने की प्रतिक्रिया को भोजन पुरस्कार द्वारा अनुबधित किया गया । इसके बाद सभी चूहो को दण्ड दबाने की अनुबधित प्रतिक्रिया का विलोप कर दिया गया । विलोप का मानदण्ड था कि चूहे पाँच मिनट तक एक बार भी दण्ड न दबाएँ । विलोप के पश्चात् एक समूह के चूहो को मञ्जूषा से अलग 5 मिनट का अविश्राम दिया गया । इस प्रकार दूसरे समूह को 25 मिनट, तीसरे को 65 मिनट और चौथे समूह को 185 मिनट का विश्राम दिया गया । इस विश्राम के पश्चात् सभी समूह के चूहो को एक-एक कर मञ्जूपा मे पुन रखा गया । पाया गया कि सभी चूहो ने मञ्जूपा मे रखते ही दण्ड दबाने की प्रवृत्ति दिखाई । नीचे दिये गये चित्र से ज्ञात होता है कि जिन चूहो ने जितना विश्राम किया, उन्होने उतनी ही अधिक मात्रा मे अनुबधित प्रतिक्रिया का पुनरावर्तन किया ।
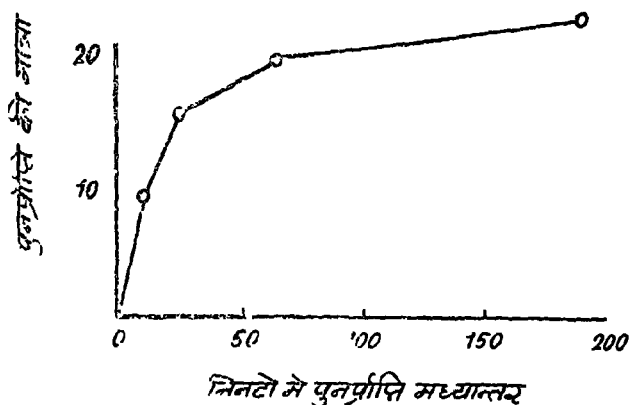
चित्र सख्या 7 6

[विभिन्न विश्राम मध्यान्तरो के बाद विलोप की दूसरी अवधि मे लिवर दबाने की प्रतिक्रियाओ की सख्या (एल्लसन, 1938 पर आवृत)]

स्वत पुनरावतन विलोप हुई अनुबधित प्रतिक्रिया का अनिवार्य गोचर है । प्रायोगिक अध्ययन से इस गोचर की कतिपय विशेषताएँ ज्ञात हुई है । पहली विशेषता

तो एलसन के प्रयोग से ही ज्ञात हुई। वह यह है कि स्वत पुनरावर्तन विश्राम की मात्रा का निषेधात्मक रूप से सम्वर्द्धित प्रकार्य है तथा प्रारम्भ मे पुनरावर्तन तीव्रतर गति से किन्तु वाद मे न्यूनतम गति से होता है। विश्राम की एक अवस्था के वाद विश्राम की और मात्रा वढाने से पुनरावर्तित अनुबंधित प्रतिक्रिया की मात्रा नही वढती। दूसरी विशेषता, किम्बल (1960) के अनुसार, यह हे कि स्वत पुनरावर्तन के कारण अनुवधित प्रक्रम के प्रशिक्षण मे अर्जित प्रवलता कभी भी प्राप्त नही होती। अधिक से अधिक 50 प्रतिशत प्रवलता पुनरावर्तित होती हे। तीसरी विशेपता पवलाव (1927) के अनुसार यह है कि यदि विलोप कर देने के वाद भी विलोप प्रयास चालू रखा जाय तो स्वत पुनरावर्तन पर उसका प्रभाव पडता है और पुनरावर्तन उतना ही दुष्कर और न्यूनतर हो जाता है।

वाह्यावरोध[1]—अनुबधन प्रशिक्षण के अवधि मे किसी भी नवीन उद्दीपक की उपस्थिति का अनुवधित प्रतिक्रिया की प्रवलता पर अवरोधात्मक प्रभाव पडता है। अनुवधित प्रतिक्रिया की इस विशेपता को वाह्यावरोध का गोचर कहते हैं। नवीन उद्दीपक को पवलाव ने वाह्यावरोधक की सज्ञा दी। ईवान्स (1925) ने इस गोचर का प्रायोगिक प्रदर्शन प्राचीन अनुवधन मे किया है। इस प्रयोग मे अ० उ० दृष्टि सम्वन्धी तथा वाह्यावरोधक उद्दीपक कुछ सेकण्ड तक ग्रामोफोन का वजना था। प्रायोगिक निष्कर्ष निम्न सारणी मे प्रस्तुत है। अनवरोधित अ० प्र० को 100 % मानकर निष्कर्षों को शताशो मे प्रस्तुत किया गया हे—

सारणी 7 1

नवीन उद्दीपक द्वारा वाह्यावरोध के कारण
अनुवधित प्रतिक्रिया पर प्रभाव (ईवान्स 1925 पर आधारित)

दृष्टिगत उ० के प्रति प्रतिक्रिया की प्रवलता	100 प्रतिशत
अ० प्र० की प्रवलता ग्रामोफोन के साथ अ० उ० उपस्थित करने पर	
प्रथम उपयोग	10 प्रतिशत
द्वितीय ,,	50 ,,
तृतीय ,,	65 ,,
चतुर्थ ,,	85 ,,
पचम ,,	90 ,,
षष्टम् ,,	94 ,,
सप्तम ,,	100 ,,

1 External Inhibition.

नैमित्तिक अनुबधन मे वाह्यावरोध का प्रायोगिक प्रदर्शन विन्निक्क तथा हण्ट (1951) ने ग्राहम-गैग्नी दौडपथ का उपयोग कर किया है। चूहो के विभिन्न समूहो को घण्टी की आवाज को दौडपथ मे दरवाजे (अ० उ०) के उठाने के दूसरे, आठवे, वारहवे तथा चौदहवे प्रयास पर वाह्यावरोधक के रूप मे प्रस्तुत कर दिया गया, तथा उस अवरोध का प्रभाव उ० प्र० की प्रवलता पर देखा गया। अ० प्र० की प्रवलता का माप प्रतिक्रियाकाल के माध्यम से किया गया। नीचे दी हुई सारणी मे वाह्यावरोधित प्रयासो मे अ० प्र० की प्रवलता के साथ ही उन प्रयासो के ठीक पहले आने वाले अनिरोधित प्रयासो मे प्राप्त प्रवलता भी हुई है।

सारणी सख्या 7 2

वाह्यावरोधक का नैमित्तिक रीति से अनुबधित प्रतिक्रिया पर प्रभाव

(विन्निक्क तथा हण्ट, 1951 पर आवृत)

अवरोधित प्रयास	प्र० काल	अनावरोधित प्रयास	प्र० काल	अन्तर
दूसरा	31 40	पहला	9 12	22 18
आठवा	17 40	सातवा	8 13	9 27
वारहवा	6 90	ग्यारहवाँ	4 27	2 63
चौदहवा	3 89	तेरहवाँ	2 30	1 59

इन दोनो प्रकार के प्रयोगो से ज्ञात होता है कि वाह्यावरोधक का प्रभाव वार-वार उपस्थित होने के कारण कम होने लगता है। ऐसा ज्ञात होता है कि वाह्यावरोधक के प्रति प्रयोज्य की क्रियाएँ अभियोजित हो जाती हैं क्योकि उसकी वार-वार उपस्थित होने से नवीनता समाप्त हो जाती है।

विलम्ब अवरोध[1]—विलोप गोचर से सम्बन्धित एक और गोचर विलम्ब अवरोध का है। जब पवलाव ने चिन्ह विधि तथा विलम्ब विधि से अनुबधन किया तो किसी-किसी प्रयोगो मे अ० उ० तथा अन० उ० के बीच कई मिनट का अन्तर होता था। इन प्रयोगो मे अनुबधित प्रक्रिया की नई विशेपताएँ ज्ञात हुई। अ० उ० के उपस्थित करने के कुछ समय वाद तक अ० प्र० प्रारम्भ नही होती थी, तथा लार-स्राव की मात्रा ज्यो-ज्यो अन० उ० (भोजन चूर्ण) उपस्थित करने का समय निकट आता जाता था, लार-स्राव की मात्रा भी वढती जाती थी। एक प्रयोग मे अ० प्र० के रूप म एक सीटी का तीन मिनट तक वजना था। अन० उ० एसिड था। वहुत प्रशिक्षण प्रयासो के वाद पाया गया कि सीटी वजने के दौरान प्रति तीस सेकण्ड के

1 Inhibition of delay

अन्दर क्रमश 0, 0, 2, 2, 3 तथा 6 बूँद लार स्राव हुआ। इस प्रकार चिन्ह तथा विम्बम विधि के अनुबधन मे अ० प्र० के इस प्रकार विलम्ब से प्रारम्भ होने की प्रक्रिया को पवलाव ने विलम्ब अवरोध की सज्ञा दी।

नैमित्तिक अनुबधन मे विलम्ब अवरोध का गोचर निश्चित मध्यान्तर पुनर्वलन[1] द्वारा किये गये प्रयोगो मे प्राप्त होता है। इस प्रकार के अनुबधन मे प्रयोज्य को निश्चित मध्यान्तर (उदाहरणार्थ प्रति 3 मिनट) के बाद प्रथम प्रतिक्रिया पर पुनर्वलन दिया जाता है, चाहे इस मध्यान्तर मे चूहा जितनी बार भी दण्ड दबाये हो। स्किनर (1938) ने इस प्रकार के नैमित्तिक अनुबधन मे प्राप्त प्रतिक्रियाओ की सचयात्मक आवृत्ति की वक्र रेखाएँ प्रस्तुत की है। प्रयोग की प्रारम्भिक अवस्था मे दो पुनर्वलनो के बीच तीन मिनट से बहुत अधिक मध्यान्तर होता है क्योकि चूहे प्रथम पुनर्वलन के तीन मिनट बाद शीघ्रता से प्रतिक्रिया नही करते। बाद के प्रयासो मे अनुबधित प्रतिक्रिया की बारम्बारता बढ जाती है और चूहे तीन मिनट के मध्यान्तर के बाद शीघ्रता से प्रतिक्रिया कर पुनर्वलन प्राप्त कर लेते हैं।

अनुबधित अवरोध[2]—विलोप से सम्बन्धित अनुबधन मे प्राप्त दूसरा गोचर अनुबधित अवरोध का है। इसको हम विभेदन[3] का विशिष्ट रूप मान सकते है। जब अनुबधन प्रशिक्षण के कारण कोई उद्दीपक अ०प्र० को अवरोधित कर देना है तो उस अवरोध को अनुबधित अवरोध कहते हैं। पवलाव द्वारा इस प्रकार के प्रयोगो मे अनुलोमी[4] (विधेयात्मक) अ०उ० ध्वनि थी। ध्वनि के साथ दूसरा उद्दीपक, स्पर्शात्मक-अ०प्र० के लिए विलोमी अ०उ० था। मात्र ध्वनि उपस्थित करने पर कुत्ते को खाद्य-चूर्ण का अनुर्वलन दिया जाता था किन्तु स्पर्श तथा ध्वनि के साथ-साथ प्रस्तुत होने पर पुनर्वलन नही दिया जाता था। अनुबधन प्रयासो के बाद मात्र ध्वनि मे लार-स्राव (अ०प्र०) होता था किन्तु स्पर्श-ध्वनि दोनो की उपस्थिति पर नही होती थी। इस अवरोध को पवलाव ने अनुबधित अवरोध की सज्ञा दी है।

वुडबरी (1943) ने अनुबधित अवरोध का प्रदर्शन नैमित्तिक प्रशिक्षण द्वारा किया है। कुत्ते को भोजन पुरस्कार के लिए नाक से लकडी के एक टुकडे को उठाना सिखाया गया। इस प्रारम्भिक प्रशिक्षण के बाद एक सकेत —उच्च ध्वनियाँ निम्न ध्वनि या दोनो साथ साथ—के उपस्थित होने तक कुत्ते को प्रतिक्रिया न करने दी जाती थी। प्रयोग के इस भाग मे उच्च या निम्न ध्वनि अलग-अलग तो सकारात्मक उत्तेजक थे किन्तु दोनो साथ-साथ प्रस्तुत होने पर विलोमी या निषेधात्मक उद्दीपक थे। कुत्ते को सीखने मे कठिनाई तो अवश्य हुई किन्तु अन्ततोगत्वा कुत्ते ने इन दोनो उद्दीपको के अलग अलग उपस्थित होने पर लकडी के टुकडे को नाक से उठाना

---

1 Fixed interval reinforcement 2 Conditioned inhibition
3 Discrimination 4 Positive

था, अधिगम कर लिया गया, किन्तु दोनो के साथ-साथ उपस्थित किये जाने पर नही (अ०प्र० अवरोध)।

अनावरोध अथवा अवरोध का अवरोध—पिछले पृष्ठो मे वाह्यावरोध गोचर का विवरण दिया गया है। अनुवधन-प्रशिक्षण के अन्तर्गत जव नवीन उद्दीपक उपस्थित किया जाता है तो अर्जित क्रिया अवरोधित हो जाती है। इस गोचर के विपरीत अनावरोध का गोचर है। जव विलोप-प्रयासो के अन्तर्गत किसी नवीन वाह्य उद्दीपक को प्रस्तुत किया जाता है तो विलुप्त अनुवधित प्रतिक्रिया स्वय प्रकट हो जाती है और प्रवलतर रूप से व्यक्त होती है। अनुवधन की इस विशेपता को अवरोध का अवरोध अथवा अनावरोध की सज्ञा दी जाती हे।

इस सम्वन्ध मे मावरर (1940) का प्रयोग उल्लेखनीय है। उसने अनुवधित मनोगैलवेनिक प्रतिक्रिया को विलोप प्रयास देकर लगभग अवरोधित कर दिया। उसके बाद उसने उच्च ध्वनि को वाह्य उद्दीपक के रूप मे अ०उ० के साथ प्रस्तुत किया। अ०प्र० अपने मौलिक रूप के 2/3 भाग मे पुन होने लगी। इस वाह्य उद्दीपक के अ०उ० को विना अन०उ० के कई वार प्रस्तुत करने पर अवरोधित प्रतिक्रिया का पुन ह्रास हो गया। विनिक तथा हुन्ट ने अपने चारो समूहो के चूहो की अनुवधित प्रतिक्रिया का विलोप करते समय दूसरे, चौथे, पाँचवे और छठे विलोप प्रयास मे वाह्य उद्दीपक के रूप मे उच्च ध्वनि प्रस्तुत किया। दूसरे विलोप प्रयास मे अनुवधित प्रतिक्रिया का प्रतिक्रियाकाल वहुत घट गया। दूसरे शब्दो मे, अ०प्र० आशिक रूप से अनावरोधित हो गई। वाद के प्रयासो मे प्रतिक्रियाकाल अवश्य वढता गया। इस प्रकार दोनो प्रकार के अनुवधनो मे अनावरोध का गोचर प्रदर्शित किया गया है।

सामान्यीकरण एव विभेदन सम्वन्धी गोचर[1]

अनुवधन प्रक्रम के प्रायोगिक अध्ययन से ज्ञात हुआ कि अनुवधित प्रतिक्रिया का साहचय मात्र अनुवधित उद्दीपक के साथ ही नही होता अपितु अ०उ० से समानता रखने वाले अन्य उद्दीपको के साथ भी हो जाता है। किन्तु यदि दूसरा उद्दीपक अ०उ० से भिन्न हुआ तो उसके साथ अ०प्र० का साहचर्य नही होता। यही दशा अ०प्र० के साथ भी है। किसी अ०उ० के साथ साहचर्य स्थापित अ०प्र० यदि उपलब्ध नही है तो उसके समान अन्य प्रतिक्रिया होती है। साथ ही साथ भिन्न प्रतिक्रियाएँ नहीं होतीं हैं। इन विशेपताओ को सामान्यीकरण तथा विभेदन के गोचर कहते हैं। इन्ही से मिलते-जुलते गोचर है, प्रतिक्रिया विभिन्नीकरण तथा निगमन के। इनके प्रायोगिक प्रदर्शन का एव इनकी ज्ञात विशेपताओ का विवेचन यहाँ किया जा रहा है।

1 Phenomena related to generalization & discrimination

उद्दीपक सामान्यीकरण—अनुवधित लार-स्राव की प्रतिक्रिया का अध्ययन करते हुए पवलाव को लगा कि अनुवधित प्रतिक्रिया का घटित होना अनुवधित उद्दीपक तक ही सीमित नही, वल्कि वे प्रतिक्रियाएँ अ०उ० से सम्वन्धित उद्दीपको के उपस्थित होने पर भी घटित होती हैं। पवलाव ने इम प्रकार के गोचरो को विकीर्णता[1] की सज्ञा दी। वाद मे इस गोचर को उद्दीपक सामान्यीकरण के सनाम से पुकारा गया। पवलाव (1927) ने कुत्ते की शरीर के एक निश्चित भाग पर स्पर्शात्मक उद्दीपक (अ०उ०) के साथ लार-स्राव की प्रतिक्रिया (अ०प्र०) को अनुवधित किया। तत्पश्चात् पाया गया कि शरीर के विभिन्न भागो पर यदि स्पर्शात्मक उद्दीपक प्रयुक्त किया गया तो अनुवधित प्रक्रिया घटित हुई। इतना अवश्य हुआ कि ज्यो-ज्यो दूसरे स्थानो की दूरी अनुवन्धन वाले मूल स्थान से वढती गई, प्रतिक्रिया की प्रवलता उतनी ही कम होती गई। इस आधार पर डीज (1956) ने निष्कर्ष निकाला कि—(1) अनुवन्धन की प्रभावोत्मकता मूल अ०उ० तक ही सीमिन नही रहती तथा (2) अ०प्र० को उद्दीप्त करने मे किसी नए उद्दीपक की क्षमता उतनी ही घट जाती है जितना कि वह अ०उ० से भिन्न होता है।

प्राचीन अनुवन्धन मे उद्दीपक सामान्यीकरण का प्रायोगिक प्रमाण वास्स तथा हल्ल (1934) के प्रयोग से और स्पष्ट किया जा सकता है। इन प्रयोगकर्ताओ ने कालेज के 16 छात्रो की मनोगैलवानिक प्रतिक्रिया को स्पन्दन स्पर्श उद्दीपक (अ०उ०) के विद्युत आघात (अन०उ०) के साथ उपस्थित कर अनुवन्धित किया। अनुवन्धन मे छात्रो के एक समूह के कधे पर, तथा दूसरे समूह के छात्रो के पृष्ठभाग पर अ०उ० प्रयोग कर प्रशिक्षण दिया गया। अनुवन्धन स्थापित हो जाने के वाद सभी प्रयोज्यो को कधे, पीठ, जघा तथा पैर के पिछले भाग पर स्पन्दन-स्पर्श उत्तेजक से परीक्षण प्रयास दिया गया। कधे पर अनुवन्धित तथा पैर के पिछले भाग पर अनुवन्धित छात्रो से परीक्षण-प्रयास मे प्राप्त प्रदत्तो को सम्मिलित करने के उद्देश्य से, एक समूह के कधे पर परीक्षण के प्रदत्त तथा दूसरे समूह के पैर के पिछले भाग से प्राप्त प्रदत्त को जोडकर औसत मान निकाल लिया गया। एक समूह के पीठ तथा दूसरे के जघे से प्राप्त प्रदत्तो को जोडकर औसत ज्ञात कर लिया गया। इस प्रकार तुलनीय चारो स्थानो से प्राप्त प्रदत्तो का औसत निकाला गया। स्पष्टता के लिए प्रदत्तो का सम्मिलित तथा औसतीकरण नीचे दिया गया है।

प्रथम समूह (कधा–अ०उ० का स्थान)	कधा–	पीठ–	जाघ–	पैर का पिछला भाग
द्वितीय समूह (पैर का पृष्ठभाग–अ०उ०)	पैर का पृष्ठ भाग	जघा	पीठ	कधा
	......			
	योग	योग	योग	योग
	औसतमान	औसतमान	औ०मा०	औ०मा०

1 Irradiation

इस प्रकार दोनो समूह के प्रदत्तो को एक ही चित्र मे एक वक्र रेखा से प्रदर्शित किया गया। इस रेखा चित्र मे परीक्षण उद्दीपको का प्रतिनिधित्व ऐबशिस्सा पर तथा अनुबन्धित प्रतिक्रिया की प्रबलता का माप (गैलवानिक क्रिया मापक के सुई का अन्दर की ओर जाना) आर्डिनेट पर प्रस्तुत है। इस प्रकार जो वक्र रेखा बनती है उसे सामान्यीकरण की प्रवणता[1] कहते है।
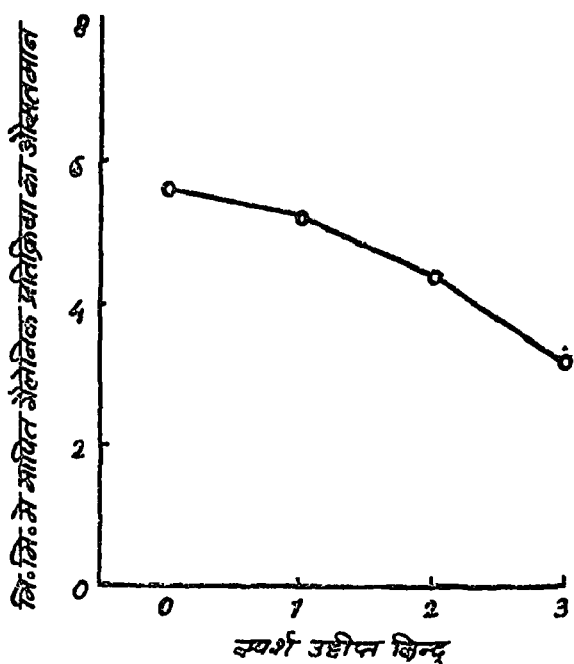
चित्र सख्या 7 7

[उद्दीपक सामान्यीकरण प्रवणता। शून्य बिन्दु पर गैल्वेनिक प्रतिक्रिया के लिए अनुबधित उद्दीपक के कारण अन्य बिन्दुओ का अनुबधित प्रतिक्रिया पर प्रभाव (वास्स तथा हल्ल, 1934 पर आधृत)]

इस वक्र रेखा से स्पष्ट है कि उद्दीपक सामान्यीकरण होता है। अनुबन्धित प्रतिकिया प्रशिक्षण उद्दीपक के अतिरिक्त दूसरे उद्दीपको के प्रति भी घटित होती है। इम प्रकार के अन्य प्रयोग भी हुए हैं जिनमे विभिन्न प्रकार के उद्दीपको जैसे, श्रवण सम्बन्धी, स्पर्शात्मक तथा दृष्टिगत (होवलैण्ड, 1937अ, 1937ब, लिटमैन, 1949) तथा विभिन्न प्रकार की सहज क्रियाओ का उपयोग कर उद्दीपक सामान्यीकरण की व्यापकता का प्रदर्शित किया गया है।[2]

---

1 Gradient 2 मेडिनिक तथा फ्रीडमैन, 1960 का शोध निबन्ध देखिए।

नैमित्तिक अनुबन्धन से उद्दीपक सामान्यीकरण गोचर का प्रमाण गट्टमैन तथा कैलिश (1956) ने कबूतरो पर चोच मारने की प्रतिक्रिया के माध्यम से किया है। कबूतरो को दीवाल पर बने एक चक्र पर चोच करने के लिए भोजन पुरस्कार द्वारा प्रशिक्षित किया गया। चक्र अर्धपारदर्शी था। उसको पीछे से प्रकाशित किया जा सकता था। प्रशिक्षण की अवधि मे चक्र को 5500 ऐंगस्ट्राम इकाई के प्रकाश तरग की लम्बाई को अ० उ० के रूप मे प्रयुक्त किया गया। प्रशिक्षण मे अनियमित पुरस्कार विधि द्वारा चोच मारने की क्रिया को अनुबन्धित किया गया। सामान्यीकरण प्रशिक्षण के लिए 4800, से 6200 ऐंगोस्ट्राम इकाई पर 200 इकाई के अन्तर से क्रमहीन ढग से उपस्थित किया गया। प्रत्येक परीक्षण उद्दीपक की पुनरावृत्ति 12 बार हुई। चूंकि अनुबन्धन स्थापित हो जाने के बाद इस प्रकार की अनुबन्धित प्रतिक्रिया बहुत देर तक बिना पुरस्कार घटित होती रहती है, इन प्रयोगकर्ताओ ने सामान्यीकरण का परीक्षण विलोप प्रयासो के माध्यम से किया। प्रत्येक परीक्षण उद्दीपक के प्रति की हुई प्रतिक्रिया का मापन प्रतिक्रिया-गति के
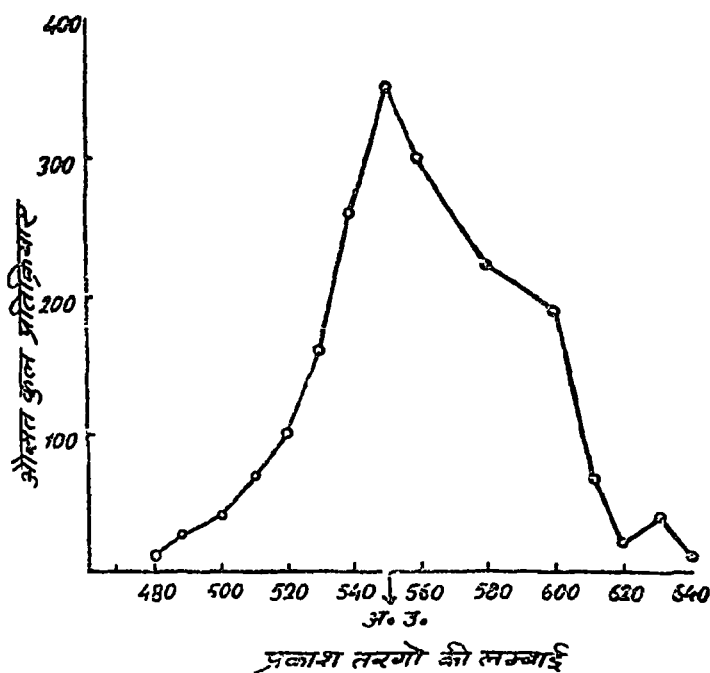
चित्र सख्या 7 8

[रग विभा पर चोच मारने की अनुबन्धित प्रतिक्रिया का उद्दीपन सामान्यीकरण (गट्टमैन तथा कैलिश, 1958 पर आधारित)]

आधार पर की गई। नीचे दिये हुये चित्र मे प्राप्त प्रदत्तो को वक्र रेखाओ के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

चित्र से स्पष्ट है कि कबूतरो ने परीक्षण-उद्दीपको के प्रति प्रतिक्रियाएँ तो की ही, साथ ही साथ इन प्रतिक्रिया का नियमित आधार था। ज्यो-ज्यो उद्दीपक की दूरी अ० उ० से नीचे तथा ऊपर दूर होती गई, प्रतिक्रिया-दर भी न्यूनतर होता गया। नैमित्तिक अनुबन्धन मे सामान्यीकरण की प्रामाणिकता इस प्रयोग से पूर्णत सिद्ध होती है।

उत्तेजक सामान्यीकरण पिछले तीन दशाब्दियो मे विस्तृत रूप से गवेषणा का विषय रहा है जिसके कारण इस गोचर की कई विशेषताएँ ज्ञात हुई है।

(1) उद्दीपक सामान्यीकरण अत्यन्त व्यापक गोचर है और सभी प्रकार के ज्ञानेन्द्रियो द्वारा ग्रहण होने वाली विमाओ पर प्रदर्शित किया गया है। स्थानीय विमा मे इसका प्रदर्शन बास्स तथा हल्ल (1934), ग्रान्ट तथा डिटमर (1940), गिब्सन (1939) ने किया है। ध्वनि विमा पर हवलैण्ड (1939), राजरान (1949) तथा जेनकिन्स तथा हैरिसन (1958) ने किया है। उद्दीपक की तीव्रता विमा पर प्रकार को अ० उ० के रूप मे लेकर ब्राऊन (1942), फिन्क तथा पैट्टन (1953) ने किया है। ध्वनि तीव्रता मे इसका प्रायोगिक प्रदर्शन हवलैण्ड (1937 ब) ने किया है। आकार की आयत विभाग पद उद्दीपक सामान्यीकरण का उदाहरण ग्राइस तथा साल्टज (1950) तथा मारगोलियस (1955) ने दिया है। इसके अलावा उद्दीपक सामान्यीकरण मनुष्यो तथा सब प्रकार के पशुओ के स्तर पर पाया जाता है।

(2) इस गोचर की दूसरी विशेपता यह है कि उद्दीपक सामान्यीकरण मात्र अनुबन्धित प्रतिक्रियाओ का ही नही अपितु अन्य प्रकार की प्रक्रियाओ का भी होता है। हल्ल (1920) ने सिद्ध किया है कि सबोध निर्माण मे उद्दीपक-सामान्यीकरण का प्रमुख स्थान है। त्रिपाठी (1961 62) ने अपने प्रयोगो मे पाया कि उद्दीपक सामान्यीकरण सबोधात्मक प्रतिक्रियाओ का भी होता है। उत्प्रेरको से उत्पन्न गत्या त्मक उद्दीपको का सामान्यीकरण यामागुची (1952) ने प्रदर्शित किया। उसने चूहो को दण्ड दबाने की प्रतिक्रिया के लिए कुछ समय तक खाद्य से वचित (अ० उ०) कर अनुबन्धित किया। परीक्षण प्रयास मे खाद्य पदार्थ से विभिन्न मात्रा मे वचित चूहो पर उपयोग किया गया। विभिन्न मात्रा मे वचित रहने के कारण क्षुधा प्रेरणा से उत्पन्न गत्यात्मक उद्दीपक भी विभिन्न मात्रा मे रहे होगे। इस प्रकार इस प्रयोग-कर्ता को नियमित रूप से उद्दीपक सामान्यीकरण मिला। विलोप गोचर का भी उद्दीपक सामान्यीकरण प्राचीन तथा नैमित्तिक अनुबन्धन दोनो मे होता है। किग (1952) ने नैमित्तिक अनुबन्धन मे विलोप के उद्दीपक सामान्यीकरण का अध्ययन किया। चूहो के समूहो को दो उद्दीपको मे से एक के प्रति प्रतिक्रिया कर भोजन प्राप्त करने के लिए अनुबन्धित किया गया। दोनो उद्दीपक धातु के वृत थे जो आयत मे

एक दूसरे से भिन्न थे। मुख्य समूह के लिए एक उद्दीपक का क्षेत्रफल 79 वर्ग से० मी० था, दूसरे का 20, 32, 50 अथवा 79 वर्ग सेन्टीमीटर था। दूसरे मुख्य समूह के लिए एक उद्दीपक का क्षेत्र 20 वर्ग सेन्टीमीटर तथा दूसरे उत्तेजक का क्षेत्र 20, 32, 50 अथवा 79 वर्ग सेन्टीमीटर था। दूसरे मुख्य समूह के लिए एक उद्दीपक वृत्त का क्षेत्र 20 वर्ग सेन्टीमीटर तथा दूसरे उत्तेजक का क्षेत्र 20, 32, 50 अथवा 79 वर्ग सेन्टीमीटर था। प्रत्येक समूह के लिए दो उद्दीपक अनुलोमी थे। इस प्रकार आठ समूह मे चूहो को प्रति समूह एक उद्दीपक युगल पर अनुबन्धित किया गया। उद्दीपक युगल आठ प्रकार के थे—(39-20, 79-32, 79-50, 79 79, 20-20, 20-32, 20-50, तथा 20-79। इस प्रकार के प्रशिक्षण के बाद 79 वर्ग सेन्टीमीटर वाले वृत्त पर प्रथम चार समूह के चूहो को दूसरे युगल सदस्य उद्दीपको पर परीक्षण प्रयास किया गया। परिकल्पना यह थी कि युगल उद्दीपक मे जितनी समानता होगी, विलोप का सामान्यीकरण उतना ही अधिक होगा। नीचे दिये हुए चित्र मे प्रतिक्रिया-काल के माध्यम मे प्राप्त प्रदत्त को प्रस्तुत किया गया है। प्राप्त प्रदत्त से सिद्ध है कि विलोप का सामान्यीकरण होता है।
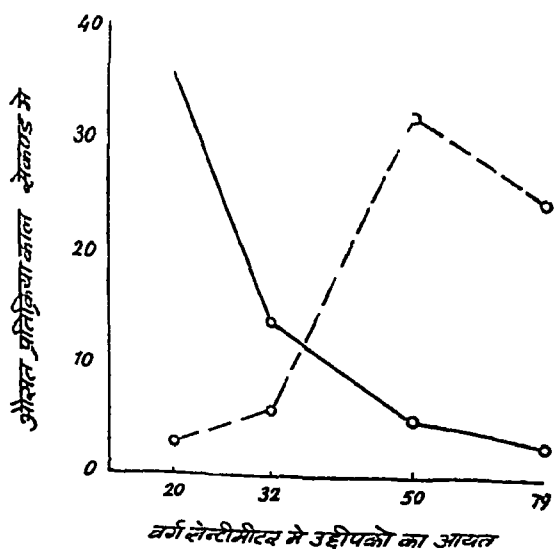
चित्र सख्या 7 9

[नैमित्तिक रीति से अनुबन्धित प्रतिक्रिया के विलोप का उद्दीपन सामान्यीकरण (क्लिग, 1952 पर आधारित)]

(3) सामान्यीकरण की मात्रा को प्रभावित करने वाले कतिपय परिवर्त्यों का प्रायोगिक रीति से पता लगाया गया है। सामान्यीकरण उत्प्रेरक स्तर से प्रभा-

वित होता है। जैन्किन्स, पास्कल तथा वाल्कर (1958) ने पाया कि कबूतरो मे भूख का स्तर जितना ऊँचा होगा उतना ही ज्यादा सामान्यीकरण भी होगा। रोजेनवाम (1956) ने अपने प्रयोग से प्रमाणित किया कि मनुष्य अपनी ऐच्छिक क्रिया मे प्रबल विद्युत आघात के भय से अधिक सामान्यीकरण तथा कम आघात के भय से कम सामान्यीकरण करते है। परिस्थिति का भी प्रभाव उद्दीपक सामान्यीकरण पर होता है। मेडनिक (1957) ने प्रमाणित किया कि उन प्रयोज्यो मे जो प्रयोगो के लिए नये थे, पुराने प्रयोज्यो की तुलना मे अधिक सामान्यीकरण किया। प्रशिक्षण की मात्रा तथा उसके प्रकार का उद्दीपक सामान्यीकरण पर प्रभाव कई प्रयोगकर्ताओ ने प्रस्तुत किया है। अर्जन-प्रशिक्षण मे जितना अधिक पुरस्कृत प्रयास होगे उतना ही अधिक सामान्यीकरण होगा। (राजरान, 1949 तथा मेडनिक और फ्रीडमैन 1960 मे उद्धृत)। इसके आलावा आयु, लिंग, मस्तिष्क-क्षति आदि परिवर्त्यो से भी उद्दीपक सामान्यीकरण पर प्रभाव पडता है (मेडनिक तथा फ्रीडमैन, 1960 मे उद्धृत)।

(4) जहाँ तक सामान्यीकरण की सैद्धान्तिक विवेचना का प्रश्न है, मनोवैज्ञानिको मे बहुत मतभेद है। पवलाव, हल्ल, स्पेन्स तथा मिल्लर सामान्यीकरण को उद्दीपक समानता का प्रकार्य मानते हैं, दूसरे शब्दो मे जितनी अधिक समानता अ० उ० तथा परीक्षण उद्दीपक मे समानता होती है सामान्यीकरण उतना ही अधिक होता है। इस प्रकार इनके लिए उत्तेजक सामान्यीकरण परीक्षण-उद्दीपक की समानता मे ह्रास के साथ न्यूनतर होता जाता है। लाशली तथा वेड (1946) सामान्यीकरण को विभेदन की असफलता मानते हैं और उनके लिए यह गोचर परीक्षण उद्दीपक की समानता के ह्रास क साथ प्रतिक्रिया का ह्रास नही है। राजरान (1949) दोनो को भ्रामक मानता है तथा अनृत उद्दीपक सामान्यीकरण तथा सत्य-सामान्यीकरण के दो भेद मानता है। सत्य-सामान्यीकरण को परीक्षण के अन्तर्गत प्रयोज्य द्वारा उद्दीपको का वर्गीकरण कहता है। मेडनिक तथा फ्रीडमैन (1960) ने इन तीनो विवरणो को समन्वित कर अपनी व्याख्या प्रस्तुत की है।

प्रतिक्रिया सामान्यीकरण—अनुबधन प्रक्रम के प्रतिक्रिया पक्ष मे भी सामान्यीकरण का गोचर पाया गया है। यदि किसी भी प्राणी ने एक अ० उ० के प्रति एक तरह की अ० प्र० करना सीख लिया है और किसी भी अवसर पर उस उद्दीपक के प्रति वह प्रतिक्रिया घटित होने के लिए उपलब्ध नही है, तो प्राणी उस प्रतिक्रिया से मिलती-जुलती दूसरी प्रतिक्रिया करता है। इस गोचर का प्रायोगिक उदाहरण वेखटेख (1932) के प्रयोगो से दिया जा सकता है। एक कुत्ते को अ०उ० के प्रति एक पाँव उठाने के लिए प्रशिक्षित किया गया और किसी अवसर पर उस पैर को बाँधकर निष्क्रिय कर दिया गया। अ०उ० के प्रस्तुत होने पर कुत्ता दूसरा पैर उठाने की प्रतिक्रिया करने लगा। इस सम्बन्ध मे केल्लाग (1939) ने और क्रमबद्ध प्रमाण प्रस्तुत किया है। कुत्ते के पीछे वाले दाहिने पैर को उठाने की प्रति-

क्रिया के लिए (अ०प्र०) घण्टी (अ० उ०) तथा विद्युत आघात (अन०उ०) को साथ उपस्थित कर अनुवधित किया। पुन शल्य चिकित्सा द्वारा इस पैर को प्रतिक्रिया के लिये अशक्त कर दिया गया। पाया गया कि कुत्ता सभी पैरो से प्राय अलग-अलग प्रतिक्रिया करता है। पीछे वाले दाहिने पैर से जो अन्य पैर जितने निकट थे, उतनी ही अधिक सामान्यीकृत प्रतिक्रिया होती थी जो पैर जितने दूर थे उनमे सामान्यीकृत प्रतिक्रिया उतनी ही कम होती थी।

प्राचीन अनुवधन मे प्रतिक्रिया सामान्यीकरण का उदाहरण अक्षिपलक अनुवधन मे वानू (1958) ने प्रस्तुत किया है। इस प्रयोगकर्ता ने ज्ञात किया कि इस प्रकार के अनुवधन मे प्रतिक्रिया-काल का वितरण प्रतिक्रिया सामान्यीकरण का उदाहरण है। इस प्रयोग मे अ०उ० रोशनी और अन०उ० हवा का फूंक था। दोनो के वीच का मध्यान्तर 1 सेकण्ड था। प्रशिक्षण प्रयासो का 5 समूह तथा प्रति समूह मे 30 प्रयासो को सम्मिलित कर उनके प्रति क्रियाकाल का चित्र-रेखा द्वारा वितरण करने पर ज्ञात हुआ कि प्रतिक्रियाओ के प्रतिक्रिया-काल मे पर्याप्त विविधता थी। यह विविधता प्रतिक्रिया सामान्यीकरण का स्पष्ट उदाहरण माना गया है।

विभेदन—यदि किसी प्रयोज्य को दो समान उद्दीपको मे एक को विधयात्मक अ० उ० तथा दूसरे को निपेधात्मक अ०उ० वनाकर प्रयोग किया जाय तो प्रयोज्य एक के प्रति अ०प्र० करता है तथा दूसरे के प्रति नही। इस विशेपता को विभेदन का प्रमेय कहते है। यह गोचर सामान्यीकरण के नष्ट होने का द्योतक है। इस गोचर के अनेक उदाहरण पवलाव ने प्रस्तुत किया है। किम्वल (1960) के अनुसार इस गोचर मे दो कायिक प्रक्रम सन्निहित है और पवलाव उनको विधेयात्मक निगमन तथा निपेधात्मक निगमन की सज्ञा देता है। विधेयात्मक निगमन का तात्पर्य है निरोधक प्रक्रम के कारण प्रतिक्रिया का सम्वर्द्धन तथा निपेधात्मक निगमन का तात्पर्य है सक्रिय प्रतिक्रिया के कारण अवरोध प्रतिक्रिया का सम्वर्द्धन। सक्रिय प्रक्रम पुनर्वलन प्राप्त होने के कारण प्रवल होती है और अवरोधक प्रक्रम पुनर्वलन न प्राप्त होने के कारण। जव प्रशिक्षण मे दोनो प्रक्रमो को एक साथ सम्वन्धित किया जाता है तो उसे विभेदन अधिगम कहते हैं। दो उद्दीपको को एक ही प्रयोग मे प्रस्तुत किया जाता है। एक उद्दीपक के प्रति (अ०प्र०) पर पुनर्वलन दिया जाता है और उसके अनुलोभी अ० उ० अथवा दूसरे की उपस्थिति मे पुनर्वलन नही दिया जाता है। अत उसे विलोमी अ०उ० कहते है। इस प्रकार प्रयोज्य अनुलोमी अ०उ० के प्रति प्रतिक्रिया करना सीख लेता है और विलोमी अ०उ० के प्रति प्रतिक्रिया को अवरोधित करना सीखता है। इस प्रकार अधिगम का वर्णन अगले अध्याय मे सविस्तार किया गया है।

प्राचीन तथा नैमित्तिक अनुबधनो की तुलना

गत् पृष्ठो मे दोनो प्रकार की अनुवधन-प्रक्रियाओ का विवेचन पृथक-पृथक

किया गया। तत्पश्चात् यह प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया गया कि एक ही प्रकार के गोचर दोनो प्रकार के अनुबधनो मे प्राप्त होते हैं। किन्तु इन दो अनुबधनो के पारस्परिक सम्बन्धो का स्पष्टीकरण करने के लिए कतिपय प्रश्नो के उत्तर अपेक्षित है। पहला प्रश्न है कि क्या प्राचीन और नैमित्तिक अनुबधन प्रक्रियाओ से दो भिन्न प्रकार के अधिगमो की उत्पत्ति होती है अथवा इनकी प्रक्रियाओ मे अन्तर होते हुए भी इनसे एक ही प्रकार का अधिगम होता है। दूसरा प्रश्न है कि क्या इन दो प्रकार के अनुबधनो का सचालन एक ही नियम के आधार पर होता है अथवा इनको सचालित करने वाले नियम एक दूसरे से भिन्न है। किस सीमा तक इन दोनो को एक दूसरे के समान और किस सीमा तक एक दूसरे से भिन्न माना जा सकता है ? इन प्रश्नो के उत्तर इन दोनो अनुबधनो के सभी पक्षो की तुलना कर ही दिये जा सकते हैं।

प्राचीन और नैमित्तिक अनुबधनो की तुलनात्मक विवेचना मे कई कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती हैं (किम्बल, 1960)। पहली कठिनाई यह है कि दोनो की प्रयोग प्रक्रियाओं मे भिन्नता होते हुये भी, तार्किक रीति से नैमित्तिक अनुबधन की स्थापना प्राचीन अनुबधन-प्रक्रिया की दशाओ को सम्मिलित किये बिना असम्भव है। पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि नमित्तिक अनुबधन मे वाछित प्रतिक्रिया (अ०प्र०) के घटित होने पर ही पुनर्वलन प्राप्त होता है। प्रतिक्रिया किसी उद्दीपक परिस्थिति मे घटित है। स्पष्ट है कि वाछित प्रतिक्रिया किसी उद्दीपक-सकेत के समीप ही घटित होगी। प्रतिक्रिया की इस कालिक अथवा स्थानीय समीपता के कारण वह उद्दीपक-सकेत उस प्रतिक्रिया का अनुबधित उद्दीपक हो जायेगा। इस प्रकार यह सरलता से माना जा सकता है कि नैमित्तिक प्रक्रिया मे भी प्राचीन अनुबधन प्रक्रिया की व्यवस्था-अ०उ० (उद्दीपक-सकेत), अ०प्र० (वाछित-प्रतिक्रिया) पुनर्वलक (अन०उ०) स्वय उत्पन्न हो जाती है। अत यह कहना कठिन हो जाता है कि नैमित्तिक प्रक्रिया प्राचीन अनुबधन प्रक्रिया से सर्वथा भिन्न है। दूसरी कठिनाई यह है कि प्राचीन अनुबधन की स्थापना परिशुद्ध रीति से बिना नैमित्तिक प्रक्रिया के तत्वो को समाविष्ट किये दुष्कर है। पवलाव के प्रयोग मे भोजन-चूर्ण तभी पुनर्वलक बनता है जब लार-स्राव की प्रतिक्रिया हो। बिना लार-स्राव के भोजन पुनर्वलक न होकर कष्टदायी हो जाता है। इस प्रकार इस प्राचीन अनुबधन मे पुनर्वलन (भोजन पुरस्कार रूप मे) लार-स्राव की प्रतिक्रिया पर आश्रित है। अत स्पष्ट है कि इस प्रक्रिया मे नैमित्तिक अनुबधन का मूलतत्व (प्रतिक्रिया पर पुनवलन की निर्भरता) विद्यमान है। अक्षिपलक अनुबन्धन मे भी यही विशेपता पायी जाती है। पलक गिराने पर ही हवा की फूँक से उत्पन्न कष्ट की तीव्रता कम होती है और प्रतिक्रिया के लिए पुनर्वलन प्राप्त होता है। अन्तिम कठिनाई यह है कि एक ही प्रकार की प्रतिक्रिया का अनुबन्धन दोनो प्रकार की प्रायोगिक प्रक्रियाओ से अलग-अलग करना दुष्कर है। इस दिशा मे अनेक मनोवैज्ञानिको ने प्रयत्न किया है। उदाहरण के लिए,

ब्राग्डेन, लिपमैन तथा काल्लर (1938) का प्रयोग उद्धरणीय है। इन लोगो ने प्राचीन अनुवन्धन प्रक्रिया से विद्युताघात (अन० उ०) और घण्टी की ध्वनि (अ०) का उपयोग कर गिन्नी पिग्स को दौडकर पलायन करने (अ० प्र०) का प्रशिक्षण दिया। प्रयोज्यो के दूसरे समूह को परिहार प्रशिक्षण प्रक्रिया रीति से दौडकर पलायन करने का प्रशिक्षण दिया गया। दोनो समूहो की प्रशिक्षण प्रक्रिया मे मुख्य अन्तर यह था कि प्राचीन अनुवन्धन प्रक्रिया मे प्रयोज्य के दौडने की प्रतिक्रिया प्रारम्भ होने पर विद्युताघात नही दिया जाता था। स्पष्ट है कि इन दोनो समूहो के अनुवन्धन प्रक्रम की तुलना की जा सकती है। प्राप्त प्रदत्तो से ज्ञात हुआ कि नैमित्तिक समूह के प्रयोज्यो ने घण्टी की ध्वनि पर विद्युताघात से वचने के लिए दौडकर पलायन करना अधिगत कर लिया, किन्तु प्राचीन अनवन्धन समूह के प्रयोज्यो ने पलायन करना नही सीखा। शेफील्ड (1948) ने वडी प्रभावशाली रीति से उस प्रयोग की आलोचना की। उसने स्पष्ट किया कि इस प्रयोग के प्राचीन अनुवन्धन समूह के प्रयोज्यो को अन० उ० की अनिवार्यता के कारण कभी-कभी पलायन करते समय विद्युताघात मिला होगा और इस प्रकार विद्युताघात के कारण इन प्रयोज्यो को दौडने की प्रतिक्रिया पर पुरस्कार के वदले दण्ड की प्राप्ति हुई होगी। अत उस समूह द्वारा अधिगम का अभाव प्राचीन अनुबन्धन की प्रभावहीनता के कारण नही अपितु दण्ड से उत्पन्न दौडने की प्रतिक्रिया के अवरोधित के कारण है। इस आपत्ति की पुष्टि उसने प्रायोगिक तथ्यो के आधार पर की।

इन अनुवन्धो के वीच वस्तुपरक तुलना के मार्ग मे इतनी कठिनाइयो के रहते हुये भी मनोवैज्ञानिको ने प्राचीन तथा नैमित्तिक अनुवन्धनो की तुलनात्मक व्याख्या की है। यद्यपि दोनो अनुवन्धन सरलतम अधिगम के उदाहरण माने जाते हैं तथा दोनो अनुवन्धनो मे एक ही प्रकार के गोचर पाये जाते हैं तथापि इन दोनो मे अनेक मानदण्डो के आधार पर भिन्नता की जाती है। गोचरो की समानता का जहां तक सम्वन्ध है, कुछ मनोवैज्ञानिको के लेखो से सकेत मिलता है कि नैमित्तिक अनुवन्धन के प्रयोगो मे प्राचीन अनुवन्धन प्रक्रिया के तत्वो का अनिवार्य रूप से समावेश होने के कारण वहुत से गोचर समान रूप से दोनो प्रकार के अनुवन्धनो मे पाये जाते है। अन्यथा आज के अधिकाश मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि दोनो अनुवन्धन अधिगम के दो भिन्न रूप हैं जिनको कई रीतियो से एक दूसरे से पृथक किया जा सकता है।

प्रतिकृत और घटित प्रतिक्रियायें

स्किनर (1938) ने अनुवन्धित होने वाली प्रतिक्रियाओ के आधार पर इन अनुवन्धनो को दो वर्गों मे विभक्त किया है। वह एक प्रकार के व्यवहारो को प्रतिकृत तथा दूसरे प्रकार के व्यवहारो को घटित की सज्ञा देता है। प्रतिकृत व्यवहार वे हैं जो ज्ञात एव निश्चित उद्दीपको द्वारा उत्पन्न किये जाते हैं। उदाहरणार्थ, सभी सहज

क्रियाओ को लिया जा सकता है। लार-स्राव मुख मे किसी वस्तु के सम्पर्क के कारण होता है। तीव्र प्रकाश के कारण आँखो की पुतलियाँ आकुंचित हो जाती हैं। इस प्रकार के व्यवहार उद्दीपक द्वारा उत्पन्न होते है और सहज क्रियाओ के नियमो पर आधारित होते है। दूसरी ओर घटित व्यवहार वे होते हैं जिनकी उत्पत्ति किसी निश्चित अथवा ज्ञात उद्दीपक के कारण नही होती। ऐसे व्यवहारो को सकार्य कहते है। मेउनिक (1964) ने इन दोनो प्रकार के व्यवहारो की भिन्नता को स्पष्ट करते हुये कहा है कि प्रतिकृत व्यवहार सहज क्रियात्मक होते हैं और घटित व्यवहार ऐच्छिक होते हैं।

स्किनर ने इसी भिन्नता के आधार पर प्राचीन एव नैमित्तिक अनुबन्धन मे भेद किया है। प्राचीन अनुबन्धन को वह उद्दीपक प्रकार तथा नैमित्तिक अनुबन्धन को प्रतिक्रिया प्रकार कहता है। उद्दीपक प्रकार के अनुबन्धन मे पुनर्वलन का सह-सम्बन्ध उद्दीपक से साथ होता है। इसमे अ० उ०-अन० उ० के साथ प्रस्तुत किया जाता है और इस प्रकार अनुबन्धित प्रतिक्रिया (लार-स्राव अथवा अक्षिपलक का गिरना) उद्दीप्त होती है। ऐसी अवस्था मे अ० उ० तथा अन० उ० की लगभग सहसामयिक उपस्थिति के कारण अनुबन्धन की उत्पत्ति होती है। स्किनर के अनुसार उद्दीपक प्रकार के अनुबन्धन के लिए शुद्ध प्रायोगिक प्रमाण बहुत कम है। इसलिए इस प्रकार के अनुबन्धन को वह बहुत महत्व नही देता।

दूसरे प्रकार का अनुबन्धन प्रतिक्रिया प्रकार है। ऐसे अनुबन्धन मे प्रतिक्रिया तथा पुनर्वलन के बीच पूर्ण विधेयात्मक सहसम्बन्ध होता है। दूसरे शब्दो मे, प्रतिक्रिया के होने पर ही पुनर्वलन प्राप्त होता है। सही तौर पर कहा जा सकता है कि ऐसे अनुबन्धन मे प्रतिक्रिया के कारण पुनर्वलन प्राप्त होता है। इस अनुबन्धन मे थार्नडाइक का प्रभाव-नियम काम करता है। स्किनर ने लिखा है कि यदि सकार्य के बाद पुनर्वलन देने वाला उद्दीपक उपस्थित होता है तो व्यवहार की प्रबलता वर्द्धित होती है (1938 पृ० स० 21)। इस प्रकार प्रतिक्रिया पुनर्वलन का निमित्त है। इसी कारण हिल्लगार्ड तथा मारकिस (1940) ने इस प्रकार के अनुबन्धन को नैमित्तिक अनुबन्धन के नाम से उल्लिखित किया है।

स्किनर ने अपनी पुस्तक के बारहवें पृष्ठ पर सकेत दिया है कि उद्दीपक प्रकार का अनुबन्धन सहज क्रियाओ तक सीमित है। किन्तु प्रतिक्रिया प्रकार का अनुबन्धन प्रत्येक प्रकार के ऐच्छिक पेशीय व्यवहारो मे होता है स्किनर का यह भी विचार है कि उ० प्रकार अनुबन्धन परिशुद्ध रूप मे नही होता है। जितने प्रयोगो मे सहज-क्रियाओ को लेकर प्राचीन अनुबन्धन (उ० प्रकार) को प्रदर्शित किया गया है उनमे प्र० प्रकार के तत्वो के समावेश के कारण ही अनुबन्धन स्थापित हो पाया है। इस सम्बन्ध में हेल (1956) के विचार ध्यातव्य है। वे लिखते हैं कि पवलाव के प्रयोगो मे अध्ययन की जाने वाली लार स्राव की प्रतिक्रिया नैमित्तिक है। "पवलाव की विधि मे कुत्ते को

भोजन तक पहुँचना और उसे प्राप्त कर लेना ही नहीं है बल्कि खाद्य पदार्थ को निषेधात्मक रूप से प्रबलक होने के लिए आवश्यक है कि कुत्ता लार-स्राव भी करे। मुख मे सूखा भोजन पुरस्कारी होने की अपेक्षा अधिक दण्डकारी होना है क्योंकि उसे लार-स्राव के अभाव मे निगला नही जा सकता" (हेब्ब 1956 पृ० 165)। इस तरह इस प्रकार के प्रयोगो मे भी पुरस्कार प्रतिक्रिया पर आधारित है और उन प्रयोगो को हम नैमित्तिक अनुबन्धन कह सकते हैं। अपने निबन्ध के अन्त मे हेब्ब इस निष्कर्ष पर आते हैं कि प्राचीन अनुबन्धन वस्तुत पवलाव के प्रयोगो से नही प्रदर्शित होता, बल्कि प्राचीन और नैमित्तिक अनुबन्धन भेद परिहार तथा पलायन अनुबन्धन के माध्यम मे स्पष्ट होता है। वे प्रयोग जिनमे प्रत्येक प्रयास पर विद्युतीय आघात अवश्य दिया जाये चाहे संकेत के प्रति प्रयोज्य प्रतिक्रिया करे या न करे, प्राचीन अनुबन्धन के उदाहरण हैं। वे प्रयोग, जिसमे प्रयोज्य प्रतिक्रिया कर विद्युतीय आघात को नही आने देता, नैमित्तिक अनुबन्धन प्रक्रिया के अन्तर्गत आते हैं।

इस प्रकार के विश्लेषण मे स्किनर यह भी कहता है कि दोनो प्रकार के व्यवहार (अनैच्छिक अथवा सहज क्रियात्मक तथा ऐच्छिक-पेशीय) दो अलग-अलग प्रक्रियाओ से अनुबन्धित होते है। अनैच्छिक व्यवहार, जिनका संचालन मुख्यत स्वत संचालित स्नायु-संस्थान से होता है, प्राचीन अनुबन्धन-प्रक्रिया के द्वारा अनुबन्धित होते हैं। ऐच्छिक व्यवहार, जिनका संचालन केन्द्रिय स्नायु-संस्थान से होता है, नैमित्तिक अनुबन्धन प्रक्रिया से अधिगत होता है। इस प्रकार के विभाजन को प्रायोगिक तथ्यो से पुष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। कतिपय प्रतिक्रियाएँ—मनोगैलवानिक इत्यादि प्राचीन अनुबन्धन विधि द्वारा अनुबन्धित तो होते है, किन्तु नैमित्तिक प्रक्रिया से उनका अनुबन्धन नही हो पाता है। मावरर (1938) मनोगैलवानिक प्रक्रिया को नैमित्तिक विधि से अनुबन्धित करने मे असफल रहा। आज यह निर्विवाद रूप से सिद्ध है कि अनेक स्वत चालित प्रतिक्रियाओ का अनुबन्धन प्राचीन अनुबन्धन प्रक्रिया द्वारा सम्भव है। इस विश्लेपण के विरुद्ध दलील प्रस्तुत की गई कि इससे यह सिद्ध नही होता कि ऐच्छिक क्रियाओ का अनुबन्धन प्राचीन विधि से हो सकता है। कुछ मनोवैज्ञानिको ने इंगित किया कि घुटने की सहज क्रिया, अक्षि-पलक इत्यादि जैसे पेशीय क्रियाओ का अनुबन्धन प्राचीन अनुबन्धन प्रक्रिया से होता है। अनेक मनोवैज्ञानिको ने इस प्रकार की प्रतिक्रियाओ का अध्ययन दोनो प्रक्रियाओ से करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि (1) पलक मारने की ऐच्छिक प्रतिक्रिया पलक गिरने की सहज-क्रिया से रूप तथा प्रतिक्रिया काल मे भिन्न है। पलक मारने की क्रिया का नैमित्तिक अनुबन्धन होता है और पलक गिरने की प्रतिक्रिया का प्राचीन अनुबन्धन (स्पेन्स तथा रास्स 1959)। (2) नैमित्तिक रूप से अनुबन्धित पलक मारने की प्रतिक्रिया चुस्ती के साथ पलको के पूरी तरह बन्द हो जाने मे होती है जबकि प्राचीन रूप से अनुबन्धित पलक गिरने की प्रतिक्रियाएँ अपूर्ण और धीरे-धीरे विकसित होती है। प्रायोगिक साक्ष्यो के आधार पर दोनो

अनुबन्धनो मे अनुबन्धनीय प्रतिक्रियाओ के आधार पर भिन्नता प्रामाणिक प्रतीत होती है।

प्राचीन एव नैमित्तिक अनुबन्धन मे अ० प्र० तथा अन० प्र० की समानता-असमानता

हिलगाड तथा मार्क्विस (1940) का मत है कि प्राचीन तथा नैमित्तिक अनुबन्धनो मे अनुबन्धित तथा अनानुबन्धित प्रतिक्रियाओ की समानता तथा असमानता के आधार पर भेद किया जा सकता है। उनके अनुसार प्राचीन अनुबन्धन मे अनुबन्धित प्रतिक्रिया अनानुबन्धित प्रतिक्रिया से मिलती-जुलती है तथा नैमित्तिक अनुबन्धन मे भिन्न होती है। किन्तु यह विभेदन आशिक रूप से ही सत्य है। गहराई के साथ पर्यवेक्षण करने से ज्ञात हुआ है कि प्राचीन अनुबन्धन मे अनुबन्धित प्रतिक्रिया यद्यपि कि उन्ही प्रभावको से चलती है जिनसे कि अनानुबन्धित प्रतिक्रिया, तथापि दोनो प्रतिक्रियाएँ एक दूसरे से कई विशेषताओ मे भिन्न होती हैं। दूसरी ओर, नैमित्तिक अनुबन्धन द्वारा स्थापित परिहार प्रतिक्रियाएँ अपने मौलिक रूप से मिलती जुलती हैं।

प्राचीन अनुबधन उद्दीपक तथा नैमित्तिक अनुबधन उद्दीपक प्रतिक्रिया अधिगम के रूप मे

श्लासबर्ग ने बताया है कि प्राचीन अनुबधन मे उद्दीपक-उद्दीपक के बीच साहचर्य स्थापित होता है और नैमित्तिक अनुबधन मे उद्दीपक प्रतिक्रिया के बीच। प्राचीन अनुबधन के कारण उद्यनक[1] प्रतिक्रियाओ की ही उत्पत्ति हो सकती है। इसमे अ० उ० अन० उद्दीपक के घटित होने का सकेत देता है जिसके कारण प्रयोज्य अ० उ० की प्रतीक्षा करता है। इस प्रकार प्राचीन अनुबधन उद्दीपक-पुनर्स्थापन[2] है। इस पुनर्स्थापन के कारण अ०उ० अन०उ० से सम्बन्धित वल्कुटीय क्रियाओ को उद्दीप्त करता है। नैमित्तिक अनुबधन मे उ०-प्र० के बीच सम्बन्ध स्थापित होता है।

प्राचीन अनुबधन मे समीपता-नियम और नैमित्तिक अनुबधन मे प्रभाव का नियम

प्राचीन तथा नैमित्तिक अनुबधन मे मावरर ने सैद्धान्तिक आधार पर भेद किया है। उसके अनुसार अधिगम प्रक्रम मे स्वतत्र रूप से दो मौलिक नियम कार्य करते हैं। प्राचीन अनुबधन समीपता के नियम से निर्धारित होता है। अनुबधित उद्दीपक तथा अनुबधित प्रक्रम मे जितनी अधिक कालिक समीपता होती है, दोनो के बीच उतनी ही सरलता तथा शीघ्रता से साहचय स्थापित होता है। इस प्रकार के अनुबधन मे पुनर्वलन की उपस्थिति आवश्यक नही है। दूसरी ओर, नैमित्तिक अनुबधन मे अ० उ०-अ० प्र० के बीच साहचर्य पुनर्वलन के कारण होता है। थानडाइक ने प्रयत्न तथा भूल द्वारा सीखने की विधि मे जिस प्रभाव के नियम का वर्णन किया, वह नियम इस प्रकार के सीखने को निर्धारित करता है।

---

1 Preparatory 2 Stimulus substitution

जैसाकि पहले वताया जा चुका है कि पवलाव के अनुवधन प्रयोग वस्तुत नैमित्तिक अनुवधन के उदाहरण है, और मात्र परिहार अनुवधन को ही प्राचीन अनुवधन का उदाहरण माना जा सकता है, इसी सदर्भ मे इस प्रकार के विभाजन के प्रायोगिक प्रमाण के लिए मे (1948) द्वारा प्रस्तुत प्रयोग को उद्धृत किया जा सकता है। मे ने अपने प्रयोग मे चूहो को विद्युतीय आघात से वचने के लिए एक बाँध (अवरोध) के पार छलाग लगाकर पार करने का प्रशिक्षण दिया। इस प्रशिक्षण के पश्चात्, चूहो को एक-एक कर मजूषा के एक सीमित क्षेत्र मे वन्द कर दिया गया और घण्टी के साथ-साथ अपरिहार्य विद्युतीय आघात दिया गया। यह प्रशिक्षण, इस प्रकार, प्राचीन अनुवधन प्रक्रिया के अनुसार था। अन्त मे यह जानकारी करने के लिए कि चूहे अवरोध को पार कर लेते है, चूहो को पलायन दशा मे पुन रखकर घण्टी वजाई गई कि नही। 80 प्रतिशत चूहो ने अवरोध को पार कर लिया। 10 प्रतिशत से कम चूहो ने जिनको प्रयोग के द्वितीय स्तर पर मात्र आघात अथवा घण्टी अथवा अलग-अलग घण्टी और आघात मिला, अवरोध को पार किया। स्पष्ट है कि परीक्षण प्रयासो मे अवरोध पार करने के लिए घण्टी और आघात को साथ-साथ उपस्थित कर द्वितीय स्तर मे परीक्षण महत्वपूर्ण था। इस प्रयोग से द्विप्रक्रम परक तीन सिद्धान्तो का स्पष्टीकरण हो जाता है जिसे अधोलिखित प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है—

1 **प्रथम स्तर**—धक्के से वचने का प्रशिक्षण

उ० (विद्युतीय धक्का)—प्रतिक्रिया (अवरोध पार करना)

इस स्तर पर प्रशिक्षण नैमित्तिक अनुवधन विधि द्वारा होता है।

उद्दीपक (विद्युतीय आघात) अवरोध पार करने की क्रिया को उत्पन्न करता है जिस पर पुनर्वलन (धक्के से वचाव) आधारित है।

2 **द्वितीय स्तर**—प्राचीन अनुवधन के आधार पर प्रशिक्षण

अन० उ० (विद्युतीय आघात) (पार करना असम्भव)
अ० उ० (घण्टी)

इस स्तर पर प्राचीन अनुवधन विधि का उपयोग किया गया।

3. **तृतीय स्तर**—परीक्षण प्रयास

अ० उ० (घण्टी) अ० प्र० (अवरोध पार करना)

यहाँ एक प्रश्न का समाधान करना आवश्यक है। स्पष्ट है द्वितीय स्तर पर चूहे को अवरोध पार करने की प्रतिक्रिया से वचित रखा गया। इस सम्बन्ध मे प्रश्न उठता है कि जब प्रयोज्य को प्रतिक्रिया से वचित रखा जाता है तो अ० उ० का साहचर्य किस प्रतिक्रिया से होता है। मावरर (1950) के अनुसार यहाँ प्रयोज्य मे भय की प्रतिक्रियाएँ होती हैं और अ० उ० इसी भय के साथ सम्वन्धित हो जाता है। दूसरे शब्दो मे, प्रयोज्य के अन्दर सज्ञानपरक पुन सरचना होती है और अ० उ०

भय का द्योतक या सूचक बन जाता है। यह सम्बन्ध केवल अ० उ० तथा अन० उ० की सामयिक समीपता के कारण होता है। इस प्रकार भय की प्रतिक्रिया के कारण परिहार की प्रतिक्रिया होती है।

आसगुड (1953) ने मावरर के इस प्रक्रम परक सिद्धान्त, तथा प्राचीन एव नैमित्तिक के वीच अन्तर को मानते हुये यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि एक ही अधिगम प्रक्रिया मे, प्राचीन और नैमित्तिक, दोनो प्रकार के अनुवधन होते हैं। उसके अनुसार सीखने की क्रिया मे दो प्रक्रम सन्निहित हैं। कोई भी अन० उ० दो प्रकार की प्रतिक्रियाएँ उद्दीप्त करता है। पहली मध्यस्थ प्रतिक्रियाएँ और दूसरी नैमित्तिक अथवा पेशीय प्रतिक्रियाएँ। अनुवधन मे चार अवस्थाएँ होती हैं।

अन० उ० (विद्युतीय धक्का) मध्यस्थ प्र०म० प्र० से उद्भूत उ० अन० प्र०
अ० उ० (घण्टी)

यहाँ पर अ०उ० केवल मध्यस्थ प्रतिक्रियाओ से सम्बन्धित होता है। वाद मे अ० उ० अ० प्र० को इसलिये उद्दीप्त करता है कि वह प्रतिक्रिया मध्यस्थ प्रतिक्रियाओ से सम्बन्धित है। मध्यस्थ प्रतिक्रिया द्वारा प्राप्त मध्यस्थ उत्तेजक और पेशीय क्रिया के वीच सम्वन्ध क्रमक अथवा प्रभाव के नियम के कारण होता है। इस प्रकार किसी भी सीखने मे दोनो नियम आवश्यक हैं और प्राचीन तथा नैमित्तिक अनुवधन एक ही प्रकार के सीखने की दो अलग-अलग उपक्रियायें हैं।

सक्षेप मे, यह कहा जा सकता है कि प्राचीन अनुवधन तथा नैमित्तिक अनुवधन कई आधारो पर एक-दूसरे से भिन्न है। प्राचीन अनुवधन मे प्रतिकृत प्रतिक्रियाओ का अनुवधन होता है। ये प्रतिक्रियाये अपने अनुवधित रूप मे मौलिक रूप से पर्याप्त समानता रखती हैं तथा स्वभावत वे सहज क्रियात्मक स्वत चालित प्रतिक्रियाएँ होती हैं। इस अनुवधन को उत्तेजक अनुवधन कह सकते हैं जो समीपता के नियम से शासित होता है। नैमित्तिक अनुवधन मे का अनुवधन होता है जो पेशीय एव ऐच्छिक होती है और अनुवधित रूप मे मौलिक प्रतिक्रिया से भिन्न होती है। इसको उ० प्र० सीखना कह सकते है और यह सीखना प्रभाव के नियम पर आधारित है।

यहाँ एक प्रश्न का निराकरण आवश्यक है। यदि यह मान लिया जाय कि प्राचीन अनुवधन मे स्वत चालित प्रतिक्रियाओ एव नैमित्तिक अनुवधन मे ऐच्छिक क्रियाओ का अनुवधन होता है, तो उन प्रायोगिक प्रमाणो से, जिनसे सिद्ध हो गया हे कि कभी-कभी स्वत चालित क्रियाओ पर ऐच्छिक नियत्रण हो सकता है, इस भेद को मानने मे कठिनाई पैदा हो जाती है क्योकि इससे अनुमान लगता है कि स्वत चालित क्रियाओ को ऐच्छिक या नैमित्तिक रूप से परिवर्तित या सवर्धित किया जा सकता है। भारतीय यौगिक क्रियाओ मे इच्छा से स्वत चालित क्रियाओ पर नियत्रण किया जाता है। प्रायोगिक रूप से हेफ्फरलाइन (1959) ने लघु अगूठे मे

अद्दश्य स्पन्दन, तथा नोवुल (1950) ने मनोगैलवानिक प्रतिक्रिया पर ऐच्छिक नियत्रण के प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। अब प्रश्न यह है कि ऐच्छिक क्रियाओ का अनुबधन पर क्या प्रभाव पडता है ?

अनुबधित प्रतिक्रियाओ पर ऐच्छिक घटको का प्रभाव

प्रायोगिक प्रमाणो से ज्ञात होता है कि जिस प्रकार स्वत चालित प्रतिक्रियाओ का नैमित्तिक अथवा ऐच्छिक क्रियाओ पर प्रभाव पडता है, उसी प्रकार ऐच्छिक क्रियाओ का स्वत चालित क्रियाओ पर प्रभाव होता है। राजरान (1955) ने प्रदर्शित किया है कि उन प्रयोज्यो मे अनुबधन अधिक सरलता तथा सफलता से होता है जिन्हे यह ज्ञात नही कि उन पर अनुबधन का प्रयोग किया जा रहा है। अनुबधन उद्देश्य का ज्ञान रखने वाले प्रयोज्यो मे अनुबधन सफल नही हो पाता। जे० मिल्लर (1939) ने अक्षिपलक अनुबधन मे कई प्रकार के निर्देशो के प्रभाव का प्रायोगिक अध्ययन किया है। उसने पाया कि अनुबधन अर्जन और परिशमन पर निर्देशो का महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है। अपने प्रयोगो मे उसने प्रकाश (अ० उ०) एक आंख पर हवा का फूंक (अन० उ०) का 400 मि० से० के मध्यान्तर से उपयोग किया। मानवीय प्रयोज्यो के कई समूह को उसने अलग-अलग निर्देश दिया। नीचे दी हुई सारणी मे उसके निष्कर्षो को प्रस्तुत किया गया है।

सारणी सख्या
अनुबधित प्रतिक्रिया की आवृति पर
पूरक निर्देशो का प्रभाव

प्रायोगिक निर्देश समूह	निर्देश	अ० प्र० की प्रतिशत आवृति
निरोधक	यह निश्चय कीजिये कि हवा की फूंक पाने के पहले पलक गिराना प्रारम्भ न करेंगे और न गिरायेंगे ( )	26 प्रतिशत
ऐच्छिक प्रतिरोध	जितनी वार हवा की फूंक आपके आँख पर पडती है, आँख खोलिये (म० 20)	28 प्रतिशत
तटस्थ	न्यूनतम निर्देश	38 प्रतिशत
सूचित	निर्देश दिया कि प्रकाश के तुरन्त वाद हवा की फूंक मारी जायेगी।	44 प्रतिशत
सुविधाजनक	यदि आप आंख की पलक गिराने जैसा महसूस करते हैं या पलक गिरती है तो उसे मत रोकिये	71 प्रतिशत

प्रथम तथा द्वितीय समूह के निष्कर्षों से ज्ञात होता है कि ऐच्छिक का स्वत सचालित प्रतिक्रियाओ के अनुबधन पर प्रभाव पडता है। किन्तु यह प्रभाव आशिक होता है। इसके कारण अनुबधन प्रक्रिया पूर्णत प्रभावहीन नही हो जाती। अनुबधन पर निरोधक निर्देशो के प्रभाव की विस्तृत विवेचना नोरिस तथा ग्राण्ट (1948) ने किया है। उनके प्रयोग से ज्ञात हुआ कि निरोधक निर्देश के कारण अनुबधन प्रक्रिया के स्थापित होने के स्तर मे बहुत अन्तर हो जाता है। निरोधक निर्देश के होने पर अनुबधन बहुत मन्द गति से स्थापित होता है जबकि सुविधाजनक निर्देश से अनुबधन प्रक्रिया की गति तीव्र हो जाती है। किम्बल (1961) ने इस प्रकार के अध्ययनो का सर्वेक्षण कर निष्कर्ष निकाला है कि ऐच्छिक सुविधा से ऐच्छिक निरोध तक क्रमश अनुबधन मे प्रतिक्रिया की बारम्बारता तथा मात्रा घटती जाती है तथा प्रतिक्रिया काल बनता जाता है किन्तु निरोधक निर्देश के कारण अनुबधन केवल शिथिल होता है, उसकी समाप्ति नही होती है। इस प्रकार यह शका कि स्वत सचालित प्रतिक्रियाएं भी किसी तरह नैमित्तिक अनुबधन के कारण होती है, प्राप्त प्रदत्तो के आधार पर पुष्ट नही हो पाती है।

सहायक ग्रन्थ सूची

एल्लसन, डी जी — क्वान्टिटेटिव स्टडीज आव द इन्टरऐक्शन आव सिम्पुल हैबिट्स रिकवरी फ्राम स्पेसिफिक् एण्ड जेनरलाइज्ड इफेक्ट्स आव एक्सटिंक्शन जर्नल आव एक्सपे० साइका०, 1938

आसगुड, चार्ल्स ई — मेथड एण्ड थियरी इन एक्सपेरिमेण्टल साइकालोजी आक्सफोर्ड यूनि० प्रेस, 1953

ईवान्स, सी ए एल — रिसेन्ट ऐडवान्सेज इन फिजियालोजी लन्दन चर्चिल, 1925

ऐनरेप, जी वी — पिच्च डिसक्रिमिनेशन इन द डाग जर्नल आव फिजियोलाजी, 1920

ऐस्टीज, डब्ल्यू के — ऐन एक्सपेरिमेण्टल स्टडी आव पनिशमेण्ट साइकालोजिकल मोनोग्राफ, 1944

काट्ज, एम० एस० तथा डेटर लाइन, डब्लू ए — अपरेन्ट लर्निंग इन पैरामेशियम, जर्नल आव कम्प० फिजियो० साइका०, 1958

किलग, जे डब्लू — जेनरलाइजेशन आव एक्सटिंकशन आव ऐन इन्स्ट्रूमेण्टल रिस्पान्स टू स्टिमुलाई वैरियिंग इन साइज डाइमेन्शन जर्नल आव एक्स पे० साइका०, 1952

किम्बल, जी ए — कन्डिशनिंग ऐज ए फन्क्शन आव द टाइम विटविन कन्डिशण्ड एण्ड अनकण्डिशण्ड स्टिमुलाई जर्नल आव एक्सपेरिमेण्टल साइकालोजी, 1947

किम्बल, ग्रेगरी ए — हिलगार्ड तथा मार्किस कन्डिशनिंग एण्ड लर्निंग अप्लेटन-सेन्चुरी-क्राफ्ट्स, 1961

क्यूलर, ई, फिन्स, जी, गर्डेन, ई, तथा ब्राग्डेन, जे डब्ल्यू — मेजरमेण्ट्स आव अकुयिटी बाई द कण्डिशण्ड रिस्पान्स टेकनीक जनरल आव जेनरल साइकालोजी, 1935

केपहार्ट, जे, विनेय, जे तथा ह्यूलिका, आई एम — द ईफेक्ट आव एफर्ट आन एक्सटिंक्शन, जर्नल आव कम्पे० फिजियो० साइका०, 1958

केल्लाग, डब्ल्यू एन — एविडेन्स फार बोथ स्टिमुलस सब्सीच्यूशन एण्ड ओरिजिनल ऐन्टिसिपेटोरी रिस्पान्सेज इन द कण्डिशनिंग आन डाग्स जर्नल आव एक्स पे० साइका०, 1938

कोनोर्स्की, जे — कन्डिशन्ड रिफ्लेक्सेज एण्ड न्युरान आर्गनाइजेशन कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1948

गट्टमैन, एन तथा कैलिश एच आई — डिसीक्रमिनेबिलिटी एण्ड स्टिमुलस जेनरलाइजेशन, जर्नल आव एक्सपेरिमेण्टल साइका०, 1956

गथरी, ई आर — द साइकालोजी आव लर्निंग हार्पर, 1935

ग्रान्ट, डी ए तथा डिट्टमर, डी जी — ऐन एक्सपेरिमेण्टल इनवेस्टिगेशन आव पवलाव्स कार्टिकल इर्रेडिएशन हाइपाथिसिस, जर्नल आव एक्सपेरिमेण्टल साइका०, 1940

ग्राहम, सी एच तथा गैग्नो, आर एम — द अक्वीजिशन, एक्सटिंक्शन एण्ड स्पान्टेनियस रिकवरी आव ए कण्डिशण्ड आपरेन्ट० जर्नल आव एक्सपेरिमेण्टल साइका०, 1940

गेल्बर, बिएट्रिस — एनवेस्टिगेशन्स आव द बिहेवियर आव पेरामेशियम आरेलिया

माडिफिकेशन्स आव बिहेवियर आफ्टर ट्रेनिंग विद रीइनफोर्समेण्ट, जर्नल आव कम्पेरे० फिजियो० साइका०, 1952

द इफेक्ट आव डिफरेन्ट ट्रेनिंग शिड्यूल्स आन यंग एण्ड एजिंग कल्चर्स, अमेरिकन साइकालोजिस्ट, 1954

	माडीफिकेशन्स आव ए रिस्पान्स इन सक्सेसिव जेनरेशन्स आव बोथ मेटिंग टाइप्स, जर्नल आव काम्प० फिजियो० साइका०, 1956 अ
	द इफेक्ट्स आव द प्रजेन्स एण्ड ऐबसेन्स आव लाइट आन द अकरेन्स आव अ रिस्पान्स जर्नल आव जेनेटिक साइकालोजी, 1956 व
जेनर, के	द सिग्निफिकेन्स आव विहेवियर अकाम्पनियिंग कण्डिशन्ड सैलिवरी सिक्रिशन फार थियरीज आव द कण्डिशन्ड रिस्पान्स० अमेरिकन जर्नल आव साइकालोजी, 1937
जेन्किन्स, डब्लू ओ, पास्कल, जी आर तथा वाल्कर, आर डब्ल्यू (जू)	डिप्राइवेशन एण्ड जेनरलाइजेशन जर्नल आव एक्सपे० साइका०, 1958
जेन्सन, डी डी	एक्सपेरिमेण्ट्स आन लर्निंग इन पैरामेशियम, साइंस, 1957
टामसन, आर तथा मैकानेल, जे	क्लासिकल कण्डिशनिंग इन प्लेनेरियन जर्नल आव कम्पेयरेटिव फिजियोलाजिकल साइकालोजी 1955
टालमैन, ई सी	परपजिव विहेवियर इन एनिमल्स एण्ड मेन अप्लेटन-सेन्चुरी, 1932
	थियरीज आव लर्निंग इन एफ० ए० मास कम्पेयरेटिव साइकालोजी प्रेन्टिस-हाल (1934)
	प्रीडिक्शन आव वाइकेरियस ट्रायल एण्ड एरर बाई मीन्स आव द स्किमेटिक सोवग साइकालोजिकल रिव्यू, 1939
डीज, जेम्स	द साइकालोजी आव लर्निंग मैग्रा हिल्ल (द्वितीय सस्करण)
डीज, जेम्स तथा हल्स, स्टिवार्ट, एच	द साइकालोजी आव लर्निंग मैग्रा हिल्ल (तृतीय सस्करण
थार्प, डब्ल्यू एच	लर्निंग एण्ड इन्सटिक्ट्स इन एनिमल्स, मेथुवन 1956
नोबुल, सी ई	कण्डिशण्ड जेनरलाइजेशन आव द गैल्वेनिक स्किन रिस्पान्स टू ए सबवोकल स्टिमुलस जर्नल आव एक्सपे साइका, 1950

नोरिस, ई वी तथा ग्रान्ट, डी ए — आई लिड कन्डिशनिंग ऐज अफेक्टेड बाई वर्बली इन्ड्यूस्ड इनहिबिटोरी सेट एण्ड काउन्टर रीइनफोर्समेण्ट अमे जर्नल आव साइका 1948

पवलाव, आई पी — कन्डिशन्ड रिफ्लेक्सेज, ऑक्सफोर्ड यूनि प्रेस, 1927

फिज्जवाटर, एम ई तथा थ्रस, आर एस — अक्विजिशन आव कण्डिशण्ड रिसपान्स ऐज अ फन्क्शन आव फार्वर्ड टेम्पोरल कान्टिग्विटी जर्नल आव एक्सपेरिमेन्टल साइकालोजी, 1956

फ्लूयर, एच जे तथा वाल्टन, जे — नोट्स आन सम हैबिट्स आव सी एनेमोन्स (किम्बल, 1961 द्वारा उद्धृत), 1907

ब्रानू, सी ए — द इन्टरस्टिमुलस इन्टरवल एण्ड द लेटेन्सी आव द कण्डिशण्ड आई लिड रिसपान्स जनल आव एक्सपे साइका, 1958

ब्राग्डेन, डब्लू जे, लिपमैन, ई ए तथा क्यूल्लर, ई — द रोल आव इनसेन्टिव इन कण्डिशनिंग एण्ड एक्सटिंक्शन अमे जर्नल आव साइका, 1938

ब्राउन, एच डब्ल्यू तथा गाइसेलहाट, आर — एज डिफरेन्सेज इन द अक्विजिशन एण्ड एक्सटिंक्शन आव द कण्डिशण्ड आई लिड रिसपान्स जर्नल आव एक्सपेरिमेण्टल साइकालोजी, 1959

बारस, एम जे तथा हल, सी एल — द इर्रेडिएशन आव अ टैक्टाइल कण्डिशण्ड रिफ्लेक्स इन मैन जर्नल आव कम्पै साइका, 1934

मन्न, एन एल — द इवोल्यूशन एण्ड ग्रोथ आव ह्यूमन बिहेवियर, हाटन मिफ्लिन, 1955

मार्क्विस, डोरोथी पी — कैन कण्डिशण्ड रिस्पान्सेज बी इस्टैब्लिश्ड इन द न्यूबार्न इन्फैण्ट जनल आव जेनेटिक साइकालोजी, 1931

मार्क्विस, डी जी तथा हिल्गार्ड, ई आर — कण्डिशण्ड लिड रिस्पान्सेज टू लाइट इन डाग्स आफ्टर रिमूवल आव द विजुवल कार्टेक्स, जर्नल आव कम्पै साइका, 1936

मावरर, ओ एच — प्रिपरेटोरी सेट (एक्सपेक्टेन्सी) सम मेथड्स आव मेजरमेण्ट साइको मोनो, 1940

प्रीपरेटोरी सेट (एक्सपेक्टेन्सी) अ डिटर्मिनेन्ट इन मोटिवेशन एण्ड लर्निंग साइका रिव्यू, 1938

	पेन, पनिशमेण्ट, गिल्ट एण्ड अजाइटी ग्रून एण्ड स्ट्रेटन, 1950
मे, एम ए	एक्सपेरिमेण्टली अक्वायर्ड ड्राइव्स जर्नल आव एक्स पे साइका, 1948
मेडनिक, एस ए	लर्निंग प्रेन्टिस-हाल, 1964
मेडनिक, एस ए तथा फ्रीडमैन, जे एल	स्टिमुलस जेनरलाइजेशन, साइकोलोजिकल बुलेटिन, 1960
मैग्गाश, जे ए एण्ड ईरियन, ए एल	द साइकालोजी आव ह्यूमन लर्निंग, लाग मैन्स ग्रीन, 1952
मोट, एफ ए तथा फिगर, जे ए	एक्सप्लोरेटोरी ड्राइव एण्ड सेकण्डरी रीइनफोर्समेण्ट इन द अक्विजिशन एण्ड एक्सटिंक्शन आव ए सिम्पुल रनिंग रिस्पान्स जर्नल आव एक्सपे साइका, 1942
मामागुन्ची, एच जी	ग्रेडिएण्ट्स आव ड्राइव स्टिमुलस (एस डी) इन्टेसिटीज जेनरलाइजेशन जर्नल आव एक्सपेरिमेण्टल साइकालो, 1952
राजरान, जी	स्टिमुलस जेनरलाइजेशन आव कण्डिशण्ड रिस्पान्सेज साइका० बुलेटिन, 1949
	आपरेन्ट वर्सस क्लासिकल कण्डिशनिंग अमे० जर्नल आव साइका०, 1955 अ
	अ डाइरेक्ट लेबारेटोरी कम्पैरिजन आव पवलोवियन एण्ड ट्रेडिशनल अस्सोशियेटिव लर्निंग जर्नल आव ऐबनार्मल एण्ड सोशल साइका०, 1955 ब
रिनाल्ड्स, बी	द अक्विजिशन आव ए ट्रेस कन्डिशन्ड रिसपान्स ऐज अ फन्कशन आव द मैग्निट्यूड आव द स्टिमुलस ट्रेस जर्नल आव एक्सपेरिमेण्टल साइकालोजी, 1945
रिनाल्ड्स, बी	एक्सटिंक्शन आव ट्रेश कण्डिशण्ड रिस्पान्सेज ऐज अ फक्शन आव द स्पेशिग आव ट्रायल्स ड्यूरिंग द अक्विजिशन एण्ड एक्सटिंक्शन सीरीज, जर्नल आव एक्स० साइका०, 1945
रोजेनवाम, जी	किम्बल 1961 मे उद्धृत, 1956

रोहरर जे एच — एक्सपेरिमेण्टल एक्सटिंक्शन ऐज ए फंक्शन आव द डिस्ट्रीब्यूशन आव एक्सटिंक्शन ट्रायल्स एण्ड रिस्पान्स स्ट्रेन्थ जर्नल आव एक्सपे० साइका०, 1947

लाशली, के एस तथा वेड, एम — द पवलोवियन थियरी आव जेनरलाइजेशन साइका० रिव्यू, 1946

लासन, रीड — लार्निंग एण्ड विहेवियर, मैकमिलन कम्पनी, 1960

लिडेल्ल, एच० एस०, जेम्स, डब्ल्यू० तथा एण्डरसन, ओ डी — द कम्पैरेटिव फिजियालोजी आव द कण्डिशण्ड मोटर रिफ्लेक्स बेस्ड आन एक्सपेरिमेण्ट्स विद द पिग, डाग, शीप, गोट एण्ड रैबिट कम्पैरेटिव फिजियोलाजिकल मोनोग्राफ, 1934

वाट्सन, जे बी — द प्लेस आव द कण्डिशण्ड-रिफ्लेक्स इन साइकालोजी, साइका० रिव्यू, 1916 अ

विहेवियर एण्ड द कान्सेप्ट आव मेण्टल डिजीज जर्नल आव फिलोसाफिकल साइका०, 1916 ब

विन्निक्क्, विलमा ए० तथा हण्ट, मैक् जे — द इफेक्ट आव ऐन एक्स्ट्रा स्टिमुलस अपान स्ट्रेंथ आव रिस्पान्स ड्यूरिंग अक्विजिशन एण्ड एक्सटिंक्शन जर्नल आन एक्सपे० साइका०, 1951

वुडवरी, सी बी — द लार्निंग आव स्टिमुलस पैटर्न बाई डाग्स जर्नल आव कम्पै० साइका०, 1943

वोल्फल, हेलेन एम — कण्डिशनिंग ऐज अ फंक्शन आव द इन्टरवल बिटविन द कण्डिशण्ड एण्ड द ओरिजिनल स्टिमुलस० जर्नल आव जनरल साइकालोजी, 1932

शेफील्ड, एफ डी — आवायडेन्स ट्रेनिंग एण्ड कान्टिविटी प्रिन्सिपुल जर्नल आव कम्पै० फिजियो० साइका०, 1948

शेफील्ड, एफ डी तथा टेम्मर, हेलेना, डब्ल्यू — रिलेटिव रेजिस्टेन्स टू एक्सटिंक्शन आव इसकेप-ट्रेनिंग एण्ड अवाएडेन्स ट्रेनिंग० जर्नल आव एक्सपे० साइका०, 1950

सिडमैन, एम — अवाएडेन्स कण्डिशनिंग विद ब्रीफ शाक्क एण्ड नो एक्स्ट्रोमेप्टिव वार्निंग सिग्नल० साइन्स, 1953 अ

	द टेम्पोरल पैरामिटर्स आव द मेन्टिनेन्स आव अवा-एडेन्स विहेवियर वाई द ह्वाइटरैट जर्नल आव कम्पे० फिजियो० माइका०, 1953 न
स्पूनर, ए तथा केल्लाग, डब्ल्यू एन	द बैकवर्ड कन्डिशनिग कर्व अमेरिकन जर्नल आव साइकालोजी, 1947
स्किनर, बी एफ	द विहेवियर आव आर्गानिस्म्स, ऐन एक्सपेरिमेण्टल एनालिसिस अप्लेटन-सेन्चुरी, 1938
	आर थियरीज आव लर्निग नेसेसरी ? साइका बुले०, 1950
	माइन्स एण्ड ह्यूमन विहेवियर मैकमिलन, 1953
स्पेन्स, के डब्ल्यू तथा रास्स, एल ई	अ मेथाडोलाजिकल स्टडी आव द फार्म एण्ड लेटेन्सी आव आई लिड् रिस्पान्सेज इन कण्डिशनिंग जर्नल आव एक्सपे० साइका०, 1959
स्पेन्स, के डब्ल्यू	थिएरेटिकल इन्टरप्रेटेशन्स आव लर्निंग इन एफ ए मास्स (सपादित)कम्पेयरेटिव साइकालोजी, प्रेन्टिस हाल, 1942
स्पेल्ट, डी के	कन्डिशन्ड रिसपान्सेज इन द ह्यूमन फीटस इन यूटरा साइकालोजिकल बुलेटिन, 1938
	द कन्डिशनिंग आव द ह्यूमन फीट्स इन यूटरो जर्नल आव एक्सपे० साइका०, 1948
हण्ट, ई एल	इस्टैविलसमेण्ट आव कण्डिशण्ड रिसपान्सेज इन चिक एम्ब्रायोज जर्नल आव कम्पे० फिजि० साइका०, 1949
हण्टर, डब्ल्यू एस	लर्निग इन मान्चिमल्स हैण्डबुक आव जेनरल एक्सपेरिमेण्टल साइकालोजी क्लार्क यूनिवर्सिटी प्रेस०, 1934
हल्ल, सी एल	प्रिन्सिपुल्स आव विहेवियर अप्लेटन सेन्चुरी क्राफ्ट्स, 1943
	एसेन्शियल्स आव विहेवियर येल यूनिवर्सिटी प्रेस, 1951
	ए विहेवियर सिस्टम येल यूनीवर्सिटी प्रेस, 1952

हवलैण्ड, सी आई	द जेनरलाइजेशन आव कण्डिशण्ड रिस्पान्सेज द सेन्सरी जेनरलाइजेशन आव कण्डिशण्ड रिस्पान्सेज विद वैरियिंग फ्रिक्वेन्सिज आव टोन्स जर्नल आव जेनर० साइकालोजी, 1937 अ
	द जेनरलाइजेशन आव कण्डिशण्ड रिस्पान्सेज द सेन्सरी जेनरलाइजेशन आव कण्डिशण्ड रिस्पान्सेज विद वैरियिंग इन्टेन्सिटीज आव टोन्स जर्नल आव जेनटिक साइकालोजी 1937 ब
हिलगार्ड, ई आर तथा कैम्प-बेल्ल, ए ए	द कोर्स आव ऑक्विजिशन एण्ड रिटेंशन आव कण्डिशण्ड आई लिड रिस्पान्सेज इन मैन० जर्नल आव एक्सपरिमेण्टल साइका०, 1936
हिलगार्ड, ई आर मार्क्विस, डी जी	कण्डिशनिंग एण्ड लर्निंग, अप्लेटन-सेन्चुरी-क्राफ्ट्स, 1940
हिलगार्ड, ई आर तथा मार्क्विस डी जी	आक्विजिशन एक्सर्टिक्शन एण्ड रिटेंशन आव कण्डिशण्ड आईलिड रिस्पान्सेज टू लाइट इन डाग्स जर्नल आव कम्पै० साइका०, 1935
हेफरलाईन, आर एफ	ऐन एक्सपेरिमेण्टल स्टडी आव अवाएडेन्स जेनेटिक साइका० मोनोग्राफ, 1959
त्रिपाठी, ला ब	स्टिमुलस जेनरलाइजेशन आव कन्सेप्चुवल रिस्पान्सेज कनै० साइ० अ०, 1961
	जेनरलाइजेशन आव कनसेप्चुवल रिस्पान्सेज आफ्टर डिसक्रिमिनेटिव वर्सस नान-डिसक्रिमिनेटिव ट्रेनिंग अमेरिकन साइकालोजिस्ट अगस्त, 1962

अध्याय 8

अधिगम-विभेदन

विभेदन अधिगम की विधियाँ

समकालिक विभेदन तथा क्रमिक विभेदन

विभेदन अधिगम के प्रायोगिक प्रक्रिया प्रारूप

सामान्य द्विविकल्पीय विभेदन अधिगम

अनुबन्धी विभेदन अधिगम

प्रतिदर्श-तुलना विषयक विभेदन अधिगम

रुद्ध विभेदन अधिगम

सहघटित विभेदन अधिगम

विलम्बित अनुक्रिया विभेदन अधिगम

अधिगम सेट

अशुद्धि रहित विभेदन अधिगम

विभेदन-क्रमिक अथवा आकस्मिक अभिवृद्धि

विभेदन अधिगम का क्रमिक सिद्धान्त

विभेदन अधिगम का अक्रमिक सिद्धान्त

संकेत वैपरीत्य विषयक प्रयोग

असम्बद्ध संकेत विषयक प्रयोग

परस्पर सम्बद्ध उत्तेजकों के मध्य विभेदन

अवधान तथा विभेदन अधिगम

व्यावर्तन तथा माध्यमिक क्रिया

चयनात्मक श्रवण विषयक प्रयोग

छनने का सिद्धान्त

उत्तेजक चयन—स्वरूप एवं निर्धारक

उत्तेजक चयन का स्वरूप

उत्तेजक चयन के निर्धारक

संरचनात्मक कारक

अति प्रशिक्षण

पूर्वानुभव का अनुदान

पुनर्बलन क्रम

निरीक्षण व्यवहार

विभेदन अधिगम और अवधान माडेल

अधिगम–विभेदन

विभिन्न परिस्थितियो मे उपयुक्त समायोजन स्थापित करने के लिए विभिन्न प्रकार की अनुक्रियाओ की आवश्यकता होती है। विभिन्न प्राणियो के अनेक जन्मजात व्यवहार भी विभेदनपरक होते है और केवल उत्तेजक विशेष की ही उपस्थिति मे सम्पन्न होते है। दूसरे शब्दो मे, भिन्न भिन्न अनुक्रियाये भिन्न-भिन्न उत्तेजको के प्रति विभेदनशील होती है। निम्नस्तरीय प्राणियो मे इस प्रकार के अनुक्रिया सरूप अधिक मात्रा मे दृष्टिगोचर होते है। समुचित समायोजन के लिए प्राणी अनुभव की सहायता से भिन्न उत्तेजको के प्रति भिन्न प्रतिक्रिया करना, या उत्तेजको के मध्य विभेदन करना सतत अभ्यास द्वारा अर्जित करता है। स्पष्ट ही विभेदन अधिगम उत्तेजक सामान्यीकरण की विरोधी प्रक्रिया है।

विभेदन अधिगम मे उत्तेजक विभेदनीयता एक महत्वपूर्ण कारक है तथा विभेद्य उत्तेजक की विशेषताओ को प्रहस्तित करके विभेदन व्यवहार मे अनेक परिवर्तन भी सम्भव है। किन्तु पुनर्वर्तनक्रम, विलम्बितपुरस्कार प्रयासक्रम तथा प्रतिक्रिया विभेदनीयता जैसे अप्रात्यक्षिक कारको द्वारा प्रभावित करके भी विभेदन व्यवहार को यथेष्ट स्वरूप दिया जा सकता है। इस प्रकार विभेदन अधिगम मे प्रात्यक्षिक तथा अप्रात्यक्षिक दोनो ही प्रकार के कारको का अध्ययन आवश्यक है। अन्यथा निष्कर्षो की वैधता सदेहास्पद हो सकती है। प्रात्यक्षिक कारको का अध्ययन दीर्घकाल तक उपेक्षित रहा है। किन्तु अब प्रात्यक्षिक और अवधान सम्बन्धी कारको का भी अध्ययन होने लगा है। विभेदन अधिगम के आरम्भिक अध्ययन विभिन्न पशुओ की सावेदिक तथा व्यावहरिक क्षमता के अध्ययन के लिए किये गये। फलत इन अध्ययनो मे प्रयुक्त विधियाँ भी तुलनात्मक मनोवैज्ञानिको द्वारा विकसित की गयी। इन अध्ययनो मे अधिकाशत वाह्य उत्तेजक ही प्रयुक्त हुये है। किन्तु अब आतरिक उत्तेजको का भी प्रयोग किया जा रहा है साथ ही मनुष्यो पर विभिन्न प्रकार के उत्तेजको की सहायता से अध्ययन सम्पन्न हो रहे है। प्रस्तुत अध्याय मे विभेदन अधिगम की प्रयोग विधि, सिद्धान्त और अवधान विषयक कारको का उल्लेख किया गया है।

विभेदन अधिगम की विधियाँ

समसामयिक विभेदन तथा क्रमिक विभेदन

विभेदन अधिगम के विभिन्न पक्षो के प्रायोगिक अध्ययन के लिए अनेक

विधियो का उपयोग किया गया है। मूलत इन विधियो को दो श्रेणियो मे बांटा जा सकता है–समसामयिक विभेदन तथा क्रमिक विभेदन। प्रायोगिक समस्या के अनुरूप इन विधियो को परिमार्जित करके भी प्रयुक्त किया जाता है। सामान्यत जब प्रयोज्य द्वारा (उसके सम्मुख) एक साथ उपस्थित दो उत्तेजको के मध्य विद्यमान अन्तर के प्रति भिन्न अनुक्रिया अपेक्षित होती है तब इस प्रायोगिक विधि को समसामयिक विभेदन कहा जाता है। इसके विपरीत जब प्रयोज्य अपनी अनुक्रिया क्रमश उपस्थित किये गये उत्तेजको के प्रति करता है तब इस प्रायोगिक विधि को क्रमिक विभेदन कहा जाता है। स्पष्टत. इन विधियो के मध्य अन्तर का आधार उत्तेजको के उपस्थापन की पद्धति मे निहित है। एक ओर दोनो उत्तेजक (जिनके मध्य 'अन्तर' की अनुक्रिया अभीष्ट है) एक साथ एक ही काल मे उपस्थित रहते हैं जबकि दूसरी विधि के अन्तगत दोनो उत्तेजक भिन्न देश और काल मे अवस्थित होते है।

इन विधियो का उपयोग विभेदन मे उत्तेजको की तुलना के महत्व को जानने के सन्दर्भ मे आरम्भ किया गया। यह सामान्य अवधारणा है कि विभेदन, तुलना पर निभर करता है और तुलना के लिए उत्तेजको का एक साथ विद्यमान रहना आवश्यक है। यह धारणा मात्र स्वल्प अन्तरो के निरीक्षण से सम्भव विभेदन के लिए समुचित है। किन्तु मनोभौतिकी के प्रयोगो से स्पष्ट है कि क्रमश उपस्थित करने पर भी प्रयोज्य 'निरपेक्ष निर्णय' लेने मे विशिष्टता प्रदर्शित करते हैं। एक उत्तेजक विधि[1] पर्याप्त सफल विधि है। पेवलाव के प्रयोगो मे भी भिन्न प्रकार के पुनर्बलको के सहयोग से क्रमिक पद्धति से उपस्थापित लक्ष्यो के प्रति भिन्न अनुक्रिया अर्जित करने का प्रमाण उपलब्ध है। बाद मे इसी प्रकार के निष्कर्षों के आधार पर विभेदन अधिगम के एक नवीन सिद्धान्त का विकास हुआ जिसमे तुलना की प्रक्रिया आवश्यक नही मानी गयी है।

समसामयिक तथा क्रमिक दोनो प्रकार के विभेदनो मे विविध उपकरणो का प्रयोग किया जाता है। क्रमिक विभेदन मे स्किनर के बाक्स का प्रभूत उपयोग पशुओ के साथ किये गये प्रयोगो मे हुआ है। जब इस उपकरण का प्रयोग होता है तब प्रयोज्य द्वारा किसी एक निश्चित उत्तेजक के प्रति की गयी अनुक्रिया ही पुनर्बलित होती है। जब प्रयोज्य किसी अन्य उत्तेजक के प्रति अनुक्रिया करता है तो उसे पुनर्बलन से वचित कर दिया जाता है। चूहा या अन्य कोई भी प्रयोज्य आरम्भिक प्रयासो मे सभी उत्तेजको के प्रति अनुक्रिया करता है और शनै-शनै पुनर्बलन तथा विच्छेदन के सकेतो से परिचित हो जाता है। अततोगत्वा प्रयोज्य उत्तेजको के साथ उपयुक्त प्रतिक्रिया करने लगता है। समसामयिक विभेदन मे सर्वाधिक प्रचलित उपकरण लैश्ली द्वारा निर्मित कूदन अड्डा है (देखिये चित्र सख्या 8 1)। अड्डे से 8 इच की दूरी पर स्थित प्लेटफार्म से चूहो को अड्डे के किसी एक द्वार पर कूदने

---

1 Method of single stimuli

का प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रयोग के अभिकल्प के अनुरूप कार्ड बोर्ड के विभिन्न आकृतियो के टुकडे दोनो द्वारो पर नियोजित रहते है। ये कार्ड बोर्ड के टुकडे उत्तेजक का कार्य करते है। जब चूहा सही उत्तेजक का चयन करता है तब अड्डे का द्वार नीचे की ओर खुल जाता है और चूहा भोजन प्राप्त कर लेता है। इसके विपरीत अशुद्ध चयन करने पर द्वार बन्द रहता है और चूहा अड्डे के नीचे स्थित जाल
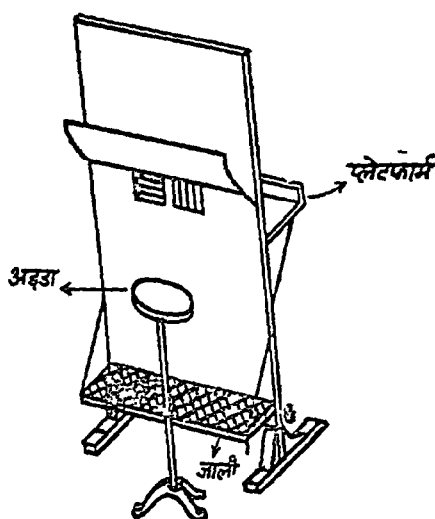
चित्र सख्या 8 1 लैश्ली का कूर्दन अड्डा उपकरण

[चूहा अड्डे से कूदकर उत्तेजक के पास (खडी और पडी रेखाओ के काड) के पास पहुँचता है। यदि वह उचित उत्तेजक का चयन करता है तो उत्तेजक काड गिर पडता है और चूहे को दूसरी ओर स्थित प्लेटफार्म पर भोजन प्राप्त करने का अवसर प्राप्त होता है। इसके विपरीत यदि चूहा अशुद्ध उत्तेजक को चुनता है तब उत्तेजक कार्ड नही गिरता है और चूहा नीचे की जाली मे गिर पडता है।]

मे गिर पडता है और उसे भोजन नही प्राप्त होता है। अन्य अध्ययनो मे एक चयन-बिन्दु की भूलभुलैया, दौड-पथ आदि उपकरण प्रयुक्त किये जाते हैं। मानव प्रयोज्यो के साथ किये गये प्रयोगो मे अन्य उपकरण प्रयुक्त होते है जिनकी चर्चा आगे अनेक स्थलो पर की गयी है। इन सभी उपकरणो के पीछे एक ही सिद्धान्त निहित है। प्रयोज्यो को विभिन्न सकेतो के प्रति भिन्न भिन्न अनुक्रिया सीखनी होती है तथा ये सकेत भिन्न प्रकार के पुनर्बलन गुणो से युक्त होते है।

समसामयिक विभेदन तथा क्रमिक विभेदन विषयक प्रयोग निरपेक्ष बनाम सापेक्ष विभेदन की समस्या की व्याख्या के लिए किये गये है। यदि प्रयोज्य विभेदन

अधिगम के अन्तर्गत उत्तेजकों के मध्य विद्यमान सम्बन्ध को सीखते हैं तो उत्तेजकों को क्रमश उपस्थित करने पर, विभेदन की समस्या, एक समय उत्तेजकों को उपस्थित किये जाने की अवस्था की अपेक्षा अधिक जटिल हो जायगी। किन्तु यदि प्रयोज्य केवल एक उत्तेजक के धनात्मक पुनर्बलन तथा दूसरे उत्तेजक के विच्छेदन गुण के प्रति अनुक्रिया करता है तो किसी प्रकार की कठिनाई नही होगी। इस प्रकार की समस्याओ का पर्याप्त अध्ययन किया गया है। यहाँ पर एक प्रयोग का विवरण दिया जा रहा है जिससे उक्त सैद्धान्तिक विवाद के परिचय के साथ-साथ विभेदन की ऊपर चर्चित दोनो विधियो का प्रायोगिक निदर्शन भी पाठको को प्राप्त होगा।

ग्राइस (1949) ने एक प्रयोग किया, जिसमे समसामयिक उत्तेजकों के अधिगम तथा क्रमश उपस्थित किये गये उत्तेजको के अधिगम से तुलना की गयी। एक-मात्र तथा दोनो ही द्वारो के साथ समानान्तर प्रयोग सम्पन्न किये गये। काली भित्ति से बाहर निकले हुए श्वेत पट्ट सकेत के रूप मे प्रयुक्त किये गये। एक पट्ट दूसरे पट्ट से अधिक बडा था। स्पष्ट ही इस अवस्था मे सरल विभेदन ही अपेक्षित था। प्रत्येक पट्ट के मध्य भाग मे एक छोटा द्वार बना था जो चूहे की नाक द्वारा खीच-कर खोला जा सकता था। द्वार खुलने पर प्रयोज्य को द्वार के पीछे रखा गया भोजन प्राप्त होता था। छोटा पट्ट धनात्मक उत्तेजक था तथा बडा पट्ट ऋणात्मक उत्तेजक था। एक समूह के लिए दोनो पट्ट एक साथ उपस्थित होते थे। (समसामयिक विभेदन)। दूसरे समूह के लिए केवल एक पट्ट ही प्रत्येक प्रयास मे उपस्थित होता था। ज्यो ही चूहा किसी प्रकार की चयनेच्छा व्यक्त करता था उसके सम्मुख एक पर्दा गिरा दिया जाता था जिससे चूहा उस प्रयास मे कोई अन्य अनुक्रिया करने मे असमर्थ कर दिया जाता था। विभेदन अधिगम की प्रगति को मापने के लिए प्रशिक्षण के पश्चात् दोनो द्वारो के उपस्थित करने पर चयन मे की गयी अशुद्धियो की गणना की जाती थी। प्रदत्तो से अशुद्धियो मे क्रमिक ह्रास की प्रवृत्ति प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त एक द्वार पर अवस्था मे अनुक्रिया कितने काल तक हुई, इसका भी मापन किया गया। इस मापन से यह ज्ञात हुआ कि धनात्मक सकेत के प्रति प्रयोज्य की अनुक्रिया मे क्रमश कम समय लगा। दूसरे शब्दो मे क्रमश अधिक शीघ्रता से अनुक्रिया की गयी। इसके विपरीत ऋणात्मक सकेत के प्रति अनुक्रिया मे धीमापन प्राप्त हुआ। धनात्मक सकेत के प्रति धीमी अनुक्रिया या ऋणात्मक सकेत के प्रति शीघ्र अनुक्रिया को अशुद्धि माना गया। प्रयोग के निष्कर्षों से यह पता चला कि दोनो ही दशाओ (क्रमिक और सापेक्ष्य विभेदन) मे समान वेग से अशुद्धियो मे ह्रास प्राप्त हुआ तथा अधिगम पूर्ण होने मे समान मात्रा मे प्रयास अपेक्षित थे। स्पष्ट ही यह निष्कर्ष इस अवधारणा की पुष्टि करता है कि तुलना विभेदन अधिगम के लिए अपरिहार्य नहीं है। एक सकेत के प्रति पुनर्बलन के कारण अनुक्रिया स्थापित होती है तथा दूसरे सकेत के साथ पुनर्बलन के अभाव मे विच्छिन्न हो जाती है। इस प्रयोग के आधार पर ग्राइस ने यह निष्कर्ष निकाला कि पशुओ द्वारा विभे-

(1) **सामान्य द्विविकल्पीय विभेदन अधिगम**—इस प्रारूप के अन्तर्गत विभेदन अधिगम की वे सभी समस्याये आती हैं जिनमे एक धनात्मक तथा एक ऋणात्मक उत्तेजक के मध्य अन्तर सीखना अभीष्ट होता है। स्पष्ट ही इस प्रकार के दो विकल्पो की स्थितियाँ बडी सरल होती हैं। इनके अध्ययन मे ही भूलभुलैया, कूर्दन अड्डा तथा विस्कान्सिन टेस्ट उपकरण का उपयोग किया जाता है। इनके अतिरिक्त प्रिब्रम तथा गार्डनर आदि (1962) ने एक जटिल उपकरण विकसित किया है जिसमे 16 विकल्पो तक का उपयोग सम्भव है। साथ ही विभिन्न प्रयासो के प्रदत्तो के स्वचलित अकन की भी व्यवस्था है। डी एमेटो (1965) ने भी एक प्रयोग कक्ष का विकास किया है जिसमे प्रयोज्य के सम्मुख पाँच उत्तेजको को उपस्थित करने की व्यवस्था है तथा प्रत्येक उत्तेजक के प्रति प्रतिक्रिया करने के लिए स्वतन्त्र कुन्जियो का प्रयोग किया जाता है।

(2) **अनुबन्धी[1] विभेदन अधिगम**—अनेक स्थितियाँ ऐसी होती है जिनमे किसी एक सकेत का पुनर्बलन किसी अन्य सकेत से सम्बद्ध रहता है। ऐसी परिस्थिति मे प्रयुक्त विभेदन को अनुबन्धी-विभेदन की सज्ञा दी गई है। उदाहरणार्थ, यदि किसी आकृति की लाल पृष्ठभूमि मे उपस्थिति होने पर पुरस्कार की प्राप्ति हो और उसी आकृति को पीली पृष्ठभूमि मे उपस्थित होने पर दण्ड प्राप्त हो या पुरस्कार न प्राप्त हो तो यह स्थिति अनुबन्धी विभेदन कही जाएगी क्योकि इस अवस्था मे सकेत की धनात्मकता या ऋणात्मकता आकृति के स्वरूप पर ही नही अपितु आकृति की पृष्ठभूमि पर भी निर्भर करती है।

(3) **प्रतिदर्श-तुलना[2] विषयक विभेदन अधिगम**—इस प्रारूप के अन्तर्गत प्रयोज्य का कार्य विभिन्न विकल्पो मे से एक ऐसे उत्तेजक को चुनना होता है जो एक प्रतिदर्श के समान होता है। जब प्रयोगकर्ता का उद्देश्य समसामयिक तुलना का अध्ययन करना रहता है तब उत्तेजक चयन काय के समय प्रतिदर्श भी विद्यमान रहता है। इसके अतिरिक्त विलम्बित प्रतिदर्श तुलना का भी प्रयोग किया जाता है। इसके अन्तर्गत प्रतिदर्श एक बार उपस्थित होकर लुप्त हो जाता है और कुछ समय व्यतीत होने पर विकल्प उपस्थित होते है और प्रयोज्य को प्रतिदर्श की स्मृति की सहायता से उत्तेजक का चयन करना पडता है।

(4) **रूढ[3] विभेदन अधिगम**—रूढ विभेदन अधिगम प्रतिदर्श तुलना से अधिक भिन्न नही है। इसके अन्तर्गत प्रयोज्य एकरूप के स्थान पर भिन्न उत्तेजको को चुनने की क्रिया सीखता है। उदाहरणार्थ, प्रयोज्य के सम्मुख एक ओर दो वृत्त तथा दूसरी ओर एक त्रिभुज रखा है। अकेला त्रिभुज वृत्तो के सदर्भ मे 'रुढ' है। यह उत्तेजक धनात्मक उत्तेजक है। प्रयोज्य को ऐसी स्थिति मे असमान या रूढ उत्तेजक के प्रति अनुक्रिया सीखनी होती है।

---

1 Conditional 2 Matching to sample 3 Oddity

(5) **सहघटित[1] विभेदन अधिगम**—जैसा कि नाम मे ही स्पष्ट है इस प्रकार के अधिगम मे प्रयोज्य के सम्मुख एक ही समय अनेक विभेदन समस्यायें विद्यमान रहती है और प्रयोज्य को समसामयिक विभेदन का प्रयोग करना पडता है । लियरी (1958) ने बन्दरो को 9 स्वतन्त्र समस्याओ के विषय मे प्रशिक्षण दिया । इस प्रयोग मे बन्दरो के सम्मुख सभी 9 समस्याये प्रत्येक प्रयास मे उपस्थित की जाती थी । इस प्रकार के दस प्रयास प्रतिदिन दिये गये । बीस दिनो के प्रशिक्षण के बाद बन्दरो मे अधिगम का पर्याप्त प्रमाण प्राप्त किया गया । इसी प्रकार के अध्ययन वाचित उत्तेजको की सहायता से मनुष्यो पर भी किये गये है ।

(6) **विलम्बित अनुक्रिया[2] विभेदन अधिगम**—यह एक प्राचीन विधि है जिसका प्रयोग अनेक प्रकार की मनोवैज्ञानिक समस्याओ के अध्ययन मे किया गया है । इसके अन्तर्गत प्रयोज्य सवप्रथम एक विभेदन कार्य सीखता है जिसमे दो उत्तेजको मे से एक के प्रति अनुक्रिया अपेक्षित होती है । तत्पश्चात् विलम्बित अनुक्रिया की दशा आती है जिसमे कोई एक उत्तेजक पुन उपस्थित किया जाता है और बाद मे उसे विच्छिन्न कर दिया जाता है । विलम्ब की अवधि समाप्त होने पर प्रथम अवस्था के धनात्मक उत्तेजक को चुनना पडता है । यह विधि प्रतिदर्श तुलना से केवल इस अर्थ मे भिन्न है कि विलम्ब की अवस्था मे दिक् स्थान विषयक सूचना सचित करनी पडती है जब इसमे चाक्षुप उत्तेजक रहता है ।

(7) **अधिगम सेट**—यह प्राचीन पद्धति का एक परिवर्धित रूप है जिसमे प्रयोगकर्ता का उद्देश्य उस यन्त्रन्यास का अन्वेपण करना होता है जिसकी सहायता से प्रयोज्य समस्याओ को सुलझाता है । इसके अन्तर्गत प्रयोज्य के समक्ष एक ही प्रकार की अनेक समस्याये उपस्थित की जाती है परन्तु सबके साथ भिन्न भिन्न डिस्क्रिमिनेण्डा का प्रयोग होता है तथा आश्रित परिवर्त्य एक-एक समस्या का स्वतन्त्र समाधान न हो कर, विभिन्न समस्याओ के समाधान की प्रकृति होती है । 'अधिगम सेट' शब्द का प्रयोग, प्रयोग की एक प्रविधि तथा उक्त प्रयोग विधि से उत्पन्न अधिगम क्षमता दोनो ही के लिए किया गया है । इस पद्धति के उपयोग का श्रेय हार्लो (1149)को है । यहाँ पर हार्लो के एक प्रयोग का उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है । इन्होने आठ बन्दरो को विस्कन्सिन जनरल टेस्ट उपकरण मे 344 स्वतन्त्र वस्तुओ के विभेदन की समस्याओ पर प्रशिक्षण दिया । विभिन्न समस्याओ के लिए 6 से लेकर 50 प्रयास तक दिये गये । डिस्क्रिमिनेण्डा के रूप मे प्रयुक्त वस्तुये प्रत्येक समस्या के साथ परिवर्तित की गयी थी । परिणामो से स्पष्ट हुआ कि एक ही प्रकार की अनेक समस्याओ पर प्रशिक्षण से विभेदन उच्च कोटि का हो गया । वैपरीत्य अधिगम तथा अनुबन्धी विभेदन मे भी इसी प्रकार के निष्कर्ष मिले है । तुलनात्मक मनोविज्ञान मे तथा

---

1 Concurrent 2 Delayed response

अनेक सैद्धान्तिक विवादो को सुलझाने के लिए भी इस पद्धति का प्रयोग किया गया है।

(8) अशुद्धि रहित[1] विभेदन अधिगम—ऊपर जिन प्रायोगिक प्रारूपो की चर्चा की गई है उनमे प्रयोज्य को ऋणात्मक उत्तेजक के प्रति भी प्रतिक्रिया करने का अवसर प्राप्त था। इसके अतिरिक्त विभेदन के सिद्धान्तो मे भी ऋणात्मक उत्तेजक से उत्पन्न अवरोधक प्रवृत्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। किन्तु अशुद्धि के अभाव मे भी विभेदन अधिगम सभव है। टेरेस (1966 सी) ने विभेदन अधिगम के इस पक्ष का व्यापक सैद्धान्तिक एव प्रायोगिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इन्होने एक प्रयोग मे बिना किसी अशुद्धि के ही सरल रग विभेदन अधिगम को ऊर्ध्वाधार तथा क्षैतिज रेखा के विभेदन अधिगम की कठिन समस्या मे स्थानान्तरण का प्रमाण प्राप्त किया। इस प्रयोग मे प्रयोज्यो को सर्वप्रथम लाल तथा हरे रगो के मध्य बिना किसी अशुद्धि के अधिगम को विकसित किया गया। तदनन्तर ऊर्ध्वाधार तथा क्षैतिज रेखाये इन रगो पर प्रतिष्ठित कर दी गयी। इस प्रकार मिश्रित उत्तेजक निर्मित हो गये। अनेक सत्रो के बाद रग का अवयव क्रमश रग की तीव्रता मे कमी की सहायता से कम किया गया तथा सत्रान्त मे रग उत्तेजक दृष्टिगोचर ही नही रह गया और मात्र ऊर्ध्वाधार तथा क्षैतिज रेखाये ही दृष्टिगत रह गयी। प्रयोज्य इनके मध्य विभेदन मे पूर्ण सफल थे।

विभेदन मे ऋणात्मक उत्तेजक की भूमिका एक रोचक सैद्धान्तिक विवाद का केन्द्र रही है। प्रयोगशाला तथा जीवन की विभिन्न परिस्थितियो मे सम्पन्न होने वाले विभेदन मे अशुद्धि की पूरी सभावना रहती है। ऐसी स्थिति मे अशुद्धियो की समाप्ति सफल विभेदन के लिए आवश्यक है। किन्तु ऊपर चर्चित प्रायोगिक साक्ष्य से उक्त अवधारणा के विषय मे सदेह उपस्थित होता है। वस्तुत इस विषय मे नवीन प्रायोगिक प्रदत्त अपेक्षित हैं।

विभेदन क्रमिक अथवा आकस्मिक अभिवृद्धि

विभिन्न उत्तेजको के प्रति भिन्न-भिन्न अनुक्रिया करना या विभेदन किस प्रकार सीखा जाता है, यह अधिगम के प्रक्रम की एक प्रमुख समस्या है। विभेदन अधिगम को निरूपित करने वाले सैद्धान्तिक प्रयासो की दो श्रेणियाँ है। एक श्रेणी के मनोवैज्ञानिको की यह स्थापना है कि विभेदन अधिगम एक क्रमिक प्रक्रम है जो शनै शनै अर्जित किया जाता है। दूसरी श्रेणी के मनोवैज्ञानिको के अनुसार विभेदन मे प्रयोज्य मात्र कुछ चुने हुए उत्तेजक अवयवो के प्रति ही प्रतिक्रिया करता है और विभेदन का प्रक्रम क्रमिक नही है। इन सिद्धान्तो की उपयुक्तता की परीक्षा

---

1 Errorless discrimination learning

करने के पूर्व इनकी मौलिक स्थापनाओ के विषय मे जान लेना आवश्यक प्रतीत होता है ।

विभेदन अधिगम के सातत्य सिद्धान्त के प्रवर्तक स्पेन्स (1936) तथा हल्ल (1943) के अनुसार शुद्व या पुनर्वलित अनुक्रिया करने के समय विद्यमान सभी उत्तेजको के साथ उस अनुक्रिया का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है तथा यह सम्बन्ध बाद के प्रयासो मे (जब-जब वे एक साथ उपस्थित होते हैं) सुपुष्ट होता है। यह उत्तेजक-प्रतिक्रिया सम्बन्ध एक क्रमिक तथा सतत प्रक्रम हैं तथा उत्तेजक प्रतिक्रिया साहचर्य की शक्ति उनके सह-अस्तित्व की अवस्था मे पुष्ट होती रहती है। विभेदन अधिगम के क्रमिक प्रक्रम के पोषक उक्त सिद्धान्त के विपरीत लैश्ली (1938) ने यह प्रतिपादित किया है कि विभेदन अधिगम मे प्राणी उत्तेजक सरूप के अधिकाश अवयवो की उपेक्षा कर देता है तथा कुछ थोडे से चुने हुए अवयवो के प्रति ही अनुक्रिया करता है। उत्तेजक अवयवो द्वारा स्नायु क्रिया के उद्भवकाल मे कुछ अवयव प्रतिक्रिया की दृष्टि से अधिक प्रबल हो जाते हैं और शेष व्यर्थ हो जाते है । इसकी परिणति यह होती है कि कुछ अवयवो के प्रति प्रतिक्रिया की तत्परता उत्पन्न हो जाती है। बाद के प्रशिक्षण के क्रम मे जब भी उत्तेजक के वे प्रबल अवयव उपस्थित होते है तो सम्बद्ध हो जाते है। अन्य उत्तेजक जो ग्राहको को उत्तेजित करते हैं असम्बद्व ही रहते है क्योकि उनके प्रति प्रतिक्रिया करने के लिए प्रयोज्य मे तत्परता नही रहती है।

विभेदन अधिगम का क्रमिक सिद्धान्त

स्पेन्स (1936) ने विभेदन अधिगम के अपने सिद्धान्त मे उत्तेजक सामान्यीकरण तथा अनुक्रिया शक्ति के क्रमिक सचयन के प्रत्ययो का प्रयोग किया है। इस सिद्धान्त की अवधारणाये हल्ल (1943) के सिद्धान्त के अनुरूप है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रयोज्य पूर्व समाधान काल[1] मे धनात्मक तथा ऋणात्मक उत्तेजना प्राप्त करने पर भिन्न साहचर्य की प्रवृत्तियाँ[2] उन उत्तेजको के प्रति विकसित करता है। विभेदन अधिगम प्रतियोगी ऋणात्मक सकेत की उद्दीपन शक्ति[3] की तुलना मे धनात्मक सकेत की उद्दीपन शक्ति के निर्माण का एक सचयी[4] प्रक्रम है। यह प्रक्रम तब तक परिचालित होता रहता है जब तक कि धनात्मक और ऋणात्मक सकेतो की उद्दीपन शक्ति मे पर्याप्त अन्तर नही स्थापित हो जाता है। स्पष्ट ही इस सिद्धान्त के अनुसार पुनर्वलन प्रतिक्रिया को शक्तिशाली बनाता है तथा पुनर्वलन का अभाव प्रतिक्रिया को निर्बल बना देता है। प्रत्येक प्रयास मे उद्दीपन शक्ति मे वृद्धि पुनर्वलन के समय की अनुक्रिया शक्ति[5] की मात्रा पर निर्भर करती है। उद्दीपक तथा अवरोधक प्रवृत्तियो का समान्यीकरण होता है। दूसरे शब्दो मे, पुनर्वलन का प्रभाव अन्य सम्बद्ध उत्तेजको

---

1 Presolution period 2 Associative tendency 3 Excitatory strength 4 Cumulative 5 Habit strength

मे भी सामान्यीकृत हो जाता है। इसी प्रकार अवरोधक[1] प्रवृत्ति का भी प्रभाव सामान्यीकृत होता है। इन दोनो प्रकार के सामान्यीकरणो के मध्य बीजगणितीय अन्त क्रिया होती है। इस दृष्टि से एक उत्तेजक के प्रति प्रतिक्रिया करने की प्रवृत्ति की शक्ति, उस उत्तेजक के अवरोधी सामान्यीकरण की शक्ति को पुनर्वलन सामान्यीकरण से अलग करने पर (पुनर्वलन सामान्यीकरण-अवरोधी सामान्यीकरण=उत्तेजक के प्रति प्रतिक्रिया प्रवृत्ति की शक्ति) प्राप्त होती है।

स्पेन्स (1937 अ तथा ब) ने अपनी स्थापनाओ की पुष्टि के लिए प्रयोग किया। इन्होने चिम्पाजियो मे चाक्षुप आकार के विभेदन अधिगम का अध्ययन किया। 256 वर्ग से० मी० तथा 160 वर्ग से० मी० के आकार के दो वर्गों के मध्य विभेदन अपेक्षित था। 256 वर्ग से० मी० की आकृति को पुनर्वलित किया गया तथा 160 वर्ग से० मी० की आकृति के प्रति की गयी अनुक्रिया का सम्बन्ध विच्छेद किया गया। बाद मे इस भेद की सुदृढ प्रतिष्ठा होने के पश्चात् इन उत्तेजको का मूल्य बढाकर क्रमश 256 तथा 409 वर्ग से० मी० कर दिया गया। इस परिवर्तित अवस्था मे प्रयोज्यो ने 409 वर्ग से० मी० के आकार वाले वर्ग के प्रति अनुक्रिया की, जिसे कभी पुनर्वलित नही किया गया था। स्पेन्स के अनुसार 160 वर्ग से० मी० के आकार के प्रति अनुक्रिया का विच्छेदन 256 वर्ग से० मी० की आकृति मे सामान्यीकृत हो गया तथा 256 वर्ग से० मी० की आकृति का अनुबन्धन 409 वर्ग से० मी० की आकृति मे सामान्यीकृत हो गया। प्रयोगकर्त्ताओ ने यह निष्कर्ष प्राप्त किया है कि जब उत्तेजको को किसी एक आयाम मे अत्यधिक परवतन करने पर अन्तर्विनिमय प्रभाव प्राप्त नही होता है। केडलर (1950) तथा एहरेन्फ्रेंड (1952) ने यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि ज्यो ज्यो उत्तेजको के मध्य का अन्तर क्रमश बढाया गया उसी प्रकार क्रमश अन्तर्विनिमय प्रदर्शित करने वाली अनुक्रियाओ की मात्रा मे ह्रास हुआ।

अन्तर्विनिमय प्रभाव का बच्चो मे किये गये अध्ययनो से यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि जैसे जैसे बच्चे पूर्व वाचिक अवस्था से वाचिक अवस्था की ओर उन्मुख होते हैं—अन्तर्विनिमय के समाधान मे सामान्यीकरण कमण[2] की अपेक्षा माध्यमिक सम्बन्ध[3] विपयक प्रत्ययो का प्रयोग करने लगते है। किन्तु इस अभिनति की पुष्टि करने वाले साक्ष्य अस्पष्ट है और कोई अन्तिम निष्कर्ष नही व्यक्त किया जा सकता है।

विभेदन अधिगम का अक्रमिक सिद्धान्त

स्पेन्स के क्रमिक विभेदन के सिद्धान्त के विरुद्ध समस्या समाधान व्यवहार पर आधृत एक अन्य सिद्धान्त लैश्ली ने प्रवर्तित किया। इसे साधारणत असातत्य

---

1 Inhibitory 2 Generalisation gradient 3 Mediation relationship

सिद्धान्त भी कहते हैं क्योंकि इसके अनुसार विभेदन अधिगम मे धनात्मक अनुक्रिया शक्ति का क्रमिक सचयन नही होता है। अपितु प्रयोज्य विभेदन अधिगम मे समाधान के सूझ की तरह यत्न करता है। वह कुछ पक्षो को चुन लेता है और उन्ही के प्रति अनुक्रिया करता है। वह सम्बद्ध सकेनो के प्रति किसी प्रकार की भिन्न अनुक्रिया प्रवृत्ति नही विकसित करता है। वह अनेक उपकल्पनाओ की क्रमश परीक्षा करता रहता है जब तक कि सही उपकल्पना नही प्राप्त हो जाती है।

लैश्ली (1928) ने एक प्रयोग मे अपनी स्थापनाओ की पुष्टि विषयक प्रमाण प्राप्त किया। उक्त प्रयोग मे चूहो को कूदन अड्डे की किसी एक खिडकी के प्रति कूदने का प्रशिक्षण दिया गया। चूहो को सफेद खिडकी के प्रति कूदने की अनुक्रिया करनी थी तथा काली खिडकी की उपेक्षा करनी थी। जब आरभ मे काली तथा सफेद खिडकियाँ उपस्थित की गयी और सयोगवश यदि सफेद खिडकी दाँयी ओर उपस्थित हो गयी (और वे सफेद खिडकी के प्रति सही अनुक्रिया करते हे) तो इस बात की पूरी सभावना रहती है कि प्रयोज्य सफेद सही है या दाहिना अग सही है, इन विकल्पो मे से कोई भी विकल्प सीख सकता है। मान लीजिए कि चूहे ने दाहिनी दिशा को सही सकेत मान लिया। यह स्वीकार करने के बाद वह इस उपकल्पना के आधार पर तब तक कार्य करता रहेगा जब तक कि उसे दण्ड नही प्राप्त हो जाता है। दण्ड पाने पर यह उपकल्पना विच्छिन्न हो जाती है और प्रयोज्य किसी अन्य उपकल्पना की खोज करता है और अतत सही अनुक्रिया सीख लेता है। दूसरे शब्दो मे, प्रयोज्य एक अनुक्रिया को क्रमश पुनर्बलन तथा अपुनर्बलन के प्रभावो के सचय द्वारा न सीखकर अनेक उपकल्पनायें[1] विकसित करता है। विभेदन मे उपकल्पना के उपयोग का प्रायोगिक प्रमाण क्रेचवेस्की (1932) तथा लैश्ली तथा वेड (1946) ने प्राप्त किया है।

सक्षेप मे, इस सिद्धान्त के अनुसार प्रयोज्य किसी सम्पूर्ण उत्तेजक के सरूप के कुछ पक्षो को ही चुनकर उनकी ओर ध्यान देता है तथा केवल उन्ही पक्षो के प्रति अनुक्रिया करता है। केवल इसी प्रकार के उत्तेजक आयाम पुनर्बलन द्वारा प्रभावित होते हैं जिनके प्रति उस क्षण अनुक्रिया करना सभव होता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि विभेदन का विकास एक सतत प्रक्रम नही है। सम्बद्ध सकेतो के मध्य अन्तर तब विकसित होता है जब प्रयोज्य सम्बद्ध सकेतो के प्रति ध्यान देने लगता है और प्रतिक्रिया करने लगता है।

विभेदन अधिगम वस्तुत एक क्रमिक प्रक्रम है या आकस्मिक प्रक्रम, यह एक जटिल विवाद का विषय रहा है। यहाँ पर दोनो प्रकार के सिद्धान्तो की समीचीनता के परीक्षण के लिए किये गये तुलनात्मक प्रयोगो की उपलब्धियो पर विचार किया जायगा।

---

1 Hypothesis

सकेत वैपरीत्य[1] विषयक प्रयोग

समाधान काल मे सकेतो की अर्थवत्ता, उसी सकेत की समाधान पूर्व की अर्थवत्ता के विपरीत कर देने पर प्रयोज्य का निष्पादन विभेदन अधिगम के प्रस्तावित दोनो सिद्धान्तो की परीक्षा का महत्वपूर्ण अवसर प्रदान करता है। उदाहरणार्थ, मान ले कि समाधान पूर्व 'क' उत्तेजक धनात्मक है तथा 'ख' उत्तेजक ऋणात्मक है। सकेत वैपरीत्य की प्रक्रिया मे समाधान काल मे इन दोनो उत्तेजको का अर्थ विनिमय कर दिया अर्थात 'ख' उत्तेजक धनात्मक हो जायगा और 'क' ऋणात्मक हो जायगा। यहाँ पर समाधान काल का तात्पर्य प्रयोज्यो के निष्पादन के उस स्तर से है जो सभावना स्तर से अधिक या सुस्थिर होता है। इस अवस्था तक पहुँचने के पूर्व प्रयोज्य का निष्पादन समाधान पूर्व काल मे सभावना स्तर से कम ही होता है। हल्ल तथा स्पेन्स के क्रमिक सिद्धान्त के अनुसार (सकेतो के अर्थ वैपरीत्य से उत्पन्न) नये विभेदन प्रक्रम के अधिगम मे कठिनाई उपस्थित होगी। किन्तु लैश्ली के सिद्धान्त के अनुसार समाधान पूर्व काल मे किये गये अधिगम का नये विभेदन प्रक्रम के अधिगम पर किसी प्रकार का अवरोधक प्रभाव नही होगा। इन भविष्य कथनो की परीक्षा मैंककुलाश तथा प्रैट (1934) द्वारा सम्पादित प्रयोग मे की गयी। इस प्रयोग मे चूहो को एक भोजन पात्र को अन्दर की ओर एक रस्सी की सहायता से खीचने के लिए प्रशिक्षण दिया गया। यह क्रिया सीख लेने के पश्चात् उनके समक्ष दो भोजन पात्र एक साथ उपस्थित किये गये। प्रत्येक पात्र के साथ रस्सी बधी थी। एक पात्र दूसरे पात्र की अपेक्षा तीन गुना भारी था। भोजन हल्के पात्र मे निहित था। बाद मे यह सकेत बदल दिया गया तथा भोजन भारी पात्र मे रख दिया गया। यह सकेत वैपरीत्य, एक समूह मे ज्योही प्रगति प्रदर्शित की, कर दिया गया तथा दूसरे समूह मे 28 प्रयासो के पश्चात् किया गया। नियन्त्रित समूह आरभ से ही भारी पात्र मे भोजन प्राप्त कर रहा था। सकेत वैपरीत्य के पहले के प्रयासो को अशुद्ध प्रयास कहा जा सकता है। निष्कर्षो से यह ज्ञात हुआ कि अधिक अशुद्ध प्रशिक्षण प्राप्त करने पर सकेत वैपरीत्य की अवस्था मे अधिगम अधिक धीमा हो गया। समाधान पूर्व काल के अधिगम का अवरोधन प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित हुआ। स्पष्टत इस प्रयोग से प्राप्त निष्कर्षों से स्पेन्स के सातत्य सिद्धान्त की पुष्टि होती है।

असम्बद्ध सकेत विषयक प्रयोग

लैश्ली (1942) ने विभेदन अधिगम के सातत्य तथा अक्रमिक सिद्धान्तो की परीक्षा के लिए कुछ प्रयोग किये। इन प्रयोगो का आधार लैश्ली की यह स्थापना थी कि यदि पशुओ मे उत्तेजक दशा के केवल एक पक्ष के ही प्रति प्रतिक्रिया करने की प्रवृत्ति विकसित की जाय तो अन्य पक्षो के साथ अत्यधिक प्रशिक्षण

---

1 Cue reversal

द्वारा भी तब तक सम्बन्ध स्थापित नही हो सकता है जब तक कि मौलिक तत्परता भोजन प्राप्त करने के प्रति सशक्त रहती है। इस अवधारणा की परीक्षा के निमित्त चूहो पर एक प्रयोग किया गया। चार चूहो को 20 शुद्ध प्रयासो के निष्कर्ष तक कूर्दन अड्डे के उपकरण मे दो वृत्तो में से बडे वृत्त को चुनने की क्रिया सिखायी गयी। फलत पशुओ मे आकार के आधार पर प्रतिक्रिया करने की तत्परता विकसित हो गयी। तत्पश्चात् बडे वृत्त के स्थान पर बडा त्रिभुज प्रतिस्थापित कर दिया गया। प्रयोज्यो ने इस बदली परिस्थिति मे सदैव त्रिभुज को चुना और उन्हे पुरस्कृत किया गया। यह अधिगम 200 प्रयासो तक चला। इन प्रयासो मे बडे आकार के प्रति अनुक्रिया करते समय प्रयोज्य त्रिभुज के प्रति प्रतिक्रिया करते थे और उन्हे शत-प्रतिशत पुरस्कार प्राप्त हुआ। स्पेन्स के सिद्धान्त के अनुसार त्रिभुजाकृति ने भी कुछ धनात्मक सकेत मूल्य अर्जित कर दिया होगा। उक्त अधिगम के पश्चात् दो परीक्षण दिये गये—

(1) एक समान क्षेत्र वाले त्रिभुज तथा वृत्त को उपस्थित किया गया। इस स्थिति मे आकृति को नही चुना गया।

(2) बडा वृत्त तथा छोटा त्रिभुज उपस्थित किया गया। इस अवस्था मे प्रयोज्यो ने वृत्त को चुना।

स्पष्ट ही यह प्रयोग लैश्ली के सिद्धान्त की पुष्टि करता है। किन्तु इस प्रायोगिक उपलब्धि के विरुद्व कुछ प्रयोगो मे आकस्मिक सकेतो को सीखने का भी प्रमाण प्राप्त हुआ है। यथा विटरमैन तथा कोट (1950) ने यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि चमक के विभेदन के अधिगम मे आकस्मिक दिक् सकेत भी सीख लिया गया। ह्यूस तथा नार्थ (1959) ने भी इसी प्रकार के निष्कर्ष प्राप्त किये हैं। वस्तुत यह प्रश्न अभी पूरी तरह सुलझ नही सका है।

परस्पर सम्बद्ध उत्तेजको के मध्य विभेदन

असातत्य सिद्धान्त के अनुसार विभेदन अधिगम मे पशु, उत्तेजको के प्रति सक्रिय होकर ध्यान देते है और उनके मध्य तुलना करते हैं। इस तथ्य की परीक्षा के लिए कुछ ऐसे प्रयोग किये गये जिनमे 'विभेदनीय उत्तेजक' उत्तेजको के मध्य विद्यमान सम्बन्ध के रूप मे होता है। इस समस्या पर प्रमुख प्रयोग लारेन्स तथा डी रीवेरा (1954) ने किया जिसमे अन्तर्विनिमय विपयक भविष्यवाणियो की परीक्षा की व्यवस्था सभव थी। इन प्रयोगकर्ताओ ने लैश्ली के कूर्दन अड्डे का उपयोग किया था। दो प्रकार की चमक वाले उत्तेजक कार्डों की शृखला तैयार की गयी। प्रत्येक कार्ड का अधोभाग मध्यवर्ती भूरे रग का था (1 से 7 तक की भूरेपन की तीव्रता का क्रम मे चतुर्थ स्थान था) तथा प्रत्येक कार्ड का ऊर्ध्व भाग, अधोभाग की अपेक्षा कम चमकदार था तब चूहे दायी ओर कूदकर भोजन प्राप्त कर सकते थे तथा जब ऊर्ध्वभाग अधिक गाढा था तो बायी ओर कूद कर पुरस्कार प्राप्त कर लेते थे। वे निम्नाकित सम्बन्धो से किसी एक सम्बन्ध के प्रति अनुक्रिया कर सकते थे

(1) अधोभाग की अपेक्षा अधिक प्रकाशित ऊर्ध्वभाग—दायी ओर कूदना
(2) निम्न भाग की अपेक्षा अधिक गाढा ऊर्ध्वभाग—बायी ओर कूदना
(3) ऊर्ध्वभाग की निरपेक्ष चमक के आधार पर अनुक्रिया —
(अ) ऊर्ध्वभाग के चमकदार होने पर दायी ओर कूदना।
(ब) ऊर्ध्वभाग के गाढा होने पर बायी ओर कूदना।

आरम्भिक प्रशिक्षण के उपरान्त अन्तर्विनिमय के परीक्षण द्वारा प्रयोज्य द्वारा प्रयुक्त युक्ति[1] का पता लगाया गया। लारेन्स तथा डे रिवेसे' ने अधोभाग की चमक को परिवर्तित कर निर्मित अनेक सयुक्तियो का प्रयोग किया तथा यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि अन्तर्विनिमय मे लगभग 80% अनुक्रियाओ के प्रारम्भिक प्रशिक्षण मे 'सम्बन्धी व्याख्या'[2] के अधिगम के पक्ष मे थी। केवल 20% अनुक्रियायें ही 'निरपेक्ष व्याख्या' के अनुकूल थी। इस प्रयोग से स्पष्ट है कि चूहे 'सम्बन्धी दृष्टि' से अनुक्रिया करना सीखते हैं।

लैश्ली की एक प्रमुख स्थापना यह है कि पशु भी मनुष्यो की तरह कुछ थोडे उत्तेजक गुणो के प्रति ही चयनात्मक दृष्टिकोण से ध्यान देते है तथा उन्ही के प्रति क्रियाशील होते है। इस स्थापना का अध्ययन ऊपर चर्चित प्रयोगो मे नही किया गया है। लारेन्स (1949, 1950) ने कुछ ऐसे प्रयोग किये जिनमे उक्त उपकल्पना की परीक्षा की गयी। यहाँ पर एक प्रयोग की चर्चा की जा रही है। इस प्रयोग मे दो अधी गलियाँ प्रवेश द्वार से परस्पर विरोधी दिशा मे गयी थी। प्रयोग तीन चरणो मे किया गया—पूर्व प्रशिक्षण, प्रशिक्षण तथा परीक्षण।

पूर्व प्रशिक्षण काल मे दोनो अधी गलियाँ कुछ समय तक काली और कुछ समय के लिए सफेद थी। जब वे काली थी तब भोजन बाँयी गली मे प्राप्त होता था किन्तु जब वे सफेद थी तब भोजन दाँयी गली मे प्राप्त होता था। काला तथा सफेद रग 'सम्बद्ध सकेत'[3] था तथा चूहो ने इसे सीख लिया। इस पूर्व प्रशिक्षण की अवधि के आधे भाग मे इन गलियो मे पर्दे विद्यमान थे किन्तु वे असम्बद्ध सकेत थे। प्रयोज्यो ने इन असम्बद्ध सकेतो की उपेक्षा करना सीख लिया।

प्रशिक्षण की अवधि मे असम्बद्ध सकेतो को भी सम्मिलित कर लिया गया तथा दोनो ही सकेत परस्पर सम्बद्ध थे। एक गली काली तथा पर्दायुक्त थी तथा दूसरी गली सफेद एव पर्दाहीन थी। चूहो ने काली पर्दायुक्त गली को (चाहे वह बाँये हो या दाये) चुनना सीखा। यह बहुत ही शीघ्र सीख लिया गया।

अन्त मे परीक्षण काल मे एक गली काली किन्तु पर्दाहीन थी तथा दूसरी सफेद और पर्दायुक्त थी। इस अवस्था मे इस प्रश्न की परीक्षा की गयी कि क्या पूर्व प्रशिक्षण काल मे (जिसके अन्तर्गत कुछ सकेतो का उपयोग और कुछ सकेतो

Stretegy 2 Relational interpretation 3 Relevant cue

की उपेक्षा करना सिखाया था) का अधिगम द्वितीय तथा तृतीय चरण मे अन्तरित[1] हुआ था या नही। परीक्षण मे 40 चूहो मे से 27 चूहो ने पहले के उपेक्षित सकेतो की उपेक्षा प्रदर्शित की। असम्बद्ध सकेतो का मूल्य पूर्व प्रशिक्षण द्वारा समाप्त हो गया था। लारेन्स के अनुसार इस प्रक्रिया मे एक अन्य प्रात्यक्षित कारक भी सलग्न है जो उत्तेजक प्रत्यक्षीकरण के समय परिचालित होता है। काली तथा सफेद गलियो के प्रति अनुक्रिया करते समय तथा पर्दाहीनता एव पर्दायुक्तता के मध्य अन्तर की उपेक्षा करने की अनुक्रिया सीखने के अन्तर्गत प्रयोज्यो ने रग विभेदनीयता को विकसित किया। उपलब्ध साक्ष्यो को दृष्टि मे रखकर मात्र यही कहा जा सकता है कि शुद्ध प्रतिक्रिया के समय विद्यमान उत्तेजको के साथ, किसी प्रात्यक्षिक कारक के कारण असमान सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

उपलब्ध प्रायोगिक प्रमाणो से सातत्य सिद्धान्त की यह अभिनति सुपुष्ट है कि पशुओ को कुछ उत्तेजको के प्रति धनात्मक प्रतिक्रिया के लिए उसी सवेदी आयाम मे स्थित अन्य उत्तेजको के साथ बिना किसी प्रकार की तुलना के प्रशिक्षित किया जा सकता है। विभेदन का कोई चिन्ह न होने पर भी प्रशिक्षण के अन्तर्गत अभीष्ट काय पर अनुभव के ऐसे प्रभाव होते है जिन्हे अन्तरण परीक्षणो द्वारा अलग किया जा सकता है। इसके विपरीत अक्रमिक सिद्धान्त की इस स्थापना के पक्ष मे भी प्रभूत प्रायोगिक साक्ष्य है कि प्रयोज्य केवल कुछ चुने हुए उत्तेजको के ही प्रति अनुक्रिया करता है। समस्याओ के विपय सम्बन्धी दृष्टिकोण के प्रयोग तथा उप-कल्पनाओ का उपयोग भी प्रयोगो द्वारा प्रतिष्ठित हो चुका है। प्रात्यक्षिक कारको की भूमिका नितान्त महत्वपूर्ण है।

अवधान तथा विभेदन अधिगम

ग्राहको के सम्पर्क मे विद्यमान सभी उत्तेजको का प्रत्यक्ष नही होता है। केवल कुछ चुने हुए उत्तेजक ही प्राणी द्वारा प्रत्यक्षित होते हैं तथा इन चुने हुए उत्तेजको के भी केवल कुछ चुने पक्ष ही प्राणी के व्यवहार को निर्धारित करते हैं। शेप पक्ष प्रत्यक्षित होकर भी उपेक्षित ही रहते हैं। परिवेश के साथ अभियोजन मे जब प्रत्यक्षित उत्तेजक को प्रयुक्त किया जाता है तब उसमे उत्तेजक चयन[2] होता है। इस उत्तेजक चयन के आधार की प्रकृति प्रात्यक्षिक न होकर साहचर्यमूलक होती है। विभेदन अधिगम की सम्यक् व्याख्या के लिए चयनात्मक प्रत्यक्षीकरण[3] तथा उत्तेजक चयन, दोनो ही प्रक्रमो का ज्ञान आवश्यक है। ये दोनो ही प्रक्रम अधिगम द्वारा प्रभावित होते है। अर्थात समस्त उत्तेजको मे से किन पक्षो का प्रत्यक्ष होगा और प्रत्यक्षित उत्तेजको मे से कौन उत्तेजक विभेदन व्यापार के आधार बनेगे ? यह अन्य कारको की अपेक्षा अधिगम पर विशेप रूप से निर्भर करता है। चयनात्मक

1 Transfer 2 Stimulus selection 3 Selective perception

प्रत्यक्षीकरण के स्तर पर सम्पन्न होने वाले अधिगम का व्यापक अध्ययन प्रात्यक्षिक अधिगम के अन्तर्गत किया जाता है जिसका प्रमुख ध्येय इस समस्या का अन्वेषण करना है कि किस प्रकार मूलत एक रूप उत्तेजक गुणो मे भिन्नता का अनुभव[1] विकसित होता है। उत्तेजक चयन अपेक्षाकृत स्वल्प अन्वेषित क्षेत्र रहा है। इस दिशा मे शीघ्र ही शोध कार्य आरम्भ हुआ है जिसकी चर्चा आगे की गयी है।

गिब्सन (1955) ने प्रात्यक्षिक अधिगम का व्यावर्तन सिद्धान्त विकसित किया है जिसका आधार यह अवधारणा है कि प्राणी की क्रमश अविमोदित या अस्पष्टत विभेदित उत्तेजक परिवत्यो के प्रति सवेधता मे व्यावर्तन के आधार पर वृद्धि होती है। अधिगम की सहायता से प्राणी मूलत अप्रत्यक्षित या अप्रत्यक्षणीय उत्तेजको के प्रत्यक्ष मे सफल हो जाता है। व्यावर्तन बाल्यावस्था तथा वयस्कावस्था दोनो ही स्तरो पर विभेदन अधिगम के लिए अनिवार्य है। व्यावर्तन स्वय मे विभेदन अधिगम का केन्द्रीय विषय है। यहाँ पर प्रस्तुत सिद्धान्त की पुष्टि करने वाले कुछ प्रमुख प्रयोगो की चर्चा अनुपयुक्त न होगी।

वाक, गिब्सन आदि ने 1959 मे एक प्रयोग किया जिसमे पूर्व प्रदर्शन[2] के अनुभव तथा विभेदन अधिगम के अन्त सम्बन्ध का अध्ययन किया गया। इस प्रयोग मे चूहो के एक समूह को उनके पालन कक्ष मे उन उत्तेजको को देखने का अवसर दिया गया जो बाद के विभेदन मे प्रयुक्त थे। इस अनुभव से वचित नियन्त्रित समूह का विभेदन अवस्था मे निष्पादन अपेक्षाकृत निम्न स्तर का था। इस प्रयोग से यह स्पष्ट है कि भिन्न पुनर्बलन के अभाव मे समुचित दशाओ मे केवल उत्तेजको के साथ अनुभव मात्र, बाद के विभेदन अधिगम को सहज बनाने मे समर्थ है। उक्त प्रयोग के निष्कर्षो की आलोचना करते हुए केर्पेलमैन (1965) ने यह विचार व्यक्त किया कि चूहो को अपने पोषण कक्ष मे भोजन आदि भी दिया जाता था जो स्वय मे महत्वपूर्ण पुनर्बलन है। अत विभेदन अधिगम की सहजता मात्र उत्तेजको के साथ अनुभव से ही उत्पन्न है यह कहना अनुचित है। बाद के प्रयोगो से प्राप्त निष्कर्षो से भी इस अवधारणा की पुष्टि हुई है। वस्तुत इस प्रश्न पर उपलब्ध प्रायोगिक साक्ष्य अस्पष्ट एव अपर्याप्त है अत कोई अन्तिम विचार नही स्थिर किया जा सकता।

वैपरीत्य तथा अतिरिक्त आयामीय[3] परिवर्तनो मे व्यावर्तन बनाम माध्यमिक[1] क्रिया

व्यावर्तन सिद्धान्त एक महत्वपूर्ण अवदान विभेदन अधिगम मे तुलनात्मक तथा विकासात्मक कारको की भूमिका से सम्बद्ध है। निम्नस्तरीय प्राणी अतिरिक्त आयामीय परिवर्तन (अ० आ० प०) को वैपरीत्यविपयक परिवर्तन (वै० प०) की अपेक्षा शीघ्रता से सीखते है। इसके विपरीत मनुष्य वैपरीत्य विपयक परिवर्तनो को

1 Differentiation theory 2 Prior exponsure 3 Extradimensional
4 Mediation process

अतिरिक्त आयामीय परिवर्तन की अपेक्षा शीघ्रता से सीखता है। अ० आ० प० तथा वै० प० के विषय में यहाँ जान लेना आवश्यक है। उदाहरणार्थ, मान लीजिए कि एक त्रिभुज तथा वृत्त के मध्य अन्तर सीखना है। रंग असम्बद्ध है। 50% प्रयासों में त्रिभुज लाल रहता है (तथा वृत्त हरा रहता है) तथा शेष प्रयासों में त्रिभुज हरा और वृत्त लाल रहता है। त्रिभुज ऋणात्मक हो जायगा। रंग असम्बद्ध बना दिया जाता है तथा सम्बद्ध उत्तेजक असम्बद्ध बना दिया जाता है। ऊपर के उदाहरण में यदि अ० आ० परिवर्तन किया जाय तो लाल रंग धनात्मक उत्तेजक हो जायगा और हरा रंग ऋणात्मक उत्तेजक हो जायगा, वृत्त और त्रिभुज असम्बद्ध हो जायेंगे।

परिवर्तन व्यवहार की विकासात्मक स्तर पर निर्भरता की व्याख्या के लिए केंडलर तथा केंडलर (1962) ने माध्यमिक प्रक्रम का सिद्धान्त प्रस्तावित किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार बच्चों में तथा निम्नस्तरीय प्राणियों में विभेदन मात्र एक उत्तेजक प्रतिक्रियाएँ सम्बन्ध से सम्बद्ध हैं। फलत अर्जनात्मक प्रशिक्षण के अन्त में धनात्मक उत्तेजक के प्रति अनुक्रिया की प्रवृत्ति ऋणात्मक उत्तेजक के प्रति व्यक्त अनुक्रिया की प्रवृत्ति की अपेक्षा प्रबल होगी तथा असम्बद्ध उत्तेजकों की अनुक्रिया प्रवृत्ति की शक्ति मध्यम श्रेणी की होगी। वैपरीत्य अधिगम उक्त व्याख्या के अनुसार अपेक्षाकृत कठिन होगा क्योंकि धनात्मक उत्तेजक की अनुक्रिया शक्ति प्रबल हो जायगी तथा ऋणात्मक उत्तेजक के प्रति विकसित अवरोध पर नियन्त्रण मिल जायगा। ठीक इसके विरुद्ध अ० आ० परिवर्तन सीखने में मध्यम शक्ति अनुक्रिया को अधिक शक्तिशाली बनाना ही अभीष्ट होता है तथा ऋणात्मक उत्तेजक की अवस्था में अत्यन्त निम्नस्तर पर ले जाना आवश्यक होता है। फलत अ० आ० प०, वैप० की तुलना में (उन प्रयोज्यों के लिए जो एक इकाई के उ० प्र० साहचर्य के आधार पर कार्य करते हैं) सरल होगा।

वयस्क प्रयोज्यों में और विशेषत जो प्रयोज्य भाषा की दृष्टि से समर्थ होते हैं, विभेदन अधिगम में अतिरिक्त माध्यमिक सम्बन्ध संलग्न होता है। दूसरे शब्दों में, सम्बद्ध आयाम प्रयोज्य में माध्यमिक अनुक्रिया विकसित करता है जिसके साथ नैमित्तिक व्यवहार सम्बद्ध हो जाता है। वैपरीत्य अधिगम में नैमित्तिक अनुक्रिया परिवर्तित हो सकती है किन्तु माध्यमिक अनुक्रिया सम्बद्ध बनी रहती है तथा किसी प्रकार का परिवर्तन उसमें अपेक्षित नहीं रहता है। अ० आ० प० में माध्यमिक अनुक्रिया तथा नैमित्तिक व्यवहार को बदलना अनिवार्य हो जाता है। अत जहाँ भी माध्यमिक अनुक्रिया प्रयुक्त होगी अ० आ० प० की अपेक्षा वै० प० का सीखना सरल होगा।

व्यावर्तन सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में किये गये प्रायोगिक अध्ययन के आधार पर टीघ (1965) ने यह प्रस्तावित किया कि अ० आ० प० तथा वै० प० के निष्कर्षों की व्याख्या भिन्न स्तरीय प्रात्यक्षिक अधिगम के रूप में की जा सकती है जो मौलिक विभेदन के अर्जन के अन्त में प्राप्त होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार अर्जन के अन्त

मे प्रयोज्य सम्बद्ध आयामो मे अन्तर करने मे सफल हो जाता परन्तु अ० आ० प० वै० प० की तुलना मे शीघ्रता से सीखा जा सकेगा क्योंकि भूतपूर्व सम्बद्ध आयाम सम्बद्ध ही बना रहता है तथा प्रयोज्य को मात्र इसके एक पक्ष तथा पुनर्बलन के मध्य सम्बन्ध सीखना रहता है। दूसरी ओर अ० आ० प० के अधिगम मे प्रयोज्य का अवधान मूलत असम्बद्ध आयाम के ही अभिमुख आपेक्षित होता है जिससे सम्भवत अन्तर करना आवश्यक है तथा प्रयोज्य यथोचित उत्तेजक पुरस्कार सम्बन्ध सीखता है।

माध्यमिक प्रक्रम तथा व्यावर्तन के ये दो सिद्धान्त आपस मे कई दृष्टियो से समान है। दोनो मे अतिरिक्त आयामीय परिवर्तन वैपरीत्य परिवर्तन की अपेक्षा सरल है जबकि सकेतो के प्रति असम्बद्ध उत्तेजक के रूप मे अनुक्रिया करनी होती है। दोनो ही अवस्थाओ मे सम्बद्ध उत्तेजको को एक आयाम मे सगठित करने की क्रिया मे अतिरिक्त आयामीय परिवतन हो जाता है जो वैपरीत्य परिवर्तन की अपेक्षा जटिल होता है। अतिरिक्त आयामीय परिवर्तन मे नैमित्तिक तथा सगठनात्मक दोनो ही प्रकार की अनुक्रियाओ को परिवर्तित करना पडता है जबकि वैपरीत्य परिवर्तन मे केवल पहले को ही परिवर्तित करना पडता है। टीघ (1965) ने अपने प्रयोग मे प्रयोज्यो को विभेदन के आयामो मे पूर्व शिक्षण दिया। किन्तु प्रशिक्षण की अवधि मे किसी प्रकार का पुनर्बलन नही दिया गया। प्रयोज्यो का कार्य आयामो के उत्तेजक युग्म मे समानता या अन्तर के विषय मे निणय लेना था। प्रयोग के परिणाम से यह स्पष्ट हुआ कि पूर्व प्रशिक्षण से वैपरीत्य परिवर्तन के अधिगम मे सहायता प्राप्त होती है।

चयनात्मक श्रवण विषयक प्रयोग

प्राणी क्रमश उन अनेक उत्तेजको के प्रति सवेदनशील होने लगता है जिनके प्रति वह मूलत सवेदनशील नही होता है। उत्तेजको के प्रति सवेदनशीलता मे इस प्रकार की वृद्धि को व्यावर्तन सिद्धान्त के अन्तर्गत चयनात्मक प्रत्यक्षीकरण की सज्ञा दी गई है। यहाँ पर प्रत्यक्षीकरण की इस प्रकार की चयनात्मकता पर किये गये कुछ प्रायोगिक अध्ययनो का उल्लेख किया जा रहा है।

शब्द और सख्या मे स्पष्ट अन्तर वाले उत्तेजक हैं। इनका प्रायोगिक अध्ययन करने मे दो श्रवण प्रक्रियाओ का उपयोग किया गया है। प्रथम प्रक्रिया मे दो सूचनायें दोनो कानो मे अलग-अलग स्वतन्त्र रूप से पहुँचायी जाती हैं जबकि दूसरी प्रक्रिया मे दोनो सूचनाओ को दोनो कानो मे पहुँचाया जाता है। प्रयोज्य का कार्य प्राय किसी एक कान मे सप्रेपित सम्बद्ध सूचना के प्रति ध्यान देना होता है तथा प्रयागकर्ता यह निर्धारित करता है कि दूसरे अस्वीकृत कान मे सप्रेपित असम्बद्ध सूचना का कितना अश प्रत्यक्षित हुआ। इसके लिए अनुगमन या सम्बद्ध सूचना की तत्क्षण आवृत्ति करने की प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। स्पष्ट ही द्वितीय प्रकार

की श्रवण प्रक्रिया (जिसमे दोनो सूचनाये दोनो कानो मे पहुँचती है) मे सम्वद्ध सूचना का अनुगमन अत्यधिक कठिन होता है।

चेरी (1953) ने अपने प्रयोग मे यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि जब प्रयोज्यो को एक ही वक्ता द्वारा अकित दो सूचनायें दोनो कानो मे पहुँचायी गयी तब सप्रेपित दो सूचनाओ मे से एक ही आवृत्ति मे कठिनाई होती है। अनेक बार सुनने के बाद ही वे अधिक परिशुद्धता के साथ सप्रेपित सूचनाओ के अनुगमन मे सफल हो सके। ट्रीजमैन (1964 बी) ने अपने प्रयोग मे प्रयोज्यो को दो सूचनाओ को एक बार प्रदर्शित किया कि दोनो कानो मे दोनो सूचनाओ को सप्रेपित करने पर सूचनाओ को अनुगमन असम्बद्ध सूचनाओ के कुछ विशिष्ट प्रयत्नो की सहायता से सरल हो सकता है। दोनो सदेशो को दो स्वरो (सम्वद्ध सूचना-नारी स्वर, तथा असम्बद्ध सूचना-पुरुप स्वर) सप्रेपित करने पर प्रयोज्यो की अनुगमन शक्ति मे वृद्धि होती है। प्रयोग से यह भी स्पष्ट हुआ कि सवेदी अत स्थापन[1] के प्रात्यक्षिक विश्लेपण के वडे प्रारम्भिक स्तर पर चयन कार्य सम्पन्न होता है। इस चयन मे प्रयोज्य द्वारा उपेक्षित सूचना मे निहित केवल स्वल्प सूचना ही प्रत्यक्षित होती है। सुस्पष्ट भौतिक अन्तर चयन को सहज बनाता है। तत्पश्चात् असम्वद्ध सूचना के वे पक्ष जो विशिष्ट विश्लेपण की अपेक्षा करते हैं अनवधानित ही रह जाते हैं।

जब सम्वद्ध तथा असम्वद्ध सूचनाये इसी स्वर मे होती हैं तब सवेदी अत-स्थापन की व्याख्या मे अधिक विशिष्टता अपेक्षित होता है(जब तक कि अन्त स्थापन मे अन्तर न स्पष्ट हो जाय तथा असम्वद्ध सूचना अस्वीकृत न हो जाय) फलत अधिकाँश असम्वद्ध सूचना प्रत्यक्षित होगी, उसके द्वारा हस्तक्षेप होगा तो अनुगमन अवस्था का निष्पादन निम्नस्तर का होगा। इन भविष्य कथनो की प्रायोगिक पुष्टि भी हुई है। दोनो सूचनाओ को दोनो कानो मे प्रेपित करने पर अनुगमन अपेक्षाकृत सरल होता है क्योंकि इसमे प्रयोज्य को चयनात्मक प्रत्यक्ष का एक सकेत (वह कान जिसमे सम्वद्ध सूचना सपेपित होती है) उपलब्ध रहता है। इस स्थिति मे एक स्वर मे होने पर भी इसकी सभावना बनी रहती हे कि 'अस्वीकृति' की व्याख्या निम्नस्तर पर सम्पन्न होगी तथा असम्वद्ध सूचना के स्वरूप या सरचना का स्वल्पाश ही प्रत्यक्षित होगा। किन्तु सदैव ऐसा नही हुआ करता। मोरे (1959) ने असम्वद्ध सूचना के असभूत (प्रयोज्य के) नाम का प्रत्यक्ष प्राप्त किया। स्पष्ट ही एक श्रोत[2] पर प्रत्यक्ष के केन्द्रित होने पर अन्य अस्वीकृत श्रोतो पर स्थित सभी उत्तेजक एक तरह से अवरुद्ध नही होते। ट्रीजमैन (1960) ने परिवेशीय सकेतो के अध्ययन मे दोनो कानो मे स्वतन्त्र सूचनाओ को उपस्थित करने पर स्वीकृत कान पर उपलब्ध सूचना के अनुगमन का अध्ययन किया। यह सूचना अग्रेजी की साख्यिकीय अनुमति[3] थी। सूचना के उपस्थापन के क्रम मे स्वीकृत कान की सूचना अस्वीकृत कान मे और

1 Input 2 Channel 3 Statistical approximation

अस्वीकृत कान की सूचना स्वीकृत कान मे अकस्मात परिवर्तित कर उपस्थित की गयी तथा प्रयोज्य से केवल स्वीकृत कान की सूचना पर ध्यान देने के लिए कहा गया। निष्कर्ष यह प्राप्त हुआ कि उक्त (सूचना विनिमय की) अवस्था मे यदि सूचना उपन्यास का गद्य खड था तब प्रयोज्य (अग्रेजी की अनुमति की तुलना मे) अपेक्षाकृत अधिक सूचनाओ को दुहराने मे समर्थ था। दूसरे शब्दो मे, सूचना पर परिवेशीय अवरोध की मात्रा महत्वपूण कारक है। ट्रीजमैन ने यह भी पाया कि प्रयोज्यो ने अस्वीकृत सूचना को मात्र 'कोलाहल' के रूप मे स्वीकार किया जिसका तात्पर्य यह है कि दोनो कानो मे दो सूचनाओ को स्वतन्त्र रूप से सप्रेपित करने पर स्वल्प सूचना प्रत्यक्षित होती है। इस सन्दर्भ मे लासन (1966) का प्रयोग उल्लेखनीय है। लासन (1966) ने लक्ष्योत्तेजक के रूप मे सक्षिप्त अवधि के टोन को प्रयोग किया तथा यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि प्रयोज्य स्वीकृति तथा अस्वीकृति कोनो मे उपस्थित करने पर समान रूप से अन्तर किया गया। स्पष्ट ही इन प्रयोगो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि चयनात्मक श्रवण मे चयनात्मक अवधान के सम्पन्न होने के पूर्व भौतिक गुणो का आधारभूत विभेदन सम्पन्न होता है।

छनने का सिद्धान्त[1]

चयनात्मक श्रवण विषयक प्रयोगो के प्रदत्त तथा सूचना सिद्धान्त के आधार पर ब्राडबेन्ट (1958) ने चयनात्मक छनने के सिद्धान्त का विकास किया। इस सिद्धान्त की आधारभूत स्थापना यह है कि मनुष्य की सूचना प्रक्रमण क्षमता[2] सीमित है। इसके परिणामस्वरूप ग्राहको के सम्पर्क मे आये सभी उत्तेजको का विश्लेपण और प्रक्रमण नही हाता है। फलत समग्र सूचना को छान कर अलग करना आवश्यक हो जाता है। जिससे केवल एक श्रोत ही एक समय उन यन्त्रन्यासो के पास पहुँच सके जिसके द्वारा सूचना प्रक्रमित होती है। अनेक अन्त स्थापक श्रोतो मे सर्वाधिक सूचना प्रक्रमित करने वाला श्रोत चुना जाता है। यह चयन अनेक कारको से प्रभावित होता है जिसमे तात्कालिक अभिप्रेरणा तथा अन्त स्थापित सकेतो की विशेपतायें प्रमुख है। ब्राडवेन्ट का मूलत यह विचार था कि अस्वीकृत श्रोत से शून्य सूचना प्रक्रमित होती है। दूसरे शब्दो मे, सूचना प्रक्रमण 'पूर्ण या शून्य' होता है। किन्तु नवीन साक्ष्यो से यह स्पष्ट हो गया है कि स्वीकृत श्रोत तक पहुँची सूचना भी ध्यान बँटाती है। कभी-कभी भावात्मक शब्द अस्वीकृत कान मे पहुँचने पर भी सुन लिए जाते है। इससे उक्त तथ्य की पुष्टि होती है।

नवीन प्रायोगिक उपलब्धियो को दृष्टि मे रखकर ट्रीजमैन (1960) ने ब्राडवेन्ट के सिद्धान्त को परिष्कृत किया। इस नये परिमार्जन के अनुसार चयनात्मक छनना अस्वीकृत श्रोत से आती हुई समस्त सूचनाओ को पूर्णत अवरुद्ध न कर अशत

---

1 Filter theory 2 Information processing capacity

क्षीण कर देता है। यह क्षीण सकेत का प्रक्रमण सकेत की देहली की उच्चता या भावात्मकता सलग्न होने पर ही सभव होता हे।

सक्षेप मे, छनने के सिद्धान्त के अनुसार एक व्यक्ति एक श्रोत की सूचना के प्रति उसी सीमा तक ध्यान देता है जहाँ तक वह उपलब्ध सूचना की अधिकाश मात्रा को ग्रहण करने मे सफल रहता है, जो प्रयोज्य द्वारा सम्वद्व सूचना के शुद्ध अनुगमन के लिए आवश्यक है। तत्र उसके पास उत्कृष्ट विश्लेपण के लिए पर्याप्त सूचना प्रक्रमण क्षमता अन्य श्रोतो पर उपलब्ध सूचना के लिए नही रह जाती है। यह असम्वद्ध सूचना के प्रति प्रदर्शित उपेक्षा के ऊपर निर्भर करता है। प्रयोज्य असम्बद्ध सूचना के अगभूत सख्याओ या शब्दो की प्रत्यभिज्ञा मे असफल रहता है। प्रयोज्य की असम्वद्ध सूचना की विपय-वस्तु के प्रत्यक्ष मे असफलता, (असम्वद्व सूचना की) अस्वीकृति मे सरलता से सम्वन्धित होती है। अन्य कारको के समान रहने पर यदि सम्वद्ध और असम्बद्ध सूचना मे कम समानता हो तो विभेदन के प्रारभिक स्तर पर प्रयोज्य असम्वद्ध सूचना को अस्वीकृत कर देता है। अत स्थापित सकेतो के कुछ भौतिक गुणो का विभेदन चयनात्मक छनने के प्रक्रम के परिचालन के पूर्व ही हो जाता हे। प्रयोगो से यह भी स्पष्ट है कि अस्वीकृत श्रोत की सूचनाये पूर्णत अवरुद्ध न होकर क्षीण या दुर्वल हो जाती हैं। इसीलिए विशिष्ट अर्थ वाले शब्दो के सम्प्रेपण की अधिक सभावना होती है। इस तथ्य से छनने के सिद्धान्त का महत्व 'छनने की क्रिया से घटकर दुर्वलन क्रिया का ही रह जाता है। इसका एक परिणाम यह भी होता है कि चयनात्मक प्रत्यक्ष की व्याख्या के लिए अन्य यत्रन्यासो की खोज भी आवश्यक हो जाती है। इस समस्या की व्याख्या के लिए ब्राडवेन्ट तथा ग्रिगोरी (1963) ने एक सकेत ससूचन[1] पद्धति को दोनो कोनो मे स्वतत्र सूचना के श्रवण के साथ सयुक्त कर दिया। प्रयोग मे एक समूह को 6 अको की शृखला पर ध्यान देने को कहा गया। ये अक 1/2 सेकण्ड प्रति अक की गति से सुनाये गये थे। इन्हे तत्काल अकित करने के लिए कहा गया। दूसरे कान मे कोलाहल उपस्थित किया गया। यह कोलाहल प्रथम अक के आरभ होने के पूर्व से लेकर अतिम अक के आरभ होने के वाद तक विद्यमान था। कोलाहल के मध्य एक सेकण्ड के लिए एक तीव्र स्वर भी उपस्थित किया जाता था। एक नियत्रित समूह भी था जिसका पूरा ध्यान स्वर को अलग करने मे सलग्न था तथा अको की ओर ध्यान न देने का निर्देश दिया गया। निष्कर्ष यह प्राप्त हुआ कि प्रयोज्य के ध्यान को अको की ओर आकृष्ट करने का प्रभाव स्वर के विभेदन मे ह्रास था।

मोरे तथा ओ, ब्रीन (1967) के प्रायोगिक निष्कर्ष की पुष्टि करते हैं। जब ध्यान वटा हो तब चयनात्मक श्रवण कार्य की आधारभूत सूचना की तीव्रता वढ जाती है। दो प्रायोगिक दशाओ मे 8 प्रयोज्यो के समूहो को अको के एक सचित

1 Signal detection

कोप मे से अक्षरो को अलग करने का कार्य दिया गया। बटे हुए ध्यान की दशा मे प्रयोज्यो के दोनो कानो मे सप्रेषित सूचनाओ को सुनना था। प्रयोज्य का कार्य यह था कि दाये कान मे अक्षर सुनने पर दाँये हाथ के पास की कुजी दबाये तथा बाँयें कान मे अक्षर सुनने पर बाँये हाथ के पास की कुँजी दबानी थी। किन्तु चयनात्मक ध्यान की अवस्था मे प्रयोज्य को केवल दाँये काल मे सप्रेषित मूल सूचना को सुनने का निर्देश दिया था। बाँये कान मे सप्रेषित द्वितीयक सूचना से किसी प्रकार का सम्बन्ध न था। वह मात्र अवरोधक था। निष्कर्ष यह प्राप्त हुआ कि जब ध्यान बटा था तब दोनो श्रोतो पर अलग करने का समान स्तर बना रहता है तथा उपलब्ध ध्यान को दो श्रोतो मे समान रूप से विभाजित करना पडता है। चयनात्मक ध्यान की दशा मे स्वीकृत श्रोत की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। फलत मूल सदेश अस्वीकृत सूचना के आधार पर तीव्र हो जाता है। वस्तुत प्रायोगिक अध्ययन होने पर भी इस क्षेत्र मे सुपुष्ट सिद्धान्त का अभाव है।

उत्तेजक चयन—स्वरूप एव निर्धारक

उत्तेजक चयन का स्वरूप

उत्तेजक चयन का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति जितने उत्तेजको का प्रत्यक्ष करता है उसमे कुछ थोडे से उत्तेजक ही उसके व्यवहार मे प्रयुक्त होते हैं। शेष प्रत्यक्षित उत्तेजको का व्यक्ति उपयोग नही करता है। विभेदन के इस चयनात्मक पक्ष को व्यक्त करने के लिए अनेक प्रयोग किये गये है। यहाँ पर एक प्रयोग की चर्चा की जा रही है।

डी एमेटो तथा फेजारो (1966) ने एक प्रयोग मे दो बन्दरो को एक सम-सामयिक विभेदन का कार्य करने को दिया। धनात्मक उत्तेजक लाल पृष्ठभूमि पर अवस्थित ऊर्ध्वाधार श्वेत रेखा थी तथा ऋणात्मक उत्तेजक नीली पृष्ठभूमि पर अवस्थित क्षैतिज श्वेत रेखा था। प्रतिदिन 40 प्रयास दिये जाते थे। जिनमे से 20 प्रयास उक्त प्रकार के धनात्मक और ऋणात्मक उत्तेजको के साथ दिये गये। 10 अन्य प्रयासो मे केवल रग का ही अश उपस्थित किया गया जिसके आधार पर अनुक्रिया करनी थी। उक्त परिस्थिति मे दो विकल्प थे—प्रयोज्य रग के आधार पर अनुक्रिया कर सकता था या सकेत जन्य[1] अनुक्रिया को क्रियान्वित कर सकता था (यथा श्वेत प्रकाशित केन्द्रीय कुँजी को दबाना) जो 'बार' के कुछ अशो के दिखने मे परिणत होती थी। दूसरे शब्दो, मे सकेत जन्य अनुक्रिया रगाश को मिश्रित उत्तेजक[2] मे सप्रेषित कर दिया गया। शेष 10 प्रयासो मे केवल 'बार' ही दृष्टिगत हो सकता था तथा प्रयोज्य या तो इस सकेत के आधार पर या तो अनुक्रिया कर सकता है या सकेत जन्य अनुक्रिया के माध्यम से रगाश को प्राप्त करें। यह अनुमान लगाया गया

1 Cue produced 2 Compound stimuli

कि यदि एक अवयव का प्रयोज्य द्वारा विभेदन मे उपयोग नही होता है तो प्रयोज्य उसकी उपस्थिति मे अवयव के मिश्रित उत्तेजक को सप्रेपित करने के लिए सकेत-जन्य अनुक्रिया करेगा। स्थानान्तरण प्रयास तब आरम्भ किये गये जब प्रयोज्य मूल सूची को पूर्णत सुनाने मे समर्थ हो गये थे। प्रयोग का निष्कर्ष इस प्रकार था। निरर्थक अक्षर तथा रग से निर्मित मिश्रित उत्तेजक के साथ सूची का अर्जन पूर्णत रग अवयव पर आवृत था। निरर्थक अक्षर अत्यन्त स्वल्प उत्तेजक नियत्रण को प्राप्त कर सका। ठीक इसके विरुद्ध रग और सार्थक शब्द की स्थिति मे शब्दो ने बहुत अधिक मात्रा मे उत्तेजक नियत्रण प्राप्त कर लिया। रग की क्षमता काफी अधिक थी। विशेष तथ्य यह था कि सार्थक शब्द स्वतत्र रूप से इतना प्रभावशाली सकेत न था जितना प्रभावशाली मिश्रित उत्तेजक था।

सम्बोध तादात्म्यन[1] मे उत्तेजक चयन का अध्ययन ट्रैबासो तथा बोवर(1968) ने किया था। एक बिन्दु का रूप तथा अवस्थिति के दो आयामो वाले सम्बोध तादात्म्यन कार्य मे प्रयोग किया गया। ये दो आयाम सम्बद्ध सकेत थे। इसके अतिरिक्त तीन अन्य असम्बद्ध आयाम भी थे। प्रयोज्यो को 32 सतत शुद्ध प्रयासो के निकर्ष तक प्रशिक्षित किया गया। तत्पश्चात् रूप तथा अवस्थिति के आयामो मे सम्पन्न अधिगम की परीक्षा की गयी। 89 प्रयोज्यो मे से 76 ने केवल एक सम्बद्ध आयाम पर समस्या का समाधान किया। सम्बद्ध आयामो पर किया गया निष्पादन प्रयुक्त नही हुआ। किसी प्रकार के अधिगम का प्रमाण नही मिला। प्रथम परीक्षण मे केवल 51% ही शुद्ध अनुक्रियाये हुई। 13 प्रयोज्य दोनो ही सम्बद्ध आयामो के महत्व को समझने मे सफल रहे तथा प्रथम परीक्षण म 95% शुद्ध अनुक्रिया (दोनो आयामो मे) प्रदर्शित की।

इस प्रायोगिक अध्ययनो से अधिगम के एक व्यापक क्षेत्र मे 'उत्तेजक चयन' के प्रक्रम अस्तित्व की पुष्टि होती है।

उत्तेजक चयन के निर्धारक

विभेदन अधिगम की सफलता उन प्रत्यक्षित उत्तेजको पर निर्भर करती है जिनका उपयोग प्रयोज्य विभेदन कार्य मे करता है। यदि ये उत्तेजक उत्कृष्ट कोटि के हैं तो विभेदन अधिगम सहज रहेगा। इस दृष्टि से विचार करने पर उत्तेजक चयन अप्रत्यक्षत विभेदन अधिगम की सफलता को निर्धारित करता है। उत्तेजक चयन एक स्वतत्र प्रक्रम न हो कर अनेक कारको पर निर्भर करता है। यहाँ पर कुछ प्रमुख कारको की चर्चा की जा रही है।

(1) **सरचनात्मक कारक**—उत्तेजक प्राणी के सवेदकागो के सरचनात्मक स्वरूप प्रमुख रूप से निर्धारित होता है। विभिन्न प्राणियो मे भिन्न-भिन्न सवेदक

---

1 Concept Identification

अग प्रत्यक्षीकरण की दृष्टि से प्रवल होते हैं। *यथा* पक्षियो मे चाक्षुप सवेदना प्रवल होती है।

कुछ प्राणियो मे घ्राणेन्द्रिय प्रवल होती है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक सवेदना मे भी एक क्रमिक परम्परा[1] (सरचना की दृष्टि से) निर्धारित रहती है। यह उत्तेजको के चयन प्रक्रम मे परिलक्षित होती है। उदाहरणार्थ, बिल्ली रगाध होती है और चमक को चुनती है। हारा तथा वोरन (1961) ने यह निष्कर्ष प्राप्त किया था कि विल्लियो के लिए रूप या आकार की अपेक्षा चमक प्रवल सकेत है। रूप और आकार के प्रति विल्लियो ने समान अनुक्रिया की। मैक गोनिगल (1967) ने चूहो मे भी इसी प्रकार का निष्कर्ष प्राप्त किया। इस सन्दर्भ मे किये गये अन्य प्रयोगो मे भी सरचनात्मक कारको द्वारा उत्तेजक चयन के निर्धारण के विपय मे प्रमाण प्राप्त होता है।

(2) **अति प्रशिक्षण**[2]—सामान्य विचारधारा के अनुसार किसी कार्य के अति प्रशिक्षण से उत्तेजक चयन सहज बन जाता है। क्योंकि अति प्रशिक्षण के फलस्वरूप उत्तेजक अवयवो को उत्तेजक नियत्रण का अधिक अवसर प्राप्त होता है। जेम्स तथा ग्रीनो (1967) ने इस अभिनति की परीक्षा की। इन लोगो ने अपने प्रयोज्यो को युग्म साहचर्य के अधिगम का कार्य सम्पन्न करने को कहा जिसमे उच्च साहचर्य वाले अक्षर सार्थक शब्द और निरर्थक अक्षर के मिश्रण से निर्मित उत्तेजक का प्रयोग किया गया। अनुक्रियाओ मे 1 से लेकर 8 तक के अक सन्निहित थे। प्रयोग से यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि अति प्रशिक्षण के अभाव मे युग्म साहचर्य अधिगम प्राय पूर्णत मिश्रित उत्तेजक के सार्थक शब्द भाग पर ही निर्भर था। निरर्थक अक्षर वस्तुत कोई उत्तेजक नियत्रण नही प्राप्त कर सका। 20 अतिप्रशिक्षण प्रयासो मे निरक्षर अक्षर भी अधिक सीमा तक उत्तेजक नियत्रण प्राप्त करने मे सफल रहा। एक अन्य महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह प्राप्त हुआ कि साहचर्य प्रक्रम को विस्तार देने के लिए समस्त सूची का अति प्रशिक्षण आवश्यक होता है।

सदरलैंड तथा होल्मेट (1966) ने चूहो के विभेदन अधिगम पर प्रयोग किया जिसमे चमक तथा चतुर्भुज का अभिविन्यास सहसम्बद्ध सकेत था। वाद के परीक्षण प्रयासो मे यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि अति प्रशिक्षण द्वितीयक सकेतो के विषय मे अधिक ज्ञान वृद्धि के रूप मे फलित हुआ। इन प्रयोगो से स्पष्ट है कि अति प्रशिक्षण से अधिगम की व्यापकता मे अभिवृद्धि होती है।

(3) **पूर्वानुभव का अवदान**—सकेतो की क्षमता पूर्वानुभव मे वृद्धि या कमी के द्वारा घटायी-वढाई जा सकती है। लारेन्स (1949) ने सर्व प्रथम अर्जित सकेत विभेदनीयता का प्रमाण उपस्थित किया। आरम्भिक विभेदन कार्य मे अनुवधी सकेत विपयक आयाम के कार्य करने पर वाद का अनुवधी विभेदन का अर्जन सरल हो गया

---

1 Heirarchy 2 Over training

गया । इस बात का कोई सकेत न था कि पहले के सम्वन्धी आयाम द्वारा विश्वसनीय सूचना स्थानातरणीय कार्य का अर्जन वाधित हुआ ।

सदरलैंड तथा होल्गेट (1966) उत्तेजक-चयन पर पूर्वानुभव का धनात्मक और ऋणात्मक प्रभाव प्रदर्शित करने मे सफल रहे । इनके प्रयोग मे चूहो को पहले अनुवन्धी विभेदन का प्रशिक्षण दिया गया । इसके अन्तर्गत प्रयोज्यो को काले रग के उत्तेजक कार्डों के रहने पर तथा दाँये द्वार की ओर जव उत्तेजक कार्डों का रग सफेद था तव वाये द्वार की ओर कूदना था । एक समूह के लिए रूप वर्ग था तथा दूसरे समूह के लिए रूप चतुर्भुज था । इन रूपो का अभिविन्यास ऊर्ध्वाधार या क्षैतिज था । यह असम्वद्ध था और चमक सम्वन्धित आयाम था । उक्त दोनो समूहो के अतिरिक्त एव नियत्रित समूह भी था जिसे सम्वन्धन विभेदन के विपय मे कोई प्रशिक्षण नही दिया गया । इस स्तर पर 360 प्रयास दिये गये ।

दूसरे स्तर पर तीनो समूहो को 60 या 80 प्रयास समसामयिक विभेदन के दिए गये जिसमे एक श्वेत क्षैतिज चतुर्भुज धनात्मक उत्तेजक था तथा ऊर्ध्वाधार चतुर्भुज ऋणात्मक उत्तेजक था । सदरलैंड तथा होल्गेट की रुचि यह ज्ञात करने मे थी कि प्रथम दो समूहो को प्राप्त अनुभव का चमक या अभिविन्यास के विकल्पो मे से (किसग) दूसरी विभेदन समस्या के समाधान मे प्रयोग करेगा । इसके लिए तीसरे स्तर पर प्रयोग किया गया । जिसमे प्रयोज्यो की उत्तेजको के चार युग्मो पर परीक्षा की गयी । सभी अनुक्रियाये पुरस्कृत हुई । दूसरे स्तर के कार्य के प्रयासो मे 40 पुन प्रशिक्षण प्रयास परीक्षण प्रयासो के साथ सम्मिलित कर लिये गये। भविष्य कथन यह था कि दूसरे स्तर के विभेदन को चमक के आधार पर करने पर प्रयोज्य प्रथम तथा द्वितीय युग्म के प्रति समुचित अनुक्रिया करेगा । क्योकि ये युग्म चतुर्भुज के अभिविन्यास मे एक समान था तथा मात्र चमक मे भिन्न था । चमक सकेत के अभाव के कारण तृतीय तथा चतुर्थ युग्म के साथ सही अनुक्रिया करने मे सफलता की कम सभावना थी ।

प्रयोग का निष्कर्ष इस प्रकार था । प्रथम स्तर का प्रशिक्षण न प्राप्त किये हुए नियन्त्रित समूह ने प्रथम तथा द्वितीय युग्मो के प्रति 72% शुद्ध अनुक्रियाये की तथा तृतीय एव चतुर्थ युग्मो के प्रति 86% शुद्ध अनुक्रियाये की गयी । स्पष्ट ही प्रथम प्रकार के अनुभव के अभाव मे चतुर्भुज का अभिविन्यास प्रवल आयाम था । प्रथम स्तर पर चतुर्भुजो के प्रशिक्षण मे रहित समूह प्रथम और द्वितीय उत्तेजक युग्मो के प्रति 72% शुद्ध और 71% तृतीय और चतुर्थ युग्म के प्रति अनुक्रिया की । प्रथम स्तर पर चमक प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले समूह की तृतीय स्तर की अनुक्रिया अतिरिक्त सकेत प्राप्त करने के लिए सकेत-जन्य अनुक्रिया करने की शक्ति पूव पशिक्षण द्वारा स्थापित होती है ।

प्रयोज्यो ने रग और 'वार' अवयवो के प्रति समान रूप मे आधारभूत अनुक्रिया की तथा शीघ्र ही वार के प्रति अनुक्रिया करना रोक दिया । किन्तु रग के

अवयव के साथ विपरीत व्यवहार प्राप्त हुआ। प्रथम दो सत्रो के बाद प्रयोज्य ने कभी भी उसे मिश्रित उत्तेजक से स्थानान्तरित नही किया। उत्तेजक चयन का प्रमाण बाद के परीक्षण प्रयोगो मे प्राप्त हुआ जिसमे प्रयोज्य 'बार' अवयव के प्रति अनुक्रिया के लिए बाध्य था। इस स्तर पर 40 मे से 20 (प्रतिदिवसीय) प्रयासो मे सामान्य मिश्रित उत्तेजक था। अन्य 10 प्रयासो मे 'बार' अवयव अकेले उपस्थित किया गया तथा संकेत-जन्य अनुक्रिया एक विकल्प था। शेष 10 प्रयासो मे 'बार' के साथ कोई विकल्प न था और फलत प्रयोज्य इस मिश्रित अवयव के आधार पर प्रतिक्रिया करने के लिए बाध्य था। इस प्रयोग मे निष्कर्ष यह प्राप्त हुआ कि प्रयोज्य 'बार' के महत्व के विषय मे कुछ नही सीख सका जबकि आरम्भिक प्रशिक्षण मे उसने मिश्रित डिस्क्रिमिनेण्डा के प्रति अनुक्रिया की थी। फलत 'बार' अवयव के प्रति भी 320 प्रयासो मे अनुक्रिया की थी। इस अवयव को कोई भी उत्तेजक नियन्त्रण नही मिला। प्रयोज्य अकस्मात् (ऊर्ध्वाधार तथा क्षैतिज बार के मध्य) विभेदन विधिवत परिपक्व कर लिया तथा वे बार अवयव को विकल्प उपलब्ध रहने पर मिश्रित उत्तेजक मे स्थानातरित करने मे असफल थे। दूसरे शब्दो मे प्रयोज्य मे रग अवयव के आधार पर अनुक्रिया करने के लिए इच्छा बनी रही।

अण्डरवुड, हेम तथा एक्स्ट्रैण्ड (1962) ने युग्म साहचर्य के मिश्रित उत्तेजको के अधिगम पर प्रयोग किया। एक दशा मे मिश्रण मे कम साहचर्य मूल्य का एक निरर्थक त्र्यक्षर[1] को स्पष्टत विभेद्य रगीन पृष्ठभूमि पर रखा गया था (यथा 'NXA' पीले रग पर स्थित था) अनुक्रिया एक अकेला अक था। दूसरी दशा मे उच्च साहचर्य मूल्य के तीन अक्षर के सार्थक शब्द (यथा 'GAS') का प्रयोग किया गया। उपकल्पना यह थी कि रग को कार्यात्मक उत्तेजक के रूप मे प्रयोग की प्रवृत्ति वैकल्पिक उत्तेजक अवयव की अर्थवत्ता पर निर्भर करता है। इसकी परीक्षा के लिए एक समूह को स्थानान्तरण प्रयास दिये गये जिसमे सश्लिष्ट उत्तेजक का केवल रग अवयव ही उपस्थित किया गया। दूसरे समूह को निरर्थक अक्षर या सार्थक तीन अक्षर का शब्द दिया गया। दोनो दशाओ मे दो नियन्त्रित समूह भी प्रयुक्त थे जिन्हे स्थानान्तरण प्रयासो मे भी मिश्रित उत्तेजक सदा विद्यमान था। सभी दशाओ मे वृद्धि नही हुई। अपितु इन प्रयोज्यो ने चमक के सकेत के प्रति अनुक्रिया की। दूसरे समूह ने प्रथम तथा द्वितीय युग्मो के प्रति 90% शुद्ध प्रतिक्रिया की तथा तृतीय और चतुर्थ युग्म के प्रति 59% शुद्ध अनुक्रिया की। स्पष्ट ही भूतकाल मे अनुभव से सम्बद्ध आयाम ही चुना गया तथा असम्बद्ध आयाम उपेक्षित रहा। ये निष्कर्ष पशुओ तक ही सीमित नही है अपितु बच्चो और वयस्को मे भी प्राप्त हुए हैं। (हाउस्टन 1967)। पूर्वानुभव का महत्व अन्य आयामो की अपेक्षा कुछ विशिष्ट उत्तेजक आयामो की क्षमता की वृद्धि मे सन्निहित है।

---

1 Trigram

(4) पुनर्बलन क्रम[1]—सामान्य विचारधारा के अनुसार व्यवधानयुक्त पुनर्बलन की अपेक्षा सतत पुनर्बलन क्रम उत्तेजक चयन को अधिक प्रोत्साहित करता है। विशेषत जब पुनर्बलन जैविक दृष्टि से महत्वपूर्ण हो। सदरलैंड (1966) ने चूहों को पूर्दन अड्डे पर स्थित पाच चाक्षुष आयामों मे भिन्न दो मिश्रित उत्तेजकों के मध्य विभेदन के कार्य मे प्रशिक्षित किया गया। प्रदत्तों से यह स्पष्ट हुआ कि व्यवधानयुक्त पुनर्बलन चयनात्मक अवधान के सरलीकरण मे परिणत होता है या अधिगम को अधिक व्यापक बना देता है। प्रायोगिक प्रदत्तों से यह भी सिद्ध हो चुका है कि पुनर्बलन क्रम, अतिप्रशिक्षण की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली परिवर्त्य होता है।

ऊपर चर्चित परिवर्त्यों के अतिरिक्त अनेक अन्य परिवर्त्य भी उत्तेजक चयन के प्रक्रम को प्रभावित करते है। पशुओं मे बहुत पहले (लैश्ली, 1912) उत्तेजक चयन क्रम के अस्तित्व के विषय मे अध्ययन किया गया है।

निरीक्षण व्यवहार

अनेक प्रयोगों मे यह तथ्य प्राप्त हुआ है कि चूहे विभेदन समस्या उपस्थित होने पर निरीक्षण तुल्य व्यवहार प्रदर्शित करते है। इस निरीक्षण व्यवहार की सहायता से वे सांवेदिक अन्वेषण[2] करते हैं। चयन बिन्दु तक पहुंचने के पूर्व अन्वेषण विभेदन प्रक्रिया को विशेष रूप मे प्रभावित करता है। मुएनजिगर (1938) ने इस व्यवहार का विधिवत अध्ययन किया तथा इसे प्रतिस्थानिक प्रयत्न त्रुटि[3] की संज्ञा दी है। प्रत्येक प्रयास मे निर्णायक क्षण के पूर्व किये गये परिवर्तनों[4] को गिनकर प्रतिस्थानिक प्रयत्न त्रुटि की गणना की जाती है। त्रिकाफ (1952) ने विभेदन अधिगम मे निरीक्षण व्यवहार की भूमिका के सम्बन्ध मे एक सिद्धान्त उपस्थापित किया है जिसमे निरीक्षण अनुक्रिया को विभेदन उत्तेजक सरूप[5] को प्रयोज्य के प्रभावित करने की अनुमति प्रदान करने वाले प्रक्रम के रूप मे प्रत्यक्षित किया है। इनके अनुसार 'विभेदकोत्तेजकसरूप' की उपस्थिति मात्र निरीक्षण अनुक्रिया पुनर्बलित करती है क्योंकि वह भिन्न-भिन्न प्रकृति के पुनर्बलकों के साथ सम्बद्ध रहता है।

प्रोकेसी (1956) ने E आकार की भूलभुलैया मे चूहों पर किये गये प्रयोग मे ऊपर चर्चित सिद्धान्त के अनुकूल निष्कर्ष प्राप्त किये। भूलभुलैया की दोनों दिशाओं मे 50% प्रयासों मे भोजन विद्यमान था। स्पष्ट ही पुरस्कार की दृष्टि से दोनों ही पक्ष या दिशायें समान थी। इसके अतिरिक्त एक दिशा मे विभेदन संकेत भी विद्यमान थे जो भोजन की उपस्थिति के विषय मे इंगित करते थे। जिस पक्ष मे यह सूचना उपलब्ध थी उस पक्ष के प्रति प्रयोज्यों ने चयनेच्छा प्रदर्शित की।

विभेदन अधिगम और अवधान माडेल

गत कुछ वर्षों मे विभेदन अधिगम के निरूपण के लिए कुछ माडेल विकसित

---

1 Reinforcement schedule 2 Sensory Exploration 3 VTE या Vicarious Trial and Error 4 Shift 5 Discriminanda

किये गये हैं जिन्हे अवधान माडेल की श्रेणी मे रखा जा सकता है। लवज्वाय (1968) ने एक गणितीय माडेल विकसित किया है। इसके अतिरिक्त जीमैन तथा हाउस (1963) ने विभेदन अधिगम का एक माडेल विकसित किया जो ज्यामितीय आकृतियो के विभेदन के प्रायोगिक अध्ययन पर आवृत है। यह माडेल बडा जटिल है तथा सगणको की प्रक्रिया पर आवृत है। ट्रैवेसो तथा बोवर (1968) ने भी एक गणितीय माडेल विकसित किया है जो उत्तेजक चयन विपयक प्रदत्तो की उपयुक्त व्याख्या करने मे समर्थ है। निम्न तथ्यो का विनियोग विभेदन अधिगम के नवीन सिद्धान्त मे अपेक्षित है—

(1) सभी प्रत्यक्षित उत्तेजको का विभेदन मे प्रयोग नही होता है अपितु उनमे उत्तेजक चयन होता है।

(2) अधिक प्रबल होने से कुछ उत्तेजक अपेक्षाकृत अधिक उत्तेजक नियन्त्रण क्षमता प्राप्त कर लेते हैं।

(3) उत्तेजको की विभेदनीयता सरचनात्मक कारको एव अनुभवविपयक कारको से परिष्कृत होती है।

इन अपेक्षाओ की दृष्टि से गणितीय माडेल विभेदन अधिगम को विशिष्ट सिद्धान्त प्रतीत होता है। लवज्वाय ने उत्तेजक चयन को दो भागो मे बाटा है —(1) चयनात्मक नियन्त्रण तथा (2) चयनात्मक अधिगम। जो उत्तेजक प्रयोज्य के व्यवहार को नियन्त्रित करते है उसमे चयन होता है। इसके अतिरिक्त उन सभी उत्तेजको के विपय मे नही सीखता है जो उसके व्यवहार को नियन्त्रित करते हैं अपितु इसमे भी चयनात्मकता विद्यमान रहती है।

उत्तेजको का चयनात्मक नियन्त्रण सरचनात्मक एव पूर्वानुभव विपयक कारको पर निर्भर करता है। चुना गया उत्तेजक आयाम जितना ही विशिष्ट होता है उतनी ही अधिक उसकी नियन्त्रण-क्षमता रहती है। उत्तेजक आयाम का वैशिष्ट्य का आधारभूत स्तर सरचनात्मक कारक पर निर्भर करता है किन्तु बाद मे उस आयाम के साथ अनुभव और अभ्यास से उसके वैशिष्ट्य मे वृद्धि होती है।

कृत्रिम विभेदक उपकरणो तथा मानव विभेदन के माडेल की कार्य विधि की तुलना बडी रोचक एव लाभप्रद सिद्ध हुई है। विशिष्ट विभेदन की समस्याओ के समाधान के निमित्त सगठक कार्यक्रम तैयार किये जाते है। प्रात्यक्षिक एव प्रत्यक्ष विपयक सरूपो का वुद्धि कार्यक्रम की सहायता से अध्ययन किया गया है। इनका निर्माण उसी प्रकार की समस्याओ के समाधान के लिए किया गया है जिस प्रकार की समस्यायें साधारण मानव जीवन मे सुलझानी पडती हैं। उदाहरणार्थ, सेल्फरिज (1960) का पैन्डमोनियम तथा हट (1968) का प्रत्यय अधिगमक। ये दोनो ही कार्यक्रम विभेदन अधिगम के सकेतन सिद्धान्त के अनुरूप है। अत स्थापन को गुणो के समूह के रूप मे साकेतिक किया जाता है तथा अनुक्रियाओ के पक्षो के विशिष्ट

सरूपो से सम्बद्ध किया जाता है। इन सबका कार्य यह है कि ये निश्चित वहि स्थापन को उत्तेजक के सकेतवद्ध[1] रूप से सम्बद्ध करते है।

सहायक ग्रन्थ सूची

अन्डरवुड, बी जे हेम, एस तथा एक्स्ट्रेन्ड, बी — क्यू सेलेक्शन इन पेयर्ड एसोशियेट लर्निग, ज एक्स साइकालोजी, 1962 एव 1964

अन्डरवुड, बी. जे — स्टिमुलस सेलेक्शन इन वर्बल लर्निग, सी एन कोफर तथा बी एस मुसग्रेव द्वारा सम्पादित वर्बल विहेवियर एण्ड लर्निंग प्रावलम्स एण्ड प्रासेसीज मे प्रकाशित, मेकग्राहिल्ल न्यूयार्क

एहरेन्फड, डी ए — स्टडी आफ दि ट्रान्सपोजीशन गेडिण्ट्स ज एक्स साइकालोजी, 1952

कॅडलर, एच एच तथा कॅडलर, टी एल — वर्टिकल एण्ड होरिजाटल प्रासेसीज इन प्रावलम साल्विग, साइका रिव्यू, 1962, 69

केडलर टी एस — ऐन एक्सपेरिमेटल इन्वेस्टीगेशन आफ ट्रान्सपोजीशन ऐज ए फक्शन आफ दि डिफरेन्स विटवीन ट्रेनिग एण्ड टेस्ट स्टिमुली, ज एक्स साइकालोजी, 1950

केर्पेलमैन, एल सी — प्रिएक्सपोजर टु विजुअली प्रेजेन्टेड फार्म्स एण्ड नान डिफेरेंशियल रीइन्फोर्समेट इन परसेप्चुअल लर्निग, ज एक्स साइकालोजी, 1965 69

क्रेचवेस्की, आई — हाइपोथेसिस इन रेट्स, साइकालोजी रिव्यू, 1932, 38

कोफ्फा, के — प्रिसिपिल्स आफ गेस्टाल्ट साइकालोजी, हारकोर्ट प्रेस न्यूयार्क, 1935

प्राइस, जो ई — विजुअल डिस्क्रिमिनेशन लर्निग विथ साइमल्टनियस एण्ड सक्सेसिव प्रजेन्टेशन आफ स्टिमुली, ज कम्प ए फिजियो साइकालोजी, 1949

गिब्सन जे जे तथा गिब्सन, इ जे — परसेप्चुअल लर्निग, डिफरेन्शिएशन आर इरिचमेट साइका रिव्यू 1955, 62

[1] Coded

चेरी, इ सी एम — एक्सपेरिमेंट्स आन दि रिकाग्निशन आफ स्पीच विथ वन एण्ड विथ टू इयर्स ज. एकाउस्टिक सोसाइटी, अमेरिका, 1953

जोमैन, डी तथा हाउस, बी जे — दि रेल आफ अटेन्शन इन रिटार्डेड डिस्क्रिमिनेशन लर्निंग, एन आर एलिस द्वारा सम्पादित हैण्डबुक आफ मेंटल डेफिसिएन्सी, मैकग्राहिल, न्यूयार्क में प्रकाशित, 1963

जेम्स, सीटी तथा ग्रीनो, जी स्टिमुलस सेलेक्शन ऐट डिफरेंट स्टेजेज आफ पेयर्ड एसोशिएट लर्निंग, ज एक्स साइकालोजी, 1967

टीड, टी जे — ऐफेक्ट आफ ओवर ट्रेनिंग आन रिवर्सल एण्ड एक्स्ट्रा डाइमेन्सनल शिफ्ट्स ज एक्स साइकालोजी, 1965, 70

ट्रीजमैन, ए एम — सेंसारी स्केलिंग एण्ड दि साइकोफिजिकल ला, क्वा ज एक्स साइकालोजी, 1964

ट्रीजमैन, ए एम — कांटेक्चुअल क्यूज इन सेलेक्टिव लिसनिंग, क्वा, ज एक्स साइकालोजी, 1960

ट्रैवासो, टी तथा बोवर, जी एस — अटेंशन इन लर्निंग थियरी एण्ड रिसर्च न्यूयार्क वीलि प्रकाशन, 1968

ट्रीजमैन, ए — सिलेक्टिव अटेंशन इन मैन, ब्रिटिश मेडिकल बुलेटिन, 1964

टेरेस, एच एस — स्टिमुलस कंट्रोल डब्ल्यू के हेनिंग द्वारा सम्पादित आपरेंट बिहेवियर एरियाज आफ रिसर्च एन्ड एप्लीकेशन, न्यूयार्क, एपलेटन सेंचुरीज क्राफ्ट्स, 1966

डी एमेटो, एम आर — डाइरेक्ट प्रोग्रेमिंग आफ मल्टिपिल स्टिमुली दि टेप ब्लाक रीडर, ज आफ दि एक्सपेरिमेंटल एनेलिसिस आफ बिहेवियर, 1961

डी एमेटो, एम आर तथा फेंजारी जे — अटेंशन एण्ड क्यू प्रोड्यूसिंग बिहेवियर इन दि मंकी, ज आफ एक्स एनेलिसिस आफ बिहेवियर, 1966

डाल, जे जे तथा थामस, डी आर — एफेक्ट्स आफ डिस्क्रिमिनेशन ट्रेनिंग आन स्टिमुलस जेनरलाइजेशन इन ह्यूमन सलेक्ट्स ज आ एक्स साइकालोजी, 1967

थामस, डी आर तथा डे, कैंथिटो	ए रोल आफ स्टिमुलस लेवलिंग इन स्टिमुलस जेनरलाइजेशन ज एक्स साइकालोजी, 1966
निस्सेन, ए डब्ल्यू तथा जेना-किन्स, डब्ल्यू ओ	रिडक्शन एण्ड रिवैलरी आफ क्यूज इन दि डिस्क्रि-मिनेशन विहेवियर आफ चिम्पाजीज ज कम्प ए फिजियो साइकालोजी, 1935
प्रोकेसी, डब्ल्यू एफ	दि एक्विजिशन आफ आब्जर्विंग रिसपान्सेज इन दि ऐवसेन्स आफ डिफरेशियल एक्सटर्नल इन्फोर्स-मेट ज आफ कम्प एण्ड फिजियो साइकालोजी, 1965
बेंकर, आर ए तथा लारेन्स, डी एच	दि डिफरेन्शियल एफेक्ट्स आफ साइमेल्टनियस एण्ड सक्सेसिव प्रेजेन्टेशन आन ट्रान्सपोजीशन ज कम्प एण्ड फिजियो साइकालोजी, 1956
ब्राडवेंट, डी ई ग्रिगोरी, एम	डिवीजन आफ अटेशन एण्ड दि डिसीजन थियरी आफ सिग्नल डिटेक्सन प्रोसीडिंग्स आफ दि रायल सोसाइटी, 1923
ब्राडवेंट, डी ई	परसेप्शन एण्ड कम्यूनिकेशन पर्गमैन प्रेस न्यूयार्क, 1958
मेक् कुलाश, टी एल तथा प्रेट, जे जी	ए स्टडी आफ दि प्रिसाल्यूशन पीरियड इन वेट डिस्क्रिमिनेशन वाइ ह्वारट गैट्स ज कम्प फिजियो साइकालोजी, 1934
मोरे, एन अटेशन	इन डाइकोटिक लिसेनिंग अटेन्टिव क्यूज एण्ड दी इन्फ्लूएन्स आफ इस्ट्रक्शन क्वा ज एक्स साइकालोजी, 1959
मोरे, एन तथा ओब्रीन टी	सिग्नल डिटेक्शन थियरी एप्लायड टू सिलेक्टिव लिसेनिंग ज आफ एकाउस्टिकल सोसाइटी आफ अमेरिका, 1967
मैकगोनिगल, वी	स्टिमुलस एडिटिविरी एण्ड डामीनेस इन विजुअल डिस्क्रिमिनेशन परफोरमेस वाइ हैट्स ज कम्प ए फिजियो साइकालोजी, 1967
मुउनजिगर, के एफ	विकेरियस ट्रायल एण्ड एरर ऐट ए प्वाइट आफ वायस ए जनरल सर्वे आफ इट्स 19 लेशन टू लनिंग एफीसियेन्सी ज जेनटिक साइकालोजी, 1938

लासन, इ ए	डिसीजन्स कन्सर्निंग दि रिजेक्टेड चैनेल क्वा एक्स साइकालोजी, 1966
लवज्वाय, ई	अटेंशन एण्ड डिस्क्रिमिनेशन लर्निंग ए प्वाइंट आफ व्यू एण्ड ए थियरी होल्डेन डे सेन फ्रासिस्को, 1965
लोरेंस, डी एच	एक्वायर्ड डिस्टिंक्टिवनेस आफ क्यूज ट्रान्सफर बिटवीन डिस्क्रिमिनेशन आन दि बेसिस आफ फेलियर्टी विथ दि स्टिमुलस, ज एक्स साइकालोजी, 1949
लोरेंस, डी एच.	सिलेक्टिव एसोशिएशन इन ए कास्टेन्स सिचुएशन ज एक्स साइकालोजी, 1950
लोरेंस, डी एच तथा डे, रोवेरा	जनरल एवीडेन्स फार रिलेशनल डिस्क्रिमिनेशन ज कम्प ए फिजियो साइकालोजी, 1954
लैश्ली, के एस	विजुअल डिस्क्रिमिनेशन आफ साइज एण्ड फार्म इज दि एलबीनो रेट्स ज आफ एनिमल बिहेवियर, 1912
लैश्ली, के एस	ऐन इग्जामिनेशन आफ दि कंटिन्यूटी थियरी ऐज एप्लायड टू डिस्क्रिमिनेशन लर्निंग ज जेनटिक साइकालोजी, 1942
लैश्ली, के एस तथा वेड, एम	पैवलावियन थियरी आफ जेनरलाइजेशन साइका रिव्यू, 1946
लियरी, आर डब्ल्यू	एनैलिसिस आफ सिरियल डिस्क्रिमिनेशन लर्निंग बाइ मकीज ज आफ कम्प ए फिजियो साइका, 1965
वाक, आर डी गिब्सन	ई जे पिक, एच एल टीथ, जे जे दि एफैक्टिवनेस आफ प्रोलाग्ड एक्सपोजर टू कट आउट्स वर्सेज पेन्टेड पेटर्नस फार फेसिलिटेशन आफ डिस्क्रिमिनेशन ज कम्प एण्ड फिजियो साइका 1959
विकाफ, एल वी	दि रोल आफ आब्जर्विंग रिसपान्सेज इन डिस्क्रिमिनेशन लर्निंग पार्ट्स साइकालोजी रिव्यू 1952, 59

विटरमैन, एम ई तथा कोट, डब्ल्यू वी	सम न्यू एक्सपेरिमेंट्स आन दि नेचर आफ डिस्क्रिमिनेशन लर्निंग इन दि रेट ज कम्प एण्ड फिजियो साइका, 1950
सेलफरिज, ओ जी तथा नीसेर, यू	पैटर्न रिकाग्निसन बाइ मशीन, साइन्टिफिक अमेरिकन, 1960
सदरलैंड, एन एक्स	स्टिमुलस ऐनालाईजिंग मिकैनिजम्स, प्रोसीडिंग्स आफ सिम्पोजियम दि मिकेनाइजेशन अप थाट प्रासेसीज खड 2 लदन, एच एम स्टेशनरी आफिस, 1959
सदरलैंड, पार्शियल	रीइन्फोममेट एण्ड ब्रेड्थ आफ लर्निंग क्वा ज एक्स साइका 1966
सदरलैंड, होलगेट	वी टू क्यू डिस्क्रिमिनेशन लर्निंग इन रैट्स ज कम्प फिजि साइका 1966
स्पेन्स, के डब्ल्यू	दि नेचर आफ डिस्क्रिमिनेशन लर्निंग इन एनिमल्स साइका रिव्यू, 1936
स्पेन्स, के डब्ल्यू	दि डिफरेंशियल रिसपान्स इन एनिमल्स टू स्टिमुल वैरीइग विदिन ए सिंगिल डाइमेशन साइका रिव्यू 1937
स्पेन्स, के डब्ल्यू	एनालिसिस आफ फमेशन आफ विजुअल डिस्क्रिमिनेशन हैविट्स इन दि चिम्पाजो ज कम्प. फिज साइका 1937
हाउस्टन, जे पी	स्टिमुलस सेलेक्शन ऐन इनफ्लूएन्स वाई डिग्रीज आफ लर्निंग अटेशन, प्रायर असोसिएसन एण्ड एक्सपेरिमेटम विथ दि स्टिमुलस कम्पोनेंटस ज एक्स साइका
हार्लो, एच एफ.	दि फामशन आफ लर्निंग सेट्स साइका रिव्यू, 1949, 56
हल्ल, सी एल	प्रिंसिपिल्स आफ विहेवियर न्यूयार्क एप्पल्टन सेंचुरी क्रैफ्टस, 1943
हट, इ वी कान्सेप्ट लर्निंग	ऐन इन्फार्मेशन प्रासेसिंग प्राबलेम, वीलि, न्यूयार्क, 1968

अध्याय 9

शाब्दिक अधिगम व धारणा

शाब्दिक अधिगम

स्वभाव निरूपण

प्रायोगिक सामग्री

शाब्दिक अधिगम के निर्धारक

प्राथमिक परिवर्त्य

1 (अ) बारम्बारता

(ब) नवीनता

(स) स्मृति विस्तार

(द) अध्ययन सम्बन्धी वरीयताएँ

2 सार्थकता

3 सूचीगत समानता

गौण परिवर्त्य

प्रेरण एव सवेग

शाब्दिक अधिगम की विधियाँ

क्रमिक अधिगम विधि

क्रमिक स्थिति वक्र

दूरस्थ सहचर्य

युगल सहचर्य विधि

उद्बोधन व पूर्वानुमान विधि

अधिगम समय विधि

धारणा व विस्मरण

स्वरूप

धारणा वक्र

धारणा के प्रकार

अल्पकालिक स्मृति

दीघकालिक स्मृति

धारणा मापन की विधियाँ

प्रत्याह्वान

प्रत्यभिज्ञा या पहचान

पुन अधिगम
पुन रचना
विस्मरण को प्रभावित करने वाले परिवर्त्य
अधिगम की मात्रा
अधिगम सामग्री का स्वरूप
साथकता
सामग्री की मात्रा
कायगत समानता
अभ्यास का वितरण
अन्य अधिगम द्वारा धारणा मे बाधा
अग्रोन्मुख एव पृष्ठोन्मुख बाधा
पृष्ठोन्मुख बाधा को प्रभावित करने वाले परिवर्त्य
अन्तर्वेशी व मूल अधिगम मे समानता
अन्तर्वेशी अधिगम की मात्रा
अन्तर्वेशी अधिगम सामग्री की मात्रा
अन्तर्वेशी अधिगम प्रस्तुत करने का समय
धारणा विश्राम मे क्रियाशीलता का अ तर
पृष्ठोन्मुख बाधा का द्वितत्व सिद्धान्त
बाधा सिद्धान्त-समीक्षा

शाब्दिक अधिगम व धारणा

शाब्दिक अधिगम

स्वभाव निरूपण

व्यक्ति जीवन मे केवल गत्यात्मक क्रियायें व पेशीय निपुणतायें ही अर्जित नही करता है, वल्कि वाचिक कुशलतायें भी अर्जित करता है। गत्यात्मक क्रियाये तो पशु भी कर लेते है। मनुष्य और पशु मे सबसे महत्वपूर्ण अन्तर मनुष्य की वोल लेने की योग्यता और दूसरे के द्वारा बोली गई ध्वनियो का अर्थ समझ लेने के कारण है। सच तो यह है कि उसका अधिकाश अधिगम वाचिक है व भापा (जिसमे लिखित शब्द, उच्चारित वाणी, अक, सकेत इत्यादि सम्मिलित है) के माध्यम से होता है। मनुष्य जो कुछ भी दूसरे व्यक्तियो या पुस्तको से प्राप्त करता है वह अधिकतर शब्दो के माध्यम से होता है। शब्द वस्तुओ, तथ्यो, सम्बोधो तथा उनके सम्बन्धो को व्यक्त करते है। शाब्दिक अधिगम से हमारा तात्पर्य शाब्दिक सामग्री या भापा की मूलभूत इकाइयो (शब्द, निरर्थक पद, सख्या आदि) के अधिगम से है। शब्दो की सूची, निरर्थक पदो, अको का सीखना व इनके द्वारा व्यक्त तथ्यो का अधिगम शाब्दिक अधिगम कहलाता है। शाब्दिक अधिगम को प्राय अनुबन्धन, भूलभुलैया अधिगम व प्रत्यक्षात्मक क्रियात्मक अधिगम से भिन्न समझा जाता है।[1]

यदि व्यक्ति के सम्पूर्ण दिन के व्यवहार का अकन किया जाय तो यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि शाब्दिक व्यवहार की प्रधानता असदिग्ध है। मनुष्य के व्यवहार मे इस शाब्दिक प्रधानता को ध्यान मे रखते हुए स्वाभाविक ही है कि शाब्दिक अधिगम का प्रयोग सम्मत अध्ययन किया जाय।

यद्यपि शिकागो व कोलम्बिया प्रकार्यवादियो का कार्य, शाब्दिक अधिगम-सम्वन्धित अध्ययन का प्रारम्भ माना जा सकता है, किन्तु 1950 के पूर्व का कार्य कुछ अपवादो को छोडकर महत्वपूर्ण नही रहा, अत विशेष उल्लेखनीय नही है।

सम्प्रति विगत वर्षों मे मनोवैज्ञानिक शोध भण्डार मे शाब्दिक अधिगम सम्बन्धी शोध की मात्रा मे नाटकीय वृद्धि आश्चर्यजनक नही लगती है। प्रसिद्ध अधिगम सिद्धान्तकार जो पहले अधिगम के विभिन्न क्षेत्रो मे शोध सलग्न थे आज शाब्दिक अधिगम की ओर आकर्पित हैं।

---

1 चैपलिन डिक्शनरी आफ साइकालोजी पृ० 524

शाब्दिक अधिगम के प्रति इस आकर्षण के तीन कारण हैं —

(1) मानव के व्यवहार मे शाब्दिक प्रधानता मनुष्य को अद्वितीयता प्रदान करती है। शाब्दिक व्यवहार के कारण मनुष्य अद्वितीय है। पशु न भाषण देते है न टेलीफोन करते हैं, न किताब पढते है।

(2) मानवी अधिगम के एक सफल प्रतिनिधि के रूप मे, मानवी अधिगम की सामान्य व्याख्या प्रस्तुत करने के लिये शाब्दिक अधिगम को प्रत्यक्षात्मक-क्रियात्मक अधिगम से भिन्न समझा जाता है। यद्यपि इस सभावना को बिल्कुल ही अस्वीकार नही किया जा सकता है क्योकि शाब्दिक अधिगम के महत्व व माध्यम को अस्वीकार कर प्रत्यक्षात्मक-क्रियात्मक[1] अधिगम के आधार पर मानवी अधिगम की व्याख्या हो सकती है। इस ओर भी प्रयोगात्मक मनोवैज्ञानिक सचेष्ट हैं। उदाहरण के लिए, पलक अनुबधन[2] के सदर्भ मे इस ओर कुछ प्रगति हो रही है (स्पेन्स 1966), किन्तु मानवी प्रत्यक्षात्मक-क्रियात्मक अधिगम के आधार मे शाब्दिक तत्व के महत्व को स्पष्ट रूप से स्वीकार करना सरल व सगत लगता है। वाचिक अधिगम मे यदि कोई प्रत्यक्षात्मक तत्व है तो वह प्रभावहीन है जैसाकि अन्डरवुड (1964 अ) के प्रयोग से स्पष्ट है।

इस प्रयोग मे कालेज के विद्यार्थियो के समक्ष शाब्दिक इकाइयाँ जो उच्चारण की सरलता की दृष्टि से विभिन्न थी, प्रस्तुत की गयी। बाद मे प्रत्याह्वान कागज के टुकडे पर लिखकर किया गया। गत्यात्मक सलग्नता मे रुकावट पहुँचाने के लिए कुछ प्रयोज्यो के मुँह मे जीभ दबाने वाला यन्त्र लगा दिया गया और जब किसी पद को प्रस्तुत किया जाता था तो उस यन्त्र को दबा दिया जाता था। शेष प्रयोज्यो की जीभ पर यन्त्र नही रखा गया। प्रयोग का परिणाम आश्चर्यजनक रहा। उन प्रयोज्यो ने जिनकी जीभ दबायी गयी थी उतने ही पदो का प्रत्याह्वान किया जितना कि अन्य प्रयोज्यो ने, जिनकी जीभ नही दबायी गयी थी। इससे यह भी स्पष्ट हुआ कि क्लिष्ट उच्चारण वाले पदो का मन्द अधिगम, जीभ के तालू पर होने वाली क्रियात्मक कठिनाई का प्रत्यक्ष परिणाम नही है। इसके स्थान पर यह हो सकता है कि इसका कारण कही और सम्भवत केन्द्रीय स्नायुमडल मे घटित होने वाली प्रक्रिया हो।

(3) शाब्दिक अधिगम से प्राप्त सिद्धान्तो की सार्थकता व सम्बद्धता विस्तृत उपयोग रखती है, एव इससे नई सभावनाओ के द्वार खुल सकते है।

प्रायोगिक सामग्री—मुख्य रूप से कालेज के विद्यार्थियो पर किये जाने वाले अधिगम के प्रयोगो की साम्ग्री के रूप मे भाषा की आधारभूत इकाइयाँ, अक्षर व सख्याओ का उपयोग किया जाता है। प्रयुक्त वाचिक सामग्री को सुविधा की दृष्टि से दो श्रेणियो—(1) सार्थक व (2) निरर्थक मे बाँटा जा सकता है।

---

1 Perceptual motor 2 Eye-lid conditioning

(1) **सार्थक सामग्री**—इसमे सज्ञायें, विशेषण, क्रियायें, नाम की श्रेणियाँ, गद्यांश, कवितायें व कहानियाँ इत्यादि सम्मिलित की जा सकती है।

(2) **निरर्थक सामग्री**—इसमे तीन व्यजन पद (जैसे—र ढ ट) या ऐसे ही दो अथवा चार व्यजन वाले समुच्चय पद सम्मिलित है। उदाहरण के लिए, यहाँ निरर्थक पदो की चर्चा की जायगी।

निरर्थक पद[1]—मनोविज्ञान मे इनके निर्माण का श्रेय हरमैन एविंगहास (1885) को है। मनोविज्ञान मे प्राय निरर्थक पद से हमारा तात्पर्य तीन अक्षर वाले उस समुच्चय से होता है जिसमे दो व्यजनो के मध्य मे एक स्वर होता है और उनका शब्दकोष मे कोई अर्थ नही मिलता है।

उदाहरणार्थ हिन्दी मे[2], ज अ म, द इ ट, और अँग्रेजी मे BEJ, FUP।

एविंगहास ने अंग्रेजी मे 2300 ऐसे निरर्थक पदो का निर्माण किया था जिनका साहचर्य मूल्य 20 प्रतिशत था। निरर्थक पदो का प्रयोग किये जाने के पीछे एक विशेष प्रयोजन था। ये पद सवेगात्मक दृष्टि से उदासीन समझे जाते हैं क्योकि इनमे जुडे हुए बहुत कम सहचर्य होते हैं। एविंगहास के निरर्थक पदो के तीन लाभ थे—

(1) गद्य या पद्य की तुलना मे सभी निरर्थक पदो की कठिनाई एक समान थी।

(2) 2300 निरर्थक पदो को कई प्रकार से एक-दूसरे से मिलाकर बहुत से पदो के समूह बनाये जा सकते है।

(3) अधिगम की सामग्री की मात्रा (सूची) को भी प्रभावपूर्ण ढग से घटाया-बढाया (परिचालित) जा सकता है।

एविंगहास द्वारा चुनी गयी सूचियाँ दो बातो मे भिन्न थी—(1) सार्थकता, (2) सूचिगत समानता।

किन्तु अब निरर्थक पदो को उतने बहुतायत से उपयोग नही किया जाता है, क्योकि हमारी रुचि सहचर्यों के निर्माण मे एक प्रभावशाली तत्व के रूप मे कार्य करने वाली सहचर्यात्मक प्रक्रम (प्रक्रियाओ)[3] मे है (पोस्टमैन 1968 ब)। अब शब्दो, अक्षरो या सख्याओ का अधिक उपयोग होता है। शब्दो का अधिगम कठिनाई से होता है और प्रयोग से अधिगम पर, इस कठिनाई के प्रभाव को और सभी सहचर्य के प्रभाव को पृथक नही किया जा सकता है। वाचिक अधिगम के प्रयोग मे अब परिचित सामग्री का अधिक उपयोग किया जाता है (डीज 1961)।

---

1 Nonsense syllables 2 Indian Psychological Review मे प्रकाशित श्री पी० एस० पन्ढारीपान्डे के अध्ययन से, जुलाई 1967 3 Associational processes

मिलर व सेलफ्रिज (1950) द्वारा निर्मित सामग्री निरर्थक सामग्री का एक विशिष्ट उदाहरण है। इसमे ऐसी वाचिक सामग्री है जो वास्तविक भाषा से मात्रा वाली समानता रखती है अर्थात् वास्तविक भाषा का रूप नही रखती है। समानता की मात्रा मे विभिन्नता के आधार पर उनका निर्माण होता है।

उपरोक्त सम्बन्ध मे एक चेतावनी देना आवश्यक है। सार्थक व निरर्थक सामग्री का वर्गीकरण केवल अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से ही किया जाना चाहिए क्योंकि यह कहना भ्रामक होगा कि निरर्थक पद का कोई अर्थ ही नही होता है। निरर्थक पदो के इस पक्ष की चर्चा आगे 'वाचिक अधिगम मे सार्थकता' के अन्तर्गत की जायेगी।

वाचिक अधिगम की प्रायोगिक सामग्री का वर्गीकरण यदि हम करना चाहे तो यह दृष्टि उपयोगी होगी कि हम सार्थक व निरर्थक पद के बीच स्पष्ट भेद न करे एव उन सामग्रियो के बीच विभेद करें जो कि प्रयोज्य को अपने पहले के अधिगम से लाभान्वित करती है (धनात्मक स्थानान्तरण) और वह सामग्री, जो ऐसा लाभ नही पहुँचाती है।

शाब्दिक अधिगम के निर्धारक—शाब्दिक अधिगम को निर्धारित करने वाले प्रमुख निर्धारक निम्नलिखित है—

(अ) प्राथमिक परिवर्त्य —

(1) शाब्दिक स्मृति प्रणाली[1] की विशेषतायें
(अ) बारबारता (आवृत्ति)[2] (ब) नवीनता[3] (स) स्मृति विस्तार[4] (द) अध्ययन सम्बन्धी वरीयतायें[5]।

(2) सामग्री की सार्थकता

(3) सूचीगत समानता

(ब) गौण परिवर्त्य—

(4) प्रेरण व सवेग

1—**(अ) बारबारता (आवृति)**—शाब्दिक स्मृति प्रणाली मे शब्दो का भण्डार रहता है। कोई भी सामग्री यदि उपलब्ध हो सकेगी तो वह इस बात पर निर्भर करेगी कि उसका पहले कितनी बार अनुभव किया जा चुका है अर्थात् किसी भी वाचिक पद, शब्द या वाक्य इत्यादि का उपलब्ध होना उस सामग्री के व्यक्ति द्वारा अनुभव किये जाने की आवृति (बारबारता) पर निर्भर करेगा।

अण्डरवुड व शुल्ज (1960) ने स्मृति प्रणाली मे बारबारता से सम्बन्धित प्रमाणो की चर्चा करते हुए यह उपकल्पना[6] (स्पिऊ हाइपोथिसिस) दी है कि वाचिक

---

1 Verbal memory system 2 Frequency 3 Recency 4 Memory span 5 Study preferences 6. Spew hypothesis

इकाइयों की उपलब्धि का क्रम प्रत्यक्ष रूप से इकाइयों के अनुभव की बारबारता (आवृत्ति) से जुडा हुआ है अर्थात् वे इकाइयां शीघ्रता से उपलब्ध होती है जिनका अनुभव कई बार किया जा चुका है।

स्मृति प्रणाली की नियमितता से सम्बन्धित एक और महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि वाचिक इकाइयों के अधिगम मे व्यक्ति काफी सफलता के साथ अपने अधिगम की गति की भविष्यवाणी कर सकता है। उदाहरणार्थ अण्डरवुड (1966 व) तीन अक्षर की वाचिक इकाइयों के लिए प्रयोज्यो द्वारा अनुमानित अधिगम की दर व वास्तविक दर के बीच 92 का सहसम्बन्ध दर्शाता है।

(ब) **नवीनता**—प्रयोज्य मे पायी जाने वाली एक प्रवृत्ति प्रयोज्य को अधिगम की जा रही सूची से बाहर के किसी पद को बताने की गलती नही करने देती है। यह उपकल्पनात्मक 'चयनकारी यन्त्रन्यास"[1] द्वारा निर्धारित होती है। (अण्डरवुड व शुल्ज 1960), जो कि नवीनता पर निर्भर करता है।

एक सूची मे से जब प्रयोज्य को 12 अक्षर एक मिनट के लिए दिखाये जाते हैं तो कभी वह ऐसा अक्षर वाद मे नही बतलाता है, जो कि पहले सूची मे न था। अण्डरवुड (1964 म, पृष्ठ 58) एक अप्रकाशित अध्ययन उद्धृत करता है जिसमे कि 30 प्रयोज्यो ने 15 प्रयासो के अभ्यास मे 1425 त्रुटियाँ की। इनमे से केवल अपने सामान्य प्रयोग मे आने वाले शब्दो के 16 जोडे की एक त्रुटि ऐसी थी जिनमे कि उस शब्द को प्रयोज्य ने बताया जो सूची मे नही था। स्पष्ट है कि केवल वे ही प्रतिक्रियायें सामने आती हैं जिनका कि प्रयोज्य चयन कर लेता है। और चयन मे नवीनता (अनुभव की ताजगी) का महत्वपूर्ण स्थान रहता है।

एक दृष्टि से देखा जाय तो यह चयनकारी यन्त्रन्यास प्रयोज्य मे एक विन्यास[2] उत्पन्न कर देता है ताकि वह पदो की ढेरी मे से कुछ पर ही अपना चुनाव कर सके। उस पद को दर्शाने के बाद पुनरावृत्ति के बीच के समय की अवधि ज्यो-ज्यो बढती जाती है त्यो त्यो यह विन्यास भी धुंधला होता जाता है। पोस्टमैन, स्टार्क, व फ्रेसर (1968) ने सुझाव दिया कि विस्मरण पर बाधाओ के पडने वाले प्रभाव को समझने के लिए इस 'चयनकारी-यन्त्रन्यास' को महत्व दिया जाय।

सक्षेप मे, हम कह सकते हैं कि स्मृति प्रणाली मे नवीन अधिगमित पदो की सीमित उपलब्धता की प्रवृत्ति पायी जाती है, अर्थात् वाचिक पद भण्डार मे से चुनकर वे पद शीघ्रता से प्रयोज्य को उपलब्ध हो जाते हैं जिन्हे कि उसने थोडी देर पहले ही सीखा हो। अर्थात् नए सीखे गये पद शीघ्रता से उपलब्ध होते हैं।

(स) **स्मृति विस्तार**—तत्काल यदि प्रयोज्य से कुछ पदो को (जैसे सख्याओ को) दुहराने के लिए कहा जाय तो दुहराये गये पदो की सीमा अधिक नही होगी। अर्थात् व्यक्ति मे स्मृति का विस्तार सीमित होता है। मिलर (1956) इन

---

1 Selector mechanism 2 Set

सीमित उपलब्ध पदो की सूचनाओ को एक बँधे हुए गुच्छे[1] के रूप मे देखना उचित समझता है। यह स्मृति विस्तार विभिन्न प्रकार की सामग्रियो (जैसे, सख्याये, निरर्थक पद, अक्षर इत्यादि) के लिए भिन्न-भिन्न होता है। 1950 के उत्तरार्द्ध मे प्राय इतनी लम्बी सूचियो का प्रयोग किया जाता था जो कि प्रयोज्यो की अधिकतम स्मृति विस्तार से लम्बी होती थी। तब कोई भी प्रयोज्य पूरी सूची याद न कर पाता था किन्तु जैसे-जैसे अल्पकालिक स्मृति[2] व दीर्घकालिक स्मृति प्रक्रियाओ मे विभेद किया जाने लगा, वैसे-वैसे स्मृति विस्तार से बडी सूची बनाने का कार्य कम कर दिया गया एव उस पर शोध कार्य प्रारम्भ हो गया (देखिये दीर्घकालिक स्मृति व अल्पकालिक स्मृति का विवेचन)।

सक्षेप मे, हम यह कह सकते हैं कि वाचिक स्मृति प्रणाली की यह एक विशेपता है कि बिखरे हुए पदो की सख्या, तात्कालिक उपलब्धता, सीमित होती है।

(द) **अध्ययन सम्बन्धी वरीयताएँ**—स्मृति प्रणाली की एक और महत्व-पूर्ण विशेपता है कि प्रयोज्य कुछ सामग्री का अध्ययन करने मे रुचि लेता है और अन्य मे रुचि नही लेता है। कुछ सामग्री को वह अपने अध्ययन मे अन्य सामग्री की तुलना मे अधिक वरीयता प्रदान करता है (अन्डरवुड 1964, पृ० 67-68)। किन्तु इसका अर्थ कदापि यह नही है कि प्रयोज्य उस सामग्री को पहचान लेगा जिसका अधिगम वह तेजी से करता है। यदि मिलती-जुलती सख्याओ या अक्षरो के जोडो को प्रयोज्य के समक्ष प्रस्तुत किया जाय तो वह पहले मेल खाने वाले जोडो का अधिगम पसन्द करेगा (पोस्टमैन व राइली–1957)। यद्यपि यह सत्य है कि ये जोडे अधिगम की दृष्टि से अन्य जोडो की तुलना मे किसी भी तरह से सरल नही थे।

अध्ययन सम्बन्धी इन वरीयताओ का कारण भापा सम्बन्धी आदतें, सौन्दर्यात्मक या प्रत्यक्षात्मक वरीयताएँ हो सकती है जो कि परवर्ती शोध का अच्छा विपय है।

(2) **सार्थकता**—सार्थकता से हमारा तात्पर्य सामग्री की अर्थपूर्णता से है। वाचिक अधिगम को प्रभावित करने वाले सभी परिवर्त्यों मे प्रयुक्त सामग्री की सार्थ-कता सबसे महत्वपूर्ण है। किसी दी हुई वाचिक इकाई (यथाशब्द) की सार्थकता दो बातो से जानी जाती है

1—उस इकाई द्वारा एक साहचर्य उत्पन्न करने मे लिया दिया गया समय।

2—दिये गये समय के अन्तराल मे उस इकाई द्वारा उत्पन्न किये गये साह-चर्यों की सख्या। अर्थात् उस इकाई के साथ कितने शब्द या विचार इत्यादि जुडे हुए हैं।

---

1 Coded chunks 2 Short term memory 3 Long term memory

इस दृष्टि से हम यह नही कह सकते हैं कि एक निरर्थक पद अर्थविहीन होता है। निरर्थक पदो मे भी साहचर्य उत्पन्न करने की क्षमता होती है, उन्हे साहचर्य विहीन नही माना जा सकता है। एक निरर्थक पद जितने अधिक साहचर्यों को उकसाता है, उसे उतना ही कम निरर्थक समझा जाना चाहिए। एक निरर्थक पद की साहचर्य उत्पन्न करने की क्षमता को उसका साहचर्य मूल्य[1] कहते है। उदाहरण के लिए, यदि एक निरर्थक पद, एक मिनट मे 15 शब्दो का साहचर्य उत्पन्न करता है और दूसरा 20 साहचर्य तो नि सन्देह दूसरे निरर्थक पद का साहचर्य मूल्य अधिक होगा। इस प्रकार का सफल प्रयास पहले ग्लेज (1928) ने किया और निरर्थक पदो का उनके साहचर्यों की बारम्बारता को ध्यान मे रखते हुए, साहचर्य मूल्य निर्धारित किया। हल्ल, कूगर, विटमर ने भी यही कार्य किया। सबसे नवीन व पूर्ण सूचियाँ आर्चर (1960) (देखिये सारणी सख्या 9 1)और नोबल(1961) की है। नोबल (1952) ने सार्थकता के सकेतक[2] (m)[3] का विकास किया। उन्होने स्वतन्त्र साहचर्य विधि का प्रयोग किया। इस सकेतक का आधार 119 प्रयोज्यो द्वारा निश्चित समय मे लगातार दिये जाने वाले साहचर्यों की सख्या को बनाया गया। सार्थकता (m) का अर्थ है एक शब्द या निरर्थक पर या किसी वाचिक इकाई के

सारणी संख्या 9 1

चुने हुए त्रिपदो (व्यजन-स्वर-व्यजन) का साहचर्य मूल्य या सार्थकता

त्रिपद	प्रतिशत प्रयोज्य	त्रिपद	प्रतिशत प्रयोज्य	त्रिपद	प्रतिशत प्रयोज्य
XYF	3	DUJ	13	BUP	34
YEQ	4	BIW	15	LOZ	40
MYV	5	RUV	16	VOX	46
QEJ	6	TIW	18	QIN	50
NIJ	7	QED	20	MYR	58
WUQ	8	HOJ	22	BEK	66
GEX	9	BIQ	24	VIK	74
PYB	10	SIW	26	NEV	80
ZOF	11	DYT	28	DAT	90
NYV	12	TAJ	32	TEX	100

[प्रतिशत प्रयोज्य सख्या प्रयोज्यो की सख्या के उस प्रतिशत को दर्शाती है जिन्होने प्रतिक्रियाये दी है।]

(प्रदत्त आर्चर 1960 से)

1 Association value 2 Index 3 Meaningfulness

प्रति एक मिनट मे लिखी जाने वाली सहचारी प्रतिक्रियाओ की औसत सख्या। यह सकेतक उसने 96 द्विपदीय सज्ञाओ और बहुपदीय विन्यासो[1] (कई अक्षरो का वह समुच्चय जो कि उच्चारणशील तो हो किन्तु कोई वास्तविक अर्थ न रखता हो, जैसे, (SAVUL या MIBEM) के लिए निर्धारित किया। कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे है जो सार्थकता के तीनो स्तरो—उच्च अर्थ, माध्यम अर्थ व निम्न अर्थ को दिखाते है—

उच्च अर्थ	मध्यम अर्थ	निम्न अर्थ
KITCHEN	TANKARD	MEARDON
MONEY	SEQUENCE	NEGLAN

ग्रास व नोडाइन (1965) ने समीक्षा तालिकाएं प्रस्तुत की हैं जिसमे कि साहचर्य मूल्य के विभिन्न सकेतक व सार्थकता के अन्य सकेतक दिये गये है। वाचिक पदो की सार्थकता का निर्धारण कई प्रकार से किया गया है। अन्डरवुड व शुल्ज (1960) ने उच्चारणशीलता को आधार माना है। वैटिग व स्पेरा (1962) ने सख्याओ का भी साहचर्य मूल्य निर्धारित किया है, उदाहरण के लिए 31, 53(निम्न साहचर्य मूल्य), 76, 44 (मध्यम साहचर्य मूल्य) और 18, 7 (उच्च साहचर्य मूल्य)। लिखित भाषा मे उन शब्दो के उपस्थित होने की आवृत्ति सख्या को आधार मानकर थानडाइक व लोर्ज (1944) ने आवृति तालिकाएं[2] प्रस्तुत की हैं। मिलर व सेलफ्रिज ने भी साहचर्य विधि का उपयोग करते हुए क्रमागत साहचर्य निर्भरता के आधार पर ऐसे वाक्य बनाये जो कि सामान्यभाषा से समानता के स्तर को देखते हुए भिन्न-भिन्न थे।

इन साथकता के सकेतको के सम्बन्ध मे दो बाते विशेष उल्लेखनीय हैं—

(1) वास्तविक अधिगम व सार्थकता के सकेतको के बीच सहसम्बन्ध गुणक 88 और 90 पाया गया (अन्डरवुड 1966)।

(2) प्रयोज्य द्वारा अपने अधिगम की अनुमानित दर व वास्तविक अधिगम दर के बीच 92 का सहसम्बन्ध पाया गया। अनुमानित दर व सार्थकता के सकेतको के बीच सहसम्बन्ध 91 से 94 तक पाया गया।

इन सहसम्बन्धो से स्पष्ट है कि अधिगम दर पर, साहचर्य मूल्य, उच्चारणशीलता इत्यादि का सम्मिलित प्रभाव पडता है। क्रमिक सीखना अधिक तीव्र होता जाता है जैसे-जैसे वाचिक इकाइयो की सार्थकता बढती जाती है (नोबल 1952 ब) प्राय युगल साहचर्य विधि मे प्रतिक्रिया अश की सार्थकता महत्वपूर्ण होती है क्योकि धारणा की जाँच प्रतिक्रिया अश की ही होती है।

1 Paralogs 2 Frequency table

सामग्री की सार्थकता जितनी ही अधिक होगी, अधिगम उतनी ही द्रुत गति से होगा। निम्न तालिका के परिणाम (गिलफर्ड 1934) यही दर्शाते है।

सारणी सख्या 9 2

सामग्री	अधिगम के लिए किये गये औसत प्रयास
15 निरर्थक पद	20 4
15 असम्बन्धित शब्द	8 1
15 सम्बन्धित शब्द	3 5

सार्थकता और अधिगम की गति के बीच सम्बन्ध को समझने के लिए निम्न दोनो सूचियो को उदाहरण के रूप मे देखिए—

सूची (अ)	सूची (ब)
ल व द — प अ न फ	ल व द — घोडा
न अ क्ष — ल इ म र	न अ क्ष — हिन्दी
व द ज्ञ — ग ओ ज ओ	व द ज्ञ — दौडना

दोनो सूचियो मे से किसे सरलता से सीखा जा सकेगा ? बहुत से विद्यार्थी सूची ब को अ की तुलना मे शीघ्रता से सीख जायेगे क्योकि सूची ब के प्रतिक्रिया
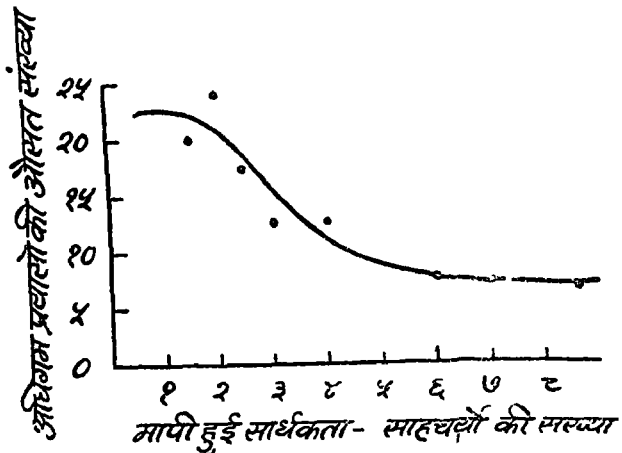
चित्र सख्या 9 1

[अधिगम की सरलता और अँग्रेजी शब्दो की सार्थकता के बीच का सम्बन्ध (किम्बल एव गारमेजी 1963 पृ० 222)]

पदो (घोडा, हिन्दी, दौडना) से वे अधिक परिचित हैं अर्थात् वे उनके लिए अधिक सार्थक हैं।

सार्थकता नापने के लिए नोबुल की विधि का उपयोग करते हुए क्रिम्बल (1963) ने विभिन्न औसत सार्थकता स्तरो की 8 सूचियो को विद्यार्थियो को सीखने के लिए दिया। सूची 1 सबसे कम सार्थक थी व सूची 8 सबसे अधिक सार्थक थी। सूची 1 को सीखन मे 20 से 25 तक प्रयास लगे जबकि सूची 8 को सीखने मे 5 से 10 तक प्रयास लगे। प्रयोग के परिणाम चित्र सख्या 9 1 मे दर्शाये गये हैं।

सार्थकता दो दृष्टियो से महत्वपूर्ण परिवर्त्य है। पहले तो वाचिक इकाइयाँ एक दूसरे से कुछ परिस्थितियो मे केवल इसलिए जुड जाती हैं क्योकि वे साथ साथ एक ही स्थान पर एक समय मे आ चुकती हैं (स्पीयर, एकस्ट्रैण्ड व अन्डरवुड 1964)। इनके पीछे साहचर्य का प्राथमिक नियम, समीपता का नियम[1] लागू होता है। दूसरे समीपता के अतिरिक्त अन्य बातो से भी प्रयोज्य का साहचर्यात्मक अधिगम प्रभावित होता है। अन्डरवुड व शुल्ज (1860) के साहचर्यात्मक सभावना सिद्धान्त[2] के अनुसार जितनी ही प्रत्येक जोडे के सदस्य के सहचारियो की सख्या अधिक होगी उतनी ही इस बात की सभावना बढ जाती है कि इन सहचारियो मे से कोई एक मध्यस्थ कडी[3] बन जायेगा जिससे कि अन्य जोडो के सदस्यो को भी जोडा जा सके। एक मध्यस्थ[4] या मध्यस्थ कडी कोई एक तीसरी वाचिक इकाई होती है जो कि पहले से ही एक जोडे के उत्तेजक व प्रतिक्रिया से जुडी रहती है।

(3) **सूचीगत समानता** –सूचीगत समानता से तात्पर्य एक सूची या वाचिक काय मे सम्मिलित विभिन्न पदो के बीच पाई जाने वाली समानता से है। इस समानता के दो प्रकार किये जा सकते है—

(1) **औपचारिक समानता[5]**—वाचिक पदो मे पाये जाने वाली वाह्य समानता जा कि स्पष्ट दिखाई पडती है जैसे सूची के निरर्थक पदो मे पाए जाने वाले समान अक्षर, उदाहरण के लिए ज्ञ, व म, व व ज्ञ, म व ब, पदो मे अत्यधिक औपचारिक समानता देखी जा सकती है जबकि ज्ञ ब म, म ड ज और स फ ट मे औपचारिक समानता का अभाव है।

(2) **आन्तरिक शाब्दिक समानता[6]**—इसके अन्तगत सूची के पदो के बीच पाए जाने वाली उस समानता से है जो कि उनके परस्पर सम्बद्धता के कारण उत्पन्न होती है। इस समानता के दो उप प्रकार किये जा सकते हैं—

(अ) **अर्थ की समानता[7]**—जबकि सूची के विभिन्न पदो के अर्थ परस्पर समान

---

1 Law of contiguity 2 Associative probability theory 3 Mediating link 4 Mediator 5 Intralist similarity 6 Formal similarity 7 Semantic similarity

हो । उदाहरण के लिए पर्यायवाची शब्दो की सूची जिसमे बच्चा, शिशु, आदि शब्द हो ।

(ब) सबोधगत समानता[1] —जब सूची के विभिन्न पद एक ही प्रकार या श्रेणी के उत्तेजक हो, उनकी जाति एक हो, या कहा जाय कि वे एक ही सबोध को व्यक्त करते हो, जैसे अमरूद, केला, सन्तरा ये सभी फल सबोध को व्यक्त करते है।

युगल साहचर्य अधिगम मे जितनी ही उत्तेजक अशो की समानता की मात्रा अधिक होती है उतनी ही अधिगम की दर मन्द होती है । उदाहरण के लिए, यदि एक सूची मे निम्न प्रकार युगल साहचर्य पद है जैसे, केला—ज अ म, अमरूद—ब व ट, सतरा—ल इ ट, तो यहाँ उत्तेजक अशो मे सबोधगत समानता के कारण अधिगम की गति मन्द हो जायेगी (जोइनसन व रनक्विस्ट 1968, व्रीक्राफ्ट 1956, अन्डर-वुड, एक्स्ट्रैन्ड व केप्पेल (1965) । प्रतिक्रिया अशो मे समानता युगल साहचर्य अधि-गम को अपेक्षाकृत कम प्रभावित करती है ।

जब सूची के विभिन्न पदो के बीच समानता अधिक होती है तो धीमे अधिगम का कारण होता है इन पदो का उच्च सामान्यीकरण जिससे बाधा बढ जाती है । प्लोटकिन (1943), कोफर (1942) इत्यादि के अध्ययन भी यही परिणाम दर्शाते है ।

प्रेरणा व सावेगिकता[2]—प्ररणा का वाचिक अधिगम मे एक परिवर्त्य के रूप मे किये गये अध्ययन सामान्य रूप से यही दर्शाते हैं कि प्रेरणा का इस पर थोडा प्रभाव पडता हे (वीनर 1966 अ) । प्राय वे सभी उपाय जिससे सप्रेरणा को घटाया-बढाया जा सकता है, शाब्दिक अधिगम को प्रभावित स्पष्ट रूप से न कर सके । कुछ अपवाद भी है किन्तु यह विशिष्ट हैं—उदाहरणार्थ स्पेन्स (1958) ।

उद्दीप्त[3] और अधिगम के बीच सम्बन्ध का भी अध्ययन किया गया । क्लेइन, स्मिथ व कापलान (1966) ने पाया कि उच्च उद्दीप्तिकारी उत्तेजको से सम्बन्धित प्रतिक्रियाओ के प्रत्याह्वान मे कमी देखी गई । यह प्रत्याह्वान दो मिनट बाद किया गया था किन्तु जैसे-जैसे धारणा विश्राम बढता गया यह सम्बन्ध भी पलटता गया अर्थात् उच्च उद्दीप्तकारी उत्तेजको का प्रत्याह्वान सुधारता गया ।

सावेगिकता के सन्दर्भ मे यह देखा जाता है कि बहुत से ऐसे शब्द है जिनके साथ सदा सार्वभौम रूप से दुखद अप्रिय अनुभूतियाँ व अर्थ जुडे रहते हैं और इसके विपरीत बहुत से शब्द ऐसे हैं जिनके साथ सदा सावभौम रूप से सुखद अनुभूतियाँ व अर्थ जुडे रहते हैं । दुखद या अप्रिय शब्द हमारे अन्दर पलायन की प्रतिक्रिया उकसाते हैं जबकि सुखद या प्रिय शब्द हमे क्रिया करने को बढाते है जो शब्द उदासीन है (न तो विशेष अप्रिय न प्रिय) वे दोनो मे से किसी भी प्रतिक्रिया को

---

1 Conceptual similarity 2 Affectivity 3 Arousal

सामान्यतया नही उकसाते हैं। प्रश्न यह है कि सावेगिकता का सीखने की गति से सम्बन्ध है या नही ? दुर्भाग्य से इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर नही दिया जा सकता क्योकि अध्ययन परस्पर विरोधी परिणाम दर्शाते हैं। इस स्थिति का कारण है, इस परिवर्त्य का सही नियन्त्रण न कर पाना।

वाचिक अधिगम की विधियाँ[1]—वाचिक अधिगम विधियो से हमारा तात्पर्य अधिगम सामग्री के अभ्यास कराने की विधियो से है। जिस सामग्री को प्रयोज्य अर्जिन करता है उसे विभिन्न प्रकार से प्रस्तुत किया जाता है। इन विधियो को अर्जन की विधियो के नाम से भी पुकारा जाता है।

ध्यान रखने की बात है कि प्रयोज्य के यह कहने मे कि उसने सूची का अधिगम कर लिया है और इस तथ्य मे वडा अन्तर है कि हम मापन करें कि वास्तव मे उसने कितना धारण किया है। धारणा की विधियो (जिनका उल्लेख आगे किया जायेगा) और अधिगम विधियो मे अन्तर समझना चाहिये। हम यह नही कह सकते हैं कि धारणा की विभिन्न परीक्षण विधियाँ अधिगम मे व्याप्त भिन्नता को दर्शाती है अपितु यह दिखाती है कि ये विभिन्न मापन विधियाँ प्रारम्भिक अधिगम की विभिन्न विशेपताओ का मापन करती है।

यद्यपि यहाँ पर सुविधा की दृष्टि से अधिगम की विधियाँ और धारणा की मापन विधियो मे विभेद किया जा रहा है किन्तु ये दोनो विधियाँ परस्पर अन्तर्ग्रन्थित है। कुछ अवस्थाओ मे धारणा का मापन, अधिगम का ही मापन होता है। उदाहरण के लिए, हम किसी विद्यार्थी से कोई कविता याद करने को कहते है और बाद मे देखते है कि इस कार्य मे उसको कितनी सफलता प्राप्त हुई। अन्य अवस्थाओ मे अधिगम की प्रक्रिया का मापन, अर्जन के समय ही हो जाता है। उदाहरणार्थं जव एक प्रयोज्य कुछ फलो के नामो की एक सूची को बार-बार तव तक पढता है जव तक कि उसे पूरी सूची न याद हो जाय। इस अवस्था मे प्रत्येक प्रयास मे प्रयोज्य द्वारा की जाने वाली त्रुटियो की सख्या, अर्जन के साथ-साथ धारणा का भी मापन करती है।

यहाँ पर निम्न अधिगम विधियो का उल्लेख किया जायेगा—

(1) क्रमिक अधिगम विधि[2]

(2) युगल साहचर्य विधि[3]

(3) उत्प्रेरक या उद्‌वोधन व पूर्वानुमान विधि[4]

(4) अधिगम समय विधि[5]

---

1 Verbal learning methods 2 Serial learning 3 Paired association
4 Prompting and anticipation 5 Learning time method

(1) क्रमिक अधिगम विधि

अभ्यास कराने की इस विधि मे सामग्री को एक निरंतर शृंखला के रूप मे प्रस्तुत किया जाता है। यह शृंखला निरर्थक पदो, संख्याओ या शब्दो अथवा किसी भी शाब्दिक इकाई की हो सकती है। प्रयोज्य का कार्य है कि वे सभी पदो को एक साथ सीखें, अर्थात् सबको एक साथ जोड सकें, जिस प्रकार से एक कविता की सभी पंक्तियाँ एक निश्चित क्रम मे याद की जाती हैं। पदो को एक क्रमिक रूप मे सूची मे दिया जाता है। प्रयोज्य से उत्तेजको के क्रम को याद करने को कहा जा सकता है। जब बच्चा क ख ग घ सीखता है तो क्रमिक विधि से ही सीखता है। क्रमिक विधि मे साहचर्य एक क्रम मे स्थापित होते हैं जैसे क→ख→ग→घ। सूची का प्रत्येक पद उत्तेजक और प्रतिक्रिया दोनो का कार्य करता है। क यदि प्रतिक्रिया ख के लिए उत्तेजक है तो ग प्रतिक्रिया के लिए ख उत्तेजक का कार्य करता है। प्राय क्रमिक विधि से अभ्यास कराने मे स्मृति ढोल का प्रयोग किया जाता है जिसकी खिडकी मे क्रम से सूची का एक-एक पद प्रयोज्य के सामने आता है।

सारणी 9 3

क्रमिक सीखने के प्रयोग का अभिलेख पत्र

	पद										
प्रयास	कलम	जलज	गरल	सरम	मकर	तरल	नयन	कमल	नमन	सफल	शुद्ध संख्या
1	0	+	+	+	0	0	0	+	+	+	6
2	+	+	0	0	0	0	0	+	+	0	8
3	+	+	0	0	0	+	0	+	+	+	6
4	+	+	0	0	0	+	+	+	+	+	7
5	+	+	+	0	0	0	0	0	+	+	5
6	+	+	0	0	0	0	0	+	+	+	5
7	+	+	+	0	0	0	0	+	+	+	6
8	+	+	0	0	0	0	+	+	+	+	6
9	+	+	+	+	0	0	+	+	+	+	8
10	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+	10
शुद्ध संख्या	9	10	5	3	1	3	4	9	10	9	

\+ = शुद्ध अनुमान
0 = अशुद्ध अनुमान

[illegible] विधि से किसी सूची को सीखने मे तीन विशेषताएँ पाई जाती है जैसा [illegible] व पीटर्स (1962) ने बताया है —

(1) जब क्रमिक अनुमान विधि से सूची बार-बार प्रस्तुत की जाती है तो उसमे खालीपन का बोध होता है क्योकि प्रत्येक सूची मे एक आरम्भिक पद होता है अर्थात् सूची वही से आरम्भ होगी और कही न कही समाप्त होगी।

(2) सूची के अन्त मे और सूची के आरम्भ के बीच मे खाली समय होता है, क्योकि सूची समाप्त होने के बाद फिर आरम्भ से उसे सीखना होता है।

(3) सूची को सीखने मे कई साहचर्यात्मक 'खण्ड' करने पडते है क्योकि प्रत्येक पद की उसकी अपनी स्थिति क्या है, इसे सीखना होता है और प्रत्येक पद उत्तेजक और प्रतिक्रिया दोनो का कार्य करता है।

क्रमिक विधि से जब प्रयोज्य सीखता है तो यदि अनुमान विधि के प्रयोग का उदाहरण दिया जाय तो स्मृति ढोल की खिडकी मे एक पद जब उपस्थित होता है तो उसे अगले पद का अनुमान कर बताना होता है। क्रमिक विधि से किये जाने वाले प्रयोग मे अभिलेख पत्र निम्न प्रकार से तैयार किया जाता है (देखिए तालिका स० 9 3)।

क्रमिक विधि से सीखने मे दो व्यापार विशेप उल्लेखनीय है—(1) क्रमिक स्थिति वक्र[1] (2) दूरस्थ साहचर्य[2]।

(1) क्रमिक स्थिति वक्र—क्रमिक विधि से सीखने मे सूची मे पदो की स्थिति का बडा महत्व है। कुछ पद सूची मे आरम्भ मे आते है, कुछ मध्य मे आते हैं, और कुछ अन्त मे आते है। इस विधि से सीखने मे यह देखा जाता है कि सूची के पहले पद सबसे तेजी से सीख लिये जाते है। इसी प्रकार सूची के अन्त मे आने वाले पद भी शीघ्रता से सीख लिए जाते हैं किन्तु सूची के मध्य मे आने वाले पद बडी धीमी गति से सीखे जाते हैं। यदि हम सूची के प्रत्येक पद को आधार मानकर ऊर्ध्वरेखा पर उसे सीखने मे होने वाली असफलता को चित्रित करे तो निम्न वक्र प्राप्त होगा जो कि पहले ऊपर की ओर उठकर नीचे झुक जाता है।

यदि असफलता के स्थान पर सफलता या शुद्ध अनुमान को दर्शाया जाय तो यही वक्र नीचे की ओर झुका हुआ और बाद मे उठता हुआ दिखाई पडेगा, अर्थात् ठीक इसके विपरीत स्वरूप का होगा। इस वक्र को बो आकृति[3] (बो गले मे टाई की तरह बाँधी जाती है उसकी आकृति से समानता होने के कारण इसे अंग्रेजी मे यह सज्ञा दी जाती है) का वक्र कहा जाता है।

मध्य पदो को सीखने मे कठिनाई घटती जाती है, जैसे-जैसे प्रयासो की सख्या बढती जाती है। विभिन्न पदो को सीखने मे कठिनाई या सरलता को प्रदर्शित करने वाला यह वक्र सपाट होता जाता है। जब सूची पूरी तरह याद कर ली जायेगी तो वक्र सीधी रेखा मे बदल जायेगा क्योकि तब सभी पद पूरी तरह से शुद्ध बताये जा

---

1 Serial position curve 2 Remote associations 3 Bow shaped
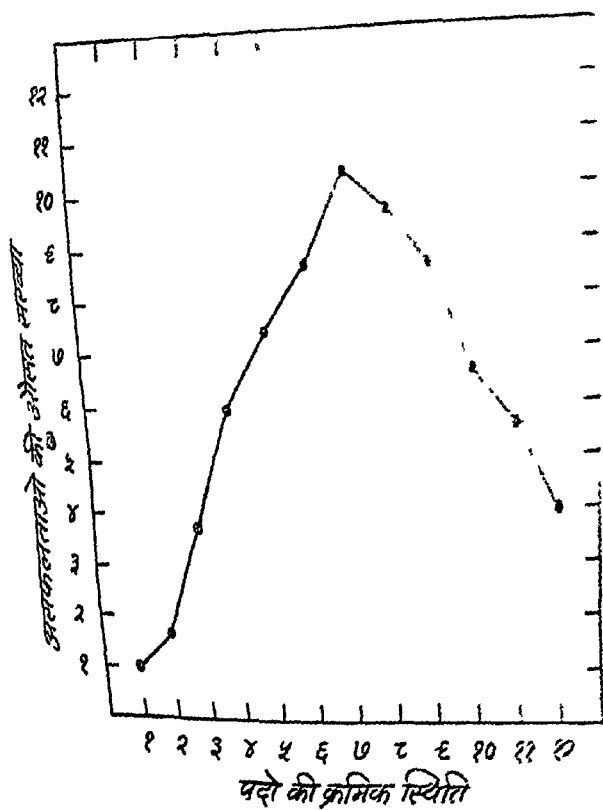
चित्र संख्या—9 2

[क्रमिक स्थिति वक्र। यह वक्र 2 सेकण्ड तक दर्शाए गए 12 [illegible] को 64 प्रयोज्यों द्वारा क्रमिक सूची में सीखने के आधार पर बना है।]

(प्रदत्त हाववेंट [illegible], [illegible])

(2) दूरस्थ साहचर्य—क्रमिक विधि से किये जाने वाले प्रयोग में [illegible] द्वारा की गई त्रुटियों का अध्ययन किया जाय तो एक महत्वपूर्ण बात स्पष्ट [illegible] है। इसे समझने के लिए निम्न उदाहरण लिया जा सकता है—मान लीजिये सूची में [illegible] स, द, इ, इत्यादि कुछ पद हैं। सही साहचर्य जो क्रमिक विधि से होना चाहिये [illegible] पद का अपने अगले पद के साथ होना चाहिये जिसे हम अग्रगामी निकटवर्ती [illegible]

कह सकते है ।[1] शुद्ध साहचर्य अ का ब के साथ, ब का स के साथ तथा स का द से, इसी प्रकार होगा । किन्तु जब यदि द प्रस्तुत किया जाय और प्रयोज्य अ को बताए तो इसका अर्थ है द और अ के बीच साहचर्य स्थापित हो गया है । यह साहचर्य (इ) निकटवर्ती पद से न होकर दूरवर्ती पद (अ) से है । इसे ही दूरस्थ साहचर्य व्यापार कहते ह । इसके दो प्रकार होते है—

(1) दूरस्थ अग्रगामी साहचर्य[2]
(2) दूरस्थ पृष्ठगामी साहचर्य[3]

जब सूची के एक पद (मान लीजिए ब) को प्रस्तुत करने पर प्रयोज्य आगे आने वाले दूरस्थ पद (द) को प्रस्तुत करे तो इसे दूरस्थ अग्रगामी साहचर्य कहेगे । इसके विपरीत यदि सूची के पद (मान लीजिये द) को प्रस्तुत करने पर पिछले पद अ को प्रयोज्य बताएँ तो इसे दूरस्थ पृष्ठगामी साहचर्य कहेगे । निम्न चित्र मे यह बात स्पष्ट है—
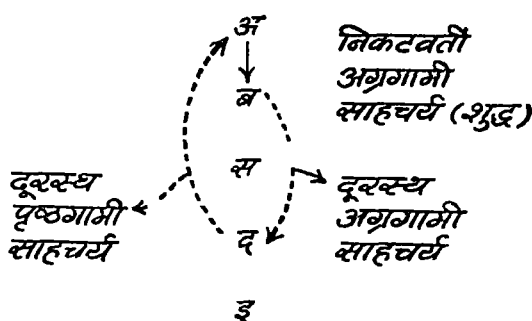
चित्र सख्या 9 3

इन दूरस्थ साहचर्यों पर किये गये अध्ययनो से निम्न निष्कर्ष सामने आते है जिन्हे अन्डरवुड ने उद्धृत किया है—

(1) जैसे-जैसे सीखना बढता है, इन दूरस्थ साहचर्यों की बारम्बारता घटती जाती है ।

(2) अधिकाश दूरस्थ साहचर्य सूची के मध्य स्थित पदो से सम्बन्धित होते हैं ।

(3) दूरस्थ साहचर्यों की बारम्बारता घटती जाती है जैसे-जैसे उनकी दूरी बढती जाती है ।

---

1 Adjacent forward association 2 Remote forward association
3 Remote backward association

(2) युगल साहचर्य विधि

क्रमिक विधि से भिन्न इस विधि मे वाचिक पदो को जोडे मे प्रस्तुत किया जाता है। दो निरर्थक पद युगल, दो सार्थक शब्द युगल, एक सार्थक और एक निरर्थक या एक निरर्थक और एक सख्या किसी भी रूप मे युगल पद हो सकते है। इस विधि से पहले प्रयास मे प्रयोज्य को दोनो ही युगल पद (जैसे, कमल—फ इ ड) दिखाये जाते हैं। उसके बाद के सभी प्रयासो मे केवल एक सदस्य पद, (जैसे,क म ल) दिखाया जाता है और प्रयोज्य दूसरे सदस्य पद (जैसे, फ इ ड) को बताता है। एक निश्चित समय मे यदि प्रयोज्य बताने मे असफल रहता है या अशुद्ध बताता है तो उसे सही पद बता दिया जाता है (उद्बोधन विधि)। जिस पद को प्रयोगकर्ता दिखाता है उसे उत्तेजक पद और जिसे प्रयोज्य बताता है उसे प्रतिक्रिया पद कहते हैं। जब हम नाम सुनकर चेहरे को पहचानने का प्रयास करते है या अँग्रेजी भाषा सीखते समय हिन्दी पर्यायवाची का प्रयोग यथा TABLE (मेज) करते है, तो यह युगल साहचर्य विधि का ही उपयोग होता है। युगल साहचर्य विधि इधर काफी लोकप्रिय हो गई है किन्तु इसका उपयोग स्मृति प्रयोगो के आरम्भिक काल मे भी होता रहा है (कालकिन्स 1894, 1896, जोस्ट 1897, मूलर व पिल्जेकर 1900 थार्नडाइक 1908)।

इस विधि के विशेष महत्व का कारण इसकी कई स्थितियो मे उपयोगिता है। विदेशी भाषा सीखने मे इसकी विशेष उपयोगिता है।

युगल साहचर्य विधि मे साहचर्य युगल पदो मे स्थापित होता है और प्रयोगकर्ता दोनो पदो मे से किसी एक को प्रस्तुत कर दूसरे को सिखा सकता है। उदाहरण के लिए, निरर्थक पद (फ इ ड) दिखाकर सार्थक शब्द (क म ल) को याद कराया जा सकता अर्थात् पहले के उत्तेजक पद को प्रयोज्य प्रस्तुत करना सीख सकता है जबकि प्रतिक्रिया पद दिखाया जाय। युगल साहचर्य अधिगम मे दो प्रक्रियाएँ होती हैं जैसा अन्डरवुड, रनिक्वस्ट व शुल्ज (1959) ने बताया है

(1) एक प्रतिक्रिया की उपस्थिति को जानना।
(2) प्रस्तुत किये जाने वाले पदो के सम्बन्ध का सीखना।

यदि इनको दो विभिन्न प्रक्रियाओ के रूप मे स्वीकार न भी किया जाय तो हम कह सकते हैं कि युगल साहचर्य अधिगम के दो पक्ष है

(1) प्रतिक्रिया अधिगम पक्ष,
(2) साहचर्यात्मक पक्ष।

अर्थात् प्रयोज्य प्रतिक्रिया को उत्तेजक से भिन्न करना सीखता है और उसके बाद उत्तेजक प्रतिक्रिया के बीच साहचर्य स्थापित करना सीखता है। यदि एक सूची मे 12 युगल पद हो और सज्ञाएँ (जैसे पुस्तक) उत्तेजक पद के रूप मे हो तथा विशेषण (जैसे लाल) प्रतिक्रिया पद के रूप मे हो, एव इन प्रतिक्रिया पद

विशेषणो मे काफी समानता हो तो प्रयोज्य को साहचर्य स्थापित करने मे कठिनाई होगी। हैरोविट्ज 1962, हैरोविट्ज व लारसेन 1962 के अध्ययन इसकी पुष्टि करते हैं कि जब प्रतिक्रिया पदो मे समानता अधिक होती है तो युगल पदो मे जोडे मिलाने मे कठिनाई बढ जाती है।

युगल साहचर्य विधि मे पूर्व अनुमान विधि का प्रयोग होता है। इस विधि मे अधिगम व धारणा की परीक्षा दोनो साथ ही साथ हो जाती है। प्रत्येक प्रयास एक अधिगम प्रयास व धारणा की परीक्षा का प्रयास होता है। जब एक युगल पद एक सदस्य को दिखाया जाता है तो प्रयोज्य दूसरे सदस्य का प्रत्याह्वान करता है। यदि निश्चित समय मे वह असफल रहता है तो उसे शुद्ध पद बता दिया जाता है। इस विधि मे यह सुविधा है कि प्रयोगकर्ता सीखने की प्रगति का प्रति-प्रयास अध्ययन कर सकता है। प्रत्येक प्रयास के बाद सही बताये गये जोडो की सख्या से सरलता से सीखने की गति का ज्ञान हो जाता है क्योकि हमारा उद्देश्य दो पदो के बीच साहचर्य स्थापित करना सिखाना है। इसलिए सूची मे युगल पद या कार्ड, कभी भी सदैव एक निश्चित क्रम मे प्रस्तुत नही किये जाते है, क्योकि ऐसा करने पर क्रमिक साहचर्य बन जाने की सभावना रहती है। इस विधि की विश्लेपणात्मक उपयोगिता को ध्यान मे रखते हुए यह आवश्यक है कि युगल साहचर्य पदो को प्रस्तुत करने के क्रम को परिवर्तित किया जाता रहे व उन्हे अक्रमिक ढग से प्रस्तुत किया जाय (वैटिग, ब्राउन व नेल्सन, 1963)।

युगल साहचर्य विधि का विशेप उपयोग तब किया जाता है जबकि हमारी रुचि जोडो के बीच स्पष्ट सम्बन्धो की जाँच मे हो। पृष्ठोन्मुख अवरोध के अध्ययन मे यह विधि विशेप प्रभावकारी पाई गई है। शाब्दिक अनुबन्धन[1] व भापा सम्बन्धी खोजो के क्षेत्र मे इस विधि का बहुतायत से सफलतापूर्वक उपयोग किया जाता है।

सारणी सख्या 9 4

प्रयास

युगल पद	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
क म ल—फ इ ड	\	√	√	√						
ज ल ज—क उ ल	×	√	√	√						
प त न—द इ ठ	×	×	×	√						
प व न—न उ र	×	×	×	√						
योग शुद्ध प्रत्याह्वान	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10

× असफल

√ सफल

1 Verbal conditioning

युगल साहचर्य विधि से अधिगम पर प्रयोग का अभिलेख पत्र निम्न प्रकार से तैयार किया जाता है—देखिये तालिका सख्या 9 4 ।

(3) पूर्वानुमान व उद्‌बोधन विधि[1]

सूची के सभी पद इस विधि मे एक-एक करके दिखाये जाते है। प्राय इसके लिए स्मृति ढोल की खिडकी का उपयोग होता है। एक वार पूरी सूची दिखा दी जाती है और उसके वाद प्रयोज्य को निर्देश दे दिया जाता है कि जव एक पद (शव्द या निरर्थक पद आदि) खिडकी मे दिख तो उसके आगे आने वाले पद का वह अनुमान करे और वताए कि उस दिखाये जाने वाले पद के बाद कौन-सा पद है। यदि केवल पूर्वानुमान विधि का प्रयोग होता है तो चाहे प्रयोज्य सही पूर्वानुमान करें या गलत दोनो ही अवस्थाओ मे सही पद प्रस्तुत किया जाता है। पद खिडकी मे आता है। यदि उसने पूर्वानुमान किया तो उसका अनुमान सही पद देखकर पुष्ट हो जाता है और यदि उसने गलत पूर्वानुमान किया था या अनुमान नही किया था तो वह अनुमान को शुद्ध करता है या सीखता है। इस प्रकार प्रत्येक प्रयास एक अधिगम प्रयास व धारणा परीक्षा प्रयास दोनो ही होता हे। प्रयोज्य तब तक पूर्वानुमान करता रहता है जव तक कि सूची के सभी पदो का उसने सही सही पूर्वानुमान न कर लिया है। यह प्रयोगकर्ता पर निर्भर करता है कि वह कितनी दक्षता स्तर तक प्रयोज्य को सिखाना चाहता है। कभी-कभी प्रयोज्य तब तक कार्य करता रहता है जव तक कि लगातार तीन वार वह सूची के सभी सदस्य पदो का ठीक-ठीक पूर्वानुमान कर सके।

जैसा कि हम देख चुके हैं, कि पूर्वानुमान विधि—क्रमिक विधि व युगल साहचर्य दोनो के साथ सयुक्त की जाती है—विशेप रूप से क्रमिक विधि के साथ। पूर्वानुमान विधि मे एक परिवर्तन—उत्प्रेरण को जोडकर किया जाता है और इस विधि को उद्‌बोधन व पूर्वानुमान विधि की सज्ञा दी जाती है—उद्‌बोधन या उकसाने का तात्पर्य है कि प्रयोज्य को सही उत्तर तव वताया जाए जव कि वह अशुद्धि करता है। अशुद्धियो की गणना या उत्प्रेरणो की सख्या की गणना कर यह पता लग सकता है कि पूरी सूची के लिए सीखने के वक्र का क्या स्वरूप है। जिस प्रकार से भूल-भुलैया सीखने मे अशुद्धियो की गणना कर सीखने की प्रगति का अध्ययन होता है उसी प्रकार कितने वार प्रयोज्य को सही उत्तर वताना पडा, इन उद्‌बोधनो की सख्या की गणना कर, सीखने के क्रम का अध्ययन होता है।

(4) अधिगम समय विधि

इस विधि को अधिगम विधि के नाम से भी पुकारा जाता है किन्तु यह नाम विधि का पूरा परिचय नही दे पाता है। इस विधि मे प्रयोज्य को सूची दे दी जाती

---

1 Anticipation & prompting method

है और यह देखा जाता है कि किसी निश्चित अधिगम दक्षता स्तर या मानदण्ड तक सीखने मे प्रयोज्य कितना समय (या प्रयास) लेता है। दक्षता स्तर कभी-कभी पूरी सूची को एक बार सही कठस्थ करना या लगातार दो बार सही कठस्थ करना रखा जा सकता है। इस विधि के साथ कठिनाई यह है कि प्रयोज्य अपनी गति से सीखने के लिए स्वतन्त्र छोड दिया जाता है और बहुत सम्भव है कि वह कविता सुनाने के लिए तैयार बाद मे हो भले ही वह कविता पहले ही याद कर चुका हो या कविता सुनाने के लिए पहले ही तैयार हो जाय भले ही कविता न याद हुई हो। यदि व्यक्ति निराशावादी है तो याद करने के बाद भी वह प्रयास करता चला जायेगा और अति अभ्यास कर लेगा किन्तु यदि व्यक्ति आशावादी है तो बिना पूरी तरह याद किये ही वह समझेगा कि उसे कविता याद हो गई है। प्रयोगकर्ता बिल्कुल अन्धेरे मे रहता है। वह सीखने की गति के बारे मे कुछ भी नही जानता है। वह यह भी नही बता सकता कि कविता के किन अशो को याद करने मे प्रयोज्य को अधिक कठिनाई हुई व किन अशो को सीखने मे सरलता हुई।

इस विधि का उपयोग उस सामग्री के लिए किया जाता है जो कि अविभाज्य हो क्योकि इसमे पूरी सामग्री को ध्यान मे रखकर परिणाम प्राप्त किये जाते है। उदाहरण के लिए, गीत या सगीत, सम्बद्ध गद्य-खण्ड आदि।

इस विधि के पक्ष मे केवल इतना ही कहा जा सकता है कि यह विधि दैनिक जीवन मे हमारे सीखने की विधि से मिलती जुलती है क्योकि जब हम कोई उद्धरण या पाठ तैयार करते हैं तो तय कर लेते हैं कि एक निश्चित समय मे कितना तैयार कर लेगे। प्रायोगिक दृष्टि से इस विधि का विश्लेषणात्मक मूल्य बडा ही कम है और इस विधि का अधिक उपयोग नही होता है।

धारणा व विस्मरण

स्वरूप

धारणा से तात्पर्य समय के बीतने के साथ साथ सामग्री के अधिगम पर पडने वाले प्रभाव या होने वाले परिवर्तन से है। यदि आज एक प्रयोज्य 10 पक्ति की एक कविता, 15 बार पढकर पूरी की पूरी सही-सही कठस्थ कर लेता है पर जब उससे दूसरे दिन (24 घण्टे बाद) उस कविता को पुन दुहराने को कहा जाता है तो वह केवल 7 पक्तियो को ही सही-सही दुहरा पाता है। इसका अर्थ यह है कि 24 घण्टे के इस विश्राम मे कविता के अधिगम पर प्रभाव पडा, उसमे परिवर्तन हुआ। दूसरे शब्दो मे, 24 घण्टे तक प्रयोज्य दसो पक्तियो को अवधारित नही रख सका। उसकी धारणा केवल 7 पक्ति की हुई। इसे हम इस प्रकार से भी कह सकते हैं कि उसे 7 पक्ति की ही स्मृति हुई। तीन पक्ति जिन्हे वह दोहरा नही सका, स्पष्ट है कि उन्हे वह अवधारित करने मे असफल रहा है। उन्हे वह भूल गया है।

उपरोक्त स्मृति के प्रयोग की प्रक्रिया का यदि विश्लेषण किया जाय तो इसके ोन अग सामने आते हैं

(1) आरम्भिक अर्जन या अधिगम सत्र—जब प्रयोज्य उत्तेजकों में विभेद करता है और उनका अभ्यास करता है। उपरोक्त उदाहरण में प्रयोज्य के आरम्भिक अर्जन या अधिगम सत्र में 10 पंक्ति की कविता के 15 प्रयास किये गये।

(2) समय का अन्तर—इसे धारणा विश्राम या धारणा मध्यान्तर कहते हैं। यह समय का अन्तर सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि धारणा समय में होने वाला परिवर्तन है। अधिगम और बाद में अधिगम की धारणा की परीक्षा के बीच का यह धारणा विश्राम सदैव निश्चित नहीं होता है। कभी-कभी यह विश्राम बहुत ही अल्पकालिक होता है जब प्रयोज्य को कुछ पढ़ाकर या सुनाकर तत्काल बाद उसे दुहराने को कहते हैं जैसे टेलीफोन आपरेटर जब टेलीफोन नम्बर सुनता है तो तुरन्त उसे दुहराता है। इस अवस्था में धारणा विश्राम बहुत ही छोटा, दो या तीन सेकण्ड का होता है। कभी कभी यह धारणा विश्राम कई घण्टों, दिनों, सप्ताहों या वर्षों तक का हो सकता है। उपरोक्त उदाहरण में धारणा विश्राम एक दिन (24 घण्टे) का है।

(3) धारणा-परीक्षा—धारणा विश्राम के बाद जब प्रयोज्य से अधिगम की गई सामग्री को वर्तमान में पुनः उपस्थित करने के लिए कहा जाता है तो इसे धारणा-परीक्षा कहते हैं। इसका अभिप्राय यह जानना होता है कि धारणा विश्राम के उपरान्त प्रयोज्य कितना अधिगम संचित रख सका है और कितना विस्मृत हो गया है।

उपरोक्त उदाहरण में धारणा परीक्षा दूसरे दिन हुई जबकि प्रयोज्य से कविता को दुहराने (प्रत्याह्वान करने) को कहा गया।

धारणा को हम निम्न प्रकार से परिभाषित कर सकते हैं—"धारणा, अधिगम के बाद निष्पादन में समय के कारण होने वाला परिवर्तन है।"

स्मृति से अर्थ धारणा के धनात्मक पक्ष से है तथा विस्मरण से उसके नकारात्मक पक्ष से। विस्मरण और धारणा के इस स्वरूप को धारणा की वक्र रेखा से समझा जा सकता है।

धारणा वक्र

जैसा कि हमने देखा धारणा की सबसे बडी विशेषता यह है कि धारणा मे समय बीतने के साथ-साथ कमी होती जाती है। अधिगम सत्र और धारणा परीक्षण सत्र के बीच का व्यवधान जैसे-जैसे बढता है धारणा की मात्रा कम होती जाती है। धारणा विश्राम काल अधिक होगा तो सामान्य रूप से धारणा मे अधिक कमी होगी क्योंकि हम देख चुके हैं कि विस्मरण, धारणा का अभावात्मक पक्ष है।

जब समय को आधार मान कर अधिगम की गयी सामग्री की धारणा को एक वक्र द्वारा दर्शाया जाता है तो जो अधोगामी वक्र बनता है, वह धारणा का वक्र होता है। यह वक्र यह दर्शाता है कि समय के विस्तार का धारणा पर क्या

प्रभाव पडता है। मनोविज्ञान के क्षेत्र मे एबिंगहाँस को यह श्रेय है कि उसने विस्मरण और समय के पारस्परिक सम्बन्ध के क्रम का अध्ययन निम्नाकित चित्र मे प्रदर्शित किया गया है।
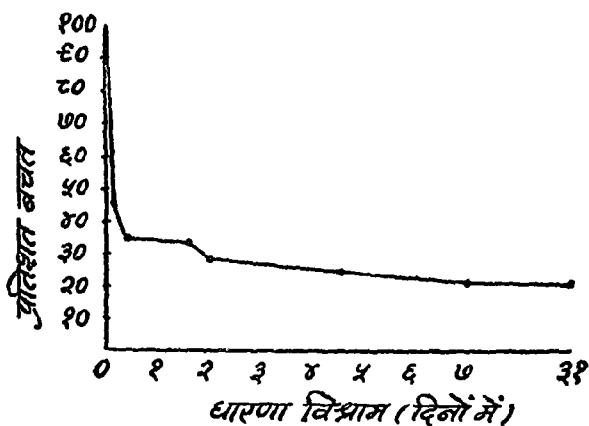
चित्र सख्या 9 4

एबिंगहाँस का धारणा वक्र अधिगम और पुनराधिगम के बीच प्रयासो मे समय की बचत को घण्टो मे दर्शाता है। परिवर्ती प्रयोगो ने भी इस वक्र की सामान्य रूपरेखा की पुष्टि कर इसके महत्व को स्पष्ट कर दिया है। एबिंगहाँस ने यह प्रयोग अपने ऊपर ही किया था और विभिन्न निरर्थक पदो की सूचियो को एक जैसी ही परिस्थितियो मे कठस्थ किया था। धारणा की परीक्षा पुनराधिगम विधि द्वारा की गयी और देखा गया कि पुन उन्ही सूचियो के विभिन्न धारणा विश्रामो (बीस मिनट बाद, एक दिन बाद, दो दिन बाद के क्रम से) के उपरान्त अधिगम करने का बचत प्राप्ताक कितना था। जैसा कि चित्र से स्पष्ट है विस्मरण की दर अधिगम के तत्काल बाद सबसे तीव्र होती है और क्रमश समय बीतने के साथ-साथ मन्द होती जाती है। लगभग 47 प्रतिशत बीस मिनट मे, 66 प्रतिशत 1 दिन मे, 72 प्रतिशत दो दिन मे, 75 प्रतिशत 6 दिन मे, और 79 प्रतिशत 31 दिनो मे विस्मरण हुआ। वक्र का अन्तिम छोर की ओर झुकाव एक तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करता है। अन्त मे यह वक्र रेखा सरल रेखा का रूप धारण कर लेती है। एकदम नीचे आकर शून्य पर आधार रेखा से (धारणा वक्र) या ऊपर की ओर 100% स्तर से नही मिल जाती है (विस्मरण वक्र)। इसका अर्थ यह है कि पूर्ण विस्मरण शायद ही कभी हो पाता है। प्राय हम यह देखते हैं कि कई वर्षों के बाद भी पुनराधिगम करने मे बचत होती है। मानसिक रोगियो का मनोविश्लेपण करते समय रोगी अपने बाल्यकाल की बहुत पुरानी घटनाओ को दुहरा लेता है।

इस वक्र के सम्बन्ध मे एक बात स्पष्ट रूप से ध्यान मे रखनी चाहिए। उपरोक्त वक्र इसी रूप मे सदैव सभी क्रियाओ के लिए प्रमाणिक नही होता है किन्तु इस वक्र का सामान्य अधोमुखी स्वभाव क्रमागत मन्द दर से ह्रासोन्मुख होना, अन्य परिस्थितियो मे भी पाया जाता है। उपरोक्त वक्र उपकल्पनात्मक है। ऐसा वक्र निरर्थक पदो के अतिरिक्त तथ्यो, विचारो व गत्यात्मक क्रियाओ के लिए भी प्राप्त होता है।

सक्षेप मे, विस्मरण व धारणा के बीच के सम्बन्ध को हम निम्न सूत्र द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं —

विस्मरण की मात्रा = अधिगम की मात्रा — धारणा की मात्रा

या

धारणा की मात्रा = अधिगम की मात्रा — विस्मरण की मात्रा

धारणा के स्वरूप का वणन कठिन है क्योकि धारणा का ज्ञान हमे अप्रत्यक्ष रूप से होता है। कभी कभी धारणा की असफलता मे हम यह समझ लेते है कि अधिगम की गई सामग्री विस्मृत हो गई किन्तु सम्भव है कि यह असफलता अधिक विश्वसनीय न हो। प्राय हम यह पाते है कि कई घटनाये बहुत प्रयास के बाद भी हम याद नही कर पाते हैं और कई वर्ष बीत जाने पर भी अनायास ही वह घटना याद आ जाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि उन घटनाओ की धारणा अभी बनी हुई थी। किन्तु पहले की धारणा परीक्षाओ ने उन घटनाओ की धारणा की पुष्टि नही की। अधिगम की गई सामग्री की धारणा किस प्रकार से प्रभावित होती है ? समय के बीतने के साथ-साथ इसमे जो कमी होती है, उसका क्या स्वरूप है ? उसका क्या आधार है ? इस सम्बन्ध मे प्राय यह समझा जाता है कि प्रत्येक घटना हमारे मस्तिष्क पर एक छाप छोड जाती है और जब तक यह छाप बनी रहती है तब तक हमारी धारणा भी बनी रहती है। जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, मस्तिष्क पर पडने वाली यह छाप, जिसे स्मृति छाप[1] कहते हैं, धूमिल होती जाती है और उस घटना की धारणा मे कमी होती जाती है। हम ऐसा समझ सकते है कि अधिगम का प्रभाव केन्द्रीय स्नायुमण्डल मे किन्ही परिवर्तित रूपो मे सचित रहता है। इस सचित रूप को ही स्मृति छाप जाना जाता है। यह स्मृति छाप एक अनुमानित उपकल्पनात्मक परिवर्तन है जो सामग्री के अर्जन और धारणा परीक्षा के बीच के समय मे होता है। स्मृति छाप अधिगम का दैहिक[2] या स्नायुविक प्रभाव नही है। समय बीतने के साथ-साथ स्मृति छाप का स्वरूप क्या हो जाता है ? कैसे इस स्मृति छाप का विकास और परिवर्तन होता है ? यह सब महत्वपूर्ण प्रश्न है। हम इसमे होने वाले गुणात्मक परिवर्तनो पर ध्यान न देकर परिमाणात्मक परिवर्तनो पर ध्यान देंगे

---

1 Memory trace 2 Physiological

प्रायोगिक महत्व की दृष्टि से हमारी रुचि निम्नलिखित तीन प्रश्नो मे है—

(1) धारणा के प्रकार।

(2) धारणा के मापन की विधियाँ।

(3) धारणा को प्रभावित करने वाले तत्व।

धारणा के प्रकार

या

स्मृति के दो प्रकोष्ठ[1]

या

स्मृति की दो प्रणालियाँ[2] (1) अल्पकालिक स्मृति (अ० का० स्मृति)
(2) दीर्घकालिक स्मृति (दी० का० स्मृति)

प्रयोगात्मक दृष्टि से धारणा-विश्राम की अवधि को दृष्टि मे रखते हुए स्मृति की दो प्रणालियो को स्वीकार किया जाता है। जब आरम्भिक अधिगम या अर्जन सत्र के कुछ काल बाद धारणा परीक्षा होती है, धारणा विश्राम छोटा होता है तो इसे अ० का० स्मृति की सज्ञा दी जाती है। जब आरम्भिक अधिगम या अर्जन सत्र के अधिक काल बाद धारणा परीक्षा होती है धारणा विश्राम बडा होता है तो इसे दी० का० स्मृति की सज्ञा दी जाती है। उदाहरणार्थ, जब टेलीफोन आपरेटर, फोन सख्या सुनकर फोन मिलाता है तो वह अ० का० स्मृति का सहारा लेता है क्योंकि एक बार सख्या सुनने के कुछ ही सेकण्ड के समय के बाद वह उन सख्याओ को दुहराता है, जब आप कहते हैं 125768 तो वह भी अल्प अवधि के बाद दुहराता है 125768। इस अवस्था मे धारणा विश्राम 2 या 4 सेकण्ड के लगभग होता है। जब हम उस कविता को याद करने का प्रयास करते हैं जो तीन वर्ष पहले कई बार पढी गई थी तो हम दी० का० स्मृति का सहारा लेते है क्योंकि यहाँ धारणा परीक्षा एक दीर्घ अवधि बीत जाने के उपरान्त हो रही है। धारणा विश्राम 3 वर्ष है जो कि काफी बडा है। अ०का० स्मृति को हम अल्प अवधि धारणा भी कह सकते है क्योंकि ऐसी स्मृति मे सचित घटनायें अधिक काल तक स्थिर नही बनी रहती है। इसी प्रकार दी० का० स्मृति को हम दीर्घ अवधि धारणा भी कह सकते है क्योंकि ऐसी स्मृति मे सचित घटनाएँ अधिक काल तक स्थिर बनी रहती है।

कुछ मनोवैज्ञानिक स्मृति के दो पृथक प्रकोष्ठ स्वीकार नही करते है (यथा मेल्टन 1963)। मेल्टन स्मृति प्रक्रिया की निरन्तरता का तर्क देता है और स्मृति की केवल एक ही प्रणाली को स्वीकार करता है। अ० का० स्मृति और दी० का०

---

1 Two memory compartments 2 Two systems of memory

स्मृति इस प्रक्रिया की दो विशेष दशाएँ हैं जिनमे कि केवल मात्रा का (धारणा विश्राम का) भेद है न कि प्रकार भेद। दोनो मे परिमाणात्मक भेद हैं गुणात्मक भेद नही। वर्तमान प्रयोगात्मक साक्ष्यो को देखते हुए यही उपयुक्त प्रतीत होता है कि स्मृति की दो प्रणालियो को या स्मृति के दो प्रकोष्ठो को—प्रथम अ० का० स्मृति को व दूसरा दी० का० स्मृति को—स्वीकार किया जाय।

हेब्ब की यह उपकल्पनात्मक धारणा भी दोनो प्रणालियो के अन्तर पर बल देती है कि अ०का०स्मृति स्नायुओ के उन समूहो की क्रियाओ का परिणाम है जिनकी क्रियाओं से होकर स्नायुविक प्रवाह[1] प्रवाहित होता है और अ० का० स्मृति की अवधि तक प्रकम्पित रहता है। यदि यह कुछ देर तक बना रहे और समय-समय पर इसे पुनर्जागृत किया जाय तो एक स्थायी मार्ग[2] बन जायेगा। परिणामस्वरूप स्थायी सचय[3] या दी० का० स्मृति बन जायेगी। इस दृष्टि से दो प्रकार की स्मृति छाप माननी होगी—(1) अल्पजीवी स्मृति छाप या अस्थिर स्मृति छाप[4] (2) दीर्घजीवी स्मृति छाप या स्थिर स्मृति छाप[5] जो कि क्रमश अ० का० स्मृति व दी० का० स्मृति के लिए उत्तरदायी ठहराई जा सके।

1950 के दशक मे अग्रेज मनोवैज्ञानिको ने इस अ० का० स्मृति व दी० का० स्मृति के विभेद पर बडा बल दिया (ब्राडवेण्ट 1957, कोनार्ड व हिल 1958)। जैक ए० एडम्स इस विभेद का प्रबल समर्थक है। उसके अनुसार इन दोनो स्मृति प्रणालियो मे होने वाली सक्रियाओ[6] मे भी अन्तर है। इन दोनो के बीच सक्रियात्मक विभेद है। एडम्स (1967) इन दोनो स्मृति प्रणालियो मे निम्न तीन आधार पर विभेद करता है—

(1) क्षमता, (2) बाधा, (3) शारीरिक प्रमाण।

(1) क्षमता—अ० का० स्मृति मे दी० का० स्मृति की तुलना मे सग्रह क्षमता कम होती है। अ० का० स्मृति विस्तार दी० का० स्मृति विस्तार से कम होता है। अ० का० स्मृति मे हम कम सामग्री अवधारित कर पाते हैं जबकि दीर्घकालिक स्मृति मे अधिक सामग्री सजोई जा सकती है। यदि प्रयोज्यो को 10 व्यक्तियो के मकान नम्बर सुना दिये जाएँ और 4 सेकण्ड के बाद उनसे उनको दुहराने को कहा जाय तो सभव है वे औसत रूप से केवल 6 या 7 नम्बर ही सही-सही दुहरा पायेंगे अर्थात् अ० का० स्मृति मे वे केवल कुछ ही सामग्री सग्रहीत कर पायेंगे। अ० का० स्मृति की सीमित क्षमता के कारण सामग्री के विस्तार पर विशेष ध्यान दिया जाता

---

1 Neural impulse 2 Permanent pathway 3 Permanent storage 4 Transient memory trace 5 Enduring memory trace 6 Operations

प्रायोगिक महत्व की दृष्टि से हमारी रुचि निम्नलिखित तीन प्रश्नो मे है—

(1) धारणा के प्रकार ।

(2) धारणा के मापन की विधियाँ ।

(3) धारणा को प्रभावित करने वाले तत्व ।

धारणा के प्रकार

या

स्मृति के दो प्रकोष्ठ[1]

या

स्मृति की दो प्रणालियाँ[2] (1) अल्पकालिक स्मृति (अ० का० स्मृति)
(2) दीर्घकालिक स्मृति (दी० का० स्मृति)

प्रयोगात्मक दृष्टि से धारणा-विश्राम की अवधि को दृष्टि मे रखते हुए स्मृति की दो प्रणालियो को स्वीकार किया जाता है । जब आरम्भिक अधिगम या अर्जन सत्र के कुछ काल बाद धारणा परीक्षा होती है, धारणा विश्राम छोटा होता है तो इसे अ० का० स्मृति की सज्ञा दी जाती है । जब आरम्भिक अधिगम या अर्जन सत्र के अधिक काल बाद धारणा परीक्षा होती है धारणा विश्राम बडा होता है तो इसे दी० का० स्मृति की सज्ञा दी जाती है । उदाहरणार्थ, जब टेलीफोन आपरेटर, फोन सख्या सुनकर फोन मिलाता है तो वह अ० का० स्मृति का सहारा लेता है क्योकि एक बार सख्या सुनने के कुछ ही सेकण्ड के समय के बाद वह उन सख्याओ को दुहराता है, जब आप कहते हैं 125768 तो वह भी अल्प अवधि के बाद दुहराता है 125768 । इस अवस्था मे धारणा विश्राम 2 या 4 सेकण्ड के लगभग होना है। जब हम उस कविता को याद करने का प्रयास करते है जो तीन वर्ष पहले कई बार पढी गई थी तो हम दी० का० स्मृति का सहारा लेते हैं क्योकि यहाँ धारणा परीक्षा एक दीर्घ अवधि बीत जाने के उपरान्त हो रही है । धारणा विश्राम 3 वर्ष है जो कि काफी बडा है । अ०का० स्मृति को हम अल्प अवधि धारणा भी कह सकते हैं क्योकि ऐसी स्मृति मे सचित घटनायें अधिक काल तक स्थिर नही बनी रहती हैं। इसी प्रकार दी० का० स्मृति को हम दीर्घ अवधि धारणा भी कह सकते हैं क्योकि ऐसी स्मृति मे सचित घटनाएँ अधिक काल तक स्थिर बनी रहती है ।

कुछ मनोवैज्ञानिक स्मृति के दो पृथक प्रकोष्ठ स्वीकार नही करते है (यथा मेल्टन 1963) । मेल्टन स्मृति प्रक्रिया की निरन्तरता का तर्क देता है और स्मृति की केवल एक ही प्रणाली को स्वीकार करता है । अ० का० स्मृति और दी० का०

---

1 Two memory compartments 2 Two systems of memory

सामग्री के अधिगम मे कठिनाई होती है। पहले कहा गया है कि अभ्यास से अ० का० स्मृति दी० का० स्मृति मे स्थानान्तरित हो जाती है, किन्तु हिप्पोकैम्पस[1] की शल्य-क्रिया के उपरान्त यह स्थानान्तरण सम्भव नही हो पाता है अर्थात् यह स्पष्ट है कि दो प्रकार के स्मृति प्रकोष्ठ है—पहला अ० का० स्मृति का और दूसरा दी० का० स्मृति का, जिनके बीच सम्बन्ध स्थापित करने का शारीरिक आधार हिप्पोकैम्पस है। इसम यह तथ्य भी निहित है कि स्थायी अधिगम के लिए आवश्यक है कि एक स्मृति प्रकोष्ठ से दूसरे मे अधिक से अधिक स्थानान्तरण हो। जोन (1967) ने इन शरीरशास्त्रीय प्रमाणो, जो कि अ० का० स्मृति व दी० का० स्मृति विभेद का बल देती हैं, की समीक्षा प्रस्तुत की है।

इन दोनो का अलग-अलग अध्ययन उपयुक्त है, क्योकि (1) उसमे सक्रियात्मक भेद है। धारणा विश्राम अ० का० स्मृति मे दी० का० स्मृति से कम होता है। प्राय अ० का० स्मृति मे 1 मिनट से कम और दी० का० स्मृति मे 24 घण्टे या उससे अधिक अवधि का धारणा विश्राम होता है। साथ ही इनसे जुडी प्रायोगिक विधियो मे भी अन्तर है (कैपेल 1965)। (2) इनके बीच सैद्धान्तिक विभेद भी किया जाता है ताकि अ० का० स्मृति व दी० का० स्मृति के अध्ययन मे सुविधा रहे।

अल्पकालिक स्मृति प्रयाग विधि

अ० का० स्मृति पर प्रयोग के लिए मनोवैज्ञानिको का ध्यान आकर्षित करने का श्रेय 1959 मे पीटरसन व पीटरसन द्वारा अ० का० स्मृति पर किये गये प्रयोग को है। यद्यपि इसके पहले भी स्ट्राग (1913), पिल्सबरी व सिलवेस्टर (1940) ने भी अस्पष्ट छिटपुट प्रयास किये किन्तु उनमे धारणा विश्राम की अवधि 10 सेकण्ड से कम न थी। पीटरसन व पीटरसन के अ० का० स्मृति पर किये गये प्रयोग का महत्व इसी तथ्य मे स्पष्ट है कि उसके बाद अ० का० स्मृति पर प्रयोगो की बाढ आ गई। मनोवैज्ञानिको की रुचि इस समस्या पर केन्द्रित होने लगी और पुन तात्कालिक स्मृति विस्तार और दी० का० स्मृति के सम्बन्धो की सैद्धान्तिक व्याख्याएं प्रस्तुत करने के प्रयास होने लगे। यह अध्ययन स्मृति क्षेत्र के शोध के लिए एक मील का पत्थर सिद्ध हुआ। इसीलिए अ० का० स्मृति पर किये जाने वाले प्रयोग की सामान्य रूपरेखा समझने के लिए पीटरसन व पीटरसन के प्रयोग का वर्णन किया जायेगा।

प्रायोगिक सामग्री के रूप मे शाब्दिक पदो की सूचियो के प्रयोग के स्थान पर तीन व्यजनो के एक पद का उपयोग किया गया (यथा CHJ या QFJ)। उद्देश्य केवल यह देखना था कि एक ही पद के विभिन्न तत्त्वो का प्रयोग कितनी सफलता से याद कर पाता है।

---

1 Hippocampus

प्रयोगकर्ता एक तीन व्यजन पद को हिज्जे-हिज्जे (स्पेलिग) कर बोलता है जैसे क/च/ज/ या /C/H/J। प्रयोज्य को इसी पद को याद किये रखना होता है। व्यजन पद के तीनो व्यजनो को अलग-अलग बोलने के उपरान्त तत्काल बाद प्रयोज्य तीन अको की एक सख्या (जैसे 305 या 605) बोलता है जो प्रयोज्य के लिए इस बात का सकेत होता है कि वह बोली गई सख्या को दुहराये व उसके बाद उस सख्या मे से 3 या 4 घटाकर सख्या बोलता जाय । यह उल्टी गिनती इसलिए आवश्यक है कि प्रयोज्य बोले गये व्यजन पद का मन ही मन पुनरभ्यासन कर सके, रिहर्सल न कर सके ।

एक मैट्रोनोम एक सेकण्ड मे दो बार टिकटिक करता था जिससे कि उल्टी गिनती गिनने की गति धीमी न हो और प्रयोज्य को रुकने या हिचकने का कम मौका मिले । प्रयोज्य व्यजन पद का प्रत्याह्वान एक सकेत (प्रकाश) पर करता था। प्रकाश होने पर ही वह व्यजन पद को दुहराता था । धारणा विश्राम तब ही आरम्भ हो जाता था जब प्रयोगकर्ता सख्या बोलता था और उसकी अवधि प्रकाश होने तक होती थी । इस प्रयोग मे 24 प्रयोज्य थे । धारणा विश्राम की अवधि 3, 6, 9, 12, 15, 18 सेकण्ड रखी गई। आठ व्यजन पद प्रत्येक प्रयोज्य को प्रत्येक धारणा विश्राम पर दिये गये । किसी भी प्रयोज्य को एक व्यजन पद दुवारा नही दिया गया। इस अ० का० स्मृति के प्रयोग के क्रम को निम्न प्रकार से दर्शाया गया है (एल० आर० पीटरसन व एम० जे० पीटरसन (1959 पृ० 154)

				(प्रकाश)			
सेकण्ड	0	1	2	3	4	5	6
प्रयोगकर्ता	क च ज		506				
प्रयोज्य			506	503			क च ज
प्रत्याह्वान विश्राम				प्रतिक्रिया काल			प्रत्याह्वान

चित्र सख्या 9 5

(ऊपरी पक्ति व्यतीत समय को सेकण्ड मे दर्शाती है। द्वितीय पक्ति यह दर्शाती है कि प्रयोगकर्ता उत्तेजक कैसे प्रस्तुत करता है, पहले व्यजन पद फिर सख्या तृतीय पक्ति प्रयोज्य के व्यवहार को दर्शाती है वह सख्या को दुहराता है और तीन सख्या घटाकर सख्या बोलता है। दूसरे सेकण्ड मे निर्देशानुसार 506 दुहराता है, तीसरे सेकण्ड मे 503 बोलता है। 3 5 सेकण्ड पर प्रकाश जलता है और प्रयोज्य तीन सख्या घटाकर गिनना बन्द कर देता है और उसे अब व्यजन पद को दुहराना पडता है। छठे सेकण्ड मे वह व्यजना पद क च ज को दुहराता है। बल्ब के जलने और प्रयोज्य द्वारा प्रत्याह्वान करने के बीच का समय प्रतिक्रिया काल लगभग 2 5 सेकण्ड है। प्रत्याह्वान समयान्तर अर्थात् त्रिपद व्यजन बोलने और प्रकाश जलने के बीच लगभग 3 सेकण्ड का समय रखा गया)।

इस प्रयोग मे निर्देश, प्रयोज्य द्वारा हरे प्रकाश को देख लेने के वाद एव प्रयोगकर्ता त्रिपद व्यजन सुनाने के साथ, निम्न प्रकार से दिया जाता है —

"मेरे सख्या वोलने के तत्काल बाद आपको वह सख्या दुहरानी है और मेट्रोनोम की जो टिकटिक की आवाज सुनाई पड रही है उसी पर उस सख्या मे से 3-3 घटाकर वोलते जाइएगा। जव आप लाल प्रकाश देख लें तो तुरन्त गिनना वन्द कर दीजियेगा तथा तुरन्त वह त्रिव्यजन पद वनाइयेगा जोकि कार्य के आरम्भ मे वोला गया था।"

धारणा विश्राम की अवधि मे वृद्धि होने पर प्रत्याह्वान मे कमी पाई गई। धारणा विश्राम वृद्धि के इस प्रभाव को चित्र सख्या 9 6 मे स्पष्ट देखा जा सकता है। परिणाम दर्शाता है कि 50 प्रतिशत प्रत्याह्वान मे कमी 6 सेकण्ड के वाद और 90 प्रतिशत से अधिक विस्मरण 18 सेकण्ड के वाद हुआ। सभवत इसका कारण अपेक्षा धूमिल वनी हुई छाप का स्वत क्षय है (ब्राउन 1958)।
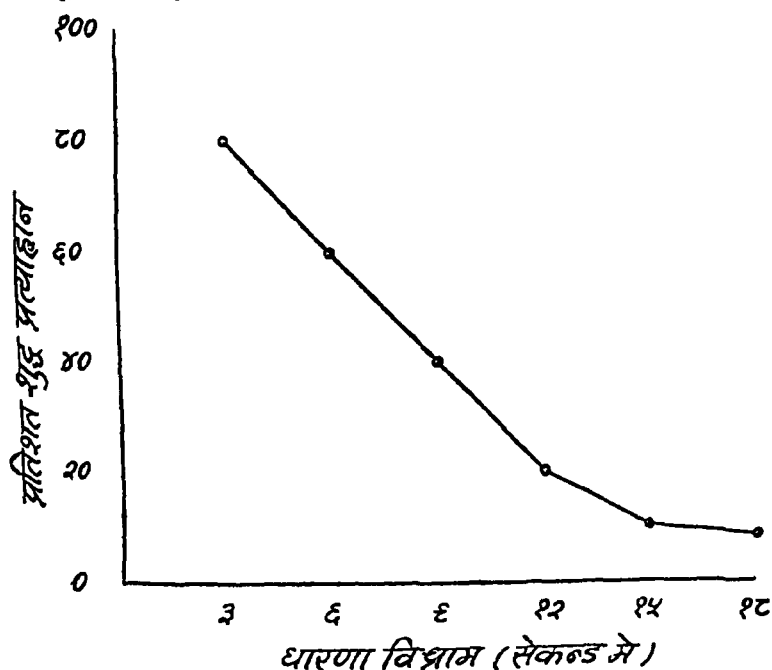
चित्र सख्या 9 6

[पीटरसन व पीटरसन (1959) द्वारा अल्पकालिक स्मृति पर किए गए प्रयोग से प्राप्त वक्र रेखा।]

इस प्राप्त वक्र की सवसे वडी विशेषता यही है कि 18 सेकण्ड के वाद वक्र की गति धीमी होती जाती है। मरडाक (1967) ने इस अध्ययन की पुन जाच की

और पूर्व प्राप्त वक्र को असदिग्ध रूप से सत्य पाया। प्राप्त परिणाम एक बात स्पष्ट करता है कि धारणा विश्राम की अवधि ज्यो-ज्यो बढती जाती है अ० का० स्मृति मे कमी आती जाती है।

सक्षेप मे, हम कह सकते हैं कि अ० का० स्मृति के प्रयोग मे दो विशेप बाते हैं —

(1) धारणा विश्राम का छोटा होना

(2) आरम्भिक अर्जन सत्र या अधिगम सत्र मे आरम्भिक अधिगम की छोटी मात्रा।

अल्पकालिक स्मृति की अनुभविक विशेषताएं

अनुभविक विशेपताओ से हमारा तात्पर्य अ० का० स्मृति पर किये गये प्रयोगो से प्राप्त परिणामो से है। ये परिणाम इस स्मृति प्रणाली के स्वरूप को स्पष्ट करते है अर्थात् सम्बन्धित परिवर्त्यों के पारस्परिक सम्बन्धो को स्पष्ट करते हैं। कुछ प्रमुख विशेपताओ का यहाँ उल्लेख किया जायेगा

(अ) अधिगम की मात्रा और अ० का० स्मृति—यह एक मानी हुई बात है कि जैसे-जैसे अधिगम की मात्रा, अभ्यास की मात्रा बढती जाती है, धारणा भी बढती जाती है (एविंगहाँस 1913), पोस्टमैन (1962), अन्डरवुड व केप्पेल (1963)। प्रश्न यह है कि क्या अभ्यास का वैसा ही प्रभाव अ० का० स्मृति पर भी पडता है ?

अ० का० स्मृति के प्रयोग मे अभ्यास दो प्रकार का हो सकता है—(1) मुखर या प्रकट अभ्यास—जिसमे कि प्रयोज्य पद के बोल दिये जाने के बाद उसे जोर से दुहराता है। (2) मौन या अप्रकट अभ्यास—जिसमे कि पद के प्रस्तुत कर देने के बाद खाली समय मे प्रयोज्य चुपचाप दुहराता है या मौन रिहर्सल करता है।

प्रकट अभ्यास व अ० का० स्मृति के सम्बन्ध को हेलयर (1962) का अध्ययन स्पष्ट करता है। पीटरसन व पीटरसन प्रकार के प्रयोगो मे प्रयोज्यो को 1, 2, 4 और 8 बार त्रिव्यजन पद जोर से बोलने दिया गया। धारणा विश्राम 3, 9, 18, और 27 सेकण्ड का रखा गया। प्रत्येक प्रयोज्य का निरीक्षण, चारो धारणा विश्राम व चारो पुनरावृत्ति अवस्थाओ मे 5 दिन तक किया गया। प्राप्त परिणाम को चित्र सख्या 9 7 मे दिखाया गया है। यह परिणाम स्पष्ट रूप से, अभ्यास की मात्रा और अ० का० स्मृति के बीच सम्बन्ध को दर्शाता है कि अभ्यास की मात्रा बढने पर अ० का० स्मृति भी बढती है।

अन्य सम्बन्धित अध्ययन भी पीटरसन व पीटरसन (1959) के एक आरम्भिक अध्ययन के उस अश की पुष्टि करते हैं जिसमे यह पाया गया था कि धारणा पर अभ्यास का धनात्मक, अनुकूल प्रभाव पडता है। पीटरसन (1966) ने यह भी बताया है कि उत्तेजक दर्शाने की अवधि जितनी अधिक होगी, अ० का० ति बढती जायेगी।
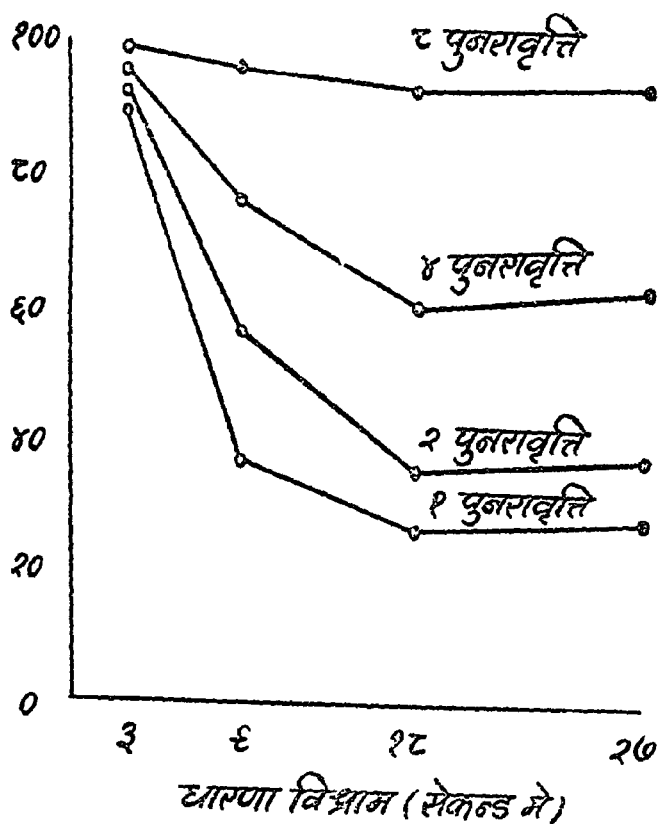
चित्र सख्या 9 7

[त्रिपदो के लिए अल्पकालिक स्मृति और अधिगम की मात्रा के बीच का सम्बन्ध । हेलयर (1962) पर आधारित]

अप्रकट अभ्यास व अ० का० स्मृति के सम्बन्ध को ब्राउन(1958, प्रयोग 3) के प्रयोग मे देखा जा सकता है। जब मौन अभ्यास काल को 0 78 सेकण्ड से बढाकर 4 68 सेकण्ड तक कर दिया गया तो 7 सेकण्ड के धारणा विश्राम मे शुद्ध प्रत्याह्वान प्रतिशत 41 प्रतिशत से बढकर 59 प्रतिशत हो गया। सैन्डर्स (1961) ने अप्रकट अभ्यास 8 सेकण्ड से 40 सेकण्ड तक करने दिया और 15 सेकण्ड से 120 सेकण्ड तक धारणा विश्राम रखा। विस्मरण 8 सेकण्ड के मौन अभ्यास की अवस्था मे अधिक हुआ और अ० का० स्मृति कम हुई। अन्य सभी धारणा विश्रामो मे विस्मरण मे ह्रास समान गति से हुआ। 120 सेकण्ड के अभ्यास से सभी धारणा विश्रामो मे धारणा मे कमी नही दिखाई पडी। पोलाक (1963) ने सैन्डर्स की पुष्टि की है। हेब्ब (1961), मेल्टन (1963) और मरडाक (1963) ने विभिन्न

प्रायोगिक परिस्थितियो मे यह सामान्य परिणाम पाया कि अभ्यास की मात्रा के बढने के साथ-साथ धारणा भी बढती जाती है। प्रकट और अप्रकट दोनो प्रकार का अभ्यास अ० का० स्मृति को लाभ पहुँचाता है। ग्रोनिन्गर (1966) दोनो मे प्रमुख अन्तर इस तथ्य को मानता है कि प्रकट अभ्यास मे तो प्रयोगकर्ता यह जान पाता है कि प्रयोज्य कितनी बार दुहरा रहा है। जबकि अप्रकट अभ्यास मे यह ठीक-ठीक जान पाना कठिन है।

(ब) अल्पकालिक स्मृति और पूर्ववर्ती व परवर्ती बाधा[1]—किसी भी वाक्य कविता या शब्द के अधिगम पर उसके पहले के परिचित वाक्य कविता या शब्द के अभ्यास का प्रभाव पडता है। इन पूर्व परिचित पूर्ववर्ती पदो की सख्या व अभ्यास जितना ही अधिक होगा उतने ही नए पद की धारणा मे अधिक कमी होगी। दूसरे शब्दो मे, पूर्ववर्ती अभ्यास का धारणा पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। पीटरसन व पीटरसन के प्रयोग मे भी इस अग्रोन्मुख बाधा के प्रभाव की सभावना अधिक दिखाई पडती है (एडम्स 1967)। इसी प्रकार बाद मे की जाने वाली क्रियाएँ, नए शब्दो का सीखना, पुराने शब्दो को बाधा पहुँचाता है। इन परवर्ती पदो की सख्या व अभ्यास जितना ही अधिक होगा उतनी ही अधिगम किये पद की धारणा मे अधिक कमी होगी। दूसरे शब्दो मे, परवर्ती, अभ्यास का भी धारणा पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है।

अग्रोन्मुख बाधा पर केप्पेल व अन्डरवुड (1962 अ) का प्रयोग सफल साक्ष्य प्रस्तुत करता है। इस प्रयोग मे केवल तीन त्रिपद व्यजन लिए गये और प्रत्येक की परीक्षा, तीन धारणा विश्राम 3, 9, व 18 सेकण्ड पर की गई। प्रत्येक त्रिपद की परीक्षा प्रत्येक धारणा विश्राम मे पहले, दूसरे और तीसरे—अधिगम प्रत्याह्वान क्रम मे की गई जिससे कि अग्रोन्मुख बाधा को जाना जा सके। चित्र स० 9 8 से स्पष्ट है कि प्रथम त्रिपद की दूसरे, व तीसरे त्रिपद की तुलना मे धारणा अधिक हुई, इसका कारण प्रथम त्रिपद मे अग्रोन्मुख बाधा का अभाव है और जैसे-जैसे अग्रोन्मुख बाधा बढती जाती है (दूसरे त्रिपद से तीसरे त्रिपद मे) धारणा मे कमी आती जाती है।

लोएस (1964) ने भी उपरोक्त परिणाम की पुष्टि की है। विकेन्स, वार्न व एलेन (1963) ने यह महत्वपूर्ण तथ्य बताया है कि अग्रोन्मुख बाधा इस बात पर निर्भर करती है कि बाद मे अभ्यास की जाने वाली सामग्री और पूर्ववर्ती अभ्यास की सामग्री के बीच कितनी समानता है। यदि पहले सख्याओ का और बाद मे त्रिपद व्यजन का अधिगम व प्रत्याह्वान हो तो विस्मरण कम होगा क्योकि दोनो सामग्रियो मे भिन्नता है।

---

1 पूर्ववर्ती बाधा से तात्पर्य अग्रोन्मुख बाधा और परवर्ती से तात्पर्य पृष्ठोन्मुख बाधा से है जिनको कि विस्मरण को बाधा देने वाले निर्धारको की चर्चा मे आगे बताया गया है।

पृष्ठोन्मुख बाधा भी इसी भांति अल्पकालिक धारणा मे कमी लाती है(हाउसटन् 1968)। बाधा पहुंचाने वाली सामग्री यदि एक ही प्रकार की हो तो अधिगम की गई सामग्री का अ० का० स्मृति पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। विशेष रूप से, जैसा कि अ० का० स्मृति व दी०का० स्मृति मे विभेद करते समय हम संकेत कर चुके हैं, कि अ० का० स्मृति मे ध्वन्यात्मक समानता अधिक बाधा पहुँचाती है।
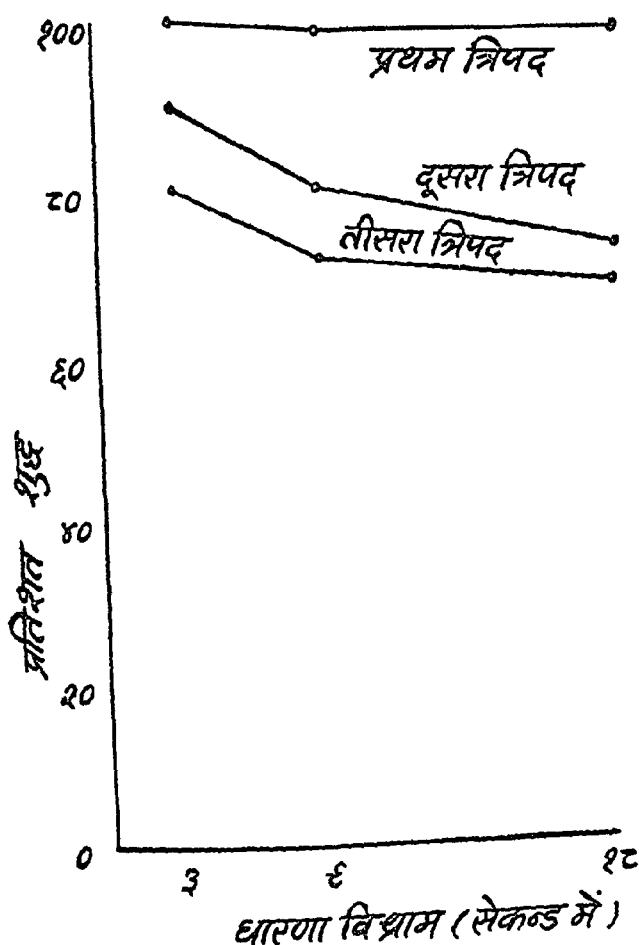
चित्र सख्या 9 8

[पूर्ववर्ती (अग्रोन्मुख) बाधा का अल्पकालिक स्मृति पर प्रभाव (अन्डरवुड 1962)]

(स) अभ्यासो के बीच समय का अन्तर और अल्पकालिक स्मृति–प्रयोज्य एक अभ्यास करने के बाद दूसरा अभ्यास कितनी देर बाद प्रारम्भ करता है इसका भी अ० का० स्मृति पर प्रभाव पडता है। इसके बीच के सम्बन्ध को ढूँढने के प्रयास मे, केप्पेल व अण्डरवुड ने पाया कि धारणा अच्छी होती जाती है यदि एक अभ्यास और दूसरे अभ्यास के बीच समय का अन्तर अधिक होता जाता है। इसका कारण स्मृति-छाप को स्थिर होने मे समय का मिल जाना हो सकता है।

धारणा-मापन की विधियाँ

प्रयोज्य ने अधिगम के बाद कितनी सामग्री को धारणा किया, इसके मापन की अनेक विधियाँ हैं, जिन्हे हम धारणा की मापन विधियाँ पुकारेंगे। इन विधियो का सामान्य उद्देश्य धारणा का मापन ही होता है किन्तु प्रत्येक विधि कुछ विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति करती है एव अपनी विशिष्ट उपयुक्तता रखती है। प्रमुख प्रचलित विधियाँ निम्न हैं—(1) प्रत्याह्वान[1] (2) प्रत्यभिज्ञा या पहचान[2] (3) पुनरअधिगम[3] (4) पुनर्रचना[4]।

(1) प्रत्याह्वान

यह धारणा मापन की सबसे प्रचलित और सरल विधि है। इस विधि मे यह देखा जाता है कि पहले अधिगम सामग्री मे से प्रयोज्य धारणा विश्राम के बाद सही-सही सामग्री का कितना भाग दुहरा पाता है। इस विधि को सक्रिय प्रत्याह्वान[5] कहकर पुकारना ही उपयुक्त लगता है। प्रत्याह्वान विधि मे प्रयोज्य की धारणा का मापन निम्न उदाहरण से समझा जा सकता है। एक प्रयोज्य दस निरर्थक पदो की एक सूची को पूर्ण शुद्धता (100 प्रतिशत शुद्धता) के साथ एकदम कठस्थ कर लेता है। प्रत्याह्वान विधि द्वारा प्रयोगकर्ता धारणा की मात्रा का मापन करना चाहता है तो उस प्रयोज्य से उन कण्ठस्थ पदो को एक अवधि, जैसे तीन दिन बाद या सात दिन के बाद दुहराने को कहता है। जितने निरर्थक पदो को प्रयोज्य दुहराने मे सफल हो जाता है उनकी सख्या ही प्रयोज्य की धारणा की मात्रा को दर्शाती है। मान लीजिये प्रयोज्य सही सही 5 निरर्थक पद दुहरा पाता है। इसका अर्थ है प्रयोज्य की धारणा की मात्रा 50 प्रतिशत (प्रत्याह्वान प्रतिशत) हुई।

प्रयोज्य प्रत्याह्वान विधि मे बोलकर भी दुहरा सकता है और लिखकर भी। उपरोक्त उदाहरण मे प्रयोज्य स्वतन्त्र है कि वह सूची के निरर्थक पदो को किसी भी क्रम मे याद करे। इसे मुक्त प्रत्याह्वान कहते हैं। यह प्रत्याह्वान कई प्रकार से किया जाता है। अवधारित अशो की विधि[6] मे जैसा कि नाम से प्रकट है सूची के पदो मे से जितने पद वह सही-सही दोहरा पाता है उनकी सख्या ही धारणा

---

1 Recall 2 Recognition 3 Relearning 4 Reconstruction 5 Active recall 6 Method of retained members

प्राप्तांक होती है। इस विधि मे सही-सही गणना इस बात पर निर्भर करती है कि अधिगम सामग्री को कितनी सरलता के साथ पृथक-पृथक अशो मे विभाजित किया जा सकता है। सामग्री जितनी ही विभाज्य होगी उतनी ही यह विधि सफल होगी। निरर्थक पद व सख्याओ के लिए इस विधि से कोई कठिनाई नही होती है किन्तु कविता व गद्याशो के लिये यह विधि अधिक उपयुक्त नही होती है क्योंकि एक कविता के विभिन्न अश समान कठिनाई व आकार के नही होते हैं।

तात्कालिक स्मृति विस्तार विधि[1] भी इसी से सम्बन्धित है जिसमे दिखाकर या सुनाकर प्रयोज्य की सख्यायें, अक्षर व शब्द इत्यादि एक बार प्रस्तुत किये जाते है और तत्काल बाद प्रयोज्य उन्हे दुहराता है। पदो की सख्या धीरे-धीरे तब तक बढायी जाती है जब तक कि एक ऐसी अवस्था न आ जाय कि प्रयोज्य दोहराने मे असफल न हो जाय। तात्कालिक स्मृति विस्तार से हमारा तात्पर्य उत्तेजक पदो की उस अधिकतम सख्या से होता है जिसे प्रयोज्य तत्काल दुहराने मे सफल हो पाता है। अको के लिए प्राय कालेज के विद्यार्थियो का तात्कालिक स्मृति विस्तार आठ अक होता है। इसका अर्थ है कि आठ अक तक की सख्या का वह तत्काल प्रत्याह्वान कर पाता है। इस विधि की विशेषता धारणा विश्राम की अवधि का बहुत छोटा होना है। इस विधि का विशेष उल्लेख पहले ही अल्पकालिक स्मृति के सदर्भ मे किया जा चुका है।

पूर्वानुमान विधि[2] जैसा नाम से प्रकट है कि इस विधि मे प्रत्याह्वान एक विशेष क्रम पर आधारित किया जाता है। प्रयोज्य को एक उत्तेजक पद दिखाया जाता है। स्मृति ढोल[3] की खिडकी का उपयोग किया जाता है और प्रयोज्य आगे आने वाले पद का पूर्वानुमान करता है। मान लीजिये सूची मे निम्न पाँच शब्द है—कमल, कलश, सरल, तरल, पटल। प्रयोज्य को पहले स्मृति ढोल पर 'कमल' शब्द दिखाया जाता है और वह अगले पद 'कलश' का पूर्वानुमान करता है और जब कलश शब्द सामने आ जायेगा तो यदि उसकी धारणा सही-सही हुई है तो वह 'सरल' शब्द का पूर्वानुमान करेगा और खिडकी मे उस शब्द के प्रकट होने से पहले ही उसे बता देगा। धारणा प्राप्ताक शुद्ध पूर्वानुमानो की सख्या का योग होता है।

जब युगल साहचर्य विधि द्वारा प्रत्याह्वान कराया जाता है तो जोडे मे से एक पद को उत्तेजक के रूप मे प्रस्तुत किया जाता है और दूसरे पद का प्रत्याह्वान कराया जाता है। धारणा प्राप्ताक इस बात पर निर्भर करता है कि कितने जोडे सही-सही पूरे किये गये अर्थात् युगल सहचारियो मे से एक पद के साथ सही-सही सहचारी पद ही दोहराये गये। उदाहरणार्थ, 603—कमल इत्यादि।

---

1 Immediate memory span method 2 Anticipation method
3 Memory drum

ये विभिन्न विधियाँ इस बात मे भिन्नता रखती है कि प्रयोज्य से कई प्रकार से प्रत्याह्वान कराया जा सकता है। इस विधि का प्रमुख पहलू तो यह है कि प्रयोज्य को यह एक विशिष्ट अवसर मिल जाता है कि वह पहले अधिगम की गई सामग्री मे से ही जो कुछ भी हो प्रत्याह्वान कर सके।

(2) प्रत्यभिज्ञा

जब धारणा की जाँच प्रत्यभिज्ञा विधि से करायी जाती है तो प्रयोज्य के सामने पहले अधिगम की गयी सामग्री के साथ-साथ कुछ नयी सामग्री भी मिला दी जाती है। प्रयोज्य का काम सम्पूर्ण सामग्री मे से पहले अधिगम की गयी सामग्री की सही-सही प्रत्यभिज्ञा या पहचान करना होता है। उदाहरण के लिए, जब न्यायालय मे गवाह किसी अपराधी की पहचान करता है तो उम अपराधी को अन्य कई व्यक्तियो के साथ खडा कर दिया जाता है और यदि गवाह सही अपराधी को पहचान लेता है तो इसका अर्थ होता है कि उस व्यक्ति का उसे स्मरण है। ऐमे ही प्रयोज्य को दस छायाचित्र पन्द्रह बार दिखाये जाएँ और बाद मे इन दस पुराने छायाचित्रो मे दस और नये मिला दिए जाएँ, तब प्रयोज्य की धारणा की परीक्षा की जा सकती है कि प्रयोज्य पुराने चित्रो को सही-सही पहचान पाता है कि नही। बहुत सम्भावना इस बात की रहती है कि केवल अन्दाज से वह सफलता प्राप्त कर ले। इस सम्भावना का निराकरण कर दिया जाता है जबकि सही-सही प्रतिशत शुद्ध पहचान मे से प्रतिशत अशुद्ध पहचान को घटा दिया जाता है। उदाहरण के लिए—यदि बीस निरर्थक पदो को सिखाया जाय और प्रत्यभिज्ञ परीक्षण के लिए उसमे चालीस नये पद मिला दिये जायें। प्रयोज्य अ यदि दस निरर्थक पद सही-सही पहचान लेता है और पाँच निरर्थक पद अशुद्ध पहचानता है अर्थात् मिलाये गये चालीस मे से पाँच निरर्थक पदो को पुरानी सूची का समझ बैठता है, इस स्थिति मे हम यह नही कह सकते है कि उसकी धारणा पचास प्रतिशत है क्योकि उसने दस निरर्थक पद सही-सही पहचान लिए है, उसने चालीस मे से 5 अर्थात् 12 5 प्रतिशत निरर्थक पद अशुद्ध भी पहचाने है। इसलिये धारणा=शुद्ध पहचान प्रतिशत (50 प्रतिशत)—अशुद्ध पहचान प्रतिशत (12 5 प्रतिशत)=37 5 प्रतिशत होगी। पहचान या प्रत्यभिज्ञा प्राप्तांक प्राप्त करने का सूत्र निम्न है—

$$\text{प्रत्यभिज्ञा प्राप्तांक प्रतिशत} = \frac{\text{शुद्ध—अशुद्ध प्रतिशत}}{\text{सख्या}}$$

सूत्र मे, शुद्ध=शुद्ध पहचाने गये पद

(अर्थात् पुरानी सूची मे से पहचाने गये और नयी सूची मे से नही पहचाने गये)

अशुद्ध=अशुद्ध पहचाने गये पद

(अर्थात् नयी सूची मे से पहचाने गये व पुरानी सूची मे से नही पहचाने गये)

सख्या=कुल पदो की सख्या

(पुराने पदो व नए पदो का योग)

माध्यकीय विधियो के सहारे प्रयोज्य द्वारा किये गये अनुमान का भी आकलन हो सकता है। वैसे यह आवश्यक नही है कि अशुद्ध पहचान का कारण अनुमान लगाना ही हो, इसका कारण कम अधिगम हो सकता है। किन्तु जब भी पहचान विधि से धारणा परीक्षा की जाय सदैव अशुद्ध पहचान के लिए प्रयोज्य को दण्डित करना चाहिए।

प्रश्न यह उठता है कि पहचान परीक्षा मे नयी सूची मे कितने पद रखे जायं व किस प्रकार के पद रखे जायें। पहले मे हमारा तात्पय नई सूची व पुरानी सूची के पदो की सख्या के अनुपात से है व दूसरे से हमारा तात्पर्य दोनो सूचियो की समानता से है। जहाँ तक अनुपात का प्रश्न है कोई निश्चित अनुपात नही है किन्तु सामान्य रूप से उतने ही नये पद मिलाये जाते है जितने कि पुराने पद होते हैं। जैसे-जैसे नये अशुद्ध पदो की सख्या बढाते जायेंगे वैसे-वैसे पहचान का कार्य कठिन होता जायेगा।

जहा तक समानता का प्रश्न है स्पष्ट है कि यदि नये पद व पुराने पद दोनो एकदम असमान है तो प्रयोज्य को पहचानने मे कोई कठिनाई नही होगी। उदाहरण के लिए, निरथक पदो की एक सूची की धारणा की यदि हम पहचान विधि से परीक्षा करना चाहते है और पहचान के लिए ज्यामितीय आकृतियाँ मिला देते है तो क्या हमारा उद्देश्य पूरा होगा ? नही। क्योकि ज्यामितीय आकृतियाँ और निरर्थक पद दोनो एक-दूसरे से इतने भिन्न है कि उन्हे अलग अलग पहचानने का प्रयास नही करना पडेगा। इसलिये यह आवश्यक है कि मिलाये गये पद, कुछ न कुछ समानता पुराने पदो से अवश्य रखते हो। इन दोनो प्रकार के पदो के बीच जितनी ही अधिक समानता होगी, प्रत्यभिज्ञा या पहचान मे उतनी ही कठिनाई होगी (लेहमान 1889, जी० एच० सीवार्ड 1928)। यदि हम ज्यामितीय आकृतियो को दिखाकर उनमे अन्य ज्यामितीय आकृतियाँ मिलती-जुलती मिला दें तो पहचान कठिन हो जायेगी। एक अच्छे पहचान परीक्षण मे मध्यम स्तर की समानता, पुराने व नए पदो मे रखनी चाहिये अर्थात न तो पद बिल्कुल असमान हो, न एकदम समान।

प्राय यह देखा गया है कि पहचान मे धारणा प्राप्तांक प्रत्याह्वान की तुलना मे अधिक आता है। एक पद को उसके प्रत्याह्वान की अपेक्षा पहचानना सरल होता है। पहचान विधि से धारणा क्यो अधिक हो जाती है इसका एक स्पष्ट कारण है— धारणा परीक्षा मे शुद्ध पद भी सामने आता है और ज्योही वह सामने आता है पहले के अधिगम की शक्ति, उसकी उपस्थिति से बढ जाती है। इसके विपरीत प्रत्याह्वान मे प्रयोज्य को शुद्ध पद स्वय उपस्थित करना पडता है। एशलिस (1920) ने प्रयोग द्वारा दर्शाया कि पदो, शब्दो व मुहावरो की धारणा, प्रत्यभिज्ञा विधि मे प्रत्याह्वान की अपेक्षा अच्छी होती है। 96 प्रयोज्यो के औसत परिणाम निम्न रहे (सारणी सख्या 9 5)

सारणी सख्या 9 5

	पद	शब्द	मुहावरे
प्रत्याह्वान प्राप्ताक	12	39	22
प्रत्यभिज्ञा प्राप्ताक	42	65	67

धारणा परीक्षा की जितनी भी विधिया है उनमे प्रत्यभिज्ञा सबसे सवेदनशील है। लुह (1922) ने निरर्थक पदो की धारणा परीक्षा विभिन्न विधियो द्वारा कर परिणाम प्राप्त किये जो कि निम्नलिखित चित्र मे दिये गये हैं।
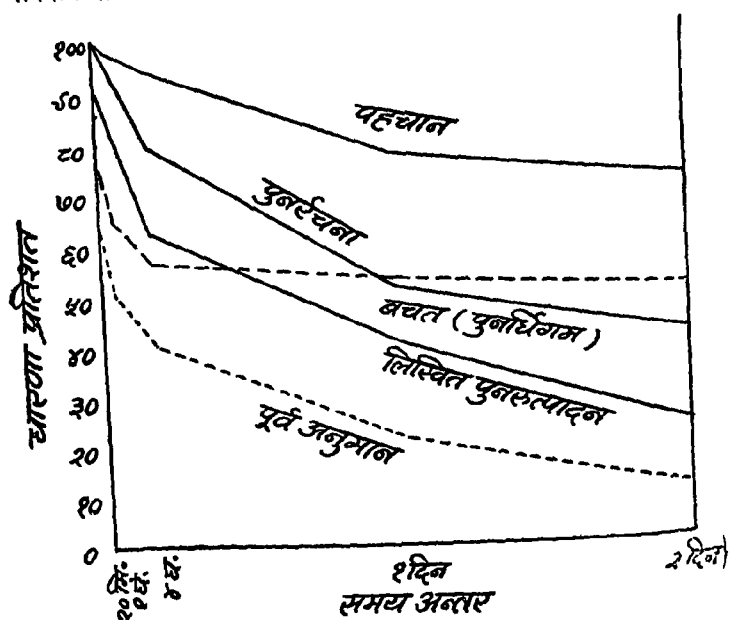
चित्र सख्या 9 9 धारणा मापन की विभिन्न विधियो की सापेक्षिक तुलना (लुह 1922)

(3) पुन अधिगम विधि या बचत

मान लीजिये प्रयोज्य ने एक कविता पूरी-पूरी (100 प्रतिशत) याद कर ली है। यदि कुछ समय बाद वह उसे दुहराने मे असफल होते हैं तो उसे पुन उसी विधि से कविता याद करने को कहा जाता है और देखा जाता है कि दुबारा कविता को पूरी-पूरी (100 प्रतिशत दक्षता) याद करने मे पहले की तुलना मे कितना कम समय या प्रयास लगा। यदि प्रयोज्य की धारणा होगी तो पुन अधिगम मे प्रयास व

समय की वचत होगी। जितनी ही उसकी धारणा अधिक होगी उतनी ही शीघ्रता से वह अपने पुराने दक्षता स्तर को पा जायेगा। यदि धारणा नही होगी तो उसे उतने ही प्रयास करने होगे या उतना ही समय लगेगा जितना कि पहले मूल अधिगम के समय लगा था। धारणा का अप्रत्यक्ष मापन, प्रयास व समय की बचत के आधार पर होता है इसलिए पुन अधिगम विधि को बचत विधि भी कहा जाता है।

मान लीजिये कविता का एक शुद्ध कठस्थीकरण प्रयोज्य 10 प्रयास के बाद करता है। 1 दिन बाद उसे वही कविता पुन याद करने के लिए दी जाती है तो वह 6 प्रयास लेता है अर्थात् 4 प्रयास कम लेता है। 4 प्रयास की बचत हुई जो कि धारणा के कारण है। प्रतिशत बचत को निम्न सूत्र से प्राप्त किया जा सकता है

$$\text{प्रतिशत बचत} = \frac{\text{मूल अधिगम} - \text{पुन अधिगम}}{\text{मूल अधिगम}} \times 100$$

इसी सूत्र को हिलगार्ड (1934) ने अधिगम के कसौटी स्तर दक्षता स्तर) को ध्यान मे रखते हुये निम्न रूप दिया है—

$$\text{बचत प्राप्ताक प्रतिशत} = \frac{100\,(\text{मू० अ०} - \text{क० प्र०}) - (\text{पु० अ०} - \text{क० प्र०})}{\text{मूल अधिगम} - \text{क० प्र०}}$$

मू०अ० = मूल अधिगम मे किये गये प्रयास
क०प्र० = कसौटी स्तर प्राप्त करने के लिए किये गये प्रयास
पु०अ० = पुन अधिगम मे किये गये प्रयास

बचत विधि के उपयोग मे एक सावधानी वरत लेनी चाहिए। जब हम उसी सामग्री का एक व्यवधान के बाद पुन अधिगम करते है तो इस सम्भावना से इन्कार नही किया जा सकता है कि इस व्यवधान के मध्य प्रयोज्य की अधिगम-कुशलता सामग्री से परिचित होने के बाद बढ गई हो। यदि ऐसा होता है तो बचत प्राप्ताक न केवल धारणा का परिणाम होगा अपितु इस बढी हुई अधिगम योग्यता का परिणाम होगा। इस त्रुटि को दूर किया जा सकता है। इसके लिए पुन अधिगम उसी सामग्री का न कराकर समतुल्य सामग्री पर कराया जाता है। यथा दो निरर्थक पदो की समान लम्बाई की सूचियाँ, जिनका साहचय मूल्य समान हो, ली जा सकती हैं। एक का मूल अधिगम मे तथा दूसरे का पुन अधिगम मे प्रयोग किया जा सकता है। इस कठिनाई को उतनी ही सफलता से दूर कर सकते है जितनी सफलता से प्रयोगकर्ता समतुल्य सूची या कार्य प्रस्तुत कर सके।

इस विधि की विशेषता यह है कि प्रयोज्य को विशिष्ट प्रतिक्रियाएँ सँजोकर नही रखनी पडती हैं। इसीलिए अधिगम विधि से बचत, दीर्घकालीन धारणा विश्राम के बाद भी पाई जाती है (वर्ट, एच० ई० 1941)।

(4) पुन रचना

मुन्सटरवर्ग व विधम 1894, गैम्बल 1909, स्मिथ 1934 इत्यादि द्वारा

प्रयुक्त इस विधि मे प्रयोज्य को उसी क्रम मे उत्तेजको को फिर से लगाना पडता है जिसमे अधिगम के समय उत्तेजक प्रस्तुत किये गये थे। अधिगम के समय प्रस्तुत उत्तेजको के क्रम को तोड दिया जाता है और प्रयोज्य का कार्य होता है कि वह मूल-क्रम व व्यवस्था की पुन रचना करे। इस विधि मे शाब्दिक सामग्री का कम उपयोग होता है। प्राय इसमे रगो, आकृतियो व ऐसी ही सामग्री का उपयोग होता है। उदाहरण के लिए, जब लकडी का एक मकान, छोटे बच्चे को बनाकर दिया जाता है और उसके बाद उसे तोड दिया जाता है, बच्चा फिर से उसी प्रकार के मकान को बनाता है। पहले बनाये गये मकान मे और बाद मे बनाये गये मकान के बीच जितनी ही अधिक समानता व शुद्धता होगी उतनी ही धारणा अधिक समझी जायेगी। धारणा प्राप्ताक उन पदो की सख्या होता है जो सही क्रम मे पुन प्रस्तुत कर दिये गये। स्पीयर मैन की सहसम्बन्ध विधि मे मूल रचना व पुन रचना के बीच सहसम्बन्ध ज्ञात कर दोनो मे समानता को दर्शाया जा सकता है।

पुन रचना विधि सभी प्रकार की सामग्रियो पर प्रयुक्त नही की जा सकती है। केवल उन्ही सामग्रियो पर इसका प्रयोग हो सकता है जो कि खडित की जा सकें। इस विधि मे सबसे अधिक महत्व क्रम पर दिया जाता है। अधिगम किये गये क्रम की पुन रचना मे प्रयोज्य द्वारा किये गये प्रयास इन भिन्न-भिन्न अवस्थाओ मे देखे जा सकते है।

इस विधि का सीमित उपयोग है, क्योकि जिस मानसिक प्रक्रिया की जाँच यह विधि करती है वह क्रमिक अनुमान विधि से मिलती-जुलती है, अन्तर केवल सक्रियता का हो सकता है।

विस्मरण को प्रभावित करने वाले परिवर्त्य

यह सामान्य कथन, समय के साथ-साथ विस्मरण होता है, यह नही दर्शाता है कि समय ही विस्मरण का कारण है क्योकि इस समय पर कई बातो का प्रभाव पडता है। विस्मरण की मात्रा कई विशिष्ट दशाओ से प्रभावित होती है। विस्मरण को प्रभावित करने वाले प्रमुख तत्वो का उल्लेख यहाँ किया जायेगा। इन तत्वो को हम धारणा के निर्धारको की सज्ञा भी दे सकते है।

यहाँ केवल उन निर्धारको का उल्लेख किया जायेगा जिनका सम्बन्ध, अधिगम की दशाओ से—अधिगम सामग्री से और अधिगम पर पडने वाली बाधाओ से है।[1]

(1) अधिगम की मात्रा

धारणा से सम्बन्धित सबसे महत्वपूर्ण तथ्य है, अधिगम की जाने वाली

---

1 यहाँ पर सप्रेणात्मक व प्रत्यक्षात्मक निर्धारको का उल्लेख नही किया गया है। इनसे सम्बन्धित सकेत प्रत्यक्षीकरण व सप्रेरणा के अध्याय मे प्राप्त हो सकते हैं।

सामग्री पर किये गये प्रयासो की सख्या अर्थात् कितनी बार अभ्यास किया गया है। जिस सामग्री का अधिक अभ्यास किया जायेगा उसके स्थिर बने रहने की सभावना अधिक होगी और उसकी धारणा भी अधिक होगी। इस कथन की पुष्टि प्रयोगो द्वारा हुई है। धारणा अधिगम की मात्रा बढने के साथ-साथ बढती जाती है। यदि एक निरर्थक पदो की सूची 15 बार दुहराई गई, एव पुन दो दिन बाद उस सूची का पुनराधिगम कराया जाय तो पहले से कम प्रयास (मान लीजिये 10) प्रयास लगे अर्थात 5 प्रयास की बचत हुई। किन्तु यदि वही सूची याद करने के लिए प्रयोज्य को 20 बार दी जाती तो सम्भव था दो दिन बाद उस सूची को पुन याद करने मे उसे 5 प्रयास ही लगते अर्थात् बचत तथा धारणा दोनो अधिक होती। यह अनिवार्य नही है कि सदैव जिस अनुपात मे अधिगम की मात्रा बढे उसी अनुपात से धारणा भी बढ़े किन्तु कुछ प्रारम्भिक अवस्था तक अधिगम मे ऐसा सम्बन्ध प्राप्त होता है।

इसका यह अर्थ नही है कि अधिगम की मात्रा यदि बढाते चले जाएं तो उत्तरोत्तर धारणा मे वृद्धि होती जायेगी और एक अवस्था ऐसी भी आ सकती है जब उस सामग्री की शत-प्रतिशत धारणा (शून्य विस्मरण) बनी रहे। धारणा मे वृद्धि एक अवस्था तक ही होती है जिसके बाद अधिगम की मात्रा बढाते जाने से परिवर्तन नही होता ह।

आवश्यक अभ्यास से अधिक अभ्यास धारणा को लाभ पहुंचाता है। मान लीजिये एक कविता को शुद्ध रूप से एक बार पूरी तरह कण्ठस्थ करने के लिए एक प्रयोज्य को 20 बार कविता को पढना पडता है अर्थात् बीस प्रयास करने पडते है। क्या होगा यदि प्रयोज्य कविता को 30 बार या 40 बार पढ़े? धारणा पर इसका अनुकूल प्रभाव पडेगा अर्थात् तब कविता की धारणा पहले से अच्छी होगी। अति अभ्यास और धारणा के बीच यह सम्बन्ध बिल्कुल स्पष्ट है (अण्डरवुड 1964 ब, अण्डरवुड व केप्पेल 1964 अ)। यहां पर कूगर के प्रयोग का वर्णन किया जायेगा। कूगर (1929) ने बारह एकपदीय सज्ञाओ की सूची ली। अधिगम की दो मात्राए प्रयोग की गई—150 प्रतिशत अधिगम (50 प्रतिशत अति अभ्यास) (जैसे सूची यदि 10 प्रयास मे याद हो जाये तो 15 प्रयास दिये जाये) और 200 प्रतिशत अधिगम (जैसे सूची यदि 10 प्रयास मे याद हो जाये तो 20 प्रयास दिये जायं—100 प्रतिशत अति अभ्यास)। प्राप्त परिणाम सारणी (9 6) मे प्रस्तुत हैं जो चार धारणा विश्राम मे अति अधिगम का धारणा पर प्रभाव दर्शाती है।

कूगर के परिणाम वक्र के रूप मे चित्र सख्या 9 10 मे अगले पृष्ठ पर दिखाये गये हैं।

सारणी के परिणाम से स्पष्ट है कि अति अभ्यास की मात्रा जब बहुत अधिक नही है (50 प्रतिशत) तो धारणा को बहुत लाभ पहुँचता है किन्तु अधिक

सारणी सख्या 9 6

अति अधिगम व धारणा के बीच सम्बन्ध

धारणा विश्राम	शुद्ध कण्ठस्थ (100 प्रतिशत अधिगम)	प्रथम अति अधिगम की मात्रा (150 प्रतिशत अधिगम)	द्वितीय अति अधिगम की मात्रा (200 प्रतिशत अधिगम)
1 दिन	3 10	4 60	5 83
1 सप्ताह	20	1 30	1 65
2 सप्ताह	15	65	90
4 सप्ताह	00	25	40

अति अभ्यास से लाभ मे कम वृद्धि होती है । सामान्यत प्रयोग यह दर्शाते है कि 50 प्रतिशत अति अभ्यास की मात्रा आदर्श प्रमाणित होती है ।
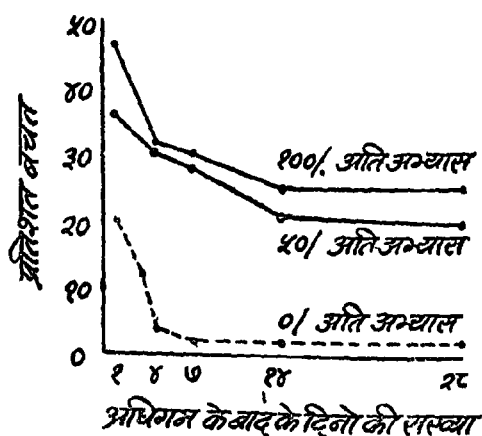
चित्र सख्या 9 10

[अधिगम की मात्रा और धारणा के वीच सम्बन्ध (क्रूगर 1929)]

(2) अधिगम सामग्री का स्वरूप

(अ) सार्थकता—हम देख चुके है कि सामग्री की सार्थकता उसके अधि‍ को प्रभावित करती है । हम यह भी जानते है कि अधिगम की गति और विस्म की गति मे परस्पर विरोध है —अधिगम तीव्र गति से होगा तो विस्मरण मन्द ग से होगा । इसलिये सामग्री जितनी ही अधिक सार्थक होगी उसका विस्मरण व होगा ।

रीड (1946) ने सबोध निर्माण से प्राप्त परिणामो की तुलना एबिंगहॉस के निरर्थक पदो के प्राप्त परिणामों से करने पर यह देखा कि अधिगम के छह सप्ताह बाद सबोध की धारणा मे 10 प्रतिशत की कमी हुई जबकि निरर्थक पदो की धारणा मे 80 प्रतिशत की कमी हुई।

विविध प्रकार की सामग्रियों के विस्मरण पर किये गये प्रयोगो से प्राप्त परिणामो को चित्र सख्या 9 11 मे दिखाया गया है।
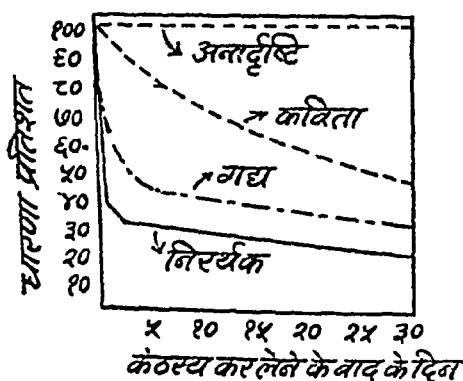
चित्र सख्या 9 11

[सामग्री की सार्थकता और धारणा के बीच का सम्बन्ध (गिलफर्ड, जनरल साइकालोजी पृ० 448 मे)]

स्पष्ट है कि निरर्थक पदो का विस्मरण सबसे अधिक होता है उससे कम विस्मरण गद्य का व उससे भी कम विस्मरण कविता का होता है। सूझ, अन्तर्दृष्टि या समझ के साथ अधिगम की गई सामग्री का शीघ्र विस्मरण बहुत कम पाया जाता है।

(ब) सामग्री की मात्रा–अधिगम की सामग्री की मात्रा, धारणा को प्रभावित करती है। हम जानते है कि एक लम्बे कार्य का अधिगम कठिन होता है क्योकि जब कार्य अधिक होता है तो प्रयोज्य को समय अधिक देना पडता है। यद्यपि लम्बा कार्य छोटे कार्य की अपेक्षा अधिक समय तक बना रहता है। जब विभिन्न लम्बाइयो की दो सूचियो का समान दक्षता (कसौटी) स्तर तक अधिगम किया जाता है तो यह पाया जाता है कि छोटी सूची की तुलना मे लम्बी सूची के पदो मे से अधिकाश की धारणा बनी रहती है। सामग्री की मात्रा और धारणा के बीच इस सम्बन्ध पर आश्चर्य नही करना चाहिए क्योकि एक लम्बे कार्य मे प्रयोज्य अधिक समय तक अभ्यास करता रहता है और सूची के प्रत्येक पद पर अधिक समय दिया जाता है। साथ ही कई पदो का अति अभ्यास या अधिगम भी हो जाता है जो कि धारणा के

लिए अनुकूल होता है। एबिंगहॉस (1885) द्वारा प्राप्त परिणाम यही सम्बन्ध दर्शाता है। उसने विभिन्न लम्बाइयो की सूचियो का अभ्यास किया और 24 घण्टे बाद उनका पुन अधिगम किया। बचत प्रतिशत निम्न सारणी मे द्रष्टव्य है—

सारणी सख्या 9 7

निरर्थक पदो की सख्या	मूल अधिगम	बचत प्राप्ताक प्रतिशत मे
12	17 पाठ	35
24	45 „	49
36	56 „	58

अन्य प्रयोगकर्ताओ ने (यथा वुडवर्थ 1915) ने भी यह परिणाम पुष्ट किया है कि लम्बे पाठ अधिक अच्छी तरह अवधारित होते हैं।

(स) कार्यगत समानता—यदि प्रयोज्य को एक सूची याद करने के लिए दी जाय और उस सूची मे प्रयुक्त पद एक दूसरे से कम समानता या अधिक समानता या असमानता रखते है तो किस अवस्था मे धारणा अच्छी होगी ? हम इस सूचीगत समानता का अधिगम पर प्रभाव देख चुके हैं। इसका धारणा पर प्रभाव देखने की सरल विधि है कि दो सूचियो का प्रयोग किया जाय जिनमे पदो की परस्पर समानता[1] की मात्रा भिन्न-भिन्न हो। गिब्सन (1942) ने यह दर्शाया है कि जितनी ही सूची के अन्दर पदो मे परस्पर समानता अधिक होगी उतनी ही विस्मरण की गति तीव्र होगी। गिब्सन ने ज्यामितीय आकृतियो को उत्तेजक के रूप मे और निरर्थक पदो को प्रतिक्रिया के रूप मे युगल साहचर्य विधि से प्रस्तुत किया और दोनो सूचियो के उत्तेजको मे समानता के अश का अन्तर रखा था।

एक अन्य विधि द्वारा भी कार्यगत समानता के प्रभाव को देखा जा सकता है। बक्सटन व न्यूमैन (1940) ने दो क्रमिक सूचियाँ बनाईं। एक सूची मे उन्होने 6 निरर्थक पद और 2 निरर्थक दीखने वाली आकृतियो को (ऐसी आकृतियाँ जो कि कोई चित्र न प्रस्तुत करती हो) रखा। दूसरी सूची मे 6 निरर्थक दीखने वाली आकृतियो और दो निरर्थक पदो को रखा। ध्यान देने की बात थी कि पदो और आकृतियो का सार्थकता मूल्य लगभग समान रखा गया। पहली सूची के लिए यह माना गया कि 6 निरर्थक पद एक समान सामग्री हैं और 2 आकृतियो के भिन्न होने के कारण अलग हैं। इसी प्रकार दूसरी सूची मे 2 निरर्थक पद अलग व भिन्न हैं। सूची को याद करने मे प्रयोज्य को एक प्रकार के 6 निरर्थक पदो को एक दूसरे से अलग करना होगा और 2 आकृतियो के बीच अन्तर देखना होगा। इस अध्ययन के परिणाम यह दर्शाते हैं कि सूचियो मे अलग दीखने वाले पदो (पहली सूची मे आकृ-

1 Intra-task similarity

तियां व दूसरी सूची मे निरर्थक पद) की धारणा, एक समान दीखने वाले पदो (पहली सूची मे निरर्थक पद व दूसरी सूची मे आकृतियां) की तुलना अधिक होती है।

यह निष्कर्ष उचित जान पड़ता है कि रचनागत समानता जितनी ही अधिक होगी, विस्मरण उतना ही अधिक होगा।

(द) अभ्यास का वितरण—यदि दो प्रयोज्य समूह एक सूची का एक दक्षता स्तर तक अभ्यास करते हैं किन्तु एक समूह तो एक ही बार मे बैठकर पूरी सूची का अभ्यास करता है और दूसरा समूह रुक-रुककर समय को विश्राम देकर अभ्यास करता है तो प्रश्न यह है कि यदि दोनो समूहो के लिए अभ्यास की मात्रा व दशा समान है तो किस समूह मे विस्मरण कम होगा या किस समूह की धारणा अच्छी होगी? पहले समूह—एकत्रित अभ्यास समूह या दूसरे—वितरित अभ्यास समूह मे से कौन अधिक विस्मरण करेगा? प्रयोग सम्मत सामान्य परिणाम यह है कि वितरित अभ्यास की अवस्था मे धारणा अच्छी होती है अर्थात् दूसरा समूह कम विस्मरण दर्शायेगा।

हावलैंड (1940) के एक प्रयोग को यहाँ उद्धृत किया जा सकता है। हावलैंड ने 32 प्रयोज्यो से आठ प्रयोगात्मक दशाओं मे, 12 निरर्थक पदो का अधिगम कराया। चार दशाओं मे एकत्रित अभ्यास की विधि का प्रयोग हुआ और धारणा परीक्षा 6 सेकण्ड, 2 मिनट, 10 मिनट और 24 घण्टे के बाद ली गई। अन्य चार दशाओं मे प्रत्येक प्रयास के बाद 2 मिनट का व्यवधान दिया गया अर्थात् वितरित अभ्यास विधि का प्रयोग हुआ। धारणा परीक्षा इन चारो अवस्थाओ मे भी 6 सेकण्ड, 2 मिनट, 10 मिनट और 24 घण्टे के बाद ली गई। दक्षता स्तर सूची की एक पूर्ण शुद्ध आवृत्ति थी। परिणाम चित्र संख्या 9 12 से स्पष्ट है कि वितरित अभ्यास मे धारणा अच्छी हुई।

अन्य अधिगम द्वारा धारणा मे बाधा

हम जो कुछ भी नवीन अनुभव करते है वह हमारे पहले के अनुभवो के द्वारा प्रभावित होता है और हम जो कुछ भी आज करते हैं उससे पहले के अनुभव पर प्रभाव पड़ता है। अतीत प्रशिक्षण वर्तमान को प्रभावित करता है और वर्तमान प्रशिक्षण अतीत को प्रभावित करता है। जब पहले अधिगम की गई क्रिया के कारण बाद मे अधिगम की जाने वाली क्रिया की धारणा या बाद मे अधिगम की गई क्रिया के कारण पहले के क्रिया की धारणा प्रभावित होती है और वह बाधा के रूप मे होती है तो विस्मरण होता है।

इस बाधा के निम्नलिखित दो रूप होते है —

(अ) अग्रोन्मुख बाधा (अ॰ बा॰)

(ब) पृष्ठोन्मुख बाधा (पृ॰ बा॰)
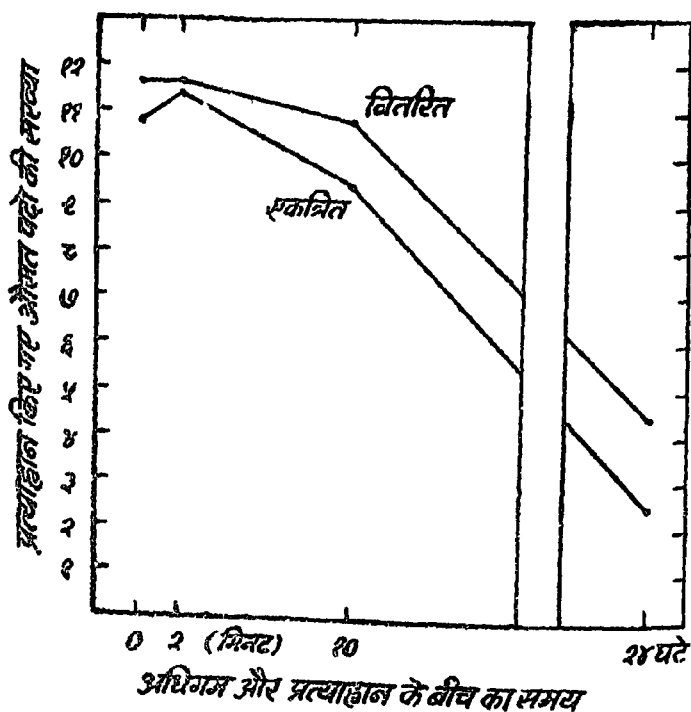
चित्र सख्या 9 12

[धारणा और वितरित व एकत्रित अभ्यास के बीच का सम्वन्ध (हावलैंड का प्रदत्त 1940 से)]

(अ) अग्रोन्मुख बाधा—इससे हमारा तात्पर्य एक क्रिया या कार्य की धारणा मे होने वाली उस बाधा से है जो कि उस क्रिया (जिसकी धारणा परीक्षा होती है) के पूर्व होने वाले अन्य अधिगम का परिणाम होती है अर्थात् पूर्ववर्ती अधिगम तथा परवर्ती अधिगम पर बाधा डालती है। यदि सूची 'अ' प्रयोज्य याद करना चाहता है और उसके पहले वह सूची 'व' याद कर चुका है और सूची 'अ' के धारण करने मे सूची 'व' की धारणा का प्रतिकूल प्रभाव पडता है, अवरोध उत्पन्न होता है या बाधा पहुँचती ह तो यह अग्रोन्मुख (अग्गे के कार्य पर प्रभाव डालने वाली) बाधा कहलायेगी। इसे व अ के रूप मे दिखाया जा सकता है जहाँ चिह्न 'अ' सूची के पदो के अधिगम पर पडने वाले नकारात्मक प्रभाव को दर्शाता है।

(व) पृष्ठोन्मुख बाधा—इससे हमारा तात्पर्य एक क्रिया या कार्य की धारणा मे होने वाली उस कमी से है जो कि उस क्रिया (जिसकी धारणा परीक्षा होनी है)

के अधिगम और धारणा परीक्षा के मध्य आने वाले अन्य अधिगम का परिणाम होती है अर्थात् परवर्ती अधिगम पूर्ववर्ती अधिगम पर प्रभाव (बाधा) डालता है। यदि प्रयोज्य सूची अ' के पदो को याद करना चाहता है तो अर्जन सत्र के बाद धारणा विश्राम काल मे जो कुछ भी नया अर्जन करता है (सूची व के पद) वह पहले के अधिगम (सूची अ) की धारणा पर प्रतिकूल प्रभाव डाले, उसमे अवरोध उत्पन्न करे या बाधा पहुँचाये तो पीछे की ओर पडने वाले इस प्रभाव को पृष्ठोन्मुख अवरोध कहा जाता है (अ व)।

अधिगम व धारणा परीक्षा के बीच आने वाले अधिगम को अन्तर्वेशी अधिगम या क्रिया की सज्ञा दी जाती है।

कई सिद्धान्तकार इस बाधा के सिद्धान्त के सहारे विस्मरण की व्याख्या करना अधिक सुविधाजनक समझते है इसलिये इसका यहाँ विशेप उल्लेख किया जायेगा। उनके अनुसार भूलना पुराने प्रभाव का, साहचय का समयगत ह्रास नही है। जितनी रुकावट या बाधा आती है, जो अन्य क्रियाओ या साहचर्यों के द्वारा उत्पन्न होती है, उसी से भूलना होता है।

अ० बा० का पृ० बा० की तुलना मे कम प्रयोगात्मक महत्व है एव शोध सामग्री तुलना मे कम है। पृ० बा० के प्रयोगात्मक महत्व का कारण है कि प्रयोगशाला मे 'अन्तर्वेशी क्रिया' पर प्रयोगकर्ता सफल नियन्त्रण कर लेता है। पृ० बा० का इस प्रकार विशेप प्रयोगात्मक महत्व है। विस्मरण का इसे प्रमुख कारण माना जाता है। इस पर बहुत से प्रयोग किये गये हैं इसलिए उपलब्ध तथ्य अपनी प्रामाणिकता के कारण ध्यान खीच लेते है। बाधा पर किये जाने वाले प्रयोगो की रूपरेखा स्पष्ट कर देती है कि पृष्ठोन्मुख अवरोध को हम नकारात्मक स्थानान्तरण की सज्ञा दे सकते है। स्थानान्तरण मे प्रभाव अनुकूल होता है जबकि बाधा का प्रभाव प्रतिकूल होता है।

अग्रोन्मुख बाधा प्रयोग की रूपरेखा—अ०बा० का अध्ययन करने के लिए दो ऐसे तुलनीय समूह ले लेते हैं जिनकी अधिगम योग्यता लगभग समान होती है। एक समूह नियन्त्रित समूह बन जाता है और दूसरा प्रयोगात्मक समूह। उदाहरणार्थ, नियन्त्रित समूह कार्य अ के दस प्रयास करता है और बीस मिनट के धारणा विश्राम के बाद अ का प्रत्याह्वान करता है। प्रयोगात्मक समूह भी कार्य अ के दस प्रयास करता है किन्तु उससे पहले एक अन्य कार्य (जैसे कोई दूसरी सूची) व का प्रयास करता है और बीस मिनट के धारणा विश्राम के बाद अ का प्रत्याह्वान करता है। यदि प्रत्याह्वान द्वारा 'अ' की धारणा परीक्षा मे दोनो समूह समान प्रत्याह्वान करते हैं तो इसका अर्थ होगा कि कार्य व पर किये गये अभ्यास ने कार्य अ' की धारणा मे कोई बाधा या रुकावट नही डाली है। किन्तु यदि प्रयोगात्मक समूह मे प्रत्याह्वान नियन्त्रित समूह से कम हो तो इसका कारण नि सन्देह कार्य 'व' द्वारा डाली जाने

वाली बाधा—अग्रोन्मुख बाधा होगी। दोनों समूह इसीलिये प्रत्येक दृष्टि से समान रखे जाते हैं। उनके बीच यदि कोई अन्तर होता है तो पूर्ववर्ती अधिगम ब का जो कि प्रयोगात्मक परिवर्त्य होता है।

इस प्रायोगिक अभिकल्प को निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है—

	समय		
	अधिगम	अधिगम	धारणा परीक्षा
नियन्त्रित समूह	विश्राम	अ	अ
प्रयोगात्मक समूह	ब	अ	....अ

अन्तर=अ० बा०

पृष्ठोन्मुख बाधा प्रयोग की रूपरेखा–पृ० बा० पर किये जाने वाले प्रयोग मे दो ऐसे तुलनीय समूह लिये जाते है जिनकी अधिगम योग्यता लगभग समान होती है। एक समूह नियन्त्रित बन जाता है और दूसरा प्रयोगात्मक। मान लीजिये दोनो ही समूह एक कार्य के दस प्रयास करते है। नियन्त्रित समूह कार्य 'अ' के बाद 20 मिनट धारणा विश्राम मे आराम करता है। इसका अर्थ है कि वह समूह ऐसा कार्य नही करता है जिसका कार्य 'अ' से कोई सम्बन्ध हो—उदाहरण के लिए यदि निरर्थक पदो की सूची अ है तो प्रयोज्य धारणा विश्राम मे मनोरजन चित्रो की पुस्तक देख सकता है या ऐसा ही कोई अन्य कार्य कर सकता है। जब नियन्त्रित समूह धारणा विश्राम मे इस प्रकार आराम करता है, प्रयोगात्मक समूह उस धारणा विश्राम मे 20 मिनट तक दूसरे कार्य ब का अधिगम करता है। इस अधिगम या क्रिया को अन्तर्वेशी अधिगम या क्रिया कहते हैं। दोनो ही समूहो की 'अ' के लिये धारणा परीक्षा होती है। दोनो ही समूह 'अ' का प्रत्याह्वान या प्रत्यभिज्ञा कर सकते हैं।

यदि दोनो ही समूह 'अ' का प्रत्याह्वान समान करते हैं तो इसका अर्थ है अन्तर्वेशी अधिगम 'ब' ने कार्य 'अ' की धारणा पर कोई बाधा या रुकावट नही डाली है। किन्तु यदि प्रयोगात्मक समूह मे नियन्त्रित समूह से कम प्रत्याह्वान होता है तो नि सन्देह इसका कारण काय 'ब' द्वारा पूववर्ती कार्य पर डाली जाने वाली पृष्ठोन्मुख बाधा होगी क्योकि प्रत्येक दृष्टि से दोनों समूह समान रखे जाते हैं। उनके बीच यदि कोई अन्तर है तो वह अन्तर्वेशी अधिगम का अन्तर है।

इस प्रायोगिक अभिकल्प को निम्न प्रकार से दर्शाया जा सकता है—

	समय		
	अधिगम	अधिगम	धारणा परीक्षा
नियन्त्रित समूह	अ	विश्राम	अ
प्रयोगात्मक समूह	अ	ब	अ

अन्तर=पृ० बा०

इस पृ० वा० को प्रतिशत प्राप्तांक मे निम्न सूत्र द्वारा प्रकट किया जा सकता है—

$$\text{पृ० वा० प्रतिशत} = \frac{\text{नि०—प्र०} \times 100}{\text{नि०}}$$

(नि०—नियन्त्रित समूह द्वारा धारणा परीक्षा मे प्राप्तांक)

(प्र०—प्रयोगात्मक समूह द्वारा धारणा परीक्षा मे प्राप्तांक)

नियत्रित समूह धारणा विश्राम मे आराम करता है। यह नही कहा जा सकता है कि उस अवस्था मे जो कुछ भी वह करता है उसका प्रभाव कार्य अ' की धारणा पर नही पडेगा। इसलिये इसको भी प्रयोगकर्त्ता नियत्रण म लाने की चेष्टा करता है और इस अवस्था मे नियत्रित समूह भी एक प्रयोगकर्त्ता द्वारा निर्धारित 'द ई' कार्य करता है जो उसी श्रेणी का कार्य होता है किन्तु अपेक्षाकृत प्रभावहीन या उदासीन होता है। प्राय युगल साहचर्यां की विधि से उत्तेजक-प्रतिक्रिया प्रस्तुत करने पर प्रयोग निम्न रूप लेता है—

समूह	अधिगम	अधिगम	धारणा विश्राम	धारणा परीक्षण
प्रयोगात्मक समूह	अ व	अ स	—	अ व
नियत्रित समूह	अ व	द ई	—	अ ब

यद्यपि प्रयोगकर्त्ता यथासभव पूर्ण प्रयास करता है किन्तु वह अ० वा० व पृ० वा० को दर्शा नही सकता है, क्योकि सही-सही अ० वा० और पृ० वा० को दर्शा पाना सभव नहीं हो पाता है। यह ठीक प्रकार से निश्चित नही किया जा सकता है कि विगत की कौन-सी क्रियाये या उनसे सलग्न साहचर्य या अधिगम एक विशेष कार्य पर कब और कितना प्रभाव डालेंगे। प्रयोगकर्त्ता निश्चित उत्तेजक देता है और यह समझता है कि प्रयोज्य उन्हे ग्रहण कर प्रतिक्रिया करेगा किन्तु आवश्यक नही कि प्रयुक्त उत्तेजक प्रयोज्य के लिए प्रभावकारी व प्रकार्यात्मक सिद्ध हो। अधिक से अधिक प्रयोगकर्त्ता इस अ० वा० व पृ० वा० की लगभग शुद्ध मात्रा प्राप्त कर सकता है। यह निराशाजनक स्थिति नही है।

सारणी 9 8 मे स्पष्ट किया गया है कि अभ्यास के विभिन्न चरणो का क्या व्यवहारगत प्रभाव होता है।

पृष्ठोन्मुख बाधा को प्रभावित करने वाले प्रमुख परिवर्त्य

प्रयोगिक अभिकल्प को देखने से स्पष्ट है कि पृ० वा० का प्रमुख कारण अन्तर्वेशी अधिगम है जो मूल अधिगम के उपरान्त और धारणा परीक्षा के बीच आता है। इस अन्तर्वेशी क्रिया की विशेषताये ही मुख्य रूप से पृ० वा० को प्रभावित

सारणी सख्या 9 8

अधिगम पर अन्य अधिगम द्वारा बाधा का, अभ्यास के विभिन्न चरणो, मे स्वरूप

चरण	उदाहरण सार्थक शब्द (उत्तेजक) निरर्थक पद (प्रतिक्रिया)	व्यवहारगत प्रभाव
कार्य अ का अभ्यास	क म ल→फ इ म	अधिगम
आर्य ब का अभ्यास	क ल म→ फ इ म / द इ म	अग्रोन्मुख बाधा। ब के अधिगम मे कमी
धारणा परीक्षा अ	क म ल→ फ इ म / द इ म	पृष्ठोन्मुख अवरोध। अ की धारणा मे कमी।
धारणा परीक्षा ब	क ल म→ फ इ म / द इ म	अग्रोन्मुख बाधा। ब की धारणा मे कमी।

करने वाले परिवर्त्य हैं। उदाहरण के लिए, अन्तर्वेशी क्रिया और मूल अधिगम क्रिया मे समानता अन्तर्वेशी अधिगम की मात्रा, अन्तर्वेशी अधिगम सामग्री की मात्रा, अन्तर्वेशी क्रिया के प्रारम्भ होने का समय, आदि। प्रमुख परिवर्त्यों के रूप मे इनका वणन किया जायेगा।

(अ) **अन्तर्वेशी और मूल अधिगम मे समानता**—यदि मूल कार्य से, जिसकी धारणा परीक्षा होती है, मिलता जुलता कार्य प्रयोज्य को अन्तर्वेशी क्रिया के रूप मे करने को दिया जाय तो पृ० बा० अधिक होगी या जब अन्तर्वेशी क्रिया मूल क्रिया से भिन्न हो ? इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर है कि मूलक्रिया अ और अन्तर्वेशी क्रिया ब मे जितनी ही अधिक समानता होगी उतनी ही उनको अलग करने मे कठिनाई होगी एव भ्रान्ति बढेगी। उदाहरण के लिए, यदि प्रयोज्य सूची अ मे व्यक्ति-वाचक सज्ञाएँ याद करता है और सूची ब मे भी व्यक्ति-वाचक सज्ञाएँ याद करने को दे तो निश्चय ही पृ० बा० अधिक होगी, क्योकि प्रयोज्य द्वारा दूसरी सूची ब की सज्ञाओ को, सूची अ की सज्ञाओ के स्थान पर रखने मे भूल की जा सकती है और सूची अ की धारणा मे कमी आ जायेगी। इसके विपरीत यदि सूची ब मे विशेषण दिये जाय तो पृ० बा० अपेक्षाकृत कम होगी क्योकि एक सूची के पदो की दूसरे मे मिल जुल जाने की सम्भावना कम होगी। दो क्रियायें एक-दूसरे को अधिक बाधा नही पहुँचाती है यदि दोनो एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न है। प्रयोग द्वारा इस समस्या का अध्ययन निम्न प्रकार से किया जा सकता है। इसमे तीन समूह पर प्रयोग होता है—

(1) नियन्त्रित समूह—अधिगम सूची 'अ'—विश्राम—धारणा परीक्षण 'अ'
(उदाहरण संज्ञाएं)

(2) प्रयोगात्मक समूह (1) अधिगम सूची 'अ'—अधिगम सूची 'अ'—
(समानता) धारणा परीक्षण 'अ'
(उदाहरण—सूची 'अ' और 'ब' मे पर्यायवाची शब्द 'अ' मे क म ग, तथा 'ब' मे ज ल ज आदि) रखे जा सकते है।

(3) प्रयोगात्मक समूह (2) अधिगम सूची 'अ'—अधिगम सूची 'ब'—
(असमानता) धारणा परीक्षण 'अ'
(उदाहरण—सूची 'ब' मे इस समूह के लिए विशेषण रखे जा सकते है।)

यदि प्रयोगात्मक समूह (1) द्वारा 'अ' की धारणा, प्रयोगात्मक समूह (2) की धारणा से कम होती है तो स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि समूह (1) की धारणा मे इस कमी का कारण सूची 'अ' और सूची 'ब' के बीच की समानता है।

सारणी सख्या 9 9

पृष्ठोन्मुख बाधा पर अन्तर्वेशी और मूल अधिगम मे समानता का प्रभाव

समानता की मात्रा	अन्तर्वेशी सामग्री	औसत प्रत्याह्वान प्रमाणिक धारणा विश्राम के बाद
अति न्यून	नियन्त्रित (आराम)	5 42
न्यून	पर्यायवाची (तृतीय श्रेणी)	2 04
अधिक	पर्यायवाची (द्वितीय श्रेणी)	1 33
सर्वाधिक	पर्यायवाची (प्रथम श्रेणी)	0 83

[मैक्गू व मैक्डानल्ड (1931)]

अन्तर्वेशी कार्य और मूल कार्य मे समानता अधिक होने पर अधिक पृ० बा० होती है। समानता जब उत्तेजक पद मे होती है (युगल साहचर्य अभिरूप मे) तो धारणा पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। पृ० बा० अधिक होती (मैक्गू और मैक्डोनाल्ड 1931) एव (बग्लेस्की व कैंडवे लैंडर 1956)। समानता जब दोनो कार्यों की प्रतिक्रियाओ मे होती है तो पृ० बा० की मात्रा घटती जाती है, जैसे-जैसे इन दोनो कार्यों के प्रतिक्रियाओ के बीच की समानता बढती जाती है।

ब्रूस (1933), आसगुड (1946) व यग (1955) के प्रयोग यही परिणाम दर्शाते है। मात्र एक प्रयोग, बग्लेस्की व कैंडवेल्लैडर (1956) ने विपरीत परिणाम दिखाये है किन्तु इस अध्ययन की कमी यह थी कि दोनो कार्यों पर प्रयास की मात्रा एक रखे जाने का कोई प्रयास नही किया (पोस्टमैन व राइली 1959, पृ० 287)।

मूल अधिगम और अन्तर्वेशी अधिगम के बीच मामूली समानता की मात्रा तो पृ० बा० को बढ़ाती जाती है किन्तु अन्तत ऐसी स्थिति आ जाती है कि अन्तर्वेशी क्रिया का अधिक समान होना, मूल क्रिया के लिए रिहर्सल या अभ्यास का कार्य करने लगता है। इसका परिणाम होता है कि धारणा मे कमी के स्थान पर वृद्धि होती है अर्थात् पृ० बा० के स्थान पर पृष्ठोन्मुख सुगमता होने लगती है। धनात्मक स्थानान्तरण हो जाता है।

समानता के इस स्वभाव को ध्यान मे रखते हुये एक उपकल्पना (स्कैगस रोबिन्सन उपकल्पना) सामने आई है जिसे निम्न वक्र चित्र सख्या 9 13 से समझा जा सकता है—
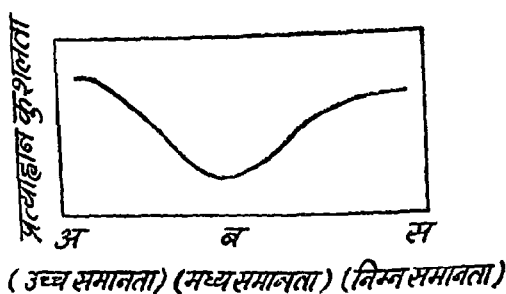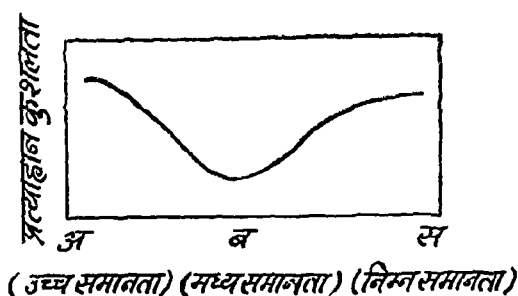
चित्र सख्या 9 13

[अन्तर्वेशी क्रिया और मूल अधिगम क्रिया के बीच समानता—अवरोही (घटते हुए) क्रम मे, स्कैगस-राबिन्सन उपकल्पना वक्र]

चित्र मे आधार रेखा पर समानता को दर्शाया गया है। बिन्दु 'अ' मूल व अन्तर्वेशी अधिगम के बीच एकदम समानता को और 'स' एकदम असमानता को और बिन्दु 'ब' मध्यम समानता को दर्शाता है। उर्ध्व रेखा पर अन्तर्वेशी क्रिया के उपरान्त, धारणा की मात्रा (प्रत्याह्वान क्षमता के रूप मे) दर्शायी गई है। इस वक्र से स्पष्ट होता है कि इस उपकल्पना के अनुसार जब दोनो क्रियायें एकदम समान हैं तो धारणा अधिकतम होती है। पृ० बा० के स्थान पर धनात्मक स्थानान्तरण होता है। जैसे-जैसे समानता घटती जाती है प्रत्याह्वान भी कम होता जाता है, पृ० बा० होती है और एक समानता का माध्यमिक स्तर आ जाता है (ब) जबकि पृ० बा० आरम्भ हो जाती है और फिर जब समानता घटते-घटते असमानता का

रूप लेने लगती है तो धारणा बढने लगती है। बिन्दु स' पर आकर दोनो क्रियाओं मे कोई भी प्रतिक्रिया समान नही होती है अत एक दूसरे को रुकावट नही डालती है और पृ० वा० की सभावना नही रह जाती है।

उपरोक्त वक्र उपकल्पनात्मक है और इसकी प्रयोग द्वारा अभी आशिक पुष्टि ही हुई है अत इसे एक सामान्य सम्बन्ध दर्शाने वाला वक्र ही समझना चाहिए।

पृ० वा० पर किये गये प्रयोगो मे मूल अधिगम व अन्तर्वेशी अधिगम के स्वरूप मे समानता के अतिरिक्त अन्य तत्त्वो की समानता भी महत्वपूर्ण होती है। उनसे सम्बन्धित निष्कर्ष निम्न रूप मे प्रस्तुत किये जा सकते हैं

पृ० वा० अधिकतम होगी—(1) जब दोनो ही क्रियाओ के प्रस्तुत करने की विधि समान होगी न कि तब जबकि दोनो क्रियाएँ (दिखाकर या सुनाकर) भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रस्तुत की जायें। (नेगे 1935)।

(2) जबकि दोनो ही क्रियाओ की धारणा परीक्षा की विधि समान होगी, न कि तब जबकि भिन्न विधियो से परीक्षा हो (जेन्किन्स व पोस्टमैन, 1949)।

(3) जबकि दोनो ही क्रियाओ के करने मे उत्पन्न मनोवृति एक हो न कि तब जब कि भिन्न हो (पोस्टमैन व पोस्टमैन, 1948)।

(4) जबकि दोनो ही क्रियाओ का अभ्यास एक समान अवस्था (जाग्रत या सम्मोहित) मे होगा, न कि तब, जबकि एक कार्य का जाग्रत अवस्था मे अभ्यास हो व दूसरे का सम्मोहित अवस्था मे।

समानता के बारे मे निष्कर्ष के रूप मे हम कह सकते है कि जब दो ऐसी समान क्रियाओ का उपयोग होगा जिनमे प्रतिस्पर्द्धा व भ्रान्ति की सभावना अधिक होगी तो पृ० वा० अधिक होगी।

(ब) अन्तर्वेशी अधिगम की मात्रा—जैसे-जैसे अन्तर्वेशी अधिगम की मात्रा बढती जाती है (यदि मूल अधिगम को स्थिर रखा जाय) तो पृ० वा० बढती है। मेल्टन व इरविन (1940) के प्रयोग से यह बात स्पष्ट हो सकती है (चित्र 9 14) उन्होंने 18 निरर्थक पदो की एक सूची पर प्रयोग किया। मूल अधिगम की सूची के 5 प्रयास दिये गये जबकि अन्तर्वेशी अधिगम की सूची पर (नियन्त्रित), 5, 10, 20 और 40 प्रयास दिये गये। मूल सूची का प्रत्याह्वान व पुनर्धिगम, सभी 5 दशाओ मे 30 मिनट के बाद किया गया। औसत शुद्ध पद, पहले 4, पुनर्धिगम प्रयासो के लिए चित्र मे दर्शाये गये है। पहला पुनर्धिगम प्रयास नि सन्देह प्रत्याह्वान प्रयास है। इन वक्रो से प्रत्यक्ष पृ० वा० नही दिखाई पडती है। किन्तु पृ० वा० की गणना, प्रत्येक प्रयोगात्मक दशा मे प्रत्याह्वान औसत और नियन्त्रित दशा मे प्रत्याह्वान औसत और नियन्त्रित दशा मे प्रत्याह्वान औसत के अन्तर से की

ब्रूस (1933), आसगुड (1946) व यग (1955) के प्रयोग यही परिणाम दर्शाते है। मात्र एक प्रयोग, बग्लेस्की व कैडवेल्लैडर (1956) ने विपरीत परिणाम दिखाये है किन्तु इस अध्ययन की कमी यह थी कि दोनो कार्यों पर प्रयास की मात्रा एक रखे जाने का कोई प्रयास नही किया (पोस्टमैन व राइली 1959, पृ० 287)।

मूल अधिगम और अन्तर्वेशी अधिगम के बीच मामूली समानता की मात्रा तो पृ० बा० को बढाती जाती है किन्तु अन्तत ऐसी स्थिति आ जाती है कि अन्तर्वेशी क्रिया का अधिक समान होना, मूल क्रिया के लिए रिहसर्ल या अभ्यास का कार्य करने लगता है। इसका परिणाम होता है कि धारणा मे कमी के स्थान पर वृद्धि होती है अर्थात् पृ० बा० के स्थान पर पृष्ठोन्मुख सुगमता होने लगती है। धनात्मक स्थानान्तरण हो जाता है।

समानता के इस स्वभाव को ध्यान मे रखते हुये एक उपकल्पना (स्कैग्गस-रोबिन्सन उपकल्पना) सामने आई है जिसे निम्न वक्र चित्र सख्या 9 13 से समझा जा सकता है—

चित्र सख्या 9 13

[अन्तर्वेशी क्रिया और मूल अधिगम क्रिया के बीच समानता—अवरोही (घटते हुए) क्रम मे, स्कैग्गस-राबिन्सन उपकल्पना वक्र]

चित्र मे आधार रेखा पर समानता को दर्शाया गया है। बिन्दु 'अ' मूल व अन्तर्वेशी अधिगम के बीच एकदम समानता को और 'स' एकदम असमानता को और बिन्दु 'ब' मध्यम समानता को दर्शाता है। उर्ध्व रेखा पर अन्तर्वेशी क्रिया के उपरान्त, धारणा की मात्रा (प्रत्याह्वान क्षमता के रूप मे) दर्शायी गई है। इस वक्र से स्पष्ट होता है कि इस उपकल्पना के अनुसार जब दोनो क्रियायें एकदम समान है तो धारणा अधिकतम होती है। पृ० बा० के स्थान पर धनात्मक स्थानान्तरण होता है। जैसे-जैसे समानता घटती जाती है प्रत्याह्वान भी कम होता जाता है, पृ० बा० होती है और एक समानता का माध्यमिक स्तर आ जाता है (ब) जबकि पृ० बा० आरम्भ हो जाती है और फिर जब समानता घटते-घटते असमानता का

जाती है। ऐसा देखा जाता है कि 20 अन्तर्वेशी प्रयास तक तो पृ० बा० बढती जाती किन्तु पृ० बा० की मात्रा 40 अन्तर्वेशी प्रयास की अवस्था में 20 प्रयास अवस्था से कुछ कम है। इस कमी का कारण सभवत 40 प्रयास की स्थिति मे अन्तर्वेशी सूची का अतिअधिगम हो जाता है और इसी कारण इसकी स्वतन्त्र धारणा होने लगती है व इसका कोई भी बाधाकारी सम्बन्ध मूल अधिगम सूची से नही रह जाता है। यही बात मूल अधिगम की मात्रा पर भी लागू होता है। जैसा कि हम देख चुके है जैसे-जैसे अतिअधिगम प्रयासो की मात्रा बढती है धारणा पुष्ट होती है, इसलिए यदि मूल अधिगम के प्रयासो की मात्रा भी बढायी जाय तो पृ० बा० घटती जायेगी।
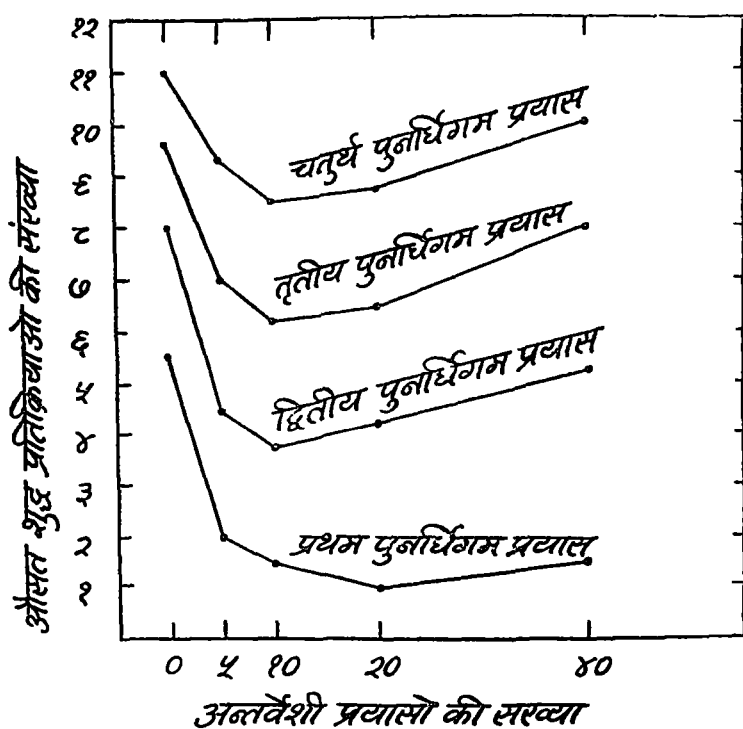
चित्र सख्या 9 14

[पृष्ठोन्मुख बाधा पर अन्तर्वेशी अधिगम की मात्रा का प्रभाव (मेल्टन व इरविन का प्रदत्त 1940)]

मूल अधिगम की मात्रा और अन्तर्वेशी अधिगम की मात्रा के बीच भी सापेक्षिक सम्बन्ध है। यदि दोनो मे कोई भी एक बहुत अधिक है तो उनके बीच

पारस्परिक अवरोध या हस्तक्षेप की सभावना कम होती जाती है फलस्वरूप पृ० बा० कम होती है। अधिकतम पृ० बा० तब होती है जबकि मूल और अन्तर्वेशी अधिगम दोनो ही की शक्ति समान हो अर्थात् दोनो की अभ्यास की मात्रा समान हो।

मेल्टन व इरविन (1940) के अतिरिक्त पोस्टमैन व राइले (1959) ने क्रमिक अधिगम मे, थ्यून व अन्डरवुड (1943) ने युगल साहचर्य अधिगम मे इस तथ्य की पुष्टि की है कि पृ० बा० अन्तर्वेशी अधिगम की मात्रा का नकारात्मक रूप से उत्तरोत्तर वृद्धि उन्मुख व्यापार है।

सामान्य निष्कर्ष के रूप मे हम कह सकते हैं—

(1) पृ० बा० के कारण विस्मरण अधिक होता है जब अन्तर्वेशी अधिगम की मात्रा अधिक होती है (बार्नेस व अन्डरवुड, 1966) और मूल अधिगम स्थिर रखा जाता है।

(2) पृ० बा० घटती जाती है जब मूल अधिगम की मात्रा बढती जाती है और अन्तर्वेशी अधिगम की मात्रा स्थिर रखी जाती है।

(स) अन्तर्वेशी अधिगम सामग्री की मात्रा—अधिगम की मात्रा से हमारा तात्पर्य अन्तर्वेशी अधिगम के लिए किए गये प्रयास से है। अधिगम सामग्री की मात्रा से हमारा तात्पर्य एक सूची की लम्बाई से है, उसके पदो की सख्या से या कई सूचियो की सख्या से है। अन्तर्वेशी सूचियो की सख्या बढती जाती है, पृ० बा० बढती जाती है। स्पष्ट है कि मूल अधिगम मे हस्तक्षेप की सभावना बढ जाती है। इसके सम्बन्ध को वक्र मे निम्न प्रकार से दर्शाया जाता है—
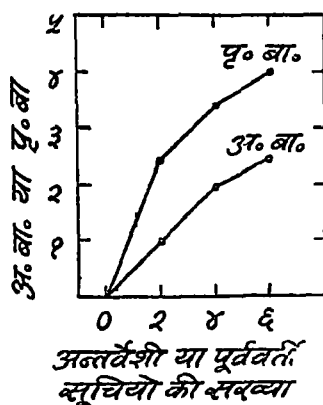
चित्र सख्या 9 15

[पृ० बा० पर अन्तर्वेशी सूचियो की सख्या का प्रभाव और अ० बा० पर पूर्ववर्ती सूचियो की सख्या का प्रभाव। (प्रदत्त अण्डरवुड, 1945)]।

मैक्गू (1936) ने 16 विशेषणो के आठ प्रयास मूल अधिगम के लिए दिये। दूसरी सूची (अन्तर्वेशी) मे 8 और 16 विशेषण रखे गये व उन्हे 4, 8 व 16 प्रयास दिये गये। प्रत्याह्वान व पुनराधिगम 20 मिनट के उपरान्त किया गया। 16 विशेषणो वाली अन्तर्वेशी सूची की अवस्था मे प्रत्याह्वान मे कमी पाई गई।

(द) अन्तर्वेशी अधिगम के प्रस्तुत करने का समय—मूल अधिगम के बाद, धारणा विश्राम मे कमी भी अन्तर्वेशी अधिगम को प्रस्तुत किया जा सकता है। भिन्न-भिन्न समय बिन्दुओ पर इस अधिगम को प्रस्तुत करने का धारणा पर भिन्न-भिन्न प्रभाव पडता है। सामान्यत अधिकतम पृ० वा० होती है जब (1) अन्तर्वेशी अधिगम मूल अधिगम के अभ्यास के तुरन्त बाद दिया जाता है (2) जब धारणा परीक्षा मे थोडी देर पहले अन्तर्वेशी अधिगम दिया जाता है।

द्वितीय सूची (अन्तर्वेशी अधिगम) और धारणा परीक्षा के बीच का यह समय व्यवधान एक महत्वपूर्ण कारण है। जैसे-जैसे यह समय व्यवधान बढता जाता है वैसे वैसे पृ० वा० घटती जाती है (अन्डरवुड 1948, केप्पेल 1968)। इस पृ० बा० मे कमी का कारण दोनो सूचियो मे वैभिन्नयीकरण के लिए समय का मिल जाना होता है।

(य) धारणा विश्राम मे क्रियाशीलता का स्तर—प्रयोज्य धारणा विश्राम मे कितना क्रियाशील है, वह निश्चेष्ट है, या अधिक सचेष्ट है, नीद की अवस्था मे है या जाग्रत है, इसका प्रभाव पृ० वा० पर पडता है। धारणा विश्राम मे निद्रा और जाग्रत अवस्था की परस्पर तुलना, जेन्किस व डेलेनवैरव के प्रयोग मे की गई। इस प्रयोग मे दो प्रयोज्यो ने दस निरथक पदो की सूचियाँ (1) दैनिक जागन अवस्था मे किये जाने वाले क्रिया कलाप के पूर्व एव (2) सोने के पूर्व कठस्थ की। धारणा परीक्षा नीद अथवा जाग्रत क्रिया-कलाप के 1, 2, 4 व 8 घण्टो के बाद की गई। नीद की हर अवधि के बाद, जाग्रत अवस्था की तुलना मे निरर्थक पदो की धारणा अच्छी पाई गई। नीद के विरामो के वाद प्रत्याह्वान किये गये निरर्थक पदो के प्रतिशत क्रमश 70, 54, 55 और 56 निकले। जाग्रत अवस्था के तुलनीय प्रतिशत निकले 46, 31, 22 और 9। जाग्रतावस्था की अवधि जितनी ही अधिक लम्बी थी विस्मरण उतना ही अधिक हुआ(देखिये चित्र सख्या 9 16)। इस प्रयोग के आधार पर प्रयोगकर्ता ने दावा किया 'कि यदि अधिगम के तत्काल बाद पात्रो को स्वप्न रहित निद्रावस्था मे किया जा सके, जिससे पुराने अनुभव की कोई नई अनु-भूतियां अत निरुद्ध या विछिन्न न हो पाये तो उससे सबसे अनुकूल धारणा की अपेक्षा की जा सकती है।[1] हम यह नही कह सकते है कि नीद मे क्रियाशीलता का

---

1 जेकिन्स और डेलेनवैरव, आब्लिविसेंस ड्यूरिंग स्लीप एण्ड वेकिंग अमे० ज० साइको० 1924, 35

अभाव है व अन्तर्वेशी क्रिया का अभाव रहता है। नीद मे भी हमारा स्नायुमण्डल सक्रिय रहता है। तिलचट्टे पर किय गये प्रयोग (मिनामी और डेलेनबैरव, 1928) भी उपरोक्त परिणाम को पुष्ट करते है कि धारणा विश्राम मे निष्क्रियता या निम्न क्रियाशीलता के स्तर मे धारणा अच्छी होती है, तुलना मे सचेष्ट सक्रिय क्रियाशीलता के स्तर मे।
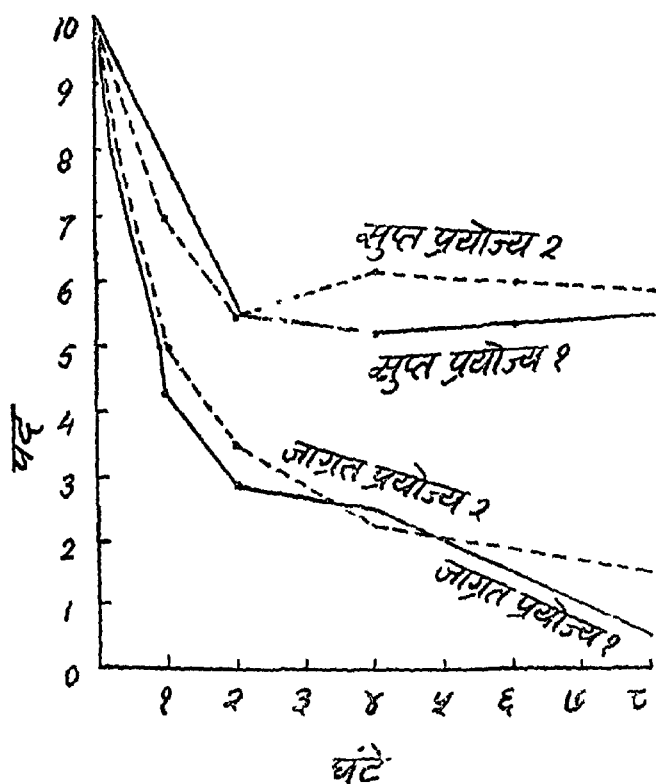
चित्र सख्या 9 16

[धारणा विश्राम मे क्रियाशीलता (जेन्किन्स व डेलेनबैरव 1924)]

वान ओरमर (1932) ने बचत विधि का प्रयोग कर दर्शाया है कि निद्रा के बाद बचत नि सन्देह अधिक हुई।

अन्य अध्ययनो ने भी उपरोक्त परिणाम की पुष्टि की है। इकस्ट्रेन्ड (1967)

ने युगल साहचर्य विधि से अधिगम कराकर, 8 घण्टे के वाद, जाग्रत अवस्था मे व निद्रा की अवस्था मे, धारणा परीक्षा की, प्राप्त परिणाम निम्न आये—

धारणा प्रतिशत—89 प्रतिशत जो प्रयोज्य सोये

धारणा प्रतिशत—77 प्रतिशत जो प्रयोज्य जगते रहे।

विस्मरण प्रतिशत जाग्रतावस्था के प्रयोज्यो का, निद्रावस्था के प्रयोज्यो से दुगुना था।

उपरोक्त प्रयोग इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि विस्मरण का कारण समय का बीतना नही है अपितु इस बीते हुये समय मे होने वाली क्रियाये है। जव क्रियाशीलता का स्तर अधिक होगा, धारणा मे कमी आयेगी किन्तु जब यह स्तर निम्न होगा तो पृ० बा० कम होगी, विस्मरण कम होगा, धारणा मे ह्रास कम होगा।

पृष्ठोन्मुख बाधा का द्वितत्व सिद्धान्त

पृ० वा० का केन्द्रीय तत्व क्या है ? हम यह जानना चाहते हैं कि क्यो कार्य 'व' के अर्जन से कार्य 'अ' के अर्जन मे कमी आ जाती है ? क्या कार्य 'व' कार्य 'अ' मे हस्तक्षेप करता है ? दोनो अधिगम परस्पर एक दूसरे से स्पर्द्धा करते हैं ? या जब हम 'ब' का अधिगम करते हैं तो 'अ' के अधिगम का उन्मूलन कर देते हैं ?

प्राय जब हम सूची 'अ' का पुनर्धिगम करते है तो कई ऐसे पद उसमे आ जाते हैं जो वास्तव मे सूची व (समान सूची) के होते है। ये वास्तव मे हस्तक्षेप करने वाली प्रतिक्रियायें हैं। 'अ' और 'व' प्रतिक्रियाओ के वीच स्पर्द्धा को पृ० बा० का प्रमुख कारण समझा जा सकता है। जे० ए० मैक्गू ने ऐसा ही माना था, बाद मे मैक्गू व इरियन (1952) ने इसका पुन समर्थन किया था।

प्रतिक्रियाओ के बीच इस स्पर्द्धा को निम्न अभिकल्प के सहारे समझा जा सकता है—

मूल अधिगम — अन्तर्वेशी अधिगम — धारणा परीक्षा

अ व — अ स — अ ब

(क म ल—द इ ठ) (क म ल—फ इ ड)—(क म ल—द इ ठ)

उपरोक्त प्रयोग युगल साहचर्य प्रकार का है जिसमे मूल-अधिगम व अन्तर्वेशी अधिगम दोनो मे ही उत्तेजक पद (वाईं ओर वाला पद अ) एक ही रखा गया है। प्रतिक्रिया पद 'व' और 'स' (निरर्थक पद द इ ठ और फ इ ड) भिन्न रखे गये है। इस ढग से दो भिन्न प्रतिक्रियायें एक ही उत्तेजक के साथ जोड दी गई हैं। अ-व धारणा परीक्षा के समय ये दोनो प्रतिक्रियायें एक दूसरे से प्रतिस्पर्द्धा करती है और

कई वार स, व मे हस्तक्षेप कर जगह ले सकता है। इस स्पर्द्धा सिद्धान्त को चित्र 9 17 मे इस प्रकार से दर्शाया जा सकता है—
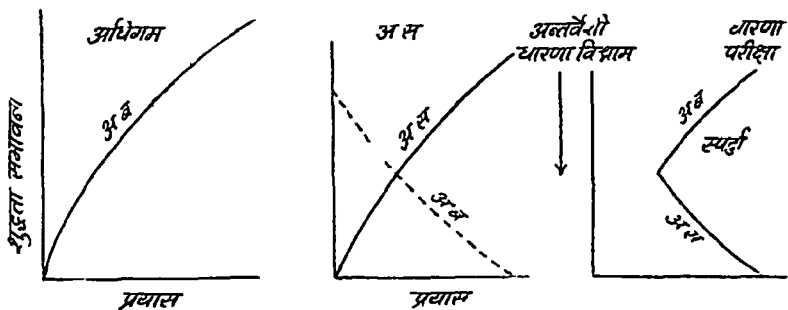
चित्र सख्या 9 17

वाधा सिद्धान्त प्रतिक्रियाओ से स्पर्द्धा

वार्नेस व अन्डरवुड (1959) ने इसे स्वतत्रता उपकल्पना [illegible] उनके अनुसार ये दोनो प्रतिक्रिया प्रणालियाँ स्वतत्र रहती हैं व स्पर्द्धा [illegible] परस्पर एक-दूसरे मे हस्तक्षेप करती है, परिणामस्वरूप पृ० वा० होती है

किन्तु अन्तर्वेशी क्रिया के कारण धारणा मे होने वाली [illegible] इस हस्तक्षेप या स्पर्द्धा के सहारे नही हो सकती है क्योकि [illegible] है तो 'व' मे भी हस्तक्षेप होता है। 'व' प्रतिक्रियायें भी 'स' मे [illegible] ऐसी अशुद्ध प्रतिक्रियाएँ की जाती है और प्रयोज्य [illegible] तो वह उनको सावधानी से सुधारता है। गलती [illegible] प्रतिक्रियाएँ नही हो पाती हैं, अर्थात् उनका [illegible] काय के अधिगम का उन्मूलन होने लगता है। [illegible] प्रारम्भ होता है पुरानी प्रतिक्रियाएँ समाप्त [illegible] नई प्रतिक्रियाओ का अर्जन होता है, नई [illegible] जाती है जवकि अ व सपुष्ट नही होती है [illegible] जाती है।

अत पृ० वा० की प्रक्रिया [illegible] पडता है—

(1) प्रतिक्रियाओ [illegible]
(2) प्रतिक्रियाओ [illegible]

वाधा सिद्धान्त समीक्षा

विस्मरण का [illegible] निम्न तीन आधार [illegible] है:

(1) बाधा के कारण धारणा मे कमी आती है।

(2) विस्मरण धारणा मे कमी है।

(3) अत विस्मरण बाधा के कारण होता है।

- व्यवहारवादियो की बाधा के सहारे विस्मरण की प्रयोग सम्मत व्याख्या आकर्षक लगती है, किन्तु इस बाधा के सिद्धान्त को पूर्णत दोप रहित मानना उचित नही होगा। यहाँ पर केवल आसगुड (1953) द्वारा उठाई गई दो आपत्तियो का उल्लेख किया जायेगा। आसगुड के अनुसार—(1) यह समान्यता कहा जाता है कि पृष्ठोन्मुख बाधा भूलने का एक कारण है। यह केवल अर्द्धसत्य है। पृ० बा० तो अपने आप मे केवल निष्पादन मे होने वाली नापी गई कमी है, यह एक व्याख्या नही है अपितु निरीक्षण से प्राप्त एक तथ्य है। वास्तव मे इसका सही अर्थ क्या है ? वे सभी प्रक्रियायें जो इस मापी गई पृ० बा० को उत्पन्न करती हैं यथा प्रतिक्रिया स्पर्द्धा, (अनाधिगम) उन्मूलन, पारस्परिक अवरोध इत्यादि सव मिल-जुलकर भूलने की व्याख्या करती है। (2) दैनिक जीवन मे होने वाले विस्मरण की घटनाओ मे, अन्तर्वेशी बाधा की उपस्थिति का अनुमान केवल पृष्ठोन्मुख क्रिया के प्रयोगो से साद्दश्य ढूँढकर किया जाता है क्योकि उपकल्पनात्मक बाधक घटनाओ का प्रत्यक्ष-मापन कभी नही हो पाता है।

इस तथ्य को स्वीकार किया जा सकता है कि बाधा सिद्धान्त, सैद्धान्तिक अपूर्णता से ग्रसित है किन्तु इसके प्रायोगिक स्वरूप के महत्व को किसी भी दृष्टि से कम नही किया जा सकता है। विस्मरण के अन्य सिद्धान्त, स्मृति छाप के क्षय का सिद्धान्त, अनभ्यास का सिद्धान्त, प्रेरणात्मक विस्मरण का सिद्धान्त, वाधा सिद्धान्त की तुलना मे अपूर्ण व अधिक दोपपूर्ण हैं। इनके वारे मे हम आत्म-विश्वास के साथ कोई तथ्य प्रस्तुत नही कर सकते, किन्तु वाधा सिद्धान्त के सहारे हम दर्शा देते हैं कि मूल अधिगम व प्रत्याह्वान के वीच जव अन्य अन्तर्वेशी अधिगम आता है तो कुछ विस्मरण अवश्य होता है। हमारे कहने का अर्थ है कि यह कथन असदिग्ध व प्रामाणिक है कि वाधा के कारण विस्मरण होता है। जब तक स्मृति छाप का स्वरूप स्पष्ट नही है तव तक हमारे सामने वाधा सिद्धान्त को स्वीकार करने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नही है।

अन्त मे हम एडम्स (ह्यूमन मेमोरी) के शब्दो मे कह सकते है, "विस्मरण की व्याख्या के रूप मे वाधा को मानने मे कई कठिनाइयो के होते हुए भी यही एक अकेला ऐसा सिद्धान्त है जो कि सदैव अनुभवमूलक, प्रामाणिकता व मर्यादा रखता आया है।"

सहायक ग्रन्थ सूची

ए डब्ल्यू स्टाट्स व सी के स्टाट्स — काम्पलेक्स ह्यूमन बिहेवियर होल्ट, राइनहार्ट एण्ड विन्सटर्न, 1963

एनउल रिव्यू आफ साइका — टलविंग व अन्य द्वारा वर्बल लर्निंग की समीक्षा, 1971

बी. जे. अन्डरवुड — इन्टरफीरेन्स एण्ड फारगेटिंग साइकालोजिकल रिव्यू, 1957

बी जे अन्डरवुड — "फारगेटिंग" साइन्टिफिक अमेरिकन, मार्च, 1964

बी जे अन्डरवुड — 'एक्सपेरिमेन्टल साइकालोजी,' सेन्चुरी ऐपलटेन, 1964

बी जे अन्डरवुड व आर डब्ल्यू शूल्ज — मीनिंगफुलनेस एण्ड वर्बल लर्निंग, फिलेडेलफिया जे बी लिपिनकाट, 1960

बी आर बगेलस्की — दी साइकालोजी आफ लर्निंग, होल्ट राइनहार्ट, 1956

बी जी एन्ड्रीज — एक्सपेरिमेन्टल साइकालोजी न्यूयार्क वाइली, 1960

चार्ल्स ई० आसगुड — मेथड एण्ड थियरी इन एक्सपेरिमेन्टल साइकालोजी आक्सफोर्ड, 1953

सी एन कोफर (स) — वर्बल लर्निंग एण्ड वर्बल विहेवियर, न्यूयार्क मैक्ग्राहिल, 1961

डगलस के कैन्डलैन्ड — साइकालोजी दी एक्स्पेरिमेन्टल अप्रोच, न्यूयार्क, मैक्ग्राहिल, 1968

ई आर हिलगार्ड — इन्ट्रोडक्शन टू साइकालोजी (द्वितीय सस्करण) न्यूयाक, हारकोर्ट-ब्रेस, 1957

जी ए किम्वल व गारमेजी — प्रिन्सिपुल्स आफ जेनरल साइकालोजी न्यूयार्क दी रोनाल्ड प्रेस 1963

होनार्ड किन्गस्ले व राल्फ गेररी — दी नेचर एण्ड कण्डीशन्स आफ लर्निंग (द्वि स) इगलवुड क्लिफ्स, 1957

जोन सेरेसो — दी इन्टरफीरेन्स थियरी आफ फारगेटिंग साइन्टिफिक। अमेरिकन अक्टूबर, 1967

जेम्स ओ व्हिटटेकर (स) — इन्ट्रोडक्शन टू साइकालोजी डब्ल्यू बी सान्डर्स, 1970

जे ए मेकगू — दी साइकालोजी ऑफ ह्यूमन लर्निंग, न्यूयार्क, लागमेन्स ग्रीन, 1942

जेम्स डीज व स्टीवर्ट हल्स — दी साइकालोजी ऑफ लर्निंग न्यूयार्क मेकग्राहिल, 1967

जौन पी डीसीको — दी साइकालोजी ऑफ लर्निंग एण्ड एन्स्ट्रक्शन एजूकेशनल साइकालोजी, प्रेन्टिस हाल, 1968

जे पी चैपलिन — डिक्शनरी ऑफ साइकालोजी न्यूयार्क, डेल, 1968

जे ए एडम्स — ह्यूमन मेमरी न्यूयार्क मेक्ग्राहिल, 1967

लियोपोस्टमैन व जे पी इगान — एक्सपेरिमेन्टल साइकालोजी—एन इन्ट्रोडक्शन हार्पर एण्ड रो, 1949

लॉयड आर पीटरसन — शार्ट टर्म मेमरी साइन्टिफिक अमेरिकन जुलाई, 1966

लॉयड आर पीटरसन — 'शार्ट टर्म रिटेन्शन ऑफ इन्डीवीजुअल वर्बल आइटम्स' जर्नल आफ एक्सपेरिमेन्टल साइकालोजी, 1959

मेल्विन एच मार्क्स — लर्निंग प्रोसेसीज मैक्मिलन, 1969

एम आर डी अमेटो — एक्सपेरिमेन्टल साइकालोजी मैथडालाजी साइको-फिजिक्स एण्ड लर्निंग, न्यूयार्क, मेक्ग्राहिल, 1970

एन जे स्लेमेका व जौन सेरेसो — स्ट्रोक्टिव एण्ड प्रोक्टिव इन्हीबिशन आफ वर्बल लर्निंग साइका बुलेटिन, 1960

पाल फ्रेसे व जीन प्याजे (स) — एक्सपेरिमेन्टल साइकालोजी, इट्स स्कोप एण्ड मेथड (अध्याय 12 व 14) रूटलेड्ज एण्ड केगन-पाल लडन, 1970

आर एस वुडवथ व एच स्लासवर्ग — एक्सपेरिमेन्टल साइकालोजी (द्वि स) हेनरी होल्ट, 1954

आर. ए चेम्पियन — लर्निंग एण्ड एक्टिवेशन, न्यूयार्क वाइली, 1969

एस एस स्टीवेन्स (स) — 'हैन्डबुक आफ एक्सपेरिमेन्टल साइकालोजी' मे कार्ल हावलैण्ड का लेख, ह्यूमन लर्निंग एण्ड रिटेन्शन वाइली, 1951

अध्याय 10

संबोध-अधिगम तथा चिन्तन

विषय-प्रवेश

सबोध-अधिगम

सबोध की परिभाषा

प्रयोगिक प्रविधियाँ

प्रयोग सामग्री

कृत्रिम उद्दीपक
स्वाभाविक उद्दीपक

प्रयोग प्रक्रिया

तदात्मीकरण विधि
प्रतिक्रिया प्रविधि

सबोध अधिगम के प्रमुख प्रक्रम

सबोध अधिगम के निर्धारक चर

उद्दीपक परिवर्त्य
सूचनापरक प्रतिपूर्ति
प्रतिक्रियाओं की जटिलता का प्रभाव
आगिक चरो का प्रभाव
मध्यवर्ती प्रक्रम तथा स्थानान्तर

चिन्तन

प्रक्रम चिन्हीकरण प्रयोग

प्रकार्यात्मक सम्बन्ध प्रयोग

चिन्तन के प्रमुख पक्ष एव उनका प्रायोगिक अध्ययन

समस्या समाधान

निगमनात्मक चिन्तन प्रक्रम

अगमनात्मक चिन्तन प्रक्रम

सबोध-अधिगम तथा चिन्तन

विषय-प्रवेश

मानवीय व्यवहार का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है सोचने का प्रक्रम। इस प्रक्रम से ऐसी प्रतिक्रियाओ का द्योतन होता है जो वास्तविक अर्थ मे आन्तरिक अथवा प्रच्छन्न होती हैं। चिन्तन के प्रक्रम मे व्यक्ति अनिवार्यत सबोधो का उपयोग करता है। सबोधपरक प्रतिक्रियाएँ वे होती हैं जिनमे एक ही प्रतिक्रिया कई उद्दीपको मे से किसी के उपस्थित होने पर होती हैं। ऐसी प्रतिक्रियाओ का प्रमुख रूप स्पष्टत प्रकट हो जाता है जब व्यक्ति किसी उद्दीपक या उद्दीपक-समूह को एक ही नाम से (वाचिक प्रतिक्रिया के माध्यम से) इगित करता है। मनुष्य एक पशु जातिविशेष के सभी सदस्यो को श्वान अथवा गाय इत्यादि नाम से इगित करता है। यद्यपि प्रत्येक गाय अपनी अनेक विशेपताओ के आधार पर अन्य गायो से भिन्न होती है तथापि एक ही सामान्यीकृत नाम से सभी गायो को इगित किया जाता है। अमूर्त स्तर पर भी इस प्रकार का नामकरण किया जाता है। किसी व्यक्ति को आर्थिक पुरस्कार मिले अथवा मौखिक प्रशसा, लिखित प्रमाण-पत्र अथवा किसी महत्वपूण सूची मे उसका उल्लेख, हम इन सभी प्रक्रियाओ को प्रतिष्ठा प्राप्त करने की सज्ञा देते हैं। यहाँ प्रतिष्ठा एक अमूर्त सबोध का उदाहरण प्रस्तुत करता है। मनुष्य अपने प्रत्येक विचाराभिव्यक्ति अथवा चिन्तन प्रक्रम मे ऐसे ही अनेक मूर्त और अमूर्त सबोधो का उपयोग करता है।

प्रश्न यह उठता है कि सबोधो की वास्तविक परिभाषा क्या है ? क्या सबोध अधिगत प्रतिक्रियायें है ? यदि वे अधिगत प्रतिक्रियायें हैं तो इनका अधिगम कैसे होता है ? क्या इस प्रकार के अधिगम के प्रायोगिक अध्ययन के लिए विशिष्ट विधियो की आवश्यकता होती है ? यदि ऐसा होता है तो वे विधियाँ कौन-सी हैं और उनकी प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं। सबोध अधिगम मे कौन-कौन से प्रमुख प्रक्रम अन्तर्निहित है ? इनका किस प्रकार अध्ययन किया गया है ? यह भी प्रश्न उठता है कि सबोध अधिगम को प्रभावित करने वाले कौन से प्रमुख कारक हैं। क्या सबोध अधिगम की सैद्धान्तिक व्याख्या भिन्न-भिन्न प्रकार से की गई है ? दूसरी ओर चिन्तन के सम्बन्ध मे भी अनेक प्रश्न मनोवैज्ञानिको ने प्रस्तुत किये हैं जैसे, चिन्तन क्या है ? उसके प्रायोगिक अध्ययन की प्रणालियाँ क्या हैं ? सोचने मे कौन से प्रक्रम सन्निहित हैं ? कौन से कारक इसे प्रभावित करते हैं और इसकी सैद्धान्तिक व्याख्या किस प्रकार की जा सकती है ? इन्ही सब प्रश्नो का विवेचन प्रस्तुत अध्याय मे किया गया है।

सबोध-अधिगम

सबोध की परिभाषा

आधुनिक प्रायोगिक मनोविज्ञान मे सबोध शब्द की परिभापा भिन्न-भिन्न रीति से की गई है क्योकि सबोध अधिगम के प्रायोगिक अध्ययन मे अनेक उपागमो का आश्रय लिया गया है। व्यवहारवादी हल्ल तथा उसके अनुयायी सबोध को एक ऐसी अधिगत प्रक्रिया मानते हैं जो अनेक उद्दीपनो के प्रति होती है क्योकि उन उद्दीपको के अधिकाश तत्व एक ही सदृश होते है। दूसरी ओर गेस्टाल्टवादी जिनमे स्मोक (1932) प्रमुख हैं, सबोध को एक ऐसी प्रतीकात्मक प्रतिक्रिया मानता है जो वहुत से उद्दीपको के प्रति इसलिए होती है कि उनमे भौतिक सादृश्य न होते हुए भी प्रत्यक्षीकरण के दृष्टिकोण से सामान्य सगठन अथवा प्रतिरूप पाये जाते हैं। तीसरी ओर आसगुड (1953) तथा गास्स (1960) के अनुसार सबोध-अधिगम किन्ही परिस्थितियो अथवा पदार्थों मे एक सदृश तत्वो वाले उद्दीपक अथवा एक सदृश प्रत्यक्षपरक सम्बन्धो के समूह के प्रति समान मध्यस्थताकारी प्रतिक्रियाओ[1] का अधिगम करना है। आसगुड (1953) के अनुसार किसी भी सबोध अधिगम की अपरिहाय स्थिति मध्यस्थताकारी प्रक्रम है। हवाई विश्वविद्यालय के प्रो० विनाके ने सबोध की व्याख्या करते हुए कहा है कि सबोध-अधिगम प्रतिक्रियाओ की एक ऐसी व्यवस्था[2] है जिसका उद्देश्य ऐन्द्रिक अनुभवो अथवा प्रत्यक्षीकृत अनुभवो से प्राप्त प्रदत्तो की व्याख्या एव उनका सगठन करना है। दूसरी ओर सज्ञानवादी[3] ब्रूनर इत्यादि सबोध को एक प्रतीक-प्रतिकार्थ[4] अनुमानो का समूह मानते है जिनसे व्यक्ति किसी पदार्थ या घटना के प्रेक्षित और प्रासगिक विशेपताओ से परे उस पदार्थ या घटना की जाति को पहचानता है। इन परिभापाओ के आधार पर सबोध के पहचानने के कतिपय मापदडो का उल्लेख टामसन (1964) ने अधोलिखित प्रकार से किया है—

(1) सबोध स्वय मे इन्द्रिय जन्य प्रदत्त न होकर विशिष्ट उद्दीपक स्थितियो के प्रति पूर्व प्रतिक्रियाओ से उत्पन्न प्रतिक्रिया-व्यवस्था है। (2) सबोध का अनुप्रयोग पूर्व अधिगम का नयी उद्दीपन स्थिति मे उपयोग है। (3) सबोध पृथक-पृथक प्राप्त इन्द्रियजन्य प्रदत्तो मे सम्बन्ध स्थापन है। (4) सबोधपरक प्रतिक्रियाएँ मानवीय स्तर पर अनुभव की भिन्न-भिन्न इकाइयो को शब्दो अथवा अन्य प्रतीको के माध्यम से सुसगठित करती है।

इन परिभापाओ से सबोध का वर्णनात्मक परिचय तो अवश्य प्राप्त हो जाता है, किन्तु यह नही स्पष्ट हो पाता कि सबोध अधिगम पर किये जाने वाले प्रयोगो मे किस प्रकार की दशाओ अथवा स्थितियो को सबोध के रूप मे मूर्त स्तर पर व्यक्त

---

1 Mediating responses 2 System 3 Gognitivists 4 Sign significate

किया जाता है। अत प्रायोगिक दृष्टिकोण से ये परिभाषाये बहुत उपादेय नही हैं। अनेक प्रयोगो मे अनुप्रयुक्त उद्दीपन परिस्थितियो के सर्वेक्षण से यह ज्ञात होता है कि सबोधपरक प्रतिक्रिया वह है जो अनेक उद्दीपनो के प्रति उनमे सन्निहित एक सदृश सामान्य तत्व अथवा सामान्य प्रत्यक्षपरक सम्बन्धो अथवा अन्य किसी मापदण्ड के के आधार पर की जाती है। इस परिभाषा का स्पष्टीकरण इस चित्र से स्वय हो जाता है।
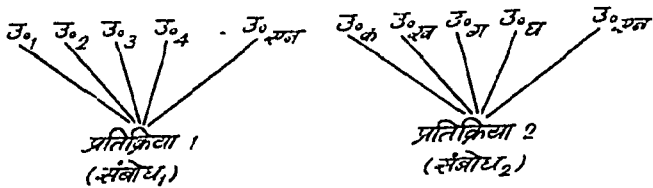
चित्र सख्या 10 1

प्रायोगिक प्रविधियाँ[1]

सबोध अधिगम पर किये गये प्रयोगो मे अनुप्रयुक्त प्रविधियो के समीक्षात्मक विवेचन से स्पष्ट होता है कि इस प्रकार के प्रयोग कभी सबोध अधिगम, कभी सबोध-सम्प्राप्ति और कभी सबोध-तदात्मीकरण के नाम से पुकारे गये है। यद्यपि सबोध अधिगम पर किये गये इन प्रयोगो मे प्रयुक्त इन नामो का सामान्य उपयोग पर्याय-वाची पदो के रूप मे होता है, तथापि इनमे विधिगत् आधार पर भिन्नता की जाती है। सबोध अधिगम मे प्रयुक्त विधियो को प्रयोग सामग्री के आधार पर दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है। डीज (1967) के अनुसार प्रथम प्रकार के वे प्रयोग हैं जिनमे कृत्रिम उद्दीपक पदार्थों[2] का उपयोग किया जाता है। दूसरे प्रकार के वे प्रयोग हैं जिनमे स्वाभाविक उद्दीपक पदार्थों का उपयोग होता है। प्रयोगो मे अनुप्रयुक्त प्रक्रियाओ के आधार पर सबोध पर किये गये प्रयोगो को दो भागो मे विभाजित किया गया है–पहली तदात्मीकरण विधि[3] और दूसरी प्रतिक्रिया विधि[4]।

प्रयोग सामग्री

कृत्रिम उद्दीपक—सबोधपरक प्रतिक्रिया करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रयोज्य उद्दीपको के बीच विभेदन कर सके। विभेदन उद्दीपक की विभिन्न विमाओ के मूल्यो के आधार पर होता है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि सबोधपरक प्रतिक्रिया बहुत से उद्दीपको के प्रति एक ही स्थिर प्रतिक्रिया है। अत स्वय स्पष्ट है कि इन विभिन्न उद्दीपको मे परस्पर किसी न किसी प्रकार की समानता होती होगी जिसके आधार पर प्रयोज्य उन उद्दीपको के प्रति एक ही प्रतिक्रिया करता है।

---

1 Experimental techniques 2 Artificial stimuli 3 Identification method 4 Response method

ऐसी स्थिति उत्पन्न करने के लिए अनेक प्रयोगकर्त्ता कृत्रिम उद्दीपक पदार्थों का निर्माण कर प्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिए, ब्रूनर, गुडनाऊ तथा आस्टिन (1956) ने कृत्रिम सामग्री का निर्माण कर सबोध सम्प्राप्ति पर प्रयोग किया। इस सामग्री मे अनेक चित्र थे जो परस्पर किसी न किसी उद्दीपक-विमा के मूल्यो मे परस्पर भिन्न थे। इन लोगो ने चित्र मे वनी आकृति के तीन आकृतियो—वृत्त, वर्ग, तथा क्रास कोलिया। प्रत्येक आकृति प्रत्येक कार्ड पर तीन सख्याओ मे 1 या 2 या 3 थी। साथ ही साथ विभिन्न सख्याओ मे वनी विभिन्न आकृतियाँ तीन वर्णों की—हरा, लाल और काला--थी। अन्तिम विशेपता यह थी कि प्रत्येक चित्र के चारो ओर वनी सीमारेखा भी तीन प्रकार की थी। कुछ मे तीन रेखाये, कुछ मे दो रेखायें और कुछ मे एक ही रेखा थी। इस प्रकार कृत्रिम रूप से निर्मित ये उद्दीपक-समुच्चय चार उद्दीपक-विमाओ के आधार पर भिन्न-भिन्न थे, और प्रत्येक विमा के तीन मूल्यो मे से एक मूल्य को एक उद्दीपक मे सन्निहित करते थे। इस प्रकार आकृति 3 × वर्ण 3 × सख्या 3 × सीमारेखा 3 = 81 उद्दीपक बने थे। इस उद्दीपक समुच्चय का चित्र, चित्र सख्या 10 2 मे प्रस्तुत है।
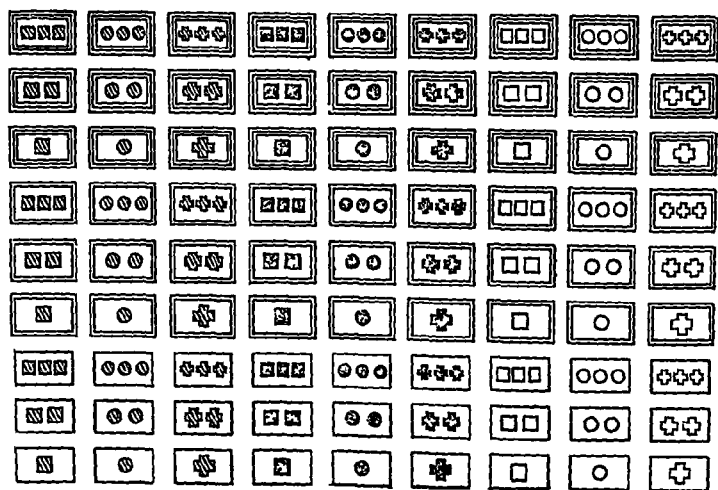
चित्र सख्या 10 2

कृत्रिम उद्दीपक समुच्चय का उदाहरण

पर कुछ उद्दीपको को एक सबोध के अन्तर्गत और दूसरो को इस सबोध के बाहर माना जा सकता है। इन विभिन्न उद्दीपको को तीन प्रकार से विभाजित कर तीन प्रकार के सबोधो पर प्रयोग किया गया है। सयोजक सबोध[1] वे हैं जिनमे दो या दो से अधिक विशेपताएँ उस सबोध का वर्णन करती हैं। उदाहरण के लिए, ब्रूनर आदि द्वारा निर्मित उद्दीपन सामग्री मे यह निश्चित किया जा सकता है कि वे सभी लाल वृत्ताकार आकृतियाँ जो तीन सीमारेखाओ मे आवद्ध हैं और चाहे वे किसी भी सख्या मे हो किसी सबोध के उदाहरण है।

वियोजक सबोध[2] को उद्धृत करने के लिए "इस विशेपता अथवा उस विशेपता" के आधार पर उद्दीपको को सबोध उदाहरणो के रूप मे सम्मिलित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए सभी 3 सख्या मे लाल वृत्त या 3 हरे वर्ग वाले चित्रो को सबोध के उदाहरण के रूप मे लिया जा सकता है। यदि यह कहा जाय कि वे सभी चित्र जिनमे एक ही सख्या के चित्र और—सीमा रेखायें हो वे ही सबोध के उदाहरण हैं तो इसे सम्बन्धपरक[3] सबोध की सज्ञा दी जायेगी। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि इस प्रकार से निर्मित कृत्रिम पदार्थों की कुछ विशेपतायें सबोध-अधिगम के लिए प्रासगिक और कुछ विशेपताएँ अप्रासगिक होती हैं। जिन विशेपताओ के आधार पर सबोध को विभेदित किया जा सकता है उन्हे प्रासगिक[4] अथवा मापदण्डीय[5] विशेपताओ की सज्ञा दी जाती है। जिन विशेपताओ के आधार पर ऐसा नही किया जा सकता उन्हे अप्रासगिक अथवा अमापदण्डीय मानते है। जो चित्र या उद्दीपक सबोध के अन्तर्गत आते हैं उन्हे विधेयात्मक उदाहरण[6] तथा जो उसके बाहर होते हैं उन्हे निपेधात्मक उदाहरण कहा जाता है।

स्वाभाविक उद्दीपक—अनेक मनोवैज्ञानिक ऐसे उद्दीपक पदार्थों का उपयोग करते हैं जो दैनिक जीवन मे काम आने वाले उपकरणो एव प्राकृतिक अथवा मनुष्य निर्मित वस्तुओ से लिए जाते है। या तो इनके चित्रो को उद्दीपक के रूप मे अनुप्रयुक्त किया जाता है अथवा इनके छोटे छोटे नमूनो को। उदाहरण के लिए, हाइड-ब्रेडर (1946) द्वारा अनुप्रयुक्त उद्दीपन सामग्री को लिया जा सकता है। यह उद्दीपन समूह चित्र सख्या 10 3 मे दिया गया है।

इस प्रकार के उद्दीपक पदार्थ अत्यन्त परिचित और स्वाभाविक होते हुए भी उद्दीपन विमाओ मे इतने जटिल होते हैं कि वस्तुपरक रूप से उनके उद्दीपक विमाओ और विमा-मूल्यो का विभेदन अत्यन्त कठिन होता है। इनमे सन्निहित प्रासगिक विशेपताओ के आधार पर सम्बन्ध अधिगम तो सरल हो जाता हे किन्तु इनमे सन्निहित अप्रासगिक विशेपताओ का नामकरण प्रयोज्य के लिए असम्भव होता है।

---

1 Conjunctive concepts 2 Disjunctive concepts 3 Relational
4 Relevant 5 Criterial 6 Positive instances

कतिपय प्रायोगिक स्थितियो मे इसी प्रकार के पदार्थों का आश्रय लेकर सबोध-अधिगम पर प्रयोग किया जाता है, तथापि अनेक प्रायोगिक समस्याए ऐसी है जिनका प्रायोगिक अध्ययन ऐसे पदार्थों की सहायता से नही किया जा सकता ।
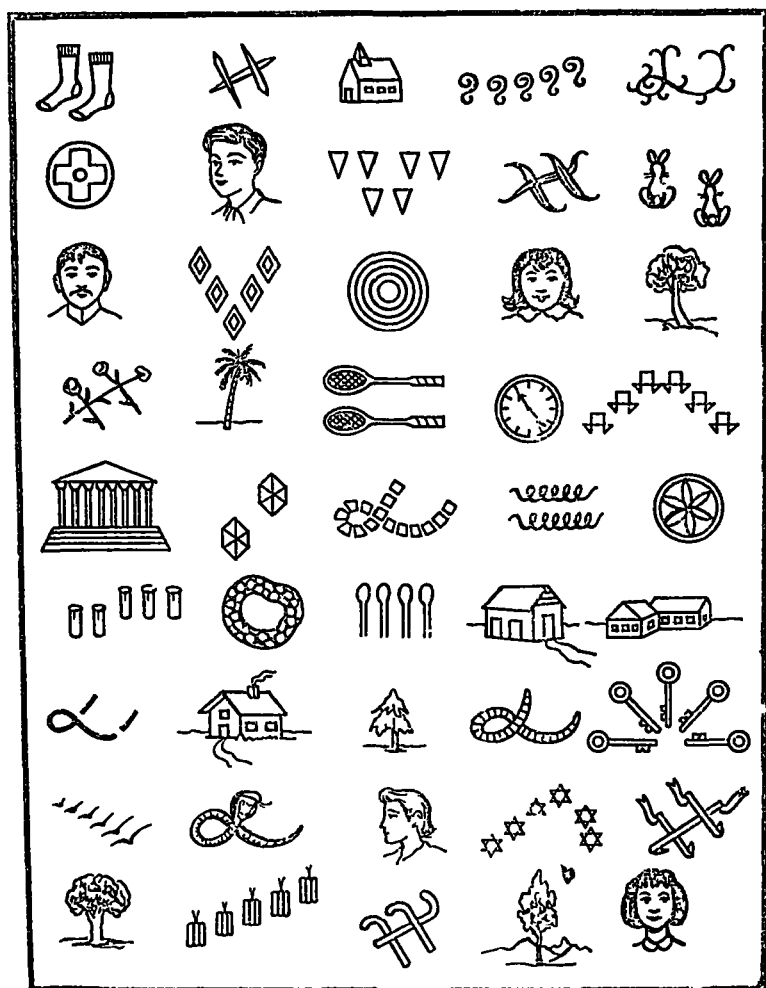
चित्र सख्या 10 3

स्वाभाविक उद्दीपक समुच्चय का उदाहरण

प्रयोग प्रक्रिया

प्रयोग प्रक्रिया के आधार पर सबोध सम्बन्धी प्रयोगो को दो वर्गों मे विभाजित

किया जा सकता है । एक तो वे प्रयोग हैं जिनमे तदात्मीकरण प्रविधि[1] का उपयोग किया गया है । दूसरे प्रकार के वे प्रयोग हैं जिनमे प्रतिक्रिया प्रविधि का प्रयोग किया गया है । प्रत्येक प्रकार के प्रयोग मे अधिगत किये जाने वाले सबोध को परिभाषित करने वाले उदाहरण प्रयोगकर्त्ता द्वारा सीमित सख्या मे उपस्थित किये जाते हैं । फलत प्रयोज्य को इस निश्चित सख्या के उदाहरणो मे से ही सबोधसूचक उदाहरणो को खोजना पडता है । प्रयोज्य इन्ही मे से उदाहरणो को पहचान कर अथवा उनके प्रति निश्चित प्रतिक्रिया कर अपने सबोध अधिगम की स्थिति को अभिव्यक्त करता है ।

तदात्मीकरण प्रविधि— इस प्रक्रिया मे प्रयोज्य के समक्ष प्रयोगकर्त्ता सभी उद्दीपक पदार्थों को प्रस्तुत कर देता है । प्रयोगकर्त्ता पहले से ही किसी आधार पर निश्चित कर लेता है कि कौन से उद्दीपक पदार्थ सबोध के विधेयात्मक उदाहरण और कौन से निषेधात्मक उदाहरण हैं, किन्तु यह बात प्रयोज्य को नही बताता है । प्रयोज्य से अपेक्षा की जाती है कि वह उस उद्दीपक समुच्च से चुन कर अनुमानत बताये कि कौन से उद्दीपक पदार्थ सबोध सूचक है और कौन से नही हैं । प्रयोज्य एक को अनुमानत चुनता है और यह बताता है कि वह उद्दीपक सबोध का उदाहरण है अथवा नही । प्रयोगकर्त्ता प्रयोज्य को यह बताता है कि उसका अनुमान सही है या गलत । इस प्रकार प्रयोज्य तब तक सबोध के विधेयात्मक उद्दीपको को चुनता रहता है जब तक यह स्पष्ट नही हो जाता कि उसने वस्तुत सबोध-अधिगम कर लिया है । प्राय सही चुनावो का एक लम्बा क्रम सबोध अधिगम का मापदण्ड माना जाता है । बहुधा एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग मे यह प्रायोगिक प्रक्रिया थोडी बहुत परिवर्तित हो जाती है । उदाहरण के लिए, सभी प्रयोगकर्त्ता यह आवश्यक नही मानते कि सभी उद्दीपको को एक साथ प्रस्तुत किया जाए । कभी-कभी प्रयोज्य को यह छूट रहती है कि वे अपनी क्रियाओ को उपयुक्त बनाने के लिए अपने विकल्पो का अभिलेख रख सकें, लेकिन बहुधा ऐसा नही होने दिया जाता । प्रयोज्य से अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी स्मृति का ही उपयोग बिना किसी बाह्य सकेतो की सहायता के करें ।

प्रतिक्रिया प्रविधि[2]—इस प्रक्रिया मे नैमित्तिक अनुबधन विधि का उपयोग किया जाता है । इस प्रक्रिया मे बहुत से उद्दीपको को एक-एक बार प्रयोज्य के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है । प्रयोज्य के समक्ष दो या चार वैकल्पिक प्रतिक्रियायें उपलब्ध होती हैं ।

प्रत्येक उद्दीपक के उपस्थित होने पर प्रयोज्य इनमे से कोई एक प्रतिक्रिया करता है यदि प्रतिक्रिया सही हुई तो उसे मौखिक या साकेतिक रीति से पुनर्बलन

---

1 Identification technique 2 Response technique

प्राप्त होता है। सही होने पर पुनर्वलन विधेयात्मक और गलत होने पर निषेधात्मक होना है। प्रतिक्रिया मौखिक हो सकती है जिसमे प्रयोज्य को उद्दीपक के उपस्थित होने पर उसके दिये गये कृत्रिम नामो मे से सही नाम बताना पडता है—जैसे उद्दीपक डैक्स है या मैक्स है। कभी-कभी कृत्रिम नामधारी बटन होते हैं जिनमे से उद्दीपक के उपस्थित होने पर उनमे से एक को दबाना पडता है। यदि सही बटन दबा तो पुनर्वलन विधेयात्मक, यदि बटन गलत दबाया जाता है तो पुनर्वलन निषेधात्मक होता है। इस प्रकार इस विधि मे प्रयोज्य बहुत से उद्दीपको को एक नाम से जानना या पुकारना सीख लेता है। इस प्रकार सीखने का क्रम तब तक चलता रहता है जब तक कि प्रयोज्य अधिगम के निश्चित मापदण्ड तक न पहुँच जाय।

इनके अतिरिक्त सबोध पर किये गये प्रयोगो की प्रक्रियाओ के अगणित रूप हैं किन्तु इन्ही दो प्रमुख विधियो के सदर्भ मे उन सभी को सम्मिलित किया जा सकता है।

सबोध-अधिगम के प्रमुख प्रक्रम

परिभाषाओ से तथा सबोध अधिगम मे अनुप्रयुक्त प्रयोग प्रक्रियाओ के वर्णन से स्पष्ट है कि सबोध अधिगम मे प्रयोज्य अनेक उद्दीपको एक शीर्षक (कृत्रिम नाम) अथवा वर्ग के अन्तर्गत विभाजित करता है अथवा उनके प्रति एक ही प्रतिक्रिया करना सीखता है। पहला प्रश्न यह उठता है कि उद्दीपको के प्रति प्रतिक्रिया करने मे उनकी किन विशेषताओ के साथ प्रतिक्रिया का अनुबन्धन होता है? दूसरे शब्दो मे, बहुत से उद्दीपको को प्रयोज्य किस आधार पर एक शीर्षक के अन्तर्गत विभक्त करता है। ऐसा करने मे कौन से मौलिक मनोवैज्ञानिक प्रक्रम सन्निहित है। इन प्रश्नो का उत्तर देने के लिए प्रथम प्रायोगिक प्रयत्न हल्ल (1920) ने किया था।

उद्दीपको के एक सदृश अवयव अथवा सामान्य प्रत्यक्षपरक सम्बन्ध—हल्ल (1920) ने यह परिकल्पना प्रस्तुत की कि प्रयोज्य बहुत से उद्दीपको मे सन्निहित एक सदृश अवयवो को अमूर्त कर विभेदन, सामान्यीकरण तथा पुनर्वलन के आधार पर सबोध अधिगम करता है। इस परिकल्पना के परीक्षण के लिए उसने प्रयोज्यो के समक्ष अनुक्रमिक रूप से ताश की बारह गड्डियो को एक एक कर प्रस्तुत किया। ताश के प्रत्येक पत्ते पर एक चीनी भाषा का अक्षर बना हुआ था। प्रत्येक अक्षर किसी एक सबोध का उदाहरण था। इस प्रकार एक गड्डी के बारह ताश बारह सबोधो के उदाहरण थे। सभी गड्डियो मे प्रत्येक सबोध के एक-एक उदाहरण लेकर बारह उदाहरण थे। सर्व प्रथम प्रयोगकर्त्ता ने पहली गड्डी के पत्तो को एक-एक कर उपस्थित किया और प्रयोज्य ने प्रत्येक के प्रति उचित सबोध प्रतिक्रिया करने का अधिगम अभ्यास द्वारा किया। इसी प्रकार छठवीं गड्डी तक अभ्यास द्वारा सबोध प्रतिक्रिया का अधिगम कराया गया। सातवी से बारहवी गड्डी के पत्तो को यह परी-

क्षण करने के लिए प्रस्तुत किया गया कि प्रयोज्य किस सीमा तक अधिगत सबोधो का नये उद्दीपको के प्रति सामान्यीकरण करते हैं। परिणाम मे प्राप्त प्रदत्तो से ज्ञात हुआ कि प्रयोज्य नये उद्दीपको के प्रति भी सबोध प्रतिक्रिया विभेदन अधिगम के नियमानुसार करते है। सबोधपरक प्रतिक्रिया मे सामान्यीकरण, उद्दीपक-विभेदन और पुनर्बलन के प्रक्रम अन्तर्निहित होते हैं, ऐसा निष्कर्ष हल्ल ने निकाला।

मनोवैज्ञानिको ने हल्ल के इस प्रयोग की कतिपय दृष्टिकोणो से आलोचना की ह। गेस्टाल्टवादियो ने सबोध निर्माण मे उद्दीपको के एक सदृश अवयवो के आधार को अस्वीकार करते हुए बताया कि बहुत से उद्दीपको को एक सबोध के अन्तर्गत एक सदृश अवयवो के आधार पर नही बल्कि सामान्य प्रत्यक्षीकरण अथवा एक सदृश सज्ञानपरक[1] सम्बन्धो के आधार पर प्रयोज्य द्वारा सबोधपरक प्रतिक्रिया किया जाता है। इस परिकल्पना की पुष्टि स्मोक (1932) ने अपने प्रयोग के माध्यम से की। उसकी प्रयोग सामग्री मे कुछ ज्यामितिक चित्र सम्मिलित थे। चित्र या तो त्रिभुज थे अथवा वृत्त थे। वृत्त आकृति मे छोटे या बडे थे और प्रत्येक वृत्त मे अन्दर या बाहर एक या दो बिन्दु बने हुए थे। छोटे वृत्त जिनमे एक बिन्दु अन्दर बना था डेक्स सबोध के उदाहरण थे और अन्य वृत्त डैक्स के उदाहरण नही थे। यद्यपि कि किसी भी सबोध के सभी उदाहरणो मे एक सामान्य प्रत्यक्षपरक सम्बन्ध था तथापि यह उदाहरण परस्पर एक-दूसरे से अवयवो के आधार पर बहुत भिन्न थे। स्मोक ने प्रदर्शित किया कि इन उद्दीपको मे एक सदृश तत्वो के अभाव मे भी प्रयोज्यो ने सबोध निर्माण कर लिया। उसने निष्कर्ष निकाला कि सबोध-अधिगम उद्दीपको मे निहित सामान्य प्रत्यक्षपरक सम्बन्धो के आधार पर होता है न कि एक सदृश अवयवो के प्रति किसी प्रतिक्रिया के अनुबन्धन के आधार पर।

आसगुड ने हल्ल के एक सदृश अवयव उपागम तथा स्मोक के प्रत्यक्षपरक उपागम की आलोचना की है। उसने अनेक प्रयोगो का उद्धरण देते हुए यह प्रतिपादित किया कि सबोध अधिगम की अनिवार्य दशा किसी उद्दीपक समूह के प्रति समान मध्यस्थताकारी प्रतिक्रियाओ का अधिगम करना है। इस दृष्टिकोण की पुष्टि रीड (1946) के एक प्रयोग से की गई है। रीड ने प्रयोज्यो को ऐसे ताश के पत्ते दिखाये जिनमे अग्रेजी के चार शब्द (Club, Picnic, Reaches, Beat) थे जिसमे से एक शब्द किसी दिये हुए सबोध 'वेप' का उदाहरण था। वेप सबोध के सभी पत्तो मे किन्ही सब्जियो के नाम दिये गये थे। इसी तरह 'कुन' सबोध के पत्तो मे जानवरो के तथा डैक्स सबोध के पत्तो मे किसी रग के नाम दिये गये थे। उद्दीपक सामग्री को स्पष्ट करने के लिए आगे प्रयोग मे अनुप्रयुक्त सबोधो के कुछ उदाहरण दिये गये हैं।

---

1 Cognitive

सबोध 1 डेक्स		सबोध 2 वेप	
पत्ते की क्रम-सख्या	लिखित शब्द	पत्ते की क्रम सख्या	लिखित शब्द
5	उत्तर	4	चिडिया
	उच्चतम		पिकनिक
	वायुयान		पहुँच
	लाल		चुकन्दर
11	जहाँ भी	16	रेंगना
	हरा		बैंगन
	जोर से		प्रसन्न
	मक्खन		आलमारी
17	मेज	28	चाय
	पशु		यान चालक
	नीला		मिट्टी
	मक्खन		गाजर

इस सामग्री से भी प्रयोज्यो ने अभ्यास द्वारा दिये गये सबोधो को अधिगत कर लिया। स्पष्ट है कि एक सदृश अवयव तथा सामान्य प्रत्यक्षपरक सम्बन्धो के आधार पर सबोध अधिगम का विश्लेपण नही किया जा सकता। आसगुड ने इस प्रयोग के आधार पर समान मध्यस्थताकारी प्रक्रमो का आश्रय लेकर सबोध अधिगमो मे सन्निहित मूल प्रक्रमो का विश्लेपण किया है। उसके अनुसार सबोध अधिगम मे प्रयोज्यो को दो कार्य करने पडते हैं—पहले तो वह उद्दीपको मे सन्निहित विमाओ मे से प्रासगिक विमाओ का विभेदन करता है जैसा कि प्रस्तुत प्रयोग मे अनुप्रयुक्त पत्तो के चार शब्दो मे से प्रासगिक शब्द का विभेदन और उसका सबोधकरण। दूसरा कार्य होता है इस सबोधकरण प्रक्रम को सभी प्रासगिक शब्दो के साथ सम्बन्धित करना। इन्ही कार्यों के करने के बाद प्रयोज्य सबोध-अधिगम कर पाता है। सबोधकरण प्रक्रम ही वस्तुत मध्यस्थता प्रक्रम है। सबोध-अधिगम के प्रक्रम को अधोलिखित चित्र मे आसगुड ने स्पष्ट किया है।
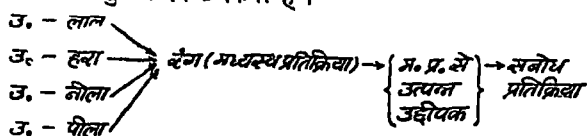
चित्र सख्या 10 4

स्पष्ट है कि डेक्स के उदाहरण वाले पत्तो मे दिये गये शब्दो मे जब किसी रग का नाम आता है तो उससे रग की आन्तरिक प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है।

लाल, हरा, नीला अथवा पीला सभी रग है, अत प्रयोज्य मन ही मन इनके आने पर रग कहता है। यह प्रतिक्रिया सभी रगो के लिए समान है जिसके कारण प्रतिक्रियाजन्य मध्यस्थता की प्राप्ति होती है और उसका साहचर्य अपेक्षित सबोध प्रतिक्रिया के साथ हो जाता है। इस प्रकार मध्यस्थता प्रक्रम की समानता ही सबोध अधिगम का मूलभूत आधार है।

सबोध अधिगम के निर्धारक चर

सबोधो के अधिगम अथवा निर्माण को निर्धारित करने वाले घटको की जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से अनेक प्रायोगिक अध्ययन हुए हैं। इन घटको को सामान्यत तीन श्रेणियो मे विभाजित किया जा सकता है। प्रथम श्रेणी मे वे परिवर्त्य सम्मिलित है तो सबोध-अधिगम मे अनुप्रयुक्त सामग्री अथवा उद्दीपक समुच्चय[1] मे सन्निहित होते है। इन्हे हम उद्दीपक परिवर्त्य की सज्ञा दे सकते है। दूसरी श्रेणी मे वे परिवर्त्य आते हैं जो अधिगमकर्त्ता की जैविक, अनुभूतिजन्य तथा अन्य व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेपताओ से उद्भूत होते हैं। इनको हम आगिक चरो[2] की सज्ञा दे सकते हैं। तीसरी श्रेणी मे उन चरो को रख सकते है जो विविध प्रकार के है और अधिगम पृष्ठभूमि सबोध निर्माण मे सन्निहित प्रतिक्रिया प्रकार और प्रक्रिया की विशेपताओ से उद्भूत होते है। इन सभी श्रेणियो मे सम्मिलित परिवर्त्यों के कारण सबोध अधिगम सरल या क्लिष्ट होता है।

(1) **उद्दीपक परिवर्त्यों का प्रभाव**—पिछले पृष्ठो मे स्पष्ट किया जा चुका है कि उद्दीपको मे सन्निहित विमाओ और उनके कतिपय मूल्यो के आधार पर सबोध-अधिगम-प्रयोग के लिए उद्दीपक सामग्री निर्मित की जाती है। इन विमाओ मे उद्दीपक की आकृति, सख्या तथा उनके वर्ण को उदाहरणस्वरूप उद्धृत किया जा सकता है। एक समस्या यह है कि विभिन्न परिस्थितियो मे सख्या वर्ण और आकृति के सबोधो की सापेक्षिक सरलता क्या है। दूसरे शब्दो मे, इनमे से किस विमा के आधार पर सबोधकरण अधिगत सरलता से होता है। इस समस्या का प्रायोगिक अध्ययन हाइडब्रेडर (1946-1947) तथा ग्रान्ट (1948) ने किया है। हाइडब्रेडर ने ज्ञात किया कि स्थूल वस्तुओ का सबोधीकरण सख्या और रग की तुलना मे अधिक सरलता से होता है। उसका कहना है कि उद्दीपक की व विमायें जितनी अधिक वस्तु-विशेपता की द्योतक होगी, उनका सबोधीकरण उतना ही सरल होगा। वोहविल्ल (1957) ने इस सम्बन्ध मे एक अत्यन्त महत्वपूण प्रश्न उठाया है—क्या सबोधकरण मूलत किसी उद्दीपक विमा के प्रत्यक्षपरक अमूर्तकरण मे होने वाली सुविधा का परिणाम है अथवा सबोधपरक वृत्तियो का जो प्रत्यक्षपरक प्रक्रमो से भिन्न है। इस समस्या का प्रायोगिक अन्वेपण उसने दो प्रयोगो मे किया

1 Stimulus variables 2 Organismic variables.

है । पहले प्रयोग मे सबोधकरण का अधिगम एक समस्या निदान के रूप मे कराया गया और दूसरे मे प्रत्यक्षपरक प्रक्रम के रूप मे । पहले प्रयोग मे उसने आकृति, वर्ण तथा सख्या के सबोधो के अधिगम की तुलना की । इसके लिए उसने डब्लू० सी० एस० टी०[1] के 48 कार्ड लिए । प्रयोज्यो को इन्हे कई भागो मे विभाजित करना था । प्रत्येक कार्ड के विभाजन के बाद प्रयोज्य को बताया जाता था कि उसका विभाजन सही था या गलत । पुनर्बलन सूची अग्रिम रूप से इस प्रकार तैयार की गई थी कि $\frac{2}{3}$ कार्डों की तीन विमाओ मे से एक ही सही विभाजन का आधार हो सकती थी जबकि शेष $\frac{1}{3}$ कार्ड अन्य दो विमाओ के आधार पर विभक्त किये जा सकते थे । प्रयोज्यो के एक समूह के लिए आकृति, दूसरे समूह के लिये वर्ण और तीसरे के लिये सख्या ही मूल सबोध थे । दूसरे प्रयोग मे आकृति, वर्ण और सख्या के अमूर्तकरण की गति की तुलना की गई । प्राप्त परिणामो से ज्ञात हुआ कि प्रथम प्रयोग मे आकृति सख्या अथवा वर्ण की तुलना मे अधिक सुविधा के साथ सबोधाधिगत हुए ।

दूसरे प्रयोग से परिणाम निकला कि आकृति का अमूर्तकरण सख्या और वर्ण की तुलना मे अधिक सरलता से होता है । इस प्रकार, इन प्रयोगो से इस निष्कर्ष की पुष्टि हुई कि सबोध अधिगम के लिए आवश्यक अमूर्तकरण-प्रक्रम[2] के कारण सभी उद्दीपक विमाओ का अधिगम समान सुगमता से नही होता ।

उद्दीपक सामग्री की विशेषताओ के प्रभाव का अध्ययन एक अन्य प्रकार से भी किया गया है । हवलैण्ड (1952) ने इस बात की ओर स्पष्ट रूप से सकेत किया है कि सबोध अधिगम मे व्यक्ति उद्दीपक समुच्चय से प्राप्त सूचनाओ के आधार पर विभिन्न उद्दीपको के प्रति विभिन्न सबोधपरक प्रतिक्रियाएँ करता है । आर्चर, बोर्न तथा ब्राउन (1955) ने उद्दीपक समुच्चय की जटिलता को सूचना-सिद्धान्त के आधार पर मापन कर उद्दीपक से मिलने वाली सूचना को प्रासगिक और अप्रासगिक सूचना बिट्स मे विभाजित किया । इनकी यह परिकल्पना थी कि अप्रासगिक सूचना की मात्रा जिस अनुपात मे बढती है, उद्दीपक समुच्चय की जटिलता और परिणामत सबोधअधिगम सकृत्य की क्लिष्टता भी उसी मात्रा मे सम्वर्द्धित होती है । इस परिकल्पना की पुष्टि इनके प्रयोग मे हुई है । इस दिशा मे बोर्न (1957) के अध्ययन को भी उद्धृत किया जा सकता है । इस प्रयोग मे उसने त्रिस्तरीय अप्रासगिक सूचनाओ को लिया । एक समूह के लिए एक, दूसरे के लिए दो तथा तीसरे समूह के लिए तीन सूचनाएँ अप्रासगिक थी । सभी समूहो के लिए दो सूचनाएँ प्रासगिक थी । सबोध-निर्माण के प्रयोग से प्राप्त प्रदत्तो से ज्ञात हुआ कि अप्रासगिक सूचनाओ मे वृद्धि सबोध-अधिगम की क्लिष्टता को सवर्द्धित कर देती है ।

---

1 विस्कासिन काड सार्टिंग टेस्ट । 2 Abstraction process

दूसरे प्रकार के सवोध-अधिगम प्रयोगो मे भी उद्दीपको मे सन्निहित विमाओ की जटिलता का प्रभाव प्रदर्शित किया गया है। ब्राउन और आर्चर (1956) ने सवोध तदात्मीकरण मे उद्दीपक सामग्री की जटिलता तथा अधिगम-अभ्यास के वितरण के प्रभाव का प्रायोगिक अध्ययन किया है। इस प्रयोग मे वितरित अभ्यास इसका परीक्षण करने के लिए दिए गये कि क्या कम जटिल सवोध सकृत्यो का अधिगम सकलित अभ्यास और अधिक जटिल सकृत्यो का अधिगम वितरित अभ्यास के कारण अधिक सुविधा से होता है। इन लोगो ने 9 प्रायोगिक दशाओ मे इस समस्या का अध्ययन किया। उद्दीपक सामग्री (कार्ड पर बने हुए ज्यामितिक चित्र) की जटिलता को उद्दीपक चित्रो की विमाओ की सख्या का हस्तादि-प्रयोग कर लिया गया। न्यूनतम जटिलता वाले सकृत्य मे ज्यामितिक चित्रो की दो विमाये प्रासगिक और एक विमा अप्रासगिक थी माध्यमिक जटिलता वाले उद्दीपक समुच्चय मे दो विमाएँ प्रासगिक तथा दो विमाएँ अप्रासगिक थी। जटिलतम सकृत्य मे चित्रो की दो विमाएं प्रासगिक तथा तीन विमाएँ अप्रासगिक थी। अधिगम हो जाने के पूर्व की जाने वाली त्रुटियो, अधिगम क्षमता (सही प्रति-क्रियाओ तथा अधिगम-काल के समानुपात के रूप मे) और अधिगम-काल को आश्रित परिवर्त्य के रूप मे लिया गया। परिणामो से ज्ञात हुआ कि अप्रासगिक विमाओ मे वृद्धि के कारण उद्दीपक-समुच्चय की जटिलता जितनी बढती है सवोध अधिगम उतना ही कठिन होता जाता है। इस उपलब्धि की पुष्टि अन्य प्रयोगो से भी हुई है (वोर्न इत्यादि 1971)।

सवोध-अधिगम मे अनुप्रयुक्त उद्दीपक सामग्री से जो सूचना प्राप्त होती है उसमे प्रासगिकता-अप्रासगिकता से भिन्न कभी-कभी अतिरिक्तता की विशेपता भी पायी जाती है। अतिरिक्तता का गुण तब पाया जाता है जब दो या दो से अधिक सहसम्बन्धित वाइनरी (सर्वदा साथ-साथ पाई जाने वाली) उद्दीपक-विमाएँ साथ साथ प्रासगिक अथवा अप्रासगिक हो। उदाहरण के लिए, उद्दीपक-समुच्चय मे सभी त्रिभुज लाल और सभी वृत्त हरे हो तो इन चित्रो मे एक विमा की अतिरिक्तता हो जाएगी, क्योकि इन चित्रो को वर्ण तथा आकृति मे किसी एक के आधार पर विभेदित किया जा सकेगा। वोन तथा हेगुड (1959) ने सवोध अधिगम पर उद्दीपक विमा की अतिरिक्तता के प्रभाव का प्रायोगिक अध्ययन किया है। प्रयोग के प्रथम भाग मे इन्होने ज्यामिति प्रतिरूपो को सवोध-अधिगम के लिए उद्दीपको के रूप मे लिया। इसमे इन्होने अतिरिक्त प्रासगिक सूचना की मात्रा मे विचलनशीलता के प्रभाव को मापने का प्रयास किया। इन लोगो ने षट्-स्तरीय अतिरिक्त प्रासगिक सूचनाएँ ली। पहले समूह के लिए एक ही विमा के आधार पर, दूसरे समूह के लिए दो विमाओ मे से किसी एक विमा के आधार पर, और तीसरे समूह के लिए तीन विमाओ मे से किसी एक के आधार पर तथा इस प्रकार छठे समूह के लिए 6 मे से किसी एक विमा के आधार पर उद्दीपको को विभिन्न सम्वोधो मे विभा-

जित किया जा सकता था। सभी समूहो के लिए एक ही उद्दीपक विमा अप्रासगिक थी। इसी प्रकार अन्य 4 समूहो को 3 अप्रासगिक विमा और दो समूहों को 5 अप्रासगिक[1] प्राप्त प्रदत्तो से ज्ञात हुआ कि जैसे-जैसे प्रासगिक विमाओं की अतिरिक्तता बढती जाती है वैसे-वैसे अधिगम के मानदड तक पहुँचने के पहले वाली गलतियाँ कम होती जाती हैं, अथवा सबोध अधिगम उतना ही सुगमतर होता जाता है। प्रयोग के दूसरे भाग मे अप्रासगिक सूचना की अतिरिक्तता के प्रभाव का मापन किया गया और यह पाया गया कि अप्रासगिक सूचना की अतिरिक्तता ज्यो-ज्यो बढती है सबोध अधिगम के मानदड तक पहुँचने के पहले वाली गलतियाँ उतनी ही बढती जाती हैं। प्रयोग के दोनो भागो से प्राप्त प्रदत्त नीचे के चित्र मे दिये गये है।
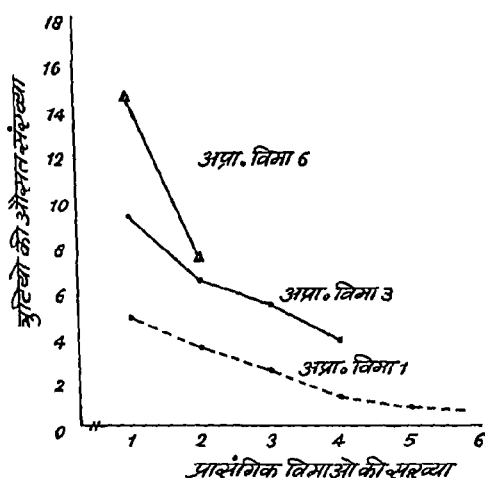
चित्र सख्या 10 5

[सबोध-अधिगम पर विमाओ की अतिरिक्तता (प्रासगिक और अप्रासगिकता का सबोध-अधिगम के मानदण्डीय माप तक पहुँचने के पूर्व की औसत त्रुटियाँ।]

सबोध-अधिगम सकृत्य की जटिलता को विचलित करने की एक दूसरी विधि भी अनुप्रयुक्त की गई है। उद्दीपक-समुच्चय का सबोध वर्गों मे विभाजन इसी के आधार पर किया जाता है। विभाजन के नियम अपनी क्लिष्टता मे स्वय विचलनशील हैं। यह नियम, कि किसी सबोध के विधेयात्मक उदाहरण वे ही वृत्त है जो केवल लाल वर्ण के है, अधिगम हेतु अधिक कठिन है इस नियम से कि

1 विमा के साथ परीक्षित किया गया।

सबोध के उदाहरण लाल वर्ण के और वृत्ताकार चित्र है। यहाँ ध्यान देने योग्य है कि दोनों सबोधो मे दो ही विमाएँ—वर्ण और आकृति—प्रासगिक है, तथापि नियम भिन्नता के कारण उन दोनो की जटिलता भिन्न-भिन्न हो जाती है। इस सम्बन्ध मे हण्ट तथा हवलैण्ड (1960) के प्रयोग का उल्लेख किया जा सकता है। इन्होंने उद्दीपक के रूप मे ऐसे ज्यामितिक चित्रो को लिया जिनमे छ विमाएँ —वर्ण, सख्या, आकृति, चित्रस्थिति, चित्र के ऊपर की रेखा का वर्ण तथा चित्र के नीचे की रेखा का वर्ण—थीं। प्रत्येक विमा के चार मूल्य चित्रो के निर्माण हेतु लिए गए थे। इन से बनी उद्दीपक सामग्री इस प्रकार की थी कि इनसे तीनो प्रकार के सबोधो—सयोजक, वियोजक तथा सम्बन्धपरक—का निर्माण हो सकता था। तीन प्रयोज्य समूहो को अलग-अलग प्रकार के सबोध अधिगम के लिए परीक्षित किया गया। प्राप्त परिणामो मे ज्ञात हुआ कि अधिगम मे सयोजक सबोध सरलतम सम्बन्धपरक सबोध उससे कठिनतर और वियोजक सबोध कठिनतम था। ऐसा इसलिए होता है कि उद्दीपको के सबोधपरक विभाजन के नियम अविगत होते है और सामान्य जीवन मे सीखे हुए सबोध प्राय सयोजक प्रकार के होते हैं। अत सामान्य व्यक्ति मे सयोजक सबोध नियम को अनुप्रयुक्त करने की वृत्ति प्रबलतर होती है और वह सबोध अधिगम दशाओ मे मुख्यत इसी नियम का उपयोग करने का प्रयत्न करता है। यदि सभी प्रकार के सबोध नियमो का अभ्यास करा दिया जाए, तो इन तीनो प्रकार के सबोधो के अधिगम मे कठिनाई की भिन्नता समाप्त हो जाती है (बोर्न इत्यादि, 1971)।

(2) **सूचनापरक प्रतिपूर्ति**[1]—किसी भी अधिगम प्रक्रम के एक प्रयास मे तीन मौलिक घटनायें होती हैं—उद्दीपक, प्रयोज्य की प्रतिक्रिया तथा प्रयोगकर्त्ता द्वारा प्रस्तुत पुनबलन की उपस्थिति, अनुपस्थिति अथवा सूचनापरक प्रतिपूर्ति। स्पष्ट है कि सबोध-अधिगम-प्रक्रम की अवधि मे किसी निश्चित प्रयास पर ये तीनो घटनायें घटित होती हैं। उद्दीपक तथा सूचनापरक प्रतिपूर्ति प्रयोगकर्त्ता द्वारा नियन्त्रित किये जाते है। प्रतिपूर्ति के माध्यम से प्रयोज्य अपनी प्रतिक्रियाओ को परिवर्तित कर सबोध-अधिगम करता है। यहाँ इतना स्वत स्पष्ट हो जाता है कि इस प्रतिपूर्ति मे परिवर्तन का प्रभाव अधिगम पर अवश्य पडता होगा।

बोर्न तथा पेण्डलटन (1958) तथा नेमिकास (1967) ने प्रदर्शित किया है कि यदि यादृच्छिक[2] रीति से कुछ प्रयासो पर प्रतिपूर्ति सकतो को न घटित होने दिया जाये तो अधिगम थोडा कठिन हो जाता है। किन्तु यदि सबोध-अधिगम-सकृत्य[3] अपेक्षाकृत रूप से सरल हो तो यादृच्छिक रूप से निवारित 40 प्रतिशत तक की प्रतिपूर्तियाँ सबोध अधिगम पर कोई प्रभाव नही डालतीं। इस सम्बन्ध मे बस्स तथा बस्स (1956) तथा स्पेन्स, लेयर तथा गुडस्टाइन (1963) के प्रयोग उल्लेखनीय हैं। इन

---

1 Informational feed back 2 Random 3 Concept learning task

प्रयोगकर्त्ताओ ने प्रयोज्य की प्रतिक्रिया के सही होने या न सही होने पर आश्रित कर मात्र चुने हुए प्रयासो पर ही प्रतिपूर्ति सकेत उपस्थित किया। तीन समूहो के निष्पादनो की तुलना परिणामो के माध्यम से की गई। एक समूह को 'सही" की प्रतिपूर्ति मात्र सही प्रतिक्रियाओ पर दी गई। दूसरे समूह को गलत प्रतिक्रियाओ पर गलत की प्रतिपूर्ति मात्र दी गई तथा तृतीय समूह को सामान्य रीति से प्रत्येक प्रयास पर सही अथवा गलत की प्रतिपूर्ति दी गई। सामान्यत परिकल्पना की जा सकती है कि प्रथम दो समूहो की अपेक्षा तृतीय समूह का निष्पादन अधिक सही और सबोध-अधिगम अधिक शीघ्रता से होना चाहिए। किन्तु प्राप्त परिणाम सर्वथा अनुकूल नही थे।

जब अधिगम करने के पूर्व के प्रयासो अथवा उसके पहले होने वाली त्रुटियो की सख्या की गणना की गई तो ज्ञात हुआ कि प्रथम समूह की अपेक्षा द्वितीय तथा तृतीय समूह के प्रयोज्यो ने अधिक शीघ्रता से सबोध अधिगम कर लिया था किन्तु द्वितीय और तृतीय समूह के बीच महत्वपूर्ण भिन्नता नही पाई गई। इसीलिए बस्स ने यह निष्कप निकाला कि "गलत" की प्रतिपूर्ति "सही" की प्रतिपूर्ति की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली है। किन्तु इस निष्कर्ष के प्रति बोर्न, गाई तथा वैड्सवर्थ (1967) ने आपत्तियाँ उठाई है। उन्होने यह तर्क प्रस्तुत किया कि सबोध-अधिगम मे निष्पादन का सर्वाधिक समीचीन माप प्रतिपूर्ति के साथ घटित होने वाले प्रयासो की सख्या है न कि मात्र प्रयासो की सख्या, क्योकि प्रतिपूर्ति रहित प्रयासो पर प्रयोज्य को अधिगम के लिए आवश्यक सूचना नही मिल पाती।

सरलता से अनुमाना जा सकता है कि प्रतिपूर्ति का हस्तादिप्रयोग एक अन्य रीति से भी हो सकता है। प्रतिपूर्ति को निवारित करने के बदले प्रयोज्य को भ्रामक सूचना दी जा सकती है। तात्पर्य यह है कि प्रयोज्य द्वारा सही प्रतिक्रिया देने पर भी किन्ही किन्ही प्रयासो पर गलत की प्रतिपूर्ति दे दी जाए, अथवा गलत की प्रतिक्रिया होने पर सही की प्रतिपूर्ति दे दी जाए। इस दिशा मे गुडनाऊ तथा पोस्टमैन (1955), पिषिकन (1960) तथा बोर्न (1963 ब) के प्रयोग उल्लेखनीय है। इस प्रकार की भ्रामक सूचना के कारण प्रयोज्य के लिए अधिगम कर पाना अत्यन्त दुष्कर हो जाता है।

प्रतिपूर्ति की दूसरी विशेपता है प्रतिक्रिया और इसके बीच का मध्यान्तर तथा उद्दीपक और प्रतिपूर्ति के घटित होने के मध्य की अवधि। यदि उद्दीपक या प्रतिपूर्ति अत्यन्त अल्प समय मे घटित हो जाते हैं तो स्पष्ट है कि प्रयोज्य कतिपय प्रासगिक सूचनायें ग्रहण नही कर पायेगा। इसी प्रकार दो प्रयासो के बीच की अवधि भी महत्वपूर्ण चर है। अपने एक प्रयोग मे बोर्न (1957) ने सम्बोध-अधिगम सकृत्य मे प्रयोज्य की प्रतिक्रिया तथा प्रतिपूर्ति के बीच के मध्यान्तर का हस्तादि प्रयोग क्रमबद्ध रीति से किया। परिणाम यह हुआ कि मध्यान्तर जितना लम्बा था निष्पा-उतना ही निकृष्ट हुआ। निष्कर्ष निकाला गया कि विलम्बित[1] प्रतिपूर्ति विलम्बित

---

1 Delayed

पुरस्कार की भाँति कम प्रभावशाली होती है। किन्तु नोबुल तथा अलकाक (1958) तथा विलोड् और विलोड्र (1958) ने अपने प्रयोगो मे पाया कि विलम्बित प्रतिपूर्ति का मानव अधिगम पर विपरीत प्रभाव नही पडता। फलत, वोर्न ने अपने प्रयोग का पुनर्परीक्षण किया। उसे ज्ञात हुआ कि उसके प्रयोग मे प्रतिक्रिया प्रतिपूर्ति के मध्यान्तर और अन्तर प्रयास के मध्यान्तरो के बीच अन्तर्क्रिया के कारण ऐसा प्रभाव पाया गया था। इसीलिए बोर्न और वन्डरसन (1963) ने इन दोनो चरो के पृथक पृथक प्रभावो का प्रायोगिक अध्ययन किया। इस प्रयोग के अनुसार ज्ञात हुआ कि सवोध-अधिगम पर अन्तरप्रयास मध्यान्तर का ही प्रभाव पडता है न कि विलम्बित सूचना प्रतिपूर्ति का। अन्तर प्रयास मध्यान्तर को यदि 9 सेकण्ड तक किया जाये तो सवोध अधिगम सरलतर हो जाता है। बोर्न, डाड, गाई तथा जस्टेशन (1968) ने अन्तर प्रयास मध्यान्तर को और बढाकर उसके प्रभाव का प्रायोगिक अध्ययन किया। इन लोगो ने दो प्रकार के सवोध-अधिगम सकृत्य-कम जटिल और अधिक जटिल को लेकर 25 सेकण्ड तक के मध्यान्तर के प्रभाव अ का अन्वेषण किया। परिणाम चित्र सख्या 10 6 मे दिये गये हैं।
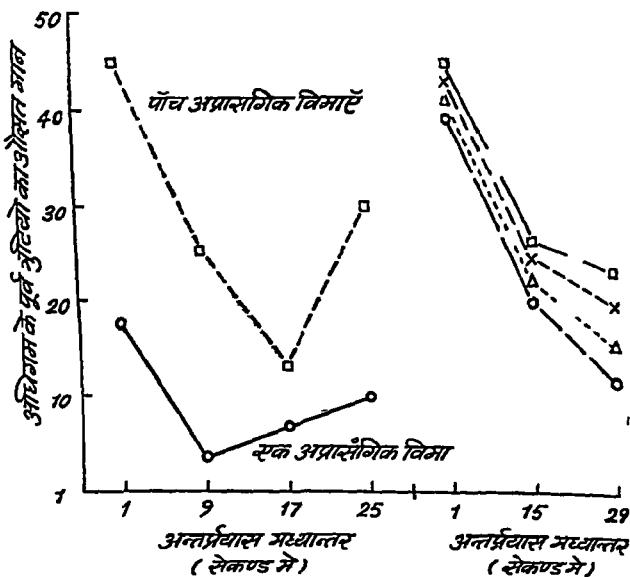
चित्र सख्या 10 6

[सवोध-अधिगम मे अन्तर्प्रयास मध्यान्तरो, सकृत्य जटिलता एव उद्दीपक और प्रतिपूर्ति की उपस्थिति-अनुपस्थिति के अधिगम कर लेने के पूर्व की त्रुटियो पर प्रभाव।]

चित्र से स्पष्ट है कि अधिक सरल सवोध के लिये सर्वाधिक उपादेय मध्यान्तर अधिक जटिल सवोध अधिगम के सर्वाधिक उपादेय मध्यान्तर की अपेक्षा कम है।

यह भी स्पष्ट है कि एक निश्चित अन्तर्प्रयास मध्यान्तर के बाद मध्यान्तर मे वृद्धि सबोध अधिगम को और अधिक दुरूह बनाती है।

(3) **अपेक्षित सबोध प्रतिक्रियाओ की जटिलता का प्रभाव**—यह सर्वविदित है कि किसी भी प्रकार के अधिगम की सरलता या दुरूहता इस बात पर निर्भर करती है कि अधिगम सकृत्य मे अधिगमकर्त्ता से किस प्रकार की प्रतिक्रियायें अपेक्षित हैं। हृट (1965) ने प्रायोगिक रूप से प्रदर्शित किया कि जब समस्या समाधान मे उद्दीपको के चुनाव की आवश्यकतायें अधिक जटिल होती है तो कम से कम प्रौढ प्रयोज्यो के लिए अधिगम उतना ही सरल हो जाता है। बायर्स और डेविडसन (1967) तथा बावर और किंग (1967) ने यह प्रदर्शित किया है कि यदि प्रयोज्यो से प्रत्येक प्रतिक्रिया के साथ उसकी परिकल्पना की भी माँग की जाए तो प्रयोज्य शीघ्रता से जटिल अधिगम अर्जित कर लेते है। इसी प्रकार बोर्न (1971) ने कहा है कि सबोध-अधिगम मे प्रतिक्रिया की जटिलता एक महत्वपूर्ण कारक है। उसने दो प्रयोगो का उल्लेख करते हुए इस घटक के महत्व को उद्धृत किया है। दोनो प्रयोगो मे प्रयोज्यो को एक, दो या तीन बाइनरी विमाओ वाले सबोधो का अधिगम करना था। वाकर तथा बोन (1961) ने एक प्रयोग मे सबोध अधिगम के लिए इस प्रकार की समस्याओ को निर्मित किया कि सबोधपरक समस्याओ की सख्या प्रासगिक विमाओ की सख्या मे वृद्धि के साथ बढती गई। एक विमा वाली समस्या मे दो सबोधपरक प्रतिक्रियायें और तीन विमाओ वाली समस्या मे आठ प्रतिक्रियाये करनी थी। इन पयोगकर्त्ताओ ने पाया कि जैसे-जैसे सबोधपरक समस्याओ की और फलत प्रतिक्रियाओ की, सख्या बढती गई वैसे वैसे सबोध-अधिगम उतना ही दुरूह होता गया। इसी प्रकार बुलगैरेला तथा आर्चर (1962) ने अपने प्रयोग मे सबोध-अधिगम के लिए इस प्रकार की समस्या का निर्माण किया कि विमा परिवर्तन की तीनो दशाओ मे सबोधपरक प्रतिक्रिया की सख्या दो ही रही किन्तु एक विमा वाली दशा मे लाल उद्दीपको के प्रति एक प्रतिक्रिया तथा दूसरी प्रतिक्रिया हरित वर्णों के उद्दीपको के प्रति थी। दो विमाओ वाली समस्या मे एक प्रतिक्रिया लाल, वर्गों के प्रति तथा दूसरी प्रतिक्रिया हरित वर्गों लाल त्रिभुजो एव हरित त्रिभुजो के प्रति थी। तीन विमाओ वाली समस्याएँ एक प्रतिक्रिया बडे आकार वाले वर्गों के प्रति तथा दूसरी प्रतिक्रिया बडे हरे वर्गों, छोटे लाल वर्गो, छोटे हरे वर्गों इत्यादि के प्रति थी। परिणाम यह हुआ कि प्रासगिक विमाओ की सख्या जैसे-जैसे बढती गई सबोध-अधिगम वैसे-वैसे दुरूह होता गया।

केप्रास (1965) ने अपने एक प्रयोग मे सबोध-अधिगम जटिलना तथा प्रासगिक विमाओ की जटिलता का स्वतन्त्र रूप से हस्तादिप्रयोग किया। तीन समस्याये इस प्रकार निर्मित की गई कि एक मे दो प्रासगिक विमाये, दूसरे मे तीन प्रासगिक विमायें और तीसरे मे चार प्रासगिक विमाये थी। इन समस्याओ को इस प्रकार किया गया कि प्रयोज्यो को दो, तीन, चार, छ या आठ सबोधपरक प्रति-

क्रियायें अनुप्रयुक्त करनी थीं। उदाहरण के लिए प्रयोज्यों के एक समूह ने तीन विमाओं वाली समस्या को दो सबोधपरक प्रतिक्रियाओं के माध्यम से सीखा, पहली सबोधपरक प्रतिक्रिया बड़े लाल वर्गों के प्रति और दूसरी अन्य प्रतिक्रिया सभी अन्य वर्गों के प्रति। दूसरे समूह मे इसी समस्या को चार प्रतिक्रियाओ के माध्यम से सीखा। परिणामो से ज्ञात हुआ कि प्रासगिक विमाओं की सख्या मे वृद्धि से सबोध अधिगम दुरूह होता गया तथा दूसरी ओर सबोधपरक प्रतिक्रियाओ की सख्या जितनी बढती गई सबोध अधिगम उतना ही व्यापक रूप से दुरूह होता गया। इस प्रकार यह विश्वसनीय रूप से सिद्ध हो चुका है कि किसी भी सबोधपरक अधिगम मे सबोधपरक प्रतिक्रियाओ की सख्या जितनी बढती जायेंगी सबोध-अधिगम उतना ही कठिन होता जायेगा।

(4) आगिक चरो का सबोध-अधिगम पर प्रभाव—प्रत्येक मनुष्य अपने व्यवहार मे मात्र परिवेशीय उद्दीपक समुच्चय से ही नही अनुसचालित होता वल्कि अपनी योग्यता, क्षमता, परिपक्वता, पूर्वानुभावो और अपने व्यक्तित्व की विशेषताओ मे भी निर्देशित होता है। यह वात सबोध-अधिगम अथवा सबोधपरक प्रतिक्रियाओ की अभिव्यक्ति मे भी परिलक्षित होती है। व्यक्ति की स्मृति, उसका अभिप्रेरण, उसकी बुद्धि और अन्य व्यक्तित्व विशेषतायें प्रत्येक प्रकार की सबोध प्रतिक्रिया के अधिगम को प्रभावित करती हैं।

(अ) स्मृति का प्रभाव—ऐसे साक्ष्य पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध है जिनसे यह ससूचित होता है कि प्रयोज्य सबोध-अधिगम मे अपनी स्मृति से प्रभावित होते हैं। यह भी सत्य है कि प्रत्येक प्रयोज्य को स्मृति पूर्णतया तथ्याश्रित नही होती वल्कि स्मृति सम्वन्धी त्रुटियाँ सभी प्रकार के प्रयोज्यो मे पाई जाती हैं। स्मृति की त्रुटियाँ दो सबोधपरक प्रतिक्रिया वाले सकृत्य मे भी दृष्टिगोचर हो जाती हैं। सबोध-अधिगम सकृत्य मे अनुप्रयुक्त उद्दीपको के विमाओ की सख्या जैसे-जैसे वढती जाती है मानवीय स्मृति के लिये कार्य उतना ही जटिल होता है। ऐसे सकृत्य मे वहुधा उद्दीपको मे पारस्परिक समानता होती है। अत स्मृति के प्रक्रम मे अवरोध की मात्रा बढ जाती है। सबोध अधिगम मे इस अवरोध की भूमिका के सम्वन्ध मे अण्डरवुड (1952) ने अच्छी व्याख्या प्रस्तुत की है। इस व्याख्या के आधार पर उसने पूर्वकथन किया कि किसी भी वहुल सबोध-अधिगम सकृत्य मे एक ही सबोध के अनुक्रमिक उदाहरणो के वीच घटित होने वाले अन्य सबोधो के उदाहरणो की सख्या जितनी अधिक होगी सबोध का अधिगम उतना ही दुरूह हो जायेगा। इस पूर्वकथन का प्रामाणिक प्रायोगिक साक्ष्य कर्टज तथा हवलैण्ड (1956) वोर्न तथा जेनिग्स (1963) ने प्रस्तुत किया है। हन्ट (1961) ने प्रायोगिक रूप मे प्रदर्शित किया कि किसी उदाहरण के आधार पर किसी सबोध के अधिगम की सभावना उस उदाहरण तथा सबोध-अधिगम के परीक्षण के वीच मे होने वाले सबोधो के उदाहरणो की सख्या के साथ विपरीत रूप से सम्वन्धित है। ट्रावैसो

तथा वावर (1964) ने प्रायोगिक प्रमाण यह प्रदर्शित करने के लिए प्रस्तुत किया है कि कोई प्रयोज्य सबोध-अधिगम की अवधि में क्या स्मरण रखता है। इस प्रयोग मे प्रयोज्य को एक विशेष सबोध को परिभाषित करने वाले 6 विधेयात्मक और निषेधात्मक उदाहरण दिये गये। प्रयोज्य ने बाद मे प्रत्येक उद्दीपक को उसी क्रम मे प्रत्याह्वानित करने का प्रयास किया। परिणामो से ज्ञात हुआ कि प्रारम्भिक और अतिम उद्दीपको को अधिक सख्या मे प्रत्याह्वानित किया गया। इस प्रकार स्मृति सबोध-अधिगम मे एक महत्वपूर्ण कारक मानी जाती है।

(ब) प्रयोज्य का अभिप्रेरण—किसी भी अधिगम के लिए अभिप्रेरण की अपरिहार्यता सर्वविदित है। हल्ल (1952) ने यह प्रतिपादित किया कि अभिप्रेरण आदतो को क्रिया मे परिवर्तित करता है। फलत जितना अधिक अभिप्रेरण होता है उतनी ही सशक्त क्रिया भी होती है। इस व्याख्या का प्रायोगिक प्रमाण कई मनोवैज्ञानिको ने प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। वेमली (1953) ने प्रायोगिक रूप से प्रदर्शित किया है कि सबोध-अधिगम मे न्यूनस्तरीय चिन्ता वाले व्यक्तियो की अपेक्षा उच्चस्तरीय चिन्ता वाले व्यक्तियो ने अधिक कुशलता दिखाई। इस सम्बन्ध मे अभी तक स्पष्ट रूप से ऐसे साक्ष्य की पुष्टि नही हो सकी है।

अभिप्रेरण के साथ सबोध-अधिगम सकृत्य की जटिलता की अन्तर्क्रिया का अध्ययन किया गया है। ऐसी मान्यता है कि सबोध-अधिगम सकृत्य जितना जटिल होगा उसमे उतनी ही अधिक अप्रासगिक क्रियाये होगी जिसके परिणामस्वरूप सही प्रतिक्रिया के साथ उतनी ही अधिक अवरोधी क्रियायें उत्पन्न हो जायेगी। अभि-प्रेरण और सकृत्य जटिलता की इस व्याख्या को एक साथ रखकर यह परिकल्पित किया जा सकता है कि निम्नस्तरीय चिन्ता अधिक जटिल सकृत्यो के लिए अधिक उपादेय तथा कम जटिलता वाले सकृत्यो के लिए उच्चस्तरीय चिन्ता सर्वाधिक उपादेय होगी। डन्न (1968) ने अपने प्रयोग मे प्रयोज्यो से एक ऐसे विशेषण-परक सबोध को अधिगत कराया जिनके उदाहरण पाँच-पाँच सज्ञाये थी। ये सज्ञायें पाँच या दस या पन्द्रह अप्रासगिक सज्ञाओ के बीच घटित होती थी। इन सज्ञाओ को पाँच कतारो मे दो, तीन या चार की पक्तियो मे प्रस्तुत किया गया। प्रत्येक पक्ति मे विशेषणपरक सबोध का एक उदाहरण अवश्य उपस्थित था। अप्रासगिक सज्ञाओ की तीन सख्यायें सबोध सकृत्य की जटिलता के तीन स्तरो का बोध कराती थी। इस प्रयोग से प्राप्त परिणामो से ज्ञात हुआ कि निम्नस्तरीय चिन्ता वाले प्रयोज्य उच्चस्तरीय चिन्ता वाले प्रयोज्यो की अपेक्षा सभी प्रकार के सकृत्य अधिक मात्रा मे अधिगत कर सके। किन्तु सर्वाधिक जटिलता वाले सकृत्य मे निम्नस्तरीय चिन्ता वाले व्यक्तियो का निष्पादन उच्चस्तरीय चिन्ता वाले व्यक्तियो के निष्पादन से सर्वाधिक भिन्न पाया गया।

ऐसा माना जाता है कि अभिप्रेरण जितना अधिक होता है, अवधान का क्षेत्र उतना ही सीमित होता है जिसके परिणामस्वरूप उद्दीपको से प्राप्त सकेतो का

उपयोग उतना ही सीमित हो जाता है। इस व्याख्या के आधार पर सबोध-अधिगम मे अभिप्रेरण के प्रभाव को मापा गया है। किन्समैन(1968)ने इस प्रभाव के मापन के लिए एक त्रिस्तरीय सबोध-अधिगम पर प्रयोग किया। प्रथम स्तर मे प्रयोज्यो को एक विमा वाला सबोध-अधिगम करना पडा। द्वितीय स्तर पर उसी सकृत्य मे एक नयी विमा मिलाकर एक नया सकृत्य प्रस्तुत किया गया। तीसरे स्तर पर दूसरे स्तर की नई विमा प्रासगिक और प्रथम स्तर की प्रासगिक विमा अप्रासगिक कर दी गई। तीनो स्तर निरन्तर अधिगम के लिए प्रस्तुत किये गये। इस प्रयोग मे प्रयोज्यो के चार स्वतन्त्र समूहो का प्रयोग हुआ। आधे प्रयोज्यो के लिए दूसरे स्तर की नई विमा अप्रासगिक थी और इसका उपयोग सबोध-अधिगम मे नही किया जा सकता था। शेष आधे प्रयोज्यो के लिए दोनो विमाये प्रासगिक थी। इस प्रकार एक विमा अतिरिक्त हो गई। उक्त दो समूहो के आधे आधे प्रयोज्यो को चिन्ता सम्बद्ध करने के लिए प्रथम तथा द्वितीय स्तर पर मध्यम स्तरीय विद्युताघात दिया गया और शेष आधे-आधे प्रयोज्यो को कोई आघात नही दिया गया। इसके परिणामो से ज्ञात हुआ कि प्रथम स्तरीय अधिगम मे आहृत और अनाहृत प्रयोज्यो के निष्पादन मे कोई अन्तर पाया गया। किन्तु तीसरी अवस्था मे दोनो के बीच पर्याप्त निष्पादन भिन्नता नही पाई गई।

प्रयोग की द्वितीय दशा मे नवीन उद्दीपक-विमा जब प्रासगिक और अतिरिक्त हो गई तो, तृतीय दशा के अधिगम मे अनाहृत समूह ने औसतन 15 प्रयास, किन्तु आहृत प्रयोज्यो ने 8 प्रयास लिया। दूसरी ओर जब इस नवीन विमा को अप्रासगिक कर दिया गया तो तृतीय दशा मे अनाहृत प्रयोज्यो ने 21 प्रयास किन्तु आहृत प्रयोज्यो ने 30 प्रयास लिया। स्पष्ट है कि विद्युताघात से प्रयोज्य अधिक अभिप्रेरित होता है और इस प्रकार उद्दीपन के नये स्रोतो के प्रति अधिक सचेत हो जाता है। इस प्रयोग से सकेत अभिप्रेरण उपयोग परिकल्पना के विपरीत ही साक्ष्य प्राप्त होता है। इस सम्बन्ध मे और अधिक प्रायोगिक प्रमाणो की आवश्यकता है।

(स) बुद्धि—बुद्धि के सम्बन्ध मे अनेक बाते प्रामाणिक रूप से सिद्ध हुई हैं। बुद्धि अशत जन्मजात और अशत अनुभवाश्रित होती है। ज्ञान और कौशल अधिगमजन्य होते है किन्तु ज्ञान और कौशल के अर्जन की गति बुद्धि पर निर्भर करती है। डेनी (1966) ने दो प्रकार के प्रयोज्यो को लिया एक वे, जो कम बुद्धि के और दूसरे वे जो अधिक बुद्धि के थे। प्रयोगकर्ता द्वारा दी गई सूचनाओ से कम बुद्धि वालो की अपेक्षा अधिक बुद्धि वाले अधिक सख्या मे समस्याओ का समाधान करने मे सफल हुए। इस सम्बन्ध मे बुद्धि और अभिप्रेरण की अन्तरक्रिया के प्रमाण रुचिकर हैं। डेनी ने अपने ही प्रयोग मे यह परिकल्पना की कि अधिक बुद्धि वाले प्रयोज्यो मे चिन्ता सबोध प्रतिक्रिया को अधिक सुविधाजन्य और कम बुद्धि वालो मे

की है। इन लोगो ने सज्ञाओ के प्रति वर्णनात्मक की विशेपताओ को बारबारता के के माध्यम से मापा। सवोध-अधिगम पर अपने एक प्रयोग (1956 ब) मे प्रयोज्यो को 24 सज्ञाओ की एक सूची उन्होने दी। इस सूची का निर्माण इस प्रकार किया गया था कि इसमे 6 सबोधो के चार-चार उदाहरण प्रस्तुत थे। प्रयोज्यो से कहा गया कि वे उन सूचियो मे से 6 सबोधो के चार-चार उदाहरणो को अलग करें।

इन 6 सबोधो मे से 2 उच्च प्रबलता-स्तरीय, दो मध्यम प्रबलता-स्तरीय तथा दो निम्न प्रबलता स्तरीय थे। इन लोगो ने पाया कि जिसका प्रबलता-स्तर जितना अधिक था, सबोध उतनी ही शीघ्रता से सीखा गया। कोलमेन (1964) ने इसी सूची को लेकर एक नये प्रयोग प्रक्रिया का उपयोग किया। उसने प्रत्येक सबोध के चारो उदाहरणो को लेकर प्रयोज्य के समक्ष उपस्थित किया और उनसे अपेक्षा की कि वे प्रत्येक चारो के लिए एक-एक विशेषण दे। उसने भी पाया कि उच्च-स्तरीय प्रबलता वाले सबोधो के लिए विशेपण देने मे प्रयोज्यो को अपेक्षाकृत अधिक सुविधा हुई। इस प्रकार इन प्रयोगो से यह सिद्ध हुआ कि सबोध-अधिगम रटन-अधिगम से भिन्न है और इसमे मध्यवर्ती प्रक्रमो की मुख्य भूमिका होती है।

स्थानान्तरण का प्रभाव—हल्ल (1920) ने इगित किया कि सबोध-अधिगम मे उद्दीपक सामान्यीकरण होता है। उद्दीपक सामान्यीकरण स्थानान्तरण का प्रमुख अग है। बोर्न (1966) ने इगित किया है कि सबोध-अधिगम मे स्थानान्तरण का महत्वपूर्ण स्थान है। इस सम्बन्ध मे ऐडम्स (1954) का एक प्रयोग उल्लेखनीय है। उसके प्रयोग मे 24 भिन्न समस्याओ पर आधे प्रयोज्यो ने प्रत्येक समस्या पर प्रयास किया। दूसरे समूह मे एक ही समस्या पर 192 समस्याओ का अभ्यास किया। इन दोनो समूहो की तुलना ने एक नई समस्या पर अधिक अभ्यास करने वाले प्रयोज्य अधिक कुशल पाये गये। किन्तु कैलेन्टाइन तथा वारेन (1955) ने इस प्रयोग की न्यूनताओ की ओर इगित कर एक नया प्रयोग किया। इन लोगो ने पाया कि एक व्यक्ति जितनी ही अधिक समस्याओ का अनुभव किये होगा वह नई समस्याओ का हल उतनी ही क्षमता से करेगा।

जडसन तथा काफर (1956) ने सबोध-अधिगम पर इस दिशा मे एक नया प्रयोग किया। यह लोग एक साथ कई शब्द प्रस्तुत करते थे और प्रयोज्य से अपेक्षा करते थे कि वे प्रत्येक सूची मे असगत शब्द की ओर इगित करें जैसे कि जोडो, घटाओ, गुणा करो, बढाओ मे से। प्राप्त प्रदत्तो के आधार पर स्पष्ट हुआ कि प्रयोज्य अपनी स्थायी वाचिक आदतो के आधार पर असगत शब्दो की ओर इगित करते थे। इसी प्रकार का एक प्रयोग गेलफैण्ड (1958) ने किया है। इस प्रयोग के दो पक्ष थे। प्रथम पक्ष मे प्रयोज्य को सबोध-अधिगम करना था। प्रत्येक सबोध के उदाहरण ज्यामितिक चित्र थे। जो आकृति, आकार और वर्ण मे एक-दूसरे से भिन्न थी। सबोध के लिए एक विमा प्रासगिक और अन्य विमायें अप्रासगिक थी। सबोध-

अधिगम के पहले प्रयोज्यो से एक भिन्न प्रायोगिक दशा मे इन उद्दीपको का रटन पर आधारित अनुक्रमिक अधिगम कराया गया था। प्रयोग के इस पक्ष मे तीन महत्वपूर्ण दशायें थी। एक मे इन उद्दीपको के प्रति प्रयोज्य ने जिन शब्दो को कहना सीखा वे बाद मे सीखे जाने वाले सबोधो की प्रासगिक विमाओ के मूल्य थे। दूसरी दशा मे प्रयोज्यो ने बाद मे सीखे जाने वाले सबोधो के अप्रासगिक विमाओ के मूल्यो को शब्द प्रतिक्रिया के रूप मे रटन द्वारा सीखा। तीसरी दशा मे प्रयोज्यो ने तटस्थ शब्दो को सीखा। प्राप्त परिणामो से प्राथमिक वाचिक आदतो का प्रभाव स्पष्ट रूप से पाया गया। वे प्रयोज्य जिन्होने प्रासगिक शब्दो को सीखा था, सबोध-अधिगम मे अधिक कुशलता दिखलाई। उन प्रयोज्यो ने जिन्होने अप्रासगिक शब्दो को सीखा था, प्रथम समूह की अपेक्षा सबोध-अधिगम मे अधिक त्रुटियाँ तथा तटस्थ शब्दो को सीखने वाले समूह की अपेक्षा कम त्रुटियाँ की। ऐसा इसलिए हुआ कि प्रथम समूह मे विधेयात्मक स्थानान्तरण द्वितीय समूह मे निषेधात्मक स्थानान्तरण स्थिति के कारण कम स्थानान्तरण तथा तृतीय समूह मे कोई स्थानान्तरण नही हुआ।

सबोध-अधिगम के क्षेत्र मे प्रायोगिक अध्ययन के कुछ उदाहरण दिए गए हैं। यद्यपि कि ऐसे प्रायोगिक अध्ययन से सबोध-शोध की दिशा मे पर्याप्त प्रगति हुई है तथापि सबोध के बहुत से पक्ष अब भी अस्पष्ट हैं। भविष्य का प्रायोगिक अध्ययन इन पक्षो को स्पष्ट करने मे समर्थ होगा। सबोधो का उपयोग मनुष्य द्वारा चिन्तन की क्रिया मे व्यापक रूप से किया जाता है अत अब हम सोचने के प्रायोगिक मनोविज्ञान का परिचयात्मक वर्णन प्रस्तुत करेंगे।

चिन्तन

चिन्तन प्रक्रम प्रायोगिक मनोविज्ञान के अध्ययन का जटिलतम विषय है। चिन्तन शब्द का उपयोग विविध प्रकार की क्रियाओ का बोध करने के लिए होता है। इसके अन्तर्गत दिवा-स्वप्न, कल्पना, विचारो की उडान, रचनात्मक सोचना, तर्कना मनन, सोचना इत्यादि अनेक प्रकार की क्रियाये सम्मिलित की जाती है। ऐसा उपयोग सामान्य व्यक्तियो द्वारा किया जाता है। चिन्तन का प्रायोगिक अध्ययन करने वाले मनोवैज्ञानिक इस शब्द को सुनिश्चित अर्थों मे ही लेते है तथापि चिन्तन के प्रक्रम की एक सुनिश्चित परिभाषा देना आज भी मनोवैज्ञानिको के लिए कठिन कार्य है। उडवर्थ और श्लासबर्ग (1954) का कथन है कि जब प्रयोज्य का अन्वेषण तत्कालिक परिस्थितियो से परे जाकर स्मृति और अपने अधिगत सबोधो का उपयोग करता है, तब कहा जा सकता है कि चिन्तन की क्रिया हो रही है। चिन्तन के सम्बन्ध मे किसी सुनिश्चित परिभाषा मे न उलझकर स्पष्टत कहा जा सकता है कि मनोवैज्ञानिक सोचने शब्द का उपयोग विचारो एव तर्कों के आधार पर गत अनुभवो एव अधिगत सबोधो के क्रमबद्ध उपयोग की क्रिया के रूप मे स्वीकार

करता है। प्रायोगिक मनोवैज्ञानिक के समक्ष चिन्तन के सम्बन्ध मे अनेक समस्याये उत्पन्न होती है। इन समस्याओ को टामसन (1964) ने तीन शीर्षको के अन्तगत रखा है। चिन्तन प्रयोगकर्ता की पहली समस्या है उन विशेप परिस्थितियो की जानकारी करना है जिनके प्रति प्रयोज्य उस प्रकार की प्रतिक्रिया करता है जिसे हम चिन्तन के रूप मे वर्णित कर सकते है। उसकी दूसरी समस्या है, ऐसे साधनो को निर्मित करना जिनके माध्यम से सोचने की क्रिया मे होने वाले प्रक्रमो का वस्तु-परक वर्णन हो सके। होने वाले प्रक्रमो के अन्तर्गत घटित होने वाली सक्रिया या सक्रिया-समूह मे प्रयोज्य की आवश्यकताये, वाधाये और प्रयोज्य द्वारा अपनाए गए उपदेश सम्मिलित हैं। उसकी तीसरी समस्या है चिन्तन की क्रिया को उत्पन्न करने वाली परिस्थिति तथा उसको प्रभावित करने वाले कारको का नियन्त्रण तथा हस्तादिप्रयोग कर सोचने की क्रिया मे उनके कारण होने वाले परिवर्तनो की परिमाणात्मक जानकारी करना। मनोवैज्ञानिक चिन्तन की क्रिया के जिन विविध पक्षो का प्रायोगिक अध्ययन करता है उनके स्वभाव का स्पष्टीकरण आगे आने वाले पृष्ठो मे स्वत हो जायेगा।

सोचने पर उडवर्थ एव श्लासवर्ग (1954) के अनुसार दो प्रकार के प्रयोग किये गये हैं। एक प्रकार के वे प्रयोग है जिन्हे उन लोगो ने प्रक्रम-चिन्हीकरण प्रयोगो[1] की सज्ञा दी है। दूसरे प्रकार के प्रयोग वे है जिनके अन्तगत प्रयोगकर्ता चिन्तन के किसी प्रक्रम विशेप को आश्रित परिवर्त्य के रूप मे लेकर अनेक प्रकार के स्वतन्त्र परिवर्त्यों के प्रभाव का प्रायोगिक अध्ययन करता है। चिन्तन को आश्रित परिवर्त्य के रूप मे लिए जाने के उदाहरण है—समस्या समाधान, सबोध निर्माण, तर्कना इत्यादि।

प्रक्रम चिन्हीकरण प्रयोग

कल्पना कर लीजिए कि किसी व्यक्ति के समक्ष एक समस्या मौखिक रूप से प्रस्तुत की गई, और उससे उसका समाधान माँगा गया है। प्रयोज्य सम्भवत आँखे वन्दकर चुपचाप बैठ गया और कुछ देर वाद विना किसी प्रकार की ग्राहक या पेशीय क्रिया किए ही समस्या समाधान किया। समाधान प्राप्त करने के पूर्व की क्रियाओ के अन्तर्गत उसके मस्तिष्क मे होने वाले अनेक साहचर्यों का पुनर्जागरण प्रच्छन्न पेशीय क्रियाओ और स्मृति प्रतिभाओ का सक्रियकरण सम्मिलित हो सकता है। किस प्रकार के चिन्तन मे इन क्रियाओ का क्या रूप होता है, का पता लगाना प्रक्रम चिन्हीकरण का प्रमुख उद्देश्य है। इस सम्बन्ध मे इस शताब्दी के प्रारम्भ मे अन्तदर्शन की विधि से अनेक प्रयोग हुए। ऐसे प्रयोगो मे मनोवैज्ञानिक प्रयोज्य के समक्ष कोई सरल किन्तु चिन्तन प्रधान समस्या रखी जाती थी और उसका समाधान

---

1 Process tracing experiment

उपस्थित होने के तत्काल बाद समस्या समाधान के पहले होने वाले चेतन अनुभवो का अक्षरशः वणन प्रयोज्य से प्रस्तुत कराया जाता था। इसी वर्णनात्मक प्रदत्त की व्याख्या और विश्लेपण कर मनोवैज्ञानिक सोचने के सम्बन्ध मे सामान्यीकरण करते थे। इसी प्रकार के प्रयोगो से आधुनिक मनोविज्ञान का सवविदित विवाद प्रतिभा विहीन विचार के रूप मे प्रगट हुआ।

उपर्युक्त प्रकार के प्रयोगो मे आत्मपरकता का दोग था। आत्मपरकता का सबसे बडा विरोधी जे० बी० वाटसन था। उसने सोचने का पेशीय सिद्धान्त प्रतिपादित किया। उसने परिकल्पित किया कि सोचने की क्रिया वस्तुत अल्पायामी पेशीय आकुचन अथवा प्रसारण या गतियां है। इस परिकल्पना के परिणामस्वरूप चिन्तन पर प्रक्रम चिन्ह्रीकरण प्रयोगो की दिशा मे नई प्रगति हुई और चिन्तन अध्ययन मे वाछित वस्तुपरकता का समावेश हुआ। शरीर के अन्दर होने वाली आन्तरिक क्रियाओ का अभिलेख और मापन करने वाले यन्त्रो की सहायता से चिन्तन की अवधि मे होने वाले विविध प्रक्रम-प्रतिरूपो का अध्ययन किया जाने लगा। प्रक्रम-चिन्ह्रीकरण प्रयोगो को तीसरी महत्वपूर्ण दिशा मिली, समस्या समाधान पर किए जाने वाले प्रयत्न तथा भूल प्रयोगो से, जिसका विधिवत प्रारम्भ थार्नडाइक (1898) के अध्ययनो से हुआ। इसी कडी मे हून्टर (1916, 1919) के विलम्बित अनुक्रिया और कोहलर (1917) के अन्तर्दृष्टि द्वारा अधिगम के प्रयोगो को गिना जा सकता है। इन प्रयोगो मे समस्या-समाध न की अवधि मे होने वाली प्रतिक्रियाओ का वर्णन और विश्लेपण कर चिन्तन मे अन्तर्निहित प्रक्रमो का अनुमान किया गया। इनमे अधिकाशत पशु प्रयोज्यो का ही उपयोग किया गया है।

प्रकार्यात्मक सम्बन्ध प्रयोग

चिन्तन पर दूसरे प्रकार के प्रयोगो मे प्रयोज्य के समक्ष किसी प्रकार की समस्या प्रस्तुत कर दी जाती है। प्रयोगकर्ता विविध प्रकार के परिवर्त्यों का हस्तादि प्रयोग कर यह जानने का प्रयत्न करता है कि प्रयोज्य द्वारा प्रदर्शित समस्या-समाधान प्रक्रम उन परिवर्त्यों के कारण किस प्रकार प्रभावित होता है। इस प्रकार के प्रयोगो मे चिन्तन प्रक्रम को उद्दीपक परिस्थिति तथा प्रयोज्य के पूर्ववर्ती दशाओ[1] के प्रकार्य के रूप मे माना जाता है। उदाहरण के लिए, इस प्रकार के प्रयोगो को उदधृत करने के लिए मायर (1930) द्वारा निष्पादित प्रसिद्ध प्रयोग को उद्धृत किया जा सकता है। मायर ने यह माना कि चिन्तन प्रस्तुत उद्दीपको के बीच गत अनुभवो के आधार पर व्यक्ति द्वारा नए सम्बन्धो का प्रत्यक्ष या सज्ञान करना है। उसके अनुसार इस प्रक्रम को दिशा[2] का प्रकार्य माना जा सकता है। यहां दिशा से तात्पर्य सेट से है। उसके अनुसार किसी भी समस्या के उपस्थित होने पर प्रयोज्य यह

---

1 Antecedant conditions 2 Direction

सोचता है कि समाधान किसी निश्चित दिशा मे होगा। जब वह दिशा समाधान देने मे असफल हो जाती है तब प्रयोज्य दूसरी दिशा मे समाधान पाने का प्रयत्न करता है। मायर ने एक प्रयोग मे यह प्रदर्शित किया कि वाचिक अथवा अवाचिक सकेतो के आधार प्रयोज्य समस्या समाधान मे अपनाई गई अपनी दिशा को त्याग कर नई दिशा ग्रहण कर लेता है। इसके लिए प्रयोज्य को ऐसे कमरे मे लाया गया जिसमे छत से दो रस्सिया लटक रही थी। रस्सियाँ एक-दूसरे स इतनी दूर थी कि कोई भी व्यक्ति एक साथ दोनो के लटकते छोर को नही पकड सकता था। समस्या यह थी कि प्रयोज्य दोनो को पकड कर उनमे गाँठ बांध दे। कमरे मे और अनेक पदार्थ पडे हुए थे और इस समस्या का समाधान अनेक प्रकार से किया जा सकता था। मायर के लिए सही हल यह था कि प्रयोज्य जमीन पर रखे प्लायर्स को एक रस्सी से बांध कर उसे झूले की तरह झुला दे। इस प्रकार दूसरी रस्सी के छोर को पकड कर प्रयोज्य झूलती रस्सी को पकड सकता था। प्रत्येक प्रयोज्य को 10 मिनट का समय समस्या समाधान के लिए दिया गया था। यदि उस समय के अन्त तक प्रयोज्य सही समाधान करने मे अक्षमसिद्ध होता था तो प्रयोगकर्त्ता दो सकेतो मे से कोई एक सकेत दिया जाता था। पहला यह कि प्रयोगकर्त्ता एक रस्सी को आकस्मिक ढग से ऐसे हिला देता था कि वह रस्सी झूले की तरह झूलने लगती थी। दूसरा यह था कि प्रयोगकर्त्ता प्रयोज्य के हाथ मे प्लायस पकडा देता था। प्रयोग से ज्ञात हुआ कि सकेतो की सहायता से 38 प्रतिशत व्यक्तियो ने समस्या का समाधान करने मे सफलता प्राप्त की। इस प्रकार मायर ने प्रदर्शित किया कि सही सेट समस्या समाधान के लिए सहायक होता है। इस प्रकार के अनेक प्रयोगो को उदधृत किया जा सकता है जैसे कि लुचिन्स (1942) का घडा तथा पानी पर, माल्जमैन तथा मार्गसिट (1953) का एनाग्राम हल पर, तथा थिसलेथवेट (1950) का उक्तियो से अनुमान लगाने पर प्रयोग।

चिन्तन के प्रमुख पक्ष और उनका प्रायोगिक अध्ययन

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, चिन्तन क्रिया मे व्यक्ति किसी उद्दीपक परिस्थिति से प्राप्त सकेतो अथवा सूचनाओ से परे अपने अनुभवो और सबोधो के आधार पर अमूत सम्बन्धो को खोजने अथवा नए निष्कर्षो को निकालने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार की क्रियाओ को मनोवैज्ञानिको ने कई भागो मे विभाजित कर चिन्तन के इन विभिन्न रूपो का अध्ययन किया है। चिन्तन के इन विभिन्न रूपो मे समस्या समाधान, निगमनात्मक तर्कना तथा आगमनात्मक तर्कना प्रमुख है।

(1) समस्या समाधान

समस्या समाधान के प्रायोगिक अध्ययन का प्रारम्भ गेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिको ने किया। मैक्सवर्थाइमर की प्रसिद्ध पुस्तक 'प्रोडक्टिव थिन्किग' मे समस्या समाधान पर एक चिन्तन प्रक्रिया के रूप मे विचार हुआ। कार्लडन्कर ने गेस्टाल्ट

विचारो को प्रायोगिक रीति से प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया। गेस्टाल्टवादियों के अनुसार समस्यात्मक स्थिति वह है जिसमे उसका पूर्ण और सही प्रत्यक्षीकरण होने मे कठिनाई होती है। समस्या समाधान उस स्थिति का सही प्रत्यक्षीकरण कर लेना है। दूसरी ओर व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक समस्या स्थिति को ऐसा मानते है जिसमे व्यक्ति स्थिति के बहुल उद्दीपको के प्रति उचित प्रतिक्रिया का साहचर्य स्थापित करने मे कठिनाई का अनुभव करता है। इनके अनुसार समस्या समाधान उद्दीपको के साथ सही प्रतिक्रियाओ का साहचर्य करना है। सम्प्रति अनेक मनोवैज्ञानिक ऐसे है जो समस्यात्मक स्थिति उसे मानते हैं जिसमे व्यक्ति के सम्मुख एक से अधिक विकल्प उपलब्ध हैं और उसे एक किन्तु सही विकल्प को चुनना है। इन तीनो दृष्टिकोणो मे परस्पर विरोध नही है। अन्तर मात्र पदो के अनुप्रयोग और सैद्धान्तिक उपागम का है। सामान्यत कहा जा सकता है कि समस्या तब उपस्थित होती है जब व्यक्ति के सम्मुख प्रस्तुत परिस्थिति पूर्ण नही होती और व्यक्ति को प्रयत्न कर उसे पूर्ण करना पडता है। अनेक प्रकार की समस्याओ का प्रायोगिक अध्ययन किया गया है और उनसे समस्या-समाधानपरक चिन्तन के सम्बन्ध मे पर्याप्त जानकारी प्राप्त हुई है।

समस्या स्थिति की विशेषताओ का प्रभाव—प्रायोगिक मनोवैज्ञानिको ने ज्ञात किया है कि समस्या समाधान के चिन्तन प्रक्रम को अन्य कारको के साथ समस्या की विशेषताएँ—आकार, सगठन इत्यादि प्रभावित करती हैं। सामान्यत माना जा सकता है कि समस्या जितनी बडी होगी, उसका समाधान उतना ही कठिन और विलम्ब से होगा। समस्या के आकार का माप समस्या मे निहित समाधान-विकल्पो की सख्या से किया जाता है। मान लीजिए कि किसी समस्या के चार या आठ सम्भव उत्तर है। स्पष्ट है कि आठ विकल्पो की समस्या आकार मे चार वाली की अपेक्षा बडी है। समस्या के आकार का हस्तादि प्रयोग कई स्थितियो मे किया गया है। साल्ली तथा स्नाइडर (1958) ने जिगसा पहेली मे खण्डो की सख्या को बढा घटा कर किया। नेमार्क तथा वैग्नर (1964) ने परीक्षण प्रतिरूप के साथ मिलाने के लिए विकल्प प्रतिरूपो मे से एक प्रतिरूप को चुन लेने की समस्या मे विकल्प प्रतिरूपो की सख्या को घटा-बढा कर किया। कैपलान तथा कारवेलास (1963) ने विपयय सिद्ध[1] समस्या मे शब्दो की लम्बाई का हस्तादि प्रयोग शब्दो के अक्षरो की सख्या —3 स 10 अक्षर तक—के माध्यम से किया। इन अध्ययनो से ज्ञात हुआ कि समस्या जितनी लम्बी होती है, समाधान उतने ही विलम्ब और अधिक त्रुटियो के बाद होता है।

समस्या समाधान मे बहुधा व्यक्ति को समस्यापरक स्थिति का पुनर्संगठन करना पडता है। अत उपस्थित समस्या के प्रारम्भिक सगठन का प्रभाव भी समस्या

1 Anagram

समाधान की सहजता दुरूहता पर पडता है। विपर्यय सिद्ध समस्या मे सगठन का माप उनकी उच्चारणशीलता के माध्यम से किया जा सकता है (हेवर्ट तथा रोजर्स, 1966)। इनके अनुसार विपर्यय सिद्ध उच्चारणशीलता का दृष्टिकोण जितना सरल होता है, उसका समाधान उतना ही दुष्कर होता है। डोमिनास्की (1966) ने प्रायोगिक रूप से इस उक्ति को पुष्ट पाया है। उसने दो प्रकार के विपर्यय सिद्ध शब्दो को लिया। एक सूची मे वे थे जो निर्णायको द्वारा अधिक सुगमता से उच्चारणीय माने गए थे तथा दूसरी सूची मे कठिनाई के साथ उच्चारणीय विपर्यय सिद्ध थे। परिणामो से स्पष्टत ज्ञात हुआ कि सुगमता से उच्चारणीय विपर्यय सिद्धो को हल करने मे प्रयोज्यो ने अधिक समय लिया। मेजनर तथा ट्रेसेल्ट (1958) ने समस्या सगठन के प्रभाव का अध्ययन दूसरे प्रकार से किया है। इन्होने दो प्रकार के विपर्यय सिद्धो को लिया। एक सूची मे वे थे जिनके अक्षर अपने क्रम मे मौलिक शब्दो के क्रम के अधिक निकट थे और सूची मे अक्षर क्रम अधिक भिन्न थे। समस्या सगठन पर इस प्रकार के हस्तादि प्रयोग से ज्ञात हुआ कि समस्या सगठन मे समाधान के लिए जितने कम परिवर्तन की अपेक्षा होती है, समाधान उतनी शीघ्रता से किया जाता है।

समाधानकर्त्ता की वैयक्तिक विशेषताओ का प्रभाव—किसी भी समस्या का समाधान व्यक्ति चिन्तन के आधार पर कर सकेगा या नही, मुख्यत उसकी मानसिक योग्यता, उसके अभिप्रेरण स्तर, पूर्व-अनुभवो एव उसके स्थानान्तरण की सम्भावना पर अधिक निर्भर करता है। स्पष्ट है कि व्यक्ति की आयु जैसे-जैसे बढती जाती है उसके अनुभवो का कोप भी वृहत्तर होता जाता है। अत अधिक आयु के लोग समस्याओ को शीघ्रता से और अधिक सरलता के साथ हल करने मे समर्थ हो जाते है। इस कथन की पुष्टि के लिए प्रायोगिक प्रमाण बाइलिन(1967) ने प्रस्तुत किया है। उसने 8 और 14 वप के प्रयोज्यो द्वारा विपर्यय सिद्ध समस्या मे प्राप्त निष्पादनो की तुलना की। ज्ञात हुआ कि अधिक आयु वालो ने अधिक शीघ्रता से अधिक मात्रा मे विपर्यय सिद्ध समस्या का समाधान किया। अभिप्रेरण स्तर के प्रभाव का प्रायोगिक अध्ययन अनेक मनोवैज्ञानिको ने किया। माल्जमैन, आइजमैन तथा ब्रूक्स (1958) ने अन्तर्दृष्टि द्वारा सिद्ध किए जाने वाले तथा विपर्यय सिद्ध समस्याओ मे निष्पादन की तुलना चिन्ता-परीक्षण से प्राप्त प्रयोज्यो के चिन्ता स्तर पर की। उसने पाया कि चिन्ता स्तर के आधार पर समस्या समाधान निर्भर नही करता। किन्तु हार्लेस्टन (1962) और रस्सेल तथा सैरासन (1965) ने अपने प्रयोगो मे सिद्ध किया है कि उच्चस्तरीय परीक्षण-चिन्ता वाले प्रयोज्य समस्या समाधान मे अपेक्षाकृत रूप से कम कुशल होते है। अभिप्रेरण स्तर का हस्तादि प्रयोग निर्देशो के माध्यम से भी किया गया है। ग्लक्सबर्ग (1962) ने अपने प्रयोज्यो को दो समूहो मे विभाजित कर अलग-अलग निर्देश देकर अभिप्रेरण स्तर का हस्तादि प्रयोग किया। एक समूह को समस्या समाधान मे दिये जाने वाले निर्देशो की तरह निर्देश देकर उसको समा-

धान के लिए सामान्य अभिप्रेरण स्तर का रखा गया। दूसरे समूह क अभिप्रेरण स्तर को निर्देश देकर उच्च अभिप्रेरण स्तर का किया गया। उनसे कहा गया कि वे यदि शीघ्रता से समस्या समाधान करेंगे तो उन्हे 20 डालर का पुरस्कार प्राप्त हो सकेगा। इन दोनो समूहो को एक कठिन समस्या और एक सामान्य समस्या हल करने के लिए दी गई। प्रयोगकर्त्ता का अभिग्रह यह था कि अभिप्रेरण स्तर मे वृद्धि प्रबल आदतो को प्रबलतर किन्तु दुबल आदतो को दुर्बलतर बनाएगी। अत क्लिष्टतर समस्या मे (क्लिष्ट इसलिए कि वांछित प्रतिक्रियाएं दुबल) वर्द्धित अभिप्रेरण स्तर के कारण निष्पादन क्षमता का ह्रास होगा। परिणामो से इस अभिग्रह और प्रत्याशा की पुष्टि हुई।

समस्या समाधान मे प्रयोज्य के पूर्व-अनुभवो का व्यापक रूप से प्रायोगिक अध्ययन किया गया है। पूर्व-अनुभव के प्रभाव का अध्ययन वस्तुत स्थानान्तरण का अध्ययन है। प्रस्तुत समस्या के समाधान पर व्यक्ति के पूर्व-अनुभव के प्रभाव पर कई प्रयोग मायर द्वारा किए गए है। अपने प्रथम अध्ययन (1930) मे उसने यह निर्धारित करने के लिए किया कि क्या किसी समस्या मे समाधान के आवश्यक अवयवो का चुनाव और उन पर अभ्यास ही पूर्ण पर्याप्त है, अथवा समाधान के लिए उसे उचित दिशा भी प्राप्त होना आवश्यक है। इसी प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने के लिए उसने अपना प्रयोग किया। कालेज के छात्रो को एक-एक कर प्रयोज्य के रूप मे लिया गया। प्रत्येक प्रयोज्य को एक ऐसे कमरे मे लाया गया जिसकी छत नीची थी। उसमे कई उपकरण एक बडी मेज, दो साढ़े सात फीट और दो तीन फीट लम्बे डण्डे, एक बडा क्लैम्प और दो छोटे क्लैम्प, पतला लम्बा तार और कई चाक के टुकडे पडे थे। प्रयोज्य को निर्देश दिया गया कि उसे उन उपकरणो की सहायता से दो ऐसे पेन्डुलम का निर्माण करना है कि वे कमरे के फर्श पर बनाए दो चिन्हो तक हिलते रहे और साथ ही साथ प्रत्येक पेण्डुलम के छोर पर चाक का टुकडा लगा हो ताकि उससे फर्श पर निशान भी बन सके। प्रयोग मे पाँच प्रायोगिक दशाओ का उपयोग किया गया। प्रथम दशा के प्रयोज्यो को समस्या मात्र दी गई। द्वितीय समूह को समस्या के साथ-साथ समस्या मे काम आने वाले उपकरणो से परिचित भी कराया गया। तृतीय समूह को समस्या उपकरणो का परिचय और यह निर्देश दिया गया कि उन उपकरणो को सही रीति से सम्मिलित करने पर ही समाधान सम्भव होगा। चतुर्थ समूह को समस्या के साथ यह निर्देश दिया गया कि यदि दो तारो को छत से लटकाया जा सके तो समस्या का समाधान सरल हो जाएगा। पाँचवे समूह को समस्या उपकरण परिचय और दोनो प्रकार के निर्देश दिए गए। प्रथम से चार समूहो मे से मात्र एक प्रयोज्य ही समस्या का समाधान कर सका। पाँचवें समूह के 22 प्रयोज्यो मे मात्र आठ प्रयोज्यो ने समस्या-समाधान करने मे सफलता प्राप्त की। उसने निष्कर्ष निकाला कि समस्या समाधान मे पूर्व अनुभव ही नही बल्कि समाधान के लिए उचित दिशा आवश्यक है।

मायर ने दिशा पद का जिस अर्थ मे उपयोग किया है उसी अर्थ मे आधुनिक मनोवैज्ञानिक 'सेट' पद का उपयोग करते हैं। सेट का तात्पर्य है कि व्यक्ति किसी विशेप प्रकार की प्रतिक्रिया करने के लिए उद्यत है। सेट का बहुधा सम्बन्ध पूर्व-अनुभव से होता है। सेट का प्रभाव समस्या समाधान पर व्यापक होता है। यह प्रभाव समस्या समाधान को सुविधाजनक कर सकता है। कभी-कभी सेट के कारण प्रकार्यात्मक स्थिरता[1] उत्पन्न हो जाती है जिसके कारण समस्या समाधान दुष्कर हो जाता है। इस सम्बन्ध मे रीस तथा इजरेयल (1935) के प्रयोग को उद्धृत किया जा सकता है। 5 अक्षरो वाले विपर्यय सिद्धो को इस प्रकार निर्मित किया गया था कि प्रत्येक विपर्यय सिद्धा के अक्षरो को 34521 के क्रम से लेने पर शब्दो का निर्माण हो जाता था। इस नियम के बारे मे प्रयोज्यो को नही बताया गया। सूची मे 30 विपर्यय सिद्ध थे। इसमे से पहले 15 ऐसे थे जिनको मात्र 34521 का अनुक्रम अनुसरित करने पर ही विपर्यय सिद्धो को शब्दो मे परिवर्तित किया जा सकता था। प्रश्न यह था कि क्या प्रथम 15 को एक रीति से हल करने के बाद प्रयोज्य इस प्रकार सेट हो जाएगा कि बाद के 15 को भी पहले ही प्रकार से हल करेगा और उनके दूसरे रूपो मे हल नही करेगा। प्राप्त परिणामो से ज्ञात हुआ कि एक या दो अपवादो को छोडकर अधिकाश प्रयोज्य पहले वाले ही नियम से समस्या का समाधान करते रहे। कैपलान तथा शोनफैल्ड (1966) ने इस प्रकार के विपयय सिद्ध समस्याओ मे इस अक्षर-क्रम सेट की वास्तविकता का प्रदर्शन प्रयोज्यो की आँख की गति का छाया-चित्र लेकर किया है। इन प्रयोगो से इस सामान्यीकरण की पुष्टि होती है कि तात्कालिक पूर्व अनुभव के कारण समान समस्याओ का हल निकालने के लिए व्यक्ति एक निश्चित प्रकार चिन्तन प्रतिक्रिया करने के लिए सेट हो जाता है। सेट के निबन्धात्मक प्रभाव का प्रायोगिक प्रदर्शन लुचिन्स (1942) ने अपने एक प्रयोग मे प्रभावशाली रीति से किया है। प्रायोज्य के सम्मुख विभिन्न मापो के घडो की सहायता से निश्चित मात्रा मे पानी भर लेने की समस्या प्रस्तुत की गई। ये समस्याएँ सारिणी सख्या 10 1 में दी हुई है।

पहली समस्या को उदाहरण रूप मे लिया गया और प्रयोज्य को बताया गया कि घडा अ मे से घडा ब तीन बार घटाया जाए (अ—3ब) तो 20 क्विलो पानी शेप रह जाएगा। अन्य समस्याएं प्रयोज्य को हल करनी थी। यदि दूसरी से 6वी समस्या को देखें तो ज्ञात होगा कि उन समस्याओ का एक ही नियम (ब—अ—2स) से समाधान हो सकता था। किन्तु सातवी और आठवी समस्याओ को इस नियम के अतिरिक्त एक और नियम से (अ—स) भी हल कर सकते थे। किन्तु नवी समस्या इसी दूसरे नियम से हल हो सकती थी और पहले नियम से कदापि नही। प्रयोग मे दो समूह के प्रयोज्यो को पहली समस्या के समाधान का

---

1 Functional fixedness

सारणी सख्या 10 1

समस्या सख्या	खाली घडो के माप (अ)	(ब)	(स)	भरे जाने वाले पानी की मात्रा
1	29	3		20
2	21	127	3	100
3	14	163	25	99
4	18	43	10	5
5	9	42	6	21
6	20	59	4	31
7	23	49	3	20
8	15	39	3	18
9	28	76	3	25
10	18	48	4	22
11	14	36	8	6

प्रदर्शन करने के बाद एक समूह को वहाँ से हटा दिया गया। दूसरे समूह के प्रयोज्यो से सभी समस्याओ को हल कराया गया। नियन्त्रण समूह से प्रदर्शन के बाद मात्र 7, 8, 9, 10 और 11वी समस्याओ को हल कराया गया। लूचिन्स इस प्रश्न का उत्तर देना चाहता था कि क्या प्रायोगिक समूह के प्रयोज्य 2 से 6 वी समस्याओ को हल कर लेने के बाद ऐसा ढग अपना लेगे कि उसी ढग से 7, 8, 9 इत्यादि समस्याओ को हल करने का प्रयास करेगे। प्राप्त परिणामो से ज्ञात हुआ कि प्रायोगिक समूह के प्रयोज्य पहली विधि से सारी समस्याओ को हल करने के प्रयत्न किए और 9वी समस्या को दिए गए समय मे 70 प्रतिशत से अधिक प्रयोज्य हल न कर सके। किन्तु नियन्त्रण समूह के प्रयोज्यो को कोई कठिनाई नही हुई। स्पष्ट है कि तात्कालिक पूर्व-अनुभव के कारण स्थापित सेट का, उस समस्या के हल मे, जिसमे समस्या समाधान भिन्न नियम से सम्भव था, निषेधात्मक प्रभाव पडा।

निगमनात्मक चिन्तन-प्रक्रम

निगमनात्मक चिन्तन अथवा तर्कना एक विशेष प्रकार का प्रक्रम है। निगमनात्मक तर्कना चिन्तन का ऐसा प्रक्रम है जिसमे व्यक्ति किन्ही समष्टिगत उक्तियो के आधार पर व्यष्टिगत अनुमान करता है। इस प्रकार के अनुमान का क्रमबद्ध अध्ययन अरस्तू ने प्रारम्भ किया। इस प्रकार के अनुमान का उदाहरण आगे दिया गया है जैसे—

कुछ भारतीय पुरुष है
कुछ पुरुष चतुर होते हैं
अत कुछ भारतीय चतुर है ।

तर्कना मे न्याय वाक्यो[1] का उपयोग किया जाता है। न्याय वाक्य तर्क वाक्यो[2] के माध्यम से व्यक्त होते हैं। न्याय वाक्य मे अनुप्रयुक्त तर्क वाक्य चार प्रकार के होते है —

1 समष्टिगत विधेयक[3] तर्कवाक्य (सभी आम हरे होते है)
2 समष्टिगत् निपेधक[4] तर्कवाक्य (कोई भी आम हरा नही होता है)
3 विशेप[5] विधेयक तर्कवाक्य (कुछ आम हरे होते है)
4 विशेप निपेधक तर्कवाक्य (कुछ आम हरे नही होते हैं)

किसी भी न्याय वाक्य मे इस तरह के तीन कथन होते है। इनमे प्रथम दो को आधार वाक्य[6] और अन्तिम को निष्कर्ष की सज्ञा दी जाती है। प्रथम साध्य आधार वाक्य[7] और दूसरा पक्ष आधार वाक्य[8] होता है। इन्ही दो आधार वाक्यो से निष्कर्ष वाक्य अथवा निगमन का कथन होता है।

परिवेशीय प्रभाव—इस प्रकार के चिन्तन प्रक्रम मे व्यक्ति के द्वारा निकाले गये निष्कर्ष सर्वथा तर्क सगत नही होते। वस्तुत आधार-वाक्यो से निगमन मे व्यक्ति प्राय त्रुटियाँ करता है। आधार वाक्यो मे कथन वास्तविक वस्तुओ के बारे मे (भारतीय, आम, राजनीतिज्ञ, पर्वत इत्यादि) अथवा प्रतीको के बारे मे (अ०, ब०, स०, द०, इत्यादि) किया जा सकता है। विल्किन्स[9] (1928) ने 81 छात्रो पर एक प्रयोग किया। प्रयोग मे न्याय-वाक्यो को दो रूपो मे लिया गया। एक मे सभी आधार-वाक्य वास्तविक वस्तुओ के बारे मे तथा दूसरे मे सभी आधार-वाक्य प्रतीको के बारे मे थे। प्राप्त प्रदत्तो से ज्ञात हुआ कि प्रतीको वाले न्याय-वाक्यो मे वस्तु वाले न्याय-वाक्यो की तुलना मे प्रयोज्यो ने अधिक त्रुटिपूर्ण निष्कर्षों से सहमति व्यक्ति की। प्रश्न यह उठता है कि प्रयोज्य इस प्रकार के चिन्तन प्रक्रम मे त्रुटियाँ क्यो करता है। वुडवर्थ तथा सेल्स (1935) ने यह परिकल्पना प्रस्तुत की कि त्रुटिपूर्ण निगमन मे आधार-वाक्यो द्वारा निर्मित परिवेश अथवा उनसे प्राप्त धारणाएँ महत्त्वपूर्ण कारक हैं। इसको इन्होने परिवेशीय प्रभाव[10] की सज्ञा दी। परिवेशीय प्रभाव का वर्णन इन लोगो ने आधार-वाक्यो से प्राप्त सर्वांगिक प्रभावो के आधार पर निष्कर्ष निकालने के रूप मे किया है। इन मनोवैज्ञानिको के अनुसार जब दोनो आधार वाक्य साध्य और पक्ष, समष्टिगत् विधेयक, अथवा समष्टिगत् निपेधक अथवा विशेप विधेयक अथवा विशेप निपेधक होते है तो ठीक उन्ही सा

---

1 Syllogisms 2 Propositions 3 Universal positive 4 Universal negative 5 Particular 6 Premise 7 Major premise 8 Minor premise 9 वुडवर्थ तथा श्लासवर्ग मे उद्धृत 10 Atmosphere effect

परिवेश बनता है। किन्तु मिश्रित आधार-वाक्यो से बनने वाले परिवेश के सम्बन्ध मे दो और परिकल्पनाएँ की गई। (1) आधार वाक्यो मे यदि कोई भी निषेधक है तो परिवेश भी निषेधक होगा। (2) आधार-वाक्य विशेष परिवेश की उत्पत्ति करेगा यद्यपि कि उनमे एक समष्टिगत् आधार-वाक्य है। इन परिकल्पनाओ के परीक्षण हेतु सेल्स (1936) ने एक प्रयोग किया। परीक्षण सामग्री मे 180 तर्क वाक्यो को लिया गया जिसमे से 52 के निष्कर्ष वैध और 128 के निष्कर्ष अवैध थे। इन अवैध न्याय-वाक्यो मे चार प्रकार के आधार-वाक्यो के प्रत्येक सभव सयोग[1] के दो-दो उदाहरण परीक्षण सामग्री मे सम्मिलित किए गए। प्रयोज्यो को प्रत्येक न्याय-वाक्य मे दिए गए निष्कर्ष के बारे मे चार वैकल्पिक उत्तरो—पूर्णत सत्य, सभवत सत्य, अनिश्चित तथा पूर्णत असत्य—मे से किसी एक को स्वीकार करना था। न्याय-वाक्यो के दो उदाहरण नीचे प्रस्तुत हैं।

(1) यदि सभी एक्स वाई है
और सभी जेड एक्स है,
तो सभी जेड वाई है। पू० स०, स० स०, अ०, पू० अ०

(2) यदि कोई भी एक्स वाई नही हैं,
और यदि सभी जेड वाई है,
तो कुछ जेड एक्स है। पू० स०, स० स०, अ०, पू० अ०

प्रयोज्य तर्कशास्त्रेतर विषयो मे प्रशिक्षित प्रौढ व्यक्ति थे। प्राप्त परिणामो से ज्ञात हुआ कि प्रयोज्य निगमनात्मक चिन्तन मे निष्कर्ष निकालते समय परिवेशीय प्रभाव से प्रभावित होते है।

चैपमैन तथा चैपमैन (1959) ने परिवेशीय प्रभाव की वैधता के सम्बन्ध मे आपत्तियाँ प्रस्तुत की है। इन लोगो ने तर्क प्रस्तुत किया है कि यदि निगमनात्मक चिन्तन मे त्रुटियाँ परिवेशीय प्रभाव के कारण उत्पन्न होती हैं तो यह प्रभाव उन परीक्षणो मे भी परिलक्षित होना चाहिए जिनमे एक ही निष्कर्ष न देकर कई निष्कर्षो मे से प्रयोज्य को एक निष्कर्ष चुनने को दिया जाए। इस परिकल्पना के परीक्षण हेतु इन्होने एक न्याय-वाक्य परीक्षण निर्मित किया। इस परीक्षण के प्रत्येक न्याय-वाक्य मे साध्य और पक्ष आधार-वाक्यो के बाद 5 वैकल्पिक निष्कर्षो मे एक निष्कर्ष को चुनना था। परीक्षण मे कुल 52 न्याय-वाक्य थे जिनमे 10 वैध और 42 अवैध थे। एक उदाहरण नीचे दिया गया है —

कुछ ल क है
कुछ क म है

---

1 Combination

अत (1) कोई म ल नही है। (2) कुछ म ल है। (3) कुछ म त नही है (4) इनमे से कोई नही। (5) सभी म त हैं।

सभी अवैध न्याय-वाक्यो मे "इनमे से कोई नही" का विकल्प सही निष्कर्ष था। प्रयोज्यो को निर्देश दिया गया कि उन्हे आधार वाक्यो को पढकर किसी एक निष्कर्ष पर सही का चिन्ह बनाना था। प्रयोज्य समूह मे पूर्वस्नातक स्तर के 222 छात्रो को सम्मिलित किया गया। प्रयोग से प्राप्त प्रदत्त के आधार पर प्रत्येक न्याय-वाक्य के विकल्पो से विकल्पो के चुने जाने का प्रतिशत सारणी सख्या 10 2 मे दिया गया है। स्पष्ट है सही विकल्प का चुनाव अत्यन्त अल्पमात्र मे हुआ है। इन मनोवैज्ञानिको के विचार मे 80% त्रुटियां सम्भवत इसलिए हुई कि प्रयोज्यो के लिए यह अप्रत्याशित था कि उतनी समस्याओ का कोई समाधान सम्भव नही था। जहा तक त्रुटियो के प्रकार का सम्बन्ध है परिणामो से ज्ञात हुआ कि प्रत्येक न्याय-वाक्य के लिए त्रुटियो का वितरण मात्र काकतालीयता[1] के आधार पर नही किया जा सकता। स० नि० वि० नि० और वि० नि० स० नि० आधार-वाक्यो के अतिरिक्त सभी अन्य प्रकार के आधार-वाक्यो मे अधिकाश त्रुटिया एक ही विकल्प के चुनने के कारण पाई गई। किन्तु परिवेशीय प्रभाव के आधार पर इन त्रुटियो की कम से कम वि० वि० स०नि० और वि०नि० स०नि० आधार-वाक्यो पर की त्रुटियो के लिए सम्भव न थी। इनमे परिवेशीय प्रभाव के आधार पर प्रत्याशित निर्णय वि०नि० निष्कर्षों का होना चाहिए था। किन्तु प्राप्त त्रुटियां स०नि० निष्कर्षों की थीं। चैपमैन तथा चैपमैन ने त्रुटियो के कारको की इसीलिए अपनी व्याख्या प्रस्तुत की है। इन मनोवैज्ञानिको की धारणा है कि अधिकाश व्यक्ति स०वि० और वि०नि० तर्क वाक्यो का यह भी तात्पर्य समझते हैं कि इनके प्रतिवर्तित[2] वाक्य भी सही है चाहे परिशुद्ध तार्किक दृष्टिकोण से ऐसा भले ही न हो। इस आधार पर सारणी के प्रथम 18 एकाको की त्रुटियो की व्याख्या की जा सकती है। शेष एकाशो पर पाई गई त्रुटियो की व्याख्या 'सम्भावनापरक अनुमान' के आधार पर की गई है। सम्भवनापरक अनुमान मे व्यक्ति का तर्क यह होता है कि समान गुणो वाले अथवा समान प्रभाव उत्पन्न करने वाले पदार्थ एक ही प्रकार के होते हैं। इसके विपरीत असमान गुणो वाले पदार्थ एक ही वर्ग के नहीं माने जाते। इस प्रकार इन मनोवैज्ञानिको ने परिवेशीय प्रभाव की वैधता को आशिक रूप से अस्वीकृत किया है।

अभिवृत्तियो एव स्वतोव्याधात[3] का प्रभाव—निगमनात्मक चिन्तन प्रक्रम मे यदि न्याय वाक्य वास्तविक पदार्थों अथवा घटनाओ से सम्बन्धित है तो चिन्तन पर उन पदार्थों एव घटनाओ के प्रति व्यक्ति की अभिवृत्तियो, उसके पूर्वाग्रहो तथा अभिनति का प्रभाव पडता है। मार्गन तथा मार्टन (1944) ने चिन्तन प्रक्रम पर

---

1 Chance 2 Converse 3 Self contradiction

सारणी संख्या 10 2

विविध प्रकार के आधार वाक्यो के आधार पर बहुल विकल्पो मे से भिन्न-भिन्न विकल्पो की स्वीकृति का प्रतिशत

क्र० स०	आधार-वाक्य	सवि	सनि	विवि	विनि	न	क्र० स०	आधार-वाक्य	सवि	सनि	विवि	विनि	न
12	सवि-सवि	83	6	3	1	7	5	विवि-विवि	2	3	68	13	15
17	,, ,,	85	5	3	1	9	20	,, ,,	1	5	63	5	26
39	,, ,,	77	5	6	1	10	51	,, ,,	4	5	64	5	23
4	सवि सनि	3	81	3	5	8	7	विवि-विनि	1	6	13	48	31
23	,, ,,	1	85	0	5	8	34	,, ,,	2	5	11	60	21
41	,, ,,	1	82	3	6	7	48	,, ,,	2	6	10	55	27
8	सनि-विवि	3	7	75	7	8	22	विनि-विवि	1	4	14	59	21
15	,, ,,	3	3	80	6	8	33	,, ,,	1	7	15	52	24
46	,, ,,	10	2	74	6	7	44	,,	1	5	11	55	27
13	पवि-सवि	5	5	78	8	5	29	सनि-सनि	1	57	4	3	36
19	,, ,,	5	11	68	7	9	36	,, ,,	3	59	5	5	28
42	,, ,,	3	4	83	4	7	40	,, ,,	2	47	4	7	40
11	सवि-विनि	2	7	14	61	16	30	सवि-विनि	3	24	10	32	32
24	,, ,,	1	2	13	76	8	35	,, ,	1	26	9	32	32
52	,, ,,	1	4	10	74	11	47	,, ,,	5	25	6	21	44
25	विनि-सवि	0	7	12	64	16	2	विवि सनि	2	18	12	24	34
32	,, ,,	3	4	11	70	12	27	,, ,,	3	39	5	19	34
43	,, ,,	1	6	7	78	8	50	,, ,,	3	41	7	19	30
9	विवि-सनि	1	62	6	13	18	3	विनि-विवि	0	8	10	50	31
26	, ,,	2	59	5	16	19	14	विनि-विनि	0	5	11	60	24
49	,, ,,	2	48	6	24	20	45	,, ,,	1	8	11	45	35

स वि=समष्टिगत विधेयक, स नि=समष्टिगत निषेधक, वि वि=विशेष विधेयक, वि नि=विशेष निषेधक

युद्धकालीन भयो और प्रत्याशाओ के प्रभाव को निर्धारित करने के लिए एक प्रयोग किया। इन्होने न्याय वाक्यो की तीन सूचियाँ-अक्षर प्रतीको के बारे में, तटस्थपदो के बारे मे, तथा युद्ध के सम्बन्ध मे निर्मित किया। न्याय वाक्यो मे निष्कर्ष बहुल-विकल्पो के रूप मे प्रस्तुत किए गए। प्राप्त परिणामो की गणना इस दृष्टिकोण से की गई कि सही निर्णयो, परिवेशीय प्रभाव के कारण निर्णयो, युद्धकालीन भय इत्यादि के कारण निर्णयो तथा अवशेष निर्णयो के पृथक प्रतिशत ज्ञात हो सकें। तीनो सूचियो के निर्णयो की गणना भी पृथक पृथक की गई। प्राप्त परिणाम अधोलिखित है।

	वैध	निर्णय परिवेशीय प्रभाव	अभिनति	शेष
अक्षर प्रतीक	27	44	—	29
तटस्थ पद	33	46	—	21
युद्ध सम्बन्धी	20	26	36	18

स्पष्ट है कि व्यक्ति की अभिनति का प्रभाव उसके चिन्तन प्रक्रम पर पडता है।

निगमनात्मक चिन्तन मे सदोपतर्कना[1] पर स्वतोव्याघात के प्रभाव का प्रायोगिक अध्ययन वासन (1964) ने किया है। अपने प्रयोग के अनुक्रमिक सकृत्य मे उसने प्रयोज्यो को उनके द्वारा किए गए पहले वाले सदोप अनुमानो से असगत और वैध अनुमान करवा कर उन दोपो के प्रति सजग किया। इस प्रक्रिया के कारण व्यक्ति स्वतोव्याघात कराने के लिए वाध्य हो जाता था। परिकल्पना यह थी कि व्यक्ति इस स्वतोव्याघात की जानकारी के वाद सदोपतर्कना न्यूनतर मात्रा मे करेगा। उसने प्रयोज्य द्वारा किए जाने वाले सकृत्य मे सोपाधिक[2] कथनो के वारे मे तार्किक दृष्टि से दो दोपो को उत्पन्न करने का प्रयत्न किया। दो प्रकार के सकृत्यो का उपयोग कर, पूर्ववर्ती सकृत्य इस प्रकार निर्मित किया गया कि पूर्ववर्ती का निषेध उत्पन्न हो। उदाहरण के लिए, 'यदि पी नही तो क्यू भी नही'। अनुवर्ती सकृत्य से अनुवर्ती के विधायन उत्पन्न करने की व्यवस्था की गई। उदाहरण के लिए, "यदि पी, तो क्यू भी" पूर्ववर्ती तथा अनुवर्ती सकृत्यो मे अधोलिखित नियम उपयोग मे लाए गए।

पूर्ववर्ती सकृत्य मे—चौतीस वर्ष अथवा उससे अधिक आयु वाले कर्मचारी प्रति वर्ष कम से कम—पौण्ड वेतन पाएँगे।

अनुवर्ती सकृत्य मे—वर्ष अथवा उससे अधिक आयु वाले कर्मचारी प्रति वर्ष कम से कम 1900 पौण्ड वेतन पाएँगे।

पूर्ववर्ती सकृत्य मे यह अनुमान वैध है कि किसी भी, कम से कम, चौतीस वर्षीय कर्मचारी का वेतन (नियम मे अघोपित) से अधिक नही होगा। किन्तु यह

---

1 Fallacious reasoning 2 Conditional

अनुमान कि 34 से कम आयु वाले कर्मचारी के वेतन से अधिक होगा, दाप पूर्ण है। अनुवर्ती सकृत्य मे यह अनुमान वैध है कि 1900 पौण्ड से कम पाने वाले कर्मचारी की आयु की तुलना मे नियम मे अधोपित आयु अधिक होगी। किन्तु यह अनुमान कि 1900 पौण्ड पाने वाले कर्मचारी की आयु अधिक नही होगी, दोपपूर्ण होगा। प्रयोज्य के सम्मुख वाच्छित नियम प्रस्तुत किया गया और तत्पश्चात् दस काल्पनिक कर्मचारियो की आयु और उनके वेतन वताए गए। ये सूचनाएँ इस प्रकार की गईं कि प्रयोज्य विपम प्रयासो पर वैध अनुमान और सम प्रयासो पर सदोप अनुमान कर सके। प्रयोग चार समूहो पर किया गया। दो सकृत्यो के लिए पृथक-पृथक प्रायोगिक और नियत्रित समूह लिए गए। प्रायोगिक समूह के लिए सदोप और वैध अनुमान विसगति उत्पन्न किया गया। किन्तु नियत्रित समूह के लिए ऐसा नही किया गया। प्रयोग व्यक्तिपरक रीति से किया गया। प्रत्येक प्रयोज्य को अधोलिखित निर्देश दिया गया। प्रत्येक प्रयोज्य से 10 प्रयास कराया गया।

> 'यह एक तर्कना सकृत्य है। इसके बारे मे आपको सावधानी से चिन्तन करना है। किसी सस्था मे विना किसी अपवाद के एक नियम लागू था। (यहाँ उचित नियम दे दिया गया) आपको इस नियम मे अघोपित वेतन (किसी समूह के लिए आयु) ज्ञात करना है। सस्था के अनेक कर्मचारियो की आयु और वेतन मैं आपको वताऊँगा। प्रत्येक कर्मचारी की आयु और वेतन देखकर आपको आयु (अथवा वेतन) के सम्वन्ध मे दो प्रश्नो के उत्तर देने पडेगे। तत्पश्चात् आप आयु (अथवा वेतन) को अनुमानित कर लिख दें।

अधोलिखित सारणी मे प्रारम्भ मे सदोष तर्कना करने वाले किन्तु बाद मे सदोप तर्कना का निवारण कर लेने वाले प्रयोज्यो की सख्या दी हुई है।

सारणी सख्या 10 3

उन प्रयोज्यो की सख्या जो पहले दोपपूर्ण अनुमान करने के बाद वाले प्रयासो मे अपने को सही करने लगे अथवा अपने को सही न कर अधिकतम त्रुटियाँ करने लगें।

	पूर्ववर्ती सकृत्य		अनुवर्ती सकृत्य		सम्मिलित सकृत्य	
	प्रा० स०	नि० स०	प्रा० स०	नि० स०	प्रा० स०	नि० स०
सख्या	4	6	10	10	14	16
छठा प्रयास	3	0	5	2	8	2
आठवाँ प्रयास	0	1	1	0	1	1
दसवाँ प्रयास	0	1	0	0	0	1
कोई सुधार नही	1	4	4	8	5	12

इन परिणामो से इस परिकल्पना की पुष्टि हुई कि स्वतोव्याघात की जानकारी होने पर व्यक्ति अपने सदोप अनुमान अथवा तर्कना मे सुधार कर वैध तर्कना करने की ओर अग्रसर होने लगता है।

आगमनात्मक चिन्तन प्रक्रम

सामान्यत निगमनात्मक चिन्तन मे व्यक्ति समष्टि के आधार पर व्यष्टि अथवा सामान्य के आधार पर विशेप के सम्बन्ध मे अनुमान करता है। इसके विपरीत आगमनात्मक चिन्तन अथवा तर्कना मे व्यक्ति व्यष्टि के आधार पर समष्टि अथवा विशेष के आधार पर सामान्य के सम्बन्ध मे अनुमान करता तथा निष्कर्ष निकालता है। ताश के विविध खेलो मे व्यक्ति कौशल (किस स्थिति मे किस प्रकार की चाल चली जाए कि प्रतिवादी की हार हो) ताश के खेल के अनुभवो के आधार पर अर्जित करता है। इस अर्जन मे मुख्यत आगमनात्मक चिन्तन प्रक्रम का हाथ होता है। इस प्रकार के चिन्तन प्रक्रम का प्रायोगिक अध्ययन अपेक्षाकृत रूप से कम सख्या मे हुआ है, तथापि इसके सम्बन्ध मे कई प्रायोगिक अध्ययन उपलब्ध है। इस सम्बन्ध मे गिल्सन तथा अवेलसन (1965) के दो प्रयोगो का उल्लेख कर आगमनात्मक चिन्तन प्रक्रम का परिचय प्रस्तुत किया जा सकता है। इन मनोवैज्ञानिको ने प्रतिपादित किया कि लोग किसी कथन की विश्वसनीयता का मूल्याकन उस कथन के उदाहरणो से आगमन के आधार पर करते है। उदाहरण के लिए इस कथन को कि मन्त्री लोग घूस लेते हैं कोई व्यक्ति इसलिए स्वीकार करेगा कि उसकी जानकारी मे मन्त्री 'क' घूस लेता है, 'ख' घूस लेता है इत्यादि। किन्तु उपरोक्त कथन के स्वीकार करने मे व्यक्ति को कठिनाई होगी यदि उसके समक्ष निषेधक उदाहरण—जैसे कि मन्त्री 'य', 'व' और 'स' घूस नही लेते—भी उपस्थित हो। सक्षेप मे, आगमनपरक विश्वसनीयता का प्रक्रम आगमनात्मक अनुमान प्रक्रम के ही समान है। प्रश्न यह है कि व्यक्ति किस प्रकार प्रस्तुत किये गए किसी कथन के परीक्षण हेतु किस प्रकार से साक्ष्यो का चुनाव करता है।

अपने प्रारम्भिक अध्ययन मे इन मनोवैज्ञानिको ने 10 साक्ष्य मैट्रिक्स का उपयोग किया। लोगो के पास उपकरण हैं सामान्य कथन था। कथन की विश्वसनीयता का मूल्याकन इन साक्ष्य मैट्रिक्स के आधार पर प्रयोज्यो को करना था। साक्ष्य मैट्रिक्स मे 3 व्यक्तियो (अ, ब, स) तीन उपकरण (एक्स, वाई, जेड) तथा दो क्रियाओ (के पास है, अथवा के पास नही है) का उपयोग किया गया। प्राप्त परिणामो से ज्ञात हुआ कि जब किसी भी कथन के उदाहरणो मे 2/3 उदाहरण विधेयात्मक होते है तो प्रयोज्य कथन से निश्चय ही सहमति व्यक्त करता है। जब साक्ष्यो मे सभी कर्ताओ के पास मात्र एक ही उपकरण प्रदर्शित किया जाता है तव भी प्रयोज्य कथन से सहमति व्यक्त करते हैं। किन्तु जब एक ही कर्त्ता के पास सभी उपकरण और अन्य कर्त्ताओ के पास कोई भी उपकरण नही होता है तो प्रयोज्य कथन से कम सहमत होता है।

अपने मुख्य अध्ययन मे इन मनोवैज्ञानिको ने इस अध्ययन को और व्यापक रूप दिया। इस अध्ययन मे 128 एकांशो की एक प्रश्नावली तैयार की गई। इसमे 64 बीज अन्तर्वस्तु इस प्रकार प्रस्तुत किए गए कि प्रत्येक के साक्ष्य दो रूपो मे सम्मिलित थे। एक साक्ष्य कर्मनिष्ठ (इसमे सभी कर्त्ता एक ही कर्म रखते थे) था और दूसरा कर्त्तानिष्ठ था (जिसमे एक ही कर्त्ता सभी कर्मों को रखता था)। प्रत्येक साक्ष्य मे तीन वाक्यो का उपयोग किया गया। इन तीनो मे एक ही विवेयात्मक उदाहरण सम्मिलित किया गया था। एकांशो के दोनो रूपो का उदाहरण नीचे प्रस्तुत है।

सामान्य कथन—जनजातियो के पास पत्रिकाएँ होती है।

साक्ष्य—(1) तीन प्रकार की जनजातियाँ है–दक्षिणी, उत्तरी और केन्द्रीय।

दक्षिणी जनजातियो के पास क्रीडा पत्रिकाएँ है।

उत्तरी जनजातियो के पास क्रीडा पत्रिकाएँ नही हैं।

केन्द्रीय जनजातियो के पास क्रीडा पत्रिकाएँ नही हैं।

प्रश्न—क्या जनजातियो के पास पत्रिकाएँ है ?

(2)—सब तीन प्रकार की पत्रिकाएँ हैं—क्रीडा, समाचार व फैशन। पत्रिकाएँ

दक्षिणी जनजातियो के पास क्रीडा पत्रिकाएँ नही हैं।

दक्षिणी जनजातियो के पास समाचार पत्रिकाएँ नही है।

दक्षिणी जनजातियो के पास फैशन पत्रिकाएँ है।

प्रश्न—क्या दक्षिणी जनजातियो के पास फैशन पत्रिकाएँ हैं ?

इस प्रयोग मे 8 प्रकार के कर्त्ता, 8 प्रकार की क्रियाएँ और 8 प्रकार के कर्म लिए गए। प्रयोग के लिए लैटिन वर्ग अभिकल्प का उपयोग इस प्रकार किया गया कि प्रत्येक क्रिया का अनुप्रयोग 8 कर्त्ता-कर्म युग्मो के साथ हो सके। इस प्रकार $8 \times 8 = 64$ बीज अन्तर्वस्तु बने। जिन कर्त्ताओ और कर्मों को लिया गया वे निम्नलिखित सारणी मे दिए गए हैं।

सारणी सख्या 10 4

अध्ययन मे लिए गए कर्त्ता, क्रिया और कर्म

	कर्त्ता	क्रिया	कर्म
1	एक प्रकार की ऊर्जा (एक पगीय, द्विपगीय, त्रिपगीय)	उत्पन्न करती हैं	फग हरित, पीला, लाल
2	परिवार (नगरी, देहाती, कस्बा वाले)	खरीदते हैं	पत्रिकाएँ (क्रीडा, समाचार फैशन)

3	जनजातियाँ (दक्षिणी, उत्तरी, केन्द्रीय)	के पास है	जानवर (बडे, छोटे औसत आकार के)
4	लोग (धनी, गरीब, मध्यमवर्गीय)	से क्रुद्ध होते है	उपकरण (एक्स, वाई, जेड)
5	आदमी (वृद्ध, प्रौढ, युवक)	समझते है	पुत्रियाँ (लाल केश वाली, काले केश वाली तथा भूरे केश वाली)
6	कलाकर (विख्यात, अलात तथा साधारण)	पसन्द करते है	चित्रकारी, (आधुनिक, प्राचीन तथा छायावादी)
7	प्रत्याशी (क दलीय, ख दलीय, ग दलीय)	चुराते हैं	विचार (आर्थिक, सामाजिक और सैन्य)
8	महिलाएँ (मोटी, पतली और सुगठित)	परिहार करती हैं	खाद्य (मीठा, नमकीन और मसाले वाले)

प्राप्त परिणामो से ज्ञात हुआ कि कर्मनिष्ठ साक्ष्यो से कर्त्ता-निष्ठ साक्ष्यो की तुलना मे अधिक सहमत होने की प्रतिक्रियाएँ प्राप्त हुईं। साथ ही साथ क्रिया के कारण भी सहमति प्रतिक्रियाओ पर महत्वपूर्ण प्रभाव पडा। इस अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि आगमनात्मक सामान्यीकरण करने की वृत्ति साक्ष्य के रूप से निर्धारित होती है। कर्म के आधार पर आगमनात्मक सामान्यीकरण कर्त्ता के आधार की तुलना मे अधिक सहजता से होता है।

सहायक ग्रन्थ सूची

अण्डवुड, बी जे — ऐन ओरिएण्टेशन फार रिसर्च इन थिंकिग। साइकालोजी रिव्यू, 1952

अण्डरवुड, जे बी तथा रिचार्डसन, जे. — सम वर्बल मैटेरियल्स फार द स्टडी आव कान्सेप्ट फार्मेशन। साइकालोजिकल बुलेटिन, 1956 अ

वर्बल कान्सेप्ट लर्निंग ऐज अ फकशन आव इन्स-ट्रक्शन्स एण्ड डामिनेन्स लेवेल। जर्नल आव एक्सपे साइकालोजी, 1956 ब

ऐडम्स, जे ए — मल्टिपिल वसस सिंगल प्राब्लम ट्रेनिंग इन ह्यूमन प्राब्लम साल्विग। जर्नल एक्सपे साइकालोजी, 1954

कर्टज, के एच तथा हवलैण्ड, सी आई — कान्सेप्ट लर्निंग विद डिफरेन्ट सिक्वेन्सेज आव इन्सटान्सेज। जर्नल आव एक्सपे० साइकालोजी, 1956

केन्डलर, एच एच तथा डिश्रमेटो, एफ	ए कम्पेरिजन आव रिवर्सल एण्ड नान-रिवर्सल शिफ्ट इन ह्यूमन कान्सेप्ट फार्मेशन बिहेवियर। जर्नल आव एक्सपे० साइकालोजी, 1955
कैलेन्टाइन, एम एफ तथा वारेन, जे एम	लर्निंग सेट्स इन ह्यूमन कान्सेप्ट फार्मेशन। साइकालोजी रिपोर्ट्स, 1955
गुडनाऊ, जैकलिन जे तथा पोस्टमैन, एल	प्रावेबिलिटी लर्निंग इन ए प्राब्लम साल्विंग सिचुएशन। जर्नल आव एक्सपे० साइकालोजी, 1955
गेलफैन्ड, एस	इफेक्ट्स आव प्रायर अस्सोसिएशन्स एण्ड टास्क-काम्प्लेक्सिटी अपान द आइडेन्टिफिकेशन आव कान्सेप्ट्स। साइकालोजी रिपोर्ट्स, 1958
चैपमैन, एल जे तथा चैपमैन, जे पी	ऐटमास्फीयर इफेक्ट रीएक्जामिन्ड। जर्नल आव एक्सपे० साइकालोजी, 1959
टामसन, रावर्ट	द साइकालोजी आव थिंकिंग। पेन्ग्विनबुक्स, 1964
ट्रावैसो, टी तथा वावर, जी	कम्पोनेण्ट लर्निंग इन द फोर कैटेगोरी कान्सेप्ट। प्राब्लम। जर्नल आव मैथेमेटिकल साइकालोजी, 1964
डन्न, आर एफ	ऐन्जाइटी एण्ड वबल कान्सेप्ट लर्निंग। जर्नल आव एक्सपे० साइकालोजी, 1968
डोमिनास्की, आर एल	एनाग्राम साल्विंग ऐज ए फंक्शन आव लेटर मूव्स। जर्नल आव वर्बल लर्निंग एण्ड वर्बल बिहेवियर, 1966
नेमिकास, जी	कान्सेप्ट आइडेन्टिफिकेशन ऐज ए फंक्शन आव रिलेवेन्स आव प्रीट्रेनिंग एण्ड परसेन्टेज आव इन्फार्मेटिव फीडबैक। साइकोनामिक साइंस, 1967
नोबुल, सी सी तथा अलफाक, एन टी	ह्यूमन डिलेड रिवार्ड लर्निंग विद डिफरेन्ट लेन्थ आव टास्क। जर्नल आव एक्सपे० साइकालोजी, 1958
पिशिकन, वी	इफेक्ट्स आव प्रावेबिलिटी आव मिसइनफार्मेशन एण्ड नम्बर आव इर्रिलेवेण्ट डाइमेन्सन्स अपान कान्सेप्ट आइडेन्टिफिकेशन। जर्नल आव एक्सपे० साइका, 1960

वस्स, ए एच तथा वस्स, एडिथ ए — द इफेक्ट आव वर्वल रीइन्फोर्समेण्ट काम्बिनेशन्स आन कान्सेप्चुअल लर्निंग । जर्नल आव एक्सपे० साइका, 1956

वाइलिन, एच — डेवलपमेन्टल डिटर्मिनेण्ट्स आव वर्ड एण्ड नान्सेन्स एनागाम सोलूशन्स । जर्नल आव वर्वल लर्निंग एण्ड वर्वल विहेवियर, 1967

वायर्स, जे आई तथा डेविड्सन — द रोल आव हाइपोथेसाइजिंग इन द फेशिलिटेशन आव कान्सेप्ट अटेनमेण्ट । जर्नल आव वर्वल लर्निंग एण्ड वर्वल विहेवियर, 1967

वावर, ए सी तथा किंग, डब्ल्यू एल — द इफेक्ट आव नम्बर आव इर्रिलेवेण्ट स्टिमुलस डाइमेन्सन्स, वर्वलाइजेशन्स एण्ड सेक्स आन लर्निंग साइकोनामिक साइन्स, 1967

वुलगैरेला, रोजेरिया तथा आर्चर, ई जे — कान्सेप्ट आइडेन्टिफिकेशन आव आडिटोरी स्टिमुलाई ऐज ए फक्शन आव एमाउन्ट आव रिलेवेण्ट एण्ड इर्रिलेवेण्ट इन्फार्मेशन । जर्नल आव एक्सपेरिमेण्टल साइका, 1962

वोर्न, लाइल ई — इफेक्ट्स आव डिले आव इन्फार्मेशन फीडवैक एण्ड टास्क काम्प्लेक्सिटी आन द आइडेन्टिफिकेशन आव कान्सेप्ट्स । जर्नल आव एक्सपे० साइका, 1957

वोर्न, लाइल ई — लागटर्म इफेक्ट्स आव मिसइन्फार्मेशन फीडवैक आन कान्सेप्ट आइडेन्टिफिकेशन । जर्नल आव एक्सपे० साइका०, 1963 व

वोर्न, लाइल ई. — ह्यूमन कन्सेप्चुअल विहेवियर । अलिन एण्ड वेकन, 1966

वोर्न, लाइल ई एक्सट्रैण्ड, ब्रूस, आर तथा डोमिनास्की, रोजर, एल — द साइकालोजी आव थिंकिंग । प्रेन्टिस हाल, 1971

वोर्न, लाइल ई तथा जेनिग्स, पी. सी — द रिलेशनशिप बिटवीन कान्टिग्विटी एण्ड क्लासिफिकेशन लर्निंग । जर्नल आव जनरल साइकालोजी, 1963

वोर्न, लाइल ई, डाड, डी, गाई, डी ई तथा जस्टेशन, डी आर — रिस्पान्स कान्टिन्जेण्ट इन्टर ट्रायल इन्टरवल आन कान्सेप्ट आइडेन्टिफिकेशन । जर्नल आव एक्सपे० साइका०, 1968

बोर्न, लाइल ई , गाई, डो , ई तथा वैड्सवर्थ, एन — वर्बल रीइनफोर्समेण्ट काम्बिनेशन्स एण्ड रिलेटिव फ्रीक्वेन्सी आव इन्फार्मेटिव फीडबैक इन ए कार्ड सार्टिंग टास्क। जर्नल आव एक्सपे० साइकालोजी, 1967

बोर्न, लाइल ई व पेंडलटन, आर वी — कान्सेप्ट आइडेण्टिफिकेशन ऐज ए फंकशन आव कम्पलीटनेस एण्ड प्राबेबिलिटी आव इन्फार्मेशन फीडबैक। जर्नल आव एक्सपे० साइकालोजी, 1958

बोर्न, लाइल ई तथा वण्टरसन सी वी — इफेक्टस आव डिले आव इन्फार्मेटिव फीडबैक एण्ड लेन्थ आव पोस्ट फीडबैक इन्टरवल आन कान्सेप्ट आइडेन्टिफिकेशन। जर्नल आव एक्सपेरिमेण्टल साइका, 1963

माल्जमैन, आई आइजमैन, ई तथा ब्रूक्स, एल वी — सम रिलेशनशिप बिटवीन मेथड्स आव इन्सट्रक्शन परसनालिटी वैरिएबुल्स, एण्ड प्राब्लम साल्विंग। जर्नल आव एजु० साइका०, 1958

रस्सेल, डी जी तथा सैरासन — टेस्ट ऐंग्जाइटी, सेक्स एण्ड एक्सपेरिमेण्टल कण्डिशन्स इन रिलेशन टू एनाग्राम सलूशन। जर्नल आव पर्सनालिटी एण्ड सोशल साइकालोजी, 1965

रीस, एच जे तथा इजरेयल, एच सी. — ऐन इनवेस्टिगेशन आव द इस्टैब्लिशमेण्ट एण्ड आपरेशन आव मेण्टल सेट्स। साइका० मोनो, 1935

लूचिन्स, ए एस — मिकैनाइजेशन इन प्राब्लम-साल्विंग। साइको० मोनो, 1942

वाकर, सी एम तथा बोर्न, लाइल, ई — कान्सेप्ट आइडेन्टिफिकेशन एज ए फंकशन आव एमाउण्ट आव रिलेवेण्ट एण्ड इर्रिलेवेण्ट इन्फार्मेशन अमेरिकन जर्नल आव साइका, 1961

वासन, पी सी — द इफेक्ट आव सेल्फ-कान्ट्राडिक्शन आन फैलीसस रीजनिंग। क्वार्टर्ली जर्नल आव एक्सपे० साइका० 1964

वोह्विल्ल, जे एफ — द ऐब्सट्रेक्शन एण्ड कन्सेप्चुअलाइजेशन आव फार्म, कलर एण्ड नम्बर। जर्नल आव एक्सपे० साइका०, 1957

अध्याय 11

अधिगम-अन्तरण तथा व्यवस्था

विषय-प्रवेश

अधिगम-अन्तरण

- अन्तरण
  - स्वभाव
  - प्रयोग अभिकल्प
  - माप
- अविशिष्ट अन्तरण
  - योग्यता अन्तरण
  - स्फूर्ति प्रभाव
- विशिष्ट अन्तरण
  - उद्दीपक प्रतिक्रिया विशापण
  - समानता सम्बन्ध तथा अन्तरण प्रवणता
  - विशिष्ट अन्तरण के घटक

अधिगम-व्यवस्था

- संकलित तथा वितरित अधिगम
- संकलित तथा वितरित अधिगम का प्रभाव
  - अनुबन्धन
  - प्रत्यक्षपरक पेशीय अधिगम
  - वाचिक अधिगम
  - चिन्तन तथा सम्बोध अधिगम
  - अभ्यासकाल की अवधि का निर्धारण
  - विश्रामकाल की अवधि का निर्धारण
  - अभ्यास वितरण के सिद्धान्त
- पूर्ण तथा अंश विधि
  - स्वभाव
  - वाचिक अधिगम में पूर्ण व अंश विधि
  - मोटर अधिगम में पूर्ण व अंश विधि
  - अधिगम सेट

अधिगम-अन्तरण तथा व्यवस्था

विषय-प्रवेश

पिछले अध्यायो मे अधिगम के सरलतम पक्ष से लेकर उसके जटिलतम पक्ष का विवेचन प्रायोगिक अध्ययनो से प्राप्त प्रदत्तो के आधार पर प्रस्तुत किया गया। इस अध्याय मे अधिगम के शेष दो महत्वपूर्ण पक्षो का परिचयात्मक विवेचन प्रस्तुत किया जाएगा। इस सन्दर्भ मे पहला पक्ष है अधिगम के अन्तरण का और दूसरा है अधिगम की व्यवस्था का।

अधिगम के अन्तरण से सम्बन्धित मूल प्रायोगिक समस्याओ की उत्पत्ति प्राचीन शिक्षा शास्त्रियो के मनुष्य स्वभाव के सम्बन्ध मे कतिपय अभिग्रहो से हुई। उनका विश्वास था कि मनुष्य मन की अनेक शक्तियाँ होती है और उन शक्तियो को विशिष्ट प्रकार के अनुभवो से प्रबलतर किया जा सकता है। उनकी दृढ धारणा थी कि गणित के प्रशिक्षण के कारण व्यवस्थित मन का विकास होता है, ग्रीक और लैटिन भाषाओ मे दक्षता प्राप्त कर लेने के कारण अँग्रेजी भाषा का शब्दज्ञान और उसमे वाक्य सरचना की क्षमता सवर्द्धित होती है, तर्कशास्त्र मे प्रशिक्षण के कारण व्यक्ति जीवन की समस्याओ से जूझते समय तार्किक दृष्टिकोण अपनाने का आदी हो जाता है, और वैज्ञानिक विषयो के अध्ययन के कारण व्यक्ति की प्रेक्षण-शक्ति मे वृद्धि होती है। मनोवैज्ञानिको ने इन अभिग्रहो की वैधता का परीक्षण करने के लिए जो प्रयत्न किया वे ही प्रायोगिक मनोविज्ञान मे अन्तरण प्रयोगो के नाम से जाने गए। अन्तरण के सम्बन्ध मे दो प्रकार के प्रायोगिक प्रश्न उपस्थित किए गए हैं। प्रथम प्रकार का मूल प्रश्न है—क्या किसी एक प्रकार के विषय मे प्रशिक्षण देने से व्यक्ति की किसी विशेष योग्यता अथवा शक्ति का सवर्धन होता है? इस प्रकार के प्रश्नो का समाधान करने के लिए जो प्रयोग हुए उनको अविशिष्ठ अन्तरण[1] के नाम से अभिहित किया जा सकता है। दूसरे प्रकार का मूल प्रश्न है—क्या किसी विशेष वस्तु विषय का अधिगम कर लेने से दूसरे वस्तु विषय के अधिगम पर प्रभाव पडता है? इस प्रकार के प्रश्नो को सुलझाने वाले प्रयोगो को विशिष्ठ अन्तरण[2] के अन्तर्गत विवेचित किया जाता है।

अधिगम की व्यवस्था से सम्बन्धित समस्याएँ व्यावहारिक है। विद्यालय, परिवार, समाज इत्यादि मे यह आवश्यकता बार-बार अनुभूत होती है कि विविध

---

1 Non-specific transfer 2 Specific transfer

प्रकार की परिस्थितियो मे विभिन्न प्रकार के विषय-वस्तु का अधिगम किस प्रकार सुगम बनाया जा सकता है। इस आवश्यकता से प्रेरित होकर मनोवैज्ञानिको ने अनेक प्रकार के प्रयोग किए है। इन्ही प्रायोगिक उपलब्धियो को अधिगम व्यवस्था के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है। इस सम्बन्ध मे मुख्यत तीन शीर्षको के अन्तर्गत प्रयोगो का विवेचन किया जा सकता है। एक मे अधिगम्य विषय-वस्तु का हस्तादिप्रयोग प्रमुख है, दुसरे मे अधिगम अभ्यास का वितरण तथा तीसरे मे अभ्यास की मात्रा के नियन्त्रण के साथ अधिगम्य सकृत्यो की सख्या।

अधिगम-अन्तरण

अन्तरण

स्वभाव—अन्तरण के प्रायोगिक अध्ययन मे मुख्यत दो अवस्थाएँ होती है। प्रथम अवस्था प्रशिक्षण की और दूसरी अवस्था परीक्षण की होती है। प्रशिक्षण के परिणामस्वरूप परीक्षण की अवस्था मे निष्पादन पर तीन प्रकार के अन्तरण-प्रभाव पाए जा सकते है। पहला यह कि परीक्षण में निष्पादन सुगमतर हो जाए दूसरा यह कि यह निष्पादन दुरूहतर हो जाए, अथवा प्रशिक्षण का कोई प्रभाव न परिलक्षित हो। इन प्रभावो को क्रम से विधेयात्मक, निषेधात्मक और शून्यात्मक अन्तरण प्रभाव[1] की सज्ञाएँ दी जाती है। यदि प्रथम अवस्था के अधिगम के कारण द्वितीय अवस्था का अधिगम सुगमतर हो जाता है तो तात्पर्य यह हुआ कि प्रथम अवस्था मे अधिगत प्रतिक्रिया प्रतिरूप अशत वे ही है जिन्हे द्वितीय अवस्था मे भी अधिगत करना है। प्रथम अवस्था के प्रशिक्षण के कारण परीक्षण की अवस्था के अधिगत का दुरूहतर होने का अर्थ है कि प्रथम अवस्था के अधिगत प्रतिक्रिया प्रतिरूप द्वितीय अवस्था मे अधिगत किए जाने वाले प्रतिक्रिया प्रतिरूप के विरोधी है और उनके घटित होने मे अवरोध उत्पन्न करते है। परिणामस्वरूप प्रभाव ऋणात्मक हो जाता है। प्रथम अवस्था के अधिगम का दूसरी अवस्था के अधिगम पर शून्य प्रभाव का तात्पर्य हुआ कि दो अवस्थाओ मे अधिगत प्रतिक्रिया प्रतिरूप एक दूसरे से भिन्न हैं। इस प्रकार, अन्तरण प्रयोगो के आधार पर दोनो अवस्थाओ मे अधिगम्य सकृत्यो मे पारस्परिक समानता, विरोध तथा भिन्नता का विवेचन होता है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अन्तरण स्वभाव के सम्बन्ध मे दो परस्पर मत अग्रसारित किए गए हैं। एक ओर यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया कि उचित प्रशिक्षण के माध्यम से व्यक्ति की स्मृति, प्रेक्षण-क्षमता, तर्कशीलता, निर्णय इत्यादि शक्तियो को प्रबलतर किया जा सकता है और इनके परिणामस्वरूप आगामी सभी प्रकार के सकृत्यो मे इन शक्तियो का प्रबलतर रूप से उपयोग होने लगता है। इस सिद्धान्त के विपरीत थार्नडाइक (1903) द्वारा प्रतिपादित तथा आधुनिक व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिको द्वारा समर्थित 'सर्वसम अवयव'[2] का सिद्धान्त है। इस

---

1 Positive, negative and zero transfer effect 2 Identical elements

सिद्धान्त के अनुसार प्रथम अवस्था के अधिगम से दूसरी अवस्था के अधिगम में अन्तरण की मात्रा दोनों अवस्थाओं में विद्यमान साहचर्यपरक सम्बन्धों की समानता पर निर्भर करती है। दोनों अवस्थाओं के सकृत्यों में जितनी समानता होगी, दूसरी अवस्था के अधिगम में उतना ही अन्तरण होगा। आज के मनोविज्ञान में थार्नडाइक का सिद्धान्त ही अपने परिमार्जित रूप में मान्य है। आज अन्तरण के अध्ययन में प्रशिक्षण के कारण शक्तियों के प्रबलतर होने की धारणा को छोड़कर मनोवैज्ञानिक प्रशिक्षण की अवस्था से परीक्षण की अवस्था में अधिगम नियमों, प्रयोज्य द्वारा अनुप्रयुक्त व्यपदेशों तथा उ० प्र० साहचर्यों के अन्तरण पर बल दिया जाता है।

अन्तरण प्रयोगों के अभिकल्प—जैसाकि पहले इंगित किया जा चुका है, अन्तरण प्रयोगों का उद्देश्य यह ज्ञात करना है कि किसी अधिगम का आगामी अधिगम पर क्या प्रभाव पड़ता है। स्पष्ट है कि अन्तरण प्रयोग की दो अवस्थाएँ होती हैं—प्रशिक्षण तथा परीक्षण। प्रशिक्षण सकृत्य को 'अ' और परीक्षण सकृत्य को 'ब' नामों से अभिहित किया जा सकता है। अन्तरण प्रभाव ज्ञात करने के लिए सरलतम अभिकल्प यह है कि दो सकृत्यों, अ और ब, को लिया जाए। सभी दृष्टि-कोणों से समान प्रयोज्यों के दो समूहों को लेकर, प्रथम समूह के प्रयोज्यों (प्रायोगिक समूह) को पहले सकृत्य, अ अधिगत कराया जाए, तत्पश्चात सकृत्य ब। द्वितीय समूह (नियन्त्रण) से मात्र सकृत्य 'ब' अधिगत कराया जाए। 'ब' सकृत्य पर दोनों समूहों के निष्पादन की तुलना से अन्तरण की जानकारी प्राप्त हो जाएगी। अभि-कल्प नीचे दिया गया है।

	प्रशिक्षण	परीक्षण
प्रायोगिक समूह	अ	ब
नियन्त्रण समूह	—	ब

इस अभिकल्प की प्रमुख विशेषता है कि नियन्त्रण समूह को प्रशिक्षण अवस्था में कोई अधिगम नहीं कराया जाता है। इस अभिकल्प में प्रायोगिक परिणामों की वैधता दोनों समूहों की तुलनीयता पर आश्रित रहती है। तुलनीयता के लिए आवश्यक है कि वैध प्रतिदर्श-चयन प्रक्रिया का उपयोग कर यादृच्छिक रीति से प्रयोज्यों को दोनों समूहों में से एक में सम्मिलित किया जाए।

उपरोक्त अभिकल्प के विरुद्ध एक आपत्ति उठाई जाती है। अन्तरण-प्रभाव ज्ञात करने के लिए जब प्रयोज्य प्रयोगशाला में लाया जाता है तो सकृत्य 'अ' का अधिगम करते समय मात्र सकृत्य ही नहीं अपितु प्रयोगशालीय परिवेश के प्रति अनु-कूलन तथा अधिगम व्यपदेश भी विकसित करता है। फलतः यदि उस प्रयोज्य समूह का 'ब' पर निष्पादन नियन्त्रण समूह की तुलना में अधिक अच्छा होता है तो यह नहीं कहा जा सकता कि ऐसा 'अ' सकृत्य के अधिगम मात्र के कारण ही हुआ है। प्रायोगिक समूह का 'ब' पर अच्छा निष्पादन अनुकूलन तथा व्यपदेश विकास के कारण भी हो सकता है, क्योंकि नियन्त्रण समूह को सकृत्य 'ब' का अधिगम करते

समय अनुकूलन और अधिगम व्यपदेश भी विकसित करना पडता है। अत परिशुद्ध अन्तरण का माप करने के लिए आवश्यक है कि नियन्त्रण समूह को परीक्षण के पूर्व प्रयोगशाला मे विना सकृत्य 'अ' का अधिगम कराए ही, अनुकूलन इत्यादि के लिए अवसर दिया जाए। यदि 'प' सकृत्य इस प्रकार का है तो प्रयोग अधिकल्प निम्न प्रकार का हो जाता है।

	प्रशिक्षण	परीक्षण
प्रायोगिक समूह	अ	ब
नियन्त्रण समूह	प	ब

इस प्रकार के प्रयोग अधिकल्प के यह नितान्त आवश्यक है कि 'प' सकृत्य से मात्र अनुकूलन और व्यपदेश का विकास हो, और उसका सकृत्य 'अ' और 'ब' से किसी प्रकार का सम्बन्ध न हो।

अन्तरण प्रयोगो मे एक दूसरे अभिकल्प का भी उपयोग किया जाता है। सर्वसम अवयव सिद्धान्त के आधार पर यह अभिग्रहीत किया जा सकता है कि यदि 'अ' और 'ब' मे सर्वसम अवयव है तो 'अ' के अधिगम के कारण 'ब' का अधिगम सरलतर हो जाएगा तथा 'ब' के अधिगम के कारण 'अ' का अधिगम भी सरलतर होगा। अत, यदि इन दो सकृत्यो का अनुक्रम परिवर्तित कर दो यादृच्छिक रीति से चुने समूहो से इनका अधिगम कराया जाए, तो अन्तरण की मात्रा का मापन हो सकता है। इस प्रकार प्रयोग अभिकल्प हो जाता है

	प्रशिक्षण	परीक्षण
समूह-1	अ	ब
समूह-2	ब	अ

इस अभिकल्प मे एक समूह दूसरे समूह के लिए नियन्त्रण की स्थिति सकृत्यो मे प्रतिसतुलन[1] के कारण उत्पन्न करते हैं। 'अ' सकृत्य पर समूह-1 के निष्पादन की तुलना समूह-2 के निष्पादन के साथ कर, तथा 'ब' सकृत्य पर दोनो समूहो के निष्पादनो की तुलना कर अन्तरण की मात्रा जानी जा सकती है।

उपरोक्त प्रकार के अभिकल्पो की न्यूनता यह है कि इनका उपयोग मात्र उन्ही सकृत्यो मे किया जा सकता है जिनमे प्रयोज्य सकृत्य को पहली बार करने का अवसर प्राप्त करता है। किन्तु जैसा कि पहले ही इगित किया जा चुका है, अन्तरण प्रयोगो मे योग्यता अथवा क्षमता पर भी अभ्यास के प्रभाव को जानने का प्रयत्न किया जाता है। इन स्थितियो मे प्रयोग अभिकल्प का रूप परिवर्तित हो जाता है। योग्यता पर अधिगम-अभ्यास के प्रभाव ज्ञात करने के लिए आवश्यक है कि अभ्यास के पूर्व व्यक्ति की प्रारम्भिक योग्यता का मापन हो, और अभ्यास के

---

1 Counter-balance

उपरान्त भी। अत इन स्थितियो मे अधोलिखित अभिकल्प का सामान्यत अनुप्रयोग किया जाता है। इस अभिकल्प के पश्चात्-परीक्षण मे या तो

	पूर्व-परीक्षण	प्रशिक्षण	पश्चात्-परीक्षण
प्रायोगिक समूह	ब	अ	ब
नियन्त्रण समूह	ब	—	ब

पूर्व परीक्षण मे लिए सकृत्य को ही लिया जाता है अथवा उसका सर्वसम सकृत्य (ब'[1]) भी लिया जा सकता है। इस अभिकल्प की न्यूनता यह है कि पूर्व-परीक्षण काल मे प्रयोज्य कुछ अभ्यास कर ही लेता है। अत पश्चात्-परीक्षण काल मे 'ब' पर निष्पादन मात्र 'अ' पर प्रशिक्षण के कारण ही नही, अपितु पूर्व-परीक्षण-अभ्यास से भी प्रभावित होता है, और इस प्रकार अन्तरण का परिशुद्ध माप नही हो पाता है। साथ ही साथ पूर्व परीक्षण का प्रभाव प्रशिक्षण पर भी पडता है। इन न्यूनताओ को दूर कर अन्तरण के परिशुद्ध माप के लिए अधोलिखित अभिकल्प का निर्माण हुआ है।

	पूर्व-परीक्षण	प्रशिक्षण	पश्चात्-परीक्षण
प्रायोगिक समूह	ब	अ	ब
नियत्रण समूह 1	ब	—	ब
नियत्रण समूह 2	—	अ	ब

इस अभिकल्प मे किए गए प्रयोग से प्राप्त प्रदत्तो के विश्लेषण हेतु नियत्रण समूह 2 के पूर्व-परीक्षण-निष्पादन का मूल्य अन्य दो समूहो के पूर्व-परीक्षण-निष्पादन का औसतमान माना जाता है। प्राप्त पश्चात्-परीक्षण उपलब्धि तथा अनुमानित पूर्व परीक्षण उपलब्धि का अन्तर ही प्रशिक्षण का प्रभाव (अन्तरण) माना जाता है।

अन्तरण माप—किसी भी प्रकार के सकृत्य मे अन्तरण माप के लिए परीक्षण सकृत्य पर निश्चित सख्या मे दिए गए प्रयासो मे नियन्त्रण समूह के सही प्रतिक्रियाओ की सख्या से प्रायोगिक समूह और नियन्त्रण समूह के सही प्रतिक्रियाओ के अन्तर को विभाजित करने के वाद प्राप्त उपलब्धि को लेकर 100 से गुणा कर दिया जाता है।

$$\text{प्रतिशत अन्तरण} = \frac{\text{प्रा०} - \text{नि०}}{\text{नि०}}$$

(प्रा० = प्रायोगिक समूह, नि० = नियन्त्रण समूह)

यह माप पूर्णतया वैध नही माना जा सकता। मान लीजिए कि नियन्त्रण समूह एक सकृत्य मे 10 त्रुटियाँ और दूसरे सकृत्य मे 100 त्रुटियाँ करता है। ऐसी

1 ब' = ब प्राइम — B' as identical to task B

स्थिति मे प्रशिक्षण-प्रभाव के कारण प्रथम सकृत्य मे 5 त्रुटियो और दूसरे सकृत्य मे 50 त्रुटियो की कमी अनिवार्यत समान अन्तरण का द्योतक नही हो सकती। ऐसा इसलिए कि दोनो सकृत्यो मे अधिगम विकास के वक्र भिन्न आकार और प्रवणता के हो सकते हैं। स्पष्ट है कि दोनो सकृत्यो मे प्रतिशत उपलब्धि के तात्पर्य एक नही हो सकते। अत इस न्यूनता को दूर करने के लिए मनोवैज्ञानिको ने अधोलिखित सूत्र निर्मित किया है।

$$\text{प्रतिशत अन्तरण} = \frac{\text{प्रा}_0 - \text{नि}_0}{\text{यो}_0 - \text{नि}_0} \times 100$$

(यो०=परीक्षण अवस्था मे अधिकतम सभावित उपलब्धि)

इस सूत्र का लाभ यह है कि इसमे सीमा सूत्र मे निर्धारित कर दी गई है (गैग्नी, कोस्टर तथा काउली, 1948)। मर्डाक (1957) ने इस सूत्र की भी सीमाओ का विवेचन किया है। उसने यह आपत्ति प्रस्तुत की है कि किसी भी सकृत्य के अन्तिम सीमा का मूल्य-निर्धारण कठिन और उसकी वैधता सदेहास्पद है। मर्डाक ने इस न्यूनता का निवारण करने के लिये एक नया सूत्र दिया है। यद्यपि कि उसमे भी न्यूनताएँ हैं। तथापि इस सूत्र को व्यापक रूप से उपयोग मे लाया जाता है।

$$\text{प्रतिशत अन्तरण} = \frac{\text{प्रा}_0 - \text{नि}_0}{\text{प्रा}_0 + \text{नि}_0} \times 100$$

अविशिष्ट अन्तरण

अविशिष्ट अन्तरण सम्बन्धी अध्ययनो को दो वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है। एक वर्ग मे उन अध्ययनो को रखा जा सकता है जिनका उद्देश्य योग्यताओ के अन्तरण की वैधता का परीक्षण करना है। दूसरे वर्ग मे उन प्रयोगो को सम्मिलित किया जाता है जिनमे 'स्फूर्ति परिणाम'[1] और 'अधिगम करने का अधिगम'[2] से है।

योग्यता अन्तरण—योग्यता-अन्तरण के प्रारम्भिक प्रयोग को मनोभौतिक शास्त्रियो ने प्रारम्भ किया। वोकमान (1858) ने पाया कि यदि शरीर के एक भाग मे द्विबिन्दु स्पर्श देहली का निर्धारण करने के उद्देश्य से दो उद्दीप्त बिन्दुओ के बीच विभेद करने का प्रशिक्षण दिया जाए तो शरीर के उस भाग के सवादी भाग[3] मे विभेदन क्षमता उस अभ्यास के कारण बढ जाती है। इसको मनोवैज्ञानिको ने द्विपार्श्विक अन्तरण[4] की सज्ञा दी। अनेक मनोवैज्ञानिको ने प्रत्यक्षपरकपेशीय कौशल के द्विपार्श्विक अन्तरण का प्रायोगिक प्रदर्शन किया है। स्विफ्ट् 1903 ने प्रदर्शित किया कि एक हाथ से गेंद उछालने का अभ्यास करने के कारण दूसरे हाथ से

---

1 Warm up effect 2 Learning to learn 3 Corresponding area
3 Bilateral part

गेंद उछालने की क्षमता सम्वर्द्धित हो जाती है। अधिक नियन्त्रित दशाओ मे इस प्रायोगिक उपलब्धि की पुष्टि मन्न (1932) ने विस्तृत रूप से की। द्विपार्श्विक अन्तरण के सम्बन्ध मे कुक्क(1933 1934, 1935)ने प्रायोगिक रूप से प्रदर्शित किया कि शरीर के सममित भागो[1] मे विकर्ण भागो[2] की अपेक्षा अधिक अन्तरण होता है। हाथो मे द्विपार्श्विक अन्तरण का प्रदर्शन दर्पण चिन्हाकन की सहायता से अनेक मनोवैज्ञानिको ने किया है। इस प्रकार के अन्तरण का विस्तृत विवरण वुडवर्थ तथा श्लासवर्ग (1954) ने प्रस्तुत किया है। इस प्रकार के प्रयोगो से इस मत की पुष्टि हुई कि शरीर के एक भाग से अर्जित प्रत्यक्षपरकपेशीय कौशल का अन्तरण शरीर के दूसरे भाग मे हो जाता है। इन प्रायोगिक उपलब्धियो के आधार पर यह प्रत्याशा की जा सकती है कि अन्य मानसिक क्रियाओ का अन्तरण भी इसी प्रकार से हो सकता है। विलियम जेम्स (1890) ने यह ज्ञात करने का प्रयत्न किया कि क्या स्मृति (स्मरण करने की क्षमता) को अभ्यास द्वारा प्रबलतर किया जा सकता है या नही। उसने पूर्वपरीक्षण-प्रशिक्षण—पश्चात् परीक्षण अभिकल्प का उपयोग कर एक कवि की कविताएँ स्मृतिगत् करने का अभ्यास किया। उसको अन्तरण प्रभाव बिल्कुल नही प्राप्त हुआ। किन्तु एवर्ट तथा म्यूमान्न (1905) ने पाया कि यदि प्रयोज्यो द्वारा निरर्थक पदसूचियो को स्मृतिगत् करने का अभ्यास कराया जाए तो अन्य निरर्थक पदसूचियो को याद करने मे सुविधा उत्पन्न हो जाती है। अनेक प्रयोगो से निष्कर्ष निकला कि समान सामग्री पर अभ्यास का प्रभाव पडता है किन्तु भिन्न प्रकार की सामग्री को स्मृतिगत् करने मे किसी प्रकार का प्रभाव नही होता। इसी प्रकार के प्रयोग प्रेक्षण-क्षमता पर भी किए गए है। मूल प्रश्न था क्या किसी व्यक्ति को किसी सकृत्य विशेष मे प्रेक्षण करने का प्रशिक्षण देकर उसे सामान्यत दक्ष प्रेक्षण कर्त्ता बनाया जा सकता है? इस दिशा मे भी प्रायोगिक परिणाम निषेधात्मक ही रहे हैं। थार्नडाइक और वुडवर्थ (1901) ने अपने एक प्रयोग मे आयताकार क्षेत्रो के क्षेत्रफल का अनुमान करने जैसे सकृत्य को लेकर प्रयोज्यो द्वारा प्रत्यक्षपरक कौशल को अधिगत करने का प्रशिक्षण दिया। अन्तरण-परीक्षण मे मूल्याकन किए जाने वाले क्षेत्रो के आकार और क्षेत्रफल को क्रमबद्ध रूप से विचलित किया गया। प्राप्त अन्तरण प्रभाव नही के बराबर था। इतना अवश्य पाया गया कि प्रशिक्षण और परीक्षण सकृत्यो मे समानता होने पर विधेयात्मक अन्तरण पर्याप्त मात्रा मे परिलक्षित होता है।

इस प्रकार के प्रयोगो से निश्चयात्मक रूप से सिद्ध हुआ कि प्रशिक्षण के कारण किसी भी मानसिक कार्य की कुशलता सामान्य रूप से सम्बर्धित नही होती। इतना अवश्य है कि अधिगत सकृत्य के समान सकृत्यो मे प्रत्येक प्रकार के कौशल, क्षमता इत्यादि का अन्तरण होता है। इन प्रयोगो से एक प्रकार के प्रभाव का

---

1 Symmetrical parts 2 Diagonal parts

और सकेत प्राप्त हुआ। हीरान (1928) ने प्रतिपादित किया कि एक ही सत्र मे अधिगम करते समय अभ्यास के कारण 'स्फूर्ति प्रभाव' उत्पन्न होता है और अधिगम अधिक सुविधा से होने लगता है।

स्फूर्ति प्रभाव—स्फूर्ति प्रभाव से विधेयात्मक अन्तरण होता है। श्वेन्न तथा पोस्टमैन (1967) ने स्फूर्ति प्रभाव की परिभाषा करते हुए कहा है कि यह किसी सकृत्य का अधिगम करते समय निष्पादन के प्रभावशाली सेट की स्थापना है। ऐसे सेट मे उपयुक्त सस्थितिपरक[1] अनुकूलन तथा प्रतिक्रिया करने का इष्टतम लय सम्मिलित है। एम्पान्स (1947) ने पहली बार स्फूर्ति प्रभाव का क्रमबद्ध रीति से विश्लेषण कर प्रदर्शित किया कि 'आवतक अनुगमन'[2] जैसे पेशीय कौशल के अधिगम मे किंचित अभ्यास के बाद अधिगम सरलतर हो जाता है क्योकि प्रारम्भिक अभ्यास की अवधि मे अधिगम के लिए व्यक्ति समीचीन सस्थिति विकसित कर लेता है। इस सस्थितिपरक अनुकूलन का विलोप विश्राम के समय हो जाता है। थून (1950) ने अधिगम पर स्फूर्ति के प्रभाव को प्रायोगिक रूप से स्पष्टत प्रदर्शित किया है। एक प्रयोग मे उसने इस परिकल्पना का परीक्षण किया कि स्फूर्ति प्रभाव की मात्रा सेट उत्पन्न करने वाली पहले की क्रिया की मात्रा का सवर्द्धनशील प्रकार्य है। प्रयोग लगातार दो-दो दिनो मे किया गया। पहले दिन सभी प्रयोज्यो को 15 युग्मित सहचरो की एक सूची पर अभ्यास के लिए 6 प्रयास दिये गये। युग्मित सहचर एकपदीय सज्ञाओ से निर्मित थे। इसके पश्चात् विशेषणो से निर्मित 15 युग्मित सहचरो की एक दूसरी सूची पर उनसे 10 प्रयास कराये गये। प्रथम और द्वितीय दिवस मे इन 10 प्रयासो का वितरण भिन्न-भिन्न समूहो के लिए अधोलिखित प्रकार से था।

	प्रथम दिन	द्वितीय दिन
समूह 1	10	0
समूह 2	8	2
समूह 3	6	4
समूह 4	4	6
समूह 5	2	8
समूह 6	0	10

परीक्षण सकृत्य के रूप मे सज्ञाओ से निर्मित 15 युग्मित सहचरो की एक सूची पर 10 प्रयास दूसरे दिन सभी प्रयोज्यो को दी गई। परीक्षण सकृत्य दूसरे दिन पहली सूची पर प्रयासो की समाप्ति पर 10 मिनट का विश्राम कराने के बाद दिया गया। इस तरह सभी समूह के प्रयोज्यो का परीक्षण के पूर्व युग्मित सहचरो

---

1 Postural 2 Rotary pursuit

को स्मृतिगत करने की अनुभव की मात्रा एक थी किन्तु दूसरे दिन परीक्षण के तत्काल पूर्व अनुभव की मात्रा भिन्न-भिन्न थी। परीक्षण सकृत्य पर दिये 10 प्रयासो मे प्राप्त सही प्रतिक्रियाओ का ओसतमान विभिन्न समूहो के लिए इस प्रकार था।

समूह	1	2	3	4	5	6
ओसतमान	52	55	62	65	68	75

थून ने इन परिणामो को स्फूर्ति प्रभाव के रूप मे विवेचित किया। इस प्रकार इस परिकल्पना की पुष्टि हुई कि स्फूर्ति प्रभाव जैसा अविशिष्ट अन्तरण पूर्वअभ्यास प्रयासो का परिणाम है। श्वेन तथा पोस्टमैन (1967) ने थून के प्रयाग की न्यूनताओ को दूर कर स्फूर्ति प्रभाव प्रदर्शित करने के लिए प्रयोग किया है। थून ने अपने प्रयोग मे उन प्रयोज्यो को लिया जिन्हे वाचिक अधिगम सकृत्यो का पूर्व अनुभव था। इसीलिए इन मनोवैज्ञानिको ने उन पूर्वस्नातक छात्रो को लिया जिन्हे वाचिक अधिगम सकृत्य का कोई अनुभव नही था। इन्होने पाँच प्रयोज्य समूहो को द्विपदीय विशेषणो के 10 युग्मित सहचर स्फूर्ति प्रभाव के परीक्षण हेतु दिया। समूहो का प्रायोगिक उपचार[1] निम्नलिखित प्रकार से किया गया।

प्रथम समूह—परीक्षण के पूर्व कोई अभ्यास नही।

द्वितीय समूह—परीक्षण के पूर्व अको को अनुमानित करने वाले सकृत्य पर अभ्यास (चार प्रयास)

तृतीय समूह—द्वितीय समूह की तरह किन्तु 10 अभ्यास प्रयास।

चतुर्थ समूह—परीक्षण के पूर्व असम्बन्धित विशेपणो से निर्मित युग्मित सहचरो पर 4 अभ्यास प्रयास।

पचम समूह—परीक्षण के पूर्व असम्वन्धित विशेपणो से निर्मित युग्मित सहचरो पर 10 अभ्यास प्रयास।

प्राप्त परिणामो से ज्ञात हुआ कि प्रथम और द्वितीय समूह की प्रतिक्रियाओ मे स्फूर्ति प्रभाव नही पाया गया। तृतीय समूह ने किंचित मात्रा मे प्रथम दो समूहो से अधिक अधिगम प्रदर्शित किया किन्तु अन्तिम दो समूहो का निष्पादन स्फूर्ति से पर्याप्त मात्रा मे प्रभावित पाया गया। वस्तुत इन दोनो समूहो ने थून के प्रयोज्यो की तुलना मे अधिक स्फूर्ति प्रभाव का साक्ष्य प्रस्तुत किया। इन परिणामो से यह निष्कर्ष निकाला गया कि जब प्रयोज्यो को वाचिक अधिगम का प्रयोगशाला-अनुभव रहता है, उस दशा मे वाचिक अधिगम परीक्षण मे किसी भी प्रकार के सकृत्य पर अभ्यास के कारण स्फूर्ति प्रभाव उत्पन्न होता है।

---

1 Experimental treatment

विशिष्ट अन्तरण

किसी भी सकृत्य का अधिगम करते समय व्यक्ति उस सकृत्य मे अनुप्रयुक्त एकाशो अथवा उसमे सन्निहित अवयवो के स्वभाव के सम्बन्ध मे विशिष्ट ज्ञान अथवा उनके प्रति विशिष्ट प्रतिक्रिया करना अर्जित करता है। यह स्वत स्पष्ट है कि एक सकृत्य के अधिगम का दूसरे सकृत्य मे अन्तरण इस बात पर निर्भर करेगा कि प्रथम अधिगम मे अर्जित विशिष्ट ज्ञान तथा विशिष्ट प्रतिक्रियाएँ किस अश तक दूसरे सकृत्य मे उपयुक्त हो सकते है। तात्पर्य यह कि दोनो सकृत्यो मे जितनी समानता होगी, उनमे उतना ही अधिगम अन्तरण होगा। अन्तरण मे इस समानता-सम्बन्ध[1] का विश्लेपण उद्दीपक प्रतिक्रिया पदो मे किया गया है जिसके माध्यम से विशिष्ट अन्तरण की विशेपताओ का प्रायोगिक अध्ययन किया गया है।

उद्दीपक-प्रतिक्रिया विश्लेषण—विशिष्ट अन्तरण के उ० प्र० विश्लेपण की उपादेयता का परिचय पापफेनवर्गर (1915) के प्रायोगिक अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है। अधिगम की परिभापा करते हुए यह स्पष्ट किया जा चुका है कि अधिगम वस्तुत उ०प्र० के बीच साहचर्य की स्थापना है। अत किसी भी सकृत्य का सम्बोधकरण उद्दीपक प्रतिक्रिया की एक शृ खला के रूप मे किया जा सकता है। अन्तरण अध्ययन मे सामान्यत प्रयुक्त दो सकृत्यो को सक्षेप मे अधोलिखित रूप से व्यक्त किया जा सकता है।

सकृत्य 1	सकृत्य 2
$उ०_1$—$उ०_1$	$उ०_2$—$उ०_2$

इस प्रकार इन सकृत्यो मे चार घटक[2]—दो उ० और दो प्र०—है। दो सकृत्यो के किन्ही दो घटको मे समानता हो सकती है, कोई दो घटक परस्पर विरोधी हो सकते है अथवा एक सकृत्य के घटक दूसरे घटको से पूर्णत सम्बन्धित हो सकते है। इन सम्बन्धो को दृष्टिकोण मे रखते हुए दो सकृत्यो मे, समानता सम्बन्ध अधोलिखित प्रकार के हो सकते है।

सकृत्य	सकृत्य
1—$उ०_1$-$प्र०_1$	$उ०_1$-$प्र०_1$
2—$उ०_1$-$प्र०_1$	$उ०_1$-$प्र०_2$
3—$उ०_1$-$प्र०_1$	$उ०_2$-$प्र०_2$
4—$उ०_1$-$प्र०_1$	$उ०_2$-$प्र०_1$

पापफेनवर्गर ने तीन प्रकार के समानता सम्बन्धो (1, 2, 3) की स्थिति मे अन्तर की मात्रा का प्रायोगिक अध्ययन किया। एक प्रयोग मे उसने प्रायोगिक

1 Similarity relations 2 Component

प्रयोज्यो को 50 विशेपणो (उ०) के प्रति उनके विलोमी विशेपणो (प्र०) के कहने का अभ्यास कराया। पूर्व परीक्षण तथा पश्चात् परीक्षण मे इन प्रयोज्यो से उन्ही विशेपणो (उ०) के प्रति उचित सज्ञाएँ (प्र०) वोलने का माप किया गया। इस प्रकार इस प्रयोग मे सम्वन्ध 2 का अध्ययन किया गया। दूसरे प्रयोग मे उसने प्रायोगिक प्रयोज्यो से अनेक अको वाले पत्र मे एक अक विशेप को काटने का अभ्यास कराया। पूर्व परीक्षण तथा पश्चात् परीक्षण मे एक समूह से उन्ही अको को तथा दूसरे समूह से दूसरे अक के काटने की गति का माप किया। इन प्रयोगो से प्राप्त परिणामो के आधार पर उसने तीन सम्वन्धो के वारे मे तीन निष्कर्प निकाले।

सकृत्य-1		सकृत्य-2
1—$उ०_1$ $प्र०_1$	—	$उ०_1$-$उ०_1$ विधेयात्मक अन्तरण
2—$उ०_1$-$प्र०_1$	—	$उ०_1$-$प्र०_2$ निपेधात्मक अन्तरण
3—$उ०_1$-$प्र०_1$	—	$उ०_2$-$प्र०_2$ शून्य अन्तरण

पाफ्फेनवर्गर के प्रयोगो मे दोनो सकृत्यो के वीच चौथे सम्वन्ध का अध्ययन नही किया गया। इसका अध्ययन भूल-भुलैया अधिगम मे वाइली (1919) ने किया अपने विस्तृत प्रयोग के एक पक्ष मे उसने चूहो को प्रकाश उद्दीपक सकेत के उपस्थित होने पर भूल-भुलैया के प्रारम्भ विन्दु से भोजनस्थल तक एक मार्ग से दौडकर पहुँच जाने का प्रशिक्षण दिया। तत्पश्चात उसने ध्वनि सकेत पर उनके दौडने की प्रतिक्रिया का परीक्षण किया। इसमे उसने विधेयात्मक अन्तरण प्राप्त किया। व्रूस (1933) ने इन सामान्यीकरणो का विस्तृत अध्ययन युग्मित सहचर अधिगम पर किया। उसने युग्मित सहचरो के रूप मे निरर्थक पदयुग्मो की सूचियो का उपयोग किया। प्रथम सूची पर विभिन्न प्रयोज्य समूहो को 0, 2, 6 अथवा 12 प्रयास दिये गये। दूसरी सूची सभी प्रयोज्यो द्वारा एक त्रुटिहीन सस्वर पाठ के मानदण्डीय माप तक अभ्यस्त कराई गई। दो सूचियो (सकृत्यो) के वीच 9 प्रकार के समानता सम्वन्धो का उपयोग किया गया। इसमे 5 प्रकार के समानता सम्वन्ध महत्वपूर्ण है। उद्दीपक अथवा प्रतिक्रिया घटको के वीच समानता लाने के लिए प्रथम दो अक्षर एक ही रखे गये थे। प्राप्त परिणाम अधोलिखित थे—

1—उन समूहो मे जिनके लिए प्रशिक्षण और परीक्षण सकृत्यो मे $उ०_1$-$प्र०_1$ और $उ०_2$-$प्र०_2$ का सम्वन्ध था, और चाहे जिस मात्रा मे प्रशिक्षण दिया गया, अन्तरण की मात्रा प्रत्याशित रूप से लगभग शून्य थी।

2—उन समूहो मे जिनके लिए दोनो सकृत्यो के उद्दीपक घटको मे समानता थी और प्रतिक्रिया घटक सर्वसम थे, प्रशिक्षण की वढती हुई मात्रा के साथ विधेयात्मक अन्तरण की मात्रा भी वढती गई थी।

3—उन समूहो मे जिनके लिए दोनो सकृत्यो के उद्दीपक घटक एक-दूसरे

से भिन्न थे किन्तु प्रतिक्रिया घटक एक ही थे, प्रशिक्षण की बढती हुई मात्रा के साथ विधेयात्मक अन्तरण की मात्रा भी बढती हुई पाई गई।

4—उन समूहो मे जिनके लिए दोनो सकृत्यो के उद्दीपक घटक तो सर्वसम किन्तु प्रतिक्रिया घटको मे समानता थी, प्रशिक्षण की बढती हुई मात्रा के साथ विधेयात्मक अन्तरण की मात्रा भी बढती हुई पाई गई।

5—उन समूहो मे जिनके लिए दोनो सकृत्यो के उद्दीपक घटक तो सर्वसम किन्तु प्रतिक्रिया घटक एक दूसरे से भिन्न थे, प्रशिक्षण के बाद निपेधात्मक अन्तरण पाया गया।

यद्यपि कि पचम दशा मे निपेधात्मक अन्तरण पाया गया, किन्तु उसकी मात्रा लगभग नगण्य थी। वस्तुत प्रयोगशाला मे निपेधात्मक अन्तरण पाना दुष्कर है। कारण यह है कि उ०$_1$ प्र०$_2$—उ०$_1$ प्र०$_2$ की दशा मे अभिकल्प निपेधात्मक अन्तरण का है, किन्तु प्रथम सकृत्य पर प्रशिक्षण के कारण अविशिष्ट विधेयात्मक (स्फूर्ति-प्रभाव) अन्तरण के कारण निपेधात्मक अन्तरण की प्रवृति या तो नष्ट हो जाती है या क्षीण हो जाती है। निपेधात्मक अन्तरण पाने के लिए गैग्नी, बेकर तथा फोस्टर (1950) ने एक नई विधा की ओर सकेत किया है। उन्होने बताया कि निपेधात्मक अन्तरण प्राप्त करने के लिए परीक्षण सकृत्य मे प्रशिक्षण सकृत्य के ही उद्दीपक और प्रतिक्रियाएँ हो किन्तु उनका प्रतिरूप परिवर्तित कर देना चाहिए। उदाहरण के लिए, मान लीजिये कि प्रशिक्षण सकृत्य मे उ०-प्र० की व्यवस्था क-ख, च-छ, ट-ठ इत्यादि हैं। परीक्षण सकृत्य मे इनको क-ठ, च-ख, ट-छ इत्यादि किया जा सकता है। पोर्टर और डन्कन (1953) ने इस रीति से प्रयोग कर पाया कि निपेधात्मक अन्तरण बडी मात्रा मे प्राप्त होता है।

समानता सम्बन्ध और अन्तरण प्रवणता[1]—गत विवेचन से स्पष्ट है कि एक सकृत्य के अधिगम का दूसरे सकृत्य के अधिगम मे अन्तरण दोनो सकृत्यो की पारस्परिक समानता पर निर्भर करता है। पहले भी सकेत किया जा चुका है कि दोनो सकृत्यो के बीच समानता एक घटक मे अथवा दोनो घटको मे हो सकती है। दोनो सकृत्यो के बीच समानता की मात्रा सर्वसमता से लेकर परस्पर विरोध की अन्तिम सीमा तक हो सकता है। दोनो सकृत्यो के बीच की समानता की मात्रा पर ही अन्तरण की मात्रा आश्रित है। तात्पर्य यह कि यदि दोनो सकृत्यो मे पूर्ण सर्वसमता है तो शत प्रतिशत विधेयात्मक अन्तरण होगा। दूसरी ओर यदि एक सकृत्य के दोनो घटक दूसरे सकृत्य घटको के विरोधी है तो अधिकतम मात्रा मे निपेधात्मक अन्तरण होगा। इस प्रकार अन्तरण की मात्रा बढती हुई समानता का क्रमश बढता हुआ प्रकार्य है। दूसरे शब्दो मे अन्तरण एक प्रवणता प्रकार्य है। यहाँ, अन्तरण और सामान्यीकरण का सम्बन्ध स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रहा है। हमने सप्तम अध्याय

1 Gradient of transfer

मे देखा है कि अनुबन्धन मे सामान्यीकरण की मात्रा अ० उ० तथा नवीन उद्दीपक की पारस्परिक समानता का प्रकार्य है। इस प्रकार, सामान्यीकरण और अन्तरण मे गहरा सम्बन्ध है और दोनो एक ही प्रकार के प्रकार्य हैं। दोनो के मापन मे समान विधि का भी उपयोग किया जाता है। सामन्यीकरण मापन मे भी प्रयोग की दो अनुक्रमिक दशा होती है और अन्तरण मापन मे भी। प्रथम मे एक उद्दीपक के साथ किसी प्रतिक्रिया को अनुबन्धित कर देखा जाता है कि उसी के समान दूसरा उद्दीपक अनुबन्धित प्रतिक्रिया को किस मात्रा मे उद्दीप्त करता है। अन्तरण मापन मे भी पहले एक सकृत्य का अधिगम कराया जाता है और फिर दूसरे सकृत्य का। अन्तरण प्रयोग मे सामान्यीकरण प्रयोगो की तरह दो सकृत्यो की पारस्परिक समानता का ह्रस्वादिप्रयोग कर अन्तरण की मात्रा का विचलन मापनीय है। इस दिशा मे प्रथम प्रायोगिक माप युम (1931) ने किया।

युम ने अपने प्रथम प्रयोग मे ऐसे युग्मित सहचर सूचियो को प्रयोज्यो से स्मृतिगत कराया जिनमे 14 युग्मित सहचर थे और प्रत्येक सहचर का उद्दीपक घटक एक निरर्थक पद और प्रतिक्रिया घटक एक अंग्रेजी भाषा का शब्द था। प्रयोज्यो ने सूची का एक त्रुटिहीन मापदण्ड तक सस्वर पाठ करना सीखा। परीक्षण सूची 24 घण्टे बाद अन्तरण परीक्षण के लिए प्रस्तुत की गई। इस सूची मे 7 प्रकार के उद्दीपक घटक थे। प्रत्येक प्रकार के उद्दीपक घटक के दो उदाहरण सूची मे सम्मिलित किये गये थे। परीक्षण सूची प्रशिक्षण सूची मे क्रमिक परिवर्तन कर अधोलिखित रूप मे ली गई थी।

परिवर्तित युग्मित सहचर	सख्या
1 प्रथम सूची मे ज्यो का त्यो	2
2 उद्दीपक घटक का प्रथम अक्षर भिन्न	2
3 उद्दीपक घटक का द्वितीय अक्षर भिन्न	2
4 उद्दीपक घटक के दो प्रथम अक्षर भिन्न	2
5 प्रतिक्रिया घटक का प्रथम अक्षर भिन्न	2
6 प्रतिक्रिया घटक का द्वितीय अक्षर भिन्न	2
7 प्रतिक्रिया घटक के प्रथम दो अक्षर भिन्न	2

गया। प्रदत्तो से ज्ञात हुआ कि परीक्षण सूची मे समानता की न्यूनता के साथ अन्तरण मे न्यूनता आती है। तीसरे प्रयोग मे उद्दीपक घटक निरर्थक आकृतियाँ और प्रतिक्रिया घटक सार्थक शब्द थे। मूल आकृतियो के साथ अन्य परिवर्तित आकृतियाँ ली गईं। ये परिवर्तित आकृतियाँ अत्यन्त समान, समान, कम समान अथवा भिन्न थी। पुन प्रथम प्रकार के ही परिणाम पाये गये।

ब्राउन, जेन्किन्स तथा लाविक (1966) ने अन्तरण प्रयोग की एक नई प्रक्रिया का उपयोग कर इस सामान्यीकरण की पुष्टि की है कि अन्तरण की मात्रा दो सकृत्यो की समानता पर आश्रित है। इन लोगो ने अपने प्रयोज्यो को अग्रेजी शब्दो को उद्दीपक घटक और निरर्थक पदो को प्रतिक्रिया घटक के रूप मे लेकर 9 युग्मित सहचरो की सूची 10 प्रयास तक पूर्वाभास तथा अनुबोधन विधि द्वारा स्मृतिगत कराई गई। 11वें से लेकर 19वे प्रयास तक चार नए उद्दीपक घटक प्रस्तुत किये गये और प्रयोज्यो को उनके प्रति सही प्रतिक्रिया का पूर्वाभास करना पडा। ऐसे प्रयासो पर किसी प्रकार की प्रतिपूर्ति अथवा अनुबोधन नही दिया गया। चार नए उद्दीपक घटक इस प्रकार चुने गये थे कि मूल उद्दीपक घटको के साथ उनके प्रतिक्रिया रूप मे आने की सभावना क्रमश बिल्कुल नही, न्यूनतम, मध्यम तथा अधिक थी। प्राप्त परिणामो से ज्ञात हुआ कि अन्तरण की मात्रा उतनी ही अधिक हुई जितना कि मूल और परिवर्तित उद्दीपक घटको के बीच साहचर्यपरक सम्बन्ध था।

अब तक के विवेचन मे अन्तरण को सामान्यीकरण के परिप्रेक्ष्य मे समझने के लिए जिन प्रयोगो का वर्णन किया गया है उनमे मुख्यत उद्दीपक समानता का ही हस्तादि प्रयोग कर अन्तरण प्रवणता की पुष्टि की गई है। अन्तरण प्रवणता मे दोनो सकृत्यो के प्रतिक्रिया-घटको मे समानता के आधार पर भी पुष्टि हुई है। आसगुड (1953) ने इस दिशा मे महत्वपूर्ण कार्य किया है। प्रतिक्रिया सामान्यीकरण के आधार पर अन्तरण प्रवणता की व्याख्या और उसके लिए प्रायोगिक साक्ष्य उसने शब्दो के अर्थ सम्बन्धी समानता के आधार पर किया है। उसके अनुसार प्रत्येक शब्द एक प्रतीक है जो अनेक मध्यवर्ती प्रतिक्रियाओ को उद्दीप्त करता है। इन प्रतिक्रियाओ को वह अर्थ-प्रतिक्रिया[1] की सज्ञा देता है। इन अर्थ-प्रतिक्रियाओ से आन्तरिक उद्दीपक सकेतो की उत्पत्ति होती है जिससे मुखर प्रतिक्रियाएँ उद्दीप्त होती है। उदाहरण के लिए, कमल शब्द को लिया जाय। इस शब्द के उपस्थित होने पर अनेक मध्यवर्ती क्रियाएँ (अर्थ, साहचर्य, भाव अथवा विचार) उत्पन्न होते हैं जो उद्दीपक सकेत के रूप मे लाल गुलाब, फूल, तालाब, पूजा इत्यादि शब्द प्रतिक्रिया उत्पन्न कर सकते है। उसने आगे बताया कि युग्मित सहचर अधिगम जैसे सकृत्य मे प्रति प्रयास पर पुनर्बलन के कारण दो सहचरो के बीच उत्तेजक वृत्ति[2] प्रबलतर और उद्दीपक घटक के प्रति अन्य साहचर्यों की अवरोधक[3] वृत्ति प्रबलतर होती है। फलत उद्दीपक

---

1 Meaning reaction 2 Excitatory tendency 3 Inhibitory

घटक उपस्थित होने पर सूची मे सम्मिलित प्रतिक्रिया घटक के उद्दीप्त होने की सभावना प्रवल हो जाती है तथा उस प्रतिक्रिया के विपरीत प्रतिक्रिया के घटने की सभावना अवरोधक वृत्ति की प्रवलता के कारण क्षीण हो जाती है। यह हम जानते ही हैं कि इन दोनो वृत्तियो का सामान्यीकरण होता है (अनुवधन सवधी अध्याय देखे)। अत एक प्रतिक्रिया का दूसरी प्रतिक्रिया पर कैसा और कितना अन्तरण होगा, इस पर निर्भर करता है कि परीक्षण सूची मे सम्मिलित प्रतिक्रिया मूल सूची की प्रतिक्रिया के समान है अथवा उसके विपरीत। इस निष्कर्ष के लिए प्रायोगिक साक्ष्य आसगुड ने अपने दो प्रयोगो से प्राप्त किया है। एक प्रयोग मे उसने (1946) 15 युग्मित सहचरो की सूचियो का उपयोग किया। दूसरी सूची के प्रतिक्रिया घटक इस प्रकार रखे गये थे कि पहली सूची की कुछ प्रतिक्रियाओ के समान, कुछ के विपरीत और से असवद्ध थे। पहली सूची के एक त्रुटिहीन पूर्वाभास के वाद दूसरी सूची अधिगम करने के लिए दी गई। दूसरी सूची को इस प्रकार निर्मित किया गया था कि प्रत्येक युग्मित सहचर के तीनो समानता सम्वन्ध वरावर सख्या मे थे। प्राप्त परिणामो से ज्ञात हुआ कि समानता सम्वन्ध वाले युग्मित सहचर अन्य दोनो प्रकार के सहचरो की तुलना मे अधिक शीघ्रता से अधिगत हुये, किन्तु शेप दो के अधिगम मे अन्तर नही आया। अपने दूसरे प्रयोग मे आसगुड (1948) ने 14 युग्मित सहचरो की सूचियाँ पहले की तरह निर्मित कर अधिगम और अन्तरण के लिए ली। दो सूचियो के आधे प्रतिक्रिया घटक समान और एक-दूसरे के विपरीत थे। पहली सूची को प्रयोज्यो ने एक त्रुटिहीन पूर्वाभास के मानदण्ड तक अधिगत किया। दूसरी सूची को 1, 2, 4, अथवा 8 प्रयास तक अधिगत कराने का प्रयास कराया गया। पाया गया कि दूसरी सूची मे समान प्रतिक्रियाओ का प्रतिक्रिया-काल विपरीत प्रतिक्रियाओ की तुलना मे कम था। इससे इस परिकल्पना की पुष्टि हुई कि असमान प्रतिक्रिया की स्थिति मे निपेधात्मक और समान प्रतिक्रिया का विधेयात्मक अन्तरण प्रतिक्रिया सामान्यीकरण के आधार पर होता है।

उ०-प्र० विश्लेपण तथा सामान्यीकरण के सदर्भ मे किये गये प्रयागो से प्राप्त प्रदत्तो के आधार पर आसगुड ने अन्तरण के लिए तीन आनुभविक[1] नियमो की स्थापना की है—(1) जव सकृत्यो के प्रतिक्रिया घटक अपरिवर्तित किन्तु उद्दीपको को समानता के आधार विचलित किया जाय तो उद्दीपको मे समानता की वृद्धि के विधेयात्मक अन्तरण मे वृद्धि और समानता के घटने से उसमे न्यूनता होती है। (2) जव सकृत्यो के उद्दीपक घटक अपरिवर्तित किन्तु प्रतिक्रिया घटक को क्रमवद्ध रीति से विचलित किया जाय तो प्रतिक्रियाओ मे समानता की न्यूनता के साथ निपेधात्मक अन्तरण की उत्पत्ति होती है। (3) जव दोनो उद्दीपक और प्रतिक्रिया, घटको को सहसामयिक रीति से एक साथ विचलित किया जाता है तव निपेधात्मक अन्तरण की उत्पत्ति होती है।

1 Empirical

आसगुड के इन नियमो मे तीसरे नियम की प्रायोगिक पुष्टि नही हो पायी है। इस नियम की वैधता के परीक्षण हेतु बुगेरस्की तथा काल्डवाटर (1956) ने एक प्रयोग किया। इन लोगो ने परीक्षण सूची मे सवसम, समान, तटस्थ तथा विरोधी प्रतिक्रिया घटको को सम्मिलित किया। वाइमर (1964) ने इसी उद्देश्य से अपने प्रयोग की परीक्षण सूची मे सर्वसम, समान, तटस्थ, विरोधी तथा विलोमी प्रतिक्रिया घटको का उपयोग किया। इन दोनो प्रयोगो मे निपेधात्मक अन्तरण की नियमानुसार प्रत्याशित प्रवणता प्राप्त नही हुई। फलत मनोवैज्ञानिको ने अन्तरण मे सन्निहित उ० प्र० अधिगम की गहराई मे जाकर इसका विवेचन और प्रायोगिक परीक्षण करने का प्रयत्न किया है।

विशिष्ट-अन्तरण के घटक—कौन से विशिष्ट घटक वस्तुत विशिष्ट-अन्तरण की मात्रा और दिशा को निर्धारित करते है, एक जटिल प्रश्न वन गया है। इस प्रश्न

सारणी सख्या 11 1

अन्तरण प्रयोगो की विभिन्न दशाओ मे अन्तरण

प्रयोग दशा	प्रशिक्षण सकृत्य	अन्तरण सकृत्य	सक्रिय घटक	अन्तरण दिशा
1—उ०$_1$ प्र०$_1$-उ०$_1$-प्र०$_2$	अश्व अरव	अश्व-सागर	अग्रोन्मुख साहचर्य	निपेधात्मक
2—उ०$_1$-प्र०$_1$-उ०$_2$-प्र०$_1$	अश्व-अरव	सागर-अरव	पृष्ठोन्मुख साहचर्य प्रतिक्रियाघटक	निपेधात्मक विधेयात्मक
3—उ०$_1$-प्र०$_1$-उ०$_1$-प्र०$^1_1$	अश्व अरव	अश्व-अमेरिका	अग्रोन्मुखसाहचर्य पृष्ठोन्मुखसाहचर्य प्रतिक्रियाअधिगम	विधेयात्मक विधेयात्मक विधेयात्मक
4 उ०$_1$-प्र०$_1$-उ०$_1^2$-प्र०$_1$	अश्व-अरव	गदभ-अरव	अग्रोन्मुखसाहचर्य पृष्ठोन्मुखसाहचर्य प्रतिक्रियाअधिगम	विधेयात्मक विधेयात्मक विधेयात्मक
5-उ०$_1$-प्र०$_1$-उ०$_1$-प्र०$_1^3$ पु०	अश्व अरव	—अश्व-पर्वत गज-पर्वत—गज-अरव	अग्रोन्मुखसाहचर्य पृष्ठोन्मुखसाहचर्य प्रतिक्रियाअधिगम	निपेधात्मक निपेधात्मक विधेयात्मक

का विश्लेपण मार्टिन (1965, 1968), यूंग (1968), शेल्डरगार्ड (1968) तथा अन्डरवुड (1966) ने किया है। आज यह सामान्यत स्वीकार किया जाता है कि किसी सकृत्य (जैसे युग्मित सहचर सूची) के अधिगम मे प्रयोज्य तीन प्रक्रमो को अधिगत करता है, वे हैं प्रतिक्रिया अधिगम, अग्रोन्मुख साहचर्य (उ० प्र०)

तथा पृष्ठोन्मुग साहचर्य (उ० प्र०)। इनके अतिरिक्त यह भी सामान्यत स्वीकारा जाता है कि प्रयोज्य उद्दीपक चयन[1] तथा उद्दीपक पद का सामान्य संकेतन[2] भी अधिगम करता है। ऐसा अधिगम दो अवस्थाओ मे होता है। प्रथम अवस्था मे प्रयोज्य प्रतिक्रिया अधिगम करता है। तात्पर्य यह है कि वह सकृत्य मे सन्निहित प्रतिक्रियाओ को करना सीखता है। यदि दूसरे सकृत्य मे प्रथम सकृत्य के ही प्रतिक्रिया पद है तब हम विधेयात्मक अन्तरण की प्रत्याशा कर सकते है। दूसरी अवस्था साहचर्य अधिगम की होती है जिसमे प्रयोज्य उ० को प्र० के साथ सम्बन्धित करना अधिगत करता है। यह अधिगम द्विमुखी[3] होता है। इसमे साहचर्य मात्र उ० से प्र० के ही बीच नही अपितु प्र० से उ० के बीच भी स्थापित होता है। इन्ही दो अवस्थाओ मे प्रयोज्य उद्दीपक चयन तथा उद्दीपक संकेतन भी अधिगम करता है। इस विश्लेषण के आधार पर अन्तरण प्रयोगो की विविध दशाओ मे अन्तरण की मात्रा तथा उसकी दिशा के सम्बन्ध मे जो प्रत्याशाएँ की जा सकती है वे सारणी 11 1 मे अंकित हैं। इस विश्लेषण से स्पष्ट है कि निषेधात्मक अन्तरण की बहुत कम दशाएँ होती है।

अधिगम व्यवस्था

समायोजन की दृष्टि से महत्वपूर्ण प्राय सभी मानव व्यवहार अधिगम द्वारा अर्जित किये जाते है फलत अधिगम प्रक्रिया का सुविधापूर्ण घटित होना समायोजन के हित मे नितान्त आवश्यक है। अधिगम के विविध पक्षो के अध्ययनो से अनेक ऐसे तथ्यो तथा नियमो का उद्घाटन हो सका है जिनके विनियोग से अधिगम की सहज उपलब्धि सभव है। अधिगम प्रबन्ध का तात्पर्य अधिगम प्रक्रिया के निर्धारको के उपयुक्त सयोजन से है जिसके द्वारा अधिगम सुचारु रूप से सम्पन्न हो सकता है। इसके अन्तर्गत अधिगम के दो मूल पक्षो अधिगम सामग्री का उपयोग तथा अधिगम विधि, से सम्बद्ध समस्याओ को सुलझाने का यत्न किया जाता है। उदाहरणार्थ, अधिगम सामग्री का अधिगम काय मे अनेक प्रकार से उपयोग सभव है समस्त सामग्री का एक साथ या कई खण्डो मे विभाजित करके अधिगम किया जा सकता है। इसी प्रकार अधिगम काल का उपयोग सतत अभ्यास वाले एक सत्र मे भी सभव है तथा विश्राम द्वारा वितरित अनेक अभ्यास कालो के रूप मे भी किया जा सकता है। कौन सा विकल्प उचित है ? इसका ज्ञान सफल अधिगम के लिए अपरिहार्य है। अन्यथा सरल से सरल कार्य के अधिगम मे भी अधिक परिश्रम तथा समय लग सकता है जो व्यावहारिक दृष्टि से अवाछनीय है। अध्ययनो से यह निश्चित हो चुका है कि विभिन्न प्रकार के अधिगम कार्यों मे किस पद्धति का अनुसरण श्रेयस्कर होगा। प्रस्तुत अध्याय मे विविध प्रकार के अधिगम कार्यों के

---

1 Stimulus selection 2 Encoding 3 Bidirectional

परिप्रेक्ष्य मे उक्त समस्याओ के विषय मे उपलब्ध प्रायोगिक साक्ष्यो के विवेचन का प्रयास किया गया है।

सकलित तथा वितरित अधिगम

अधिकाश अधिगम कार्यों को सम्पन्न करने के लिए अनेक प्रयास अपेक्षित होते है। विशेषत कठिन कौशल वाले कार्य यथा वाद्य प्रयोग, भाषा प्रयोग आदि दीर्घकालिक अभ्यास के अभाव मे सुचारु रूप से अर्जित नही किये जा सकते। ऐसी परिस्थिति मे एक प्रमुख प्रश्न उठता है कि किस प्रकार अधिगम किया जाय कि न्यूनतम परिश्रम तथा न्यूनतम समय मे उच्चकोटि का अधिगम सम्पन्न हो। विभिन्न प्रकार के अधिगम कार्यों के सन्दर्भ मे इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने का प्रयास मनोवैज्ञानिको द्वारा किया गया है जिसमे अधिगम के सम्यक् रूप से घटित होने के विषय मे अनेक महत्वपूर्ण तथ्य उद्घटित हुये है। सामान्यत अधिगम कार्य दो भिन्न विधियो द्वारा सम्पन्न होता है —

१—**सकलित अधिगम**—इसके अन्तर्गत समस्त अधिगम एक ही सत्र मे अनवरत प्रयासो द्वारा सम्पन्न होता है।

२—**वितरित अधिगम**—इसके अन्तर्गत अधिगम विश्राम काल द्वारा वितरित प्रयासो द्वारा सम्पन्न होता है।

अधिगम विधि का उक्त विभाजन अधिगम के लिए उपलब्ध समय के सतत या विच्छिन्न प्रयोग पर आधृत है। विविध प्रकार के अधिगम कार्यों के लिए अधिगम की इन प्रमुख विधियो का उपयोग प्राचीन काल से किया जा रहा है तथा इनके उपयुक्त अनुप्रयोग के विषय मे पर्याप्त प्रायोगिक साक्ष्य भी उपलब्ध हैं। कुछ विशेष प्रकार के अधिगम कार्यों के लिए सकलित अधिगम श्रेष्ठ है जबकि अन्य कार्यों के सम्पादन मे वितरित अधिगम का ही उपयोग श्रेयस्कर है। कौन सी विधि किसी कार्य विशेष के लिए उपयुक्त है ? यह कार्य की प्रकृति (प्रकार, जटिलता आदि), प्रयोज्य के गुण तथा अधिगम दशा पर निर्भर करता है। किसी सामान्य निष्कर्ष पर पहुँचने के पूर्व इन दोनो ही विधियो के प्रभाव के विषय मे उपलब्ध साक्ष्यो का ज्ञान आवश्यक है। अत यहाँ पर सकलित तथा वितरित अधिगम के अनुबधन, प्रत्यक्षपरक पेशीय अधिगम, वाचिक अधिगम तथा चिन्तन एव सम्बोध अधिगम पर प्रभाव का उल्लेख किया जा रहा है।

वितरित तथा सकलित अधिगम के तुलनात्मक अध्ययन हेतु किये गये प्रयोगो मे अनेक प्रकार के अभिकल्पो (कैंडलैंड १९६८) का उपयोग किया गया है। उक्त विधियो के प्रभाव को समझने के लिए इन अभिकल्पो को जान लेना आवश्यक प्रतीत होता है। अत यहाँ पर कुछ प्रमुख अभिकल्पो का विवरण दिया जा रहा है। इन अभिकल्पो मे दो प्रयासो के मध्य का विश्राम काल, प्रयास सख्या तथा अधिगम सामग्री के पदो के मध्य का विश्राम काल—इन तीन परिवर्त्यों का अनाश्रित परिवर्त्यो के रूप मे अनुप्रयोग किया गया है।

सारणी सख्या 11 2

सकलित तथा वितरित अधिगम के तुलनात्मक अध्ययन मे अनुप्रयुक्त अभिकल्प

समूह	अभ्यास	विश्राम	अभ्यास	विश्राम
अभिकल्प 1 अभ्यास स्थिर— विश्राम काल परिवर्तित				
अ	प्रयान 1	×	प्रयास 2	×
ब	प्रयास 1	1 घटा	प्रयास 2	1 घटा
स	प्रयास 1	2 घटा	प्रयास 2	2 घटा
अभिकल्प 2 विश्रामकाल स्थिर—अभ्यास परिवर्तित				
अ	प्रयास 1-2	1 घटा	प्रयास 3-4	1 घटा
ब	प्रयास 1-6	1 घटा	प्रयास 7-12	1 घटा
स	प्रयास 1-9	1 घटा	प्रयास 10-18	1 घटा
अभिकल्प 3 अभ्यास तथा विश्राम काल स्थिर-सामग्री-पदो के मध्य का अतराल परिवर्तित				
अ	प्रयास 1 (दो पदो के मध्य अतराल)	10 सेकण्ड 1 घटा	प्रयास 2 (दो पदो के मध्य अतराल)	10 सेकण्ड 1 घटा
ब	प्रयास 1 ,,	20 सेकण्ड 1 घटा	प्रयास 2 ,,	20 सेकण्ड 1 घटा
स	प्रयास 1 ,,	30 सेकण्ड 1 घटा	प्रयास 2 ,,	20 सेकण्ड 1 घटा

सारणी 11 2 मे प्रदर्शित प्रथम अभिकल्प मे अभ्यास की मात्रा स्थिर है तथा (दो प्रयासो के मध्य का) विश्रामकाल परिवर्तित किया गया है । तीन भिन्न समूहो को क्रमश शून्य, एक घण्टा तथा दो घण्टो का विश्राम दिया गया है तथा प्रयास सख्या स्थिर है। इन समूहो के कार्य की तुलना से विश्राम के प्रभाव का ज्ञान सभव है। इसी प्रकार द्वितीय अभिकल्प द्वारा अभ्यासकाल परिवनित कर तथा विश्रामकाल को स्थिर करके वितरित अधिगम का अध्ययन किया जा सकता है। तृतीय अभिकल्प मे प्रयास तथा विश्रामकाल दोनो ही स्थिर हैं किन्तु अधिगम सामग्री के पदो या अवयवो को सतत क्रम मे न उपस्थित कर कुछ समय के अन्तर पर उपस्थित किया गया है। यह भी विश्राम का एक विशेप प्रकार है तथा इसकी सहायता से वितरित अधिगम के प्रभाव का अध्ययन सभव है। अब हम विविध क्षेत्रो मे वितरित तथा सकलित अधिगम के प्रभाव का अध्ययन करेंगे।

संकलित तथा वितरित अधिगम का प्रभाव

(1) **अनुबन्धन**—अनुबन्धन अधिगम का सरलतम रूप है तथा इसके अर्जन एव विच्छेदन का पर्याप्त प्रायोगिक अध्ययन भी किया गया है। इन अध्ययनो से सकलित तथा वितरित अधिगम के प्रभाव के विपय मे महत्वपूर्ण तथ्य प्राप्त हुए हैं।

प्राय सभी अध्ययन इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि अनुबधन का अर्जन वितरित विधि से तथा विच्छेदन सकलित विधि से शीघ्र सम्पन्न होता है । यहा पर कुछ प्रमुख प्रायोगिक अध्ययनो का उल्लेख अप्रासगिक नही होगा । हिल्गार्ड तथा मार्क्विस(1940)ने अनुबधन के पर्यालोचन मे पावलाव के आरभिक प्रयोगो का उल्लेख किया है । इन प्रयोगो मे वितरित अधिगम अनुबधन की स्थापना मे अधिक उपयुक्त सिद्ध हुआ था । अधिक जटिल प्रकार के अनुबधन मे 24 घटे के अतराल पर प्रयास दिये गये थे । मनुष्यो मे पलक की अनुक्रिया के विद्युदाघात पर आधृत अनुबधन के एक अध्ययन मे काल्विन (1939) ने तीन प्रकार के प्रयास वितरण का अध्ययन किया । प्रयास की मात्रा तीन प्रकार की थी—3 प्रयास प्रति मिनट, 9 प्रयास प्रति मिनट, तथा 18 प्रयास प्रति मिनट । प्रथम अवस्था मे दो प्रयासो के मध्य 20 सेकण्ड का अतराल था तथा अन्य अवस्थाओ मे यह अतराल बहुत कम था । प्रयोग के परिणाम चित्र सख्या 11 1 मे प्रदर्शित है

चित्र सख्या 11 1

[अनुबन्धन के अर्जन पर सकलित तथा वितरित अधिगम का प्रभाव
(काल्विन, 1939)]

चित्र स० 11 1 प्रदर्शित वक्रो से स्पष्ट है कि प्रथम दशा (3 प्रयास प्रति मिनट) अन्य दशाओ से श्रेष्ठ है । यह परिणाम यह व्यक्त करता है कि अनुबधन, वितरित अधिगम द्वारा शीघ्र अर्जित होता है । पशुओ पर किये गये प्रयोगो द्वारा भी इसी परिणाम की पुष्टि हुई है । यथा श्लासबर्ग (1934) ने चूहो की श्वांस-

प्रक्रिया को विद्युदाघात द्वारा अनुबंधित किया। वितरित तथा सकलित अधिगम के प्रभावों के अध्ययन हेतु एक परिस्थिति में 25 अनुबंधन प्रयास प्रतिदिन दिये गये। दूसरी प्रायोगिक दशा में अनवरत 96 प्रयास दिये गये। परिणाम यह प्राप्त हुआ कि वितरित अवस्था में अनुबंधन शीघ्र हुआ। इन प्रयोगों द्वारा यह स्पष्ट है कि अनुबंधन की स्थापना वितरित अधिगम द्वारा शीघ्र सम्पन्न होती है।

अनुबंधन के विच्छेदन के सन्दर्भ में सकलित तथा वितरित अभ्यास के प्रभाव का अन्वेषण किया गया है जिससे यह ज्ञात हुआ है कि विच्छेदन सकलित अधिगम द्वारा शीघ्र सम्पन्न होता है। रीनाल्ड्स (1945) ने एक प्रयोग में एक श्रव्य
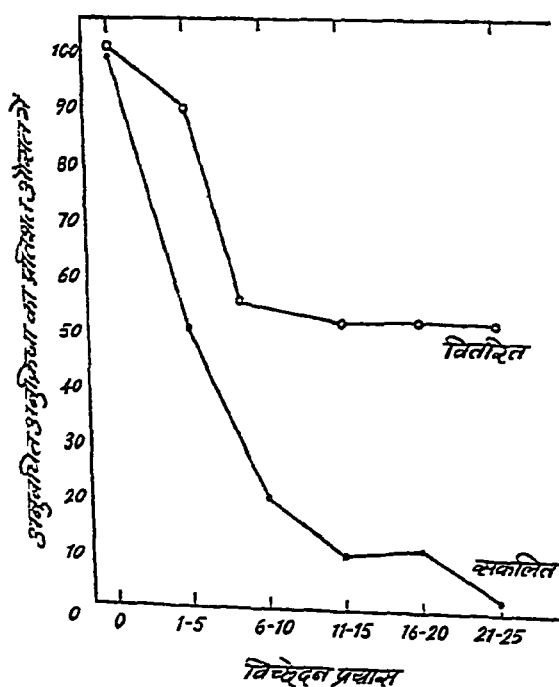
चित्र संख्या 11 2

[अनुबन्धन के विच्छेदन पर सकलित तथा वितरित अधिगम का प्रभाव (रीनाल्ड्स 1945)]

अनुबंधित उत्तेजक तथा वायु-झोका[1] के अनुबंधित उत्तेजक की सहायता से अनुबंधित उत्तेजक के निकटस्थ पलक अनुक्रिया का अनुबंधन किया। एक प्रयोगिक दशा में अनुबंधित तथा अननुबंधित उत्तेजकों के मध्य के अन्तराल की अवधि

1 Airpuff

प्राय सभी अध्ययन इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि अनुवधन का अर्जन वितरित विधि से तथा विच्छेदन सकलित विधि से शीघ्र सम्पन्न होता है । यहा पर कुछ प्रमुख प्रायोगिक अध्ययनो का उल्लेख अप्रासंगिक नही होगा । हिल्गार्ड तथा मार्किवस(1940)ने अनुवधन के पर्यालोचन मे पावलाव के आरम्भिक प्रयोगो का उल्लेख किया है । इन प्रयोगो मे वितरित अधिगम अनुवधन की स्थापना मे अधिक उपयुक्त सिद्ध हुआ था । अधिक जटिल प्रकार के अनुवधन मे 24 घटे के अतराल पर प्रयास दिये गये थे । मनुष्यो मे पलक की अनुक्रिया के विद्युदाघात पर आधृत अनुबधन के एक अध्ययन मे काल्विन (1939) ने तीन प्रकार के प्रयास वितरण का अध्ययन किया । प्रयास की मात्रा तीन प्रकार की थी—3 प्रयास प्रति मिनट, 9 प्रयास प्रति मिनट, तथा 18 प्रयास प्रति मिनट । प्रथम अवस्था मे दो प्रयासो के मध्य 20 सेकण्ड का अतराल था तथा अन्य अवस्थाओ मे यह अतराल बहुत कम था । प्रयोग के परिणाम चित्र सख्या 11 1 मे प्रदर्शित है

चित्र सख्या 11 1

[अनुवन्धन के अर्जन पर सकलित तथा वितरित अधिगम का प्रभाव
(काल्विन, 1939)]

चित्र स० 11 1 प्रदर्शित वक्रो से स्पष्ट है कि प्रथम दशा (3 प्रयास प्रति मिनट) अन्य दशाओ से श्रेष्ठ है । यह परिणाम यह व्यक्त करता है कि अनुवधन, वितरित अधिगम द्वारा शीघ्र अर्जित होता है । पशुओ पर किये गये प्रयोगो द्वारा भी इसी परिणाम की पुष्टि हुई है । यथा श्लासवर्ग (1934) ने चूहो की श्वांस-

प्रक्रिया को विद्युदाघात द्वारा अनुबधित किया। वितरित तथा सकलित अधिगम के प्रयासों के अध्ययन हेतु एक परिस्थिति मे 25 अनुबधन प्रयास प्रतिदिन दिये गये। दूसरी प्रायोगिक दशा मे अनवरत 96 प्रयास दिये गये। परिणाम यह प्राप्त हुआ कि वितरित अवस्था मे अनुबधन शीघ्र हुआ। इन प्रयोगो द्वारा यह स्पष्ट है कि अनुबधन की स्थापना वितरित अधिगम द्वारा शीघ्र सम्पन्न होती है।

अनुबधन के विच्छेदन के सन्दर्भ मे सकलित तथा वितरित अभ्यास के प्रभाव का अन्वेषण किया गया है जिससे यह ज्ञात हुआ है कि विच्छेदन सकलित अधिगम द्वारा शीघ्र सम्पन्न होना है। रीनाल्ड्स (1945) ने एक प्रयोग मे एक श्रव्य

चित्र सख्या 11 2

[अनुबन्धन के विच्छेदन पर सकलित तथा वितरित अधिगम का प्रभाव (रीनाल्ड्स 1945)]

अनुबधित उत्तेजक तथा वायु-झोका[1] के अनुबधित उत्तेजक की सहायता से अनुबधित उत्तेजक के निकटस्थ पलक अनुक्रिया का अनुबधन किया। एक प्रायोगिक दशा मे अनुबधित तथा अननुबधित उत्तेजको के मध्य के अन्तराल की अवधि

1 Airpuff

450 मिली सेकण्ड थी तथा दो प्रयासो के मध्य का अन्तराल 1-2 मिनट था। यह वितरित अधिगम की दशा थी। सकलित अधिगम की दशा मे दो प्रयासो के मध्य का अन्तराल 10 से लेकर 20 सेकण्ड था। प्रयोग के परिणाम निम्नाकित चित्र सख्या 11 2 मे प्रदर्शित है।

चित्र स० 11 2 से स्पष्ट है कि विच्छेदन की प्रक्रिया सकलित अधिगम की दशा मे शीघ्र सम्पन्न होती है। इसी प्रकार का परिणाम रोहरर (1947) ने भी प्राप्त किया। इस अध्ययन मे सकलित अभ्यास की दशा मे प्रयासो के मध्य 10 सेकण्ड का अतराल था। इसके विपरीत वितरित अभ्यास की दशा मे यह अन्तराल 90 सेकण्ड का था। प्रयोग परिणामो से ज्ञात हुआ कि आदत शक्ति क्षीण रहने पर वितरित तथा सकलित दोनो ही अवस्थाओ मे विच्छेदन समान रूप से सम्पन्न हुआ। किन्तु जब आदत शक्ति प्रबल थी तब अनुबन्धन के विच्छेदन मे सकलित विधि अधिक श्रेष्ठ सिद्ध हुई।

ऊपर चर्चित प्रायोगिक अध्ययनो के आधार पर यह निष्कर्ष उचित प्रतीत होता है कि अनुबन्धन की स्थापना वितरित अधिगम द्वारा सहजता से सभव है तथा अनुबन्धन का विच्छेदन सकलित अधिगम द्वारा शीघ्र सम्पन्न होता है।

(2) **प्रत्यक्षपरक पेशीय अधिगम**—प्रत्यक्षपरक पेशीय व्यवहार का तात्पर्य चाक्षुष प्रत्यक्ष द्वारा निर्देशित तथा गति की सवेदना के सहयोग से हाथ एव उगलियो द्वारा सम्पन्न होने वाले विविध कार्यों से है। इस प्रकार के व्यवहार का समायोजन
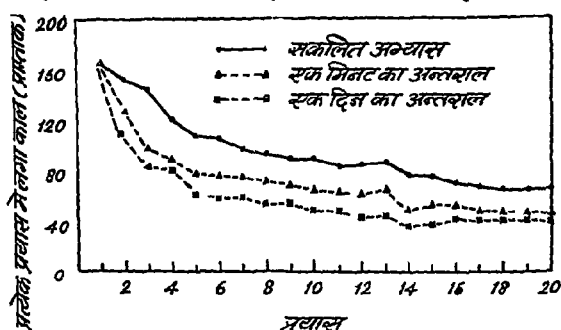
चित्र सख्या 11 3

[प्रत्यक्षपरक पेशीय अधिगम पर वितरित तथा सकलित अधिगम का प्रभाव (लार्ज, 1930)]

की दृष्टि से बडा महत्व है। फलत मनोवैज्ञानिको ने प्रयोगशाला मे इस प्रकार के व्यवहार के वेग, परिशुद्धता तथा स्थैर्य आदि पक्षो का व्यापक अध्ययन किया है। इन क्रियाओ का अर्जन अभ्यास के वितरण पर प्रमुख रूप से निर्भर करता है। यहाँ पर कुछ प्रायोगिक अध्ययनो का उल्लेख किया जा रहा है जिनमे सकलित

तथा वितरित अभ्यास के प्रभाव का अन्वेषण किया गया है । लार्ज (1930) ने एक प्रयोग मे दर्पण चित्राकन, दर्पण लेखन आदि क्रियाओ के अधिगम का 20 सतत प्रयास, 1 मिनट का अन्तरप्रयासीय विश्राम तथा 1 दिन के विश्राम की अवस्थाओ मे अध्ययन किया । प्रयोग के परिणाम चित्र सख्या 11 3 मे प्रदर्शित हैं ।

उपर्युक्त चित्र से स्पष्ट है कि अधिगम विश्राम द्वारा प्रभावित होता है। एक प्रयास के पश्चात् एक मिनट का विश्राम पाने वाले प्रयोज्यो ने सकलित प्रयास करने वाले प्रयोज्यो की अपेक्षा पर्याप्त कम समय मे अधिगम कार्य सम्पन्न किया । उक्त चित्र से यह भी स्पष्ट है कि एक मिनट तथा एक दिन के विश्राम काल के प्रभाव मे वहुत अधिक अन्तर नही है । ये परिणाम इस तथ्य की ओर सकेत करते हैं कि प्रत्यक्षपरक पेशीय क्रियाओ के अधिगम मे वितरित अभ्यास का उपयोग श्रेयस्कर है ।

एरिक्सन (1942) ने भूलभुलैया के अधिगम पर प्रयास वितरण के प्रभाव का अध्ययन किया । इस प्रयोग मे 10 चयन विन्दुओ वाली एक 'यू' प्रकार की भूलभुलैया को सीखना था । प्रयोज्यो के एक समूह ने यह कार्य एक ही समय मे सम्पन्न किया जवकि दूसरे समूह को दो प्रयास प्रतिदिन दिये गये । ये प्रयास तव तक दिये गये जव तक कि प्रयोज्यो ने दो सतत शुद्ध प्रयास मे नही सम्पन्न कर सके थे । प्रयोग के परिणाम इस प्रकार थे

अधिगम प्रकार	औसत प्रयास	औसत अशुद्धि
वितरित	14 06	35 65
सकलित	28 21	70 00

इन परिणामो से स्पष्ट है कि वितरित अधिगम की अवस्था मे, सकलित अवस्था मे अपेक्षित प्रयासो से आधे प्रयास लगे तथा अशुद्धियो की मात्रा भी सकलित अधिगम की तुलना मे आधी थी ।

किम्वल तथा शेटल (1952) ने 'परसूट रोटर' पर कार्य करने पर सकलित तथा वितरित अधिगम के प्रभाव का अध्ययन किया । वितरित समूह को 50 सेकण्ड की अवधि तक एक प्रयास मे कार्य करना था तथा दो प्रयासो के मध्य 70 सेकण्ड का विश्राम उपलब्ध था । इसके विपरीत सकलित समूह को समान अवधि तक कार्य करना था किन्तु विश्राम की अवधि 10 सेकण्ड थी । प्रयोग के परिणामों से वितरित अधिगम की श्रेष्ठता प्रमाणित हुई । एमोन्स तथा विलिंग (1956) ने अधिक लम्वी अवधि के इसी कार्य पर प्रयास-वितरण के प्रभाव का अध्ययन किया । इस अध्ययन मे सकलित अधिगम की दशा मे 10 मिनट के कार्य के उपरान्त 20 मिनट का विश्राम दिया गया तथा वितरित अधिगम मे एक मिनट कार्य करने के पश्चात् दो मिनट का विश्राम दिया गया । इस अध्ययन मे भी वितरित अधिगम सकलित अधिगम की अपेक्षा श्रेष्ठ प्रमाणित हुआ ।

वितरित, सकलित तथा मिश्रित अभ्यास का परस्पर रोटर कार्य पर प्रभाव के एक अध्ययन का वितरण किम्बल तथा गार्मजी (1968) ने दिया। तीन प्रायोगिक समूहो को तीन प्रकार का प्रयास दिया गया। प्रथम समूह को छोटे विश्रामकालो से युक्त वितरित प्रयास दिये गये। द्वितीय समूह को विना किसी प्रकार के विश्राम के सकलित प्रयास दिये गये। तृतीय समूह को पाच सकलित प्रयास देकर 5 मिनट का विश्राम दिया गया। तत्पश्चात् पुन सकलित प्रयास दिये गये। प्रयोग के परिणामो से ज्ञात हुआ कि वितरित अधिगम सवश्रेष्ठ था तथा स्वल्प विश्राम युक्त सकलित अधिगम पूर्णत सकलित अधिगम की अपेक्षा श्रेष्ठ था।

इस प्रकार उपलब्ध प्रायोगिक प्रमाण इस तथ्य की ओर सकेत करते है कि प्रत्यक्षपरक पेशीय अधिगम के लिए वितरित अभ्यास अत्यन्त उपयुक्त है।

(3) **वाचिक अधिगम**—वाचिक अधिगम मानवीय अधिगम का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथा व्यापक क्षेत्र है। इसके अन्तर्गत वाचिक सम्बन्धो के अर्जन का अध्ययन किया जाता है। वाचिक अधिगम के आरम्भिक अध्ययनो मे एविंगहास (1885) ने वितरित अभ्यास को सकलित अभ्यास की अपेक्षा श्रेष्ठ पाया। किन्तु इस पक्ष का प्रायोगिक अध्ययन जोस्ट (1897) ने किया। जोस्ट के प्रयोज्यो ने दो भिन्न अवस्थाओ मे निरथक पदो की तीस आवृत्तियाँ की। एक अवस्था मे ये आवृत्तियाँ एक ही दिन मे सम्पन्न की गयी तथा दूसरी अवस्था मे ये आवृत्तियाँ तीन दिनो मे 10 आवृत्ति प्रतिदिन की दर से वितरित करके की गयी। आवृत्तियो की समाप्ति के वाद इन समूहो को पुनराधिगम परीक्षण दिया गया। प्रयोग के परिणामो से ज्ञात हुआ कि वितरित अधिगम वाले समूह ने सकलित अधिगम वाले समूह की अपेक्षा कम प्रयासो मे ही पुनराधिगम कर लिया। जोस्ट के अनुसार पदो की सूची की आवृत्ति के समय प्रयोज्य अधिगम सामग्री के विभिन्न अवयवो के मध्य सम्बन्ध स्थापित करता है। वितरित अधिगम मे आवृत्ति द्वारा प्राचीन साहचर्य पुनरुज्जीवित होता है जबकि सकलित अधिगम मे नवीन साहचर्य स्थापित होता है। इसके फलस्वरूप वितरित अधिगम सकलिन अधिगम की अपेक्षा श्रेष्ठ होता है।

वाचिक अधिगम पर सकलित तथा वितरित अभ्यास के प्रभाव का व्यवस्थित अध्ययन हावलैड (1938) ने किया। इस अध्ययन मे निरर्थक पदो को 2 सेकण्ड तथा 4 सेकण्ड की अवधि के लिए प्रदर्शित किया गया तथा 6 सेकण्ड (सकलित) एव 2 मिनट 6 सेकण्ड (वितरित) का अन्तरप्रयासीय अतराल का उपयोग किया गया। इस प्रकार चार प्रायोगिक दशाये थी। प्रत्येक प्रयोज्य को सभी दशाओ मे दो वार कार्य करना पडता था। व्यवस्थित याद्दच्छिकीकरण द्वारा अभ्यास के प्रभाव को 8 प्रायोगिक सत्रो के लिए समीकृत किया गया। वास्तविक प्रयोग आरम्भ होने के पूव कार्य के परिचित कराने के लिए 12 निरर्थक पदो की दो सूचियाँ

प्रयोज्यो के समक्ष अधिगम हेतु उपस्थित की गयी थी। प्रायोग के परिणाम निम्नांकित चित्र मे प्रदर्शित है।
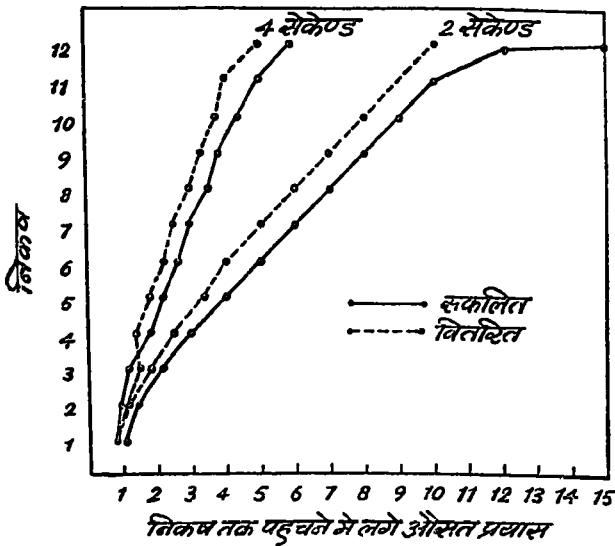
चित्र सख्या 11 4

[निरर्थक पदो के अधिगम पर सकलित तथा वितरित अधिगम का प्रभाव]
(हावलैंड 1938)

चित्र स० 11 4 के वक्रो से स्पष्ट है कि 4 सेकण्ड के प्रदर्शन काल मे 2 सेकण्ड के प्रदर्शन काल की अपेक्षा अधिक शीघ्र अधिगम हुआ तथा वितरित अधिगम दोनो ही प्रदर्शन कालो मे सकलित अधिगम की अपेक्षा श्रेष्ठ है।

हावलैंड (1940) ने एक अन्य अध्ययन मे वितरित तथा सकलित अधिगम को धारणा से भी सम्वद्ध करने का प्रयास किया तथा यह प्रमाण प्राप्त किया कि वितरित अधिगम की अवस्था मे धारणा उत्तम होती है। इस अध्ययन मे 32 प्रयोज्यो को 8 प्रायोगिक दशाओ मे 12 निरर्थक पदो की 4 सूचियाँ सीखनी थी। चार प्रायोगिक दशाओ मे इन सूचियो को सकलित अभ्यास द्वारा सीखना था। शेष चार प्रायोगिक दशाओ मे सूचियो को वितरित अभ्यास द्वारा सीखना था। अधिगम के पश्चात् 6 सेकण्ड, 2 मिनट, 10 मिनट तथा 24 घण्टो के अन्तरालो पर धारणा की परीक्षा की गयी तथा पुन पूर्णत शुद्ध स्मरण के स्तर तक अधिगम कराया गया। सकलित अधिकगम समूहो के प्रयोज्यो ने पुनराधिगम मे 14 5 औसत प्रयास लगाये तथा वितरित अधिगम समूहो के प्रयोज्यो ने 9 5 औसत प्रयास लगाये। पुनराधिगम के पूव प्राप्त प्रत्यावाहन प्रदत्तो से भी यह ज्ञात हुआ कि वितरित अधिगम की अवस्था मे अधिक शुद्ध प्रत्यावाहन होता है। इन परिणामो के आधार पर हावलैंड ने यह निष्कर्ष निकाला कि सकलित अधिगम की अवस्था मे अधिक प्रयासो की उपेक्षा होती है तथा विस्मरण भी अधिक होता है।

विल्सन (1948) ने 16 द्विपदीय विशेषणो की सूची के अधिगम मे यह परिणाम प्राप्त किया कि 30 सेकण्ड या 1 मिनट के अन्तरप्रयासीय विश्राम द्वारा वितरित अधिगम सकलित अधिगम की तुलना मे श्रेष्ठ है। किन्तु सैंडहल (1948) के प्रदत्त इस परिणाम के विरुद्ध हैं। सैंडहल ने क्रमिक विशेषण की सूचियाँ याद कराईं। प्रत्येक सूची मे अत्यधिक समानार्थी 6 विशेषण युग्म थे। इस प्रकार प्रत्येक सूची मे 12 पद थे। अत्यधिक समानता का प्रयोग अधिगमकाल मे अधिक अशुद्धि घटित होने के लिए किया गया क्योकि प्रायोगिक परिणामो से स्पष्ट है कि सूची के मध्य अधिक अवरोध होने पर वितरण का प्रभाव अधिक होता है। सैंडहल के परिणाम वितरित अधिगम का लाभप्रद प्रभाव नही घोषित करते। ऐसा प्रतीत होता है कि समानार्थी विशेषण द्वारा इतनी अधिक मात्रा मे अवरोध उत्पन्न हुआ है कि वितरण का प्रभाव अन्तर्हित हो गया हो।

अडरवुड तथा शुल्ज (1960) ने वाचिक अधिगम के दो चरण बताये है। प्रथम चरण मे अनुक्रियाओ को 'अनुक्रिया के रूप मे अर्जित किया जाता है अर्थात् एक अनुक्रिया शब्द अन्य शब्दो से भिन्न किया जाता है। यह सीखा जाता है कि 'शब्द' अधिगम सामग्री का अग है। दूसरे चरण मे, शब्द को अन्य उत्तेजक के साथ सम्बद्ध किया जाता है। अडरवुड (1961) के मत मे जब अत्यन्त समान पदो से उत्पन्न अवरोध प्रथम चरण मे होता है तब वितरित विधि के उपयोग से अधिगम मे सरलता हो सकती है।

अभ्यास वितरण के प्रभाव का अध्ययन केप्पेल (1964) ने द्विपदीय अधिगम मे किया। यह अध्ययन पर्याप्त जटिल था। अत मात्र दो प्रासगिक प्रायोगिक दशाओ मे प्राप्त किये गये परिणामो की ही चर्चा की जायेगी। दोनो ही दशाओ मे प्रयोज्यो ने 4 सक्रमिक सूचियो का अधिगम किया। इन सूचियो मे उत्तेजक एकरूप थे तथा प्रतिक्रियाये भिन्न-भिन्न थी। इसके उपरान्त प्रयोज्यो को 1 से 8 दिन तक के अन्तरालो के पश्चात् धारणा परीक्षण दिया गया। अधिगम कार्य दो प्रकार से किया गया। प्रथम अवस्था मे प्रयोज्यो ने 8 प्रयास एक ही दिन किये जबकि द्वितीय अवस्था मे 2 प्रयास प्रतिदिन किये गये। स्पष्ट ही प्रथम अवस्था सकलित अधिगम की थी तथा दूसरी अवस्था वितरित अधिगम की थी। प्रयोग के परिणामो से ज्ञात हुआ कि एक दिन के धारणा काल की अवस्था मे वितरित अधिगम के पश्चात् प्रत्यावाहन सकलित अवस्था मे किये गये प्रत्यावाहन से 5 गुना अधिक था। सकलित अवस्था मे 1 दिन के पश्चात् धारणा 16 प्रतिशत थी। इसके विपरीत वितरित अवस्था मे 8 दिन के पश्चात् भी 72 प्रतिशत धारणा विद्यमान थी। प्रयोग के परिणाम चित्र 11 5 मे प्रदर्शित ह।

अग्राकित चित्र से यह भी स्पष्ट है कि वितरित अधिगम सकलित अधिगम की अपेक्षा श्रेष्ठ है।

अडरवुड तथा एक्स्ट्रेन्ड (1966) ने पूर्वगामी अवरोध से उत्पन्न विस्मरण

का ऐसे प्रयोज्यो मे अध्ययन किया जिन्होने भिन्न प्रकार के प्रयास वितरण द्वारा पूर्व अधिगम किया था। कुछ प्रयोज्यो ने पूर्व अधिगम 4 दिनो मे वितरित 5 प्रयासो मे सम्पन्न किया। शेप प्रयोज्यो ने पूर्व अधिगम एक सत्र मे ही समाप्त किया तथा 4 सेकण्ड के वाद मूल अधिगम किया। परिणामो से ज्ञात हुआ कि सकलित अभ्यास
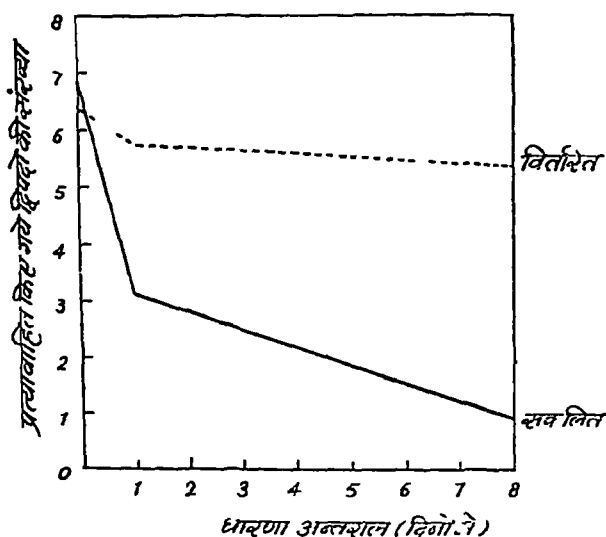
चित्र सख्या 11 5

[धारणा पर वितरित तथा सकलित अधिगम का प्रभाव (केप्पेल, 1964)]

के वाद मूल अधिगम की अपेक्षा अधिक विस्मरण हुआ। अडरवुड तथा एकस्ट्रैन्ड (1967) ने इस व्याख्या की परीक्षा की कि उत्तम सूची विभेदनीयता के कारण वितरित अभ्यास की अवस्था मे कम विस्मरण होता है। सूची विभेदनीयता का तात्पर्य प्रयोज्य के इस प्रत्यावाहन से है कि सूची का कोई अवयव पूर्व प्रस्तुत प्रथम या द्वितीय सूची मे था या नही। अडरवुड तथा फ्रियन्ड (1968) ने एक प्रयोग मे इस पक्ष का अध्ययन किया। प्रयोज्यो को पूव अधिगम दिया गया। तत्पश्चात् मूल अधिगम सम्पन्न हुआ। मूल अधिगम के 24 घण्टे के पश्चात् मूल अधिगम का प्रत्यावाहन किया गया। एक प्रायोगिक समूह ने पूर्व अधिगम तथा मूल अधिगम एक ही दिन सम्पन्न (सकलित) किया जबकि एक अन्य समूह ने पूर्व अधिगम के तीन दिन के पश्चात् मूल अधिगम किया। प्रथम अवस्था मे 38 प्रतिशत तथा द्वितीय अवस्था मे 65 प्रतिशत प्रत्यावाहन हुआ। किन्तु सूची विभेदनीयता के अधिक कठिन रहने पर वितरण का प्रभाव नही प्राप्त हुआ।

वाचिक अधिगम के अध्ययनो से यह भी ज्ञात है कि छोट पाठ तथा सरल पाठ के अधिगम मे सकलित विधि ही उपयुक्त होती है। लियान (1917) न प्रयोगो

को 12 अको को सकलित विधि द्वारा एक सत्र मे याद कराया तथा एक अन्य प्रायोगिक दशा मे कई दिनो से वितरित अभ्यास द्वारा याद कराया। प्रयोग के परिणामो से स्पष्ट हुआ कि सकलित अभ्यास मे प्रयोज्यो ने अपेक्षाकृत शीघ्र अधिगम सम्पन्न किया। किन्तु अधिगम सामग्री की कठिनता मे वृद्धि होने पर वितरित अधिगम अधिक उपयुक्त सिद्ध हुआ। इसी प्रकार का परिणाम पेचस्टीन (1921) ने भूलभुलैया के अधिगम मे भी प्राप्त किया है।

वस्तुत वाचिक अधिगम एक जटिल प्रकार का अधिगम है तथा इसके निर्धारक तत्व भी अनेक हैं। अत सकलित तथा वितरित अधिगम का प्रभाव भी वाचिक कार्यों की प्रवृति द्वारा निर्धारित होता है। फिर भी उपलब्ध प्रायोगिक साक्ष्यो को ध्यान मे रखकर यह निष्कर्ष समीचीन प्रतीत होता है कि सामान्यत वितरित अधिगम सकलित अधिगम की अपेक्षा अधिक उपयुक्त है।

(4) **चिन्तन तथा सम्बोध अधिगम** – चिन्तन एक प्रतीकात्मक प्रक्रिया है जिसमे सम्बोधो का प्रहस्तन किया जाता है। सम्बोध समूह नाम होते हैं जिनसे समान गुण वाले पदार्थों या घटनाओ का बोध होता है। उदाहरणार्थ 'मनुष्य' एक सम्बोध है जिससे समस्त जन समुदाय का बोध होता है। चिन्तन के अन्य सरल रूप भी हैं यथा समस्या समाधान आदि। अनुबधन तथा प्रत्यक्षपरक पेशीय अधिगम मे वितरित अभ्यास द्वारा अधिक शीघ्रता से अधिगम सम्पन्न होता है। किन्तु चिन्तन के विषय मे उपलब्ध प्रदत्तो द्वारा इस तथ्य की पुष्टि नही होती है। यहाँ पर कुछ प्रमुख अध्ययनो का उल्लेख समीचीन प्रतीत होता है।

कुक्क (1934) ने दो प्रकार की समस्याओ—टी भूलभुलैया तथा क्रास भूलभुलैया—के समाधान का अध्ययन किया। प्रत्येक प्रयास मे लगा समय अनुक्रिया-

चित्र सख्या 11 6
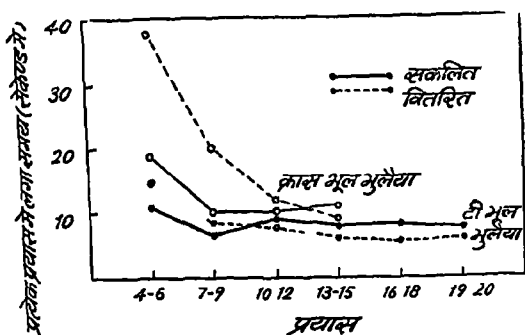
[वितरित तथा सकलित अधिगम का प्रभाव (कुक्क 1934)]

मापक था। सकलित अधिगम की अवस्था मे दो प्रयासो के मध्य मात्र 5 सेकण्ड का व्यवधान था जबकि वितरित अभ्यास की अवस्था मे दो प्रयासो के मध्य 24 घटो

का व्यवधान था । प्रयोज्यो ने 15 प्रयास क्रास भूलभुलैया पर तथा 20 प्रयास टी भूलभुलैया पर किया । प्रयोग के परिणाम निम्नाकित चित्र मे प्रदर्शित है

चित्र स० 11 6 मे प्रदर्शित वक्रो से स्पष्ट है कि आरम्भिक प्रयासो मे सकलित अधिगम वितरित अधिगम की अपेक्षा श्रेष्ठ था । परन्तु अनेक प्रयासो के वाद वितरित अधिगम द्वारा भी सकलित अधिगम के ही तुल्य परिणाम प्राप्त हुए । उक्त चित्र मे यह भी स्पष्ट है कि वाद के प्रयासो मे वितरित अधिगम द्वारा सकलित अधिगम की अपेक्षा कुछ अच्छा परिणाम प्राप्त हुआ । इस अध्ययन से यह पूर्णत निश्चित है कि भूलभुलैया जैसी समस्या के समाधान मे आरम्भिक प्रयासो मे सकलित अधिगम श्रेष्ठ है ।

गैरेट (1942) ने प्रयोगो की एक शृखला मे एक कृत्रिम भापा के अधिगम का अध्ययन किया । इस प्रयोग मे कुछ शब्दो तथा उन शब्दो के विपय मे कुछ नियमो का उपयोग किया गया था । ये नियम सामान्य भापा के नियमो से भिन्न थे । उदाहरण देने के पश्चात् प्रयोज्यो को 12 वाक्य दिये गये जिन्हे कृत्रिम भापा मे अनुवादित करना था । सकलित अभ्यास की अवस्था मे प्रयोज्यो ने अनुवाद कार्य एक ही सत्र मे समाप्त किया । वितरित अभ्यास की अवस्था मे 3 दिनो मे यह कार्य सम्पन्न करना था । परिणामो से ज्ञान हुआ कि सकलित अधिगम की अवस्था मे अनुवाद करने मे अपेक्षाकृत कम समय लगा ।

एरिक्सन (1942) ने एक कठिन भूलभुलैया के समावान के विपय मे प्रयोग किया । वितरित समूह के प्रयोज्यो को प्रत्येक 48 घटो मे 5 मिनट की अवधि का कार्य करना था तथा सकलित समूह को एक ही अभ्यासकाल प्राप्त था जिसमे सतत अभ्यास द्वारा समस्या का समाधान करना था । परिणामो से ज्ञात हुआ कि सकलित समूह को समाधान करने मे वितरित समूह की अपेक्षा 63 प्रतिशत कम प्रयास लगे तथा 44 प्रतिशत कम अशुद्धियाँ हुई ।

ऊपर चर्चित प्रयोगो से यह स्पष्ट है कि जटिल अधिगम कार्य मे, जिसमे प्रयोज्यो को उत्तेजको के मध्य के सम्बन्ध के आधार पर अनुक्रिया करनी पडती है, वितरित अधिगम की अपेक्षा सकलित अधिगम श्रेयस्कर हैं । एरिक्सन (1942) ने इसका कारण वताते हुये कहा है कि चिन्तन आदि जटिल क्रियाओ के अधिगम मे व्यवहार मे विचलन आवश्यक है । परन्तु वितरित अधिगम की दशा मे अनुक्रिया की स्थिरता मे वृद्धि होती है । अत वितरित अधिगम लाभप्रद नही है । इसके विरुद्ध सकलित अधिगम मे विभिन्न प्रकार के व्यवहार की अधिक सम्भावना रहती है । फलत सकलित अधिगम द्वारा शीघ्र अधिगम सम्पन्न होता है ।

सम्बोध अधिगम पर विलम्बित पुनर्बलन के प्रभाव के कुछ अध्ययन वितरित अधिगम के प्रभाव को व्यक्त करते हैं । यथा ब्राउन (1957) ने प्रयोज्य की प्रतिक्रिया तथा पुनर्बलन के मध्य के अन्तराल की अवधि का सम्बोध अधिगम पर प्रभाव

का अध्ययन किया। पांच प्रकार के (0 से०, 5 से०, 100 से०, 200 से० तथा 8 सेकण्ड) अन्तराल पर प्रयोग किया गया। प्रयोग के परिणामों से ज्ञात हुआ कि पुनर्वलन की उपलब्धि के बीच के अंतराल में वृद्धि होने पर (वितरित अधिगम की अवस्था मे) सम्बोध अधिगम मे ह्रास होता है। बाउर्न तथा बन्डर्सन (1963) द्वारा भी इस परिणाम की पुष्टि हुई है।

(5) **अभ्यासकाल की अवधि का निर्धारण**—वितरित अधिगम के अधिकतम प्रभाव को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि अभ्यासकाल की अवधि न तो अत्यन्त दीर्घ हो और न ही अत्यन्त न्यून हो। प्रायोगिक अध्ययनों से यह ज्ञात है कि अल्पकालिक अभ्यासकाल मे अधिक अधिगम सम्पन्न होता है। किन्तु अभ्यासकाल की एक निम्नतम सीमा भी होती है जिससे कम अवधि के अभ्यासकाल का प्रयोग करने पर वितरित अधिगम का प्रभाव समाप्त हो जाता है। विशेषत वे कार्य जिनमे स्फूर्ति प्रभाव महत्वपूर्ण होता है। अभ्यासकाल बहुत छोटा नही होना चाहिये क्योकि ऐसे कार्यों मे प्रयोज्य का कुछ समय कार्य के लिए आवश्यक स्फूर्ति प्राप्त करने मे व्यतीत होना है।

न्यूनतम अवधि की ही भाँति अभ्यासकाल की अधिकतम सीमा भी महत्वपूर्ण कारक है। यह सीमा अधिगम कार्य की प्रकृति तथा प्रयोज्य की आयु पर विशेष रूप से निर्भर करता है। अधिक दीर्घ आकार वाली सामग्री के अधिगम के लिए कई अवधि मे वितरित प्रयास, कठिन सामग्री के लिए छोटे अभ्यासकाल तथा बच्चो के लिए अपेक्षाकृत छोटे अभ्यासकाल उपयुक्त होते हैं।

(6) **विश्रामकाल की अवधि का निर्धारण**—किसी भी अधिगम कार्य को सुचारु रूप से सम्पन्न करने के लिए कितनी अवधि का विश्रामकाल वांछित है, यह कार्य के स्वरूप पर निर्भर करता है। कठिन कार्य के लिए अपेक्षाकृत दीर्घ तथा साधारण कार्यों के लिए अपेक्षाकृत छोटे विश्रामकाल उपयुक्त होते है। अभ्यासकाल की अवधि भी विश्रामकाल की मात्रा को प्रभावित करती है। छोटे अभ्यासकाल के बाद स्वल्प विश्राम पर्याप्त होता है तथा दीर्घ अभ्यासकाल के पश्चात् अपेक्षाकृत दीर्घ विश्रामकाल आवश्यक होता है। यहाँ पर यह ध्यातव्य है कि विश्रामकाल अत्यधिक दीर्घ नही होना चाहिये अन्यथा विस्मरण की सभावना बढ जाती है। अत कार्य का स्वरूप तथा अभ्यासकाल की अवधि दोनो को ही ध्यान मे रखकर विश्राम-काल निर्धारित करना चाहिए।

वितरित अधिगम का प्रभाव अधिगमकर्त्ता द्वारा की गयी विश्रामकालीन क्रिया पर भी निर्भर करता है। यदि वह विश्रामकाल मे अन्य प्रकार का अधिगम करता है या कोई ऐसा कार्य करता है जिसका मूल अधिगम पर अवरोधी प्रभाव पड़ता हो, तो वितरित अधिगम का प्रभाव लुप्त हो जायेगा। इसके विपरीत यदि प्रयोज्य विश्रामकाल मे मात्र विश्राम करता है तब वितरित अधिगम का प्रभाव

सकलित अधिगम की अपेक्षा अधिक मात्रा मे होता है। यह सिद्धान्त अभी पूर्णत प्रयोगो द्वारा पुष्ट नही हो सका है।

वस्तुत किसी भी सिद्धान्त द्वारा वितरित अधिगम के सभी प्रभावो की व्याख्या नही हो पाती है। साथ ही चर्चित सिद्धान्त परस्पर विरोधी भी नही है। वस्तुत मानसिक पुनरावृत्ति द्वारा स्मारक अनुक्रिया का सक्रिय होना तथा उसका समाकलन, आन्तरिक जैविक तथा दैहिक प्रक्रिया का सतनन, प्रतिक्रियात्मक अवरोध तथा अनुक्रियाओ के मध्य द्वन्द के सिद्धान्त वितरित अधिगम के प्रभाव की आशिक व्याख्या ही उपस्थित करते है।

पूर्ण तथा अश विधि

स्वभाव—अधिगम सिद्धान्तो के आधार पर कुछ ऐसे व्यावहारिक उपयोग के नियम निकालने का प्रयत्न किया गया है जिनके द्वारा यह निर्णय किया जा सके कि अधिगम को कैसे सगठित किया जाय कि अधिगम प्रक्रिया सरल हो जाय। दूसरे शब्दो मे, अधिगम की युक्तियो के नियम निकालने का प्रयत्न किया जा रहा है। इस सम्बन्ध मे एक बहुचर्चित प्रश्न अधिगम की पूर्ण तथा आशिक विधि का है। प्रश्न यह है कि किसी कौशल अथवा शाब्दिक सामग्री, जैसे, कविता या भाषण इत्यादि का पूर्ण विधि द्वारा अधिगम किया जाय अथवा अश विधि द्वारा अथवा उत्तरोत्तर या प्रगामी पूर्ण विधि द्वारा।

पूर्ण विधि का तात्पर्य है कि सम्पूर्ण सामग्री का प्रारम्भ से अन्त तक एक बार पूरा अधिगम किया जाय, तब उसे पुन दोहराया जाय। अश विधि मे, सम्पूर्ण सामग्री को, कई भागो मे विभक्त कर लिया जाता है, फिर प्रत्येक अश को अलग-अलग सीखा जाता है, एक अश के अधिगम के पश्चात् दूसरे अश का, फिर तीसरे का, और इसी प्रकार सभी अशो के अलग-अलग अधिगम के बाद, सम्पूर्ण का अधिगम किया जाता है। उत्तरोत्तर पूर्ण विधि मे पहले एक अश का अधिगम किया जाता है, फिर उसे मिलाकर दूसरे का, फिर इन दोनो के साथ तीसरे अश का तथा इसी प्रकार सभी अशो का अधिगम करके उन्हे अन्य अशो से उत्तरोत्तर जोडते जाते हैं। प्रश्न है कि वाचिक तथा कौशल अधिगम की सरलता के लिए अधिगम सामग्री की व्यवस्था पूर्ण विधि द्वारा किया जाय अथवा अश विधि द्वारा। यह प्रश्न सैद्धान्तिक एव व्यावहारिक दोनो ही दृष्टियो से महत्वपूर्ण है। इस प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए अनेक प्रायोगिक अध्ययन किये गये हैं, किन्तु अभिनव काल मे इस समस्या पर कम प्रयोग हुए हैं। परन्तु यह समस्या इसलिए महत्वपूर्ण है, कि इससे सम्बन्धित प्रयोग यह दर्शाते हैं कि यदि प्रयोगात्मक अध्ययनो के विवेचन मे उचित प्रश्न न पूछे जायँ तो प्रायोगिक परिणाम निरर्थक एव भ्रान्तिपूर्ण प्रतीत होते हैं।

अधिगम के सामान्य नियमो के आधार पर इस प्रश्न के जो उत्तर खोजे गये हैं वे मिश्रित व्याख्याएँ प्रतीत होती है। एक ओर तो सम्पूर्ण सामग्री अधिक अर्

पूर्ण एव सार्थक होती है अत ऐसा प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण विधि द्वारा अधिगम अधिक सफल होगा, दूसरी ओर, सम्पूर्ण सामग्री के एक अश को सीखना, सम्पूर्ण को एक साथ सीखने की अपेक्षा, सहज कार्य है अत प्रबलन के सिद्धान्त के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अश-विधि अधिक उपयुक्त होगी।

अत कौन सी विधि श्रेष्ठ है, यह एक विवादास्पद प्रश्न है। इस प्रश्न का उत्तर खोज निकालने के लिए अनेको प्रायोगिक अध्ययन किये गये हैं किन्तु उनके परिणाम भी सदिग्ध हैं, इसका कारण सम्भवत यह है कि अधिगम की सफलता पर अधिगम सामग्री की आन्तरिक रचना का, एव सामग्री का वाह्य शाब्दिक तत्वो से क्या सम्बन्ध है, इसका बहुत अधिक प्रभाव पडता है (गार्नर 1962)। इस सम्बन्ध मे किसी सामान्य निष्कर्ष पर पहुँचने से पूर्व इस समस्या पर किये गये प्रायोगिक अध्ययनो को देखना आवश्यक है।

वाचिक अधिगम मे पूर्ण तथा अश विधि—वाचिक अधिगम के लिए पूर्ण विधि अधिक श्रेष्ठ है या अश विधि ? इसका निर्णय करने के लिए स्टेफेन्स ने 1900 मे पाँच वयस्को तथा दो बालको पर प्रयोग किये। उन्होने कुछ पद्यो तथा कुछ निरर्थक शब्दो को पूर्ण-विधि तथा कुछ को अश-विधि द्वारा याद कराया। उन्होने पाया कि पूर्ण विधि द्वारा याद करने मे हमेशा कम समय लगा, तथा अश विधि द्वारा अधिक। पूर्ण विधि द्वारा याद करने मे औसतन 12 प्रतिशत समय की बचत हुई।

इसके बाद अनेक अन्य प्रयोगो मे भी पूर्ण विधि अधिक उपयोगी पायी गयी। मैकगिओश (1931) ने एक विश्लेपणात्मक समीक्षा मे यह निष्कर्ष निकाला कि पूर्ण विधि अश विधि से अधिक श्रेष्ठ है। किन्तु कुछ समय के पश्चात् 1952 मे उन्होने एक अन्य समीक्षा मे कहा कि पूर्ण एव अश विधि पर किये गये प्रयोगो के परिणाम सदिग्ध हैं व उनके आधार पर किसी भी एक विधि को श्रेष्ठ नही कहा जा सकता। जैन्सन तथा लनैयर (1937) ने पूर्ण तथा अश विधि द्वारा दस प्रयोग किये जिनमे से छ प्रयोगो मे उन्होने पूर्ण विधि को ही अश विधि की अपेक्षा अच्छा पाया किन्तु शेष चार मे ऐसा नही था।

हौस्किन्स (1936) ने कुछ भाषणों के द्वारा पूर्ण तथा अश विधि की जाँच की। उन्होने 1500 से लेकर 15,000 शब्दो के कुछ पाठ लिए, तथा 360 कालेज की छात्राओ, जिनकी आयु, बुद्धि तथा पढने की योग्यता लगभग समान थी, के द्वारा पढवाये। प्रयोज्यो को दो समुदायो मे बाँटा गया। एक समुदाय पाठ को पूर्ण विधि द्वारा याद करता था, अर्थात् पाठ को प्रारम्भ से अन्त तक तीन बार पढता था, जबकि दूसरा समुदाय पाठ को अश विधि द्वारा याद करता था, अर्थात् प्रत्येक गद्याश को पहले तीन बार पढता था तब अगले गद्याश को पढता था। इस प्रकार एक पाठ याद कर लेने के पश्चात् जिस समुदाय ने पूर्ण विधि द्वारा याद किया था उसको

अश विधि द्वारा तथा जिसने अश विधि द्वारा याद किया था उसको पूर्ण विधि द्वारा अगला पाठ याद कराया गया। पाठ पढने के कुछ घटो के बाद तथा दो सप्ताह बाद सत्य असत्य पदो तथा अनेक विकल्प पदो की सहायता से प्रयोज्यो को कितने तथ्य याद थे यह ज्ञात किया गया तथा प्रयोज्यो ने पाठ को समझा या नही यह ज्ञात करने के लिए उन से पाठ के सम्बन्ध मे लेख लिखवाया गया। इन परिणामो के विश्लेषण के आधार पर पाया गया कि कोई भी विधि किसी भी लम्बाई के पाठ को याद करने के लिए अधिक उपयुक्त सिद्ध नही हुई, न पूर्ण विधि न ही अश विधि।

जौनखोरे (1939) ने भी पूर्ण तथा अश विधि द्वारा पद्याशो को याद कराया तथा कोई भी विधि एक दूसरे से अच्छी नही पाई।

अभिनव अध्ययन मे गार्नर तथा ह्विटमैन (1965) ने कुछ पदो को पूर्ण तथा अश विधि द्वारा याद कराया। उन्होने यह प्रश्न उठाया कि यदि पूर्ण विधि द्वारा कोई सामगी याद की जाय तो उस सामग्री का कोई भी अश याद होगा परन्तु उन्होने प्रत्यावाहन विधि द्वारा देखा कि जिन व्यक्तियो ने पूर्ण सामग्री याद की थी उन्हे भी उस सामग्री के एक अश को याद करने मे उतना ही समय लगा जितना कि अन्य व्यक्ति को जिन्होने पूर्ण सामग्री कभी नही देखी थी अर्थात् पूर्ण सामग्री याद होने पर भी अश के अधिगम मे उस अधिगम का स्थानान्तरण नही हुआ।

इस प्रकार अश याद करने पर भी उन अशो को एक सम्पूर्ण के रूप मे याद करने मे समय लगता है ऐसा भी अन्य प्रयोगो मे देखा गया है।

कुछ अन्य प्रयोगो मे यह जानने का प्रयत्न किया गया है कि क्रम सूची रहित विषय वस्तु के अधिगम मे कौन-सी विधि अच्छी है। कविता आदि के सम्बन्ध मे यह कहा जा सकता है कि वह एक सगठित सामग्री है जिसमे अर्थ के कारण एक तारतम्यता है जिसके कारण पूण विधि अधिक सफल होगी किन्तु जिस सामग्री मे ऐसी कोई तारतम्यता न हो उसको याद करने मे तो पूर्ण विधि तथा अश विधि मे कोई भेद नही होगा। द्वि युगल साहचर्य तथा कार्ड छाँटना इसी प्रकार की क्रियायें है।

यह आश्चर्य की बात है कि अनेको इस प्रकार की श्रेणीक्रम रहित क्रियाओ पर किये गये प्रयोगो मे यह पाया गया कि पूर्णविधि अधिक उपयोगी है (मैकगिओश 1931, डेविस तथा मीन्स 1932)। क्राफ्ट्स (1929) ने पाया कि कार्ड छाँटने के कार्य मे सभी कार्डों को एक साथ लेकर पूर्णविधि द्वारा छाँटने मे समय कम लगा अपेक्षाकृत अश विधि के जिसमे पहले तीन प्रकार के कार्ड लेकर छाँटे गये फिर अन्य तीन प्रकार के और फिर अन्य तीन प्रकार के।

गान्ये तथा फ्रोस्टर (1949) ने भी देखा कि यदि किसी क्रिया मे किन्ही चार उत्तेजको के लिए चार भिन्न प्रतिक्रियाओ की आवश्यकता हो तो जब पूरी क्रिया को एक बार प्रारम्भ से अन्त तक किया जाय तब याद करने मे समय कम

लगता है बजाय उसके जबकि अलग-अलग चारो उत्तेजको एव प्रक्रियाओ का अभ्यास किया जाय।

इस प्रकार देखने मे यह आता है कि क्रम सूची रहित कार्यों मे भी प्राय पूर्ण विधि सफल होती है। सम्भवत ऐसा इसलिए होता है कि यदि किसी छोटे अश जैसे शब्द व अर्थ को बार-बार दुहराया जाय तो उसकी ओर वास्तव मे ध्यान जाना समाप्त हो जाता है तथा उसे यन्त्रवत व्यक्ति दुहराता जाता है। इसके विपरीत जब पूर्णविधि द्वारा एक शब्द अर्थ के बाद दूसरा याद किया जाता है तो ध्यान बना रहता है।

किन्तु क्राफ्ट्स (1929) के एक अन्य प्रयोग मे जब अक-अक्षर स्थानान्तरण का उपयोग किया गया, जिसमे बिना किसी क्रम से लिखे अक्षरो के नीचे, ऊपर सूची मे दिए गये अक्षरो तथा अको के हिसाब से अक लिखने थे तो पूर्ण विधि के द्वारा अधिगम का लाभ बहुत कम हो गया। अत पुन यही कहा जा सकता है कि पूर्ण अथवा अश विधि मे कौनसी विधि श्रेष्ठ है, ठीक पता नही चल सका।

कौशल अधिगम मे पूर्ण तथा अश विधि—कौशलो को सीखने मे भी कौन सी विधियाँ उपयुक्त हैं इसका अध्ययन किया गया है। भूलभुलैया, कविता की भाँति ही तारतम्यता पूर्ण सामग्री है अत उसके सीखने मे भी वही विधि उपयोगी होगी जो श्रेणीगत शाब्दिक सामग्री के सीखने मे। पेशस्टाइन (1917) ने एक भूल-भुलैया बनाई जिसको चार भागो मे विभक्त किया जा सकता था और फिर चारो भागो को जोडकर एक सम्पूर्ण भूलभुलैया तैयार हो सकती थी। उन्होने पाया कि अश विधि द्वारा पहले प्रत्येक भाग को सीखकर तत्पश्चात् सम्पूर्ण भूलभुलैया को सीखने मे समय कम लगता था।

किन्तु यहाँ भी वाचिक अधिगम की भाँति विभिन्न प्रयोगो के परिणाम भिन्न-भिन्न हैं। हन्नावाल्ट (1931, 1934) ने चूहो तथा मनुष्यो पर किये प्रयोगो मे पूर्ण विधि को अधिक सफल पाया। उन्होने देखा कि यदि अशो को अलग-अलग सीखा गया तो पुन उन अशो को एक सम्पूर्ण के रूप मे सगठित करने मे और अधिक समय लगा। ऐसा सम्भवत इसलिए हुआ कि अशो को सम्पूर्ण के रूप मे सगठित करने के लिए कुछ अनाधिगम आवश्यक है।

उदाहरणार्थ यदि अश 'अ' की समाप्ति पर प्रोत्साहन मिलता था तो सम्पूर्ण के रूप मे उसी सामग्री को सीखने मे 'अ' की समाप्ति पर प्रोत्साहन नही मिलेगा वरन् 'ब' अश को करना होगा। कुक्क (1936, 1937) ने भी देखा कि पूर्ण तथा अश विधि मे से कोई एक विधि निश्चित रूप से दूसरे से अच्छी नही है वरन् किसी विशेष भूलभुलैया के सीखने मे कौन-सी विधि अधिक सफल होगी यह इस बात पर निर्भर करेगा कि कोई सम्पूर्ण क्रिया कितनी लम्बी है, उसमे कितने अश है व प्रत्येक अश कितना लम्बा है इत्यादि। यदि कोई सम्पूर्ण क्रिया ही बहुत छोटी है तो

सम्भवत व्यक्ति उसको विभिन्न अशो मे बाँटकर समय व्यर्थ करता है। इसके विपरीत बहुत लम्बी किया मे सम्पूर्ण को एक साथ याद करने मे व्यक्ति को ऐसा लग सकता है कि कुछ भी याद नही हो रहा तथा प्रोत्साहन के अभाव मे पूर्ण विधि असफल हो सकती है।

इसी प्रकार तारतम्य रहित, क्रम-सूची रहित, कौशलो को सीखने मे भी पूर्ण तथा अश विधि की उपयोगिता जांची गयी है।

ब्राउन (1933) ने प्यानो बजाने के लिए एक जानकार सगीतज्ञ को चुना तथा तीन नई धुनें उन्हे सिखायी। तीनो कठिनाई मे समान थी। एक लय को इस प्रकार सीखा गया कि दोनो हाथो के द्वारा जो सगीत बजाना था प्रत्येक हाथ का अलग-अलग अभ्यास कराया गया। दूसरी लय मे दोनो हाथो को एक साथ अभ्यास कराया गया तथा तीसरी लय मे पहले अलग-अलग हाथो का तत्पश्चात् अधिकाधिक भिन्न अशो को उत्तरोत्तर मिलाते हुए बजाया गया। उन्होने पाया कि धीमी गति से बजाने मे सब विधियाँ एक समान थी पर तेज गति मे दोनो हाथो से एक साथ बजाने वाली विधि अर्थात् पूण विधि अधिक सफल थी। किन्तु ओ' ब्रायन (1943) ने पाया कि विभिन्न विद्यार्थी भिन्न-भिन्न विधियाँ पसन्द करते है। कुछ लोग पूर्ण विधि कुछ लोग अश विधि पसन्द करते हैं।

इन अध्ययनो को देखने से सम्भ्रान्तिपूर्ण प्रभाव दिखाई देता है। कुछ दशाओ मे पूर्ण विधि तो कुछ दशाओ मे अश विधि अधिक सफल दिखाई देती है। प्रश्न उठता है क्यो ? सम्भवत इसलिए कि पूर्ण विधि तथा अश विधि की सफलता कई बातो पर निर्भर करती है।

सर्वप्रथम तो यह स्पष्ट है कि अशो को याद करना आसान है। एक अश को याद करने से प्रोत्साहन भी मिलता है किन्तु अशो को सम्पूर्ण मे सगठित करने मे अधिक समय लगता है अत प्रत्येक व्यक्ति एक विशिष्ट लम्बाई की सामग्री सम्पूर्ण विधि द्वारा अधिक सफलता से याद कर सकता है किन्तु यदि सामग्री बहुत लम्बी हो तो सम्पूर्ण की अपेक्षा अश विधि ही अधिक उपयुक्त होगी।

इसके अतिरिक्त, जैसा कि गार्नर (1962) ने बताया, वाचिक सामग्री को सीखने मे उस सामग्री के आतरिक सगठन तथा उस सामग्री का अन्य शाब्दिक सामग्री व पदो के साथ सम्बन्ध भी बहुत अधिक महत्वपूर्ण होता है। किसी सामग्री को याद करने मे पूर्ण विधि अधिक उपयुक्त होगी अथवा अश विधि, यह भी इस बात पर निर्भर करेगा कि वह सामग्री किस प्रकार की है तथा सामग्री मे अशो का सगठन किस प्रकार का है। उदाहरणार्थ, यदि दो सूचियाँ हो—(1) हरा, शेर, केला, गर्मी, बकरा, पीला, खरगोश, नीला, सेब, सर्दी, कुत्ता, लाल, सन्तरा, बरसात, बसन्त तथा (2) हरा, नीला, पीला, लाल, शेर, बकरी, खरगोश, कुत्ता, केला, अमरूद, सेब, सन्तरा, गर्मी, सर्दी, बरसात, बसन्त। दोनो मे एक ही शब्द होते हुए भी दूसरी की

अपेक्षा पहली सूची को याद करना बहुत कठिन होगा तथा उसे दो या चार भागो मे विभक्त किया जाय तो उन अशो को याद करने व पुन उन अशो को सगठित करके एक सम्पूर्ण के रूप मे याद करने मे काफी कठिनाई होगी अत उसे पूर्ण विधि से याद करने मे सुविधा होगी, जबकि दूसरी सूची को अश विधि द्वारा याद करने मे सुविधा होगी, उसे चार अशो मे बाँटकर अलग-अलग याद करने तथा उन्हे पुन एक सम्पूर्ण मे सगठित करने मे कोई भी कठिनाई नही होगी। इस प्रकार एक ही सामग्री होते हुए भी सगठन की भिन्नता के कारण एक सूची मे पूर्ण तथा दूसरे मे अश विधि अधिक सफल होगी।

वीन गार्टनर (1963) ने देखा कि इस प्रकार सगठन मे अन्तर होने के कारण इस प्रकार की सूचियो को याद करने की गति मे बहुत भिन्नता थी।

पूर्ण विधि का एक गुण यह है कि इस विधि द्वारा अधिगम मे प्रारम्भ से ही पदो को उसी क्रम से याद किया जाता है जिसमे कि उन्हे अन्त मे रखना हो। अत उनका सगठन स्वत ही ठीक क्रम मे हो जाता है व साहचर्य बन जाते है। जबकि अश विधि द्वारा सीखने मे कुछ अतिरिक्त समय विभिन्न अशो मे उचित सम्बन्ध स्थापित कर उन्हे सगठित करने मे लग जाता है। साथ ही स्वत उसी क्रम मे सगठित सामग्री होने से सम्पूर्ण विधि द्वारा अधिगम करने मे सामग्री अर्थपूर्ण प्रतीत होती है जो कि अधिगम मे सहायक होती है।

इसीलिए यदि सामग्री ऐसी हो कि उसके विभिन्न पद एक-दूसरे से सम्बद्ध हो तथा सम्पूर्ण सामग्री मे अधिक सम्बद्धता हो तो पूर्ण विधि अधिक सफल होगी। नौथैवे (1937) ने पाया कि पूर्ण विधि उन कविताओ मे सफल होती है जिनका अर्थ पूर्ण कविता से निकलता हो। सीगो (1936) ने देखा कि यदि कविता के अशो मे आन्तरिक सगठन अधिक हो और सम्पूर्ण कविता मे कम हो, तो अश विधि अधिक उपयुक्त होती है।

अत यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि किसी भी वाचिक अथवा कौशल अधिगम मे पूण विधि अधिक सफल होगी या अश विधि यह उस विशिष्ट सामग्री के गुणो पर निर्भर होगा।

अधिगम सेट—इस अध्याय मे अब तक यह देखा गया कि अधिगम के अन्तरण तथा अधिगम के समय व सामग्री की व्यवस्था के द्वारा अधिगम का कैसे सरलीकरण किया जा सकता है। अधिगम को सरल बनाने मे एक अन्य तत्व बहुत महत्वपूर्ण है और वह है अधिगम सेट। अधिगम सेट को सामान्यतया दो अर्थों मे प्रयुक्त किया जाता है, एक तो अधिगम सेट का तात्पर्य उस प्रायोगिक पद्धति से है जिसके द्वारा प्रयोज्य को बहुत सारी विभेदन अधिगम[1] की समस्यायें दी जाती हैं, जो एक ही प्रकार की होती है किन्तु जिनमे विभेदी[2] भिन्न-भिन्न होते है, तथा

---

1 Discrimination learning 2 Discriminanda

प्रयोज्य की एक समस्या को समाधान करने की योग्यता पर विशेष ध्यान न देकर इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि क्रमश विभिन्न समस्याओ के समाधान करने की योग्यता मे कितना अन्तर प्रयोज्य के व्यवहार मे आया, अर्थात् अन्त ममस्या अधिगम, पर बल न देकर अन्तर-समस्या अधिगम, पर अधिक बल दिया जाता है। दूसरे अर्थ मे अधिगम सेट का प्रयोग, सेट के कारण अधिगम प्रवीणता मे जो अन्तर आता है, उसके लिए किया जाता है। उदाहरणार्थ, वस्तु गुण[1] विभेदन अधिगम सेट या विभेदन वैपरीत्य अधिगम सेट[2] इत्यादि। दूसरे शब्दो मे, अधिगम सेट के विभिन्न प्रकारो का वर्णन करने के लिए भी इस शब्द का उपयोग किया जाता है (डी आमेटो, 1970)।

हार्लो (1949) ने सर्वप्रथम अधिगम सेट पर प्रयोग किये। इन प्रयोगो के आधार पर उन्होने कहा कि जब विभेदन अधिगम की दो तीन समस्याये न देकर प्रयोज्य को बहुत अधिक समस्यायें दी जाती है तो प्रत्येक नयी समस्या के अधिगम के लिए आवश्यक प्रयासो की सख्या क्रमश घटती जाती है, यहाँ तक बहुत सी एक ही प्रकार की समस्याओ को हल करते-करते अन्त मे वह स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि उसी प्रकार की किसी नयी समस्या पर प्रयोज्य पहले या दूसरे ही प्रयास मे लगभग 100 प्रतिशत ठीक प्रतिक्रिया करने लगता है। यद्यपि सभी समस्याएँ एक-दूसरे से भिन्न होती है। हार्लो ने इस सम्बन्ध मे कहा कि प्रयोज्य वस्तुत अधिगम कैसे करें, इसी का अधिगम करता है, अर्थात् अधिगम सेट का निर्माण करता है क्योकि प्रयोज्य न केवल एक विशिष्ट समस्या का ही अधिगम करता है वरन् वह यह भी अधिगम करता है कि इसी प्रकार की अन्य समस्याओ का अधिगम कैसे किया जाय।

हार्लो (1949) ने आठ बन्दरो के ऊपर प्रयोग किए। इन बन्दरो को एक विशिष्ट उपकरण की सहायता से दो उत्तेजनायें याद्दच्छिक विधि द्वारा कभी दाये कभी बायें ट्रे पर पास-पास प्रस्तुत की जाती थी, उनमे से किसी एक के नीचे, जो कि सही उत्तर होता था, पारितोपक छिपा रहता था, जबकि दूसरी उत्तेजना के नीचे नही। बन्दरो को एक समस्या पर कुछ प्रयास करने बाद दूसरी समस्या दी जाती थी। समस्याएँ एक दूसरे से रग, आकार तथा रूप मे भिन्न होती थी, बन्दरो को केवल यह सीखना होता था कि दो मे से किस उत्तेजक के नीचे पारितोपक छिपा है। उन्हें बार-बार केवल सही उत्तेजक को ही चुनना होता था भले ही उस उत्तेजक का स्थान बदला हुआ हो। प्रत्येक नयी समस्या मे पुन सही उत्तेजक का पता लगा कर बराबर प्रत्येक प्रयास मे उसी का चयन करना होता था, क्योकि प्रत्येक समस्या मे उत्तेजक नये होते थे। पहली 32 समस्याओ पर 50 प्रयास तक अभ्यास कराया गया इससे बाद अन्य समस्याओ मे 6 से लेकर 12 तक प्रयास

---

1 Object quality learning set 2 Discrimination reversal learning set

कराये गये । परिणामो द्वारा यह स्पष्ट पता लगा कि अधिगम प्रवीणता मे बहुत शीघ्रता से परिवर्तन हुआ ।
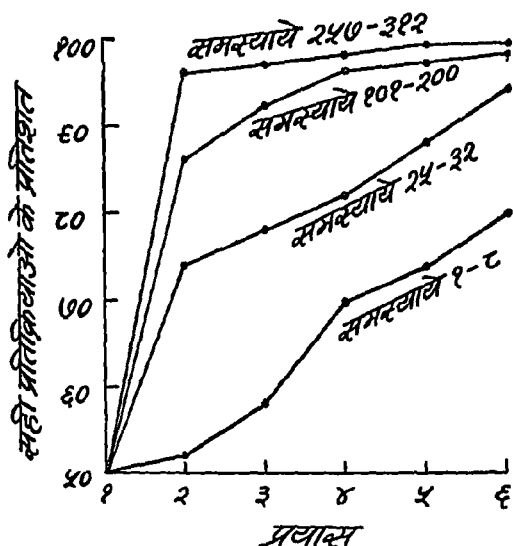
चित्र सख्या 11 7

[(विभेदक अधिगम सेट का विकास प्रारम्भिक समस्याओ मे विभेदन के लिये अनेको प्रयासो की आवश्यकता होती है जबकि बाद की समस्याओ मे 1 या 2 प्रयासो मे ही विभेदन होने लगता है। (हार्लो 1949 के आधार पर)]

प्रारम्भिक समस्याओ मे विभिन्न प्रयासो मे अधिगम बहुत धीमी गति से हुआ किन्तु जब प्रयोज्यो ने लगभग 300 समस्याओ पर कार्य कर लिया तो पहले या दूसरे ही प्रयास मे ही लगभग 100 प्रतिशत सही प्रतिक्रिया करने लगे ।

जैसा कि चित्र सख्या 11 7 से स्पष्ट है कि पहली 8 समस्याओ मे ही सही प्रतिक्रियाओ की सख्या 50 प्रतिशत के आकस्मिक सम्भावना स्तर से बढकर 75 प्रतिशत हो गयी तत्पश्चात् बढती ही गयी, तथा 300 समस्याओ के बाद पहले या दूसरे प्रयास मे ही आदर्श प्रतिक्रिया होने लगी ।

अधिगम सेट के प्रयोग अन्य प्राइमेट्स पर भी किये गये हैं। माइन्स (1957) ने बिल्लियो पर, वारेन (1956) ने चूहो पर तथा शेपर्ड (1957) ने सामान्य तथा एलिस (1958) ने मन्द बुद्धि बालको पर प्रयोग किये हैं ।

अधिगम सेट का महत्व—अधिगम सेट के प्रयोग एक बहुत महत्वपूर्ण तथ्य पर प्रकाश डालते हैं। हार्लो (1949, 1959) के अनुसार सूझ द्वारा अधिगम वस्तुत बहुत शीघ्रता से होने वाला वह अधिगम है जो इतनी शीघ्रता से इसलिए होता है

क्योकि पूर्व अनुभवो के कारण प्रयोग मे एक उपयुक्त अधिगम सेट बन जाता है जिसके प्रस्तुत होने पर बहुत शीघ्रता से सूझ वाला अधिगम हो जाता है।

विभेदन अधिगम के ऊपर इस पुस्तक मे अन्यत्र विवेचन किया जा चुका है, अधिगम सेट साधारण विभेदन अधिगम से अगली कडी है। इसके द्वारा विभिन्न प्रकार के अधिगमो को एक शृ खला मे पिरोया जा सकता है। इस शृ खला के एक छोर पर प्रयत्न व भूल द्वारा सीखना आता है तथा दूसरे छोर पर सूझ द्वारा सीखना आता है। इन दोनो प्रकार के अधिगमो को सम्बन्धित करने वाली कडी का ही नाम अधिगम सेट है। सर्वप्रथम प्रयत्न व भूल द्वारा अधिगम होता है तत्पश्चात् सम्बद्ध अनेको अनुभवो के कारण एक अधिगम सेट का निर्माण हो जाता है जिसके द्वारा एकाएक शीघ्रता से अधिगम होता है जिसे सूझ द्वारा अधिगम कहा जा सकता है।

अधिगम सेट मे साधारण विभेदन अधिगम के अतिरिक्त अन्य प्रक्रियाएँ भी होती है, क्योकि अधिगम सेट के निर्माण मे न केवल एक विशिष्ट कृत्य का अधिगम होता है वरन् सूचना का सकलन भी होता है। व्यक्ति न केवल एक विशिष्ट सकेत का अधिगम करता है वरन् यह भी सीखता है कि अधिगम के लिए उसे कुछ विशिष्ट सूचनाओ या सकेतो का भी अधिगम करना होगा जिनका अन्तरण एक समस्या से अन्य समस्या मे किया जा सके।

तुलनात्मक मनोविज्ञान मे भी अधिगम सेट का बहुत अधिक महत्व है। केवल साधारण विभेदन अधिगम के द्वारा जातिवृत-तन्त्र[1] की विभिन्न जातियो मे अन्तर नही किया जा सकता किन्तु अधिगम सेट के विकास के आधार पर किया जा सकता है। वारेन (1965) ने बताया कि बन्दर एक साधारण विभेदन समस्या का अधिगम उसी प्रकार करता है जैसे कि एक चूहा, किन्तु बन्दर चूहे की अपेक्षा बहुत अधिक सरलता से ही अधिगम सेट का निर्माण कर लेता है। वस्तुत ब्लो तथा लिपसिट (1971) का यह कथन है, कि अधिगम सेट के आधार पर व्यावहारिक दृष्टि से प्राणियो का श्रेणीकरण किया जा सकता है जो कि प्राणिशास्त्रियो द्वारा दिये गये जातिवृत्त-तन्त्र के ही समान होगा क्योकि अधिगम सेट चूहे जितनी शीघ्रता से बनाते है उससे अधिक सुगमता से बिल्ली तथा उससे भी अधिक सुगमता से बन्दर बनाते हैं, (वारेन 1965)।

इसी प्रकार से सामान्य बालक मनोविकृत बालको की अपेक्षा अधिक सुगमता से अधिगम सेट बना लेते हैं। हार्टर ने तीन प्रकार की बुद्धिलब्धि वाले बालको पर अधिगम सेट बनाने की क्षमता जांचने के लिए प्रयोग किये तथा उन्होने पाया कि बुद्धिलब्धि तथा मानसिक आयु का अधिगम सेट का निर्माण करने मे बहुत महत्व है जबकि वास्तविक आयु का नही। किन्तु अभी तक यह स्पष्ट नही हो सका है कि

1. Phylogenetic system

अधिगम सेट कैसे बनता है। अर्थात् वस्तुत प्रयोज्य उस समय क्या सीखता है जबकि वह यह अधिगम कर रहा होता है कि अधिगम कैसे किया जाय।

अत अधिगम सेट का महत्व कई दृष्टियो से बहुत अधिक है। सम्भवत जानवरो पर किये गये प्रयोगो मे अधिगम सेट से सम्बन्धित शोध-काय ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण है क्योकि यहाँ अधिगम सेट के द्वारा एक ऐसा औजार उपलब्ध हो जाता है जिससे सरचना तथा उसकी क्रियाओ मे सम्बन्ध देखा जा सके। बालक को जो अनेकानेक अनुभव होते हैं। उनका महत्व इस दृष्टि से अत्यधिक है कि वह यह अवसर देते है कि विभिन्न प्रकार के अधिगम सेटो का निर्माण किया जा सके। अत बाल्यावस्था की निर्णयक महत्वपूर्ण आयु मे अधिकाधिक व भिन्न-भिन्न नयी अधिगम की स्थितियो का होना अति आवश्यक है। इनके अभाव मे व्यक्ति विभिन्न प्रकार के अधिगम सेट नही बना पायेगा इसके फलस्वरूप उसकी उच्च स्तरीय सूझ वाली अधिगम की क्षमता भी घट जायेगी। इसीलिये बालक के उचित विकास के लिये यह आवश्यक है कि उसे विभिन्न प्रकार की उत्तेजनायें मिलनी चाहिए जिससे कि उसे विभिन्न अधिगम सेट विकसित करने के लिए उपयुक्त अनुभव प्राप्त हो सकें।

इसके अतिरिक्त अधिगम सिद्धान्त की दृष्टि से हार्लो (1959) ने यह कहा कि अधिगम सेट विकसित करने के लिए सही प्रतिक्रिया का चुनाव उतना ही आवश्यक है जितना कि गलत प्रतिक्रिया का उन्मूलन। यह बात सिद्धान्त की दृष्टि से भी उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी व्यावहारिक दृष्टि से। प्राय बालको के सामाजिकरण उन्हे यह बताना भी उतना ही आवश्यक होता है कि कौन से व्यवहार उचित नही हैं जितना कि यह बताना कि कौन से व्यवहार उचित है।

अत अधिगम सेट सिद्धान्त एव व्यावहारिक दोनो ही दृष्टिकोणो से एक महत्वपूर्ण प्रत्यय है।

सहायक ग्रन्थ सूची

अडरवुड, बी जे तथा शुल्ज — मीनिंगफुलनेस एण्ड वर्बल लर्निंग, शिकागो, लिप्पिन-काट कम्प, 1960

अडरवुड, बी जे तथा एक्स्ट्रैण्ड, बी आर — एन एनेलिसिस आफ सम शार्टकमिंग्स इन दि इन्टरफेरेन्स थियरी आफ फारगेटिंग, साइका रिव्यू, 1960

अडरवुड, बी जे तथा फ्रियड, जे एस — एफेक्ट आफ टेम्पोरल सेपरेशन आफ टू टास्क्स आन प्रोऐक्टिव इनहिबिशन, जनरल एक्सपे साइका, 1968

ऐवर्ट, ई तथा म्यूमान्न, ई — वुडवर्थ तथा श्लासबर्ग की 'एक्सपेरिमेण्टल साइकालोजी मे उद्धृत, 1905

फाल्विन, जे. एस	हिल्गार्ड तथा मारक्विस कृत लर्निंग एण्ड कडीशर्निंग मे उद्धृत, 1939
किम्बल, जी ए तथा गार्मेजी, एन	प्रिसिपिल्स आफ जनरल साइकालाजी, न्यूयार्क : रोनाल्ड प्रेस, 1968
कुक्क, टी डब्लू	स्टडीज इन क्रास एजुकेशन I मिरर ट्रेसिन्ग द स्टारशेप्ड मेज। जर्नल आव एक्सपे साइका, 1933
	स्टडीज इन क्रास एजुकेशन III काइनेस्थिक लर्निग आव ऐन इर्रेगुलर पैटर्न। जर्नल आव एक्सपे साइका, 1934
	स्टडीज इन क्रास एजुकेशन IV पर्मानेन्स आव ट्रान्सफर । जर्नल आव एक्सपे साइका, 1935
कैंडलैंड, डी के	साइकालोजी दि एक्सपेरिमेटल एप्रोच, मैकग्राहिल प्रकाशन, 1968
गार्नर, डब्लू आर	अनसर्टेनटी एण्ड स्ट्रकचर एस साइकोलाजिकल कान्सेप्ट्स । न्यूयार्क वाइली, 1962
गान्ये, आर एम फोस्टर, प्रच	ट्रान्सफर आफ ट्रेनिंग फ्राम प्रेक्टिस आन कोम्पोनेन्टस इन ए मोटर स्किल जनरल आफ एक्सपेरिमेन्टल साइकोलाजी, 1968
गैग्नी, आर एम , फोस्टर, एच तथा काडली, एम ई	द मेजरमेण्ट आव ट्रान्सफर आव ट्रेनिंग साइका. बुलेटिन, 1948
गैग्नी, आर एम , बेकर, के ई तथा फोस्टर, एच	आन द रिलेशन विटवीन सिमिलरिटी एण्ड ट्रान्सफर आव ट्रेनिंग इन द लर्निंग आव डिस्क्रिमिनेटिव मोटर टास्क्स । साइका रिव्यू, (1950)
जेम्स, विलियम	प्रिन्सपुल्स आव साइकालोजी होल्ट, 1890
जेन्सन, एम बी , लमैयर, ए	टेन एक्सपेरिमेन्ट्स आन होल एण्ड पार्ट लर्निंग जरनल ऑफ एजुकेशनल साइकोलाजी ।
डेविस, ए जे , मीन्स, एम	फेक्टर्स डिटरमीनिंग द रिलेटिव एफिशियेन्सी आफ द होल एण्ड पार्ट मेथड्स आफ लर्निंग, जनरल आफ एक्सपेरिमेन्टल साइकालोजी, 1932
डी' आमेटो, एम आर	एक्सपेरिमेन्टल साइकोलाजी, मैकग्राहिल, कोगाकुश कम्पनी, टोकयो, 1[illegible]

थार्नडाइक, ई एल — एजूकेशनल साइकालोजी साइन्स प्रेस, 1903

थून, ई एल — द इफेक्ट आव डिफरेन्ट टाइप्स आव प्रिलीमिनरी ऐक्टिविटिज आन सब्सिक्वेण्ट लर्निंग आव पेयर्ड-असोसियेट मैटेरियल। जर्नल आव एक्सपे साइका, 1950

पेइटाइन, एल ए — होल वरसेस पार्ट मेथड्स इन मोटर लर्निंग, साइकालाजिकल मोनोग्राफ, 1917

पापफेनबर्गर, ए टी — द इन्फ्लुएन्स आव इम्प्रूवमेण्ट इन वन सिम्पुल मेण्टल प्रासेस अपान अदर रिलेटेड प्रासिसीज। जर्नल आव एजुकेशनल साइका, 1915

पोर्टर, एल डब्लू, तथा डन्कन, सी पी — निगेटिव ट्रान्सफर इन वर्बल लर्निंग। जर्नल आव एक्सपे० साइका०, 1953

पेचस्टीन, एल ए — मास्ड वर्सेज डिस्ट्रीब्यूटेड एफर्ट इन लर्निंग, ज एजूकेश साइका 1921

ब्राउन, आर डब्लू — द रिलेशन बिटवीन टू मेथड्स आफ लर्निंग पियानो म्यूजिक जरनल आफ एक्सपेरिमेन्टल साइकोलॉजी

ब्राउन, एल के, जेन्किन्स, जे जे तथा लाविक, जे — रिस्पान्स ट्रान्सफर ऐज ए फन्कशन आव वर्बल असोसियेटिव स्ट्रेन्थ। जर्नल आव एक्सपे० साइका०, 1966

मन्न, नार्मन एल — बाइलेटरल ट्रान्सफर आव ट्रेनिंग। जर्नल आव एक्सपे० साइका०, 1932

मर्डाक्क, बी बी — ट्रान्सफर डिजाइन्स एण्ड फार्मूलाज। साइकोलाजिकल बुलेटिन, 1957

मैकगिलोश, जे ए, आईरिओन, ए एल — दि साइकोलॉजी आफ ह्यूमन लर्निंग सेकण्ड एडिशन लॉंगमैन्स ग्रीन, न्यूयॉर्क, 1952

युम, के एस — ऐन एक्सपेरिमेण्टल टेस्ट आव द ला आव असिमिलेशन। जर्नल आव एक्सपे० साइका०, 1931

लार्ज, आइ — डीजकृत लर्निंग मे (1967) उद्धृत, 1930

वुडवर्थ, आर एस तथा श्लासवर्ग — एक्सपेरिमेण्टल साइकालोजी होल्ट-राइनहार्ट—विन्सटन, 1954

सीगो, एम वी — द इन्फ्लूएन्स ऑफ डिगरी ऑफ होलनैस ऑन होल-पार्ट लर्निंग, जरनल आफ एक्सपेरिमेन्टल साइकोलॉजी, 1936

स्विपट, ई जे — स्टडीज इन साइकालोजी एण्ड फिजियालोजी आव लर्निग। अमे० जर्नल आव साइका०, 1903

श्वेन, ई तथा पोस्टमैन, एल — स्टडीज आव लर्निग टू लर्न गेन्स इन पर्फार्मेन्स ऐज ए फन्कशन आव वार्म-अप एण्ड असोसियेटिव प्रेक्टिस। जर्नल आव वर्बल लर्निग एण्ड वर्बल विहेवियर, 1967

हीरान, डब्लू टी — द वार्मिग-अप इफेक्ट इन लर्निग नान्सेन्स सिलेबुल्स। जर्नल आव जेनेटिक साइका० 1928

हौस्किन्स, ए वी — द इफेक्टिवनैस ऑफ द पार्ट एण्ड द होल मेथड्स ऑफ स्टडी जिओर्ज पीलोडी कोन्ट एजुकेशन।

हिल्गार्ड, इ आर तथा मारक्विस, डी जी — कडीशर्निग एण्ड लर्निग न्यूयार्क, एप्पलेटन, 1940

हम्फ्रीज, एल जी — हिल्गार्ड तथा मारक्विस कृत कडीशर्निग एण्ड लर्निग मे उद्धृत।

अध्याय 12

अभिप्रेरणा

अभिप्रेरणा का स्वभाव

मूल प्रवृत्तियां

    प्रायोगिक अध्ययन

प्रेरणा या ड्राइव

सक्रियकरण तथा उडोलन

    सक्रियकरण ऊर्जा

    उडोलन

मानव-प्रेरणा

    मनोजात आवश्यकतायें, प्रयोजन, रुचियाँ व मूल्य

अभिप्रेरणा

अभिप्रेरणा का स्वभाव

व्यवहार को समझने मे एक प्रश्न स्वत ही उठना है कि कोई भी व्यवहार क्यो होता है । कोई व्यक्ति एक विशेष रूप से व्यवहार क्यो करता है, उदाहरणतया वह युद्ध क्यो करता है, मित्रता क्यो करता है, दूसरो पर अधिकार क्यो जमाना चाहता है, इत्यादि । व्यवहार के पीछे छिपे इस 'क्यो' का उत्तर अभिप्रेरणा[1] के द्वारा दिया जाता है । कुछ सहज क्रियाओ और आदतो के अतिरिक्त हमारे अधिकाश कार्यों के पीछे कोई कारण निहित होता है, अधिकाश मनोवैज्ञानिक इस सम्बन्ध मे सहमत है कि यह कारण प्रेरणा,[2] तथा प्रयोजन[3] है, अर्थात हमारे अधिकाश कार्य अभिप्रेरित होते है । उन सभी व्यवहारो को अभिप्रेरित कहा जाता है जो बारम्बार होते हैं तथा लगातार होते रहते हैं या अनुलम्बित[2] होते हैं ।

अभिप्रेरणा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यवहार प्रक्रियाएँ जाग्रत होती हैं, एक विशिष्ट दिशा मे सचालित होती है तथा लम्बे समय तक अनुलम्बित होती हैं या चलती रहती है । यह स्पष्ट ही है कि अभिप्रेरण का प्रत्यक्ष रूप से अवलोकन नही किया जा सकता वरन् उसके होने का आभास व्यवहार के पर्यवेक्षण से होता है । आधुनिक समय मे मनोवैज्ञानिको ने अभिप्रेरणा के सम्बन्ध मे अनेको अध्ययन, व्यवहार के निरीक्षण तथा प्रयोगात्मक विधि के द्वारा किये है । इन अध्ययनो के फलस्वरूप अभिप्रेरणा का न केवल परोक्ष रूप से अवलोकन ही सम्भव हो सका है, वरन् नियन्त्रित दशा मे मापन भी करना सम्भव हुआ है, जैसे, पशुओ पर किये जाने वाले प्रयोगो मे 'भूख प्रेरणा' का नियन्त्रण अन्तिम वार, खाना देने के पश्चात् वीते हुये घन्टो को घटा या वढाकर किया जाता है ।

प्रेरणा इतने व्यापक रूप से हमारे व्यवहारो को प्रभावित करती है कि समस्त प्रेरित व्यवहारो मे अभिप्रेरणा का एक सीधा सामान्य नियम खोज निकालना कोई सहज कार्य नही है । यही कारण है कि, यद्यपि सारे मनोवैज्ञानिक इस तथ्य पर एकमत हैं कि, अभिप्रेरणा का अध्ययन व्यवहार को समझने के लिए आवश्यक है, तयापि उनमे इस वात को लेकर विवाद चलता है कि, अभिप्रेरणा का अध्ययन, किस स्तर पर किया जाय । एक ओर शरीर क्रिया[5] अभिविन्यसित मनोवैज्ञानिक

---

1 Motivation 2 Drive 3 Motive 4 Persistent 5 Physiology

है, जैसे हेब (1955) जिनका मुख्य ध्येय यह जाँच करना है कि शारीरिक प्रक्रियाएँ किस प्रकार व्यवहार से सम्बद्ध है, तो दूसरी ओर वह मनोवैज्ञानिक है जिनकी यह मान्यता[1] है कि, अभिप्रेरण सम्बन्धी अनुसधान का, मुख्य ध्येय, प्रयोजन तथा व्यवहार प्रक्रियाओ के सम्बन्धो तथा नियमो की खोज करना ही है। अत, एक ओर तो प्रथम वर्ग के कायिक मनोवैज्ञानिक[2] अपने अन्वेपणो को, व्यवहार के नाडीय व जीव रासायनिक[3] निर्धारको पर ही केन्द्रित करते हैं, तथा प्रयत्न करते हैं कि पशुओ पर किये गये नियन्त्रित वस्तुनिष्ठ अध्ययनो के आधार पर ही अभिप्रेरणा के सामान्य सिद्धान्तो का प्रतिपादन करें। दूसरी ओर, वह मनोवैज्ञानिक है जिनका दृढ विश्वास है कि शरीर की आन्तरिक प्रक्रियाओ को समझने का कार्य विज्ञान के अन्य अनुशास्नो पर छोडकर मनोविज्ञान को, उत्प्रेरक तथा अनुक्रिया के सम्बन्धो का अध्ययन करना चाहिये। इन मनोवैज्ञानिको का फोक्स, प्रबलन, दड, इत्यादि परिवेशात्मक दशाओ का प्रभाव, व्यवहार पर देखने पर ही रहता है।

वस्तुत अधिकाश मनोवैज्ञानिक अब इस मत के हो गये हैं कि इन दोनो ही सीमान्त सिद्धान्तो द्वारा अभिप्रेरणा को पूर्णतया नही समझा जा सकता। इन दो छोरो के बीच की मध्यवर्ती धारा, ही सम्भवत अभिप्रेरणा सम्बन्धी आधारभूत समस्याओ का समाधान कर सकती है। अत अभिप्रेरित व्यवहार को अधिकाश मनोवैज्ञानिक एक सातत्यक[4] के रूप मे समझाते है। इसके एक छोर पर, इस प्रकार के व्यवहार आयेगे जिन्हे सम्पादित करने मे व्यक्ति की इच्छा इत्यादि का बहुत कम महत्व होता है। यह कार्य, व्यक्ति की बेसिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए आवश्यक होते हैं, जैसे, भूख लगने पर व्यक्ति आवेगात्मक रूप से खाना प्राप्त करने वाली प्रक्रियाएँ करने लगते है। इन व्यवहारो को साम्यावस्था[5] उत्पन्न करने वाली प्रेरणाओ के आधार पर समझाया गया है। कुछ शारीरिक आवश्यकताओ के कारण एक अभाव की स्थिति उत्पन्न होती है, जिससे एक प्रेरणा उत्पन्न होती है, जो व्यवहार को सचालित करके उस अभाव की पूर्ति करती है, और पुन समस्थिति स्थापित करती है। इस प्रकार की अभिप्रेरणा को साम्यावस्था उत्पन्न करने वाली प्रेरणाओ के आधार पर समझाया गया है।

दूसरे छोर पर व्यक्ति के वह व्यवहार आते हैं, जिन्हे व्यक्ति कुछ निश्चित लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए, बहुत लम्बे समय तक अनेको बाधाओ के बाद भी करता जाता है। यह लक्ष्य-प्राप्ति, आवश्यक रूप से किसी अभाव पूर्ति के लिए नही होती, वरन् ऐसी बहुत-सी प्रक्रियाएँ स्वय मे ही सन्तोपजनक होती हैं। इस प्रकार का लक्ष्य-परक व्यवहार मानवी अभिप्रेरणा की ही विशेपता है, जबकि पहले प्रकार का व्यवहार पशुओ मे भी देखा जाता है। इन दोनो सीमान्तो के मध्य मे अनेको अन्य व्यवहार आयेंगे।

---

1 Assumption 2 Physiological Psychologists 3 Bio-chemical
4 Continuum 5 Equilibrium

अन्वेषणो की नयी धारा के अनुसार यह उत्तरोत्तर स्पष्ट होता जा रहा है कि परिवेशात्मक तत्व, शरीर क्रियाओ को सार्थक रूप से परिवर्तित करके व्यवहार को प्रभावित कर सकते है। यह भी ज्ञात हो चुका है कि व्यक्ति मे सक्रिय रहने की स्वत प्रकृति भी होती है। अत अभिप्रेरित व्यवहारो को एक सातत्यक के रूप मे रखकर ही भली-भांति समझा जा सकता है।

अभिप्रेरणा के सम्बन्ध मे मुख्य प्रयोगात्मक शोधो का, अवलोकन करने से पूर्व, अभिप्रेरणा के सिद्धान्तो का ऐतिहासिक विकास देखना उपयुक्त होगा।

प्रयोगात्मक अन्वेषणो पर आधारित सिद्धान्तो के पूर्व, अभिप्रेरणा के मूल व प्रकृति के सम्बन्ध मे जो मत प्रतिपादित किये गये, वह व्यवहार की यथा तथ्य अध्ययन की परम्परा से पूर्व थे। यह सिद्धान्त मुख्यतया प्रतिपादनो के व्यक्तिगत अनुभवो तथा पयवेक्षणो पर आधारित होते थे।

इस शतक के प्रारम्भ तक सर्वाधिक मान्य मत हिडोनिस्म[1] या सुखवादी मनोवैज्ञानिको का था। इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति के समस्त कार्य इसलिये होते हैं कि सुख मिले और दुख से छुटकारा हो सके। अत सुखवादी सिद्धान्त यह प्रतिपादित करता है कि मनुष्य अधिकाश कार्य चेतन रूप से यह जानकर करता है कि इन कार्यों के द्वारा सुख की प्राप्ति होगी। कुछ सहजक्रियाओ और आदतो को छोडकर अन्य सारे कार्य इसी प्रेरणा से होते है।

मूल प्रवृत्तियाँ[2]

सुखकारी सिद्धान्त पर डार्विन के सिद्धान्त ने चोट की। डार्विन ने कहा कि पशुओ का सारा व्यवहार जन्मजात मूल प्रवृत्ति पर आधारित होता है। उन्होने यह भी बताया कि पशुओ तथा मनुष्यो मे जैविक तारतम्यता होती है, अत मानव व्यवहार भी बहुत सीमा तक सहज क्रियात्मक तथा आवेगात्मक होता है। तत्पश्चात् मैकडूगल (1908) ने हिडोनिस्म के सिद्धान्त के विरुद्ध आवाज उठाकर प्रयोजक प्रवृत्ति की विचारधारा को प्रतिपादित किया। उनके अनुसार व्यवहार मूल रूप से लक्ष्यात्मक होता है। जीव व्यवहार की मुख्य विशेषता ही यह है कि वह लक्ष्यो की प्राप्ति की ओर निर्दिष्ट होता है। अपनी पुस्तक (1908) मे उन्होने मूल प्रवृत्तियो की स्थापना प्रमुख प्रेरको के रूप मे की। मैकडूगल ने मूल प्रवृत्तियो की विशेषताएँ बताते हुये कहा कि यह जन्मजात और अनर्जित होती हैं। कुछ समय पश्चात् उन्होने अपने सिद्धान्त मे थोडा परिवर्तन करते हुये कहा कि मानव व्यवहार पशुओ के मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहार से कुछ भिन्न होता है, और मानव व्यवहार की प्रेरक, प्रोपेन्सिटी[1] प्रवृत्तियाँ होती है। मूल प्रवृत्तियो की ही भाँति, प्रोपेन्सिटी भी व्यवहार को एक विशिष्ट लक्ष्य की ओर अग्रसरित कराती है। अत मूल प्रवृत्तियो की परि-

---

1 Hedonism 2 Instincts 1 Propensity

भाषा इस प्रकार दी गयी कि, मूल प्रवृत्तियाँ ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जो जन्मजात होती है तथा व्यवहार को एक निर्दिष्ट लक्ष्य की ओर अग्रसारित करती है। इस परिभाषा के पीछे यह भावना थी कि सम्भवत जीव का कोई नाडीय सयोजन इन मूल प्रवृत्तियो के लिए उत्तरदायी होता है, जो वशानुक्रम द्वारा व्यक्ति को प्राप्त होता है (1932)।

लेहरमान (1953) ने मूल प्रवृत्तियो का विश्लेषण करते हुए टिनबलन (1942) तथा बारेन्ज (1939) के मत बताते हुये कहा कि मूल प्रवृत्तियो के इन विद्वानो ने कई गुण बताये हैं, जो इस प्रकार है—(1) मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहार रूढ व निरन्तर होता है। (2) एक विशेष जाति के सभी सदस्यो मे पाया जाता है। (3) एकाकी रूप मे पाले हुये जीवो मे भी देखने मे आता है। (4) पूर्ण विकसित जीवो मे भी, अभ्यास न होने पर भी दृष्टिगोचर होता है।

प्रायोगिक अध्ययन

कुछ मनोवैज्ञानिको ने इन मूल प्रवृत्तियो का प्रयोगात्मक विधि द्वारा अध्ययन करके इन मान्यताओ की जाच की है। मूल प्रवृत्तियो पर किये गये प्रयोगो की कुछ सामान्य विशेषताएँ हैं जो इस प्रकार है—सर्वप्रथम किसी ऐसे व्यवहार का अध्ययन किया जाता है जिसे मूल प्रवृत्यात्मक माना जाय। इस व्यवहार पर प्रयोग करने के लिए प्राय पशुओ को दो दलो मे बाँटा जाता है–(अ) प्रायोगिक तथा, (ब) नियन्त्रित दल। समुदाय 'अ' को कुछ प्रायोगिक नियन्त्रित परिस्थितियो मे रखा जाता है, जैसे, कुओ के प्रयोगो मे बिल्ली के बच्चो को चूहो के साथ पाला गया। समुदाय 'ब' को सामान्य परिस्थिति मे बिना प्रायोगिक दशा के रखा जाता है। निश्चित समय अथवा प्रयासो के पश्चात् दोनो दलो की तुलना तथाकथित मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहार के सन्दर्भ मे की जाती है तथा यह ज्ञात किया जाता है कि मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहार पर प्रायोगिक दशा का कोई प्रभाव पडा या नही। इन प्रयोगो मे मूल प्रवृत्तियो के सम्बन्ध मे जिन मुख्य प्रश्नो के उत्तर खोजने का प्रयत्न किया जाता है वह इस प्रकार है—(1) क्या समायोजनात्मक व्यवहार जन्मजात होते हैं या अर्जित ? (2) समायोजनात्मक व्यवहारो को समझने के लिए स्वरूपात्मक[1] प्रत्ययो को चुनना चाहिए या क्रियात्मक प्रत्ययो[2] को ? (3) व्यवहार की व्याख्या यान्त्रिक[3] स्तर पर की जानी चाहिये अथवा मनोवादी[4] स्तर पर ?

मैकडूगल ने कहा कि समायोजनात्मक व्यवहार जन्मजात होते हैं तथा उन्हे मूल प्रवृत्तियो के द्वारा समझा जा सकता है जो कि स्वय क्रियात्मक तत्व हैं। उन्होने कहा कि मनोविज्ञान मे व्यवहार की व्याख्या के लिए सवेग इत्यादि मनोवादी प्रत्ययो की आवश्यकता है।

---

1 Structural concepts 2 Dynamic concepts 3 Mechanistic
4 Mantalistic

इसके विपरीत वाटसन (1919) तथा कुओ (1924) के विचारानुसार, मूल प्रवृत्तियाँ या तो मात्र-सहज क्रियाएँ ही है अथवा उनमे अधिगम का पुट होता है। उन्होने कहा कि व्यवहार को समझने के लिए, क्रियात्मक तत्वों की कोई आवश्यकता नही है, उन्हे केवल साहचर्य[1] के आधार पर समझा जा सकता है। कुओ ने दूसरा सीमान्त दृष्टिकोण अपनाया। उन्होंने आगे कहा कि न केवल किसी भी व्यवहार का कोई जन्मजात स्वरूप नही होता वरन् नाडी तंत्र की बनावट के कारण भी व्यवहार का पूर्व निर्धारण सम्भव नही है। किन्तु यह मत भी कारमाइकेल (1927) के प्रयोगो के सम्मुख ठहर नही सका।

इन मतो की तुलनात्मक सत्यता की विवेचना के लिए तथा यह पता लगाने के लिए कि मूल प्रवृत्तियाँ यदि है तो क्या हैं, उनका स्वरूप क्या है कुछ प्रयोगात्मक अध्ययनो का अवलोकन किया जायेगा।

प्रयोगात्मक विधि तथा प्राप्त निष्कर्षों की दृष्टि से कई प्रयोग उल्लेखनीय हैं, जैसे कारमाइकेल (1927), कुओ (1930) इत्यादि। इन प्रयोगो द्वारा, ऊपर उठाये गये कुछ प्रश्नो का समाधान होता है।

कारमाइकेल (1927), ने सैलेमैण्डर पर एक प्रयोग किया। सैलेमैण्डर के वह अडे लिए, जो आकारीय विकास की उस अवस्था मे थे जब किसी भी प्रकार की क्रिया उनमे दृष्टिगोचर नही होती थी। उन अडो को दो दलो मे बाट दिया गया—प्रायोगिक (प्रा०) तथा नियंत्रित (नि०)—और भिन्न-भिन्न शीशे के बर्तनो मे रख दिया गया। नियन्त्रित दल वाले बर्तन को नल के पानी से भरा गया, जबकि प्रायोगिक दल वाले बर्तन को एक संवेदनहारी घोल से भरा गया। संवेदनहारी घोल के लिए 'क्लेरिटोन' का प्रयोग किया गया। चार भाग क्लोरिटोन तथा 10,000 भाग पानी का घोल बनाया गया। कमरे का तापमान सामान्य तथा स्थिर रखा गया।

कारमाइकेल ने पाया कि नि० तथा प्रा० दल के अडे एक समान गति से बढ रहे थे, केवल कुछ प्रा० दल के अडे धीमी गति से बढ रहे थे। कुछ दिनो पश्चात् नि० दल के लार्वा या डिम्ब उत्प्रेरण के प्रति क्रियाशील हो गये, किन्तु उस समय प्रा० दल के लार्वा मे कोई गति नही दिखाई देती थी।

जब प्रा० दल के लार्वा आकारीय विकास मे नि० दल मे अधिक बढ गये तो उन्हे दूसरे पात्र मे नल के पानी मे डाल दिया गया और उन्हे हल्के स्पर्श द्वारा लगातार तब तक उत्तेजना दी गयी जब तक उनमे कोई क्रिया परिलक्षित न होने लगी तथा वह समय नोट कर लिया गया जो कि प्रा० दल के लार्वा का औषध घोल से निकल कर तैरने की क्रिया आरम्भ करने मे लगा।

तत्पश्चात् नि० दल के लार्वा को भी उसी औषध घोल म 24 घण्टे तक

1 Associations

डालकर पुन सादे पानी मे डालकर देखा गया कि नि० दल के लार्वा को, औपध घोल से निकलने के बाद, तैरने की क्रिया आरम्भ करने मे कितना समय लगा। परिणामो से यह स्पष्ट था कि नि० तथा प्रा० दलो के लार्वा को सादे पानी मे डालने और तैरने की क्रिया के बीच मे जो समय लगा उसमे कोई सार्थक अन्तर नही था।

इससे यह निष्कर्ष निकाला गया कि औपध घोल से निकलकर लार्वा जो समय तैरने की क्रिया आरम्भ करने तक लेता है, वह सीखने के लिए नही, वरन् औपध के प्रभाव से मुक्त होने के लिए होता है।

प्रथम अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवत नाडीय व पेशीय तत्र, जिन पर समस्त व्यवहार निर्भर होता है, मात्र वशानुक्रमित होते हैं, और उनमे बाद मे केवल परिपक्वता ही आती है, किन्तु यह निष्कर्ष निकालना समस्या का अति सरलीकरण करना होगा। कारमाइकेल (1927) का मत है कि उक्त प्रयोग द्वारा यह पता नही चलता कि कौन सा व्यवहार प्राकृत है तथा कौन सा अर्जित, वरन् केवल यह कहा जा सकता है कि नाडी पेशीय तत्र मे निरन्तर सश्लिष्ट विकास होता रहता है, किन्तु यह विकास किसी साध्य परक[1] लक्ष्य की प्राप्ति के लिए नही होता, जैसा कि मूल प्रवृत्ति के प्रतिपादको का कथन है, वरन् वह यान्त्रिक निर्धारण[2] का परिणाम है। यह विकास जीव के अन्दर स्वत होने वाली क्रियाशील उत्तेजना व अनुक्रिया[3] के ही कारण होता है। अत बिना पूर्व अनुभव के भी जो लार्वा तैरने मे समर्थ हुए वह जीव के अन्दर होने वाले स्वचलित आकारिक विकास के कारण ही, जोकि स्वय होने वाली क्रियाशील उत्तेजना तथा अनुक्रिया के कारण निरन्तर होता रहता है। इसलिए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि व्यवहार केवल वशानुक्रम अथवा परिवेश पर नही वरन् दोनो पर ही निर्भर होता है। इस सम्बन्ध मे कुओ (1930) द्वारा किए गये प्रयोगो का उल्लेख आवश्यक है। उन्होने बिल्ली के बच्चो को तीन विभिन्न दशाओ मे पालकर, उसका प्रभाव उन बिल्लियो के चूहे मारने के व्यवहार पर देखा। उनकी आधारभूत मान्यता[4] यह थी कि यदि बिल्ली का चूहे मारने का व्यवहार मूल प्रवृत्यात्मक है तो, परिवेश, अर्थात् विभिन्न दशाओ मे चूहो के साथ बिल्ली को पालने से, उनके व्यवहार मे कोई अन्तर नही आयेगा। इस प्राक्कल्पना की जाच करने के लिए उन्होने जो प्रयोग किया उसमे बिल्ली के बच्चो को तीन विभिन्न दशाओ मे पालकर, उसका प्रभाव चूहे मारने के व्यवहार पर देखा। यह दशाएँ इस प्रकार थी —

(1) अकेले मे पाला।

---

1 Teleological 2 Mechanistic determinism 3 Functional stimulation and response within the organism 4 Assumption

(2) चूहे मारने वाले वातावरण मे पाला ।

(3) एक ही कटघरे मे एक विल्ली को एक चूहे के साथ पाला ।

उनके प्रयोग के परिणाम इस प्रकार थे, 85 प्रतिशत वह विल्ली के वच्चे जिन्हे चूहे मारने वाले वातावरण मे पाला गया था, चूहे मारते थे जवकि एकाकी वातावरण मे पली विल्लियो मे से 45 प्रतिशत ही चूहे मारती थी और जो विल्लियाँ चूहो के साथ पली थी उनमे से 17 प्रतिशत ही वाद मे चूहे मारने लगी, फिर भी किसी भी विल्ली ने उन चूहो को नही मारा जिनके साथ उनका पालन हुआ था, और इन्हे उन चूहो से लगाव भी था, जिनके साथ वो पली थी ।

कुओ ने एक अन्य प्रयोग भी किया (1933) जिसमे 4 या 5 विल्लियो के कई दलो को अलग-अलग दो चूहो, एक नर व एक मादा के साथ 9 माह तक पाला। तत्पश्चात् चार माह तक, प्रत्येक माह मे एक वार विल्लियो का व्यवहार चूहो के प्रति परीक्षित किया गया । उनके प्रयोग के कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्प इस प्रकार थे, उन्होने पाया कि किसी भी विल्ली को चूहो से विशेप लगाव नही था, चूहो के प्रति उनका व्यवहार उन 9 माहो मे जव तक वो चूहो के साथ रहती थी उदासीनता का था । उस काल मे जव वो चूहो के साथ रहती थी, उन्होने कभी चूहो पर आक्रमण करने का प्रयत्न नही किया, परन्तु उनके नवजात वच्चो को सभी विल्लियो ने मार कर खाया । जव इन विल्लियो ने अन्य विल्लियो को चूहे मारते हुए देखा तो 17 मे से 6 विल्लियो ने परीक्षण काल मे उन चूहो को मारने का प्रयत्न किया जिनके साथ वो पली थी ।

इन प्रयोगो के आधार पर कुओ ने यह निष्कर्प निकाला कि जीव के प्रारम्भिक जीवन के वातावरण के अनुकुल ही उसका व्यवहार वन जाता है । जैसे, जिन विल्लियो ने चूहो को मारते देखा था वो अधिक प्रतिशत मे चूहे मारने वाली हुई, जवकि जो विल्ली अकेले एक चूहे के साथ पली थी उसे चूहे से लगाव था, और जो कई विल्लियाँ एक साथ कई चूहो के साथ पली थी, उनका रुख एक दूसरे के प्रति उदासीनता का था, किन्तु चूहो से अलग होने पर 50 प्रतिशत विल्लियाँ चूहे मारने लगी । अत कुओ के अनुसार व्यवहार की निर्धारक जन्मजात प्रवृत्तियाँ नही होती वरन् पूर्णतया उसका प्रारम्भिक वातावरण ही यह निर्धारक तत्व होता है, जिसमे उसके विशिष्ट प्रेरको का विकास होता है ।

यद्यपि इन प्रयोगो के आधार पर यह तो स्पष्ट होता है कि, जीव किन्ही ऐसी विशेप सरचनाओ को लेकर पैदा नही होता जिनसे केवल कुछ विशिष्ट कार्य होते हो, और जो परिवेश से प्रभावित होती हो, अर्थात् मूल प्रवृत्तियाँ, किन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि, मात्र परिवेश के अनुकूलन द्वारा ही सारे व्यवहार नहीं समझाये जा सकते जैसा कि कुओ ने कहा है ।

कुछ व्यवहार ऐसे हो सकते हैं जो मूल प्रवृत्तियो की इन कसौटियो पर पूरे

उतरे जैसे कारमाइकेल (1927) के सैलेमेण्डर का व्यवहार, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है कैपनर (1925) का अध्ययन माइक्रोस्टोमा पर, जो कि हाइड्रा खाकर अपने डक मे विप तैयार करता है, किन्तु यदि डक मे निर्धारित मात्रा मे विप हो तो कितना ही भूखा होने पर भी वह हाइड्रा नही खाता।

किन्तु केवल इसी आधार पर कि नियत्रित दशा मे पाले जाकर भी यह व्यवहार वने रहते है, यह नही कहा जा सकता कि यह व्यवहार मूल प्रवृत्यात्मक ही है क्योकि एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि क्या एकाकी दशा मे पाले गये जीवो को पूर्णतया सारी उत्तेजनाओ से दूर रखा जा सकता है ?

अत मनोवैज्ञानिको का विचार है कि इस प्रकार के व्यवहार का उद्गम जीव विकास की निरन्तर होने वाली जटिल प्रक्रिया मे है (लैशले 1938, कारमाइकेल 1927)। इस विकास प्रक्रिया मे जीव किसी भी समय एक विशिष्ट स्थिति तक विकसित हो चुका होता है, और इसी विशिष्ट विकास के कारण एक व्यवहार विशेप होना सम्भव होता है। इसके अतिरिक्त कोई व्यवहार, कितना जीव विकास की परिपक्वता के कारण है और कितना अधिगम के कारण है, इसका निर्णय सहज नही है, जैसे, घोसला बनाना कई स्तरो पर विकसित होता है, हर स्तर पर एक अभिज्ञात प्रक्रिया परिवेश और जीव के बीच होती है, और साथ ही एक प्रक्रिया जीव के भीतर भी होती है, यह वर्तमान विकास स्तर पिछले स्तर पर निर्भर होता है, और अगले स्तर की भूमि तैयार करता है, और जो भी व्यवहार होता है वह इन्ही प्रक्रियाओ का फल होता है।

आधुनिक समय मे मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहार पर इसलिये भी विशेप बल नही दिया जाता क्योकि (1) यह सिद्ध करना कठिन है कि किन्ही विशिष्ट नाडी-पेशीय बनावट के कारण विशिष्ट कार्य ऊर्जा होती है। अभी तक कोई इस प्रकार के अन्वेपण नही हुये है, जिनके आधार पर यह कहा जाय कि एक विशिष्ट नाडी मडल जो कि जन्मजात है, उसके ही कारण एक विशेप कार्य ऊर्जा होती है, अत इनके अभाव मे मूल प्रवृत्तियो को प्रतिपादित करना न तो वस्तुनिष्ठ ही होगा और न न्यायसगत ही। (2) दूसरे, जो जन्मजात बनावट के कारण व्यवहार होता भी है वह भी अधिगम द्वारा बहुत अधिक प्रभावित होता है, अत उसे केवल मूल प्रवृत्यात्मक कहना कहाँ तक न्याय-सगत है।

फिर, मात्र यह कह देने से कि कोई व्यवहार अनर्जित है, वशानुक्रमगत है, उस प्रक्रिया के विकास का तो पता नही चलता वरन् केवल यह पता चलता है कि उस व्यवहार मे कुछ विशिष्ट अधिगम की प्रक्रियायें शामिल नही हैं। अत किसी प्रक्रिया को मूल प्रवृत्यात्मक कह देना केवल उस प्रक्रिया से सम्बन्धित खोज को रोकने मे ही समर्थ होता है, उसे समझने मे नही। अत मूल प्रवृत्तियो के स्थान पर अधिकाश मनोवैज्ञानिक इस निष्कर्प पर पहुँचे है कि मूल प्रवृत्ति वशानुक्रम द्वारा प्राप्त

विशिष्ट गुण नही होती वरन् सीखने मात्र की प्रवृत्ति ही अनर्जित है और सीखने का तात्पर्य ही यह है कि यह प्रवृत्ति अविशिष्ट होती है ।

प्रेरणा या ड्राइव[1]

वुडवर्थ (1918) ने अन्तिम रूप से मूल प्रवृत्ति के इस सिद्धान्त की समाप्ति करी कि यह वह जन्मजात शक्ति है जिसके कारण कार्यों का सूत्रपात होता है, व कार्य सम्पन्न किये जाते है। इसके स्थान पर उन्होने ड्राइव या प्रेरणा का प्रत्यय दिया, जिसके द्वारा कुछ विशिष्ट नाडीयतन्त्र परिचालित होते है, कार्यों का सूत्रपात होता है, और फिर वह कार्य, नाडीयतन्त्र मे अन्तर्निहित ऊर्जा[2] द्वारा सम्पन्न होते है । इसी विचारधारा को क्रमश लैशली (1937), हैव (1955) तथा हल (1943) ने भिन्न-भिन्न रूप से वढाया है, तथा इसका प्रयोगात्मक विधि द्वारा अध्ययन किया है ।

हल (1943) ने ड्राइव या प्रेरणा को एक मध्यवर्ती चर[3] के रूप मे स्थापित किया है, जिसको प्रत्यक्ष रूप से देखा नही जा सकता, किन्तु अन्य पर्यवेक्षीय चरो के आधार पर जिसके होने का प्रमाण मिलता है । प्रेरणा, जीव की पूर्ववर्ती[4] दशा तथा परिस्थित के द्वारा निर्धारित होती है, उदाहरणतया, भूख की प्रेरणा इस वात पर निर्भर करेगी कि पिछले कितने घण्टो से व्यक्ति को भोजन प्राप्त नही हुआ है ।

एक अन्य तथ्य जो अभिप्रेरणा का भाग है, वह है प्रोत्साहन या इन्सेन्टिव[5] । उपरोक्त उदाहरण मे खाने का परिमाण तथा प्रकार प्रोत्साहन होगा । इन दोनो ही कारको पर अभिप्रेरणा का वल निर्भर करेगा । उदाहरणार्थ, खाने का परिमाण तथा विशेष प्रकार का भोजन यह निश्चित करेंगे कि भूख की प्रेरणा कितनी तीव्र होगी, अभिप्रेरण की शक्ति कितनी तीव्र होगी, तथा व्यक्ति कितनी गति तथा क्षमता से भूख निवारण के प्रयत्नो मे सलग्न होगा ।

प्रोत्साहन का अर्थ यह है कि व्यक्ति किसी प्रकार से प्रवलन की प्रत्याशा कर लेता है, जिसके कारण उसकी अभिप्रेरित क्रिया की दिशा व गति प्रभावित होती है । टोलमैन (1932) ने अनेको अध्ययनो का वर्णन किया है जिनमे प्रोत्साहन का प्रयोगात्मक अध्ययन किया गया है । इन अध्ययनो द्वारा प्रोत्साहन का महत्व स्पष्ट होता है, जैसे, इलियट (1928) ने देखा कि जव पशुओ को कम पसन्द वाले भोजन के स्थान पर अधिक पसन्द वाला भोजन दिया गया तो उनके 'मेज' मे निष्पादन मे प्रगति हुई ।

एक अन्य तत्व जो अभिप्रेरित व्यवहार को प्रभावित करता है, वह है, बाधक कारक[6] अर्थात् खाना पाने के लिए कितनी बाधाओ का सामना करना पडेगा ।

---

1 Drive 2 Energy 3 Intervening variable 4 Antecedents
5 Incentive 6 Obstructions

उतरे जैसे कारमाइकेल (1927) के सैलेमेण्डर का व्यवहार, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है कैपनर (1925) का अध्ययन माइक्रोस्टोमा पर, जो कि हाइड्रा खाकर अपने डक मे विप तैयार करता है, किन्तु यदि डक मे निर्धारित मात्रा मे विप हो तो कितना ही भूखा होने पर भी वह हाइड्रा नही खाता।

किन्तु केवल इसी आधार पर कि नियत्रित दशा मे पाले जाकर भी यह व्यवहार बने रहते है, यह नही कहा जा सकता कि यह व्यवहार मूल प्रवृत्यात्मक ही है क्योकि एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि क्या एकाकी दशा मे पाले गये जीवो को पूर्णतया सारी उत्तेजनाओ से दूर रखा जा सकता है ?

अत मनोवैज्ञानिको का विचार है कि इस प्रकार के व्यवहार का उद्गम जीव विकास की निरन्तर होने वाली जटिल प्रक्रिया मे है (लैशले 1938, कारमाइकेल 1927)। इस विकास प्रक्रिया मे जीव किसी भी समय एक विशिष्ट स्थिति तक विकसित हो चुका होता है, और इसी विशिष्ट विकास के कारण एक व्यवहार विशेप होना सम्भव होता है। इसके अतिरिक्त कोई व्यवहार, कितना जीव विकास की परिपक्वता के कारण है और कितना अधिगम के कारण है, इसका निर्णय सहज नही है, जैसे, घोसला बनाना कई स्तरो पर विकसित होता है, हर स्तर पर एक अभिज्ञात प्रक्रिया परिवेश और जीव के बीच होती है, और साथ ही एक प्रक्रिया जीव के भीतर भी होती है, यह वर्तमान विकास स्तर पिछले स्तर पर निर्भर होता है, और अगले स्तर की भूमि तैयार करता है, और जो भी व्यवहार होता है वह इन्ही प्रक्रियाओ का फल होता है।

आधुनिक समय मे मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहार पर इसलिये भी विशेप बल नही दिया जाता क्योकि (1) यह सिद्ध करना कठिन है कि किन्ही विशिष्ट नाडी-पेशीय बनावट के कारण विशिष्ट कार्य ऊर्जा होती है। अभी तक कोई इस प्रकार के अन्वेपण नही हुये हैं, जिनके आधार पर यह कहा जाय कि एक विशिष्ट नाडी मडल जो कि जन्मजात है, उसके ही कारण एक विशेप कार्य ऊर्जा होती है, अत इनके अभाव मे मूल प्रवृत्तियो को प्रतिपादित करना न तो वस्तुनिष्ठ ही होगा और न न्यायसगत ही। (2) दूसरे, जो जन्मजात बनावट के कारण व्यवहार होता भी है वह भी अधिगम द्वारा बहुत अधिक प्रभावित होता है, अत उसे केवल मूल प्रवृत्यात्मक कहना कहाँ तक न्याय-सगत है।

फिर, मात्र यह कह देने से कि कोई व्यवहार अनर्जित है, वशानुक्रमगत है, उस प्रक्रिया के विकास का तो पता नही चलता वरन् केवल यह पता चलता है कि उस व्यवहार मे कुछ विशिष्ट अधिगम की प्रक्रियायें शामिल नही हैं। अत किसी प्रक्रिया को मूल प्रवृत्यात्मक कह देना केवल उस प्रक्रिया से सम्बन्धित खोज को रोकने मे ही समर्थ होता है, उसे समझने मे नही। अत मूल प्रवृत्तियो के स्थान पर अधिकाश मनोवैज्ञानिक इस निप्कर्ष पर पहुंचे है कि मूल प्रवृत्ति वशानुक्रम द्वारा प्राप्त

विशिष्ट गुण नही होती वरन् सीखने मात्र की प्रवृत्ति ही अनर्जित है और सीखने का तात्पर्य ही यह है कि यह प्रवृत्ति अविशिष्ट होती है ।

प्रेरणा या ड्राइव[1]

वुडवर्थ (1918) ने अन्तिम रूप से मूल प्रवृत्ति के इस सिद्धान्त की समाप्ति करी कि यह वह जन्मजात शक्ति है जिसके कारण कार्यों का सूत्रपात होता है, व कार्य सम्पन्न किये जाते है। इसके स्थान पर उन्होने ड्राइव या प्रेरणा का प्रत्यय दिया, जिसके द्वारा कुछ विशिष्ट नाडीयतन्त्र परिचालित होते हैं, कार्यों का सूत्रपात होता है, और फिर वह कार्य, नाडीयतन्त्र मे अन्तर्निहित ऊर्जा[2] द्वारा सम्पन्न होते है। इसी विचारधारा को क्रमश लैशली (1937), हैब (1955) तथा हल (1943) ने भिन्न-भिन्न रूप से बढाया है, तथा इसका प्रयोगात्मक विधि द्वारा अध्ययन किया है ।

हल (1943) ने ड्राइव या प्रेरणा को एक मध्यवर्ती चर[3] के रूप मे स्थापित किया है, जिसको प्रत्यक्ष रूप से देखा नही जा सकता, किन्तु अन्य पर्यवेक्षीय चरो के आधार पर जिसके होने का प्रमाण मिलता है। प्रेरणा, जीव की पूर्ववर्ती[4] दशा तथा परिस्थित के द्वारा निर्धारित होती है, उदाहरणतया, भूख की प्रेरणा इस बात पर निर्भर करेगी कि पिछले कितने घण्टो से व्यक्ति को भोजन प्राप्त नही हुआ है ।

एक अन्य तथ्य जो अभिप्रेरणा का भाग है, वह है प्रोत्साहन या इन्सेन्टिव[5]। उपरोक्त उदाहरण मे खाने का परिमाण तथा प्रकार प्रोत्साहन होगा। इन दोनो ही कारको पर अभिप्रेरणा का बल निर्भर करेगा। उदाहरणार्थ, खाने का परिमाण तथा विशेष प्रकार का भोजन यह निश्चित करेगे कि भूख की प्रेरणा कितनी तीव्र होगी, अभिप्रेरण की शक्ति कितनी तीव्र होगी, तथा व्यक्ति कितनी गति तथा क्षमता से भूख निवारण के प्रयत्नो मे सलग्न होगा ।

प्रोत्साहन का अर्थ यह है कि व्यक्ति किसी प्रकार से प्रबलन की प्रत्याशा कर लेता है, जिसके कारण उसकी अभिप्रेरित क्रिया की दिशा व गति प्रभावित होती है। टोलमैन (1932) ने अनेको अध्ययनो का वर्णन किया है जिनमे प्रोत्साहन का प्रयोगात्मक अध्ययन किया गया है। इन अध्ययनो द्वारा प्रोत्साहन का महत्व स्पष्ट होता है, जैसे, इलियट (1928) ने देखा कि जब पशुओ को कम पसन्द वाले भोजन के स्थान पर अधिक पसन्द वाला भोजन दिया गया तो उनके 'मेज' मे निष्पादन मे प्रगति हुई ।

एक अन्य तत्व जो अभिप्रेरित व्यवहार को प्रभावित करता है, वह है, बाधक कारक[6] अर्थात् खाना पाने के लिए कितनी बाधाओ का सामना करना पडेगा ।

---

1 Drive 2 Energy 3 Intervening variable 4 Antecedents
5 Incentive 6 Obstructions

हल ने इनमे से प्रत्येक प्रत्यय को अलग-अलग परिभापित करके परीक्षित किया है। हल की एक बहुत बडी देख अभिप्रेरण के सम्बन्ध मे यह रही है कि उन्होने प्रेरणा के अध्ययन के लिए प्रायोगिक विधि का ही उपयोग किया है। यद्यपि उनके पूर्व भी कुछ प्रयोगात्मक अध्ययन इस सम्बन्ध मे किये गये थे, जैसे, कुओ (1930), कारमाइकेल (1927) इत्यादि। किन्तु अभिप्रेरण के प्रायोगिक विधि द्वारा अध्ययन की परम्परा हल ने ही सुदृढ बनाई है।

प्रयोगात्मक परीक्षण की विधि यह है, कि हल ने एक को छोडकर अन्य सभी कारको को नियन्त्रित करके उसका प्रभाव अनुक्रिया पर देखा है, जैसे, भूख की प्रेरणा को मापने के लिए एक अनुक्रिया का चयन किया, जैसे एक 'बार' दबा कारखाना प्राप्त करना। तत्पश्चात् अभिप्रेरण सम्बन्धी सारे कारको को नियन्त्रित करके केवल अन्तिम खाना खाने के पश्चात् व्यतीत हुए समय मे परिवर्तन लाये गये जैसे, यह समय एक घण्टे से लेकर 24 घण्टो तक, बढाया गया फिर यह देखा गया कि प्रत्येक प्रयास मे, जैसे-जैसे आखिरी बार खाना खाने के बाद व्यतीत हुआ समय बढता जायेगा वैसे-वैसे, अनुक्रिया के काम-प्रसुप्ति-काल मे परिवर्तन आये या नही। पेरिन (1942) ने इसी प्रकार किये गये प्रयोग मे पाया कि उपरोक्त दशा मे काम-प्रसुप्ति-काल[1] 15 सेकण्ड से लेकर 60 सेकण्ड तक बढता गया। इस प्रकार के प्रयोगो के आधार पर हल ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि अनुक्रिया प्रवृत्ति, आदत व प्रेरणा के सम्मिलित प्रभाव का परिणाम है।

प्रत्येक जैविक प्रेरणा किसी शारीरिक आवश्यकता के कारण होती है। यह शारीरिक आवश्यकताएँ, जीव की आन्तरिक अर्थ-व्यवस्था मे अपूर्णता या बाहुल्यता की स्थितियाँ होती हैं, और यह शरीर मे किसी रासायनिक अथवा अन्य प्रकार के विशिष्ट शारीरिक परिवर्तन को जन्म देती है। यह परिवर्तन प्रेरणा को जाग्रत करने का कार्य करता है (हल 1943)।

हल की यह मान्यता है कि शारीरिक आवश्यकताओ के दो परिणाम होते है प्रेरणा तथा प्रेरणा-उत्तेजक। यह उत्तेजक आन्तरिक या बाह्य कुछ भी हो सकता है, और इसका कार्य एक विशिष्ट प्रतिक्रिया आरम्भ करना होता है। अत प्रतिक्रिया की चयनात्मकता इसी उत्तेजक के कारण होती है, जबकि प्रेरणा का प्रत्यय केवल एक सामान्य उत्तेजक या उद्दीपक की ओर इगित करता है, जिसके द्वारा सामान्य प्रतिक्रिया प्रारम्भ होती है, जिसकी दिशा, विशेप उत्तेजक पर ही निर्भर होती है।

प्रेरणा की सबसे महत्वपूर्ण क्रिया यह है कि वह व्यवहार के लिए ऊर्जा प्रदान करती है। हल के अनुसार ड्राइव का कारण समाप्त[2] हो जाने का प्रभाव व्यवहार के लिए प्रबलनकारी[3] होता है। प्रेरणा इस प्रकार एक ऐसा सामान्य प्रत्यय

---

1 Lutency 2 Drive reduction 3 Reinforcement

है जिसके द्वारा क्रियात्मक ऊर्जा प्राप्त होती है, किन्तु क्रिया की दिशा का ज्ञान नही होता तथा जिसके पूर्ण होने से व्यवहार पर प्रचलनकारी प्रभाव पडता है।

प्रश्न उठता है कि यदि सारी प्रेरणाएँ जीवात्मक आवश्यकताओ पर ही निर्भर होती है तो क्यो न अभिप्रेरको के अध्ययन के लिए इन आवश्यकताओ का ही अध्ययन किया जाय ? प्रेरणा के मध्यवर्ती चर की आवश्यकता ही क्या है ?

प्रेरणा के मध्यवर्ती चर की आवश्यकता अभिप्रेरित व्यवहार को समझने के लिए, यूं पडती है कि, जीव की आवश्यकताएँ विशिष्ट, समुचित व्यवहार को जन्म नही देती।

जैसे, युग व चैंपलिन (1945) ने चूहो पर किए गए एक प्रयोग मे पाया कि चूहे सैकरीन द्वारा मीठे खाने को पसन्द करते थे यद्यपि उसकी आवश्यकता उनके शरीर को नही थी, जबकि केसीन जैसे महत्वपूर्ण तत्व को नही खाते थे जो कि उनके शरीर प्रक्रियाओ के लिये आवश्यक थे। अत आवश्यकताएँ व्यवहार मे भी परिलक्षित हो यह आवश्यक नही है। जबकि प्रेरणा व्यवहार का कारण होती है।

इसके अतिरिक्त प्रेरणा जैविक आवश्यकताओ के अतिरिक्त अन्य बातो पर भी निभर होती है, जैसे भूख की प्रेरणा मात्र क्षेत्रीय सवेदनाओ पर ही निर्भर नही होती वरन् उस पर सामाजिक तत्वो और अनुकूलन का बहुत प्रभाव पडता है। यद्यपि यह सत्य है कि भूख के कारण आमाशय मे कुछ क्रमाकुचन गति होती है जिसे एकवायवीय प्रणाली द्वारा नापा जा सकता है।

इस वायवीय प्रणाली मे एक रबर का बल्ब होता है जिसको प्रयोज्य निगल लेता है और जो आमाशय मे रहता है। यह एक रबर नलिका द्वारा जुडा रहता है, यह रबर नलिका दूसरी ओर एक रिकार्डिंग तबूर से जुडा रहता है, जो कि काइमोग्राफ पर लिखता है। साथ ही प्रयोज्य को यह भी निर्देश दिये जाते है कि जैसी ही उसको भूख के कचोट की अनुभूति हो वो एक यत्र हाथ से दबाए। यह देखा गया कि जब प्रयोज्य ने यत्र दबाया, उसी समय रिकार्डिंग तम्बूर पर भी रिकार्डिंग हुई (कैनन 1934)। अत भूख मे आमाशय मे क्रमाकुचन गतियाँ हुईं।

त्साग (1938) ने देखा कि यदि वेगस तत्रिका को काटकर, क्रमाकुचन गतियो का सवहन मस्तिष्क मे जाने से रोक दिया जाय तब भी खाने की आवश्यकता समय समय पर खाकर मिटाई जाती है (कीज 1950)।

अत प्रेरणा रूपी मध्यवर्ती चर की आवश्यकता स्पष्ट है। थोर्प (1956) ने प्रेरणा की व्याख्या करते हुए कहा है कि प्रेरणा, आन्तरिक व वाह्य स्थितियो की वह जटिल स्थिति है जो एक विशिष्ट प्रकार के व्यवहार को जन्म देती है। इस प्रकार उन्होने जीव मे साम्यावस्था बनाए रखने वाली प्रेरणाओ पर बल दिया।

किन्तु मानव व्यवहार पर ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसके सारे अभिप्रेरित व्यवहारो को मात्र समस्थिति वाली प्रेरणाओ के आधार पर *ही नही*

समझा जा सकता है । उदाहरणतया गवेपणात्मक प्रेरणा की अपनी उपयोगिता है किन्तु वह जैविक प्रेरणा नही है । किन्तु कई प्रयोगो के आधार पर पता चलता है
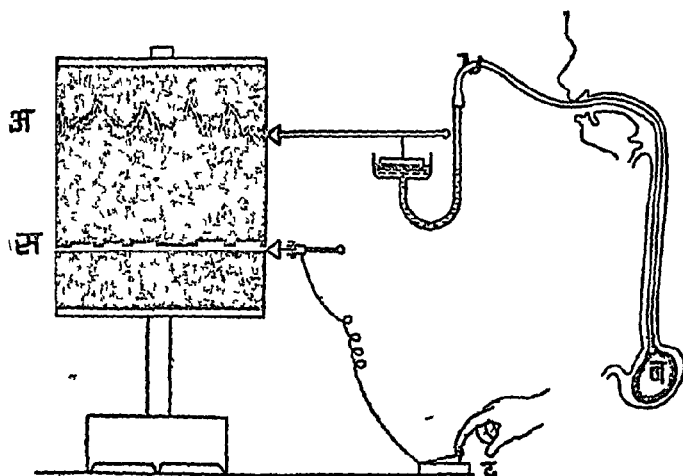
चित्र सख्या 12 1 (कैनन 1934 के आधार पर)

['ब' एक रबर का बल्व है जिसे प्रयोज्य निगल लेता है तथा पेट मे ही रखता है, यह रबर का बल्व रबर नलिका द्वारा रिकार्डिंग तम्बूर से जुडा है। 'अ' काइमोग्राफ पर अमाशय की क्रमाकुचन गतियो को प्रदर्शित करती है। प्रयोज्य एक अनुक्रिया कुजी 'द' पर हाथ रखे रहता है, तथा ज्यो ही उसे भूख की अनुभूति होती है वह कुजी को दबा देता है । यह कुजी भी रिकार्डिंग तम्बूर से जुडी है, फलस्वरूप जब प्रयोज्य अनुक्रिया कुंजी को दबाता है तो काइमोग्राफ 'स' रेकार्ड हो जाता है ।

कि गवेपणात्मक प्रेरणा हर समय ही रहती है । मोन्ट गोमरी (1953) ने पाया कि दो चूहो के दलो मे, एक जो गवेपणात्मक क्रियाओ मे रत रह चुका था, दूसरा जो बाडे मे कैद था, उनके गवेषणात्मक व्यवहार मे कोई अन्तर नही आया, जो चूहा गवेपणा रत रह चुका था उसकी गवेपणात्मक क्रिया के परिमाण मे तथा प्रकार मे, बाडे मे बन्द रहने वाले चूहे की अपेक्षा कोई अन्तर नही आया था ।

इसी प्रकार नकारात्मक या ऋणात्मक प्रेरणाएँ[1] भी होती हैं जो व्यवहार की प्रेरक होती है । ऋणात्मक प्रेरणा का तात्पर्य उन प्रेरणाओ से है जिनके कारण जीव पीडा देने वाले अनुभवो का परिहार करने का प्रयत्न करता है, जैसे दण्ड या शॉक से बचने का ।

इसके अतिरिक्त गौण प्रेरणाओ का भी प्रत्यय हल ने दिया, जो कि अर्जित होती है ।

---

1 Negative drives

उत्प्रेरको के सम्बन्ध मे सर्वप्रथम, सर्वाधिक महत्व का काम पैवलोव (1927) ने किया। उन्होंने अनुकूलित अनुक्रिया का सिद्धान्त बताते हुये कहा कि यदि कोई असम्बद्ध उत्तेजक बार-बार किसी प्रबलनकर्त्ता परितोषक के साथ उपस्थित होता है तो वह असम्बद्ध उत्तेजना अनुकूलित उत्तेजक[2] का रूप धारण कर लेता है व उसी अनुक्रिया का कारक हो जाता है। उनके सुविख्यात प्रयोग मे मेट्रोनोम की आवाज खाने के संकेत का कार्य करती थी। अत धीरे-धीरे कुत्ता इस उत्तेजक के प्रति भी उसी प्रकार से अनुक्रिया करने लगा, जिस प्रकार से खाने के लिये करता था। इसी नियम का उपयोग हल ने भी अपने सिद्धान्तों मे किया है।

हल ने उत्प्रेरक की कल्पना एक सीखी हुई प्रेरणा के रूप मे की। उत्प्रेरक का किसी प्रेरणा से साहचर्य होता है जिससे वह प्रेरक शक्ति का कार्य करने लगता है।

हल ने अवाप्त प्रेरणा[3] की कल्पना की, जैसे निकोटीन, कैफीन अथवा किसी औषध की आदत एक अर्जित अवाप्त प्रेरणा है, इसका अधिगम इस प्रकार होता है कि इन वस्तुओं के उपयोग मे व्यक्ति को अवाछनीय भावो, जैसे उद्विग्नता आदि से छुटकारा मिलता है, अत उनका उपयोग प्रबलित होता है, और वह औषध अवाप्त प्रेरणा का स्थान ग्रहण कर लेती है।

इसीलिए इन अवाप्त प्रेरणाओ को गौण कहा जाता है क्योंकि उनकी प्रेरक शक्ति, प्राथमिक उत्प्रेरको के साथ साहचर्य पर निर्भर होती है और यह साहचर्य अधिगम द्वारा बनते हैं। हल (1943) ने इनकी व्याख्या करते हुए कहा कि जो

---

1 Incentives 2 Conditioned stimulus 3 Acquired drives

उत्तेजक निरन्तर प्रबलन के साथ उपस्थित रहते हैं, वह गौण उत्प्रेरको[1] के लक्षण प्राप्त कर लेते हैं।

मिलर (1951) के अध्ययनो से यह स्पष्ट है कि यदि इस गौण उत्प्रेरक के उपस्थित होने मे अधिक समय लगता है तो उनकी उत्प्रेरक शक्ति क्षीण हो जाती है, (जैनकिन्स 1950, 1951)। उदाहरणतया कोई चालन छिप्टी या पोकर चिप जैसी तटस्थ वस्तु भी उत्प्रेरक बन सकती है। वुल्फ (1937) ने चिम्पैंजी के कुछ प्रयोगो मे पोकर चिप का प्रयोग मशीन से खाने का सामान पाने के लिए करना सिखाया। बाद मे चिम्पैन्जी पोकर चिप इकट्ठा करने लगा ताकि मन पसन्द सामान निकाल सके।

यही क्रम ऋणात्मक उत्प्रेरको मे भी लागू होता है, उदाहरणतया मिलर ने प्रयोग मे चूहे को सफेद बक्से मे शॉक देकर सफेद बक्स का भय उत्पन्न करा दिया।

इसी से सम्बद्ध एक और प्रत्यय है दण्ड का। थार्नडाइक (1898) ने जब अपना प्रभाव का नियम पहली बार बनाया तो उन्होने उसमे दण्ड का कोई उल्लेख नही किया। 1911 मे उन्होने अपने इस नियम का पुर्नानिरीक्षण किया जिसमे उन्होने कहा कि जो साहचर्य, प्रबलन के कारण शक्तिशाली होता है वही दण्ड के कारण क्षीण हो जाता है किन्तु 1932 मे उन्होने एक और पुर्नानिरीक्षण मे इस नियम को पुन निकाल दिया। किसी उत्तेजक के प्रति अनुक्रिया हो जाने पर यदि कोई निषेधात्मक उत्तेजन दिया जाय तो उसे दण्ड कहा जाता है।

अन्य प्रयोगात्मक अध्ययनो के द्वारा थार्नडाइक के निष्कर्ष के विपरीत परिणाम मिले हैं। वार्डन तथा एल्सवर्थ (1927) ने जानवरो को प्रकाशित तथा अप्रकाशित चक्की मे भेद कराना सिखाया। चूहो को दो दलो मे विभक्त कर दिया, एक दल को सही भेद करने वाली अनुक्रियाओ को खाने के द्वारा प्रबलित किया गया। दूसरे दल को सही अनुक्रिया के प्रबलन के साथ-साथ गलत अनुक्रिया के लिए शॉक भी दिया गया। उन्होने पाया कि दूसरे दल ने, जिसे प्रबलन तथा दण्ड दोनो दिये गये थे, पहले दल (केवल प्रबलन दल) की अपेक्षा बहुत जल्दी अनुक्रिया सीख ली। अत, जैसाकि वुडवर्थ (1950) ने कहा है, सम्भवत ऋणात्मक उत्प्रेरक, (1) चुनने की क्रिया को विलम्बित कर देता है (2) दण्डित के स्थान पर प्रबलित अनुक्रिया का चयन करा देता है और इस प्रकार व्यवहार को नियन्त्रित करता है।

दण्ड के कारण अधिगम इसलिये भी होता है कि दण्ड का हटना, ड्राइव समाप्ति करता है, अर्थात् पीडा पहुँचाने वाले उत्तेजक को हटाकर, उस व्यवहार को, प्रवलित करता है जिसके कारण पीडा देने वाला उत्तेजक हटाया गया।

इसके अतिरिक्त दण्ड के कारण उस प्रकार के व्यवहार का अधिगम होता है जो कि दण्डित व्यवहार के होने मे बाधा डालता हो। इस प्रकार दण्ड के कारण भी व्यवहार अभिप्रेरित होते हैं, यह स्पष्ट है।

---

1 Secondary reinforcers

अब तक अभिप्रेरण के सम्बन्ध मे जो विचार देखे गये, उन सभी मे, हल, वाटसन, पैवलोव, वुडवर्थ आदि सारे मनोवैज्ञानिको ने उत्तेजक व अनुक्रिया के साहचर्य सम्बन्धो पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया है। एक अन्य व्यवहारवादी टोलमैन (1932) ने दूसरी विचारधारा प्रतिपादित की है, जिसे सोद्देश्य व्यवहारवाद[1] की सज्ञा दी जाती है। उनका मत, फ्रायड, लेविन आदि अभिप्रेरणावादी विचारको से मिलता है, किन्तु व्यवहारवादी होने के नाते, टोलमैन ने आनुभविक परिभाषाओ तथा परिचालन पदो[2] के उपयोग पर बल दिया है।

परिचालन पद वह पद होते है जिनकी परिभाषा उन क्रियाओ का वर्णन करके दी जाती है जो प्रयोग के दौरान मे उस पद के सम्बन्ध मे की गई। टोलमैन ने कहा कि मनोवैज्ञानिको को प्रत्यक्ष उत्तेजको से प्रत्यक्ष व्यवहार के सम्बन्धो को जानने का प्रयत्न करना चाहिये। इन सम्बन्धो को समझने के लिए उन मध्यवर्ती चरो का भी प्रयोग किया जा सकता है, जिनकी परिचालित पदो के द्वारा परिभाषा दी जा सकती है।

टोलमैन का यह दृढ विश्वास है कि किसी उत्तेजक व अनुक्रिया के सम्बन्ध को समझने के लिए, यह जानना आवश्यक है कि उस व्यवहार का लक्ष्य क्या है। उनके अनुसार प्रत्येक कार्य के पीछे कोई लक्ष्य निहित होता है, जिसके कारण ही व्यक्ति किसी कार्य को लम्बे समय तक अनुलबित और सम्पादित करता रहता है। जैसे थार्नडाइक के प्रयोगो मे बार-बार भूलो के बाद भी बिल्ली लम्बे समय तक प्रयत्न करती ही रहती है, वह इसी लक्ष्यपूर्ति के लिए। उनकी इस विचारधारा का परोक्ष व प्रत्यक्ष दोनो ही रूप से मानवी अभिप्रेरण पर किए गए अध्ययन पर बहुत गहन प्रभाव पडा है, जिसका अवलोकन यथास्थान किया जायेगा।

सक्रियकरण तथा उडोलन

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या प्रेरणा एक सामान्य बल है, या बहुत सारी भिन्न-भिन्न प्रेरणाओ के कारण विभिन्न व्यवहार होते हैं ? अधिकाश मनोवैज्ञानिको, उदाहरणतया वुडवर्थ, हैब तथा ब्राउन ने यह स्वीकार किया है कि प्रेरणा एक सामान्य बल है जिसके द्वारा व्यवहार के लिए ऊर्जा व सचालन प्राप्त होता है। इस प्रकार प्रेरणा को एक मध्यवर्ती चर के रूप मे स्वीकार किया गया है, और इस अर्थ मे वह मात्र शारीरिक आवश्यकताओ द्वारा जनित न मानी जाकर अभिप्रेरण के पर्यायवाची के रूप मे स्वीकार की गई है। कैम्पवैव तथा मिसनिन (1969) ने अभिप्रेरण का आलोचनात्मक विवेचन करते हुए इस परम्परा को स्वीकार किया है व सराहा है क्योकि उनके अनुसार अभिप्रेरण मनोविज्ञान अभी जिस स्थिति मे है उसमे इन पदो की सीमित परिभाषा, केवल इस दिशा मे होने वाले अध्ययनो को रोकने मे ही समर्थ होगी।

---

1 Purposive behaviorism 2 Operational definitions

अब यह मान्यता बढती जा रही है कि जीव के, विशेपकर जातिक्रम मे ऊँची जातियो मे जीवो के, सभी कार्य केवल समस्थिति वाली प्रेरणाओ के माध्यम से तो नही समझाये जा सकते वरन् अर्जित प्रेरणाओ के आधार पर भी नही समझाये जा सकते। जीव जातिक्रम की ऊँची जातियो मे बहुत से व्यवहार ऐसे हैं जिन्हे भूख, यौन आदि जैसी शारीरिक आवश्यकताओ तक नही घटाया जा सकता, उनके लिए अन्वेपण आदि प्रेरणाओ की उत्पत्ति की गई है (हारलो, 1950, 1953) तथा बर्लाइन की उत्सुकता प्रेरणा की।

किन्तु और भी अन्य ऐसे व्यवहार है जो कि इन प्रेरणाओ, या अन्य सीखी या अर्जित प्रेरणाओ के अन्तर्गत भी नही आते, इनको समझने मे कुछ आधुनिक तन्त्रिका-तन्त्र पर हुये अन्वेपणो से बहुत प्रकाश पडा हे।

सक्रियकरण ऊर्जा

इस सदर्भ मे दो प्रत्यय विशेप रूप से सामने आये है, ये क्रमश इस प्रकार है सक्रियकरण ऊर्जा, तथा उडोलन। यद्यपि इन दोनो शब्दो का प्रयोग अदल-बदल कर किया गया है तथापि इनमे भेद करना, जैसा कि वरनन ने किया है, अधिक अच्छा है।

वरनन (1969) ने सक्रियकरण का उपयोग, ऊर्जा का विभिन्न व्यवहारो मे उपयोग के रूप मे किया है और उडोलन का व्यवहार व ध्यान को दिशा देने के अर्थ मे किया है।

निकटवर्ती समय मे हुए अन्वेपणो से यह ज्ञात हुआ है कि मस्तिष्क का एक भाग, रेटीकुलर फार्मेशन या जालीय आकार, सक्रियता व उडोलन का निर्देशन करता है। मस्तिष्क का यह भाग एक ओर हारमोन आदि आन्तरिक व दूसरी ओर बाह्य उत्तेजना आदि से प्रभावित होता है, और साथ ही साथ कॉरटेक्स के साथ भी परस्पर क्रिया करता है जो कि आन्तरिक व बाह्य उत्तेजनाओ को अर्थ प्रदान करती है। इसको प्रत्यक्ष रूप से उत्तेजना दिए जाने पर जीव मे अधिक सतर्कता आती है व प्रत्यक्षण आदि प्रक्रियायें भी अधिक सुग्राही व सवेदनशील बन जाती है।

हैब तथा अन्य विद्वानो ने इस बात पर बल दिया कि मस्तिष्क की सरचना ही इस प्रकार की है कि वह क्रियाशील है—जब तक उसे ऊर्जा प्राप्त होती रहती है तब तक वह निरन्तर क्रियाशील रहता है। इस प्रकार उन्होने विशेप बल देकर यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि केवल विशिष्ट शारीरिक आवश्यकताओ जनित प्रेरणाओ, जैसे भूख यौन आदि के कारण ही व्यवहार नही होता वरन् व्यवहार के अभिप्रेरण मे एक महत्वपूर्ण तत्व मस्तिष्क की स्वत क्रियाशीलता की प्रवृति भी है।

डफी (1962) ने भी यह दर्शाने का प्रयत्न किया है कि अभिप्रेरित व्यवहार की दिशा, न केवल विभिन्न प्रेरणाओ जैसे भूख इत्यादि पर निर्भर होती है वरन् वह क्रियकरण व उडोलन पर भी निर्भर होती है।

सक्रियकरण का स्तर एक ओर तो वाह्य उत्तेजना की तीव्रता पर निर्भर होता है और दूसरी ओर व्यक्ति उस उत्तेजना का किस प्रकार मनोवैज्ञानिक मूल्यांकन करता है, इस पर आधारित होता है। अत यदि कोई उत्तेजना, जो किसी व्यक्ति विशेष के लिए महत्वपूर्ण अथवा कठिन है, या उसकी लक्ष्यपूर्ति मे बाधा डालता है, तो वह उत्तेजना उसके सक्रियकरण के स्तर को बढा देती है। जैसे कि हाल ही मे हैकहाऊसेन (1967) ने प्रयोगात्मक अध्ययनो के आधार पर बताया कि जिन व्यक्तियो मे लब्धि प्रेरक अधिक तीव्र होता है उनमे सक्रियता का स्तर भी अधिक होता है, तथा वे लोग अधिक ऊर्जा की लामबन्दी भी करते हैं।

हैव (1955) ने एक पैडागोजिकल प्रयोगात्मक अध्ययन मे यह भी देखा कि मनुष्य मे कार्य करने की इच्छा एक सामान्य विशेषता है। इस प्रयोग मे 600 स्कूल के बच्चो को, जिनकी आयु 6 से 15 वर्ष तक थी, एकाएक यह बताया गया कि उन्हे कक्षा मे कोई भी काम करना जरूरी नही है, और वे उतना ही और केवल उसी समय कार्य करने को स्वतन्त्र हैं जो वे करना चाहे। किन्तु दूसरे बालको के कार्य मे बाधा देने पर उन्हे दण्ड दिया जायेगा। दण्ड यह होगा कि उन्हे बाहर जाकर खेलना होगा, और अच्छे व्यवहार का पुरस्कार यह मिलेगा कि उन्हे 'काम' करने दिया जायेगा। यह पाया गया कि बहुत शीघ्र ही अर्थात् एक दो दिनो मे ही यह स्पष्ट होने लगा कि अधिकाश बच्चो को, कोई कार्य न करने की अपेक्षा, कुछ कार्य कुछ सीमा तक करना पसन्द था। यही बात बैक्सटन हेरोन तथा स्काट (1954) के प्रयोग मे भी स्पष्ट होती है। उन्होने कुछ प्रयोज्यो को, उनकी स्वेच्छा से काफी अधिक वेतन पर प्रयोगशाला मे विशेष रूप से बनाए गये कमरे मे रखा जहाँकि प्रयोज्यो को कुछ भी कार्य नही करना था, साथ ही साथ न वे कुछ देख सकते थे न सुन और न ही स्पर्श कर सकते थे। प्रयोज्य के माँगने पर उसे भोजन दिया जाता था व उसे किसी भी प्रकार की पीडा नही पहुँचाई जाती थी। किन्तु यह पाया गया कि लगभग 5-6 घण्टे के बाद प्रयोज्य बेचैन होने लगे और किसी भी प्रकार की क्रिया व बाह्य उत्तेजना का आवाहन करने लगे। उन्हे सोचने व अन्य संज्ञात्मक प्रक्रियाओ मे कठिनाई होने लगी और जो एकान्त से निकल जाने पर भी 24 घन्टो तक अस्त-व्यस्त रही। प्रश्न उठता है क्यो ? इस प्रश्न का उत्तर सहज नही है। किन्तु यदि व्हाइटिंग तथा मोरर (1943) व बर्लाइन (1950) आदि के प्रयोगात्मक परिणामो को देखें तो इस प्रश्न का उत्तर कुछ-कुछ मिलने लगता है। इन विद्वानो ने पाया कि उत्सुकता व भय मे एक सम्बन्ध है अर्थात् भयावह परिस्थितियो का भी व्यक्ति एक सीमा तक आवाहन करता है क्योंकि उसके कारण उत्तेजना प्राप्त होती है, क्रियाशीलता होती है।

अत यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सक्रियकरण ऊर्जा के कारण बहुत से व्यवहार होते हैं, इसी को हैव ने सामान्य प्रेरणा भी कहा है। यह ऊर्जा

वाह्य उत्तेजनाओ, व कॉर्टिकल स्वत क्रियाशीलता व सज्ञानात्मक अर्जित तत्त्वो के पारस्परिक जटिल क्रियाओ के फलस्वरूप होती है।

सक्रियकरण मे आने वाले परिवर्तनो के कारण अभिप्रेरित कार्यों मे भी परिवर्तन आते है। उदाहरणतया, थकान या भग्नाशा की दशा मे प्राय देखने मे आता है कि क्रियाशीलता की ऊर्जा का उपयोग भावावेश व्यक्त करने और सवेगो को व्यक्त करने मे अधिक और किसी कार्य को सम्पन्न करने मे कम होता है।

कार्यों को भली-भाँति प्रतिपादित करने के लिए सक्रियकरण का एक सर्वोत्तम स्तर होता है। उससे कम क्रियाशीलता मे शिथिलता, और अधिक क्रियाशीलता मे अत्यधिक उत्तेजित अवस्था उत्पन्न होती है, जिसके कारण अनुकूल व उपयुक्त व्यवहार नही परिलक्षित होता। बरनन (1969) के अनुसार यह क्रियाशीलता, बौद्धिक तथा अन्य विशेष योग्यता वाले कार्यों मे अपेक्षाकृत कम होने पर ही सर्वोत्तम रूप से कार्य सम्पन्न होने मे सहायक होती है। यद्यपि विन्द्रा (1959) के विचार से सवेगो और अभिप्रेरित कार्यों की व्यवस्था का स्तर, क्रियाशीलता के स्तर पर उतना निर्भर नही करता वरन् वह स्वय ही अभिप्रेरित व्यवहार का एक अलग पहलू है।

क्रियाशीलता या सक्रियकरण के स्तर को यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से नही नापा जा सकता तथापि सक्रियकरण के स्तरो मे होने वाले परिवर्तनो का ज्ञान आन्तरिक शारीरिक क्रियाओ मे होने वाले परिवर्तनो से होता है। इसका प्रयोगात्मक विधि से अध्ययन भी किया गया है। यह शारीरिक प्रक्रियाएं इस प्रकार हैं रक्त-चाप तथा, हृदय गति मे होने वाले परिवर्तन इत्यादि। किन्तु इन शारीरिक प्रक्रियाओ का सक्रियकरण से सम्बन्ध उतना सरल व सीधा नही है, क्योकि यह प्रक्रियाएँ वस्तु-स्थिति व व्यक्ति दोनो पर ही निर्भर करती है।

सक्रियकरण द्वारा अभिप्रेरित व्यवहारो पर अनेको प्रयोगात्मक अध्ययन किये गये हैं। इन अध्ययनो मे किसी शारीरिक क्रिया, जैसे हृदयगति या रक्त-चाप[1] इत्यादि, जिनमे सक्रियकरण के कारण अन्तर आता है, उसका मौलिक सक्रियता स्तर[2] माप लेते हैं, तत्पश्चात् प्रायोगिक समूह को एक ऐसी बाह्य उत्तेजना जिससे प्रयोज्यो की सक्रियता मे परिवर्तन आये, दी जाती है। नियन्त्रित दल को उत्तेजना नही दी जाती, तत्पश्चात् दोनो समूहो के प्रयोज्यो के रक्तचाप या हृदयगति मे आये परिवर्तनो की तुलना की जाती है। यदि प्रायोगिक दलो के प्रयोज्यो मे नियन्त्रित दल की अपेक्षा कोई अन्तर पाया जाता है तो उसका कारण उस बाह्य उत्तेजना के कारण सक्रियकरणो मे आये परिवर्तनो को ही माना जाता है।

एक प्रयोगात्मक अध्ययन के द्वारा, पाया गया कि सक्रियकरण तथा हृदय-गति मे आने वाले परिवर्तनो के बीच के सम्बन्ध काफी जटिल है। इस प्रयोग मे

---

1 Blood pressure 2 Basal activation level

प्रयोज्यो के जीवन दर्शन पर चोट की गई, जिसे उन्हें सुनना था, और अन्त में अपने जीवन-दर्शन के बचाव में विचार प्रकट करने थे, (मरे 1963)। परिणामों से ज्ञात हुआ कि जब प्रयोज्य इन प्रतिवादों की प्रतीक्षा कर रहे थे तभी उनकी हृदय-गति बढ़ गई, और प्रतिवादों को सुनते समय उतनी ही बनी रही, प्रतिवादों का जोर से उत्तर देते समय वह और भी बढ़ गई, किन्तु उन व्यक्तियों की, जो शान्ति से अभिनूतना से उत्तर दे रहे थे, हृदय गति नहीं बढ़ी।

लेसी (1963) ने यह पाया कि हृदयगति उस समय बढ़ती है जब व्यक्ति अप्रिय उत्तेजना को नकारता है या अस्वीकृत करता है, किन्तु दूसरी ओर जब व्यक्ति बाह्य उत्तेजनाओं को सुप्रिय पाता है और उनकी ओर ध्यान देता है तो हृदयगति कम ही रहती है।

हृदयगति की इस भेदक अनुक्रिया प्रवृत्ति[1] के कारण उससे अधिक विश्वसनीय, सक्रियशीलता का सूचक मांसपेशियों में तनाव परिवर्तन का माप है। इसके अतिरिक्त शरीर में ध्वनि की सवाहिता[2] तथा प्रतिरोध[3] का मापन और भी अधिक विश्वसनीय है। यह पाया गया है कि सक्रियशील होने पर तथा संवेगात्मक स्थिति में, शरीर के विद्युत प्रतिरोध कम हो जाता है, जबकि मांसपेशियों में तनाव बढ़ जाता है।

जबकि सवेगात्मक रूप से शान्त व स्थिर प्रकृति वाले व्यक्ति देर से सक्रिय होते है, उनकी सक्रियता का स्तर भी कम होता है तथा वह अपने मौलिक-सक्रियता स्तर[1] पर भी अधिक शीघ्रता से लौट आते है।

सक्रियता को प्रभावित करने वाला एक अन्य तत्व है उत्प्रेरक। ब्रोवेक (1948) ने पाया कि द्वितीय महायुद्ध के दौरान मे जर्मन व्यक्तियो को सिगरेट का लालच देकर अधिक कार्य कराया गया। उनका कार्य (अर्थात सक्रियता स्तर भी) तो इस सिगरेट के उत्प्रेरक के कारण बढ गया किन्तु उनके शरीर का वजन कम हो गया।

इन अध्ययनो के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सक्रियकरण के द्वारा उत्तेजितावस्था उत्पन्न होती है अर्थात् वह ऊर्जा उत्पन्न होती है जिसमे ऊपर अभिप्रेरित व्यवहार निर्भर रहता है।

उडोलन—सक्रियकरण के समान ही एक अन्य प्रक्रिया है जिसकी भूमिका अभिप्रेरण को समझने मे बहुत ही महत्वपूर्ण है वह है उडोलन अथवा एराउजल। अनेक विद्वानो जैसे हौकेनसेन (1969) आदि का मत है कि उडोलन को एक सातत्यक[2] के रूप मे देखा जा सकता है, जिसके एक छोर पर गहरी निद्रा और दूसरे छोर पर अत्यधिक क्रियाशीलता और उत्तेजना है। इन दोनो सीमान्तो के बीच मे कई स्तर का उडोलन होगा, उदाहरणतया, उनीदे विश्रामकाल, शान्त, आकुलता, तनावपूर्ण स्थिति इत्यादि (बिन्द्रा 1959)।

अत सामान्यतया, उडोलन के स्तर का अर्थ होगा, किसी विशेष समय पर व्यक्ति की शारीरिक क्रियाशीलता और उत्तेजितावस्था का परिणाम और इसी उत्तेजितावस्था के विभिन्न स्तर होगे, गहरी निद्रा से लेकर अत्यधिक क्रियाशीलता व उत्तेजना तक। यूँ तो तीव्रता आयाम या परिमाप[3] बहुत समय से मनोवैज्ञानिको के सिद्धान्तो का महत्वपूर्ण अग रहा है। वुड (1897) ने बहुत पहले ही तीव्रता को सवेगो का एक महत्वपूर्ण आयाम बताया। कैनन का सवेगो का सिद्धान्त सन् 1929 मे उभरा जिसमे सवेगात्मक स्थिति मे, ऊर्जा विचलन पर विशेष बल दिया गया, तत्पश्चात् डफी (1941) ने भी ऊर्जा विचलन के विभिन्न स्तरो या तीव्रताओ को महत्व दिया। इधर उपचार व निदान मनोवैज्ञानिक तथा व्यक्तित्व का विशेष अध्ययन करने वाले मनोवैज्ञानिको ने भी तनाव, चिन्ता इत्यादि के प्रत्ययो पर विशेष बल दिया है, जिन सभी मे तीव्रता का विशेष महत्व है। कुछ समय पूर्व, मनोवैज्ञानिक उडोलन या उत्तेजितावस्था की तीव्रता के शारीरिक कारणो को जानने के लिए व्यग्र होने लगे। मौरूजी तथा मैगून (1949) ने उडोलन का शरीर-क्रिया की दृष्टि से अध्ययन किया तथा, गहन निद्रा से लेकर अत्यधिक

---

1 Basal activation level 2 Continuam 3 Dimension

उत्तेजना की स्थिति मे होने वाले शरीर-क्रिया सम्बन्धी कुछ प्रक्रियाओ का पता लगाने मे सफल हुये।

उडोलन सम्बन्धी शरीर-क्रियाएँ—अब तक हुये अनुसधानो के आधार पर यह ज्ञात हो चुका है कि मुख्यतया तीन शारीरिक प्रक्रियाएं उडोलन से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है और यह इस प्रकार है—कॉरटेक्स, हाइपोथैलेमस तथा रेटीकुलर फॉर्मेशन।

उडोलित होने पर मस्तिष्क मे होने वाली विद्युत क्रियाओ मे कुछ विशिष्ट परिवर्तन आते है, जिन्हे मापने के लिए इलेक्ट्रो एनसेफेलोग्राम[1] नामक यन्त्र का उपयोग किया जाता है। इन विद्युत प्रक्रियाओ मे होने वाले परिवर्तनो को मापने की प्रक्रियाएँ है कि सर्वप्रथम वाह्य विद्युदग्र[2] खोपडी के ऊपर लगा दिये जाते है जो मस्तिष्क मे उत्पन्न होने वाली विद्युत तरगो मे होने वाले परिवर्तनो को नापते है। इन तरगो के स्वरूप को फिर एक प्रवर्धन की प्रणाली के द्वारा अनूदित करके मैगनेटिक टेप अथवा इलेक्ट्रोएनसेफेलोग्राम के कागज पर उतारा जाता है। तत्पश्चात् विद्युत तरगो मे होने वाले अनेक परिवर्तनो जैसे प्रवर्धन[3] आवृति आदि का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया जाता है।

कुछ समय पहले तक इन इलेक्ट्रोएनसेफेलोग्राफो (इ० ए० ग्रा०) को पढना और विश्लेपित करना कोई सहज कार्य नही था, किन्तु अब कम्प्यूटर की सहायता से यही कार्य अधिक सुविधा, शीघ्रता तथा शुद्धता द्वारा सम्पादित किया जा सकता है।

इ० ए० ग्रा० के विस्तृत अध्ययनो तथा तत्सम्बन्धी व्यवहारो के अध्ययन से कुछ महत्वपूर्ण तथ्य सामने आए हैं जो उडोलित व्यवहार की विशेपताओ पर प्रकाश डालते है। प्रयोगात्मक अध्ययनो के आधार पर जैस्पर (1958) ने यह पाया कि मस्तिष्क सम्बन्धी विद्युत-तरगो की आवृत्ति इत्यादि मे होने वाले परिवर्तनो के साथ-साथ वाह्य व्यवहार मे भी परिवर्तन होते हैं।

यदि निद्रावस्था से सक्रियता तक उडोलन एक सातत्यक है, तो उसमे कई स्थितियाँ आती है और यह स्थितियाँ इ० ए० ग्रा० मे भी परिलक्षित होती हैं। जाग्रतावस्था मे साधारण विश्राम की दशा मे जो तरगे देखने मे आती हैं, जोकि नियमित होती हैं तथा जिनका प्रवर्धन मध्यम श्रेणी का होता है उनकी आवृत्ति प्राय 9-13 तरग प्रति सेकण्ड होती है। इन्हे अल्फा तरगें कहते हैं। इसको आधार मानकर मस्तिष्क की विद्युत गति मे होने वाले परिवर्तनो का मूल्याकन किया जाता है।

जैसे-जैसे व्यक्ति इस विश्राम से तन्द्रित होता हुआ निद्रित होता जाता है, वैसे ही अल्फा तरगो के स्थान पर एक और स्वरूप उभरने लगता है, जिसमे धीमी

---

1 Electroencephalogram 2 External electrodes 3 Amplitude

गति वाली अधिक प्रवर्धन वाली डेल्टा तरगें होने लगती हैं, जबकि उत्तेजितावस्था मे तेज गति वाली कम प्रवर्धन वाली अव्यवस्थित-सी तरगें देखने को मिलती हैं।
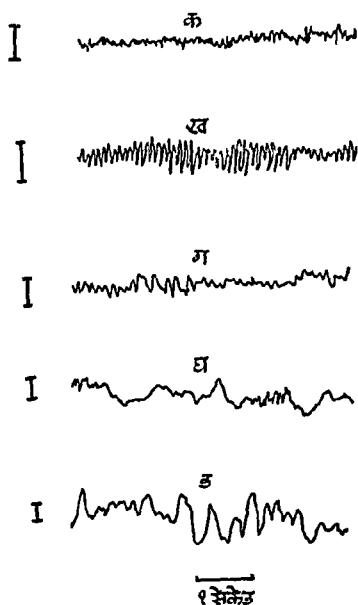
चित्र संख्या 12 2

[उडोलन की विभिन्न स्थितियो मे मानवी इलेक्ट्रोएनसेफेलोग्राफो के अनेक रूप, क—उत्तेजित अवस्था, ख—विश्राम की अवस्था, ग—तन्द्रिलावस्था घ—निद्रावस्था, ङ—प्रगाढ निद्रा। (एच जैस्पर (1941) के आधार पर)]

निद्रावस्था की गहनता रात्रि भर बदलती रहती है, जिसके अनुरूप व्यावहारिक तथा मस्तिष्क की विद्युत तरगो मे भी परिवर्तन होते हैं। उदाहरणतया तन्द्रिलावस्था[1] मे इ० ए० ग्रा० अधिक अनियन्त्रित हो जाता है और प्रवर्धन कम हो जाता है (कामिया 1961), साथ ही साथ शरीर प्रक्रियाएँ भी शिथिल पड जाती हैं, पेशियाँ ढीली हो जाती हैं, हृदयगति तथा श्वास प्रक्रिया अधिक नियमित हो जाती है (स्नाईडर 1960)। निद्रावस्था की दूसरी अवस्था मे इ० ए० ग्रा० का प्रवर्धन बढ जाता है और बीच-बीच मे सक्रियता दिखाई देती है। तीसरी अवस्था मे नियमित, अधिक प्रवर्धन वाली तरगें, दिखाई पडने लगती है, तथा चौथी स्थिति मे सबसे गहरी नीद आती है, हृदयगति, तथा पेशीय तनाव कम हो जाता है, तथा इ० ए० ग्रा० मे धीमी, अधिक प्रवर्धन वाली नियमित तरगे देखने मे आती हैं और

1 Drowsiness

अन्त मे रैपिड आई मूवमेन्ट[1] की दशा आती है, जिसमे इ० ए० ग्रा० मे तीव्र अनियत्रित क्रियाशीलता दृष्टिगोचर होती है। हृदयगति इत्यादि मे भी एकाएक बदलाव आता है और ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे व्यक्ति सक्रिय व उडोलित है, भले ही वह सोया हुआ है।

इस उडोलन सातत्यक के दूसरे छोर पर, जाग्रतावस्था मे, क्रियाशीलता का छोर है, जिसे लिन्डस्ले (1951) ने सक्रियता कहा है। यह सक्रियता विभिन्न मात्राओ मे उत्तेजना देकर विभिन्न परिणामो मे उत्पन्न की जा सकती है, जैसे, सवेदीय उत्तेजना, पेशीय गतिशीलता, सवेगात्मक तथा बौद्धिक उत्तेजना इत्यादि के द्वारा। भिन्न परिमाणो म उडोलन उत्पन्न होता है जिसके फलस्वरूप कारटेक्स मे विद्युत तरगो मे परिवर्तन आते है।

वस्तुत कारटेक्स मे होने वाली विद्युत प्रक्रियाओ का मस्तिष्क के निम्न भाग मे होने वाली क्रियाओ, हाइपोथैलेमस तथा रेटीकुलर फार्मेशन इत्यादि मे होने वाली क्रियाओ से भी बहुत घनिष्ट रूप से सम्बद्ध है।

यह पाया गया है कि हाइपोथैलेमस का पश्च भाग[2] जाग्रतावस्था बनाये रखने के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है, अत जाग्रतावस्था मे उडोलन का स्तर भी इसकी क्रियाशीलता पर आधारित होता है। हाइपोथैलेमस के इस भाग मे चोट इत्यादि।

लगने से व्यक्ति लम्बे समय तक प्रसुप्त रहता है, (रैन्सन 1939), तो दूसरी ओर सामान्य व्यक्ति के इस भाग को वाह्य रूप से विद्युत उत्तेजना देने पर हृदय गति इत्यादि बढ जाती है, व्यक्ति अधिक उत्तेजित दिखाई देता है तथा इ०ए०ग्रा० मे भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं।

रेटीकुलर फॉर्मेशन पर भी उडोलन की सीमा निर्भर करती है। मस्तिष्क का यह भाग जटिल जाल-स्वरूप होता है। यह मेडयूला से लेकर पश्च हाइपोथैलेमस से होते हुए निम्न थैलेमस तक रहता है। शरीर की मुख्य अभिवाही तन्त्रिकाएँ[3], जो पेशियो तथा अभ्यान्तरागो से आती है, रेटीकुलर फार्मेशन मे सूचनाएँ लाती है और उसे उडोलित करती है। तत्पश्चात् यह रेटीकुलर क्रियाशीलता कॉरटेक्स को उडोलित करती है, क्योकि रेटीकुलर फार्मेशन से कॉरटेक्स मे भी नाडियाँ जाती है।

फ्रैन्च महोदय ने यह पाया (1955) कि मस्तिष्क के यह दोनो भाग पारस्परिक रूप से कार्य करते हैं, अर्थात् रेटीकुलर फॉर्मेशन के उत्तेजित होने से कॉरटेक्स भी उत्तेजित होता है तथा इसी प्रकार से कॉरटेक्स के उत्तेजित होने से रेटीकुलर फॉर्मेशन भी उडोलित होता है।

---

1 Rapid eye-movement 2 Posterior area 3 Afferent nerves

इसके अतिरिक्त मस्तिष्क के अन्य भाग भी उडोलन के लिए महत्वपूर्ण होते है। ग्रोसमैन (1967) के अनुसार लिम्बिक क्षेत्र[1], आन्तरिक प्रेरणाओ इत्यादि के कारण होने वाले उडोलन के लिए, बहुत महत्वपूर्ण है जबकि रेटीकुलर फार्मेशन बाह्य उत्तेजनाओ द्वारा होने वाले उडोलन के लिए महत्वपूर्ण है।

एक प्रश्न यह है कि किन दशाओ मे उडोलन तीव्र व किन दशाओ मे मन्द होता है। इस विषय पर अनेक शोध भी हुए हैं। प्राय यह देखा गया है कि नवीन उत्तेजनाएँ अधिक उडोलित करती हैं जबकि एकरस और एकरूप उत्तेजनाओ के समक्ष उडोलन मन्द हो जाता है। अर्थपूर्ण, रुचिर व अप्रत्याशित घटनाएँ भी उडोलन को जाग्रत करती है, अत्याधिक नवीन उत्तेजनाएँ होने पर भी अत्याधिक उडोलन व भय की प्रतिक्रियाएँ होती हैं। उदाहरणतया फूस्टर (1958) की बन्दरो पर की गई शोधें इस विषय मे उल्लेखनीय है। इन अध्ययनो मे बन्दरो को दो ज्यामितिक चित्रो मे भेद करना सिखाया गया। भेद-क्रिया सिखाने के लिए भोजन का प्रोत्साहन दिया गया। तत्पश्चात् फूस्टर ने बन्दरो की भेद करने के प्रतिक्रिया काल को, अर्थात् सही चित्र का चयन करने मे कितना समय लगा, इसे दो भिन्न दशाओ मे नापा—(1) एक तो सामान्य दशा, (2) दूसरी विभिन्न श्रेणी की बाह्य उत्तेजनाओ द्वारा रेटीकुलर फॉर्मेशन को उत्तेजित करने की अवस्था मे। उनके प्रयोग द्वारा यह पता लगा कि रेटीकुलर फॉर्मेशन के सामान्य उत्तेजितावस्था मे तो व्यवहार मे उन्नति दिखाई देती है किन्तु बहुत तीव्र या अधिक उत्तेजना मे बोखलाहट और सत्रस्त-सा व्यवहार दिखाई देता है। इसी प्रकार के निष्कर्ष अन्य अध्ययनो जैसे लैसिंग तथा उनके साथी (1959), ओगावा (1963) के आधार पर भी निकाले गये हैं।

इसके विपरीत, उत्तेजना मे कोई भी परिवर्तन न होने से उडोलन बहुत ही मन्द हो जाता है। मैकवर्थ (1958) ने एक प्रयोग किया जिसमे प्रयोज्य को घडी के समान एक यत्र को निरन्तर देखते रहना होता था, तथा जब यत्र की सुई सामान्य उछाल के बजाय दो बार उछलती थी तो उसे नोट करना होता था। मैकवर्थ ने पाया कि लगभग आधे घण्टे कार्य करने के बाद प्रयोज्य सुई की दोहरी उछालो को प्राय नही देख पाता था, ऐसा इसलिए हुआ कि काय मे कोई नवीनता न होने से उडोलन की मात्रा मे निरन्तर कमी आती गई।

इस सम्बन्ध मे मैकगिल विश्वविद्यालय मे किये गये कुछ प्रयोग विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन प्रयोगो मे कुछ प्रयोज्यो को बुलाया गया जो स्वेच्छा से प्रयोग मे भाग लेने के लिए आये थे। इन प्रयोज्यो को सब प्रकार की सुविधा प्रदान की गयी किन्तु उन्हे इस प्रकार के विशेष वातावरण मे रखा गया कि उनको किसी भी प्रकार की बाह्य उत्तेजना प्राप्त न हो। केवल एक विशेष प्रकार के चश्मे से कुछ

---

1 Limbic region

प्रकाश की किरणें मात्र ही वह पा सकते थे। वे किसी वस्तु का भी स्पर्श नही कर सकते थे, और मात्र एक-रस आवाज व नियन्त्रित प्रकाश-किरणे पा सकते थे (शुल्ज 1965)। प्रयोग द्वारा यह पाया गया कि इस प्रकार की एकरस उत्तेजना के कारण व्यक्ति थोडे ही समय पश्चात् अधिक सोने मे भी समर्थ नही हुआ और उसके व्यवहार मे अकुलाहट और सत्रस्तता दृष्टिगोचर होने लगी।

इ०ए०ग्रा० मे अल्फा तरगो की सख्या भी बढने लगी, अर्थात् उडोलन के मन्द होने का वहां आसार मिला।

इस प्रकार के अध्ययनो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उडोलन की मध्यम श्रेणी, कार्यक्षमता के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है (फ्रीमैन 1940)।

रेटीकुलर फार्मेशन की उत्तेजितावस्था मे जो उडोलन होता है उसका ध्यान व आदत से भी गहन सम्वन्ध है। जैस्पर (1958) ने कुछ प्रयोगो द्वारा यह दिखाया कि आदतन कुछ उत्तेजनाओ के प्रति व्यक्ति उदासीन हो जाता है, उसमे रेटीकुलर फॉर्मेशन का योगदान है। जैसे यदि कोई आवाज केवल एक वार हो तो सोता हुआ जानवर उससे उडोलित होता है व उसका प्रभाव उसके इ०ए०ग्रा० मे भी देखा जा सकता है किन्तु वार-वार वही आवाज होने पर जानवर सोता ही रहता है तथा उसके इ०ए०ग्रा० मे भी कोई परिवर्तन नही आता।

इस प्रकार हुए शोधो से यह स्पष्ट है कि उडोलन व क्रियाशीलता स्वय मे प्रवलन का कार्य करते है। एक सीमा तक व्यक्ति उडोलन का स्वागत करता है वरन् उसको पाने का प्रयत्न भी करता है। यह तथ्य अभिप्रेरण की समस्या को समझाने मे अत्यधिक महत्वपूर्ण है, क्योकि यह सिद्धान्त अभिप्रेरण सम्वन्धी ज्ञान को आगे वढाता है और स्पष्ट करता है—यह प्रचलित धारणा कि किसी प्रवल उत्तेजक के द्वारा उत्पन्न असतुलन तथा क्रमश अभाव की पूर्ति एव सतुलन वनने के कारण ही उस व्यवहार का प्रवलन होता है अर्थात् सारे परितोपक उत्तेजक वही होते हैं जिनके द्वारा प्रेरणा की पूर्ति होती हो (ओल्डस 1955)। व्यवहार को समझने का एकमात्र सिद्धान्त नही है, वरन् व्यक्ति मे स्वय क्रियाशील व उडोलित होने की प्रवृत्ति होती है।

मानव-प्रेरणा

मानवी अभिप्रेरण से सम्वन्धित विशिष्टताओ की चर्चा किए विना यह अध्याय अपूर्ण ही रहेगा। मानवी अभिप्रेरण पर वहुत अधिक कार्य किया गया है, जिसकी पूरी चर्चा यहाँ असम्भव है। सक्रियकरण तथा उडोलन सम्वन्धी आधुनिक अध्ययन भी मानवी अभिप्रेरण पर काफी प्रकाश डालते है।

मानव व्यवहार का वहुत अधिक भाग एक ऐसा गुण परिलक्षित करता है जो अन्य जीवो के व्यवहार मे नही देखा जाता, इसीलिए मानव अभिप्रेरण को अलग से देखना आवश्यक है। मानव अभिप्रेरण की एक प्रमुख विशेषता है व्यवहार

का प्रयोजनोन्मुख[1] सगठन (कोच 1956)। इसी प्रयोजनोन्मुखता के कारण अनेको कठिनाइयो के उपरान्त भी व्यक्ति कुछ लक्ष्यो को प्राप्त करने के लिए अथक परिश्रम करता जाता है। यह प्रयोजनोन्मुखता व्यवहार मे, व्यक्ति की मनोजात आवश्यकताओ, मूल्यो तथा रुचियो इत्यादि के कारण होती है।

यद्यपि मनोवैज्ञानिक मानव अभिप्रेरण मे बहुत रुचि रखते रहे है, किन्तु फिर भी उसका विधिवत अध्ययन नही हो सका है, क्योकि वस्तुनिष्ठ अधिगम मनोवैज्ञानिक उन प्रणालियो से सहमत नही है, जिनका उपयोग, मानव अभिप्रेरण की जाँच के लिए किया जाता है। दूसरी ओर नैदानिक मनोवैज्ञानिक, चूहो इत्यादि पर किए गये अध्ययनो के आधार पर ही मानव अभिप्रेरण के सिद्धान्त बनाने को तैयार नही हैं, क्योकि बहुत-से अभिप्रेरण सम्बन्धी ऐसे तत्व हैं जो केवल मानव मे ही परिलक्षित होते हैं।

मानव अभिप्रेरण पर यू तो अनेक अनुसधान किए गये हैं, जिन सबका यहाँ वर्णन न तो सम्भव ही है और न वाछनीय ही, किन्तु फ्रायड तथा लेविन के सिद्धान्तो ने इस क्षेत्र मे शोधो को बहुत आगे बढाया है। फ्रायड ने व्यवहार के गतिशील[2] सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, उन्होने दो प्रकार के उत्प्रेरक बताये—चेतन तथा अचेतन।

लेविन ने फील्ड थ्योरी की स्थापना की। यह अधिक प्रयोगात्मक, गणितात्मक सिद्धान्त है जिसकी मुख्य विशेषता यह है कि लेविन ने कहा कि व्यवहार को समस्त मनोवैज्ञानिक क्षेत्र[3] या जीवन देश[4] या लाइफ स्पेस के सन्दर्भ मे ही समझा जा सकता है। अत व्यवहार वस्तुत लाइफ स्पेस की ही क्रिया है, जिसे उन्होने सूत्र के रूप मे भी व्यक्त किया है, व्य० = क्रि० (ला० स्पे०) (व्य० = व्यवहार, क्रि० = क्रिया, ला० स्पे० = लाइफ स्पेस)। लाइफ स्पेस स्वय व्यक्ति और परिवेश (प०) के परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया का परिणाम है। अत व्य० = कि० (ला० स्पे०) = कि० (व्य० प०)।

लेविन ने अभिप्रेरण का जो सिद्धान्त दिया है उसमे मुख्य प्रत्यय तनाव या प्रतिबल[5] का है। उन्होने कहा कि व्यक्ति की इच्छायें, आवश्यकताये या स्वगुण निर्देश[6], उसकी लाइफ स्पेस मे प्रतिबल उत्पन्न करते है, इस प्रतिबल के कारण व्यक्ति लक्ष्य निर्देशित व्यवहार करता है। यह प्रतिबल मनोवैज्ञानिक क्षेत्र के किसी भाग से स्वीकारात्मक अथवा नकारात्मक रूप से सम्बद्ध हो सकता है। जिस भाग के द्वारा लक्ष्य प्राप्ति की सम्भावना हो वह स्वीकारात्मक कर्षण[7] शक्ति युक्त होगा, तथा, जिस स्थान पर व्यक्ति, इस प्रतिबल के उत्पन्न होने के समय है, वह नकारात्मक कर्षण शक्ति युक्त होगा। किसी इच्छा अथवा आवश्यकता के कारण तनाव या प्रति-

---

1 Goal directed 2 Dynamic theory 3 Psychological field 4 Life space 5 Tension system 6 Intentions 7 Valence

वन उत्पन्न होता है, इसी तनाव के कारण उत्पन्न कर्षण शक्ति के द्वारा ही व्यक्ति लक्ष्य की ओर गतिशील या क्रियान्वित होता है, और जब तक यह तनाव दूर नही होता, व्यक्ति मे क्रियाशीलता बनी रहती है। प्रतिबल दूर होने पर साम्यावस्था पुन उत्पन्न होती है। जाइगार्निक (1927) ने इस तथ्य को प्रयोगात्मक विधि से स्थापित किया। उन्होने कुछ प्रयोज्यो को कुछ साधारण कार्य, समस्या समाधान इत्यादि के दिये, और व्यक्ति को कुछ काय तब तक करने दिये जब तक कि वे पूर्ण नही हो गये। किन्तु कुछ अन्य कार्यो को पूर्ण होने से पहले ही रोक दिया। तत्पश्चात् प्र० से कहा कि वह उन समस्याओ का प्रत्यावाहन करे जो कुछ देर पहले उन्होने की थीं, और प्राक्कल्पना के अनुकूल पाया हो कि प्र० ने उन समस्याओ का अधिक प्रत्यावाहन किया जो अपूर्ण थी। (65 प्रतिशत) बजाय उनके जो कि पूर्ण हो गई थी, जिनका 45 प्रतिशत ही प्रत्यावाहन हुआ। इस तत्त्व को जाइगार्निक प्रभाव कहा जाता है व इसे अनुपात के रूप मे व्यक्त किया जाता है अर्थात् अपूर्ण प्रत्यावाहन (अ० प्र०) जैसे यदि किन्ही 100 व्यक्तियो पर प्रयोग किया जाय तो $\frac{\text{अ० प्र०}}{\text{पू० प्र०}} = \frac{72}{45} = 1\ 60$ अर्थात् पूर्ण क्रियाओ की अपेक्षा अपूर्ण क्रियाये 1 6 बार अधिक याद रखी गई। इस प्रकार जाइगार्निक ने प्रयोगात्मक अध्ययन के आधार पर लेविन द्वारा दिये गए प्रतिबल के सिद्धान्त को पुष्ट किया।

मनोजात आवश्यकताएँ, प्रयोजन, रुचियाँ व मूल्य

मानव अभिप्रेरण मे कुछ ऐसे तत्त्व हैं जो कि अन्य जीवो मे नही परिलक्षित होते और इनके सम्बन्ध मे बिना कुछ कहे अभिप्रेरण का अध्याय पूर्ण नही होता, भले ही वस्तुनिष्ठ प्रणालियो के अभी विकासावस्था मे ही होने के कारण, इस क्षेत्र मे कार्य अभी तक उतनी शीघ्रता से नही हो सका है जितनी कि अन्य क्षेत्रो मे, किन्तु इन मनोजनित आवश्यकताओ, प्रयोजनो, रुचियो व मूल्यो से सम्बद्ध प्रमुख अध्ययनो का पर्यवेक्षण नितान्त आवश्यक है।

लगभग जिस समय हल प्रयोजनावाद को अपने उत्तेजक-अनुक्रियावादी सिद्धान्तो मे समन्वित करने का प्रयत्न कर रहे थे उसी समय मरे ने मनोजात आवश्यकताओ[1] का वर्णन किया, (मरे 1938)। मरे पर भी उन सिद्धान्तो, जैसे फ्रायड-वादी, लेविनवादी, तथा टोलमैनवादी इ० का प्रभाव तथा मरे द्वारा इन सिद्धान्तो की ओर झुकाव, स्पष्ट ही परिलक्षित होता है, जो उस समय हल को भी प्रभावित कर रहे थे।

मरे ने कुछ मनोजात आवश्यकताओ की सूची दी। यह मनोजात आवश्यकताएँ सामान्यतया मानवो मे पाई जाती हैं। इन मनोजात आवश्यकताओ का स्थान व्यक्ति की अभिप्रेरण शक्तियो मे आधारभूत है, किन्तु वे शरीर-क्रिया-जनित नही

1 Psychogenic needs

होती, यद्यपि उनमे से कुछ जन्मजात हो सकती है। मरे (1938) के अनुसार आवश्यकता ऐसा प्रत्यय है जो कि एक शक्ति का बोध कराता है। (जिसकी भौतिक व रासायनिक सरचना का ज्ञान नही है) जिसके द्वारा प्रत्यक्षण, अभिबोध, तथा अन्य प्रकार की सज्ञानात्मक[1] व क्रियात्मक प्रक्रियाओ का इस प्रकार से पुनर्संगठन होने लगता है कि उपस्थित असन्तोषजनक परिस्थिति से छुटकारा पाया जा सके।

यह मनोजात आवश्यकताएँ कई क्षेत्रो से सम्बन्धित हैं, व मुख्यतया इस प्रकार है—

(क) प्रतिष्ठा[2] तथा आत्मोन्नति[3] सम्बन्धी आवश्यकताएं—
उत्कर्प होने की भावना[4] मान्यता पाने की भावना,[5] प्रदर्शनकारी[6] भावना,[7] निष्पत्ति या लब्धि भावना।

(ख) पद व प्रतिष्ठा की सुरक्षा[8] सबधी आवश्यकताएँ तथा अपमान से बचने सबधी आवश्यकताएँ, बचाव या रक्षात्मक भावना, प्रतिवाद[9] की भावना।

(ग) शक्ति या लाभर्घ्य[10] का उपयोग, विशेप और दूसरो की शक्ति को स्वीकार करने सम्बन्धी आवश्यकताएँ—प्रभावशाली बनने की भावना, प्रमुख स्वीकार करने की भावना, स्वतत्रता, दोप मुक्त होने की भावना, अग्रघर्षण या आक्रामक भावनाएँ इत्यादि।

(घ) व्यक्तियो मे आपसी सौहार्द व प्रेम सम्बन्धी आवश्यकताएँ—सवधन की भावना, पालन-पोपण की भावना, अस्वीकृति की भावना, सहायता पाने की भावना इत्यादि।

(ड) सज्ञानात्मक आवश्यकताएँ—जिनका सम्बन्ध उत्सुकता के कारण और विवरण से है, जैसे विचरण, अभिव्यक्तिकरण ज्ञानार्जन करने की आवश्यकता आदि।

(च) निर्जीव वस्तुओ से सम्बन्धित आवश्यकताएं—जैसे, अर्जन करने की भावना, सग्रह व सरक्षण की भावना, निर्माण की भावना, व्यवस्था स्थापित करने की भावना इत्यादि। यद्यपि यह आवश्यकताएँ मुख्यतया निर्जीव वस्तुओ से ही सम्बन्धित होती है जैसे, वस्तुओ को पाने या सग्रह करने की भावना, किन्तु कभी-कभी यही आवश्यकताएँ व्यक्तियो के सम्बन्ध मे भी व्यक्त की जाती हैं।

सर्वप्रथम मरे ने इन आवश्यकताओ का सृजन दैनिक जीवन व निदानशालाओ मे किये हुए अवलोकनो व प्रेक्षणो के आधार पर किया था, किन्तु वाद मे उन्होने इन आवश्यकताओ के अध्ययन के लिए कुछ परीक्षणो का उपयोग किया।

---

1 Cognitive 2 Prestige 3 Enhancement of self 4 Superiority
5 Recognition 6 Exhibitionary 7 Achievement 8 Defence
9 Counteraction 10 Power

मरे ने विशेषतया क्षेप परीक्षणों या प्रक्षेपी परीक्षणों[1] का उपयोग किया है, जैसे, रोशार्क[2] तथा थीमेटिक एपरसेप्शन टेस्ट[3] इत्यादि।

तत्पश्चात् अनेकों अन्य मनोवैज्ञानिकों ने इन आवश्यकताओं का प्रयोगात्मक तथा अन्य अनुभववादी और वस्तुपरक प्रणालियों के द्वारा अध्ययन किया है। इनमें से एक आवश्यकता, जो प्रतिष्ठा प्राप्त करने सम्बन्धी आवश्यकता है, इसे लब्धि या एचीवमेन्ट की आवश्यकता कहा गया है। इस आवश्यकता पर किए गए कार्य को हम संक्षिप्त रूप से देखेंगे, जिससे इस तथ्य पर प्रकाश पड़ेगा कि मनोजात आवश्यकताओं पर किस प्रकार का कार्य किया गया है।

लब्धि आवश्यकता का सम्बन्ध प्राय किसी ऐसी क्रिया से होता है जिसका लक्ष्य किसी क्षेत्र में उत्कृष्टता के माप-दण्ड को पाना होता है (एटकिन्सन तथा फैदर 1966)।

मैकलीलैण्ड तथा एटकिन्सन (1958) ने लब्धि आवश्यकता पर बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया है। उन्होंने पाया कि लब्धि आवश्यकताओं में व्यक्तियों में व्यक्तिगत भिन्नताएँ होती हैं, अर्थात् कुछ व्यक्तियों में यह आवश्यकता बहुत तीव्र होती है जबकि अन्य व्यक्तियों में नहीं। जिन व्यक्तियों में तीव्र लब्धि आवश्यकता होती है वह व्यक्ति किसी भी कार्य की उत्कृष्टता को पाने का प्रयत्न करते हैं। उत्कृष्टता का माप-दण्ड चाहे दूसरों द्वारा निर्धारित हो या स्वयं उनके द्वारा, वही उनका लक्ष्य होता है। यह व्यक्ति उत्कृष्टता के माप-दण्ड को प्राप्त करने को अधिक महत्व देते हैं बजाय प्रतिष्ठा प्राप्ति के, और यह लब्धियाँ वे स्वयं अपने स्वतंत्र प्रयत्नों के आधार पर करना चाहते हैं। यह लब्धि आवश्यकता एक महत्वपूर्ण, निरन्तर बनी रहने वाली ऐसी आवश्यकता होती है जो व्यक्ति के सामान्य व्यवहार में उसके बहुत से कार्यों, लक्ष्यों इत्यादि में झलकती है। दूसरी ओर अन्य व्यक्तियों में यह लब्धि आकांक्षा बहुत ही क्षीण हो सकती है।

प्राय लब्धि आवश्यकता द्वारा उत्पन्न अभिप्रेरण को मापने के लिए जिस प्रणाली का उपयोग किया गया है वह मरे के थीमेटिक एपरसेप्शन टेस्ट (टी० ए० टी०) पर आधारित है, और इस प्रकार है—

प्राय लब्धि आवश्यकता जाग्रत करने के लिए कुछ निर्देश प्रयोज्य को दिये जाते हैं, तत्पश्चात प्र० को कुछ समस्याएँ समाधान हेतु दी जाती हैं। उदाहरणतया, कुछ संज्ञानात्मक समस्याएँ दी जाती हैं व प्र० से कहा जाता है कि इन समस्याओं के समाधान में उसकी कार्यक्षमता के आधार पर, उसकी बुद्धि का मापन किया जायेगा। इन समस्याओं के पश्चात् उसे टी०ए०टी० के कुछ चित्र दिखाए जाते हैं, जिनके आधार पर उसे एक कहानी निश्चित समय में बनानी होती है जो उसकी रचनात्मक कल्पना-शक्ति का परिचय देती हो। इन कहानियों का विश्लेषण किया जाता है, यह

---

1 Projective tests 2 Rorscharch 3 Thematic Apperception test

देखने के लिए कि प्र० ने कितनी लब्धि आकाक्षा सम्बन्धी प्रतिक्रियाएँ दी, तत्पश्चात् उन प्रतिक्रियाओ की तुलना दूसरी कहानियो से की जाती है जो कि सामान्य अवस्था मे लिखी गई है, लब्धि आकाक्षा को जाग्रत करके नही (मैक्लीलेड तथा एटकिंसन 1958)।

इस दिशा मे किए गये कार्यों की विशेप महत्ता इसलिए है क्योकि इन प्रयोगात्मक अध्ययनो द्वारा यह दिखाया जा सका है कि मानवीय प्रयोजनो व आवश्यकताओ को भी उसी प्रकार प्रायोगिक विधि द्वारा नियन्त्रित करके अध्ययन किया जा सकता है जिस प्रकार जैविक, अन्य शरीर-क्रिया सम्बन्धी आवश्यकताओ का किया गया है, जैसे भूख आदि।

दूसरी ओर टोलमैन, लेविन इत्यादि के प्रयोजनोन्मुख सिद्धान्त पर आधारित इस प्रत्यय को भी प्रायोगिक वस्तुपरक साक्ष्यो से बल मिलता है कि प्रयोजन या प्रेरक मात्र एक अपूर्णता या हीनताजनित उत्तेजना नही है वरन् ऐसा उत्तेजक है जिसका मुख्य गुण प्रत्याशा[1] है अर्थात् प्रत्याशा के द्वारा एक सज्ञानात्मक प्रज्ञान होता है जो कि परिस्थिति जन्य सकेतो द्वारा उत्पन्न होता है और किसी विशिष्ट क्रिया के विशिष्ट परिणाम के होने की ओर सकेत करता है।

वस्तुत हल ने भी अभिप्रेरण के इस गुण प्रत्याशा को स्वीकार करते हुए कहा कि प्रत्याशित लक्ष्य सम्बन्धी प्रतिक्रियाओ[2] के आधार पर ही अभिप्रेरित प्रक्रियाओ की व्याख्या की जा सकती है।

इस प्रकार एटकिन्सन तथा उनके साथियो ने जो महत्वपूर्ण कार्य लब्धि प्रयोजन पर किया है वह सैद्धान्तिक दृष्टि से भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि व्यावहारिक दृष्टि से उपयोगी। एटकिन्सन व फैदर (1966) ने इन प्रायोगिक अध्ययनो के आधार पर लब्धि अभिप्रेरण के व्यापक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है जिसके तीन मुख्य चर[3] हैं—

(1) प्रयोजन का प्रेरक (2) प्रत्याशा (3) प्रोत्साहन।

प्रयोजन को यहाँ वह प्रवृत्ति कहा गया है, जो कि व्यक्ति को एक विशिष्ट दिशा मे कार्य करने को प्रेरित करती है, तथा विशिष्ट लक्ष्यो की प्राप्ति से ही सन्तुष्ट होती है, जैसे लब्धि प्रेरक वह प्रवृत्ति है जो कि सफलता प्राप्ति की ओर व्यक्ति को प्रेरित करती है तथा उत्कर्षता के माप-दण्ड को प्राप्त करके ही सन्तुष्ट होती है।

प्रत्याशा का तात्पर्य किसी परिस्थिति के द्वारा प्राप्त सकेतो से उत्पन्न, एक सज्ञान से है, जो एक विशिष्ट कार्य के विशिष्ट परिणामो के होने का बोध कराता है।

---

1 Anticipation 2 Anticipatory goal response 3 Variables

प्रोत्साहन का अर्थ किसी विशिष्ट परिस्थिति मे लक्ष्य विशेष के आकर्षक अथवा अनाकर्षक गुणो से है, यह प्रत्यय टोलमैन (1955) के प्रत्ययो पर आधारित है।

एटकिन्सन व फैदर (1966) के अनुसार किसी भी परिस्थिति मे किसी अभिप्रेरण की शक्ति इन्ही तीनो चरो की गुणात्मक क्रिया होगी, अर्थात् अभिप्रेरण = क्रिया (प्रेरक × प्रत्याशा × प्रोत्साहन)

इस सूत्र की एटकिन्सन ने विशद व्याख्या की है, तथा इसके आधार पर लक्ष्य प्राप्ति के ओर अग्रसर होने की प्रेरणा तथा किसी कार्य को न करने की प्रेरणा का विवेचन किया है। लब्धि आवश्यकता पर अव तक इतना अधिक कार्य किया जा चुका है कि सव की व्याख्या यहाँ करना असम्भव है किन्तु यह स्पष्ट होता जा रहा है कि सम्भवत यह प्रयोजन मानव अभिप्रेरण मे सम्भवत बहुत ही महत्वपूर्ण है।

मैकलीलेड (1961) ने लब्धि प्रयोजन व उसका किसी समाज के विकास, विशेपकर आर्थिक विकास पर क्या प्रभाव पडता है, इसका गहन अध्ययन किया है। उन्होने विभिन्न देशवासियो की लब्धि आवश्यकताओ के अध्ययन के आधार पर यह पाया है कि तीव्र लब्धि आकाक्षा आर्थिक सफलता की कारण है और क्षीण लब्धि आकाक्षा असफलता की। हीलवर्न (1967) ने एक अन्य अध्ययन मे पाया कि किसी समाज मे वालको का लालन-पालन किस प्रकार से किया जाता है, इस पर लब्धि आकाक्षा का विकास उन वालको मे होगा अथवा नही, यह निर्भर करता है। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है इन अध्ययनो का विशेष महत्व है, क्योकि यह स्पष्ट करते है कि मानव व्यवहार कुछ अन्य लक्ष्यपरक प्रेरको पर भी आधारित होता है जिनका अध्ययन उसी प्रकार नियन्त्रित प्रायोगिक पद्धति द्वारा किया जा सकता हे जैसे कि अन्य शरीर सम्बन्धी प्रेरणाओ का।

जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, मानव अभिप्रेरण का सघटन तथा लक्ष्य-परक[1] विशेषता उसे अन्य जीवो के अभिप्रेरण से भिन्न स्थान प्रदान करती है। इन लक्ष्य-परक निरन्तर चलती रहने वाली क्रियाओ का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण रुचियाँ व मूल्य होते है।

रुचियो के कारण प्राय व्यक्ति उस क्षेत्र के सम्बन्ध मे अपना ज्ञानवर्द्धन करने का प्रयत्न करते हैं जिनमे उनकी रुचि होती है, तथा उससे सम्वद्ध कार्यो का प्रतिपादन अनेको कठिनाइयो के वावजूद भी सहर्ष करते है। न केवल इतना ही वरन् रुचियाँ प्राय किसी सीमा तक स्थायी भी होती हैं और इनके कारण वहुत प्रकार के अभिप्रेरित व्यवहार लम्वे समय तक सगठित होते व चलते रहते हैं।

जीवन के मूल्य वह मान्यताएँ होती हैं जिनके आधार पर व्यक्ति यह निश्चित करता है कि क्या ठीक है क्या गलत है, कौन से व्यवहार उचित हैं और कौन से

1 Goal-directed

अनुचित। यह मूल्य व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन और व्यवहार को ही प्रभावित व अभिप्रेरित करते हैं। इनका महत्व अभिप्रेरक के रूप मे कितना अधिक है, यह इसी से स्पष्ट होता है कि व्यक्तित्व मे रुचि रखने वाले मनोवैज्ञानिको ने मूल्यो को व्यक्तित्व सचालन के लिए केन्द्रीय महत्व का बताया है। जिन मूल्यो को व्यक्ति अपना लेता है वह उसके लक्ष्यो का निर्धारण करते है और व्यक्ति को उन लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए प्रेरित करते हैं। इन व्यक्तियो तथा मूल्यो के आधार पर व्यक्ति के सोद्देश्य कार्यों को समझाने का प्रयत्न किया गया है।

प्राय रुचियो तथा मूल्यो का पता लगाने के लिए जिस प्रणाली का उपयोग किया गया है वह इस प्रकार है, कि कुछ रुचियो सम्बन्धी विवरण वाक्य प्र० को दिये जाते हैं, जिनमे से प्र० उन वाक्यो के सामने 'हाँ' पर चिन्ह लगाता है, जो उसके अपने विषय मे सत्य होते है, व उन पर नही जो उसके अपने विपय मे असत्य होते हैं। इन उत्तरो के आधार पर व्यक्ति की प्रमुख रुचियो तथा मूल्यो का पता लगता है। विलफोर्ड ने फैक्टर एनालिसिस विधि द्वारा रुचियो का अध्ययन किया है (1954)। आलपोर्ट (1951) ने इसी प्रकार की मूल्य-सूची[1] परीक्षण का निर्माण मुख्य मूल्यो का पता लगाने के लिये किया है। उन्होने स्प्रेन्गर के द्वारा वर्णित छ प्रमुख मूल्यो के आधार पर यह परीक्षण बनाया। यह प्रमुख छ मूल्य इस प्रकार हैं—सैद्धान्तिक, कलात्मक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा शक्ति सम्बन्धी मूल्य। इस परीक्षण मे निहित वाक्य इन मूल्यो को व्यक्त करते हैं, तथा व्यक्ति बताता है कि उसके सम्बन्ध मे कौन से वाक्य सत्य तथा असत्य है, इन उत्तरो के आधार पर यह ज्ञात होता है कि व्यक्ति मे उन छ मे से कौन से मूल्य प्रमुख है।

मानवी अभिप्रेरण के सम्बन्ध मे एक अन्य प्रमुख आवश्यकता की चर्चा करना यहाँ आवश्यक है। मैसलो (1954) ने कहा है मरे द्वारा चर्चित आवश्यकताएँ या अभिप्रेरण की प्रवृतियाँ एक तारतम्य मे संगठित होती है। सबसे निचली शृंखला पर शरीर-क्रिया सम्बन्धी जैविक आवश्यकताएँ आती है, तत्पश्चात् सुरक्षा सम्बन्धी, तब प्रेम सम्बन्धी, तब आत्म सम्मान तथा दूसरो के सम्मान सम्बन्धी और अन्त मे सर्वोपरि है, आत्म-सिद्धता[2] सम्बन्धी आवश्यकता। आत्म-सिद्धता से तात्पर्य है, व्यक्ति यह प्रयत्न करता है कि अपनी योग्यताओ को पूर्णतया सिद्ध करे। वह आत्मोन्नति का चरम प्रयत्न करता है। मैसलो का विचार है कि यह आवश्यकताएँ इस प्रकार के तारतम्य मे बधी होती हैं कि जब निम्न स्तर की आवश्यकताएँ पूर्ण हो जाती है तभी उच्च स्तर की आवश्यकताएँ प्रेरक के रूप मे कार्यारम्भ करती है। निम्न स्तर की आवश्यकताएँ यदि स्वत ही पूर्ण होती जायं तो वे उभरती नही, और उच्च स्तर की आवश्यकताएं व्यवहार प्रेरित करती है।

---

1 Value test 2 Self-actualisation

उच्च स्तरीय आवश्यकताएँ किसी हीनता या अभाव की पूर्ति नही करती, न ही किसी प्रतिवल को समाप्त करके साम्यावस्था[1] उत्पन्न करती है, वरन् वे स्वय मे सन्तोषदायी होती है। इस प्रकार आत्म-सिद्धता प्राय उन व्यक्तियो मे नही देखी जा सकती जो निरन्तर दैनिक आवश्कताओ की पूर्ति मे ही जुटे है या सवेगात्मक और सामाजिक कठिनाइयो से बचने का ही उपाय ढूंढते रहते है। वरन्, आत्म-सिद्धता के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति के मूल्यो, रुचियो, पारस्परिक सम्बन्धो आदि द्वारा अभिप्रेरित व्यवहारो मे एक समस्वरता हो।

रुचियो, मूल्यो और अन्य मनोजात आवश्यकताओ के सम्बन्ध मे जो अध्ययन किये गये है, उनके सम्बन्ध मे कुछ विधि व प्रणाली सम्बन्धी सन्देह उठाये जाते हैं। उदाहरणतया जिन प्रश्नावलियो तथा सूचियो द्वारा रुचियो तथा मूल्यो का अध्ययन किया जाता है। उनके विषय मे यह सन्देह उठाया जाता है कि यदि प्रयोज्य को यह ज्ञात हो जाता है कि उसकी रुचियो की जानकारी की जा रही है, तो क्या इसका प्रभाव उसके उत्तरो पर नही पडेगा ? दूसरे, यह कि यदि प्रयोज्य चाहे तो जानकर गलत उत्तर दे सकता है।

टी० ए० टी० द्वारा प्राप्त प्रतिक्रियाओ के विषय मे भी सत्यता[2] और विश्वसनीयता[3] सम्बन्धी प्रश्न उठाये गये है, उदाहरणार्थ, कौन सी कहानी का कौन सा भाग किये अभिप्रेरणा के वारे मे जानने के लिए महत्वपूर्ण है ऐसा किस आधार पर कहा जाय ? ऐसी दशा मे विभिन्न विशेषज्ञो के मतो की एकता को आधार मानकर विश्वसनीयता तथा सत्यता की पुष्टि की जाती है।

यद्यपि अभिप्रेरण, विशेपकर मानवी अभिप्रेरणा की मापन प्रणालियो के सम्बन्ध मे अवश्य कुछ कठिनाइयाँ है किन्तु इन कठिनाइयो के उपरान्त भी जो उन्नति इस दिशा मे मनोवैज्ञानिको ने की है, वह नि सन्देह ही आशाजनक है और सम्भवत उसमे जो बीच वीच मे छूटे अन्तराल[4] हैं वह शीघ्र ही भर जायेंगे। किसी भी हालत मे, मात्र इन कमजोरियो के कारण मानव-अभिप्रेरण के स्वतन्त्र और महत्वपूर्ण अस्तित्व को नकारा नही जा सकता, उन्हे सुधारने का प्रयत्न ही किया जा सकता है, जिसमे आधुनिक मनोवैज्ञानिक सलग्न हैं।

सहायक ग्रन्थ सूची

एटकिन्सन, जे डब्ल्यू (एडिटर) मोटिव्स इन फैन्टेसी, एक्शन एण्ड सोसाइटी प्रिन्सटक डी वैन नौस्टेण्ड क इन्क, 1958

एन इन्ट्रोडक्शन टू मोटिवेशन, न्यूयार्क वैन नौस्ट्रेण्ड क इन्क., 1964

एण्ड फैदर, एन टी ए थ्योरी आफ एचीवमेन्ट मोटिवेशन, न्यूयार्क वाइली एण्ड सन्स, 1966

---

1 Equilibrium 2 Validity 3 Reliability 4 Gaps

ओगावा, टी — मिडब्रेन रेटीकुलर इन्फ्लूएन्सेस आन सिंगल न्यूरोनस इन लैटरल जैनिकुलेट न्यूक्लियस, साइन्स, 1963

ओल्डस, एस एस, एण्ड ओल्डस, एम ई — ड्राइव्स रिवार्ड्स एण्ड द ब्रेन, इन न्यू डाइरेक्शन्स इन साइकोलोजी। न्यूयार्क होल्ट राइनहार्ट एण्ड विन्सटन, 1965

कायिमा, जे — बिहेवियरल ओब्जेक्टिव एन्ड फिजियोलोजिकल आस्पेक्ट्स आफ ड्राइजीनैस एण्ड स्लीप, इन, फिस्क, डी डब्लू, एण्ड मैडी एस आर (एडिटरस) फन्शन्स आफ वैरीड एक्सपीरिएन्स, होमवुड डोरसी, 1961

कुओ, जेड वाई — फरदर स्टडी आन द बिहेवियर आफ द कैट टुवर्डस द रैट इन, वर्नी आर सी एण्ड टीवान, आर सी (एडिटर) इन्सटिंक्ट न्यूयार्क वैन नौस्ट्रैण्ड क, इन्क, 1961

कुओ, जेड वाई — द जेनेसिस आफ द कैट्स रैसपान्स टु द रैट इन वर्नी, आर सी एण्ड टीवान, आर सी (एडिटर) इन्सटिंक्ट, न्यूयार्क वैन नौस्ट्रैण्ड क०, इन्क, 1961

कौच, एस — बिहेवियर एज इन्ट्रिन्सिकली रेगुलेटेड इन, जोन्स एस आर (एडिटर) नेबरास्का सिम्पोजियम आन मोटिवेशन, नेबरास्का यूनिवर्सिटी प्रेस, 1956

किम्बल, जी ए — बिहेवियर स्ट्रैन्थ ऐज ए फन्कशन आफ दि इन्टेन्सिटी आफ द हगर ड्राइव जे एक्स साइकालोजी

टालमैन, ई सी — द नेचर आफ फन्डामेन्टल ड्राइवज, जे एबनार्म, सोशल साइकोलोजी, 1926

आब्जेक्टिव डेफिनिशन आफ परपज, एन बिन्द्रा डी० एन्ड स्टुअर्ट, जे (एडिटर) मोटिवेशन बाल्टीमोर पेन्गिवन बुक्स, 1966

परपजिव बिहेवियर इन एनिमल्स एण्ड मैन, न्यूयार्क सेन्चुरी क, 1932

डफी, ई एक्टिवेशन एण्ड बिहेवियर, न्यूयार्क जान वाइली एण्ड सन्स, 1962

थोर्प, डब्ल्यू एच — लर्निंग एण्ड इन्सटिंक्ट इन एनिमल्स, लन्दन मैथ्यूसन, 1958

थार्नडाइक, इ एल — एनिमल इन्टेलिजेन्सी एन एक्सपेरिमेन्टल स्टडी आफ द एशोशियेटिव प्रोसेसेज इन एनीमल्स, साइकोलोजी मोनोग्रा, 1898

पेवलोव, आई पी — कन्डीशन्ड रिफ्लेक्सेज, ऑक्सफोर्ड क्लैरेन्डन प्रेस, 1927

वैक्सटन, हेरोन तथा स्काट — (1954) के अध्ययन का विवेचन—हैव डी ओ ड्राइव्स एण्ड द कोनसेप्चुएल नरवस सिस्टम, साइकोलोजिकल रिव्यू, 1955

व्राउन, जे एम — द मोटिवेशन आफ विहेवियर, न्यूयार्क मैकग्राहिल 1961

विन्द्रा, डी — मोटिवेशन ए सिस्टेमेटिक रिइन्टरप्रिटेशन, न्यूयार्क रोनाल्ड, 1959

वर्लाइन, जी ई — नौवेल्टी एण्ड क्यूरिओसिटी एज डिटरमीनेन्टस आफ एक्सप्लोरेटोरी विहेवियर, त्रिटिश, ज० साइकोल, 1950

मैकवर्थ — व्रोडवेण्ट, डी ई परसेप्शन एण्ड कम्यूनिकेशन लन्दन परगामोन, 1958

मैसलो, ए एच, — मोटिवेशन एण्ड पर्सनेलिटी, हार्पर, 1954

मेकडूगल डब्ल्यू — एन इन्ट्रोडक्शन टू सोशल साइकोलोजी, लन्दन मेथ्यूएन, 1908
दि एनर्जीज आफ मेन, लन्दन मेथ्यूएन, 1932

मेक्लोलैण्ड, डी सी — नोट्स फार ए रिवाइनड थ्योरी आफ मोटिवेशन इन, मैक्लीलैंड डी० सी० (एडिटर) स्टडीज इन मोटिवेशन न्यूयार्क एपलटन सेन्चुरी क्राफ्ट्स इन्क, 1955

मान्टगोमरी, के सी — दि इफैक्ट आफ एक्टिविटी डिप्राइवेशन अपआन एक्सप्लोरेटोरी विहेवियर, जे० कम्पे० फिजियोल० साइकोल०, 1953

मिलर, एन ई — लर्नेवल ड्राइव्स एण्ड रिवार्ड्स, इन स्टीवेन्स, एस० एस० हैण्डवुक आफ एक्सपेरिमेन्टल साइकोलोजी न्यूयार्क, जान वाइली एण्ड सन्स, 1951

मरे, इ जे — स्टडीज आफ स्ट्रैसफुल इन्टरपर्सनल डिसरप्शनस अमेरि साइकोलोजिस्ट, 1963

मरे, एच ए — एक्सप्लोरेशन्स इन पर्सनेलिटी, न्यूयार्क, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1938

लैश्ली, के एस — एक्सपेरिमेण्टल एनालिसिस आफ विहेवियर इन, वर्नी, आर० सी० एण्ड टीव्रान, आर० सी० (एडिटर्स) इन्सटिक्टस, न्यूयार्क, वैन नोस्ट्रैण्ड एण्ड क इन्क 1961।

लेहरमान, डी एस — प्राबलेम्स रेजड वाई इन्सटिंक्ट थ्योरीज इन, वर्नी आर सी. एण्ड टीवान आर सी (एडिटर्स) इन्सटिंक्टस, न्यूयार्क, वैन नोस्ट्रैण्ड एण्ड क, इन्क, 1961

लेसी, जे. आई, केगेन, जे लेसी, बी सी एण्ड मास, एच ए — द विसरल लेवेल सिचुएशनल डिटरमिनेन्टस एण्ड बिहेवियरल कोरिलेटस आफ आटोनोमिक रेंस पान्स पेटर्न्स इन नैप पी० एच० (एडिटर) एक्स प्रेशन्स आफ द इयोशन्स इन मैन, न्यूयार्क इन्टर नेशनल यूनिवर्सिटीज प्रेस, 1963

लिडस्ले डी बी — इमोशन इन स्टीवेन्स, एस० एस० (एडिटर) हैण्डबुक आफ एक्सपेरिमेन्टल साइकोलोजी, जान वाइली एण्ड सन्स, 1951

वुडवर्थ आर एस — डाइनेमिक्स आफ बिहेवियर, लन्दन न्यूयार्क मैथ्यूएन, 1958

डाइनेमिक साइकोलोजी, न्यूयार्क कोलम्बिया, यूनिवर्सिटी प्रेस, 1918

एण्ड श्लोसवर्ग, एच० एक्सपेरिमेन्टल साइकोलोजी, हेनरी होल्ट एण्ड को० रिवाइज्ड एडीशन, 1958

वुड, डब्ल्यू — आउटलाइन आफ साइकोलोजी, लीपजीग डब्ल्यू एगलमैन, 1897

वरनन, एम डी — ह्यूमन मोटिवेशन, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1969

शुल्ज, डी पी — सेन्सोरी रेस्ट्रिक्शन इफेक्टस् आन बिहेवियर न्यूयार्क एकेडेमिक प्रेस, 1965

स्नाइडर, एफ. — ड्रीम रिकाल, रेस्पेरेटोरी वेरियेबिलिटी एण्ड डेप्थ आफ स्लीप एड्स, सिम्पोजियम आन ड्रीम्स अमे० साइकिएट्रिक एसोसिएशन, 1960

होलवर्न, ए बी — एट आल परसीव्ड मैटरनल चाइल्ड रीयरिंग पैटर्न्स एण्ड दी इफेक्टस आफ सोशल नान-रिएक्शन्स अपआन एचीवमेन्ट मोटिवेशन, चाइल्ड डेवले०, 1967

हैब, डी ओ — ड्राइव्स एण्ड द कानसेप्चुअल नरवस सिस्टम, साइकोलोजीकल रिव्यू०, 1955

हारलो, एच. एफ हारलो एम के एण्ड मेयर, डी आर — लर्निंग मोटिवेटेड वाई ए मैनियुलेशन ड्राइव, जे० एक्सपेरि० साइकोलोजी, 1950

माइस मन्कीस मैन एण्ड मोटिव्स, साइकोल० रिव्यू०, 1953

हाकेनसेन, जे ई — द फिजियोलोजिकल वेसेज आफ मोटिवेशन, न्यूयार्क जान वाइली एण्ड सन्स, इन्क०, 1969

हल, सी एल — प्रिन्सिपल्स आफ बिहेवियर, न्यूयार्क एप्पलटन सेन्चुरी क्राफ्ट्स, 1943